GL H 915.4
SUM

124739
LBSNAA

ास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
al Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~1790~~ 124737
वर्ग संख्या
Class No. GL H 915.4
पुस्तक संख्या
Book No. सुमित SUM

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

कश्मीरसे कराची

लेखक—

श्रीमज्ज्ञातपुत्रमहावीरजैनसंघानुयायी, स्वर्गीय श्रीमन्महर्षिप्रवर,

श्री १०८ श्रीफकीरचन्द्रजीमहाराजका प्रशिष्य, तथा

श्री १०८ सिन्ध-विहार-बंगाल-पार्वत्यादि

प्रदेश पावन कर्ता श्रीपुष्फभिक्खुका

चरणान्तेवासी सुमित्तभिक्खु

प्रकाशक—

विश्वेश्वरदयाल (बी. डी.) जैन,

मालिक नौकार आयरन स्टोर

गुड़गाँव (छावनी) पंजाब,

वीर संवत् २४७३, वि० २००३, शकाब्द १८६८, ई० १९४६,

किंमत रु. १०॥)

मुद्रक--रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस,
नं. २६-२८ कोलभाट स्ट्रीट, मुंबई

इसके सर्वाधिकार प्रकाशकद्वारा सुरक्षित

प्रकाशक—विश्वेश्वरदयाल (बी. डी.) जैन, मालिक नौक
आयरन स्टोर गुडगाँव (छावनी) पंजाब,

समर्पण

बचपनसेही ज्ञान-वैराग्य-संयम-सहिष्णुता-समशीलता-
विचरणादिके प्रसंग बताकर जिन्होंने मेरे जीवनको
आर्हत-भिक्खु-मार्गकी ओर झुकाया, उन
स्वर्गीय गुरुमहकी पुण्यस्मृति में ।

अंजलि।

इस महान् ग्रन्थके लिए आरम्भमें थोड़ेसे शब्द लिखने का मुझे प्रसंग मिला है। इसके लिए यह बलपूर्वक कह सकता हूं कि मैं अपने को भाग्यशाली समझता हूं। मनुष्यके शरीर का आत्मा भी कितना ज्ञानशील और बलवान् है, और अपने धर्म और व्रतों को सम्पूर्णता से किस प्रकार मान और अर्पणता दी जा सकती है। ईश्वरको सर्वस्व-अर्पण कैसे किया जा सकता है, और शारीरिक कष्ट, दुःख और श्रम किस भाँति और किस शक्ति-शान्ति से वहन-सहन किया जाता है, इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर यह ग्रन्थ देगा। यद्यपि लिखते समय ऐसा एक शब्द भी उपयुक्त नहीं हुआ है, बस यही लिखने वाले की खूबी है। साथ ही अहिंसा धर्ममें प्रेम कैसा और कितनी मात्रा में होना चाहिए इसका सुवास इन पत्रों में मिलेगा।

परमात्मा ऐसी अखंड श्रद्धा सबको अर्पण करे, और हम उनके समान अन्यान्य विद्वान मुनिओंको मानकी दृष्टि से देखें, तथा अहिंसा धर्मकी जागृतीके लिए कुछ आत्मभोग दें। मैं यही प्रार्थना करता हूं।

कराची- } जमशेदजी नसरवानजी महता,

निवेदन

पूज्यपाद-गुरुदेवके कश्मीरके विहारमें कुछ दिन साथ रह कर मैं भी आपके पादपद्मोंकी कुछ सेवा कर सका हूं। और साधु मुनिराजों की अपेक्षा आपमें कई विशेषताएँ हैं। इतना लम्बा, दारुण और अपरिचित प्रवास, तथा अपरिचित लोकसमाज, अज्ञात भाषा एवं उनको अपने विचार और धर्ममें आकर्षित करनेके लिए अदम्य उत्साह तथा विशाल हृदय अन्यान्य मुनिओंमें बहुत कम देखा गया है। इसके अतिरिक्त महनीय गुरुवर्य्यके करकमलों द्वारा लिखित कई पुस्तकोंको भी पढा है। जिनमें इतर पुस्तकोंकी अपेक्षा अतिविलक्षणता पाई गई। आपकी पुस्तकोंको यदि चमत्कारी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। रचनाविषयक एकता, सरलता, सुकोमलता, हृदयग्राहिता एवं आकर्षकता आदि बातें सार्थक भावोंमें समृद्ध हैं। निरर्थकता तो और पुस्तकोंकी भान्ति खोजने पर भी न मिलेगी।

आपकी पुस्तकोंका स्वाध्याय करनेवाले जैनेतर लोग भी बड़ी कदर करते हैं। तथा अबतक अनेकोंको पूर्ण बोधपाठ मिला है।

इससे आपके ऊँचे कक्षाके अनुभवोंसे पता चलता है कि आपकी शारदा–साधना विस्तृत है। और आपकी रचनाएँ आपके ज्ञानका माप लगाती हैं।

मुझे कई मुनियोंकी रची हुई पुस्तकें देखनेका संयोग मिला है। कुछ तो ज्ञानी महात्माओंकी लेखनीसे भी लिखी गई हैं। जिनमेंसे वास्तविक ज्ञानके बिंदुस्रोत झरते प्रतीत होते हैं। किन्तु कुछ

पुस्तकें तो ऐसे साधुओंद्वारा लिखी गई हैं, जिनके टाईटिल देखनेसे ही पता चल जाता है, कि पुस्तक लिख कर उसपर अन्याय किया गया है। असलमें तो लिखनेवालेने अपनी १६ आने अयोग्यता प्रगट की है, साथ ही अनधिकार चेष्टा भी।

आजकल जैन समाजमें हमारे बहुतसे साधुओंको पुस्तकें छापनेका एक प्रकारसे बौरान होगया है। जिसे देखो उसे पुस्तक छपवानेकी सनक सवार है। चाहे वह एक सालका दीक्षित भी है परन्तु पुस्तक छपवानेका भूत सिर पर बैठा है। इन्हें इतना भी भान नहीं है कि मुझमें एक लेखक या कवि जितनी योग्यता है या नहीं। इतना विचार करनेका उसे अवकाश कहाँ? ये तो बस कुछ भजन-बजन छाँट छूँट कर उनका संग्रह कर डालते हैं। गाने भी फ़िल्मी स्वरोंमें, कोई पंजाबी गंदे लयमें; तो कोई ड्रामेटिक तर्ज़ में। सच पूछो तो भक्तिके गायनोंको कामोत्तेजक ढबके साँचेमें ढालकर उन्हें रौंदा गया है। उनकी वास्तविकता को कुचला गया है। उसमेंसे शान्तरस या वीररसको नोचा है, जिसका प्रभाव विषमिश्रित दूधके समान बनकर नारी समाज एवं सुकोमल मनवाले बालक और युवकों पर तो इसका दूषित प्रभाव पड़ चुका है। यही कारण है कि इन गंदे साधनों से अपने समाजका वायु-मंडल उत्तरोत्तर बिगड़ता आ रहा है।

अब ज़रा इन भजनोंका कलेवर देखिए, जो न साहित्यकी पूर्ति कर सकता है और न संगीतकी। न स्पष्ट और स्वच्छ हिन्दी उर्दू ही है न साफ़ पंजाबी ही। असल बात तो यह है कि सिंहके

धड़ पर गधेका सिर लगा दिया है । तोल और वज़नका तो वहाँ कुछ पता ही नहीं । पिंगल-विज्ञानका तो अत्यन्त अभाव ही समझिए । आरंभ कुछ है समाप्ति कुछ है । अक्षरों की अशुद्धियां तो भारतमें आँग्ल और यवनोंकी भाँति पद पद में भरी पडी हैं । अधिक क्या बताऊं 'कहीं की ईंट कहीं का रोडा' वाली कहावत हमारे वंदनीय महाव्रतिओंकी कृतिमें चरितार्थ हो रही है, जो कि हमारे लिए कितनी लज्जाजनक है । दुःखके साथ लिख रहा हूं कि प्रत्येक साधु लेखक-संपादक और कविराज बनना चाहता है, योग्यता चाहे हो या नहीं । परन्तु सच बात तो यह है कि कविताएँ तो हरजसराय जैसा कवि ही रच सकता है । यह **देखा-देखी साधे जोग** तो हमारे मस्तकको नीचा गिरा रहा है । मैं ऐसे विचारके साधुमहाराजसे नर्माईका उपयोग करते हुए विनय करता हूं कि वे आजसे ऐसी भद्दी, अयोग्य और निरर्थक पुस्तकें छपवाना बंद करदें । इसीमें समाजकी भलाई है । तथा पहले संस्कृत-प्राकृत-व्याकरण-काव्य कोष-न्याय-तर्क-दर्शन-हिंदी-उर्दू-अंग्रेजी-गुर्मुखी-बंगला-महाराष्ट्री-गुजराती-सिन्धी-पहाडी-पंजाबी आदि समस्त लोक भाषाओंका पूरा अध्ययन करके उन पर अधिकार प्राप्त करें । उन उन परीक्षाओंमें उत्तीर्णता पाकर फिर लोह लेखनी उटाएँ जिससे आपका साहित्य विश्वव्यापी हो, तथा हमारा मस्तक गर्वसे ऊँचा हो । वास्तवमें हम आपको ऐसा चाहते हैं, क्षमा करें । हमारी आँखें आपको सिद्धान्तचक्रवर्ती देखने को तरस रही हैं, 'खंड-खंडे तु पांडित्य' नहीं ।

साथ ही मेरी उन भक्ति-सौजन्यपूर्ण श्रावक भक्तों से भी प्रार्थना है कि अंध-भक्तिके कारण विनासोच विचार किए ही ऐसी ऐसी

वाहियात पुस्तकें छपवाकर अपने धनका व्यर्थ-व्यय न करें। तथा अपने समाजका हुसनखूबा न दिखाएँ। यदि आप अपना धन किसी अच्छे साहित्य प्रकाशन या सहधर्मिशुश्रूषा-सहधर्मिवात्सल्यता में वितरण करें तो आप अनन्तगुण उत्तम और शुभ फलको पाएँगे। समाज और लोकका भला करें, लोकैषणाके बंधनमें न फँसें। यदि हो सके तो आप अपने धनका व्यय करके अपने मुनिराजोंको लोककी समस्त भाषाएँ सिखानेके हेतु मुनि विद्यालय का उद्घाटन करें। जिससे हमारे मुनिगण अठारह लोकभाषा और अपने सिद्धान्त-महोदधि के पारगामी बन सकें, फिर वे टॉलस्टॉय जैसी मौलिक पुस्तकें लिखनेके योग्य हो सकेंगे। तब आपका अमर यश आपकी आनेवाली पीढ़ियों तक अमर एवं स्थिर रह सकेगा।

मुनिओंकी अल्प संख्या हो तो कोई हानि नहीं है, परन्तु मुनिओंका अल्पज्ञ-अपठित एवं निरक्षर रहना हमारे लिए भयंकर हानिका कारण है।

हमारे प्रमुख मुनिओंको भी स्मरण रहे कि आप इस कमीको पूरा करनेके लिए अपने शिष्योंको इस प्रकारके दूषित वातावरणसे निकालकर उन्हें सर्व-विषय-पारंगत बनानेका भीष्म-पुरुषार्थ करें, जिससे समाजका हित हो और वह अवनतिके गर्तमें जानेसे बचे। अन्यथा यह वस्तु समाजके लिए अहितावह सिद्ध होगी।

× × × ×

हमारे जैन मुनि तथा साध्विएँ अपने संयम-शील एवं ज्ञानसे शोभित हैं। साथ ही ऊँची कोटीके लेखक भी हैं। अपने उत्तम विचार और अनन्य अनुभवके अनुसार बहुतोंने अनेक पुस्तकें लिखीं, और ज्ञान-विज्ञानके स्रोत बहा दिए। जिनके पढ़नेसे भी एक महान् रस बनता है। पढ़ते पढ़ते मन भक्ति-प्रेम-शान्त और वीर रस में सराबोर हो जाता है। और वैराग्यसागरमें ग़ोते लगाते लगाते उन्मग्न-निमग्न हो जाता है।

ये मुनिगण अनुभूत ज्ञानवाले प्रवचनकार भी हैं। इनके व्याख्यानोंमें अधिकसे अधिक सुननेवालोंकी संख्या इकट्ठी होती है। जनता ध्यान देकर शान्तिपूर्वक खूब ही सुनती है, और उस समय उस अधिक उपस्थितिमें खामोशी भी इतनी होती है कि मनको अचरजसा लगता है कि 'क्या सुननेवालों पर जादू कर दिया गया है? या इन्हें मंत्रित किया गया है, जिससे ये मनकी एक लगनके साथ श्रवण कर रहे हैं, इत्यादि।'

श्रीज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघीय मुनि श्रीफूलचन्द्रजी महाराज भी उनमें से एक हैं। आपने सिंधमें कराची, बंगालमें कलकत्ता, उत्तरमें कुल्लु, शिमला, उत्तर पश्चिममें तक्षक-शिला-रावलपिंडी, हिमालय पर्वतीय–कश्मीरके बहुतसे दुर्गम प्रदेशोंमें विचरण-भ्रमण किया है। आपके उस प्रवासकी ही यह पुस्तक है। लेखक द्वारा तीन वर्षके श्रमसे यह लिखी गई है। कई कारणोंसे पुस्तकका सब अंश नहीं पढ़ सका हूं तथापि मैंने सारभूत बातें सब पढ़ ली हैं। इसके पढ़नेसे मुझे तो ऐसा अनुमान होता है मानों इसमें उदारतापूर्वक सीमासे उपरान्त सन्मतिका उत्तमरीतिसे व्यय किया है। शब्दों

और पंक्तियोंको प्रसंगानुसार कड़े और नियंत्रित मनके श्रमसे जोड़ा गया है। संगति मिलानेमें पूरी पूरी सतर्कता रक्खी गई है। मानों मोती ही पिरोए हैं। पुस्तकमें भौगोलिक, वैज्ञानिक, रासायनिक, वैद्यक, धार्मिक-मस्तिष्क-मनोविज्ञानकी भी झलक आई है। पहाडों-उद्यानों-नदी-नालों-वनराजीकी सुन्दरता तो इस खूबीसे लिखी है, मानो पढ़ते समय हम वहीं बैठे हैं। वहांके धार्मिक विषयों पर भी खूब ही प्रकाश डाला है। संवाद और वार्तालाप तथा रहस्यपूर्ण धार्मिक चर्चा द्वारा, पूर्वपक्षके समझदारोंको समझाते समय चार चाँद लगा दिए हैं। ये सब वृत्तान्त जानने समझनेके लिए बड़े उपयोगी हैं।

अनुमान होता है कि काव्यज्ञानकी तो पराकाष्ठा होगई है। सचमुच यह चमत्कार पूरी जानकारीसे उत्पन्न होकर प्रगटा है। आपके व्याख्यानोंमें भी बहुतसे लोग समुदायके रूपमें आते हैं। साथ ही सुननेवालोंको पूर्ण सन्तोष मिलता है। आपकी समाजोत्थानकी भावना अत्यन्त प्रबल है। आपके व्याख्यान भी समाजसुधार तथा राष्ट्रीयभावनाओं पर विशेष होते हैं। मैं आप जैसे मुनि-महात्माओंके चरणकमलोंमें निरभिमान होकर वंदना करता हूं। सच मुच आप जैसे महान् आत्माओंके प्रवचनोंके परिणाम से ही तो समाज अपने अटल एवं अविचल स्थान पर खड़ा है।

बलवन्तराय जैन,

जम्मू-तवी

अभिप्रायप्रदर्शनम्

"कश्मीरसे कराची"

इयं पुस्तिका ज्ञातपुत्र-महावीर जैनसंघीयभिक्खु-सुमित्ताभिधानेन लिखिताऽऽस्ते, मुनिवरस्य प्रेमाऽऽग्रहवशादेव मयाऽपि दृष्टिपथं नीता। अस्यां निसर्गरम्यस्य भूस्वर्गस्य काश्मीरजनपदस्य रमणीयताप्रदर्शनं तत्र निवसतां शीलस्वभावदिग्दर्शनं निजविहारवृत्तं च समुपन्यस्तम्। यत्र तत्र मुनिवरैः कृता उपकारादयो विषयाः सन्ति लिपिबद्धाः।

पुस्तिकायाः पूर्वार्द्धस्तु नरलोकस्थ-स्वर्भूमिपरिचयेनैव समापितः, भूस्वर्गस्य रमणीयतां तदाकृष्टमानसा मुनिवरा भूयो भूयः प्रशंसन्ति, अतःपरं परानपि दर्शनाय समुत्सुकान् विदधति। एतावता काश्मीरस्य रमणीयता साक्षाद्दृष्टाऽपि प्रतीयते।

परं...।

पूर्वार्द्धादनन्तरं परिशिष्टेषु शास्त्रगतानामामिषार्थक-शब्दानां धर्मोपदेशकेन पण्डितवरेण श्रीपुप्फभिक्खुणाऽन्वेषणेहापूर्वकं वनस्पतिसंगतोऽर्थः समर्थितः श्लाघ्यतरोऽयं परिश्रमनिकरः।

जिज्ञासूनां सत्यार्थबोधाय लाभप्रदो भविष्यति, एवमेव भाविन्यपि काले समाजोपयोगिभिः साहित्यैर्मुनिवरा-उपकरिष्यन्तीत्याशया विरमामि वाचां पल्लवनात्।

अभिप्रायोऽयं

'पूज्यश्रीहस्तिमल्लजीमहाराजानाम्'

पूज्य श्री हस्तीमल्लजी महाराजके संस्कृत अभिप्रायका हिन्दी अनुवाद

काश्मीरसे कराची इस नामकी पुस्तक ज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघानुयायी श्रीसुमित्त भिक्खुने लिखी है। मुनिवर्य्यके प्रेम और आग्रहसे मुझे पुस्तक देखनेका अवसर मिला। पूरी पुस्तक एक ग्रन्थके रूपमें है। इसमें कश्मीर देशकी रमणीयता, बिहार क्षेत्र और भ्रमणवृत्तान्तके साथ वहाँके निवासियोंके शीलस्वभाव आदिका परिचय दिया है। यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें बँटा है। पूर्वार्द्धमें हिमालय और काश्मीर प्रदेशका परिचय है। प्रकरणको पढ़कर एक वार पाठक अवश्य काश्मीर देखनेकी इच्छा करेंगे। क्योंकि यहाँ मार्ग सुविधा का उल्लेख भी किया गया है। पुस्तकके लेख उपयुक्त............।

पूर्वार्द्धके अन्तमें धर्मोपदेष्टा श्रीपुप्फभिक्खु मुनिके गवेषणापूर्ण निबंध है जो परिशिष्टमें दिया है। इसमें सूत्रके आपत्तिजनक शब्दोंका वैद्यक-शास्त्रके प्रमाणसे वनस्पति सूचक अर्थ सिद्ध करके मुनिश्रीने श्लाघ्यतम कार्य किया है। विलोमार्थके संदेहमें पड़नेवाले जिज्ञासुओंके लिए यह प्रकरण लाभदायक है। पाठक इससे लाभ उठावें। आशा है कि मुनिश्री भविष्यमें भी इस प्रकार समाजोपयोगी साहित्यसे समाजको उपकृत करते रहेंगे। **"सूतेऽम्भः कमलं लेढि, मकरन्दं मधुव्रतः।"** क्योंकि कमलको तो जल उत्पन्न करता है और रसको तो भौंराही पीता है।

भूमिका।

ईस्वी सन् पहलेके छठवें सैंकड़ेमें अर्थात् २५०० वर्षपूर्व परमोद्धारक-परमयोगी-प्रभु-श्रीज्ञातपुत्र-महावीर-जगत् की सर्वदेशीय प्रगति साधनेके लिए जगत्में धर्म-नीति और सत्यतादि विशुद्ध तत्वोंके प्रचारके लिए भारतमें सर्वत्र विहार कर रहे थे। तीर्थंकर नाम कर्म पहले उपार्जन किया था, अतः उसे वेदनेके हेतु, तीर्थंकरोंका पर्यटन द्वारा उपदेश होता ही है। परन्तु इन महान् विभूतियोंका उपदेश प्रवचन बडा ही अमूल्य और महर्घ होता है। महान् पुरुषोंका पर्यटन-विहारका मुख्य हेतु संसारकी सर्व-देशीय प्रगतिके अवरोधक तत्वोंको दूर करके धर्मकी उन्नति करना ही है। आत्म-हितके लिए धर्म ही महा उपयोगी साधन है। धर्म आत्महितका कारण है। आत्माकी निर्मल ज्योतिका शुद्धस्वरूप प्रगट करनेके लिए मात्र धर्म ही साधनरूप है।

२५०० वर्ष पहले जब आर्यावर्तकी धर्मभावनामें महान् परिवर्तन हो गया था। जब सत्य धर्म के विशुद्ध एवं पवित्र तत्व लुप्तप्रायः हो गए थे। जब धर्मभावनाका जीवन तत्व छिन्न भिन्न होकर अपार्थिव-अर्थहीन बन गया था। उस समय महान् योगी, तरुण तपस्वी प्रभु श्रीज्ञातनन्दन महावीरने सब देशोंमें घूम घूम कर सत्य धर्मके उत्तम और निर्मलतम तत्वोंके प्रभावको जनहृदयमें अंकित करके धर्मके वास्तविक एवं मौलिक सत्यस्वरूपको गौरवके स्थान पर प्रतिष्ठित किया था। प्रभुने जगत्की सर्व देशीय उन्नतिके लिए अनेक जीवोंके कल्याणके अर्थ धर्मोन्नतिके लिए खूब ही परिश्रम किया था।

उत्क्रान्तिवादके सिद्धान्तोंसे जिसे प्रेम है उसे उत्क्रान्तिके तत्व

प्राणाधिक प्रिय लगते हैं। उनके विकास-पाते, दृष्टि गोचर होते हुए भी अन्य विषय उन्हें अपूर्ण ही प्रतीत होंगे। धार्मिक-नैतिक उत्क्रान्तिकी प्रत्येक समाज और राष्ट्रको पहले आवश्यकता थी और अब भी है। प्राचीन भारतकी उन्नति बहुतसे अंशोंमें नैतिक और धार्मिक वृत्तिसे उपकृत थी। हजारों वर्ष पहले जब जब जगत् प्रायः अंधकारमें ठोकरें खा रहा था, तब आर्यावर्तमें इसी महान् विभूतिने धर्म और नीतिके विशुद्ध तत्वोंके आन्दोलनोंको जगाकर जनसमाजको उन्नतिके शिखरपर ले जानेका अथाह परिश्रम किया था।

आधुनिक समयमें उन्नतिका अर्थ बहुत ही छोटा और संकोच-रूपसे किया जाता है। सुख सम्पत्तिके साधन, बिलडिंग, या अपार धनराशिका संचय, यह सब कुछ उन्नति नहीं है। ये सब तो क्षन्तव्य प्रकरण हैं। साम्प्रतिकालमें स्थूल वस्तुओंकी ओर समाजका लक्ष्य बड़े वेग से आकर्षित होता देखा जा रहा है। परन्तु वास्तविक रीतिसे यह उन्नतिका मात्र बहिर्गत और एकदेशीय स्वरूप है। भौतिककी अपेक्षा नैतिक और मानसिक उन्नतिकी अत्यधिक आवश्यकता है। परन्तु इनका सुधार बुद्धि, नीतिकी योग्यता पर है। भगवान् महावीरका सर्वमान्य सिद्धान्त कहता है कि मान लो कोई व्यक्ति अपार धनराशि का मालिक—सर्वसाधन सम्पन्न हो, कोई राष्ट्र कितना ही विस्तृत क्यों न हो, और बाहरी स्वरूप अधिकाधिक प्रगतिमान् ही चाहे क्यों न हो, परन्तु उस व्यक्ति और राष्ट्रका धार्मिक, नैतिक तथा मानसिक जीवन यदि सुस्त, अप्रतिभ, ढीला एवं अप्रामाणिक होगा तो वह व्यक्ति और राष्ट्र उन्नत नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति-समाज-राष्ट्र और जगत्‌की

उन्नतिके लिए-जगत्की सर्वदेशीय प्रगतिके लिए, धर्म तथा नीतिके विशुद्ध तत्वोंके प्रतिपादनके लिए, जगत्के कल्याणके लिए, जगत्की अध्यात्मिक उन्नतिके लिए हमारे परमपितामह महावीर-परमात्माने २५०० वर्ष पहले आर्यावर्तके प्रत्येक भूभागमें विहार (घूम-फिर) कर के उन्नतिके क्रमके चक्रोंको गतिपूर्वक वेगमें रक्खे थे।

आर्यावर्त के समस्त प्रदेशमें विहार भ्रमण करते हुए प्रभु महावीर उस समय सिंधमें (प्राचीन नाम) वीतीभय नाम नगर तक पधारे थे। सिंधदेश उस समय (२५०० वर्ष पूर्व) अधिकांश अनार्य प्रदेशमें कहा जाता था। तब ऐसे अनार्य देशमें विहार करना कठिन एवं उग्र कहना निर्विवाद सिद्ध है। परन्तु ऐसे २ महापुरुषोंके लिए आर्य या अनार्यप्रदेशके लिए कुछ भी भेदभाव हो नहीं सकता। प्रभुका आशय अनार्य देशमें विचरनेका यही हो सकता है कि लोगोंकी मुद्दतकी अज्ञात-अवस्थाका नाश हो तथा इनका कल्याण हो।

प्रभुका अनार्य-भूमिमें विहार करना आधुनिक साधु सन्तोंके लिए जो कि प्रभुके अनुयायी हैं उनके लिए एक महान् दृष्टान्तरूप है। तथा उनके विहारसे हमें नग्न सत्य जाननेके लिए भी मिलता है कि उस योगीश्वरके दयार्द्र अन्तरमें जनसमाजके कल्याणकी कितनी आदर्श भावना थी। लोककल्याणकी भावना इसके दयालु अन्तरमें कितनी ओतप्रोत होगई थी। प्रभुका अनार्य भूमिमें विचरनेका श्रम प्रभुके आदर्श जीवनका महान् प्रसंग है। तथा उसमें से यह शिक्षण उपलब्ध होता है कि इनकी सब चर्या उदयाधीन और आत्म-प्रतिबं-

धसे रहित थी। आर्य या अनार्य, सभ्य या असभ्य इनकी दृष्टिमें सब समान थे। हमको प्राथमिक दृष्टिसे ही प्रत्यक्ष होता है कि प्रभुने अनेक उपसर्ग सहकर, परीषहोंको जीतकर, कठोर तपके साथ साथ कठिन विहार करके समस्त आर्यावर्तमें विचरण किया। इस पुरुषार्थमें इस विभूतिकी यही भावना थी कि जगत्के सब लोगोंका कल्याण हो।

तीर्थंकरके जीवनका कोई भी काम प्रायः निर्हेतुक नहीं होता। उन्होंने सिंध आदि अन्य प्रदेशोंका विहार अपने समक्ष ऊंचे आदर्श पर स्थिर किया था। प्रभुके समान महान् आत्माको भी अखिल जन-समाजके कल्याणकी कितनी तीव्र भावना थी। और उस कल्याणक भावनाको आचरणमें उतारते हुए लोगोंको धर्म और नीतिकी लाइन पर उन्नतभावसे स्थिर करनेके लिए सत्य, अस्तेय, न्याय और नीतिके सर्वमान्य तत्वोंको कितने ज़ोर शोर से मंडन करते हुए लोक-हृदयमें धर्मकी लाभ लगन प्रतिष्ठित की। प्रभुके आदर्श जीवन और उग्रविहारमें से हमें यही बोध मिलता है। महावीर प्रभुका समस्त आर्यावर्तका विहार, अनेक विध उपसर्ग सहना, अनेक कठिन कष्टोंका सामना करना, लोक कल्याणके लिए आपका संसारमें घूमना, इनके आधुनिक दीक्षित वर्ग के लिए सचमुच, अनुसरण करनेके लिए उदार उदाहरणके समान है। इस प्रकार उनके आदर्शभूत जीवनमेंसे हमें जानने सीखने और आचरणमें लानेके लिये तो बहुत कुछ जानना-सीखना और आचरणमें लाना बाकी है। सचमुच वीरका सपूत वही है जो भगवानका सच्चा अनुयायी बनकर उनके आदर्शोंको आर्यावर्तके कोने कोने तक पहुंचानेका भगीरथ प्रयत्न करे। भगवान की पुनीत पदपद्धतिका अनुगामी होकर भगवान्के स्याद्वाद को ऊंचा

उठानेका साहस करें। तथा लोककल्याण और धर्मोन्नतिके लिए सब प्रकारके शक्य यत्न करें।

परन्तु हमारी समाजमें इसका उलट देखा जा रहा है। तेलीके बैलकी तरह थोडे से ग्रामोंमे घूमघामकर अपने हौसले अधूरे ही रख रहे हैं। इस तंग दिलीका परिणाम यह निकला कि जैनोंसे २५॥ आर्य देश छिन गए। उन देशोंमें अनार्यता फैल गई। यहां तक की लोग जैन धर्मके संबन्धमें कुछ भी जानकारी न पा सकनेके कारण यहां तक मन आई बकने लगे कि क्या जैन धर्म भी कोई धर्म है? कोई कहने लगे कि भारतको जैन धर्मके कारण दास बनना पडा है? कोई जैन धर्मकी अहिंसा को ही कोसने लग पड़ा। बस ये आक्षेप मेरे धर्माचार्य श्रीगुरुदेव को बहुत अखरे तथा विषबुझे तीरके समान चुभ गए और आपने नाना देशोंमे घूम २ कर भगवानके शासनका यत्र तत्र सर्वत्र प्रचार कर ने की पक्की ठान कर कटि बद्ध हो गए। एवं दिन रात एक करके भारतवर्षके सब प्रान्तोंमें विचरने का निश्चय किया।

यों तो आपने सैंकड़ों ग्रामों में हज़ारों लोगोंको प्रतिबोध देकर उनकी धर्मकी नींव पक्की करके लोगोंको सन्मार्ग सुझा कर जैनधर्ममें स्थिर किया। उनमें धार्मिक-श्रद्धा दृढकी, धर्मके नेतृत्व करनेवाले सब साधु-सन्तोंको अभेद रूपसे अपनानेका बोध-पाठ दिया। यजमान और पुरोहित वाला गठबंधन न छू कर ज्ञान और क्रिया पूर्ण साधुओंको गुरु माननेकी सम्मति दी। पक्षपात-टोलावाद-बाडाबंदीके फेर से बचनेको कहा। यही कारण है कि जैनोंके अतिरिक्त अजैन जनता ने भी आपका स्वागत किया तथा आपके उपदेशोंको

मानकर उन्हें अपनाया और बहुतसे आपके विचारके अनुयायी बनसके। यदि आपके सब उपकारोंका विवरण लिखाजाय तो सात महाभारत जैसा ग्रन्थ बन जाय, परन्तु यहां तो मैंने गागर में सागर वाली उक्तिके अनुसार वे ही मुख्य बातें नमूनेके रूपमें लिखी हैं जो मुझे याद हैं। सारी सामग्री तो आपका पूरा जीवन-चरित्र लिखकर ही कभी बतायँगे। कुछ मुख्य घटनाएँ ये हैं।

संवत् १९७१—में, मुआने-सिंघानेके १०० घरोंको जिनशासनकी शिक्षा दे कर उन्हें जैनधर्ममें प्रविष्ट किया। वे अब तक धर्मभावमें स्थिर हैं।

सं० १९८६—में, साहारनपुर के मार्गसे अंबालेतक विहार किया। इस रास्ते से अब तक जैनमुनियों का विहार नहीं होसका था। मार्मिक प्रवचनों द्वारा मार्ग में सैंकड़ों दिगंबर भाइओंसे विचार-परिवर्तन एवं उपदेश दानसे उनमें धर्मसमभावका प्रसार किया।

सं० १९८७—में, नालागढ़ स्टेट से आगे उत्तर-पश्चिमीय पार्वत्य प्रान्तमें **नादौन** स्टेट तक घूमकर पर्वतीय लोगोंमें जिनधर्म और अहिंसाका प्रचार किया। नादौनमें सर्वप्रथम चतुर्मास भी किया। तथा सैंकडों भव्य-भावुक तैयार किए।

सं० १९८९—में, अंब स्टेटके कई भूदेवोंको प्रतिबोध देकर उनसे आमिष त्याग कराया।

सं० १९९०—में, अजमेर मुनिसम्मेलनमें सम्मिलित होकर अनुमान २५० मुनिओंके दर्शन लाभसे अपना जन्म-जीवन सार्थक किया। वहीं आपने साम्प्रदायिकता का विशेष अध्ययन किया और

टोलेबाज़ीसे आपको सोलह-आने घृणा होगई। वहींसे इस विषयमें बोधपाठ लेकर साम्प्रदायिकताके विरुद्ध आवाज़ उठानी आरंभ की।

सं० १९९१—में, कराची जैन गुजराती संघकी प्रार्थनाको मान देकर ११०० मीलका प्रवास भोगकर ज्ञातपुत्र-महावीर निर्वाण के अनन्तर २५०० वर्षके पश्चात् सर्वप्रथम सिंधप्रदेशमें जिन-शासनका सन्मान बढ़ाते हुए कराची चतुर्मास किया। और अहिंसाके प्रवचनोंके फलस्वरूप कराचीमें **'सिंध जीवदया मंडली'** की स्थापना की। जिसके मेम्बर जैन-हिन्दू-मुसलमान-पारसी-इसाई-मकरानी-तुहरानी आदि सब हैं। जिसके प्रमुख (प्रधान) तो भूतपूर्व लॉर्ड-मेयर श्रीमान् जमशेदजी नसरवानजी महता हैं। अबतक इस संस्थाने अगणित जीवोंकी जानें बचाई हैं। उक्त मंडलीने हज़ारों आदमियोंको दमा-खाँसीकी दवा देकर उनको रोग मुक्त किया है। हज़ारों मनुष्योंकी बीड़ी आदि की कुटेव छूटी है। कई स्थानोंसे प्रचार द्वारा बलि और कुर्बानी की प्रथा पर प्रतिबंध लगाया गया है।

सं० १९९२—में, जगरावाँ (पंजाब) से चलकर कुल्लु तकका विशाल-प्रवास दो मासमें ५०० मील समाप्त करते हुए शिमला जैसे शीतप्रधान-प्रदेश का धर्मप्रचार द्वारा उद्धार करते हुए सहस्रों पहाडियोंको निरामिषभोजी की शिक्षा-दीक्षा प्रदान की।

सं० १९९३—में, जगरावाँसे विहार करते हुए १०७१ मीलका प्रवास करते हुए, पंजाब-संयुक्तप्रान्त-(यू. पी.) विहार (मगध)

में विचरते २ सर्वप्रथम झरियासंघकी बलवती भावना पर ध्यान दे कर झरिया (मानभूम) में पधारे, चतुर्मास भी वहीं किया। तथा आस पासके बहुतसे छोटे बड़े ग्रामोंमें घूमकर उन लोगोंमें अहिंसा और जिनशासनका प्रचार किया। फलस्वरूप सहस्रों बंगालियोंने मांस-मदिरा-ताड़ी और पशुबलि छोड दी।

टोलावादसे मुक्ति—झरिया पधारते ही महावीर जयन्तीके पवित्र-पर्व में समस्त झरियासंघके सदस्योंके समक्ष सिंहनाद करते हुए यह घोषणा की कि, हमारी इस समाजमें पक्षवाद-टोलावाद या साम्प्रदायिकताका भयंकर विष घुला हुआ है। अतः यही कारण है कि वीतरागभाव-समभाव-साम्यभावके स्थानमें राग-द्वेष-कलह-घृणा-खींचतान एवं अहमहमिकाके पापका अभि शाप फैलनेसे समाजका उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है। सम्प के स्थानको कुसम्पने छीन लिया है। अतः आजसे मैं इस टोलावादसे मुक्त होता हूं, और अबसे आगे मेरी सम्प्रदाय ज्ञातपुत्र-महावीर है। मेरा जीवन ज्ञातपुत्र-महावीर के सिद्धान्तोंमें ओत-प्रोत है। भगवान-ज्ञातनन्दन-वीरके आदेशानुसार जीवन निर्यापन करनेवाले सब मुनि मेरे सहधर्मि-भाई हैं। उनकी सेवा-भक्ति अभेद रूपसे करूंगा। घृणा-द्वेष-उपेक्षा तो मुझे किसीसे न होगी, इस प्रकार अनन्त-सिद्धोंकी साखसे मैं साम्प्रदायिकतासे मुक्ति ले रहा हूं। आजसे वीतराग-भावकी साधमें लगे रहने वाले मुनिओं में मेरा आदरभाव भेद-भाव रहित है।

सं० १९९४—में, कई बार की कलकत्ता जैन-गुजराती-संघ की प्रार्थना को बहुमान देकर कलकत्ता जैसे बंगालके पाटनगरमें

सर्वप्रथम चतुर्मास किया, वहां भी जीवदया समिति द्वारा पशु-बलिके विरुद्ध आवाज़ उठाकर १२०००००हैंडबिल, ५०००० ट्रैक्ट वितरण करानेकी व्यवस्था कराई, कालीघाट पर अत्यधिक अहिंसा प्रचार हुआ, परिणाममें रुपएमें चार आना बलिप्रथा रुकी। और हज़ारों लोगोंने साधु सहवासमें आकर निरामिषभोजी बननेका सौभाग्य प्राप्त किया।

सं० १९९५—में, कलकत्तेसे विहार करके पुनः झरिया पधारे। तब वहां जैनगुजराती संघने बलपूर्वक प्रार्थना की कि-भगवन्! इस अनार्य प्रान्त में साधुमुनिराजोंका आना कठिन है अतः यह चतु-र्मास यहीं बिताएँ, एवं मानभूम-वीरभूममें विचर कर मानव समुदायकी अनार्यता को जड़से मिटाएँ। इस भागीरथ कार्य में श्रीमान् निहालचंद-लीलाधर कोठारी का ठोस हाथ, बड़ा कुछ कार्य कर सका है। उन्होंने बहुतसी कोलियारियोंमें आपको लेजा कर हज़ारों मज़दूरोंमें व्याख्यान कराने की व्यवस्था की। तब गुरुदेवके प्रवचनका संयोग पाकर सैंकड़ों ने मांस-दारू-ताडी-आदिकी कुटेव छोड़ दीं।

आपकी प्रार्थनाको स्वीकार करके श्रीमहाराज साहब **बेर्मोबो-कारो**—कोलियारी पधारे। वहां दो मासके कठिनतम प्रयाससे **चल्करी गोशाला**—में बराकर नदीके तटपर एक दिन मंडलजातिके लोगोंकी एक विराट् सभा हुई। गुरुदेवके तनतोड़-अथक परिश्रमसे प्रेरित हो कर मंडलजातिके सब सभ्योंने यह उत्तर दिया कि भगवन्! हम सब सैंकड़ों गावोंके मंडल-धीवर और मल्लाह लोग आपकी पवित्र आज्ञानुसार मांस-मदिरा-ताड़ी और पशुबलिको सदा के लिए छोड-

नेको प्रस्तुत हैं । परन्तु एक बार आप हमारे कुलगुरु **चैतन्य महाप्रभु** से शास्त्रार्थ करें । यदि इस विषयमें आपने हमारे कुलगुरु को मूक-निरुत्तर कर दिया, तो उन समेत हम हज़ारों मंडल, मछुवाए आपके सब आदेशोंको तुरन्त माननेको प्रस्तुत हो जायंगे । इसविधिसे पशुबलि-प्रथा वालोंका मार्ग एकदम छिन्न हो जायगा और इसका प्रभाव भी दूर तक पड़ेगा ।

श्रीमहाराज-गुरुदेवने दयालु-प्रकृतिके अनुसार उनके इस प्रस्तावका समर्थन किया और फर्माया कि अगर वे आज ही आ जायँ तो हम उनसे निबट लें । 'शुभस्य शीघ्रम्' की उक्तिके अनुसार वहां की गोशाला के मैनेजर पं० द्वारकाप्रसाद पाण्डेय को **अंदाल** भेजकर उनलोगोंने चैतन्यमहाप्रभुको उसीदिन सायंकाल तक बुलवा लिया, और अगलेदिन सवेरा होते ही **बेमों जैनस्थानक** में उक्त चैतन्यमहाप्रभुसे तत्संबंधी चर्चा और विचार विनिमय आरंभ हुआ । दो घंटे की चर्चाका यह फल मिला कि श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने यह मान लिया कि मांस-मदिरा-ताडी और पशुबलि अवैध है । प्रकृतिधर्म और अध्यात्मिकतासे विरुद्ध है । इनका त्याग सबसे पहले मुझे करादें, और अपने आश्रित सब मंडलजातीय शिष्यमंडलीसे बलपूर्वक प्रेरणा करके उनसे मांस-मंदिरा-ताड़ी और पशुबलि बंद करा दूंगा और वे सब छोड़ ही देंगे ।

श्रीमहाराजाधिराजने आनन्द मग्न होकर चैतन्य महाप्रभुको यह आज्ञा फ़र्माई की, आनेवाली कलकी पवित्र तिथिके दिन श्रीज्ञातपुत्रमहावीर भगवान् की निर्मल जयन्तीका पर्व है, उसी समय आप त्याग करना, और सब मण्डल जातिको भी तब ही त्याग कराया

जायगा । चैतन्यमहाप्रभुने दृढ प्रतिज्ञ होकर इस आज्ञाको सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

बेर्मो संघने पूर्व ही सब व्यवस्था करली थी, झरिया-कतरास-गढ़-भजूडीह-बर्दवान-कलकत्ता-टाटानगर आदि कई स्थानोंके प्रधान-संघपति-संघके सभ्य असीम-संख्या में आगए । मंडलजातिके सैंकडों गावँ और पल्लियोंमें सूचना दी गई । प्रातःकाल होते होते हज़ारों मंडल जातिके लोग और मल्लाह-मच्छीमार आदि कई जातिएँ सम्मिलित हुई । बेर्मो जैनस्थानकसे जलूस आरम्भ हुआ, और बराकर नदी को पार करके, ज्ञातपुत्र-महावीर-भगवान्के जयनादसे दशों दिशाओंको शब्दायमान करते हुए, चल्करी गोशालाके भव्य पंडालमें पहुँचे । श्रीमहाराजने अनुमान दो घंटे प्रवचन किया । भगवान्-महावीरका जीवनचरित्र और प्रभुकी बताई हुई सत्य अहिंसा का पूर्ण विवरण चित्रित करके समझा दिया । अन्त में मण्डल-जातिको मांस-मदिरा-ताड़ी-पशुबलि आदि पापाचार छोड़ने के लिए बलकर शब्दोंमें अपील की । अपील पूर्ण होते ही मण्डल जातिके कौलिक गुरु-चैतन्य-महाप्रभुने समस्त-मंडल जातिके लोगोंको हाथ जोड़ कर कहा कि-ओ मेरे मण्डलजातीय भाइओ ! मैंने आज तक ऐसे साधुके दर्शन नहीं किए । न ऐसे सच्चे साधुका अहिंसा-सत्य-विधायक उपदेश ही अबतक सुन पाया हूं । यह प्रसंग मुझे और आपको तथा इन सबको प्रथमबार ही मिला है । आज अहिंसाके उजले मार्गको पाकर श्रीज्ञातपुत्र-महावीर भगवान्की जयंती के पुण्य पर्वमें हम अपने आत्माको पवित्र करलें । भगवान् सच्चे मनुष्य और जगद्गुरु थे । महामानव और आदर्श पुरुष थे । उनकी जयन्ती में

हमें आज मिलकर आदर्शकार्य-पक्के निश्चयके साथ करना उचित है। आओ हम सब एक मतसे आज मांस-मदिरा-ताड़ी और पशु-बलि प्रथा को एकदम छोड दें। और सर्वप्रथम इन सब बुराइयोंको मैं छोड़ता हूं। गुरुदेव! मुझे इन कुव्यसनों-पापोंसे बचाएँ, और त्याग कराएँ। श्रीगुरुराजने अनुकम्पा ला कर चैतन्य-महा प्रभुको यावज्जीवन-पर्य्यन्तके लिए मांस-मदिरा-ताडी और पशुबलिका प्रत्याख्यान (त्याग) करा दिया। और चैतन्यमहाप्रभुने मेरी पुस्तकमें इसी आशयके हस्ताक्षर कर दिए। इसके अनन्तर आए हुए मण्डल-जातिके लोगोंसे भी हस्ताक्षर करा दिए। अनुमान ११ बजे ये सब लोग पहाड़ पर थे और पर्वतके नीचे से श्रीगुरुने इन सब लोगोंको मांस मदिरा-ताड़ी और देवी देवताओं पर पशुबलि करनेका सदाके लिए त्याग करा दिया। प्रत्याख्यान करते समय लोगोंकी आखोंमें हर्षाश्रु थे, और गदगदायमान हो रहे थे।

इसकार्यके पूर्ण होनेके पश्चात् श्रीगुरुदेवने फ़र्माया कि चैतन्यमहाप्रभो! आज इन सब लोगोंने अपना कौलिक-पाप अपराध छोड़ कर बड़ा उत्तम कार्य किया है। और इस धर्म-दलाली ने आपको अनन्त-पुण्यराशी प्रदान की है। आप सच मुच कृष्ण और श्रेणिकराज (बिंबसार) जैसे धर्म दलालोंके अनुगामी सिद्ध हो रहे हैं। यह यशका सेहरा आपके सिर है। अतः इनकी प्रतिज्ञाको दृढतम बनाए रखनेके लिए आप इतना और करें, कि, इस गावँमें पशुवध करनेके तीन स्थानों पर खूंटे गड़े हुए हैं, यदि इन्हें उखड़वा दिया जाय तो, यहांसे फिर हिंसाका अड्डा भी उठ जाय! चैतन्य महाप्रभुकी समझमें यह सीधीसी बात तुरन्त आगई, और इसका प्रत्युत्तर हाँ में

पहाड़पर बैठे हुए अगणित मंडल नायक-ग्वीनार मार्गी-धीवर-भल्ल और ब्राह्मणोंको पशुबलिका त्याग एवं शराब ताड़ी मांसमछली सदाके लिए न खाने-पीनेकी प्रतिज्ञा करा रहे हैं।

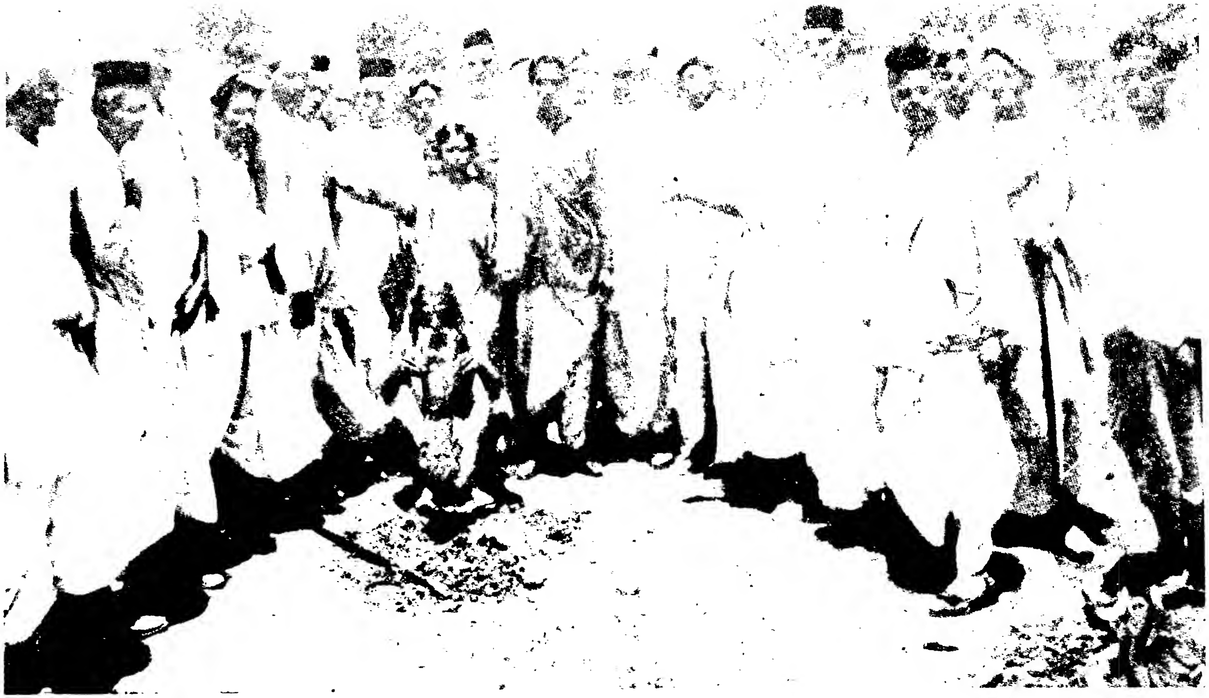

श्रीगुरुदेव चलकरी-गोशालाके गांवके काली-मंदीरके आंगनमें पशुबलि-करनेके खूंटे उखड़वा रहे हैं।

दिया । सब मण्डलजाति तथा जैनसंघके समस्त सभ्यों सहित सबसे पहले क्षेत्रपाल-भैरव के मैदानमें आए । यहां महिषोंकी बलि होती थी । क़द्दे-आदम लंबे खूंटे पास पास दो गड़े हुए थे । उन दोनोंके बीचमें महिषकी गर्दन फँसाकर फिर उसकी गर्दन रस्सों से खींच कर भींचते थे । बेचारा पशु डकराता हुआ गला घुटनेसे तड़प तड़प कर प्राण देदेता था, और संसारमें अपनी मात्र बददुआ छोड़ जाता था । यह पाप इधरके लोग अपने शिरसे दैवी-बला टालनेके वहममें फँसकर किया करते थे । इस एक खूंटे पर १२ महीनोंमें ६०० महिष (पाडे) मारे जाते थे । दयालु-गुरुने वे दोनों खूँटे तुरन्त उखड़वा डाले ।

तदनन्तर काली देवीके मंडपमें पहुँचे । द्वारकानाथ पांडेय ने लोह-कुदालसे वहांके खूंटे भी उखाड़ डाले, और अपने दोनों हाथमें खूंटा पकड़कर बताया कि इस खूंटेमें बकरेकी गर्दन फँसाकर पुरोहित कान में मंत्र पढ़कर पहले अपना चेला बनाता था । इसके बाद परशुसे उसकी गर्दन काट डालता था । इस प्रकार इस एक खूंटे पर प्रति वर्ष १००० बकरों की हत्या होती थी । वह आजसे सदाके लिए बंद होगई है । लोग इस महान् पुण्यफलसे स्वर्गधाम पाएँगे । अतः सब ऊँची आवाज से नारे लगाओ 'ज्ञात-पुत्र-महावीर-भगवान् की जय !' 'अहिंसा भगवतीकी जय !' इन हज़ारों कण्ठोंके जयनादसे दिशाएँ गूँज उठीं, और भगवान् के धर्म शासनका सूर्य ऊँचा उठ आया । इस प्रकार भगवान् महावीर प्रभुकी आदर्श जयन्तीमें, आदर्श कार्य करते हुए **झरिया जैन-संघने** ऊंचे स्वरसे कहा कि, इस पवित्र और भीष्मकार्यकी सफलताके

उपलक्ष में झरिया जैनसंघ, श्रीमान् चैतन्य महाप्रभुको दो मैडल प्रदान करता है। यह कह उसी पल झरिया जैन संघके मुख्य प्रधान **श्रीउमियाशंकर केशवजी** महताने चैतन्यमहाप्रभुके कुर्ते पर दो पदक लगा दिए। चैतन्य महाप्रभुने भी मुक्तकंठसे झरिया जैन संघका तथा गुरुदेवका अनुपम धन्यवाद गाया। १२ बजते बजते सभा विसर्जित होगई। सब लोग बेर्मो-स्थानक में वापिस आगए। उस समय बाहरसे आनेवाले मंडल जातिके महाशयोंके पल्लोमें **चिउड़ा** (धान्यका अन्न) और गुड़ की प्रभावना दी गई। सब लोगोंने इस पवित्र प्रसादको स्वीकार करके प्रसन्नताके साथ कृतज्ञता प्रगट की तथा सब लोग यथा स्थान चले गए।

एक दिन द्वारका प्रसाद पांडेय और जैनसंघके सब सभ्यगण श्रीगुरुदेवको लेकर **गोमियो** नामक ग्राममें पहुंचे। वहां तीन बजे से मीटिंग आरंभ हुई। ठीक सांझ पडनेपर सब लोग एक मतसे पूर्ण प्रतिबोध पा गए। गुरुदेवके उपदेशों और मृदु-प्रेरणाओंसे प्रभावित होकर सब ३६ जातिके लोगोंने मांस-मदिरा-ताड़ी और देवी-देवता-ओंपर पशुबलिका त्याग लेकर, मेरी पुस्तकमें सबने हस्ताक्षर कर दिए। सूर्यास्त होते होते सब लोग गुरुदेवको कालीका मंदिर दिखाने ले गए। वह पास ही तो था। गुरुदेवने लोगोंसे कहा कि आपने जब पशुबलि का त्याग कर दिया है, तब इस यूप-पशुबलि करनेके खूंटेको गड़े रखनेकी क्या आवश्यकता है। सब लोगोंने धर्मके जोश में आकर कालीपर हत्या करनेके उस भारी खूंटेको दम भर में उखाड़ कर बाहर ला फैंका। उस समयका दृश्य सच मुच चौथे आरे का सा दृश्य ठाठे मार रहा था।

इस दृश्यको **जैनेन्द्रगुरुकुल-पंचकूला (पंजाब) के कर्ता लाला श्रीरूपलाल जज (फरीदकोटी) और भगतनौरातराम (बनूड़निवासी) गुरुकुलके** अध्यक्ष, इन दोनोंने अपनी सगी आँखोंसे देखा और खूब ही प्रसन्न और प्रभावित हुए। वहाँ की घटना तो आज भी आँखों आगे तैरती रहती है।

इसी भाँति एक दिन **गुरुदेवको** बेमोंसंघके सभ्यगण **खेतको** ग्राममें लेगए। वहाँ दिन भरके प्रयत्न-प्रवचन-प्रचार और प्रयाससे ४ बजते बजते लोगोंने कालीके मंदिरके आगेसे एक भारी खूंटा खोद कर बाहर निकाला, जिसे चार आदमी कठिनाई से उठाकर गोशाला में लाए। जिन खूंटोंपर कभी पशु हत्या होती थी, आज वे खूंटे गोशाला में पडे हैं, दूर दूरके लोग उन्हें देखने आते है, और अचरजमें भर कर यह कहते हैं कि देवीके मंदिरसे ये खूंटे उखड़े और देवीका प्रभाव इतना अस्त होगया, कि उसने कुछ भी न कहा, वह साधु कितने ग़ज़ब का शक्तिशाली होना चाहिए। यह देख देख कर बहुतसे लोग पशुबलि जैसी निकम्मी कुटेव छोड रहे हैं।

वहांके मुसल्मान पडौसमें यह बनाव देखते थे, उनमेंसे एक बूढ़े यवनने कहाकि जबसे मैंने होश संभाला है, आज तक किसीने इस खूंटेकी ओर उखाड़नेके नाम उंगली भी नहीं की थी। मगर आज हम अपनी आँखोंसे देख रहे हैं कि इसे जड़से उखाड कर कुरड़ी पर फैंक दिया गया। हमें अचरज होता है कि काली कहां गई, वह आकर कुछ नहीं कह रही है। यही अचंभा हो रहा है।

श्रीगुरुमहाराजने फ़र्माया कि काली न तो बलि लेती है, और न कहीं है ही। मात्र यह तो पंडे लोग ज़बानके लालचमें आकर अत्या-

चार कर रहे थे, और गूंगे जानवरोंपर जुल्म ढा रहे थे। इसी प्रकार बकर-ईद के दिन जो तुम लोग पशुओंकी कुर्बानी करते हो वह क्या खुदा तक पहुँचती है? कभी नहीं। मात्र तुम्हारी ज़बान के लालचसे ये अनर्थ होते हैं। अतः भव्यजीवो! आज तुम भी अपने कुफ़रका कुफ्फ़ारह करो, तोबा करो, जुल्म करनेसे बाज़ आओ, और कुर्बानी करना छोड़दो। **"खुदा तक किसीका खून नहिं पहुंचता!"**

श्रीमहाराजके, मर्मभेदी उपदेशबाणोंने उनके मर्मस्थलको बींध दिया, और प्रभावित होकर सब सामने आकर हजारों मुसल्मान हाथ बाँध कर बोले कि 'हम आजसे यह निज्म् करते हैं, कि हम सबके सब मुसल्मान ईदके दिन पशुहत्या यानी किसी भी क़िस्मके पशुकी कुर्बानी न करेंगे'। ईदका त्यौहार मीठे चावलसे मनाया करेंगे। श्रीगुरुने नियम देकर उनको भी तार दिया। इस प्रतिज्ञा पर वहां के हिंदु जनता का मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और वे दृढ प्रतिज्ञ बन गए। तथा यह बोले कि यह है चमत्कार! यवन होकर गोहिंसा छोड़ दी, और हमारे समान अन्य पशु-पक्षी मारना तथा मांस खाना त्याग दिया। हमारे लिए यह परम सौभाग्यका विषय है।

इसी प्रकार श्रीगुरुमहाराजने वहांके बहुतसे ग्रामोंमें घूम घूम कर लोगोंके आचरण शुद्ध किये, तथा हज़ारों पापियों को तार दिया। साथ ही असंख्य मूक प्राणियोंको अभयदान मिला। उस प्रदेशके लिए यह कार्य श्रीगुरु द्वारा सर्वप्रथम सम्पन्न हुआ।

सं० १९९८ में,—श्रीगुरुराजने रावलपिंडी जैन संघकी विनती को स्वीकार करके १॥ मासके प्रवाससे ५०० माइल चलकर वहां

पधार गए। व्याख्यान स्थानकके ऊपर वाले हॉल में होता था। परन्तु यह व्यवस्था आपको पसंद न आई। श्रीसंघके प्रमुख लाला रूपाशाहजीसे कहा कि यदि व्याख्यान नीचे वाले भागमें चौकके अंदर प्रवचनका प्रबंध हो तो इतर लोग भी लाभ ले सकते हैं। कारण बाज़ार से बहुतसे लोग देखते ही आनेकी चेष्टा करेंगे। श्रीगुरुदेवके प्रस्ताव का उक्त शाहजीने तथा समस्त संघने अनुमोदन किया। अगले दिन से व्याख्यान चौकमें होने लगा। थोडे ही दिनोंमें अजैन बांधवों की असीम भीड, लाभ लेने लगी। अधिक क्या लिखा जाय तिल धरने जितना स्थान भी खाली न रहता था। उन लोगोंमें इस नवीन प्रवाहमें बहुत कुछ मिलने लगा, शौक उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। उनमें बहुत कुछ सुधार हुआ। सैंकडोंकी मांसमदिरा छूटी। बहुतसे लोग धर्म समभावी बन गए।

एक दिन राधास्वामी विचारके व्यक्ति जौहरी एवं पुरातत्त्ववेत्ता श्रीरामदास भाई ने विनय की कि मेरा एक प्रेमी मित्र वकील व्यक्ति यहां एक मील के एरियेमें रेशम का कारख़ाना खोलने वाला है। उसमें हज़ारों पेड़ शहतूतके लगेंगे। जोकि रेशमके कीडे की खुराक है। आपके धर्मानुसार महा-आरंभ (महा हिंसा) होगी। साथ ही महापरिग्रह वाला ममत्व भी बढेगा। इस व्यवसायसे वह नरक गामी बन जायगा। वह बहुत मालदार है, और उत्तरोत्तर बढ़ना ही चाहता है। अतः कल में उसे लाऊंगा। उसे समझाकर सन्मार्ग पर लगादेंगे तो मेरा मित्र पुण्यमार्गगामी बन जायगा। अगले दिन वह अपने साथ उसे ले ही आए। मात्र तीन घंटेके बोध-विचार विनिमयसे प्रभावित

होकर उसने यह पण लिया कि रेशमका कारखाना कभी न लगाऊंगा। इस प्रकार बहुतसे लोगोंने धर्मकी सीधी पगडंडी पकड़ी।

चतुर्मास समाप्त होने पर श्रीगुरुमहाराजने विहारका प्रसंग छेड़ा तो जैन और जैनेतर सब ही भक्ति भाव वश रोकने लगे। बहुत बड़ी चर्चा बननेके अन्तमें लोगोंको इस निश्चय पर आना पड़ा कि गुरुदेव! एक बार आप **तक्षकशिला** अवश्य फरसें! सचमुच मुनिराज सैंकड़ों वर्षोंसे यहां पधारते रहेहैं, परन्तु पिंडी से आगे किसीने बढनेका साहस नहीं किया। न ही क्षेत्रोंको विशाल बनानेका सोच विचार किया। निदान चतुर्मास समाप्त होते ही संघजानी (शुद्धनाम संघ जैनी) होते हुए २० मील के प्रवास से तक्षकशिला (भूतपूर्व बाहुबलि की गान्धारदेशान्तर्गत राजधानी) पहुंचे। यहां का स्टेशन '**शाहजीकी ढेरी**' के नामसे प्रख्यात है। यहां पुराना शहर खोद कर प्रकट किया गया है। यहां के हालात बड़े विचित्र हैं।

तीनदिन तक बहुतसे खत्री भाइओंको बोध देकर उनका आमिष छुडवाया।

तदनन्तर **गोलड़े** नामक ग्राममें दो दिन रहे। वहां के लोगोंको तो इतनी श्रद्धा और लगन उत्पन्न हुई कि ग्रामके ६० घरोंने मांसाहार छोड दिया। वहां की कन्यापाठशालामें '**श्रीमहावीरभगवान**' नामक पुस्तक कोर्स में दाखिल की। इस २० मीलके प्रदेशमें श्रीमहाराज ही पहलीपोत पधारे। और कोई साधु अब तक गया ही न था। इस प्रकार सीमाप्रान्त (फरंटियर) का कुछ भाग भी आपश्रीने अपने प्रवचन प्रचारसे शुद्ध किया।

सं० २००० में, पटियाले स्टेट में जब आपका चतुर्मास था तब उस समय बंगालके दुर्भिक्षके कारण कलकत्ता-बंगालप्रान्तमें लाखों मनुष्योंको मौतके घाट उतरना पड़ा था । उस समय पंजाबने बड़ी मदद की थी । आपने भी इस प्रसंगमें यह जैनीय दृष्टिसे पहला कदम उठाया था, कि बंगालके अकाल-पीडितों की द्रव्य और भावसे पूर्ण सहायता देनी चाहिए । तब पटियालासंघीय श्रावकोंने इस प्रकरणमें हजारों रुपयोंका दान किया था । और बंगाली जातिके बहुतसे मौतके मुँहमें जाते हुए बालकोंको जानसे बचाकर उनकी सब प्रकारसे रक्षा शिक्षा की व्यवस्था की ।

सं० २००१ में, विचरते हुए आप जम्मू पधारे, वहां जैनसंघने प्रार्थना की कि जहां आपके सिंध-बंगाल-विहार-सीमाप्रान्त-कुल्लु-शिमला-जैसे विकट प्रदेशों में प्रचार किया है, तब काश्मर्य प्रान्तको भी आपके उपदेशोंकी अत्यधिक आवश्यकता है अतः वहां भी पधारें । सीज़नके समय वहां बहुतसे जैन भाई पहुँचते हैं । मार्गमें भी कई पड़ाओंपर जैनोंकी दुकानें हैं । मार्गमें हिन्दुलोग भी बड़े सुलभबोधी हैं । अतः उस ओर अवश्य विहार कीजिए । रायबहादुर-दीवान श्री विशनदासजीने प्रार्थना की कि निवास-स्थानके लिए हरिसिंह-हाईस्ट्रीटके पार प्रदर्शिनीके सामने मेरी कोठी खाली है । बहुत ऊहापोह देख-कर गुरुदेवने फ़र्माया कि, जिस प्रकार परदेशी राजाको सन्मार्ग-पर लानेके लिए चित्त प्रधानको चटपटी लगी थी उसी प्रकार आप को भी उतनी ही लगन होनी चाहिए । क्योंकि साधु

और श्रावक का जोड़ा है। कारण जहां हमारा प्रचारकार्य हीरेकी मानिंद छोटा है, वहां भूतलके समान आपको अपना क्षेत्र विशाल बनाना उचित है। यह सुन जम्मू जैन संघने बहुतसे स्वयंसेवक प्रचारक एवं लिट्रेचर की व्यवस्था करके कश्मीर विहारकी पूरी तैयारी की। २०० मील का मार्ग स्वयंसेवकोंने पैदल चलकर मापा। तथा इस मार्ग में जो कुछ पहली बार पधार कर श्रीगुरुने प्रचार कार्य किया है, उसका उत्तर इस ग्रन्थके अगले पृष्ठ पटोंपर भी देखिए!

वहां आपने बोधदेकर जो सन्मार्ग लोगोंको सुझाया है, तथा गुरुदेवकी पवित्र अनुकम्पा-छायामें उन लोगोंने जो आनंद पाया है, उसका अनुभव उस समयकालीन देखनेवाले लोग ही अनुमान कर सकते हैं। फिर भी मैंने अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार स्थाली-पुलाक न्यायसे कुछ लिखकर प्रकाशमें लाने की चेष्टातो की है। मेरे जैसे अनपढ, गुरुदेवके अमाप गुणोंका माप कैसे लगा सकते हैं। परन्तु बाहुको उठाकर समुद्रकी लंबाई चौड़ाई का विस्तार बतानेवाले बालकके समान गुरु देवके इस प्रवासको लिखकर बहु-तसी बातोंको सुगम करनेका प्रयत्न किया है।

१७ पृष्ठसे ५० तक हिमालय और उसकी प्राकृतिक ऋद्धिका वर्णन संक्षेपमें किया है। सरल और सरस विषय बनाकर यह कोशिश की गई है, मानो हिमालयमें ही विहार हो रहा है। ५६ से ८६ तक, श्रीनगर-काश्मर्य-वस्तु ओंका चित्रण किया है। और यह भी भान कराया गया है कि, किसी समय वहां जैन जाति पुष्कल संख्यामें रही होगी। इसकी सिद्धिके लिए **राजतरंगिणीके**

पत्र भी टटोले हैं। ९५ से १०७ तक कुछ काश्मर्य परिचय है, जिससे वहां की बहुतसी बातोंका नव्य-अनुभव होता है। १०९ से १५२ तक वह प्रसंग रक्खा है, जिसके विषयमें धर्मानन्दकोशांबीने जो महावीर-भगवान्का जीवनचरित्र-गुर्जरगिरामें लिखकर "दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो, अत्थिसे अन्ने पारियासए मज्जारकडए, कुक्कुडमंसए तमाहराहि ए ए णं अट्ठो" इसका उलटा अर्थ लिखकर उसने मनमानी-बेहूदी बकवास की है। सचमुच साम्प्रदायिकता और दुर्विदग्धताके फेर में पड़कर उलटे अनर्थसे संसारको विपरीत राह पर भटकाकर सिर पिटव्वल करानेकी ऐसे लोगोंने ही सोची है। यह उसकी नादानी सोते सिंहको जगानेके समान है। परन्तु गुरुदेवने तो उन शब्दोंपर खूब ही सोच विचार किया है, यद्यपि, टीकाकार लोगोंने तो इसको, 'श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते, अन्ये त्वाहुः' इत्यादि ननु न च से गोल मोल टीका करके एक प्रकारसे उन्होंने अपना पीछा छुडाने की चेष्टा की है। मगर आज का वैज्ञानिक जगत् इन बातोंको कब मान सकता है। वह तो स्पष्ट न्याय पाने की तत्परतामें है। ११ वीं शताब्दीके प्राकृतगद्यकाव्य-कलाकार गुणचंद्र गणीने 'महावीरचरियं' प्राकृतभाषामें लिखा है, उन्होंने इस प्रकृत प्रसंगमें उन समस्त शब्दाडंबर को छोड़कर 'ओसहि' (औषधि) लिखकर काम चला लिया है। तथा तत्संबन्धी प्रकरण को बिल्कुल उज्वल और स्पष्ट सिद्ध कर दिखाया है। सच मुच वे सच्चे-विचारक और देशकालज्ञ-मर्मज्ञ साहित्यकलाकार थे। उनकी इस साहित्य सेवा को कभी भी नहीं भुलाया जा सकता। यद्यपि इस प्रसंग में बहुतोंने अपने विचार प्रगट किए हैं। विष-

कुक्कुट यानी शैवालका रस निचोड़ कर तैयार किया हुआ, मंस—अर्थात्=बीजपूर फलका रससार जोकि दीपन-हल्का-ठंडा-पित्त और वायुको जीतने वाला, साथ ही रक्त पित्त को पीते ही मिटानेवाला है, उसे लाना। रोहक साधु द्वारा वह औषध लाई गई, जिससे भगवानका रक्तातिसार जाता रहा।

आज भी होमियोपैथिक दवाकी एक ही मात्रासे आराम होता देखा गया है।

यह संगती तो ठीक ही बैठती है, किन्तु अभक्ष्य वस्तु नहीं। क्योंकि जैन अहिंसा-जीवन प्रधान धर्म सदासे है और आगे भी ऐसा ही रहनेवाला है उसमें ऐसी अभक्ष्य वस्तुके लिए कहीं स्थान ही नहीं है।

जो १६ आने अनार्य होते हैं, वे अनार्य लोग एक रोगकी चिकित्सा अनार्य साधनको जुटा कर ही करते हैं। तब आर्य विचारके लोग सादी-सात्विक और अहिंसक साधनसे ही उसका प्रतीकार करेंगे। जैसे गुजरातमें एक कोटीध्वज बाई के घर मात्र एक लडका ही सर्वाधार था। एक समय वह बीमार पड़ गया, और बहुतोंने उसकी चिकित्सा की, मगर किसीकी दवासे आरोग्य लाभ न हुआ। अन्तमें एक यावन-डाक्टरने निदान करके बतायाकि बाईजी! एक पैसे का गुड़ मंगवाकर ज़रा पानीके छींटे देकर रखदें, मक्खियां उस पर-बैठेंगी, तब दस-पांचमारकर उसमें दवा दी जायगी, लडके को वमन होगी और उसे आराम हो जायगा वर्ना वह मर जायगा। बाईने कहा कि चाहे लडकेको कुछ भी हो जाय, परन्तु मैं इस ढब की चिकित्सा न कराऊंगी। जब आज इस लोकैषणाके वेगसे बहे जाने वाले समयमें भी लोग अपने विचारके इतने पक्के हैं, तब वह

तो धर्मकाल था उसमें तो विलोम कल्पना सिद्ध भी करना अपनी अक्लका दिवाला निकालना है।

इस पर दो घटनाएँ जनताके लाभार्थ आपके सामने और रखते है।

(१) जिले कांगडेके अन्तर्गत ज्वालामुखी नगरके एक पंडेने सन् १९२७ ई० में सावनकी रातके समय अनछना पानी पी डाला, पानीमें एक इंची कानखजूरा भी पेटमें पहुँच गया। वह कलेजे पर चिमट कर प्रतिदिन उसका कलेजाही खाने लगा और छ मास में सूख कर वह मरण हाल हो गया। एक बार भाकसू-धर्मशाला (कांगडे) से सिविल सर्जन (आँग्ल) दौरे पर आ निकले। उन्होंने उसका निदान किया और अपने ३५००) रुपएके मूल्य के कुत्तेको गोली से उड़ाकर उसका कलेजा निकालकर रेशम के तारसे बांधकर उसको निगलवा दिया। थोड़ी देरमें रेशमके तारको जो खींचा तो कानखजूरा उस कुत्तेके कलेजेसे लिपटा हुआ बाहर आगया। यह हुआ अनार्य ढंगका इलाज!

(२) भ.ौली स्टेट (राजपुताना) में पं० चिरंजीलाल सुंदर लाल जैनवैद्य के पास सं० १९७५ में एक छ मास का रोगी पं० चिरंजीलाल आया। वैद्यराजोंने रोगका मुख्य कारण पूछा, इसने वर्षाकालमें अनछना पानी रातको पी जानेसे रोगी होना बताया, वैद्यराजने दो नंबरी ईटों पर उसे बिठाकर उसके सामने पानीसे भर कर एक टप रख दिया। तथा दवाई पिला कर कहा कि वमन या दस्त होगा! घबराना मत, अधिक संभावना वमन की ही है। निदान वमन ही हुआ और वह भी पानी में। तब ध्यान देकर देखा

गया तो ११ इंचका लंबा कानखजूरा पानीमें चक्कर काट रहा है। यह है आर्यरीतिकी चिकित्सा! जिसमें त्रस या पंचेंद्रिय जीवकी हिंसा न होनेतक का भी ख़याल रक्खा जाता है।

पर जिस रोहिणीको आगे तीर्थंकर बनना हो और वह भी भला भगवानको, प्रकृति-धर्म और मानवसमाजके नियमसे विरुद्ध आहार कब दे सकती है। यह झगड़ा मात्र साम्प्रदायिकता का वितण्डा करनेवाले ही उठा सकते हैं अन्यथा नहीं। × × ×

१५३ से १७१ तक पारिभाषिक शब्दोंको न समझने वाले व्यक्तियोंका ध्यान उस ओर आकर्षित करनेके लिए एक कहानी 'अनेकान्त प्रसाद' लिखी है। जिसे पढ़कर ऐसी वाहियात कल्पना उठानेवालोंकी अक्लका स्पष्ट नमूना बताया गया है।

उत्तरार्धमें, वापस रावलपिंडी आते समयके वृत्तान्त बहुतसी ऐतिहासिक बातोंसे समृद्ध किए हैं। १९२ से २०२ तक रावलपिंडी क्षेत्रका विवरण है। वह प्रसंग इतना आकर्षक और मोहक है जहां जरासी देरमें रोचीशाहजी की माता और पत्नी द्वारा श्रीगुरुदेवके प्रवचनसे प्रभावित होकर ८००००) रु०का दान कर दिया है। २०३-२०८ तक गीताके ऊपर कुछ चर्चा आई है। २१३-२२१ तक जम्मूमें पधारने और 'श्रद्धाके फूल' वर्णित हैं।

२३२-२४१ तक ठाकुर अमरसिंह शास्त्रीसे 'अवतार बाद' की चर्चा छिडनेका उल्लेख है। २४२-२४३ तक मूर्तिसाधना पर विचार हुआ है। २४५-२५६ तक एक गुजराती व्यक्तिसे बात चीतमें जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध कर दिखाई है। २५८-३३५ तक पं० गणेशीरामजी शास्त्रीसे ईश्वर वाली सृष्टि विषयक आलोच-

नात्मक चर्चा। ३३७-३४८ तक, पं० घीसूलालजीसे अपौरुषेय वेदोंके संबन्धमें पौरुषेय सिद्धि, एवं ३३५ से ३३८ तक, वैदिकी अहिंसाके कारनामों का चिट्ठा निर्णय किया गया। ३६३-३९४ तक पं० सागरदत्तके 'ईश्वरके कर्तृत्व' विषयक शंका का समाधान। ३९७-४०२ तक स्टेशनमास्टरोंकी आत्मा परमात्मा की गुत्थीको सुलझाना। ४०६-४१० तक पं० शंकरशाहको आत्मा का परमात्माके साथ मिलनेका एड्रेस। ४१६-४२३ तक कराची संघ का वृत्तान्त। ४२४-४३५ तक, कराची संघका आगामी चतुर्मास संबंधी विनती और गुरुदेवका स्पष्ट उत्तर। ४४१-४४५ तक, मलीर वाले श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई की अद्वितीय-भक्तिका चित्रण। ४६०-४९१ तक, अमृतलाल भाईका प्रश्न और उसका स्पष्टीकरण। ४९३-५११ तक, ५००० वर्ष पुराने 'मोहनजो-दड़ो' नामक धरतीमें से निकले हुए दफ़ीने का वृत्तान्त।

५१४—५२७ तक, प्रभुदास सिंघी हकीम का जैन बनना। ५३१—५३९ तक कुछ अवकीर्ण बातोंका उत्तर। ५४१—५४२ तक, मुलतान और ज्ञान थल्लामें प्रवचन का हाल। ५५७ में एक यवन की १५०० गऊएँ। ५५८—५६४ तक ७००० वर्ष पुराने हड़प्पा का वर्णन। ५७६—५८३ तक ईश्वरके कर्तृत्व पर काश्मर्य पंडितोंसे बातचीत। ५८७—५९१ तक पं० देववायुसे शिवचर्चा। ५९२-५९३ तक, हिंसाका आँखों देखा प्रत्यक्ष फल। ६०१-६०८ तक, जम्मूका वृत्तान्त। ६०९—६२४ तक, गुरुदेव की कुछ रचनाएँ। ६३४-६५० तक, दीपमाला संबंधी प्रवचन और कविता माला। ६५०—७२० तक अन्यान्य कविओंकी नवरसोंसे सराबोर कविताएँ।

७२१—७२६ पर्यन्त, जम्मू चतुर्मासकी पूर्णाहुतिके पश्चात् विहार और जम्मू जैनसंघ द्वारा अभिनंदन पत्र-समर्पणका विवरण। ७२७-७३० तक, जम्मूसे विहार करते हुए स्यालकोट पधारना तथा वहां से विहार करते समय स्यालकोट जैनसंघका श्रीगुरुराजकी सेवा में अभिनन्दनपत्र भेंट करना। ७३१ पृष्ठमें, स्यालकोट-सदर पहुँचना, तथा वहां जैन संघकी स्थापना करना। ७३२—७३६ तक, कुछ अतीत संस्मरण और पुस्तककी समाप्ति।

इस प्रकार पुस्तकका समग्रसारभाग भी आपके सन्मुख आमूलतः रखकर विराम प्राप्त करता हूं। तथा प्रिय पाठकोंसे विनय पूर्वक निवेदन करताहूं कि भूल चूकके लिए क्षमा करेंगे।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

प्रार्थी—ज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघीय—

लघुतम—सुमित्त-भिक्खु.

गुर्वावली

ज्ञातपुत्र श्रीमहावीर जिन थे शुभशासनके सर्दार ।
द्विज कुल में ले जन्म **सुधर्मा**[1] हुए पाँचवें गणधर सार ॥
बालब्रह्मचारी वे **जम्बू**[2] पाँचसौ सताइस परिवार ।
लेकर संयम हुए गणपति खूब निबाहा सांघिक भार ॥
प्रभवाचार्य[3] व्रती-त्यागी वे संघ प्राण के बन आचार्य ।
संघ व्यवस्था करके उत्तम किया सार्थक पद आचार्य ॥
मनाक् सुत थे जिनके वे श्री निर्मोही **शय्यंभवाँचार्य**[4] ।
शासनशोभा खूब बढाई सत्य संघके प्राणाचार्य ॥
यशोभद्र[5]-**संभूतविजय**[6] भी तत्पट्टोपरि अति विद्वान ।
चौदह पूर्व चारज्ञानके धर्ता **भद्रबाहु**[7] भगवान ॥
कोशाको समझानेवाले-**स्थूलभद्र**[8] गणि ब्रह्मव्रती ।
आर्यमहागिरि[9]-**बालिसिंह**[10] जी-**शांताचार्य**[11] की पुण्यरती ॥
युगप्रधान **श्रीश्यामाचार्य**[12]ने-रचा पन्नवणा सुंदर सूत्र ।
जिससे मिलता तत्वज्ञान है-सूक्ष्मज्ञान पूर्ण यह सूत्र ॥
शान्ति-मूर्ति-क्षमावारिधि त्यागी-प्रमुख **शांडिलाचार्य**[13] ।
जिनवर-धर्म दिपाने वाले वीर वशी-**जिनधर्माचार्य**[14] ॥
जलधि समान गभीर तपी मुनिओंके ईश **समुद्राचार्य**[15] ।
आत्मानन्दमयी हो रहते मुनिप हुए **नंदिल**[16]-आचार्य ॥
नागहस्ति[17] गणि-साधुमुकुटमणि-दृढव्रती **रेवंत**[18]-आचार्य ।
जिनके गुणका वर्णन करते थके जीभ वे **स्कंदिलाचार्य**[19] ॥
निर्भय-तरुण तपस्वी नामी-**सिंहगिरि**[20] सब गुणकी खान ।
श्रीश्रीमन्ताचार्य[21] प्रभुने विस्तृत संघ किया मतिमान ॥

नागार्जुन[२२] स्वामी वे विद्वद्वर्य्य संघके प्रमुख प्राण ।
श्रीगोविंदा[२३]चार्य गुणनिधि क्योंकर गुणका करूं बयान ॥
भूतदिन्न आचार्य तपाकर तथा गुणाब्धि-**लोहाचार्य**[२५] ।
दुष्पसगणी[२६] संघके नायक पूर्ण किए सब आत्मिक कार्य ॥
कुछ कम एक पूर्वके अधिपति तथा ज्ञानके जलधि अगाध ।
सूत्र-सिद्धान्त-आगम सब लिखकर-हमको दी यह उत्तम **साध** ॥
हमने भी तो उन सूत्रों की रक्षा में झोंके हैं प्राण ।
जले-डुबोए सूत्र हमारे-प्रतिपक्षीने कर घमसाण ॥
लाखों पूर्वज मरे हमारे-दई जिन्होंने देह बली ।
राजा उस दम जैन नहीं थे अतः प्रजा की नहीं चली ॥
फिर भी ३२ सूत्र बचाए **देवर्द्धिका**[२७] यह अहसान ।
कभी न भूलेंगे हम उनको स्मरण करें-अति देंगे मान ॥
जो भूले उनके उपकारों को समझो वह है नादान ।
हम कृतज्ञ उस महामनुष्यके जिसने दिया सूत्रका ज्ञान ॥
वीरभद्रने[२८] जहाँ तहाँ लिखवाकर फैलाए सिद्धान्त ।
शंकरभद्रा[२९]चार्य बहुत विचरे-नहीं छोड़ा कोई प्रान्त ॥
यश[३०]-आचार्य का यश सब फैला-खूब बनाए नूतन जैन ।
वीरसेन[३१] आचार्य हुए तब पाया सँघने मौज औ चैन ॥
निर्यामक[३२]-आचार्य सदा ही सदाचरण के मालिक थे ।
यशः[३३]सेन आचार्य तपोधन छहों कायके पालक थे ॥
हर्षसेन[३४] आचार्य हर्ष से जिनवर धर्म दिपाते थे ।
श्रीजयसेनाचार्य[३५] ऋषि के सब जयकार लगाते थे ॥

जगपाला[३६]चार्य-महाप्रभु ने-श्रीसंघ जगत्‌को पाला था ।
देवर्षि[३७] गणपतिने रत्नत्रय साँचे में ढाला था ॥
श्रीभीमसेन[३८] आचार्य देव की क्रिया भीमरूपा ही थी ।
कर्मसिंह[३९] आचार्य-नाथ की क्रिया निर्जरारूपा थी ॥
राजऋषीश्वर[४०] ज्ञानात्मा थे-देवपूज्य थे श्रीदेवसेन[४१] ।
शंकरसेना[४२]चार्य गुणी थे भव्योंको उनकी है देन ॥
लक्ष्मीलाभ[४३] आचार्य देव मुक्तिकी लक्ष्मी बाँट गए ।
रामर्षि[४४] आचार्यश्री शिथिलाचारी गण छाँट गए ॥
पद्म[४५] ऋषि आचार्यकमलकी भाँति प्रसारें चरित सुवास ।
हरिशर्म[४६] आचार्य ज्ञानका करें संघमें अधिक प्रकाश ॥
कुशलप्रभ[४७] आचार्य कुशलकर्मा थे स्याद्वाद पंडित ।
उमना[४८]चार्य कुशलशिल्पीने तमस्तोम करदिया खंडित ॥
साधुसाध्वीश्राद्धश्राविका जयसेन[४९] की जय बोलो ।
बीज-ऋषि[५०] आचार्य महानर धर्मबीज गठरी खोलो ॥
देवचंद्र[५१]गणि-शूरसेन[५२] गणि-महासिंह[५३] औ श्रीमहसेन[५४] ।
आठ सम्पदा धरने वाले-श्रीजयराज[५५] और गजसेन[५६] ॥
मित्रसेन[५७] औ विजयसिंह[५८] श्रीसंघ तिलकसे थे शिवराज[५९] ।
लाला[६०]चार्य थे महाकान्तिकर-ज्ञाना[६१]चार्य ज्ञानके साज ॥
भूनाम-आचार्य[६२] मुनीश्वर-रूपाचार्य[६३] विश्व-आधार ।
श्रीजीवर्षि[६४] सब जीवों के प्रति करें थे प्रत्युपकार ॥
तेजराज[६५] गणि तेजस्वी थे-मानो भूका रवि मंडल ।
कुंजरराज[६६] (अपर-हरजी) गणपति को संघने जाना निज कुंडल ॥

जीवराज[६७] आचार्य विलक्षण-जिनका बढा साधु परिवार ।
मुनिवर संख्यातीत बनाए-रखते सब आपसमें प्यार ॥
तत्पट्टोपरि **धनजी**[६८] गणपति आत्मशक्ति युत राजे आन ।
मानगए सब उनका लोहा-प्रति पक्षी ने पाई हान ॥
श्री **विसन**[६९] आचार्य तपोधन **मनजी**[७०] मन निग्रह कर्ता ।
नाथूराम[७१] आचार्य ज्ञानके सागर-जन संशय हर्ता ॥
लक्ष्मीचंद्राचार्य[७२] दयानिधि तत्पट्टोपरि **छीतरमल**[७३] ।
राजाराम[७४] मुनिकुल कोविद थे **उत्तमचंद्र**[७५] कीर्ति परिमल ॥
महातपस्वी उग्रविहारी वयोवृद्ध मुनि **श्रीरामलाल**[७६] ।
उनके शिष्य **फकीरचंद्र**[७७] ऋषि का यश फैला जगद्विशाल ॥
उनका **पुष्फभिक्खु**[७८] लघुतम है, उनका लघुतम साधु **सुमित्त**[७९] ।
उनका शिष्य **जिनचंद्र**[८०] साधु है, पठ धातुमें जिसका चित्त ॥

बाइस टोला संज्ञाके कर्णधार

दोहा—पूज्यश्री मनजी हुए, तथा च श्रीरघुनाथ।
[3]जयमलजी और [4]शामजी, अमरसिंह गुणनाथ ॥ १ ॥

[६-७]पीथो जी छोटे बडे, और भवानी दास।
[9]मलूकचंद [10]पदार्थ जी, [11]खेतशी [12]लोकमनदास ॥ २ ॥
[13]पुरुषोत्तमजी [14]मुकुटजी, तथा [15]मनोहरदास।
[16]गुरुसहाय और [17]बाघजी, समरथ [18]समरथ दास ॥ ३ ॥
दर्यापीर से प्रगट थे, पूज्यश्री [19]धर्मदास।
[20]ताराचंद औ [21]मूलचंद, तथा च [22]शीतलदास ॥ ४ ॥
इनका सुखद सुमेल था, बाईस टोला नाम।
अतः सभी मिलकर रहो, रहे ज्यों शासन नाम ॥ १ ॥
आपसके दृढ गठन से, स्थायी बल सब ठौर।
पांच उंगलियां जब मिलें, पावत मुट्ठी जोर ॥ २ ॥
वैर ज़हरको उगलकर, करें परस्पर मेल।
जैनो! सब मिलकर रहो, जैसे तिलमें तेल ॥ ३ ॥

सहायक

जीवाभिगम, ज्ञाताधर्मकथांग, दशवैकालिक, भगवती, प्रज्ञापना, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, कप्पवडंसिया, स्थानांग, आचारांग, सं० वा० । कुमारसंभव, श्रीसमर्थरामदास च०, विवेकानंद, रामतीर्थ, मेघदूत, केसराज रामायण, सैरे कश्मीर, लल्लेश्वरी वाक्यानि, जैन प्रकाश, हिन्दी शब्दसागर, माधवनिदान, माधवकर-अतिसार संग्रह, सु० सं०, ज० द०, च० सं०, रा० नि०, वा० सू०, भा० प्र०, अमरकोश, वै० श०, श० र०, क० सं०, च० द०, वा० उ०, व्या० चि०, भै० वा०, म० नि०, भै० र०, अ० सं०, वै० नि०, Gelgit Manuscrits, फारसी शब्द संग्रह, चिकित्सासार, रसरत्नाकर, राजतरंगिणी-कल्हणकविकृत, रा० त० उर्दू अ०, आनंदघन चौवीसी, सरस्वती, भगवद्गीता, प्राच्यदर्शनसंग्रह, दर्शनदिग्दर्शन, बृहत्संहिता, महाभारत, योगवासिष्ठ, शाकटायन व्या०, समयसार नाटक, मज्झिमनिकाय, आलापपद्धति, दर्शनसंग्रह, प्रमाणवार्तिक, ब्रह्मसूत्र, वोलगासे गंगा, ऋग्वेद, बुद्धचर्या, अहदे-अतीक, भारती, मस्ताना जोगी, हिंदुस्तान पत्र, सुकवि, धर्मदूत, योगशास्त्र, गुलिस्तां, बोस्तां, Sacred books of the east, six system of philoso phy, natural religious, the Buddha.

इन सब पुस्तकों एवं अनुवादकों का एक सहयोगियोंके नाते इनके साथको भुलाया नहीं जा सकता । तदुपरान्त प्रत्यक्ष या परोक्षमें जिन जिन महानुभावोंने प्रोत्साहन दिया है । उन सबका उल्लेख करना भी क्योंकर विस्मृत किया जा सके ।

लेखक.

वीरवचनामृत

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी,
खंतिक्खमे संजयबंभयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो,
चरिज्ज भिक्खु सुसमाहिइंदिए ॥ १३ ॥

उत्तराध्ययन, २१ अ०,

भावार्थ—भिक्षुको अखिल विश्वके समस्त जीवों पर दया और अनुकम्पा रखकर हित चिन्तक होना चाहिए, भिक्षु जीवनमें आनेवाले सब कष्टों को क्षमा रखकर सहन करे । सदा पूर्ण ब्रह्मचारी और संयमी रहे तथा इन्द्रियोंको वश करके पापके योग (व्यापार) को सर्वथा छोडकर समाधिपूर्वक महीमंडलमें विचरता हुआ अपने भिक्षुधर्ममें मगन रहे ।

ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा,
पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा,
न यावि पूयं गरहं च संजए ॥ १५ ॥

उत्तराध्ययन, २१ अ०,

भावार्थ—नाना देशोंमें विचरते हुए संयमी-साधु प्रिय या अप्रिय जो कुछ घटना हो उस ओर तटस्थ रहे, कष्ट आने पर उसकी भी उपेक्षा करता हुआ सब संकटों को वीरता पूर्वक समभावसे सहन करे । सब कुछ अपने कृत-कर्मवशात् उपस्थित होता है, अत एव निरुत्साह और उदास न हो, और जगत् के अज्ञान और अबोध लोकोंके द्वारा निन्दा या प्रशंसा की जाने पर भी उस सम्बन्धमें भिक्षुको किसी भी बात पर लक्ष्य न देना चाहिए ।

ज्ञातपुत्र-महावीर-भगवान्

इयरो वि गुण समिद्धो,
त्तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य
विहग इव विप्पमुक्को,
विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥ ६० ॥

उत्तराध्ययन, २० अ०,

भावार्थ—तीन गुप्ति (साधन) से गुप्त तथा तीन दंड [मन दंड-वचन दंड और काय दंड] से विरक्त और गुणोंकी खानके समान मुनिराज भी अनासक्त अवस्थामें पक्षिके समान **अप्रतिबद्ध विहार** पूर्वक वसुंधरामें सुख-समाधि पूर्वक विचरता है।

ज्ञातपुत्र-महावीर-भगवान्

मिउ मद्दवसंपन्नो, गंभीरो सुसमाहिओ;
विहरइ महीं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा ॥ १७ ॥

उत्तराध्ययन, २७ अ०,

भावार्थ—जो स्वभावसे मक्खनके समान सुकोमल प्रकृतिसे समृद्ध है, विचार दृष्टिसे भी अत्यन्त गंभीर है, एवं पंचाचारमय सद्वर्तनसे सुशोभित महात्मा, इस पृथ्वीमंडलमें वायुके समान अप्रतिबद्ध विहार करता है।

ज्ञातपुत्र-महावीर-भगवान्

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व महीं चरे।
ए ए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥ ५२ ॥

उत्तराध्ययन, १८ अ०

भावार्थ—धीर पुरुष निष्प्रयोजन-वस्तुओंके साथ **उन्मत्तके समान निरीह होकर विचरे !** इस प्रकार विवेकपूर्वक शूर-वीर और प्रबल पुरुषार्थी महापुरुष ज्ञान और चरित्रसे युक्त जिनशासनको स्वीकार करके अप्रतिबद्ध [**किसी के दबावकी अपेक्षा न रख-कर**] होकर **विचरे** ।

ज्ञातपुत्र-महावीर-भगवान्

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्लाणं मज्झकल्लाणं परियोसानकल्लाणं सात्थं सव्यंजनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।

(महावग्ग-विनयपिटक)

भावार्थ—"भिक्षुओ! सर्वसाधारणका आत्म-हित करनेके लिए, लोगोंको अध्यात्मसुख, पहुँचानेके लिए, उन पर दया करनेके लिए, तथा देवता और मनुष्यों पर उपकार करनेकेलिए **जगती तल पर खूब घूमो।** भिक्षुओ! आरम्भ मध्य और अन्त सभी अवस्थाओंमें कल्याणकारक धर्मका, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांशमें परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करो।"

महात्मा बुद्ध

मङ्गलाचरणम्

अर्हन्तो विश्ववन्द्या विबुधपरिवृढैः सेव्यमानाङ्घ्रिपद्माः,
सिद्धा लोकान्तभागे परमसुखघनाः सिद्धिसौधे निषण्णाः।
पञ्चाचारप्रगल्भाः सुगुणगणधराः शास्त्रदाः पाठकाश्च,
सद्धर्मध्यानलीनाः प्रवरमुनिवराः शश्वदेते श्रिये स्युः ॥ १

× × ×

कृत्वा हाटककोटिभिर्जगदसद्दारिद्र्यमुद्रा कथं,
हत्वा गर्भशयानपि स्फुरदरीन् मोहादिवंशोद्भवान्।
तप्त्वा दुस्तपमस्पृहेण मनसा कैवल्यहेतुं तप-
स्त्रेधा वीरयशो दधद्विजयतां वीरस्त्रिलोकी गुरुः ॥ २

× × ×

श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रविश्रुतकुलः व्योमप्रवृत्तोदयः,
सद्बोधांशुनिरस्तदुस्तरमहामोहान्धकारस्थितिः।
दृप्ताऽशेषकुवादिकौशिककुलप्रीतिप्रणोदक्षमो,
जीयादस्खलितप्रतापतरणिः श्रीवर्धमानो जिनः ॥ ३

× × ×

सर्वः शास्त्रपरिश्रमः शमवतामाकालमेकोऽपि य-
त्साक्षात्कारकृते धृते हृदि तमो लीयेत यस्मिन्मनाक्।
यस्यैश्वर्यमपंकिलं च जगदुत्पादस्थितिध्वंसनै-
स्तं देवं निरवग्रहग्रहमहाऽऽनन्दाय वन्दामहे ॥ ४

× × ×

।थ

पापघन छाए थे घनघोर, छा रहा था भ्रम तम चहुँओर ।
हृदय थे वज्र समान कठोर, चहकते थे मदमाते मोर ॥
रुधिर धाराका प्रबल प्रवाह, बह रहा था किन थी कुछ थाह ।
उसीमें मन्द मोक्षकी चाह, डूबती उतराती थी आह !
अचानक भंग हुआ वह साज, गगन पर चमक उठा द्विजराज ।
डूबने से बच गया समाज, अहिंसा आई बनी जहाज़ ॥
भवोदधिसे करनेको पार, जिनेश्वर ने लेकर अवतार ।
किया इस विधिसे ज्ञान प्रसार, शान्तिसे पूर्ण हुआ संसार ॥
वही है पर्व पुण्य-तिथि आज, पधारे **महावीर जिनराज** ।
धर्मका जिनके सिर पर ताज, हृदयमें सबके रहे विराज ॥
द्वेष रक्खो हृदयोंसे दूर, प्रेमका पाठ पढ़ो भरपूर ।
बनो मत निर्दय निर्घृण क्रूर, रहो मत मतके मदमें चूर ॥
मोक्षका मार्ग खड़ग की धार, सँभलकर जाओ भवदधि पार ।
अहिंसा का लेकर आधार, बोल जिनवर की जय जय कार ॥

× × × × ×

सदाचारके सत्यके सच्चे हामी,
बता मुक्ति-पथको हुए मोक्ष-गामी ।
अहिंसाके अवतार दुनियामें नामी,
महावीर स्वामी, महावीर स्वामी ॥

ज़माना था सोता जगाया था किसने,
गिरे आत्म-बलको बढ़ाया था किसने ।
अहिंसा का डंका बजाया था किसने !
महावीर स्वामी, महावीर स्वामी ॥

दया धर्म सबको सिखाया था किसने,
भटकतों को सत्पथ बताया था किसने ।
स्वर्ग भूमि-भारत बनाया था किसने,
महावीर स्वामी, महावीर स्वामी ॥

अँधेरे में जब लोग भटके हुए थे,
फँसे मोहमें लोभ लटके हुए थे ।
किए दूर किसके वो खटके हुए थे,
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

दिया ज्ञान जनता को अज्ञान रोका,
उमड़ता था हिंसाका तूफ़ान रोका ।
किया आत्म-बलिदान बलिदान रोका,
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

हुआ कौन अद्भुत महा-आत्म-ज्ञानी,
तजा राज सुख और जप तपकी ठानी ।
नहीं त्याग तपमें है जिसका कि सानी
महावीर स्वामी, महावीर स्वामी ॥

उपस्थित रहे जिनकी सेवामें गणधर,
जो देते थे उपदेश सब को बराबर ।
वचन क्या थे सोते सुधाके सरासर,
महावीर स्वामी, महावीर स्वामी ॥

प्रकाश आपसे धर्मका जगमगाया,
दया धर्मका ऐसा झण्डा उठाया ।
नहीं झुक सका जो किसीका झुकाया,
महावीर स्वामी, महावीर स्वामी ॥

डटो धर्म पर वीर! हिम्मत न हारो,
स्वयं आप अपनेको भवसे उबारो।
रहे ध्यान मनमें हृदयसे पुकारो,
महावीर स्वामी, महावीर स्वामी ॥

× × ×

शुभ दया दान देने आए दुनियाको भगवन्! महावीर, !
सुख शान्ति सुधा बरसानेको अवतरित हुए प्रभु महावीर।
पृथिवी पर था वह पाप भार, थे प्रेम शून्य हो गए हृदय;
काँपते तुच्छ जीवोंको भी, कर दिया आपने तब निर्भय।
विप्लवकी तीखी ज्वालामें, सर्वदा विधायक उपशम के;
अज्ञान अँधेरेमें भगवन्! पूर्णिमा चन्द्र बनकर चमके।
जगतीने पीनेको पाया, आपसे प्रभो! तव सत्य क्षीर,
शुभ दया दान देने आए दुनियाको भगवन्! महावीर!
जब पापाचारों से सारी आक्रान्त होगई महा सृष्टि,
आपने तभीकर कृपा दृष्टि की प्रभो! दया की सुधा वृष्टि।
भगवन्! तव दर्शनसे मानव, मन कुमुदोंके सदृश विकसे,
सब मूक और निर्बल प्राणी भी अभयदान पा कर हरषे।
दुनियाने पाई एक नई, तव शान्ति अहिंसा की समीर,
शुभ दया दान देने आए, दुनियाको भगवन्! महावीर!
आती है ध्वनि जब कानोंमें बोलो सब मिल जय महावीर!
शुभ दया दान देने आए, दुनियाको भगवन्! महावीर!

× × ×

श्रीज्ञातपुत्र-महावीर भगवानके सदय-लोचन

कृतापराधेऽपि जने, कृपामन्थरतारयोः ।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिननेत्रयोः ॥

जिन पर अविवेकी पुरुषोंने, फेंके विषम वेदना व्याल ।
अमृत समान बनाया उनको, सदा जिन्होंने था तत्काल ॥
गोपालक गणका वह कीला, दे न सका जिनको दुख स्वल्प ।
कितने जीवोंके विचार का, किया जिन्होंने काया कल्प ॥
वह गोशाल जोकि जलता था पा कर तपस्तेजकी ज्वाल ।
जिन करुणा-वरुणालय ने था, बना दिया उनको वर भाल ॥
सन्मति दान-चण्डकौशकको, चन्दनबाला को शुभ ध्यान ।
वज्रभूमिके विकट विरोधी, दलको दिया तत्वका ज्ञान ॥
उस संगमसे कुबुध देवके, कुविचारोंको देख अचल ।
भर लाते थे क्षमारूप जो, अश्रुकणोंमें निर्मल जल ॥
जो भवमें करते थे प्रति पल, प्राणिमात्र का सच्चा त्राण ।
वे भगवान वीरके लोचन, करें हमारा नित कल्याण ॥

× × ×

दुनियाए दूं की आपने हर शै त्याग दी,
भगवान महावीर ने पाया मिज़ाज क्या ।
दिल हो ग़नी तो राज को लेकर वो क्या करें,
निष्काम आत्मा हो तो फिर तख़्तो ताज क्या ॥

× × × ×

आँखकी पुतलीमें जलवा है तिरी तनवीर का ।
अक्स आता है नज़र महा-वीरमें महावीर का ॥
नाम लेता हूं ज़बां से, जबमें तुझसे वीर का ।
चूमता है नतक़ गोया मुँह लबे तकरीर का ॥
झुक गए दुश्मनके सर, तेरे अहिंसा धर्मसे ।
फिर गया मुँह सत्यके, हथियारसे शमशीर का ॥
नाम भारतवर्ष का, दुनियामें रोशन कर दिया ।
तूने चमकाया सितारा, देशकी तकदीर का ॥
तूने दुनियाको सिखाया, है अहिंसा का सबक़ ।
लोह दिलपर नक्स है, सिक्का तेरी तौक़ीर का ॥
तुझको कार्तिकके महीने में, मिला निर्वाण पद ।
दीपमाला इक किरशमा, है तिरी तनवीर का ॥

× × ×

आत्मा

इब्तिदा मुझमें नहीं है, इन्तिहा मुझमें नहीं;
मैं बक़ाई हूं हमेशा हूं फ़ना मुझमें नहीं।
रग़बतो नफ़रत नहीं, मकरो दग़ा मुझमें नहीं,
नफ़्से अम्मारा नहीं, हिर्सो हवा मुझमें नहीं॥
रहमदिल भी मै नहीं हूं पुरगज़ब भी मैं नहीं,
लुत्फ़ो क़हरो नेको बद, जहलो रिया मुझमें नहीं।
ख़ाकिओ बादी नहीं हूं आतशी आबी नहीं,
जुज़्व इन चारों अनासर, का ज़रा मुझमें नहीं॥
मैं न हल्का हूं न भारी हूं न मुझमें रंगो बू,
तीरगी मुझमें नहीं, नूरो ज़िया मुझमें नहीं।
तल्खो शीरीं मैं नहीं, खट्टा कसैला मैं नहीं,
लहने खुश भी मैं नहीं, कोई मज़ा मुझमें नहीं॥
नरमियो सख़्ती नहीं है, सरदियो गरमी नहीं,
पाँच हिसमें एकका भी, ज़ायक़ा मुझमें नहीं।
आफ़ताबी हूं किताबी हूं, न खूबो ज़ीस्त हूं,
कोई नक़्शा भी नहीं, कोई अदा मुझमें नहीं॥
जाबिरो लाग़िर न हूं, फ़र्बा न तूलो अर्ज़ हूं,
जिसका हमशक्ल हूं, नक्शे जुदा मुझमें नहीं।
आत्मा हिंदोस्तां में हूं, अरब में रूहे पाक,
आप हूं आपेमें अपने, दूसरा मुझमें नहीं॥
क़ैद हूं गो जिस्मे-ऐमालीमें, ख़ाकी में हुनूज़,
हूं मगर सबसे जुदा, मेरे सिवा मुझमें नहीं।

जिस्म में हूं इस तरह, जिस तरह आइने में अक्स,
मैं ज़रा इसमें नहीं और, वो ज़रा मुझमें नहीं ॥
मेरे ही ऐमाल हाजिब, हैं मेरे औसाफ़ के,
लेकिन इक हद तक हैं, मुतलक़ तो फ़ना मुझमें नहीं ।
ब्रह्म हूं और मैं खुदा हूं, आत्मा परमात्मा,
कौनसा फिर वस्फ़ ज़ाते-पाकका मुझमें नहीं
इल्मे-कुल हूं, कुदरते कुल हूं, सरूरे कुल हूं मैं,
है बसीते कुल नज़र मेरी क़ज़ा मुझमें नहीं ।
देखता हूं जानता हूं, हर-खफ़ी ओ हर जली,
महव हूं मसरूर हूं, कुल्फ़त ज़रा मुझमें नहीं ॥
अपनी सूरत देखता हूं अपने आईने में मैं,
अक्स लाखों मुझमें हैं, लेकिन ज़रा मुझमें नहीं ।
'माईले—' औसाफ़ खुद हूं, साकिने औसाफ़ खुद,
वाहिदो ला-शरीक़ हूं, दख़्ल और का मुझमें नहीं ॥

जयति जयति जय त्रिशला नन्दन।

शासनस्वामी-अन्तर्यामी, हम सब करते हैं अभिनन्दन ॥
ज्ञाततनय सविनय प्रणाम है, तव चरणों में ही विराम है।
शोभाधाम जिनेश्वर हम सब, करते हैं तुमको अभिवन्दन ॥
पूर्ण चन्द्रमा से विकास मय, पाटल सुमन समान हास मय।
सदुपदेश हैं प्रभो! आपके, भव्य भालको शीतल चन्दन ॥
व्योम सदृश विस्तीर्ण ज्ञानप्रद, सत्स्वरूप मानो गंगा-नद।
शासन आता चला आपका, मानो मलयानिल का स्यन्दन ॥
आत्मरूप प्राणी पहचाने, एक दूसरे का सुख जाने।
क्षमा दया को सब सन्माने, हो जाएँ यह दुरित निकन्दन ॥
इस संघर्षों की सँस्मृति में, धृति होती चंचल प्रति गति में।
कृपया प्रभो! जीर्ण नौकाएँ, पा जाए तट आनँन्द कन्दन ॥

× × ×

जय अचलासन शान्ति सिंहासन, द्वेष विनाशन शासन स्यन्दन,
सन्मति कारण कुमति निवारण, भव-भय हारण शीतल चन्दन।
जय करुणा वरुणालय जय जय जीव सभी करते अभिनन्दन,
जय सुख कंदन दुरित निकन्दन जय जगवन्दन त्रिशलानन्दन ॥

× × ×

श्रीज्ञातपुत्र-महावीर-प्रभुका जन्म

रंजोग़मकी आँधियाँ थीं जब जहाँपर छा रहीं,
हर तरफ़से जब सितमकी थीं निदाएँ आ रहीं।
देव सीरत फ़लक़से परियां थीं जब घबरा रहीं,
कश्तियां सैले-जवादसमें थी जब चकरा रहीं।
कज्ब का और झूठका जिस दम जहाँ में राज था,
जहल मन्सबदार था और विद्वाँ मुहताज था॥

जो ज़मानेमें कभी यकता दुरे-खुश आब थे,
ज़ेरकी के आसमाँ पर जू फ़िगन महताब थे।
खा रहे जुल्मो सितमसे वह भी पेचोताब थे,
हादिए सादिक जहाँ के सारे महवे-ख्वाब थे।
नद्दियाँ थीं खून की चारों तरफ़ में बह रहीं,
हस्तियाँ रंजोअलमके थीं थपेड़े सह रहीं॥

चारसू ना-आक़बत अन्देश था सारा जहाँ,
हिरसो-लालच में सगे दुनिया बने पीरो-जवाँ।
ख्वाहिशाते-नफ्स कीं थीं, सब तरफ़ मुँह ज़ोरियाँ,
मिट चुका था अदल और इंसाफ़का नामो-निशाँ।
खुदको जो समझे हुए बैठे थे हामी धरम के,
खून से वह बेज़बानोंके ज़मीं थे सींचते॥

शहर कुंडलपुरकी भूमी, जो कभी खामोश थी,
रंजमें ग़ममें अलम में जो कभी मदहोश थी।
हर तबीयत हिरसो आज़ो बुग़्ज़ से पुरजोश थी,
आसमां जल्लाद था खल्क़े-खुदा खूंनोश थी।

शहर कुंडलपुर में करता था हकूमत जो कि शाह,
था सिधारथ नाम उसका और था धर्मातमा ॥
मुल्क वैशालीमें चेटक नामथा फ़र्मां रवा,
जिसको बख़्शी थी ख़ुदा ने एक दुख़्तर तिरशला ।
हो चुका जिसका सिधारथ शाह से संबन्ध था,
और शादी की भी रस्में हो चुकी थी सब अदा ॥
तिरशला देवी वह यानी उर्फ़ शुभ प्रियकारिणी,
हुस्नकी तसवीर थी और नूरकी पुतली बनी ॥
राजा रानी अपने महलों में रहे अशरत फ़ज़ा,
तिरशला देवी हुई ख़ुश किस्मती से हामला ।
गर्भमें महावीर तीर्थंकर का जब आना हुआ,
आया राहतका ज़माना अब्रे रहमत छा गया ॥
फ़ारगुलबाली जहाँ के चूमती आई कदम,
रंग बदला होगया रोशन ज़माना एक दम ॥
एक शब जब तिरशला देवी के महवे ख़्वाब थी,
आए चौदा ख़्वाब उसको जिससे वह बा आब थी ।
रंग फीका पड़गया सूरत भी कुछ नायाब थी,
कह रही थी ख़्वाब यों राजा से और बेताब थी ।
ग़ौरसे सुन लीजिए जो मुझको आए ख़्वाब हैं,
दीजिए ताबीर वर्ना जानो, दिल बे ताब हैं ॥
चार दांतों वाला इक हाथी सफ़ेद आया नज़र,
था सफ़ैद इक गावो-नर और एक था शेरे-बबर ।
लक्ष्मी देवी-गुलोंके हार थे दो ताज़ह तर,

इक चमकता माहताब, इक आफ़ताब आया नज़र ।
बाद में देखा कि पानी के घड़े थे दो भरे,
एक तालाब एक दरिया तख़्त में हीरे जड़े ॥

आस्माँ पर था विमान इक तेज़ रू मंडला रहा,
ढेर मेरे सामने हीरे जवाहर का लगा ।
एक निज़ारह अजब दिलचस्प हैरत खेज़ था,
एक शोला-बे वखां था अस्मां पर उड़ रहा ।
यह हैं चौदा ख्वाब राजा मैंने जो तुमको कहे,
कह दो मुझे ताबीर इनकी ताकी ग़म जाता रहे ॥

सुनलिए जब ख्वाब राजा ने तो खुश होकर कहा,
हैं मुबारिक ख्वाब सारे धन्य हो तुम तिरशला ॥
गर्भमें भगवान तीर्थंकर तेरे नाज़िल हुआ,
तेरे सारे ख्वाब सच्चे हैं यह निश्चय हो गया ।
देव इन्दर गुस्ल तोलीदी उन्हें दिलत्राएँगे,
कोह मेरू पर मअत्तर करके खुद ही लाएँगे ॥

अपने ख्वाबोंकी जो यह ताबीर रानी ने सुनी,
आया होंटों पर तबस्सम दिल पर फ़रहत छागई ।
गुफ्तगू इससे ज़ियादह कुछ न रानी सुन सकी,
बादले मसरूर खुर्रम महल को अपने गई ।

जब हुए पूरे हमल के दिन जो थे बाक़ी रहे,
दिल खुशीसे पुर हुआ रंजो अलम सब मिट गए ॥

था महीना चैत का थी शुभ तिथी तिरयोदशी,
था शुदीका पक्ष मसऊदो-मुबारिक थी घड़ी ।

हो गई मोलूदकी सूरत नुमायां चाँद सी,
रोशनी दुनिया में हरसू हो गई उस नूर की ।
फूल बरसाती थी हूरें-होके अज़ बस शादमाँ,
जशन तौलीदी मनाने आया देव-इन्दर यहाँ ॥
कोह मेरू पर उन्हें जिसवक्त ले जाने लगे,
लुतफ़ ऐरावत की असवारीका दिखलाने लगे ।
जाके पाण्डुक वन में इन्दर गुस्ल दिलवाने लगे,
बहुतसे कलशोंसे खुद स्नान कर वाने लगे ।
ज़ेवर और पोशाक ज़रीं उनको पहनाने लगे,
नाम नामी वीर रक्खा फूल बरसाने लगे ॥

× × × ×

स्वर्णका सवर्ण-वर्ण पावन विभा समान,
रविके समान नव ज्योति है शरीर की ।
लक्षण सहस्र आठ कर्म दल छिन्न किए,
योजन गमनमें है समता समीर की ॥
चन्द्रकला स्फटिकशिला पे विराजमान,
भव्य उपदेश पाते जैसे घूँट क्षीर की ।
तारण-तरण सुर सुरपति सेवमान,
महिमा त्रिलोकमें रमी है महावीर की ॥ १ ॥
हाथियों में ऐरावन नगों में सुमेरू और,
जैसे सब धर्मो में है जीव दया ही प्रधान ।
तेजवानों में दिनेश सोममयों में निशेश,
व्रतों में है शील व्रत ज्ञानों में है ब्रह्मज्ञान ॥

मन्त्रोंमें है नमस्कार नदियों में गंगाधार,
वीरों में श्रीवासुदेव दानोंमें अभयदान ।
वन्योंमें मृगेन्द्र सुमनोंमें अरविंद वर
यों ही सर्वश्रेष्ठ वीतराग वाणीको लो जान ॥ १ ॥
कन्त विना कामिनी वसन्त पिक शब्द विना,
दन्त विना गज जैसे कंज विना सर है ।
दीप विना मंदिर महीप जनवृन्द विना,
दान विना मान जैसे देह विना सर है ॥
मोती विना पानी जैसे सत्य विना वाणी जैसे,
नेत्र विना तेज और पक्षी विना पर है ।
वृक्ष विना पल्लव सुग्रन्थ रस चित्र विना
वैसे ही यहाँ पे आत्मज्ञान विना नर है ॥ १ ॥

तरुण-तपस्वी-ज्ञातपुत्र-महावीरका अलौकिक जीवन

कारुण्यैकपयोनिधिः परहिताधाने गृहीतव्रतः,
शास्त्रेष्वप्रतिमल्लभल्लनिपुणां बुद्धिं दधानश्चिरम् ।
कृच्छ्रेष्वप्यविपत्तिरम्यसुकृताध्वानं च नोल्लंघयन्,
योगीन्द्रस्तरुणार्कभा विजयते लोकान् सदाऽऽनन्दयन् ॥ १ ॥

लोकानामुदयाय नित्यमुदितः कारुण्यवारांनिधिः,
प्राणानार्तमुदे ददे तृणमिवोत्सृज्या गुणी मानिनाम् ।
यत्कीर्त्या नु महाव्रताधिगतया श्वेतातपत्रायितं
राजत्यम्बरमध्यगं तदधुनाऽप्यर्केन्दुबिम्बच्छलात् ॥ २ ॥

लीलासच्चरितैर्महोज्वलमहामोदं परं पञ्चयन्,
यो जातोऽत्र यशोदयानुकलितः सत्वार्थमभ्युद्यतः ।
जीवानामुदपं दिशन्नतितरामुर्व्यां चिरं संस्थितः,
सस्ताद्धाम भृद्गुणीरिह महावीरो जिनः श्रेयसे ॥ ३ ॥

यद्दीपप्रभवर्ष्ममर्मणि महान् क्लेशोऽर्जितो वेधसा,
चित्रं तच्च तपोऽनलोष्मपिहितं चर्मास्थिशेषं व्यधात् ।
हन्तैताह गवस्थमप्यतिदयावीचीभिरान्दोलितो,
ह्यामीलात् प्रतिरक्षितुं परमसौ क्लेशाय प्रादात् पुनः ॥ ४ ॥

यत्कीर्तिव्रततिप्रसूनसमतां वृष्टीन्दुबिम्बं सदा,
यस्यास्थां निकुरम्बमेव कलये तारावलीः प्रोज्वलाः ।
यत्तेजः शरणं श्रितं रविमिवालोके किमेतावता,
श्रेयः सन्ततये नमोस्तु सततं तस्मै दयोदन्वते ॥ ५ ॥

(युक्तप्रान्तीयः)

राष्ट्रस्थविर-महात्मागान्धीका असहयोग आन्दोलन

आर्यावर्तप्रसूतदैशिकवरात् सच्छास्त्रपारंगमा-
चिछक्षेरन् मनुजाः समेऽपि नितरां स्वं स्वं चरित्रं क्षितौ ।
आर्याणां किल गौरवं मनुरिदं संशुद्धमातिष्ठते,
हा लोक्याद्यसमस्तमेव विषमं गान्धिर्भृशं दूनवान् ॥ १ ॥

क्षुब्धस्वान्तरतीव सम्प्रति पुरा तत्वानुसन्धानविद्,
निध्यायात्मविदर्पये सुविपुलं बीजं जिहीर्षुद्रुतम् ।
जाल्मैरप्यनुशासनं च तदहो तेभ्यो बलिं यच्छतो,
धिङ् नस्तत् प्रतिसारणाय यतते गान्धिर्महात्मा ध्रुवम् ॥ २ ॥

आर्या सम्प्रभवन्ति शासितुमिदं सर्वात्मना विष्टपं,
किन्नामैकपुरीमिव स्वजननीं पूज्यां महीं रक्षितुम् ।
तन्मुक्त्वाऽऽशु समस्तभारतभुवं निर्यान्तु जाल्मा इति,
वर्षीयानपि घोषयत्यतिरां मध्ये सभं निर्भयः ॥ ३ ॥

आभुग्नद्रुमकाननानि परितस्तीर्थानि भीतानि न,
आशौचं कृषि-शिल्प-कर्मनिपुणाः सम्पीडिता मानवाः ।
व्यापारप्रवणा भृशं प्रतिदिनं नूत्नैः करैश्चूषिताः
अर्द्धा वागपि यन्त्रिता किमपरं जाल्मैर्न यद्दुष्कृतम् ॥ ४ ॥

इत्थं कृत्स्नमवेक्ष्य पीडितमहो राष्ट्रं यथाऽराजकं,
वर्षं भारतमंचहं कथमिव स्वातन्त्र्यमालम्बताम् ।
इत्यारूढमतिः कृती सविनयावज्ञां चिकीर्षुर्महा-
नास्ते गान्धिमहोदयः सततगः प्रोत्साहयन् राष्ट्रियान् ॥ ५ ॥

(पं० युक्तप्रान्तीयः)

नेहरूवंशका आत्मत्याग

म्लेच्छैर्निष्कुषितां निरीक्ष्य परितो धात्रीमिवोत्पीडितां,
पुण्यां भारतभूमिमुग्रतरसोद्धर्तुं गृहीतव्रतः ।
भूत्वा राष्ट्रमहासभापतिरसौ वाकीलचूडामणि-
र्दासत्वत्रिपदीमभीर्निरसितुं चक्रे जनान्दोलनम् ॥ १ ॥

भूतिं तामपि राजराजकमलां शश्वत् परिस्पर्धिनीं,
प्रासादं तमु वैजयन्तप्रतिमं कृत्वाऽञ्जसा राष्ट्रसात् ।
यावज्जीवमनेकधा कृतमती राष्ट्रस्य सेवां व्यधात् ।
काश्मीराभिजनः समानमहतामग्रेसरो नेहरुः ॥ २ ॥

पुत्रस्तत्प्रतिमो गुणैर्विमलया मत्या च कीर्त्याऽपि च,
नाम्ना वीरजवाहरोऽनवरतं स्वातन्त्र्ययुद्धोद्यतः,
उद्धर्तुं निजमातृभूमिमनघां पंकादनार्यग्रहाद्
बाढं सैष भगीरथोऽद्यवहते पूर्वैः समूढां धुरम् ॥ ३ ॥

योगाचारसमानुदारचरितः प्रोज्झित्य भोगानसा-
वाहेयानिव नैकधाऽप्रतिभटो राष्ट्रैकवीरः सुधीः ।
अन्यायादनपेतशासनमिदं सावज्ञमाज्ञाय च ।
कारा-कृच्छ्र-तपोऽर्जनं प्रकुरुते भव्यं वपुः क्लेशयन् ॥ ४ ॥

एतद्वंशप्रसूतयाऽपि सुकृतं यत्घोषयाऽनुष्ठितं,
कर्तुं तद्धयवसीदति प्रतिभटं मन्योऽपि मर्त्योऽद्भुतम् ।
संख्यानं हि कुलस्य को नु तनुयादात्मावदानस्रजा
मार्केन्दुप्रतितिष्ठतां क्षितितले धन्योऽन्वयो नेहरुः ॥ ५ ॥

(पं० युक्तप्रान्तीयः)

तरुणतपस्वी-ज्ञातपुत्र-महावीर का अलौकिक जीवन,

युवावस्था ही मैं सकलसुखसम्भार तज के,
यथा लाभाहारी सुमनसुखदाता रह सदा ।
तपश्चार्याग्नी मैं कुसुमसुकुमार-स्ववपु को,
यतीन्द्र-स्वामीने पुनि-पुनि तपाया कनक ज्यौं ॥ १ ॥
बढी शक्तिस्तीव्रा यदपि तनु चर्मास्थि हि रहा,
दयाधारा पुण्या तदपि उरमें थी बह रही ।
विपन्मग्नप्राणी लखि परम कारुण्य जलधि-
महावीरस्वामी परहितलगे तत्क्षणमुदा ॥ २ ॥
किया आत्मोत्सर्ग-ऽ-सकल जन प्रत्यक्ष उसने,
दिया था सिंही को निज वपु, उबारा अतिथि को ।
सिखा यों जीवों की निरतिशय-रक्षा सतत ही,
अहिंसा धारासे सब जगत आप्लावित किया ॥ ३ ॥
दयावीरो ! जीवों पर नित दया-पालन करो,
सुरक्षा हीनों की अविचल प्रतिज्ञा उर धरो ।
सदा सद्भावों से विमल हृदयागार भर लो,
यथा शक्त्या शश्वत् सकल जनता-ताप हर लो ॥ ४ ॥
सुशान्ती-साम्राज्य-ऽ-भुवन भर में स्थापित करो,
महावीर-स्वामी जिनवर दिखा मार्ग-सुमग-ऽ-
महानिर्वाणाप्ती सुगम तम-निश्रेणि रच के ।
अनेकान्तद्वारा हृदय-तम-तन्द्रा हर गये ॥ ५ ॥

(पं० मागधः)

राष्ट्रस्थविर-महात्मा-गान्धीका आन्दोलन

महात्मा-गान्धी जी निरतिशय-स्वातन्त्र्य प्रणयी,
मिटाने दासत्वऽसब विधि लगे देश हित में ।
सिखाया लोगों को सविनय-अवज्ञा व्रत महा,
जगाया सोते से निज जननि भू भार हरने ॥ १ ॥
अनार्यों से आर्यऽसब विधि रहे श्रेष्ठ जग में,
परं स्वार्थों द्वारा पर वश हुए आज हम हैं ।
बताओ तो लोके समय किसका जात सम है,
फिरे हैं आर्यों के शुभ दिन सुवीरो ! अब उठो ॥ २ ॥
छिड़ा है संग्रामऽमति चल दिखा दो जगत को,
भगादो म्लेच्छों को निज जननि भू-भार हर लो ।
मिटादो अन्याय-ऽ-परम सुख साम्राज्य थिर हो,
कहावोगे आर्य-ऽ-जब वसुमती हो स्ववशगा ॥ ३ ॥
सुनाते हैं गान्धी यति यदपि राष्ट्र-स्थविर वे,
तथाप्यात्म-त्याग भुवि कर सके कौन उन सा ।
अहिंसा-पूजारी जिन सम नहीं अन्य जगमें,
स्वराज-प्राप्यर्थं यहि व्रत मुदा धारण किया ॥ ४ ॥
अनार्यों का दास्य प्रसहन नहीं आर्य करते ।
सभी आर्यस्थानी विभव-उपभोगी हम बनें ॥
महात्मा गांधी के इस असहयोग-प्रगति में,
करो राष्ट्रोद्धार रिपु सब भगें देश तज के ॥ ५ ॥

(पं० मागधः)

नेहरू-वंशका आत्म-त्याग

जगन्मान्य-श्रीमन्मुकुटमणि वीराग्रसर ने,
लखी म्लेच्छोत्पीडा निज जननि भू की सुविषमा ।
सुधी-मोतीलाल-ऽ-दुसह दुख मर्माहत हुए,
महैश्वर्य त्याग-ऽ-कर तब लगे उद्धरण में ॥ १ ॥
कभी कारागारे वसति विषम क्लेश सहके,
सुखाया भूखों से कुसुम-सुकुमाराङ्ग अपना ।
कभी मुक्तावस्था विच सरस-सम्भाषण सुना,
जगाया वीरोंको जननि-हित रक्षा-व्रत बता ॥ २ ॥
महामान्य श्रीमत्-पितृगुणगणालंकृत हुआ,
सुपुत्रख्याती में विषमदुखसोढा कृतमति-ऽ-
लगाया सर्वस्व-ऽ-जननि हित रक्षा करन में
अहै चिन्ता राष्ट्रोद्धरण हित ही एक उसके ॥ ३ ॥
न कारा-दुःखों की न च वपु-सुख प्राप्ति हित ही,
कभी चिन्ता देखी उस पुरुष के सूक्ष्म-तम भी ।
सहिष्णु क्लेशोंमें परम सुख आभास लहता,
चले जाओ म्लेच्छो जनपद तजो यों गरजता ॥ ४ ॥
दिखाई सेवाएँ सतत इस सद्वंश-मणि ने,
हुई योषाएँ भी जनपदहितारूढ इसमें ।
न आत्मत्यागोंका सकलगुण-राशीश कुलके,
कभी कोई विद्वान विगणन इयत्ता कर सके ॥ ५ ॥

(पं० मागधः)

मोहन की मोहिनी

लोके नीतिधनैः सुदूषित इतो युक्तो नयो भारते,
एतद्भारतभूमिपूर्वविभवस्तेनैव सार्धं गतः ।
हिंसां दूरमुदस्य साकृतमहो दित्सुश्च तं वो मुदे,
लोकाः पश्यत मोहिनी भगवतः शक्तिः समुज्जृम्भते ॥ १ ॥

(पं० वागीयः)

जवाहरकी प्रकृति

कभी मैंने सोचा प्रथित जगकी कान्ति तुम हो,
रही जो है खिन्ना मन, चिर निराकार तन से ।
नहीं ऐसा वाला प्रकृति सहसा पौरुष लहे,
दिखाई जो देता समुदित जवाधिक्य हर (जवाहर) में ॥

(पं० पांचालः)

ज्ञातपुत्र-महावीर की अदम्य-शक्ति

महावीरेणानेन जगति जनतापशमिना,
अलभ्यं वस्तूनां किमपि ददताशेषमहता ।
स्वकीयावासक्ष्मां गतवति च शुभ्रां विदधता,
महावीरः कोऽसौ त्रिभुवनतले यो न हि जितः ॥ १ ॥

(मागधः)

महात्मा-गान्धीकी कर्मनिष्ठता

जहां की मेधा थी सतत बतलाती अमरता,
वहीं भोली भाली न अब सिखलाती भ्रमरता ।
जहां गीता-गीता परमपद नीता परिचिता,
यथा मुग्धा-वामा अमरपद त्यागे शिखरिणी ॥ १ ॥
जहाँ की छाया में सकल-फल पाए मधुभरे,
जहाँ का था डंका अमरपुर में था बज रहा ।
पताका थी भा-ती गगन फहराती जगमयी,
जहाँ थी आज़ादी मधुर मदमाती मदभरी ॥ २ ॥
वहीं आई माया सुफल कर डाली विष भरे,
वहीं का हा डंका सदन पर भी ना बज रहा ।
वहीं की आज़ादी रमण कर भागी पर गृहे ।
तभी बाबा गाँधी भरतपुर ऐसा निरख ही ॥ ३ ॥
विवेकी बूढ़ेका हृदय भर आया तुरत ही,
अहिंसा ले धाए सुलभ कर डाला फिर वही ।
सुधा निर्जीवों में अहह भर डाली फिर नयी,
जगा से गाँवा के युवक शिशु पूरे व बुढ़ऊ ॥ ४ ॥
बनीं नारी सारी युवक सम प्यारी रण रहीं,
बनीं सीता कुन्ती सघन वन पीड़ा सह रहीं ।
बनीं चण्डी काली असुर विकराली लड रहीं,
बनीं विद्या देवी भुवन सम क्यारी भण रहीं ॥ ५ ॥
बनीं ग्रामीणोंकी अटल वल टोली दल चली,
चली जंगी सेना मचल कर ढाई खल बली ।

किसानों के बच्चे निकल कर सेना बन चले,
मिलों से नाते को कुचल मजदूरी वल वले ॥ ६ ॥
मिलों की पूँजी में जमक कर ढाई खलबली,
मिटी पूँजीवादी अनल-सम होकर वह जली ।
ज़मींदारी नारी कृषक सन हारी रह रही,
गुरण्डी-रण्डी भी मसल कर दण्डी गह चली ॥ ७ ॥
मशीनों-तोपों ने अमर पद पाया जय नहीं,
गुरण्डोंकी सेना विफल बन भागी नटखटी ।
अहो सत्यालम्बी अमर बन जाता भय नहीं,
सभी ही खण्डों के मनुज बतलाते वत कही ॥ ८ ॥

(पं० युक्तप्रान्तीयः)

× × × × ×

अहिंसा सत्याङ्गीकृतसबलगान्धी धृतबलं
जयं प्राप्तं जातं उ-परपदतां भारतकुलम् ।
गुरण्डानां मानं निखिलधनधान्यं च चपलं,
क्षयं सर्वं जातं चरमलघुतां दानवकुलम् ॥ १ ॥
मुहुः पश्यन् शृण्वन्नवनिचरसेनाकलकलं,
स्वतन्त्रं संगीतं निखिलजनगीतं कलमदं ।
महाक्रान्तिर्नीता निखिलजनलोके वसुधया,
सुधा पीता स्फीता विरहितकलंकांकिततया ॥ २ ॥

(पं० सैन्धवः)

× × ×

कुमारी नारी वा समरविदुषी भारतमयी,
भयाँका नो सज्जा निबिडरणमध्ये बहुमता ।

सभा ग्रामे ग्रामे कृषकगणबालैश्च विहिता,
सदा स्थाने स्थाने परिवदति नित्यं स्ववशतां ॥ ३ ॥
महाकामिक्रोधी प्रबलमदशाली छलबली,
प्रथालोभिप्रोत्फुल्लदनुकुलमालिप्रखलिनः ।
समस्तं वा विश्वं गदति नितरां शं च विजयं,
विशस्त्रं गान्धीजं विपुलतमयुद्धं च मनुते ॥ ४ ॥
अयन्त्रं स्वच्छन्दं विधनजनमन्त्रं वलदमं,
असम्भ्रान्तं कान्तं परशमनतन्त्रं सबलकम् ।
सदा प्रान्ते प्रान्ते नगरवरमध्ये बहुरतं,
अथ सारं सारं विजयवदमानं च तनुते ॥ ५ ॥

(पं० नैरंजनः)

नेहरूकुल

या तारुण्यमहीरुहस्य रसिका ज्ञाता यथा वल्लरी,
उन्मीलद्विलसन्नवानलनिभा वामाभिरामा च या ।
शालन्ती शुभशान्तिकौतुकमयी वीरांगनोरीकृता
यत्र स्वान्तविलासहासतिमिरं त्यक्त्वा परार्थं गता ॥ १ ॥
मुक्त्वा सर्वविदेशवीचिचरितं रम्यं स्वकीयं गृहं,
शारीरं खलु मानसं च सबलं मद्रं च कौटुम्बिकं ।
यस्मिन्नस्ति कुले स्थितं सुनियतं नित्यं मुनीनां व्रतं,
सत्यादि सनमाथ नाथयुगलं परमं पवित्रं परम् ॥ २ ॥
कारागारविहारगेहरमणं कल्पद्रुमं खद्दरं,
शूलं पाशसुदर्शनं च परिघं स्वाङ्गे पवित्रीकृतम् ।
मित्रं विश्वजनीनपीनपवनं शार्दूलविक्रीडितं,
गौरंडीभघटा वनस्य सलिलं सर्वं सलीलं हृतम् ॥ ३ ॥
देवीदेवमयं सदा सुखकरं ज्ञानस्य दिव्यालयं,
माहेन्द्रं प्रतिमन्दिरं च विजया लक्ष्मीस्थनिर्माणकं ।
भोगैश्वर्यविमत्तभावशमनं गम्यं वरेण्यं ततः,
यत्रागत्य जवाहरप्रबलता लालेन पूर्णीकृता ॥ ४ ॥
मोतीलालमहोदयेन जनितं सौम्यं सुशोभाकरं,
वीरं धीरसमीरवेगतुलितं वन्दे शुभं कामदं ।
स्वच्छन्दं च गुरंडमध्यपतितं वज्रप्रभाभासुरं,
पूज्यं धन्यतमं स्वदेशकमलं स्वार्थं च येनाधृतम् ॥ ५ ॥

(पं० काश्मर्यः)

× × ×

मोतीलालमहोदयस्वजनिना लक्ष्मी सुशोभा करी,
गेहस्नेहविधानमान तजके स्वातन्त्र्यगामी बने।
कारागार विहारगेह रचके आनंद पाए वहीं,
सारे भोग विलास हास तजके नेता सु योगी बने॥ ६॥
माना नैव कदापि जाति पचड़ा स्वातन्त्र्य रागी बने।
पूंजीवादविवादपादतजके सम्पन्न त्यागी बने॥
पैरिसमें धुलते थे वस्त्र जिनके वे खादि धारी बने।
नेहरु कुल आदर्शरूपसबके हितमें सुगामी बने॥ ७॥

(युक्तप्रान्तीयः)

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

निदर्शन

यहां प्रकृति १६ शृंगारों से सज्जित होकर खड़ी है यह सरिता सरोवर बादल और उद्यानों से अलंकृत भारत वर्ष का नन्दन वन है

[नगाधिराज हिमालय की असंख्य पर्वतश्रेणि की तलहटीमें, मी समुद्रतलसे ७-८ हज़ार फ़ीटकी ऊंचाई पर समागत कश्मीरका रमणीय प्रदेश कई शताब्दिओंसे देश-देशान्तरके प्रवासिओंको आकर्षित करता आया है। कश्मीरके वन-उपवन, इसके हिमाच्छादित पर्वतकूट, इसके नदियों-नालोंके झरने, इसके सरोवर-द्रह एवं उद्यान, इसके मनुष्य और इसकी कलाएँ, कश्मीरको इन सबने भारतवर्षका नन्दन वन बनाया है। ऐसे कश्मीरके ९ मासके प्रवासने मात्र उडाऊ संस्मरण इस पुस्तकमें आलेखित किए हैं।]

इसके संबंधमें जितना लिखा जाय कम है। बहुतोंने इसपर अपनी लेखनी घिसाई हैं भविष्यमें और भी लिखेंगे। फिर भी कश्मीरका मनोहारी सौन्दर्य अमूल्य ही रहेगा। यह चिर नूतन है, चिर रमणीय है। अपने संस्कृत सौन्दर्यशास्त्रिओंके नियमानुसार यह प्रतिक्षण नवीनता धारण करता रहता है। फिर भी वास्तविक रमणीय बना रहता है। इसे अवलोकन करनेवाले कभी तृप्त नहीं होते। वहां एक दो मास घूमनेसे वहांकी समृद्धिका आमूलचूल

अन्त नहीं पाया जा सकता। इसकी प्रत्येक ऋतु नवीनता लेकर आती है। इसके सब दिन नए होते हैं। यहां की प्रत्येक पल नवीनतासे भरपूर है। हमारा अपना तो यह ही अनुभव है कि कश्मीरकी समृद्धिका सम्पूर्ण विवरण प्राप्त करनेके लिए तो बारह मास वहीं बिताए जायँ तब वहांका अन्त लिया जा सकता है अन्यथा नहीं। परन्तु साधु समाचरणकी दृष्टिसे यह असंभव है।

प्राकृतिक समृद्धि

यह सत्य ही है, वह नवीन जगती है। उत्तुंग और हिमाच्छादित पर्वत शिखर, शिखर और, उनकी धारोंसे कलकल नादसे गिरने वाले प्रपात और झरने, योजनों साथ बहने वाली नदिएँ, प्रगाढ और हरी भरी वृक्षराजिएँ, सघन चुनार एवं गगनोन्मुख सीधे-पतले सफेदेके वृक्ष, पर्वतकी धारोंको छा लेने वाले देवदारु और चीड जैसे ऊंचे महीरुह, लंबे चौडे हरियाले मैदान, ओंडी और गहरी खड्डें, विराट् सरोवर, रंग और सुगंध बरसाने वाली पुष्पराजी, नाना प्रकारके रसदार फल, वहांके निवासी और उनका कला-विज्ञान, इस प्रकार वैविध्यमय-मिश्रण किसी अन्य प्रदेशमें मिलना अति कठिन है।

कश्मीरकी सृष्टि आँखोंको प्रसन्न करती है, मन प्रफुल्लित होता है, हृदय उछलने लगता है। काश्मर्य जल-वायुसे शरीरमें नया रक्त दौडने लगता है। कवि और सौन्दर्य-द्रष्टा प्रवासी इस पर बहुत कुछ लिख चुके हैं और हमने इस विषयमें कईवार पढ़ा है। तथापि स्वीकार करते समय सब कुछ असंभव प्रतीत होता था परन्तु अपना निजका अनुभव होनेके कारण इन्हें मानना पडता है।

पर्य्यटनका विशाल क्षेत्र

इन सब बातोंका साक्षात्कार करनेके लिए कश्मीरकी सब ऋतुओंका उपभोग करना आवश्यक है, फिर भी छ मासके निवास और प्रवासमें इसकी कुछ रमणीयता और उत्साह प्रेरकताका यत्किंचित् चित्र खींच कर बताते हैं।

परिभ्रमण और पर्यटनके रसिकोंकी पूर्णता काश्मर्य क्षेत्रकी विशालता ही उसे पूरा कर सकती है।

कश्मीरका प्रवास लोगोंके लिए सामान्यतया अधिक व्ययसे संबंधित नहीं। युद्धके समयको देखते हुए ५०० रुपये मासिक व्ययसे सुगमतया घूमा जा सकता है। सामान्य समयमें तो ३००—३५० तक में भी निर्वाह किया जा सकता है। कश्मीरमें प्रवेशका समय अप्रेलसे आरंभ होता है और सितंबर तक भ्रमण करके बहिर्गत हो जाना चाहिये। लोग इस प्रवास में गर्म कपड़े साथ ले जाते हैं। अधिक अनुभव श्रीनगरका वातावरण स्वयं करा देता है।

आल्हादक अनुभव

कश्मीर पहुँचनेके मुख्य मार्ग दो हैं, प्रथम तो रावलपिंडीसे मरी होकर श्रीनगर, दूसरा लाहोर से जम्मु होकर श्रीनगर। रावलपिंडीसे श्रीनगर २०१ मील तथा जम्मुसे श्रीनगर २०० मील है। लोगोंको दोनों ओर से मोटरका साधन प्राप्त है। दोनों मार्गोंका सौन्दर्य अलग अलग है। साधारणतया एक मार्गसे जाकर दूसरे मार्गसे वापस आनेमें सब कुछ देखा जा सकता है। रावलपिंडीके मार्गमें वितस्ता-जेहलम नदीका मुग्धकर साथ मिलता है। और जम्मूके मार्गमें

१०००० फ़ीट की उंचाई के पर्वतशिखरोंका आश्चर्यजनक आल्हाद युक्त अनुभव होता है। रावलपिंडीसे निकलते ही उसीसमय सामनेके पहाड़ोंसे आनेवाला शीतल समीर आपका स्वागत करने लगता है।

जेहलमका दिग्दर्शन

आगे बढ़ने पर मरीकी प्रख्यात टोंक आती है। इसकी उंचाई लगभग ७००० फीटकी है। इसकी परिक्रमा आरंभ होते ही शरीरमें शीतलताकी गुदगुदी होने लगती है। रोमराजी ठंडकसे फरकने लगती है। प्रत्येक रोम प्रसन्नतासे फूलकर मोटा होजाता है।

इससे आगेका मार्ग धारोंसे बातें करता हुआ उतार चढाव का मनोरंजन करता है ७० मील समाप्त करने पर कोहालेसे जेहलम नदीका संयोग कभी संकोच तो कभी विकोच, कभी शांत तब कभी घर्घर रव, कभी आपके समीप तो कभी आपसे दूर होनेवाला पट आपकी आंखों को आकर्षित करता है। कोहालेसे दोमेल तक साधारण चढाई होती है। वहांसे बारामूला तक आरोह है। बारामूलासे श्रीनगर तक तीस मीलकी साम्य भूमि है। सड़क के दोनों ओर सफ़ेदेके वृक्ष चौकीदारोंकी सी पंक्ती बांध कर खड़ा पहारा भर रहे हैं। उस समयका सुप्रवास मार्गश्रमका अपहरण कर लेता है। इसके उपरान्त आगे चलकर आप कश्मीरकी राजधानी श्रीनगरमें अदृष्ट हो जाते हो।

श्रीनगर ५००० फ़ीटकी ऊंचाई पर होने पर भी आपको यह अनुभव न होगा कि आप किसी पर्वतके कूटपर भी हैं। दोनों ओर की पर्वत मालाओंके मध्य भागमें श्रीनगर का समतात्मक प्रदेश है।

स्वयं श्रीनगर तो अपने नगरोंके समान प्रवृत्तिमय ही है। परन्तु इसकी मुख्य विशेषता इसके मध्य भागसे होकर सर्पाकार बहनेवाली जेहलम नदी और नगरसे १०–१२ मील दूर मुगलीय समयके बाग़ोंसे शोभित प्रख्यात डल सरोवर है।

नदीके दोनों ओरके तट पर हज़ारों घर बसते हैं। यह नदी श्रीनगरका राजमार्ग बनी हुई है। कहीं कहीं इसमें से निकली हुई नहरें नगरकी गली और वीथी सी बन गई हैं। इन जलमार्गोंसे चलने वाला सतत गमनागमन श्रीनगरका विलक्षण दृश्य निर्माण करता है। इसी कारण इसकी तुलना इटलीके **वेनिस** के साथ की जा सकती है।

शिकारे और डोंगे

'शिकारा' के नामसे पहचानी जानेवाली छोटी छोटी सुघड़ और सुंदर नौकाएं प्रवासिओंको इस तटसे उस तट तक पहुँचाती हैं। नदी पर थोड़ी थोड़ी दूर के अन्तर पर सात पुल हैं। कश्मीरी भाषामें पुलको **कदल** कहते हैं। इनमें सबसे पहला पुल **अमीरा कदल** है। यह सबसे बढ़िया है। यहां भीड़भाड़ भी अधिक है।

शिकारे से कुछ आकारमें बडी नौकाएँ **डोंगे** होते हैं। माल ढोनेमें इनका उपयोग होता है। वे लोग उनमें ही रहते हैं। यह इनकी सर्वस्व सम्पत्ति है। कुटुंब साथ रहता है। इसीको अपना घर समझते हैं, इच्छित स्थान पर चाहे जब ले जाते हैं। इसमें फिरते फिरते ये जीवित रहने वाले प्राणी कुटुंब जीवन में मस्त रहते हैं। छोटीसी वातायनमें से बैठे ही बैठे पानी भर लेते हैं। पात्र धो लेते हैं। कपड़े साफ करते हैं। उपयोगी गृहोचित सामग्रिएँ सुखालेते हैं। जिस समय गौरमुखी ललनाएँ अंदरसे बाहर मुँह करके किसीकी

ओर झाँकने लगती हैं तो कुतूहलप्रेमी कविओंकी कल्पनाओंको उत्तेजना-पूर्ण सामग्री मिल जाती है।

बहुतसे दृश्य आँखोंके सामने मानो ताण्डव सा करने लगते हैं जिन्हें रोका भी नहीं जा सकता।

श्रमसे थके हुए या विश्राम लेते समय इन डोंगों के दम्पतीको हाथमें चाय की प्याली थाम कर एक दूसरे के सन्मुख निर्दोष भावसे एकान्तमें बैठा देखा किए हैं। वह दृश्य अपने मनःपटसे मिटा न सकेगा!

ये डोंगे बाहरसे आए प्रवासिओंको शुल्क पर भी मिलते हैं। ७–८ रुपए रोजका भाव है।

हाउस बोटमें

परन्तु प्रवासिओंकी आँखें तो नव अवतरणके समान 'हाउस बोट' पर जाकर ही ठहरती हैं।

श्रीनगरमें यात्रिओंके लिए बहुतसे होटल हैं। धर्मशालाएँ हैं, 'प्रतापभवन' और 'गुरुद्वारे' में सेंकडों यात्री ठहर सकते हैं। परन्तु अधिकतर धनिक प्रवासी इन विशालकाय 'हाउसबोटों' में ही रहना पसंद करते हैं। चलचित्त और कुदक्के जीवोंको कदाचित् इस स्थिर, तटबद्ध, विशालकाय नौकाओंमें बंदी रहना उचित न लगेगा परन्तु 'सुख भोग' के लिए आनेवाले उदार व्यक्ति इसे 'आदर्श स्थान' समजते हैं।

यह 'हाउस बोट' सम्पूर्ण रीतिसे सुसज्जित घर होता है। इसमें सुंदर फरनीचरसे सजा हुआ 'दीवानखाना,' दो चार शयनागार

और 'स्नानगृह' आदि उपयोगी सामग्री होती है। एक कुटुंब इसमें सुखपूर्वक रह सकता है। नौकासे जुड़े हुए डोंगेमें रसवती गृह होता है। बाहरसे अन्यान्य वस्तुएँ लानेके अर्थ, अथवा घूमने फिरनेके लिए एक शिकारा भी होता है। इस हाउसबोटमें रहनेका और खानेपीनेका प्रतिव्यक्ति के हिसाबसे १०-१५ रुपया प्रत्येक व्यक्तिसे लिया जाता है।

उज्ज्वलता और गंदगी

भारतके और नगरोंके समान श्रीनगरका नव्य-निर्मित भाग शोभायुक्त और उज्ज्वल है परन्तु प्राचीन श्रीनगर तो प्रकृतिकी इस रमणीयताके बीचमें दुर्गंध पूर्ण नरकसे कम नहीं है।

दो चार देखने योग्य स्थलोंके अतिरिक्त श्रीनगरमें मर्यादित समयके लिए रहनेवाले प्रवासीको रोकने वाली ऐसी कोई विलक्षण वस्तु नहीं है।

श्रीनगरमें राज्यकी ओरसे एक स्थायी प्रदर्शन भी चलता है। यह रावलपिंडीकी सड़क पर है। इसमें कश्मीरकी समस्त कला-शिल्प कारीगरीकी वस्तुएँ एक ही स्थान पर देखने तथा क्रय करना हो तो खरीदनेके लिए व्यवस्था है।

श्रीनगरकी खदबद करनेवाली वस्तीको छोड़ कर प्रवासीको दूर तक दीखनेवाले हिमाच्छादित पर्वत मानो आवाज दे कर आवाहन करते रहते हैं। लोगोंका मन वहां दौड़ जाता है। परन्तु उससे प्रथम श्रीनगरके सौंदर्य-मुकुटके समान डल सरोवरकी परिक्रमा करना प्रवासी लोगोंका पहला काम है।

डल सरोवर

शान्त और स्वच्छ पानी, तीनों ओरसे घिरे हुए पर्वतोंके परिवारमें बादलोंसे भरपूर आकाश का प्रतिबिंब, शिकारेमें बैठकर चांदकी धवल कान्तिके प्रसंगमें, इस सरोवरमें फिरते फिरते लोगोंका मन नहीं अघाता ।

जहांगीर और शाहजहांके वैभवशाली समय के संस्मरणोंको जागृत करनेवाले प्रसिद्ध बाग़, चश्माशाही, निशात बाग़, शालामार बाग़, इसके तटका सौन्दर्य बढाए हुए हैं । डल सरोवर में रंग-बिरंगे कमलोंके झुंडके झुंड दृष्टिगत होते हैं । डल सरोवर पांच मीलका लंबा और अढ़ाई मीलका चौडा है ।

इसके बीचों बीच एक सडक भी बनी है, बडशाहने इसे बनवाया था । इसके नीचे भूर्जपत्रोंमें लिखित बौद्ध-साहित्यको बिछवाकर ऊपर मट्टी डाली है । अबसे २० वर्ष पूर्व कुछ साहित्य जर्मनी लोग लेगए हैं, जिनमें विमान-निर्माण कला के नुसखे थे ।

जिनके पास उचित समय होता है वे हाउस बोटों द्वारा यहीं से गांधरबल, मानसबल, खीर भवानी तथा इससे भी दूर वुलर झील (सरोवर) का आनंद लूटने जाते हैं । इसके अनन्तर वे सीधे पहलगाँव की बस पकड़ते हैं, मानो उन्हें अमरनाथ अमर बनाने बुला रहा है ।

पहलगाँव

सफ़ेदोंकी अध्यक्षतामें होकर जानेवाली मोटर सडकका राजमार्ग, मार्गमें पाम्पुरके केसर की छोटी छोटी क्यारी वाले पीतरंगीय खेत, अवन्तीपुरके प्राचीन अवशेष और अनन्तनाग नामक धूल-मट्टीका

शहर उल्लंघन करके, लोग श्रीनगरसे ६० मील तथा ७००० फिटकी ऊंचाई पर पहलगाँवमें पहुँचते हैं। वे उस समय कश्मीरकी ठोस समृद्धिके गर्भ में होते हैं।

पहलगाँव अर्थात् मात्र एक छोटासा बाज़ार, इसके दोनों ओर अनुमान ५०–१०० घर होंगे, अधिकांश भाग दुकानोंका है। अवशेष निवास तो कल-कल नाद करनेवाली लीडर नदीके तटस्थ, चीड़ एवं देवदारुओंकी वृक्षघटाओंके मध्यभागमें तने हुए टेंट (पटावास) में ही है। अकटूबरसे मार्च तक तो यहां हिमके ढेरोंके अतिरिक्त वसतीका नाम भी नहीं मिलता।

अप्रेलसे सितंबर मास तक यहां आस पास में घूमने फिरने में लोग बडा आनंद मानते हैं।

पहलगाँवका वायु स्वास्थ्य-प्रेरक है, अगस्त-सितम्बरमें छड़ीके मेले (अमरनाथ यात्रा) के प्रसंगमें तो पहलगाँव चमचमा उठता है। पहलगाँवके आते ही मोटरकी सड़कको विदाई मिल जाती है। तदुपरांत अमरनाथके यात्री लोगोंकी गूठ और टट्टू द्वारा अथवा पैदल यात्रा का आरंभ होता है। सर्दीकी मात्रा भी अधिकाधिक बढती जाती है। कपडे और कंबलादिकी पूर्ण व्यवस्था हो तो कोई भय नहीं।

यहां से अमरनाथ २८ मील, फिर भी बहुत दूर है। बहुतसे इस २८ मीलके प्रवास में अमर होकर नश्वर देहको ही छोड़ जाते हैं। शायद इसीलिए अमरनाथ नाम सार्थक है। इतना अच्छा है कि यात्राके दिनोंमें विश्रामस्थलों पर खाने पीनेकी सामग्री मिल जाती है।

इस पर्वतका शीतल समीर भौतिक देहमें प्रफुल्लता और स्फूर्ति तथा चपलता उत्पन्न कर देता है। इसका वर्णन जड़ लेखनी नहीं कर सकती, यह तो अनुभवगम्य वस्तु है।

लोग सामने पर्वतकी धारों पर गाढ़ वनराजी को देखकर दिग्मूढ हो जाते हैं। इनके बीचों बीच होकर पिघलते बर्फ़की असंख्य धाराएँ बह बह कर इस छल छलके घोर नादसे उछलने वाले झरनेमें आकर सम्मिलित हो जाती हैं। लोग साहसपूर्वक चलते हैं, चढ़ाइएँ चढते हैं, परन्तु उनकी चपल और मदोन्मत्त आँखें तो उस झरनेके उद्धत प्रवाहसे हटना ही नहीं चाहतीं।

ये लोग पहला पड़ाव आठ मील चलकर चंदनवाड़ी में डालते हैं। वहांसे खा पीकर आगे बढते हैं। और दो मीलकी खड़ी तथा सीधी चढ़ाई चढ़ने लगते हैं। चलते चलते हाँफ जाते हैं। कलेजा अपने स्थानसे हटनेका विफल प्रयत्न करता है। सन्ध्या होते होते दूसरा पड़ाव शेषनागके मस्तक पर डाला जाता है। तथा ठंढकसे भरी हुई रात यहीं व्यतीत की जाती है। इस स्थानको वायुजन भी कहते हैं। यदि यहां का वायु गुंडोंके समान छेड़खानी कर उठे तो तंबू और डेरोंको उखाड़कर फेंक देता है। तब उस समयकी शीतलता पौद्गलिक देहको बींध देती है। शेषनागका वह नीलवर्णीय तथा आकारमें वामन अवतारके समान छोटा सरोवर आंखोंको आकर्षित करके कीलित कर देता है, परन्तु नीचे उतरनेका साहस नहीं होता।

१४००० फूट उँचा

दूसरे दिन विहागसे कुछ पूर्व सई सवेरमें बरफ़से ढले हुए शिखर-कूटोंको देखते हुए प्रवासको अडियल घोड़ेके समान आगे बढ़ाते हैं।

उस समय चढ़ाई तो मानो कर्कशा की भाँति क्रूर बन जाती है। नोकदार लकडीको बर्फ में गाड़ कर शनैः शनैः चढ़ा जाता है। कुछ पल ठहरकर फिर आरोह का साहस किया जाता है।

१४००० फूट ऊँचा पिस्सु घाटीका घाट उल्लंघन कर डालते हैं। तब तो श्वास लेना भी कठिन पड़जाता है।

इसके उपरांत ढलाई देखकर कुछ सुखका सांस सा आता है। परन्तु यह क्या? यात्री वर्षा और बादलों से एटम बामकी तरह घिर जाते हैं। बहुतसे लोग हल्दी घाटीके समान अमर हो जाते हैं। शेरके झपट्टे की सदृश वर्षाका झपट्टा समाप्त होनेपर कर्दम-अली खाँ पैरोंमें चिपट कर बडी कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं। इधर शीतकी बहुलतासे शरीरयष्टि काँप उठती है। उस समय व्याघ्र-तटीन्याय चरितार्थ होने लगता है।

यात्री साहसके आश्रयसे ही आगे बढ़ता है, पंचरंगी मानव समुदाय आय-व्ययके चक्करमें होता है। जगतीके कोनेमें ये लोग आकर एकत्र होते हैं। वर्षाबिंदुओंसे न घबराकर आगे चलते हैं। उस समयका दृश्य करुण-रसपूर्ण होता है।

बर्फमें चलते हुए

दोपहर होते होते पंचतरणीके मनोहर विश्राम के आश्रयमें पहुँचते हैं। वहां कुछ देरतक दम लेकर तुरन्त आगे बढ़ते हैं। ऊँचे पहाड़की पतली पगडंडीसे चलते हुए, घोडोंके ऊपर प्रवास करते समय एक बार तो दिल बैठने लगता है।

कठोर हिमसे ऊपरसे चलनेका यह नवीन पथ रोमांचक अनुभवमें उन लोगोंके भागमें ही आता है जो वहांका प्रवास कर आए हैं।

पंचतरणीसे चार मीलके अन्तर पर सामने से अमरनाथकी गुफा दीख पड़ती है। लोगोंको वह दृश्य भव्य प्रतीत होता है। ऐसे विराट पहाड़ के गर्भमें प्रकृति-रचित, बरफ़की दिवार और उसीकी छतवाली गुफा जगतीके किसी अन्य भागमें नहीं देखी सुनी गई है।

छतमें से टपक कर हिमका लिंगाकार पिंड जम जाता है। लोग उसीको शिवलिंग मानकर उसपर धनकी राशि बखेर देते है। उस आयके मालिक वहांके पंडे और तद्देशीय मुसलमान दोनों हैं। भक्त लोग इसे यात्राका धाम समजते हैं। कुछ भी हो जो यहां से जीवित लौटता है वह अपना पुनर्जन्म समझता है। बस इतनेसे ही समझ जाइए। यहां आना मानो मौतसे खिलवाड़ करना है।

लोग अमरनाथकी गुफापर अन्तिम दृष्टि डालकर पुनः लौटते समय जो कुछ भी उन्हें कडुआ-मीठा अनुभव होता है वह कभी नहीं भुलाया जा सकता। घिरे हुए बादलोंका दृश्य इस दुनियामें ज़रासा भी सुखकर नहीं है। इस स्थानपर आनेवालेकी नाक काली पड़ जाती है।

अभी नीचे भी उतरने नहीं पाते हैं कि अंगोपांगको हिला देने-वाली चपेटिकासे तुलना करनेवाली वर्षा फिर आरंभ हो जाती है। बचनेके लिए कोई ठिकाना नहीं। हार कर चलना ही पड़ता है। वह भी पक्की हुई बरफ़के फिसल पड़ने वाले पथ पर से। प्रकृति हठपूर्वक रूठी हुई होती है। ऐसी ऐसी डरावनी कल्पनाएँ उठती हैं कि आजकी रात्रिमें क्या होगा? लोग फिर भी आँख मिचौली खेलके समान अमरनाथका नाम गिनते जाते हैं। बड़ी कठिनाईएँ

भोगकर पंचतरणीके तंबुओंकी शरणमें आते हैं। फिर भी प्रकृतिका प्रकोप मानो अधूरा ही रह गया है। कारण हवा अपनी जोरकी फुंकारें मारने लगती है। पवन के सूंसूंकार-पटावासके थंभोंके साथ २ हृदयको भी हिला देता है। गर्म कपड़े पास होनेपर भी भीगजानेके कारण यात्रिओंके शीतका खेद मिटानेमें असमर्थ हो जाते हैं। फिर भी लोग उन्हींमें लिपटे रहकर यमके समान त्रियामाको बितातेही हैं।

ज्यों त्यों रात तो व्यतीत होती है अपने २ सामानको लादकर सन्ध्यातक पहलगाँवमें आ घुसते हैं। पहलगाँवसे अमरनाथके प्रवासमें प्रकृतिकी भव्यता, रमणीयता, सरलता एवं रुद्रतासे लोग तो मुग्धसे हो जाते हैं।

अनुमान इतना ही प्रवास पहलगाँवसे २४ मील तक का अतिदूर वाला 'कोलोहाइ ग्लेशियर' का है। पहलगाँवके आस पास और भी अनेक पर्यटनस्थल हैं। पहलगाँवमें तंबू डालकर अन्यान्यस्थान देखने जानेमें सुगमता रहती है।

जेहलम नदीकी जड़

पहलगाँवसे श्रीनगर आते समय बीचमें अनन्तनागमें उतर पड़कर वहींसे जेहलम नदीका मूल जाननेके लिए लोग वेरीनाग तक जाते हैं। बीच में शाहजहांका बनवाया **अच्छाबल** नामक बाग़ में भी घूमनेकी इच्छा हो उठती है। वास्तवमें श्रीनगरके समस्त बाग़ोंकी अपेक्षा यहीं पर सब मनोहारिता एकत्र हुई प्रतीत होती है। लोग यहांके प्राकृतिक झरनोंका ठंडा और मीठा पानी पीकर अपना श्रम अपनोद करते हैं।

वेरीनागके मार्गमें कुकुडनाग नामका रमणीय स्थान बड़ा ही ठंडा और सुहावना है। जाते समय मार्गमें लाल और पके हुए सेवोंकी झुकी हुई टहनियाँ लोगोंकी पगड़िएँ झपट लेती हैं साथ ही बनपालकसे सतर्क रहना चाहिए।

वेरीनागके झरनेके आसपास जहाँगीरने विशाल कुंड बनवाए हैं। सुंदर उद्यान की सृष्टि भी उपस्थित की है। कुंडका पानी पवित्र, पारदर्शक और नील रंगका है। इसमें असंख्य मछलियाँ खेलती हुई फिरती हैं। जहांगीरको यह स्थान इतना अच्छा लगा कि इसने मृत्युके पश्चात् अपनी कबर यहीं बनानेकी जिज्ञासा प्रगट की थी। जहां झरना दीख पडा कि तुरंत उसके समीप यह शौकीन बादशाह सुंदर बाग बनवा देता था।

सुंदरताकी स्वाभाविक इच्छा रखने वाले मौगलिक युगके ये सब अवशेष हैं।

निरन्तर उछलनेवाले वेरीनागके धारायंत्र अविरत रूपसे बहे जाते पानीके प्रवाहको देखनेपर कुछ विलक्षण ही अनुभव होता है।

कश्मीर मुगल शाहोंके सौंदर्य प्रेमके अवशेषों से भरा पड़ा है।

गुलमर्ग

पहलगाँवके समान या उससे कुछ सुंदरता में अधिक श्रेष्ठ कश्मीरका अद्वितीय द्वितीय आरामधाम गुल्मर्ग है। श्रीनगरके पश्चिम दिग्भागमें रावलपिंडीवाली सड़कके नवें मीलके पाससे वामभागमें मुडनेवाली सडकसे २८ मीलके अन्तर पर यह ११००० फ़ीट उंचा है। पहलगाँवमें भारतीय लोग बहुलतासे जाते हैं तब गुल्मर्ग

में अंग्रेज़ लोग अधिक जाते हैं। ५००० रुपया वार्षिक किराये तक की कोठिएँ हैं। अमीर लोगोंको ही मिल सकती हैं। अंग्रेजों और यूरपीनोंको यहां आनेपर इनकी अपनी जन्मभूमीकी स्मृति सद्यः हो उठती है। इस प्रकारकी रचनाओंसे यह स्थान भरा पड़ा है। यहां विलक्षणता यह है कि इतनी उँचाई पर पहुँचने पर भी १२ मीलका एक विशाल मैदान पाया जाता है। आँग्ल लोग इस मैदानमें दौड लगाते हैं। मदिराके मदमें चूर रहते हैं। अधिकांश भाग यह स्थल इनका अड्डा समझा जाता है। शीतकालमें इन हिमाच्छादित मैदान और कूटोंके ऊपर 'शेइंग' क्रीडा खूब की जाती है। यहांके राजाजीको इसी क्रीडासे पद हानि हुई सुना है।

गुलमर्गके आस पास भी पर्यटनके पुष्कल स्थल पडे हुए हैं। १०००० फ़ीट ऊँचा अफरवाट का पर्वत चढते समय पीछे दृष्टिपात करनेपर नीचे गुलमर्ग का अखिल रमणीय नक़शा दीख पड़ता है। इसके ऊपर प्रकाश और प्रतिच्छायाका खेल बड़ा ही सुहावना लगता है। यदि आकाश स्वच्छ हो तो गहरे खड्डे, वुलर सरोवर, तथा उसके परले पार २७००० फ़ीट ऊँचा नंगा पर्वत भी देखा जा सकता है। दार्जिलिंगसे कंचनजंघा, नैनीतालसे नंदादेवी, और गुलमर्गसे नंगा पर्वतके दर्शन लगभग एक ही प्रकारकी लगन उत्पन्न करते हैं।

मानवसौंदर्य

काश्मर्य प्राकृतिक सौंदर्य की बातें करते करते मैं कश्मीरके मानव सौन्दर्यको तो नितान्त भूल ही गया।

काश्मर्य जलवायुने इन मानवोंकी आकृति, मुखमंडलका भराव, नोकदार नाक, गौर वर्णको लाल लाल उषाकी सी चमक अर्पण की है। कश्मीरकी ललनाओंका नीचा और श्यामवर्णीय चोला, काली आँखें, धारदार नाक, इनके लाल होठ और विचित्र ग्रन्थनवाले काले २ बाल तथा इनकी मनोहर वेषभूषा आदि सब कुछ इतने विचित्र जादूभरेसे हैं कि एक बार तो चित्रकार भी अपनी लेखनी थाम कर स्तब्ध हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं।

एकदम शैत्यमें से उतर कर गर्मी में १०००० फिट की उंचाईसे एक हज़ार फुटकी उंचाई पर आनेपर भी कश्मीरका विसरण नहीं हो रहा है।

पुष्फ भिक्खु.

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

कश्मीरसे-कराची

पूर्वार्ध

हिमालयमें—

हिम—Snow बर्फ़ को कहते हैं, उसके घरको हिमालय कहते हैं। जी० १, नाया० १, द० ४, भ० ९-३३-१८-५ द० ८-६-प० १, उ० ३६

हिमपडल—बरफ की मलाई, या उसके प्रत। कप्प० ३-३९, Ia layerot, Snow।

हिमसीयल—[हिमके समान शीतल-ठंडा] cold like snow। ठा० ४-४, प० २,।

हिमवंत—[भरत क्षेत्रकी सीमा बांधनेवाला पर्वत] The mountain which limits Bharta।

श्रीऋषभदेव भगवान अरिहंत कौशलिककी निर्वाण-भूमि होनेसे जैनोंकी प्राणप्रिय भूमि है। × × ×

आचार्य श्रीभद्रबाहुजी ने हिमालयमें रहकर यौगिक क्रियाएँ संपन्न कीं। × × ×

महाराजा चन्द्रगुप्तने एक छत्र-साम्राज्य स्थापन करनेका चिन्तन हिमालयमें बैठकर किया। × × ×

हिमालय ज्ञान-ध्यान-तप और समाधिका केन्द्र है, यौगिक-साधनाओंके अर्थ भारतीयोंका पुण्यधाम है। आर्यावर्तमें हजारों परिवर्तन हुए परन्तु यह परिवर्तन से रहित, अचल है। सदा से उसी प्रकार खड़ा है। × × ×

समर्थ श्रीरामदासने भी अद्भुत-योगैश्वर्य हिमालय में ही प्राप्त किया था। × × ×

श्री विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थनें तात्विक विचारोंकी गंभीरता हिमालयकी गुहामें बैठकर ही समझी थी। × × ×

बीसवीं शताब्दीके महाकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी शान्ति और समाधिकी खोजके लिए हिमालयकी पगडंडियां ही नापी थीं।×××

महाकवि कालिदास हिमाल्यकी यात्रा न करते तो मेघदूतमें भूगोलका विवरण किस प्रकार देते। × × ×

गंगा-सिंधु-यमुना-ब्रह्मपुत्रा जैसी महानदियों का पिता हिमवान ही है। विशेषकर अवधूतोंकी तो विहार-भूमि है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः।

[कुमारसम्भव]

हिमालय अद्वितीय एवं दिव्य देवभूमि है। पृथिवी का स्वर्ग यही है। एकान्तवासिनी-तपोभूमि होनेके कारण योगी-मुनि-अवधूत संन्यासी अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती एवं सत्संयमी जनोंके लिए ईप्सित सम्पादन करानेमें इसीका हाथ (कारण) है। मानवकी अति मनोहर शुक्लभावनाकी उपमा हिमालयसे भी दी जाती है। × × ×

हिमालय शान्ति और ध्यानका मंगल धाम है। जहाँके झरने अतिरसिक संगीत गा गा कर मंथर गतिसे बहते हैं। वहां छोटे छोटे कस्तूरिए मृग हरे घास चरते हैं। सुन्दर युवतिओंके समान उन्मत्त वेगपूर्णा नदिएँ यौवन की मस्तीमें आकर नाचती कूदती टक्करें मारती शीघ्र गतिसे दौड़ती बिजलीके समान चमकती झाँझनके शब्दोंमें झमझमाट करती हुई बहती हैं। जहाँ धवल हिमाच्छादित शिखर शिखरोंके समान चारों ओर फैले पड़े हैं। जहाँ अनेक प्रकारकी वनस्पतिएँ और वल्लरीयुक्त वृक्षोंके जंगल घाट विस्तारित हैं। जहाँ पर सुचरित्रवान युवक द्वारपालके समान अप्रमत्त एवं स्थिरतापूर्वक खड़े खड़े मानो जगती मात्रको निमंत्रित करनेवाले देवदारु-चीड़के हजारों वृक्ष संघटन भावसे हाथमें हाथ मिलाकर शोभित हैं। जहां पवित्र देहवाली गऊओंके वृंद हरे घासके अंकुर चरते हुए पूंछें हिला हिला कर मक्खिएँ उड़ा रही हैं। जहां रंग बेरंगे नाना जाति सम्पन्न सुंदर पक्षी अपने मधुर कंठ-रवसे पथिकों को आनन्दित करते हैं। शीतल सुगंधसे सुवासित सुमन चारो ओर गंधमय वातावरण उत्पन्न कर रहे हैं। जहां तप और योग बल से देह यष्टिको सुखा कर अवधूत लोग गिरिगव्हरमें ध्यानस्थ बैठे हैं। जहां सांसारिक विचार, प्रपंच, आसुरीवृत्ति, पुद्गल प्रवृत्ति एवं मनकी दुष्ट तरंगें स्वप्नमें भी अदृष्ट रहती हैं। जहां पर्वतों पर फैले हुए रंगीन गलीचेके समान सुशोभित पाटल और कर्बुर बहुरंगी फूलोंसे आच्छादित भूमि आँखों और हृदयको तरावट पहुँचाती है। ऐसी देवसेव्य तथा भोग्य भूमि किस अज्ञ-भव्यके हृदयको आकर्षित न करेगी? जहां पद पद पर रहनेवाले प्राकृतिक दृश्य, समुत्पन्न तत्वज्ञानके अनन्य अनुभवोंको पुष्टता प्रदान

करते हैं। वहां किस विद्वानकी आध्यात्मिक उन्नति न हो? क्या वहां कविगण पहुँचकर अपनी कल्पना की झोली भरे विना ही लौट सकते हैं? × × ×

हिमालयका साक्षात्कार करनेकी सबको प्रबल इच्छा होती है। इसके देखनेके लिए स्वप्न तक आते हैं। कोई घड़ी भाग्यवती हो, और शुभ प्रकृतिका प्रबलतम उदय हो, तब ही उस क्षेत्रको निवृत्त्यर्थ स्पर्शित किया जासकता है। × × ×

हिमालयकी यात्रा ज्ञातपुत्र-महावीर जयन्तीके बाद वैशाखके प्रारंभ में आरंभ होती है और आश्विन मास तक रहती है। इन दिनोंमें लाखों यात्री इस प्रदेशमें प्रवास करने आते हैं। अधिकांश भाग गैरिक साधु सन्तोंका होता है। प्रतिदिन दश-पन्द्रह मील कठिनता से चला जा सकता है। सवेरे सातसे दश बजे तक, और सन्ध्यामें चार पाँच मील तक चलना सुखद है। इससे अधिक चलना दुःखद है। मार्गमें कहीं कहीं मीलों तक ऊँचाई आती है। चढ़ते समय दम फूलता है। प्यास अधिक लगती है। मुँह सूख जाता है। थूक मोटा-मटमैला हो जाता है। कलेजा काँपने लगता है। दम खुश्क हो जाता है। खूनके दबावके रोगीको ऐसी चढ़ाई हितकर नहीं। साथ ही उतराई भी उतनी ही उतरनी पड़ती है। इसमें पिंडुलियोंकी नसें अकड़ जाती हैं। दुखने भी लग जाती हैं। × × ×

हिमालयमें कहीं कहीं मीलोंतक टूटा फूटा मार्ग भी आता है। क्रूर और खड़ी पगडंडिएँ भान भुला देती हैं। ये पतली तो इतनी

हैं कि गिर कर चूर चूर होनेका भय उत्पन्न हो जाता है । साधारण गतिवाला या अति स्थूल व्यक्तिका ऐसे मार्गसे पार होना कठिन है । × × ×

हिमालयमें अधिकसे अधिक प्रतिघंटा दो या तीन मील चला जा सकता है । कहीं कहीं तो कई २ पगडंडिएँ फूट पड़ी हैं, जिन्हें देखकर एकलविहारी भूलभुलैयामें पड़ जाता है । यदि मार्गदर्शक साथ हो तो यह आपत्ति नहीं आ पाए । × × ×

हिमालयवासी चावल अधिक खाते हैं । कहावत भी है कि, 'पहाड़िए यार किसके, भत्त खाधा ते खिसके' । कश्मीरी चावलमें गेहूं जितना ही शक्तितत्व समझा जाता है । × × ×

उतार चढ़ावके प्रसंगमें किया हुआ भोजन २॥ तीन घंटे तक पच जाता है । उदर रोग तो टिक ही नहीं पाता, पहाड़ियोंके पेट इसीकारण नहीं फूलते । फिर भी खाने पीनेमें संयम रखना चाहिए, जिससे पार्वत्य जलवायु लाग न करे । × × ×

हिमालयमें पद पद पर पानीके स्रोत-झरने, प्रपात [आबशार] झरते और बहते हैं । डाक्टरोंके कथनानुसार पानी ठंडा और पाचक होता है । वर्षाके समय पानी गदला हो जाता है, अन्यथा निर्मल जल बहता रहता है । × × ×

हिमालयके किसी किसी प्रपातमें शिलोदक भी बनते हैं । यह प्रयोग प्रकृतिकी शाला में होता है । लकड़ी वर्षामें बहकर या टूट कर किसी प्रकार प्रपातके अन्तर्गत आ पड़ती है । पानीमें पिट पिट कर बरसोंके बाद वह आधी लकड़ी और आधा पत्थर हो जाता है,

जिस प्रकार शिव आधे नारी और आधे नर सुने हैं। बस इसे ही शिलोदक कहते हैं। यह शिलोदक अतीसार और श्वास आदिके रोगोंपर अपना प्रभाव अतिशीघ्र डालता है। रावलपिंडी वाले डॉ० अमरनाथ होमियोपैथ एक प्रपातमेंसे शिलोदक लाए भी थे, परन्तु वह परिपक्व नहीं था। सबसे उत्तम एवं पौष्टिक रसायन शिलोदक भी है। वस्तु दुर्लभ्य है, चंदनका शिलोदक कठिनाईसे बनता है। तथापि धवखदिर और बबूलके शिलोदक कथित रोगोंके लिए कीमिया है। शिलोदक एलपत्थर-गिलगत असकद्दू और लद्दाखके प्रदेशोंमें अधिक बनते हैं। जम्मूसे श्रीनगर तथा श्रीनगरसे रावलपिंडीवाले पथमें कहीं कहीं बनते हैं। शिलोदकका घर तो बद्री विशालका पहाड है। × × ×

हिमालयमें चढते समय चारों प्रकारके आहारका त्याग करके ईर्यासमितिपूर्वक चलना चाहिए। संयमीके पेटमें दर्द नहीं होता। अपचनका उपद्रव तो उससे कोसों दूर भागता है। उसे दवाइयाँ पल्ले बाँधनेकी आवश्यकता नहीं। गर्म प्रदेशके निवासी जब हिमालयमें एकदम प्रवेश करते हैं, तब उन्हें कई प्रकारकी व्याधियाँ घेर लेती हैं परन्तु इन्द्रियविजेता उपद्रव और संकटोंको सहिष्णुताके बलसे चीर कर सुख पूर्वक विचरता है। × × ×

हिमालयमें चढ़ाई चढ़ते समय प्रस्वेद-बिंदुओंका मेघसा बरसने लगता है। उस समय मुँह बन्द रखना तथा पानी न पीना चाहिए। × × ×

हिमालयकी शीतल वायुके कारण रोगोंका विशेष उपद्रव नहीं होता। शीतल और खुली हवा आरोग्यता विधायक है। श्रम से

भूख लगती है और यथा शक्य अल्पाहार करनेसे स्वास्थ्य ठीक रहता है। × × ×

हिमालयकी ग्रामीण प्रजामें औषध ज्ञान नहींके बराबर है। तथा वहां वैद्य भी कम हैं। बल्कि वे लोग यात्रिओंसे दवा माँगते हैं और आप रहते हैं संजीवनी बूँटी के घर में। उनमें अन्धश्रद्धा अधिक है। देवी देवताओं के प्रकोपका भय उन्हें खाए जाता है। × × ×

हिमालय-प्रदेशीय लोगोंको प्रामाणिकता-प्रेम और सहानुभूतिका प्रदर्शन करानेसे वे खूब हिल मिल जाते हैं। उनमें स्वयं उत्तम प्रामाणिकता है। किसीकी वस्तु या रुपया पैसा उठाना इन्हें नहीं आता। यात्रियोंका कुछ गिर जाय तो ये उसे छूते तक नहीं। अतः अकिंचनता का सर्वाधिक्य इनमें है। अब कुछ कुछ पंजाबी, यू. पी. प्रान्तीय यात्रियोंके सहवाससे इनमें भी बहुतसे दोषोंका समुदाय उतरने लगा है। ये अधिक लालची एवं मुनाफ़ाखोर होते जा रहे हैं। × × ×

हिमालयके पांच भाग कल्पित हैं। कश्मीर-होशियारपुर, गढ-वाल, [उत्तरा खंड] कुमायूं, [कूर्माचल] और नेपाल। इनमें कश्मीर देशी राज्य है। इस भूमिको "भूतलस्वर्ग" कहा जाता है। मुझे इसमें विचरनेकी इच्छा हुई। × × ×

हिमालयमें भरतपिता [श्रीऋषभदेव भगवान्—प्रथम तीर्थंकर] ने सेंकडों वर्ष महान् तप किया है। अन्तमें श्रीहिमाचलसे ही मुक्त हुए हैं। अब वहां तपोनिधि-आत्मा नहींके बराबर हैं। निरपेक्ष और उंची कक्षाके अप्रतिम योगी सन्तोंके दर्शन अब कहां? × × ×

हिमालयका सम्पूर्ण प्रदेश रम्य और सुंदर है। बसंतके समय कालिदास महाकविके ऋतुसंहारके वर्णन यहां ही चरितार्थ होते हैं। जहां देखो वहीं नदी नालोंके किनारेसे लगाकर गिरिश्रृंग तक हरेहरे वृक्ष, वल्लरी, फूल और पल्लवोंसे यह वन भरा पूरा प्रतीत होता है। चारों ओर निर्मल स्रोत पर्वतमालाओंके गर्भसे निकलकर मधुर संगीतकी ध्वनिसे दिशाओंको ध्वनित करते रहते हैं, जिससे सब दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठती हैं। प्राचीन मुनिओं द्वारा सुसेवित यह तपोवन आज भी हृदयमें शान्ति और सन्तोषकी लहर उत्पन्न करता है। × × ×

हिमालयमें लंगड़ा और कुंडलका शाक लाभदायक समझा जाता है। न जाने बिच्छु जड़ी और पालककी मित्रता कितने जन्मकी पुरानी है। ये दोनों पास पास ही उगते हैं। एक का स्पर्श बिच्छूके डंकके समान जलन उत्पन्न करता है तब पालकका स्पर्श सुखद और आराम पहुँचाने वाला है। × × ×

प्रतिवर्ष चारमास हिमालयमें हिम अतिशय गिरता है। तब वहां के लोग घरोंमें बंद पड़े रहते हैं। अन्न-घास-आदि आवश्यक सामग्रीका संग्रह बहुत पहलेसे कर रखते हैं। उसी पर पशुओं तथा उनका अपना जीवन निर्भर है। उनके घर छप्परके समान दोनों ओरसे ढाळ होते हैं, टीन या स्लेट-पत्थरके घर भी बनने लगे हैं। उन घरोंपरसे बर्फ धीरे धीरे ढलकर नीचे आ गिरती है। यहांके लोगोंमें बर्फकी ठंडक सहनेकी शक्ति खूब होती है। सहिष्णुताके बलबूते पर चार मास घरमें बंद रहकर काट लेते हैं। × × ×

हिमालयस्थ लोगोंमें नाचनेका रिवाज अधिक है। परिमंडल=

चूडीके आकारमें घेरा बनाकर स्त्री-पुरुष बड़े-बूढ़े और बच्चे मिलकर नाचते हैं। संकोच इनसे कोसों दूर भागता है। उस समय नफ़ीरी और ढोल भी बजाते हैं। कुल्लुकी ओर तो हाथमें बोतल लेकर नृत्य करते हैं। रामपुर-बशहरकी तरफ तो पीते हैं। ये लोग जब चषक से मदिराको पेटमें उंडेलकर मदमें चूर हो जाते हैं, तब दरिद्र-नारायणके संकटको कुछ पल के लिए भूल जाते हैं। उनकी भाषामें इस नाचको **नाटी** कहते हैं। × × ×

उस देशमें उत्सवके प्रसंगोंमें स्त्री-पुरुषोंका सह-नृत्य होता है। जयपुरीय गूजर मीणे तो नाचनेमें कमाल कर देते हैं। शिव-ताण्डव का कुछ भग्नावशेष है तो यहीं पाया जाता है। ये अपठित होनेपर भी नृत्यकलामें तो बहुत ही बढ़े चढ़े हैं। हिमालयनिवासियोंकी भाषा बडी आकर्षक होती है। यह भी भारत-भारती है। मानो प्राकृतका तो ठीक अपभ्रंश ही है। इनकी झिंझोटी तो बड़ी सुहावनी लगती है। बंसरी पर गाते समय इनकी भावभंगी कुछ की कुछ हो जाती है। × × ×

हिमालयमें लोगोंकी कोई विशेष लिपि तो नहीं है। पाली-शारदा और नागरीके अक्षरोंको बिगाड़ कर कामचलाऊ लिपि बनाई है। इसका नाम भी बड़ा विलक्षण रक्खा है, **'टाकरी'**। इनकी धारणा है कि यह टक्कर मारते रहनेसे ही पढ़ी जाती है। अतः 'टाकरी' नाम सार्थक है। × × ×

हिमालयस्थ लोग प्रायः अनपढ-अज्ञानी-वहमी एवं अशिक्षित ही होते हैं। अधिकतर सबके सब ग्रामोंमें स्कूलोंका अभावसा ही है। समाचारपत्र और छुट मुट पुस्तकोंके तो कभी दर्शन भी नहीं हो

पाते । महात्मा-गांधीके संबंधमें यात्री लोगोंसे कुछ सुन सुनाकर उनके नामपर बडी आस्था रखते हैं । ऊटपटांग अतिशयोक्तियाँ भी ज़ोड़ लेते हैं । और झूंठी झूंठी सूचनाओंका आन्दोलन करते हैं । × × ×

हिमालयके कई विभागोंमें स्त्रीको एक से अधिक कई कई पति पानेका सौभाग्य भी प्राप्त है । यह पाण्डवीय प्रथाका साकार अनुकरण ज्ञात होता है । बडा भाई विवाहित होनेपर उसकी स्त्री शेष सब छोटे भाइयोंकी पत्नी भी समझी जाती है । इनमें बहु विवाह-प्रथा भी है । × × ×

हिमालयस्थ-पहाडीलोग ऋण चुकाने के लिए अपनी स्त्री को भी बेच देते हैं । एक स्त्री अपने जीवनमें २०-२५ से अधिक बार तक भी बिक चुकी है । यहां इनकी करुण-कथा सुननेवाला कोई नहीं है ।

हिमालयमें उडकर चिपटनेवाला छूत अछूत का कोढ़ बिल्कुल नहीं है । सब जातिके लोग या ब्राह्मण आदि शूद्रके पास बैठकर प्रेमसे भोजन कर सकते हैं । × × ×

हिमालयके लोगोंमें दीनता-दरिद्रता बहुत है, बहिर्मुख संसर्गसे रहित होनेके कारण विलासमात्रकी वस्तुएँ वहां नहीं आ पातीं । लोग अपने छोटे साधनों पर निभते हैं । वहां के राजाओंको ये बिचारे अधिक से अधिक कर देते हैं अमुक प्रमाणमें अनाज, भेंस, गाय, बकरी, भेड आदि पर रुपया-घी-ऊन आदि अनेक प्रकारसे शुल्क चुकाने पडते हैं । × × ×

राज्यकी मुख्य आय जंगलसे होती हैं । प्रतिवर्ष जंगलसे लाखों रुपयेकी आमदनी है । बड़े बड़े देवदार-चीड-केलों-सागोन आदि

वृक्षोंको काटकर गिराया जाता है, अथवा जडको जलाकर गिराते हैं। फिर उसकी छाल उतार कर सुखाते हैं। उनके कई टुकड़े बनाकर स्लीपटके रूपमें लाखोंकी संख्यामें नदियोंमें डाले जाते हैं। वे बहकर काठमंडियोंतक पहुँचते हैं। फिर वहां से रेलके द्वारा मालको सब जगह पहुँचाया जाता है। चीड़की लकड़ीसे बिरौजा, टरपीटन, राल आदि कई रासायनिक पदार्थ बनते हैं। हिमालयमें इन वृक्षोंके जंगल के जंगल होते हैं। × × ×

हिमालयमें माल पहुँचाने या निकासीके साधन बडे कठिन हैं। जहां मोटर नहीं पहुँचता वहां खच्चरों द्वारा नीचेसे नमक, दाल, खांड, कपडा आदि जिनस मंगाई जाती है। और जहां पगडंडीका मार्ग होता है वहां बकरों और मेंढों द्वारा वस्तुएँ पहुँचानेकी व्यवस्था है। बकरेकी पीठ पर चमडेकी थैलियों में २० सेर तक बोझ लादते हैं। प्रतिमन ७) से ९) तक किराया होता है। लोगोंमें कंगलापन अधिक एवं मार्ग की कठिनाइयोंके कारण विलायतकी आमोद प्रमोद और विलासी वस्तुओंका यहां नाम भी नहीं है। हजारों वर्षोंसे जिस रीति भाँतिसे रहते आए हैं, यहांके लोग अब भी उसी प्रकारसे रह रहे हैं। इन्होंने तनिकसा परिवर्तन भी नहीं किया है। पूर्वकालमें जैसी संस्कृति थी अबभी वही हाल है। विद्या-कला-साहित्य अथवा शास्त्रीय संशोधन-सुधार आदि विषयोंका यहांके लोगोंपर बहुत ही कम रंग आ पाया है। इन पहाड़ी प्रदेशोंमें सेवासमाज और अहिंसाप्रचारक, व्यसननिषेधक जैसी संस्थाओंकी बड़ी आवश्यकता है। कारण लोगोंको शिक्षा देना, औषध देना, उनकी कुटेव छुडाना, उनका धार्मिक और सामाजिक जीवन बनाना, तथा उनमें राष्ट्रीय भावको

उत्पन्न करना, एवं उनको ऊँची कक्षापर लानेकी विशेष आवश्यकता है। × × ×

हिमालयके लोग प्रायः गंदे रहते हैं। कठिनाईसे वर्षभरमें दो चार बार नहाते हैं। शीतकी अधिकताके कारण स्नान उन्हें अहित पडता है। जहां बैठते सोते हैं, ये वहीं थूँक-सिनक देते हैं। स्वच्छतासे रहने के नियम ये जानते ही नहीं हैं। धूपमें बैठकर कपडोंसे जूएँ निकालकर मारडालना तो इनकी कृष्ण-लीला है। × × ×

हिमालयके पशु, आकारमें छोटे और दुर्बल होते हैं। आध-सेर सेरसे अधिक गऊएँ दूध नहीं देतीं। बैल भी नाटे और निर्बल पाए जाते हैं। यहां भेंस भी हैं, परंतु अधिक दुधारू नहीं। ये पशु, वृक्षके पत्तोंपर जीवित हैं। हिमालयोत्पन्न मनुष्य ठेंगने और माँजरी आखोंके होते हैं। काश्मर्य लोग मेहनतू और शरीरके दृढ होते हैं। गिलगत एवं अस्कद्दूके पहाड़ी बलिष्ठ तथा श्रमजीवी अधिक होते हैं। आहार चावल, और शाक करमका होता है। काश्मर्य जन अधिकतर 'फ़िरन' या 'चोला' पहनते हैं। यह एड़ी तक नीचा होता है। इसे 'शिव चोला' या 'पार्वती चोला' कहते हैं। काले रंगका 'यावन-चोला' मुसल्मान पहनते हैं। इस चोलेवालेको मछर नहीं काटता। कश्मीरी टोपी अपने ढंगकी निराली ही होती है। ये लोग हाथकी बुनी या गुँथी हुई जूतीको पहना करते हैं। ये इसे पूलँ कहते हैं। चार या आठ पैसे मूल्य होता है। दश-बारह दिनकी ही अवधी होती है। बर्फ़के समय यह इन्हें अनुकूल पड़ती है। यह कहावत कश्मीरमें साधारण बात है कि "पजामेमें नाडा नहीं, छतमें परमाला नहीं।" स्त्रियोंमें घूंघट या पर्देका रिवाज नहीं है। पुरुष वर्ग अव-

काश के समय तकली से ऊन काता करते हैं और फिर अपने ही हाथसे उनके कपड़े भी बुन लेते हैं। × × ×

हिमालयमें प्रकृतिका अतुल सौंदर्य नेत्रों और हृदयको अति आल्हाद उत्पन्न करता है। चारों ओर आकाशको छूनेवाले हिमालयके शिखर, चीड़, देवदारु आदि वृक्षोंकी हरियालीसे मानो सौन्दर्य सर्वस्व लिये हुए अपनी अजब छटा दिखा रहे हैं। कुछ नीचेके भागमें पहाड़ी खेत स्वर्गके सोपानके समान शोभित हैं। उनमें हरे भरे गेहूं और जौ की खेती नीलमकी खानके समान चित्तको आकर्षित करते हैं। × × ×

हिमालयके उपरि भागमें निवास करनेवाले किसानोंकी झोंपड़ियों से निकलनेवाला धूआँ मेरुदंड अथवा स्वर्गसे बहनेवाली गंगाकी मोटी धारके समान भला प्रतीत होता है। निशाकी नीरव शान्ति चारों ओर फैलकर संयमीके मनमें स्थायी-निर्वेद उत्पन्न करती है। दो पहाडोंके अन्तस्तलको मानो चीरकर निकल भागनेवाली वितस्ता-जेहलम और चुनाब अपने तरल तरंगोंसे शिलाओंसे टकराती, फेन उगलती, कहीं पत्थरोंके जोशमें उछलती, कहीं विवेक भ्रष्टके सदृश बहुत ऊँचेसे नीचे कूदती, नाचती, स्लीपटोंसे खेलती, झरझरके स्थायी-अन्तरेपर भैरवी गाती जा रही हैं। चारों ओरके चीड़ादि के परम सुन्दर वन उन गीतोंमें अपनापन भूलेसे खड़े है। नेत्र अनिमेष भावसे इस सुंदर प्राकृतिक दृश्यको एक टक देख-कर अद्वैत-भावमें बह जाते हैं। प्रकृतिके माधुर्यका पान करनेवाला हृदय अति-उल्लसित होकर श्वेत मोरकी भाँति नाचने लगता है। ऐसे सुरम्य-

स्थानको छोडकर लोग गंदी गलियोंवाले नगरमें न जाने क्यों बसे हैं। यह कितने अचरज भरी पहेली है। इन दृश्योंमें तो शान्ति-प्रसन्नता और नैसर्गिक आनन्द भरा रहता है। यहां आकर मनुष्यके मनकी राजस-तामस वृत्तिएँ दबकर सात्विक भावनाएँ लहरायमान हो उठती हैं। हृदयमें पवित्र एवं उच्च विचारोंकी भर्ती होने लगती है। प्रार्थनाओंका उट्टंकित उत्तर यहीं मिलता है। हृदय प्रेममय बनकर गद्गदायमान होने लगता है। पहर और घंटे मिनट तथा सेकेंडके समान छोटे होकर व्यतीत होते हैं। वहांका वायु मंद और अनुकूल होता है। चारों ओर की लताओं के सुगंधित पुष्पोंकी सुगंध, मस्तिष्क और नासिका यन्त्रको तर कर देता है। कुछ दूरके पहाड़ी झरने अपने मंथर आलाप और सुसंगीतके प्रवाहमें एकरस बहे जा रहे हैं। × × ×

"रमणीय झरनेके पास बैठकर देखना सबको अनुकूल और सुहावना प्रतीत होता है, वह निश्छल एवं सुमधुर छल छल करता हुआ मीठा प्रवाह अपने निजके लयमें मगन होकर बह रहा है। वसन्तके समय वह कितना मधुर संगीत गाता है? बहुतसे लोग हरे घासके बिस्तर पर अलसाए से पड़े होते हैं। वे उन गीतोंमेंसे अनेक वस्तुओं का रहस्य समझनेके भेद और उसकी तालिका प्राप्त करनेका अभ्यास करते हैं। वे झरने, पर्वतोंके शिखरसे छल छल निनाद से स्रव-कर नीचेकी ओर गिर कर बह जाते हैं। वे अव्यवहित गतिसे क्यों चलते हैं? लोगोंके मनमें यही कौतूहल उद्भूत होता है, कि यदि एक छोटीसी नौका होती तो हम उसके पीछे पीछे आनेके लिए झम्पापात कर डालते। और झरनेके पानीके साथ ही बहते बहते बहुत नीचे आकर बलवती नदीके वेगमें मिलजाते।" × × ×

हिमालयके पर्वत दूरसे तो धवल हिमाच्छादित बड़े सुहावने प्रतीत होते हैं परन्तु पासमें होकर विचरते समय धूपकी तेजोमय ज्योतिसे आँखोंकी पलकोंके द्वारोंको बंद कर देते हैं। अर्थात् आँखें मिचने लगती हैं। पार्वत्य लोगोंमें यह प्रसिद्ध है कि धूपके समय हिम पर दृष्टि डालनेसे आँखोंकी ज्योति मंद हो जाती है। × × ×

हिमालयकी अति हरियाली चारों ओर की वनराजीमें श्वेत-रम्य शिखर गंगामें नहाकर अत्यंत स्वच्छतम लगते हैं। इस बर्फके ढेरपर प्रातःकालीन सूर्यकिरणें हिमालयका बहुरंगी व्यूह सा रच डालती हैं। परन्तु उसपर अधिक समय तक आँखें नहीं टिकती। कारण रंग-बिरंगी चमक से आँखें घबरा उठती हैं। × × ×

हिमालयकी चढ़ाई गुणस्थान-क्रमारोह के समान बिकट है। यही कारण है कि उसपर लोग कम पहुँचते हैं। परन्तु वस्तुका महत्व सदैव बिकटतामें ही बढ़ता है। यहां का प्रवास जोखमसे भरपूर है। कारण अधिक वर्षाके कारण कहीं कहीं गिरिशृंग टूट जाते हैं, जिससे मार्गमें चलने वाले यात्रियोंको बहुधा रुकना पडजाता है। तथा कई दिनके पश्चात् मार्ग आने जानेके योग्य बनता है। × × ×

हिमालय भरमें बिच्छुवनस्पतिसें बचते रहना चाहिए। इसके स्पर्शसे बिच्छुके डंकके समान ही पीडा होती है। दिनभर झन-झनाट और चभक रहता है। इस प्राण-शोषक पथसे पाषाण जैसे हृदयवाले भी घबरा उठते हैं। × × ×

हिमालयजा वितस्ता-जेहलमका सौन्दर्य कुछ विलक्षण सा है। सीधे आकाशको पानेकी बाज़ी जीत लेनेके लिए मानो धवल-हिमाच्छा-

दित तंबुओंकी सुशोभित पंक्तिओंमें होकर अड़ेसे खड़े हैं। इस प्रदेश का अरण्य अतिसुंदर और मनस्ताप को मिटानेवाला है। प्रातः समय वर्षा-बादल या अवश्याय-धुंध न पड़ती हो तो नवीन सूर्यकी किरणें नाना वर्णकी झलक पैदा करती हैं। चारों ओर मंद मंद समीर बहता है। जहां देखो वहीं नव और हरे तृणांकुरों से भरीहुई भूमि गलीचेकी भांति मंडित है। वायु नीरोग, शीतल एवं सुखद होता है। चारों ओर एकान्त शान्ति का दौहृद राजयोगिओंका आवाहन करता रहता है। × × ×

पूर्व-(उदयाचल) हिमालयरूपी घूंघटके पटसे बाहर होकर सूर्य उषाके प्रकाशको उद्दीप्त कर देता है। कालिदास-भवभूति आदि गीर्वाण-वाणीके कविकोविदोंके महाकाव्योंमें पढ़ा हुआ भव्य-वर्णन यहां आकर मूर्तिमान् बन जाता है। वर्डज़्वर्थ-टेनीसन-शेली आदि आँग्ल कविओंकी मनोहर सृष्टिसौंदर्यकी कल्पनाएँ भी ऐसे स्थलोंका अवलोकन करनेपर ही प्रतिमूर्तिके रूपमें उठ खड़ी होती हैं। अति-उत्तम सृष्टिसौंदर्यको देख देख कर मनरूप मोर नाच उठता है। बाणकी कादम्बरीका उष्णकालीन वर्णन यहां ही प्रत्यक्ष चरितार्थ होता है। × × ×

समस्त पृथ्वीमें मुझे ऐसा देश दिखलाना पड़े कि जिसे प्रकृति-माताने धन-ऐश्वर्य-शक्ति और सौन्दर्यसे पुरस्कृत किया है, ऐसे उत्तम जातिके देशको पृथ्वीका स्वर्ग कहा जाय तो भी कुछ अति-शयोक्ति न होगी। वह सुखद देश भारतवर्ष ही तो है। कोई यह प्रश्न करे कि क्या आकाश मण्डलके अंतर्गत मनुष्यके अन्तःकरणकी

पूर्णता हो सकती है? अथवा जीवन रहस्यके कठिन सिद्धान्तोंकी मीमांसा भी हो सकती है? तथा जिसे प्लेटो और केण्ट जैसे दार्शनिक पुरुषोंके ग्रंथके अभ्यासमें पारंगत होकर विशेष ज्ञानको प्राप्त किया जा सकता है? तब यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वह देश भारतवर्षही है। यदि मैं अपनी चित्तवृत्तिसे पूछूं तो यही उत्तर मिलेगा कि हम यूरोप निवासी कि जिनकी विचारशक्तिको ग्रीक-रोमन-सैमतिक और यहूदी आदि अनेक जातिओंकी विचारशक्ति द्वारा पुष्टि मिली है, उन्होंने अपना अन्तिम जीवन पूर्ण उदार-विश्वव्यापी अथवा मानुष्यत्व पूर्ण बनानेके लिए किस देशके साहित्य द्वारा शिक्षा प्राप्त कर सका है। उत्तरमें मुझे स्पष्ट कहना होगा कि वह देश भारतवर्ष ही है। × × ×

प्रो. मैक्षमूलर.

हिमालयमें कुछ ऐसे स्थलभी हैं कि जहां मेघराज जलके रूपमें कभी वृष्टिका रूपक उत्पन्न नहीं करते। बल्कि हिमके रूपमें ही यथेच्छ पडता रहता है। शीतकालमें लोगोंकी आवश्यकताएँ रूईसे पूरी होती हैं तब हिमालयको भी प्रकृतिके उदरसे हिमरूप रूईकी फुहारें मिलनेका सौभाग्य प्राप्त है। × × ×

हिमालयके प्रवेश द्वार स्वरूप वीर-पंजाल (पीर पांजाल) पर अधिक उंचाईके कारण (९२००) वनस्पतिका अभावसा है। यह शरद और रूक्ष स्थल प्रतिवर्ष हजारों देहधारियोंकी बलि लेता है। इसके शीत स्वभावसे अपरिचित दीन प्राणी काल कराल की भेंट हो जाते हैं। × × ×

पीर-पंजालकी भींतपर पहुँचतेही रूपहरी शुभ्र ज्योति जगमगाती

हुई दिखने लगती है। आनंद ! आनंद ! यह देदीप्यमान भासमान होनेवाला दिव्य-अद्भुत क्षीरसागर तो नहीं है? × × ×

इस रूपहरे पर्वतके उसपार आते ही **"फूलोंके प्राकृतिक क्षेत्र"** इतने अधिक हैं कि सब मार्ग सुवर्णमय विकीर्ण सोनेके समान रम्य प्रतीत होता है। पीले, नीले, जामुनी, लाल आदि रंगबिरंगे फूल पुष्कल रूपमें हैं। यहींसे कश्मीरकी सीमाका आरंभ होता है। तब जांगल-फलोंका भी पार नहीं पा सकते? नाना प्रकारके कमल और वन्य, गुलाब, गुग्गुल, लोबान, ममीरी, ममीरा, मीठा तेलिया, रसोंत, सालम-मिसरी, जटामांसी आदि अनेक अपूर्व जडियोंका आगार है। केसर तो पाम्पुर और किस्तवाड़-भद्रवाह जैसे स्थानके अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं। ओस कणसे भरपूर ब्रह्मकमल इसे नंदनवन चरितार्थ करता है। × × ×

अभिमानी हिमालय आजतक किसीके सन्मुख झुका नहीं है। इसने अपना रजःकण मात्रभी इधर उधर नहीं होने दिया, इस दृष्टिसे इसमें कार्पण्यता भी है। यहां के प्रातःकालीन ओसबिन्दु को कभी न भुलाना चाहिए। यह विज्ञ-सुजनको मार्गमें आकर्षित करता है। कमल-दल पर चढ़ा हुआ चंचलतासे झूलनेवाला जल बिन्दु मनुष्यके मन और जीवनका कितना उत्तम चित्र है। बिल्कुल छोटासा है, क्षण-भंगुर है, फिर भी स्फटिक शकलके समान चमकता है। × × ×

कुसग्गे जह ओसबिंदुए,
थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं,
समयं गोयम मा पमायए २

अ. १०, उ. सू.,

"कुशके अगले भाग पर चढा हुआ रातकी ओसका बिंदु सबेर होनेपर कुछ देरमें अपना अस्तित्व खो बैठता है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी नश्वर तथा अस्थिर है। इसलिए हे मनुष्य! अप्रमत्त हो कर विचर। इस अवश्यायकी बूंदसे भगवान् ज्ञातनन्दनने कितनी ऊंची शिक्षा प्रदान की है।" × × ×

हिमालयमें ऊँचा चढ़ने पर मनुष्य बादलोंके समीप आ जाता है। तब वर्षाकालमें एक नवीन तथा सुंदर झाँकी बन जाती है। फूलोंपर पड़ी हुई बुंदलियोंमें मुक्ताका आभास होने लगता है। खेतमें लह-रानेवाले हरे गेहूंके पौधे आँखोंमें हरियाली भर देते हैं। पक्षी अपने घोंसलोंमें बैठकर अव्यक्त-सुंदर लय आरंभ करते हैं। चारों ओर अविरल एकान्तताकी देवी अपनी पवित्र शान्तिका साम्राज्य स्थापन करती है। सूर्यदेव बादलोंमें छुपकर अपने उत्तम श्याम-वर्णमें तेजका अंबार पूर देते हैं। वर्षामें स्नानसे पवित्र हुए पर्वत अपने परिधानसे वरराजसे सुन्दर जान पड़ते हैं। उस समय सब वनस्पतियोंका रूप अप्सरासे भी अधिक जान पड़ने लगता है। × × ×

हिमालयमें वर्षाएँ अचानक ही आती हैं, थोड़े समयमें धूप भी निखर जाती है। कभी २ झिरमिर मेघ और कभी तीर के समान देहमें घुसनेवाली ठंडी हवा। हिमालयसे निकली हुई गंगा और सिंधुनदी का क्षेत्रफल आधुनिक भौगोलिकोंने खोज निकाला है। इनका तल चार-चार लाख मील ज़मीनको रोके हुए है। इनकी १५०० मील की लंबाई है। कहीं २ इनकी चौडाई तीन मीलसे अधिक है। उष्णकालमें ३० फ़ीटकी गहराई रहती है। जिस द्रहसे ये निकली है वहां ३० फ़ीटकी चौडाई है। ये १०००० फीटकी उंचाईसे

गिरी हैं। वितस्ता [जेहलम] ७५०० फुटकी उंचाईसे चली है। वेरीनागकुंडसे इसका आरंभ है। × × ×

हिमालयके ऊंचे ऊंचे वृक्षोंपर अनेक जातिके पक्षी रहते हैं। उनकी जलक्रीडा मनमें आमोद उत्पन्न करती है। वे स्वतन्त्र किलोल करते हैं। कोई तो पानीमें ऊंचेसे उड़कर झम्पापात करता है। कोई पानीमें चोंचको डुबाकर आहार ढूंढता है। कोई पक्षी अपने बच्चोंसे प्यार और खेल करता है। कोई पक्षी अपनी प्रेयसी से बातें करते हैं। झरनोंकी मच्छिएँ बड़ा अच्छा खेल खेलती हैं। सूर्य अपना आभास चारों ओर फैलाए रहता है। प्रत्येक वस्तुको सुनहली पॉलिससे स्वर्णिम बनाकर चमका देता है। जब पर्वतीय वृक्षोंपर नव-पल्लव आते हैं, तब उनके सुगंधित फूलोंपर मधु-मक्खिएँ गीत गाकर नाचती हुई आकर उनका पराग खींच लेती हैं। तितलिएँ परस्पर अठखेलियाँ करती हैं। कोई तितली गुरनुके फूलपर जमकर बैठीहुई इतनी अच्छी लगती है मानो प्रकृतिके ऑफ़िसमें टेलीफोन कर रही है। पर्वतोंकी ऊंची ऊंची मालाएँ बड़े बड़े श्वेत डबलज़ीनके तने हुए तंबूसे भासमान होते हैं। स्वच्छ हिमाच्छादित गिरिराज पर पड़ती हुई सूर्यकी प्रभा अत्यन्त मनोहारी दृश्य उत्पन्न करती है। यहांकी प्रत्येक दिशामें शान्तिका ही साम्राज्य है। प्रकाश, दिव्यता और प्रेमका वातावरण साकार प्रवाह में बह निकला है। शीतल और मन्द समीर नस नस में नवोत्साह-स्फूर्तिकी प्रेरणा करता है। उस समय आनन्दाश्रुओंके वारिदोंमें कौन न न्हाएगा? × × ×

"हिमालयका रहस्य अन्तरमें चोट की भाँति चसक कर बता रहा है कि यहांकी एकान्त रात्रि तुम्हारे मार्गके बीचमें काली नागनकी

तरह फैली पड़ी है। और आगन्तुक-प्रभात पर्वतोंकी खिडकीमें पड़ा सो रहा है। शान्त एवं स्थिर होकर तारागण अपने श्वासके प्रहर गिन रहे हैं। तब मन्थर गतियुक्त चन्द्रमा रात्रिके सागरमें तैरता रहता है।" × × ×

हिमालयका प्रवास करते समय मार्गमें बहुतसे गद्दी (बकरवाल) शिया-ग्वाले आदिभी मिला करते हैं। इनके घर और ग्राम नहीं होते। पशुओंको चराते हुए पहाड़ोंमें इधर उधर फिरा करते हैं। वर्षमें दो बार पशुओंकी ऊन उतारकर उनसे गर्म कपडे तैयार करते हैं। ×××

हिमालयकी मधुमक्षिकाएँ मधु पुष्कल रूप में उत्पन्न करती हैं। मोटी और सुंदर मक्खिएँ छत्तेपर बैठी रहती हैं। ये फूलोंका रस चूसकर लाती हैं और मधुकी कोठड़िओंमें उसे निचोडती हैं। वहीं पक कर मधु बन जाता है। कमल-मधु आँखोंको हित पड़ता है। मक्खिओंकी गुनगुनाहट कानोंको सुहावनी पड़ती है। ये मधुमाक्षिक गृह बहुत बड़े भी होते हैं। इस मधुसे शर्करा भी उत्पन्न की जा सकती है। × × ×

हिमालयमें रींछ कई प्रकारके होते हैं। काले एवं श्वेत अधिक पाए जाते हैं। ये वृक्षोंपर चढकर मधु भी पी जाते हैं। केशावलि अधिक लंबी होनेके कारण उनके डंकका प्रभाव निष्फल हो जाता है। × × ×

हिमालयमें भ्रामरी क्रीड़ा अति आकर्षक होती है। ये कभी फूलोंपर बैठते हैं तो कभी मनुष्यके कानके पास घूम घूम कर गुंजन करने लगते हैं। यह नर्तन मनके आल्हादको संवर्धित करता है। इनका रमण किसी प्राकृतिक विधि पर अवलंबित है। × × ×

हिमालयके किरलिए [गिरगट] बड़े लंबे और विषैले होते हैं। अफ्रीका और अबीसीनियामें तो इनका देहकलेवर तीन फ़ीटसे भी अधिक होता है। × × ×

हिमालयकी देवचिडियाएँ अनेक प्रकारकी होती हैं। कोई सुनहरी, नीली, भूरी और रुपहरी भी। इनका पारस्परिक खेल मनको मुग्ध कर डालता है। ये अपने शत्रुको आया देखकर तुरंत झुर्मुटमें छुपजाती हैं। × × ×

हिमालयके झरनोंके किनारों पर तितलिएँ बड़ी नाच नाच कर उड़ा करती हैं। कभी पानीमें डूबे पत्थरपर बैठती हैं तो कभी चारों ओर चक्कर काटती हैं। मानो हिमालयराजके गुप्तचर हैं। उनके दल के दल एकके पीछे एक उड़ते रहते हैं। × × ×

हिमालयमें काक-पक्षी बड़े बड़े होते हैं। ये अविश्वस्त एवं सतर्क अप्रमत्त होते हैं। श्रीनगरके सलेटी रंगवाले कुछ शान्त और अनुपद्रवी होते हैं। अधिक काले नहीं होते, कुछ सुस्त और अनुद्यमीसे जँचते हैं। शायद यावनीय-उच्छिष्ट खाकर अकर्मण्य हो गए हों तो क्या आश्चर्य ! कुछ भी हो ये और काकोंके समान चालाक नहीं हैं। × × ×

हिमालयमें गाय-भैंस-गूठ-खच्चर और कुत्ते आदि अनेक जातिके प्राणी होते हैं। परन्तु कूटों पर बहुत कम जीव होते हैं। वहाँ व्याघ्र और चीते बहुलतामें पाए जाते हैं। ये रुरुमृगका आखेट कर डालते हैं, किन्तु यात्रियोंसे भय खाते हैं। पैरोंकी ध्वनि कानमें पडते ही भाग खड़े होते हैं। ये ७००० से ९००० फ़िटकी उँचाई तक पाए

जाते हैं। यहां कास्तूरिक मृग भी हैं। इनकी नाभिमें कस्तूरी मौलिक वस्तु होती है। अतः इन्हें जानकी जोखम इस कारणसे ही है। सत्य है कायको भय न होकर मायाको ही भय है। माया हो तो कायको भय हो जाता है अन्यथा नहीं। × × ×

हिमालयमें पक्षी भी नाना भाँतिके हैं। परन्तु शुकराजोंका राज्य है। ये वृक्षोंपरसे उड़ते उड़ते अन्न चुगनेके हेतु खेतोंपर टूट पड़ते हैं। बेचारा खेतवाला इन्हें उड़ाता उड़ाता तंग आ जाता है। सब मिलकर बडा ही मीठा बोलते हैं। भोले भाले कपोतराजके समुदाय तो पद पद पर पाए जाते हैं। × × ×

देवदारु और चीड़के साथ साथ भूर्जपत्रोंके वृक्ष ११००० फ़िट की उंचाईके उपरान्त होते हैं। अमरनाथके मार्गमें चन्दनवाड़ी से ऊपर इनका बाहुल्य है। अखिल पार्वत्य-भाग वृक्ष-वल्लरी घास तथा नाना जड़ी बूंटियोंसे भरा पड़ा है। किसी किसी लताके पत्ते तिलके समान छोटे और चुनार जैसे वृक्षके पत्तोंका वितान तो पत्तल जितना है। पत्राकार गोल-मोटा-तिखुना और लंबा आदि सब प्रकारका है। कहीं फूल खिले हैं, कहीं फलोंका सौंदर्य उफना पडता है। काश्मर्य फल मीठे और बल तथा स्वास्थ्यवर्धक हैं। × × ×

हिमालयके किसलयों पर नवीन से नवीन आभा छाई रहती है। पलास वनकी कान्ति द्युति बहुला होती है। सरोवर में विकसित कमल मनके परमाणुओंमें हलचल पैदा करते हैं। इनकी भीनी एवं मीठी सुगंध सब ओर फैलती रहती है। वसन्तकी सुरभि तो ज्ञात-पुत्र-महावीर भगवानके स्याद्वादके समान कोने कोनेमें व्यापक है। भला ऐसे हिमवान् का विहार किसे रोचक न होगा? × × ×

हिमालयमें वसन्तका सिक्का ज्ञातनंदनके त्रिपदी-ज्ञानकी भाँति एकदम जम जाता है। प्रातःसमय स्वर्गके सदृश सुखद होता है। ओस बिंदु मोतीकी खेतीके समान शोभित होते हैं। लार्क पक्षीकी उडान चकित कर देती है। गोकुल गउएँ चरती फिरती हैं। पार्वत्य-संसारमें सर्वत्र शांति छाई रहती है। विहार करनेवालोंको देवलोक का भ्रम होता है। बड़े बड़े वृक्ष भपकेदार चित्र-विचित्र परिधान पहने खड़े हैं। बाइस तीर्थंकरके समयकी परिधान पद्धति अब ये ही चरितार्थ कर रहे हैं। इनकी शाखा-प्रशाखाएँ फूलों और गुच्छोंसे समृद्ध हैं। काश्मर्य चुनार कल्पवृक्षकी उपमा में दंगल जीत गया है। इस की सघन छायामें बैठ कर मेरे धर्माचार्य-श्रीगुरु [पुप्फ-भिक्खु] ने हज़ारों काश्मर्य लोगोंको बोध-वाणीका अमृत पिलाया है। उस समय का वर्णन वचन अगोचर है। उस समयका समय बाँधनेमें लेखनी असमर्थ है। जब वे घटनाएँ आँखों आगे आती हैं तब आश्चर्य-सागरमें गोते खाने लगता हूं। × × ×

हिमालयमें सचमुच प्रकृतिदेवीकी ओर से फूलोंकी वर्षा होती है। उस समय मनका मोर नाच उठता है। सुकुमार सुमन-दल सूर्य किरणोंके दुलारसे कुमलाता भी है। कारण उन्हें प्रकाशके वसन्तमें पुनर्जन्म ग्रहण करना है। इसी आशामें स्वयं तपो-वन्हि-शय्यामें सोए हैं। वसन्त ही इनकी निद्राका भंग करेगा। यह जन्म मरणका प्रवाह अनिवार्य है। इसका आदि-अन्त नहीं है। यह ध्रुव सत्य घन-घोर घटा छानेपर भी उसके नीचे नीलाकाशकी भाँति आच्छादित है। × × ×

हिमालयमें कभी कभी वर्षाकी गाँठ अकस्मात् खुलती है। मेघ

चारों ओर मूसलधार के रूपमें पड़ने लगता है। तब प्रवासी लोग गुहागर्भमें छुपकर अपनी रक्षा करते हैं। उस समयका शरण माताके आँचलके समान सुखद बन जाता है। उस प्रसंगमें बिजली-चमककी मुस्कुराहटसे उन अज्ञातोंको नव वधूके समान झुक झुक कर यह निश्चय करना चाहती है कि परदेशी लोग कितने पानीमें हैं। × × ×

पत्थरोंमें पानी जब टकराकर अटकता हुआ चलता है तब उसमें से एक प्रकारका संगीत बनकर चारों ओर ध्वनित हो उठता है। संगीत प्रेमियोंके लिए यह मुखरायमान लय बड़े कामकी वस्तु है। आलाप एवं आरोह-अवरोह का द्वन्द्व गान्धर्ववेदीके गलोंको माँजकर चारचाँद लगा देता है इस साधनामें लाखोंने लाखोंका धन पाया है। × × ×

हिमालय पर आरोहण करते समय कहीं कहीं लाखों मनके बड़े बड़े पत्थर पड़े होते हैं। जिन्हें देखकर कल्पनाकी देवी तुरन्त कह उठती है कि ये पत्थर भारके भयसे कहीं हनुमान्ने तो नहीं गिराए हैं? × × ×

हिमालयका आरोह-अवरोह सितारके समान ही कठिन है। इस प्रसंगमें दिनमें तारे से दीख पड़ते हैं। इन कठिनाइयोंको पार करने वाला ही प्रकृतिके ऐन्द्रजालिक दृश्योंको देख सकता है। जब नाना आकृतिसे समृद्ध राक्षसाकारके बादल उठते हैं, तब उनसे राक्षसकी भाँति ही भय लगता है। उनके पेटसे निकले हुए ओलेरूप कराल दाँत आरोहण करनेवालोंको चट करनेमें तनिकसा विलंब भी नहीं होने देते। इस उत्पातसे बचनेके हेतु कश्मीरके दयालु राजाने मील-

मील पर विश्राम-कोष्ठक बनवा दिए हैं। फिर भी प्रतिवर्ष इन उपद्रवोंसे सहस्रों जानों का ढेर हो जाता है। × × ×

हिमालयमें कुछ फूल इस ढंगके भी हैं जिनसे सौरभ का पाना वर्तमान सरकारसे स्वतंत्रता एवं कंजूससे धन प्राप्त करनेके सदृश है। भला मुँहमें आया ग्रास किसने दिया है। अतः ये सुमन यही शिक्षा देते हैं कि "स्वावलंबी बनो" किसी अन्यका मुँह न ताकते रहो। × × ×

हिमालय तथा कुद एवं पतनीटापके दाएँ बाएँ कुछ ऐसे फूल भी हैं जिनकी गंध मस्तक क्षेत्रमें फैल कर चक्कर और मूर्च्छा उत्पन्न कर देता है। वमन तो उसी समय हो जाता है। असहयोग आँदोलन का सा परिणाम झलक पड़ता है। × × ×

हिमालयमें कहीं कहीं बड़े बड़े वृक्षोंपर सर्पाकार बेलोंका प्रतीक भी दीखता है। चारों ओर गली-सडी वनस्पतिकी दुर्गंधि भी आया करती है। प्रकृतिके पुत्ररूप अनेक-पुष्कल जन्तु भूमिपर घूमते हैं। सब ओर भयंकरताका साम्राज्य स्थापित है। पक्षीगणका रव, विषैले जन्तुओंका रेंगना, श्वपदोंकी चीत्कार, अथवा विशाल टहनोंका पतन-शब्द यहां की एकान्त शान्तिका विक्षेप करता है। कायरोंको सब ओर विरोधी-असुर एवं भूतोंका आभास यहां भी पड़ता है। तब उनके लिए सबका सब वातावरण निराशाजनक प्रतीत होने लगता है। × × ×

हिमालयके वनमें वृक्षोंपर वनस्पति-वल्लरियाँ आच्छादित होकर भीषणतामें वृद्धि कर डालती हैं, जिस प्रकार वेशधारीमें छल। यहां जानेके लिए मार्ग सरल नहीं होते, जिस प्रकार आजकी परिस्थितिवाला भारत। बड़े बड़े वृक्षोंकी जड़ें अँधेरेमें अजगर का विपर्यय उत्पन्न

करती हैं, जिनके अनेक कुटिल आकार हैं। वृक्षोंकी शाखाएँ अमेरिकन दम्पतीकी भाँति परस्पर उलझकर [हाथमें हाथ मिलाए] अन्धकार उत्पन्न कर रहे हैं। अनेक वन्य एवं श्वपद जीवोंके भयावह तथा कौतुहल पूर्ण शब्द कर्णकुहरमें पड़ते रहते हैं। ऐसे प्रसंग का वातावरण भय और निराशाजनक प्रतीत होने लगता है। ऐसे विजन प्रदेशोंमें हृदय पर बोझसा हो जाता है। परन्तु संयमीके मन से तो बोझ उतर जाता है। × × ×

हिमालयको छोड़कर ठंडे झरने अन्यस्थानोंपर भाग्यसे ही मिलते हैं। हरे गलीचोंसे ढका हुआ रम्य प्रदेश, ऊँचा भव्य स्थल, सुंदर खेत, मेवोंसे लदे हुए हरे भरे ठेंगने कदके वृक्ष, मंद पवन, अनुपम एकांत, अन्य प्रदेशोंमें कहां? पक्षी-परिवार वृक्षोंके महलोंमें पंचम गाते हैं। खिले हुए फूलदार महीरुहों पर उद्योगपूर्णा-मधुमक्षिकाएँ निरा अव्यक्त गुनगुनाट ही आलापती हैं। फूलोंके परागको चाटकर सुयोगीके समान सुखकी नींद लेती हैं। ऐसी अनुपम बोधप्रद रचना को यह मन भूलनेवाला नहीं! इसके लिए तो प्रतिपल झँकना रहती है। समय अपनी करवट बदले तो कहीं एकान्त समाधि लगाकर आत्मचिन्तन की लालसाको पूर्ण किया जाय। रम्य-अगम्य-भयंकर-सौम्य आदि नाना कल्पनाएँ हृदय सागरमें अबभी तरंगित होती हैं। विहार पूर्ण होने पर भी अनहद गुँजन करता रहता है। वह शान्त-एकान्त वातावरण आध्यात्मिक विचारोंको वीर्य शक्ति प्रदाता है। यदि गुरुकुल और कॉलिजों के अभ्यासी युवक यहां के लिए वार्षिक प्रवास-योजना बनाकर घूमें तो उनकी प्रतिभा, आरोग्यता, विचार शीलता, हृदयग्राहिता आदि ज्ञानके अनुभवकी दृष्टिसे अनेक लाभकी

संभावना है। परन्तु खेद है कि भारतियोंको इन जन्मसिद्ध अधिकारोंका परिचय नहीं! तब पाश्चिमात्योंको इस विषयमें अग्रगामी पाते हैं। वहांके युवकों और विशेषकर अभ्यासियोंको पार्वत्य जीवन अत्यन्त प्रिय है। मस्तिष्क और शरीरको सशक्त बनानेके हेतु वहां के डॉक्टर उन्हें पर्वतीय जलवायुका लाभ लेनेके अर्थ विशेष रूपसे भेजते हैं। अवकाशके दिनोंमें विद्यार्थिओंके दलके दल यूरोप और अमरीकाके हिमाच्छादित पर्वतोंके अगम्य क्षेत्रोंके कोने कोनेमें जाकर अपने अपने पटावास खड़े करते हैं। तथा प्रकृतिके सौन्दर्यका अवलोकन करनेके साथ भूस्तर शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, प्राणि शास्त्र और मनोविज्ञानके अधीतविषयोंकी उत्कृष्ट पुनरावर्तना करते हुए अनुभव और आचरणमें अंकित करते हैं। उनके महामहोपाध्याय [प्रोफ़ेसर] लोग विद्यार्थियोंके पठित विषयको प्राकृतिक निबंधमें ठीक बैठाकर तदनुकूल उचित बोधपाठ देते हैं। स्वीटज़रलेंड-ऑस्ट्रीया-टायरोल, इटलीका आल्पस, जर्मनीका ब्लेक फोरेस्ट, स्कॉटलेण्ड का हाई लेण्डज़, वेल्स पर्वत और अमरीका के वाईट माउन्टस् पर वर्षमें तीन मास रहकर विद्यार्थी सज्जीवन-समृद्ध हो जाते हैं। भारतीय हिमालय तो भारतवर्षकी देवभूमि एवं उत्कृष्ट-विशेषता सम्पन्न होने पर भी यहांका विद्यार्थीवर्ग दृष्टि उठाकर सामने भी नहीं देखता। हैमी-सरस्वतीकी यात्रासे विद्यार्थियोंको अनेक विलक्षण अनुभव होनेकी संभावना है। यहांके लोगोंको भी किसी अंशमें हितावह हो सकता है। कारण यात्रिओंके सहवाससे सात्विक-धार्मिक जीवनका रस पाना असंभव है। परन्तु यदि इनको अच्छे विद्यार्थियोंका सम्पर्क प्राप्त हो तो इनका अधिकांश सुधार हो सकता है। पैदल चलने वाले

तथा जीवनमें सादा बर्ताव रखनेवाले विद्यार्थी लोगोंको यहां अधिक व्यय भी नहीं करना पड़ता। उत्तम स्वास्थ्य, नियमित कार्यकरनेका सुयोग, और सादा जीवन व्यतीत करनेका प्रसंग अपने हाथसे न खोना चाहिए। × × ×

हिमालयके-पूर्वसे सुनहरी रंगमें रंजित अरुणाभ अपने साक्षात् उदयमें आ जाता है। तब नीचेके विभागका तमस्तोम नाश हो जाता है। पृथ्वीतल तो मानो अग्नि परीक्षाके अनन्तर स्वर्गीय तेजके अधिकार को ग्रहण करता है। चमक-दमक वाले मृदुलहास्य पूर्ण सौन्दर्यकी साडीका परिधान उसे बड़े गौरवके साथ मिलता है। वनश्री आनंद रचनासे विभोर हो उठती है। पक्षीगण प्रारंभिक मंगलाचरण करते हैं। सुगंध समीर मंथर गतिसे विचरण करता है। सुमन सम्प्रदाय वर्षाके सुकोमल बिंदुओंके वरद हाथोंसे घोर निद्रा त्याग कर प्रफुल्लताके स्वाध्यायमें निरत हो जाता है। सुकानका अत्यन्ताभाव हो जाता है। प्रेमसूर्य-प्रभातराणीके हर्षकी वर्धापनिकामें हर्षोन्मत्त होकर ऊंचा उठता है। स्फटिकके समान स्वच्छ झरने बह बह कर आगे बढते हैं। और सम्राज्ञी की सदृश मौज में बहनेवाली नदियोंकी गोदमें समा जाते हैं। हरे हरे घासकी कोमल-कूँपल खिलखिलाती हैं। कमलगण विकसित हो होकर सौन्दर्य और सौरभ बरसाते हैं। तथा यह शिक्षा पाठ देते हैं कि भारतीयो! शोक और कायरतासे मुक्त हो जाओ! आनन्दमय नव तत्वके ग्रह अपनी चाल पर हैं। तामसी·तमी वेगसे संटकनकी[1] भाँति सटकी जा रही है। सुमनसे सजकर प्रभात किरणें आई हैं। सूर्यका उदय हुआ है, अतः आह्ला-

१ एक प्रकारका लंबा और पतला सर्प।

दकी प्रसादी पाओ। सम रस का पान करो। नवीन और हरा-भरा मार्ग आपके सामने दीखता है। आपके मस्तक पर नील-आकाशकी छत्र छाया है। आपके पैरोंके आगे अचित्त कुसुम अवकीर्ण हैं। तुम्हारी यात्राके यशोगीत गानेवाले ये पक्षी कितने सतर्क हैं। ×××

हिमालय-वनमें पक्षी अति सुन्दर होते हैं, कुद और बटोतके कूट-शिखरोंपर एक प्रकारका विहंगम बोला करता है। जिसकी माधुरी वाणी मानुषी-भाषा में परिणत है। शोधका प्रयत्न करनेपर भी दिखना कठिन होता है। उसका गायन घुले हुए मधुके सदृश मधुर होता है। इस प्रकार अपने गायनरस में शर्करा-घोलने वाले पक्षी नादोन और भाकसू-(कांगडा) पर्वतमें बहुलतासे पाए जाते हैं। इस पक्षीका मुखाकार किन्नरके समान है। इसके कूजनमें आकर्षण का मद भरा रहता है। × × ×

हिमालय-विभागमें तुंगनाथ-पर्वत कूट भी है, यह लगभग १२००० फिटका ऊँचा कूटाकार शिखर है, पुराणोंमें इसकी कथा इस प्रकार वर्णित है। यथा—

"रावणको अपने वीर्य-शौर्यका बहुत ऊँचा अभिप्राय था। एक वार शंकर-भोलानाथ और पार्वती **तुंगनाथ**के शिखरपर विराजमान थे। रावणने अपने बलका परिचय देनेके लिए इस शिखरको अपनी बीसों भुजाओंकी सहायतासे ऊंचा उठानेका प्रयत्न किया। इससे शिखर डिगमिगाने लगा। उस समय पार्वती घबरा गई। परन्तु शंकर बाबाने सहजभावसे रावणकी ओर देखकर अपने पैर का अँगूठा शिखरकी ज़मीनमें दबा दिया। बस इतने दबावसे रावणके सब हाथ दब गए। भूमि नीचे सरकने लगी। रावण इस पीडासे चिल्लाने

लगा । और अन्तमें शिवको रिझानेके लिए शिवताण्डव-स्तोत्रकी रचना की। शिव प्रसन्न हुए और उसे शक्ति-वरदान दिया। तबसे यह गिरिशृंग तुंगनाथके नामसे प्रख्यात हुआ।" इस कथाकी तुलना श्रीबालि मुनि वाले काण्डसे समन्वित करें तो भावशः मेल खाता है। बालि मुनिका ध्यानस्थानभी यह अष्टापद पर्वतही था। पर यह पता नहीं लगता कि पुराणोंके लेखकोंने जैनोंका अभिप्राय लिया है या उन्होंने उनका? इसे ज्ञानी महाराजके भावोंपर छोडते हैं। परन्तु रचना बहुत कुछ मिलती जुलती सी है। × × ×

हिमालयके गर्भमें एक गंधमादन पर्वत भी है। जो कि समुद्रकी सतहसे ५००० फ़िटकी ऊंचाई पर है। जैन साहित्यमें भी इसका नाम पाया जाता है। × × ×

हिमालयके हृदय पटमें **नर-नारायण** नामके दो विशाल पर्वतभी हैं। इनकी ऊँचाई अनुमान ११५०० फ़िट है। इसके आसपासके लोगोंमें दुग्धका बडा महत्व मानते हैं। रुपये सेरमें भी समर्थ मानते हैं। × × ×

हिमालयमें बद्रीक्षेत्रके पास विशालनगरी भी है। पता चलता है कि भगवान् विशालाक्ष-ऋषभ देव प्रभुने १०००० मुनिओंके परिवारसे यहीं निर्वाणपद पाया है तबसे यह क्षेत्र विशालापुरी बन गया है क्योंकि सबके सब तीर्थंकर पर्वतोंसे ही सिद्ध हुए हैं। सचमुच ध्यानकी सिद्धि एकान्त स्थानोंमें ही तो होती है। कहाभी है कि—अपनी चमड़ेकी आँखें मींच, तब दिव्य चक्षुओंसे अपनी जाँच कर पाएगा। कानोंकी तन्मात्रापर संयम रख तब आत्माका महान् और दिव्य संदेश सुन सकेगा। ज्ञानका घमंड छोड, जिससे आत्माके

दिव्य ज्ञानके द्वारा अनन्त चतुष्टयके असीम-भंडारपर आधिपत्य जमाया जा सके। अर्थात् अपने अद्भुत-ऐश्वर्यकी झाँकी कर सके। ×××

हिमालयके कई रिवाज विलक्षण एवं निर्दोष कहे जा सकते हैं। यथा बड़े भाई की स्त्री सब भाईओंकी स्त्री समझी जाती है। घरकी सम्पत्तिका अधिकारी पुत्र न होकर भानजा होता है। सिन्धु-सौवीर देशके वीतीभय पत्तनमें उदायन नरपतिने भी अपने पुत्रको राज्य न देकर अपने भानजेको ही राज्य दिया था। प्रतीत होता है कि यह प्रथा अधिक पुरानी है। × × ×

हिमालयके निर्जन-प्रांगणमें घूमकर जो प्रकृति की सुंदर कृतिओंको आध्यात्मिक छननेसे छानकर ध्रुव सत्यका शोध करते हैं, तथा अपने सत्यभावसे तथ्यकी अन्तिम तहके पानेका अभ्यास करते हैं, उनके मनमें आसुरीभाव, वैमनस्य, और धिक्कार आदि विभाव उत्पन्न नहीं हो पाते, बल्कि शुद्ध-प्रेमका अनुभव करते हैं।

हिमालयमें घूमकर प्रकृतिके स्वभाव एवं गतिविधिके चित्र खींचनेवाले कविओंकी प्रतिभा अनन्य तथा विलक्षण कार्य करती है। रघुवंशमें अजविलाप, कुमारसंभवका रतिविलाप, मेघदूतका भूगोल-वर्णन, शकुंतलाका प्रथम और चतुर्थ अंक, उत्तररामचरितका तीसरा अंक छाया, श्रीबाणकी कादम्बरीकी उषा और अन्यान्य वर्णन इसी मेलकी वस्तु हैं। इनमें कुछ अपूर्व रसही वर्णित है। उन सब कर्ता-ओंको इस रसके पानेका सौभाग्य हिमालयसेही मिला है। × × ×

हिमालयमें घूमनेवाले दर्शकोंको देवदारु, चीड, बांस, अखरोट, जरदालु, सेव, गिलास, तथा अन्यान्य नाना जातिके वृक्ष और वनस्पति-ओंसे आच्छादित वनश्रीसे अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं। × × ×

हिमालयका प्रभात विलक्षणता युक्त होता है। उसकी आभा श्वेत शृंगोंको अग्निवर्ण कर डालती है। उसके सुंदर स्वरूप पर आँखोंको प्रसन्नता मिलती है। मध्यान्हमें तीक्ष्ण धूपके समय प्रकाशकी बहुलता होती है। इन्द्रधनुष अथवा प्रकाशमें रक्खे हुए हीरेके समान विविध रंगोंकी धाराएँ बह निकलती हैं। उस समयके प्रखर तेजको आँखें देखनेमें अशक्त होती हैं। सान्ध्यकालमें सूर्यके अस्त होनेका प्रसंग तो विरल ही होता है। जब सूर्य अस्ताचलकी गोदमें विराम लेता है तब ये श्वेतवर्णीय शृंग अग्निवर्ण बन जाते हैं। सूर्य ओंडे क्षेत्रमें उतरता हुआ दिक्प्रदेशमें अनुपम प्रभाका वितान कर देता है। चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना देखनेवालोंके मन उन्मादपूर्ण बन जाते हैं। यहां कविओंके लिए अक्षय निधि भरी पड़ी है। पूर्णिमाकी रातमें ये श्वेतकूट रूपेके रस-प्रवाहमें बहते से प्रतीत होते हैं। × × ×

वनस्पतिके यूथके यूथ अखिल हिमालय की अनुपम शोभाको चार चाँद लगा देते हैं। इसकी भव्य विशालता और दिव्यता मानस क्षेत्रमें चित्रकी भांति उतर आती है। गुलाबके अपार सुमनदल अपना अनंत सौरभ तीर्थंकरोंके वार्षिक दानकी तरह लुटा रहे हैं, वल्लरिएँ वृक्षोंको आलिंगन देकर थिरक रही हैं। सुगन्धित फूल आत्माकी अनन्त समृद्धिका गुप्त भेद कहते हैं। तथा समझाते हैं कि मानवो ! हमारी भाँति तुम्हारा मन सुकोमल बनना चाहिए। कोमलताके विना आत्म पथ कौन पा सकता है ? × × ×

सुमनका पिंड एक है, पंखुड़ी अनेक हैं, अनेक पंखुड़ी एक सुमन पिंडके भाग हैं, बहुत होनेपर भी उसमें से एकता नहीं जाती।

इसी रीतिसे द्रव्य एक है, उसकी पर्यायें अनेक हैं, अनेक पर्याय एक द्रव्य के भाग हैं, अनन्त पर्यायें होनेपर भी उसमेंसे द्रव्यत्व नहीं जाता। 'सद्द्रव्यलक्षणं, गुणविकाराः पर्यायाः।' × × ×

ये सुमन कहते हैं कि हमारी तरह किसीपर अन्याय न करो, वरन् तुम स्वयं अन्यायके भोग बन जाओगे। किसीका तिरस्कारभी न करो, अन्यथा तुम्हें भी तिरस्कार का पात्र बनना होगा। × × ×

ऐसे महत्वपूर्ण हिमालय-प्रदेशमें विचरनेकी मुझे वर्षोंसे उत्कण्ठा लगी थी। एक समय पटियाला में वर्षावासके अन्तमें, श्रीज्ञातपुत्र-महावीर जैनसंघीय श्रीपुप्फभिक्खु-मम धर्माचार्यकी पवित्र सेवामें वन्दना नमस्कार करके यह प्रार्थना की कि हिमालयके कश्मीर-प्रदेशमें विचरकर भगवान्-ज्ञातनन्दन महावीर प्रभुके सत्यसंदेश और भगवती अहिंसाका प्रचार किया जाय तो उन भव्य जीवोंकोभी बहुत लाभ प्राप्त होनेकी संभावना है? उत्तरमें भदन्त, दयालु, श्रीगुरुने-श्रीमुखसे फ़र्माया कि-'यथा समय' अवसर देखकर विहार करनेकी चेष्टा की जायगी। × × ×

इस प्रकार उस क्षेत्रके स्पर्शन करनेके सुंदर एवं उदार आश्वासनने मुझे अभूतपूर्व प्रसन्नता प्रदान की। × × ×

सच्चे साधुओंके जीवनमें कभी किसीसे मतभेद नहीं होता, उनका मार्ग समतात्मक होता है। उनका अपना उदार हृदय सबसे अभेद रूपमें 'वसुधैव कुटुंब'का बर्ताव करता है। वे अपने अन्तरमें जड़की उपासनाको स्थान नहीं देते। उनका मूलमंत्र सर्वधर्म समभाव होता है। 'आस्तिकता' उनका सरल चलन है। वे आडम्बरकी पोषणा नहीं करते। देशपिंडोलकता, नगरपिंडोलकता, ग्रामपिंडोलकता तो उनमें

नामको भी नहीं होती। साढेपचीस (२५॥) आर्यदेशोंमें विचरना वे अपना पैतृक अधिकार समझते हैं। यही कारण है कि श्रीगुरुराजने मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर हिमालय गिरिकी आर्य भूमिको अपने चरणकमलोंसे पवित्र बनानेके हेतु उस ओर विहार आरंभ किया।

संवत् २००० का चतुर्मास [वर्षावास] पटियाला नगरमें बिताकर वहांसे 'समाना' शहरमें पधारे। आपके सदुपदेश से यहां श्रीमहावीरजैन पाठशालाकी स्थापना हुई जिसमें स्थानीय बालक-बालिकाओंको अबतक सामायिक-प्रतिक्रमणादिकी शिक्षाके उपरान्त दर्शन शास्त्रका 'जैन स्तबक' [थोकडोंका] अध्ययन कराया जाता है। ३०) मासिक वेतन और भोजन पर एक श्रावक-अध्यापकीय काम कर रहा है।

यहांसे विहार करके नाभा स्टेट, मलेरकोटला स्टेट, रायकोट, जगरावाँ, मोगा मंडी, नकोदर, शाहकोट, सुलतानपुर लोधी, पट्टी, कसूर आदि क्षेत्रोंके भव्य जीवोंको अपने उपदेशामृतसे उनकी अन्तर्मुखी-कल्पवल्लरिको सींचते हुए, नवजागृती फैलाकर, सुधारकी लहरोंसे लहरायमान करते करते, पंजाबके पाटनगर लाहोरमें पधारे। यहां आपने अपनी पूर्ण उदारता, स्वतन्त्रता, निर्भीकता, सौजन्यता, सहिष्णुता, समदर्शिता आदि सद्गुणोंका प्रभाव डालते हुए, शैदमट्ठा बाज़ारके जैन स्ट्रीटमें नवनिर्मित जैन हॉल में पधारे। निकट संसारी, सम्पप्रिय, भव्य श्रावकोंने सानंद आपकी बोध वाणीका अपूर्व लाभ लिया।

इससे पूर्व दिगम्बर जैन हॉल में भी श्रीमान् ला० महावीर प्रसाद तथा लाला लक्ष्मीचंद्र जैन करनाल वाले, और बाबू फ़तहचंद्रजी

जैनके नम्र-निवेदनसे वहाँकी जनता को पाँच व्याख्यानों का सुयोग दिया।

एक दिन गीताभवनमें भी श्रीजीने 'जैनदर्शन और गीताउपनिषद्' पर तुलनात्मक-भाववाही, प्रभावशाली प्रवचन किया। श्रीमान् डॉक्टर L. C. जैन महानुभावके तत्वावधान में यह व्याख्यान हुआ। अंतमें सभापति महोदयने अपने ओजःपूर्ण शब्दोंमें मर्मस्पर्शी अनुमोदना की। × × ×

आज डॉक्टर गोपालदासजी जैन (स्यालकोटी) एक पत्र लाए, और महाराजश्रीकी सेवामें पढ़कर निवेदन किया कि "यह पत्र जम्मू नगरसे श्रीमान् रायबहादुर, भूतपूर्व दीवान श्रीविशनदासजी महानुभाव की ओरसे प्रार्थनाके रूपमें लिखा आया है"। श्रीयुत दीवान साहेबने जम्मू पधारनेकी तथा फिर वहांसे कश्मीर प्रदेशमें विचरनेकी विनती की है। साथ ही यह निवेदन किया है कि नुमायशगाह (प्रदर्शिनी) के सामने मेरी कोठी आपश्रीके चरण कमलों द्वारा अवश्य पवित्र होनी चाहिए! उस पार्वत्य प्रदेशके कठिन मार्गको आपके सिवा और किसने पावन करना है? आपने जब सिंध-बंगाल तथा कुल्लु-शिमला जैसे कठिन प्रदेशोंमें विहार किया है, और वहां के क्षेत्रोद्घाटन किए हैं तो आपके लिए २०० मील का काश्मर्य प्रवास एक मामूलीसी बात है। अतः आप यहांके संघ पर कृपा करके जम्मू और कश्मीर क्षेत्रको अपने पवित्र उपदेशों द्वारा कृतार्थ करने के अर्थ हमारी विनतीका स्वीकार अवश्य करें।"

श्रीयुत डॉक्टर महोदयने भी बलपूर्वक यही अनुरोध किया कि

श्रीदिवानसाहेबकी प्रार्थनाको अवश्यमेव स्वीकार करें । और उस प्रदेशमें जिनशासनका प्रचार करें। महाराज साहेबने श्रीमुखसे यही फ़र्माया कि देश और कालके अनुसार यथावसर देखा जायगा! इतना सुनते ही मुझे तो बड़ी ही खुशी हासिल हुई। ×××

आज महाराजश्रीने लाहोरसे ता० २९–२–४४ को जम्मूकी ओर विहार किया। आपने शाहदरे पधारकर नारोवाल जानेकी इच्छा प्रगट की। श्रावक बन्धुओंने निवेदन किया कि भगवन्! नारोवालके मार्गसे जम्मू पधारें तो रास्ता छोटा भी होगा, और इस नवीन मार्गसे उधरकी जनताको भी महान् लाभका कारण प्राप्त होगा!

महाराज श्रीने अगले दिन लाइनके रास्ते चलनेकी शुभाज्ञा प्रदान की। उस समय लाहौरके कई श्रावक भी साथ ही आए।

श्रीरामपुर–ता० १–३–४४ + १० मील चलकर वहांके गुरुद्वारेमें ठहरे। रातको महाराजश्रीका प्रवचन हुआ बहुतसे सिक्ख भ्राताओंने मांस और मदिराका त्याग किया। सिक्ख स्टेशनमास्टर बड़े ही भावुक थे।

नारंग–ता० २–३–४४ + $\frac{३४}{२४}$ मील। श्रीयुत बीजामल मेलाराम लाहोर वालोंकी डिस्पेंसरीमें ठहरे। कविराज–डॉ० दीनानाथ शर्मा बड़े प्रेमी और भक्ति विचार के भव्यपुरुष हैं। आपसे नारंग निवासियोंको औषध और आरोग्यका अतिशय लाभ मिलता है। रात्रिमें उपदेश भी हुआ।

बद्दोमल्ली–ता० ३–३–४४+$\frac{१०}{३४}$ मील। सनातन धर्मसभामें निवास किया। लाहोरके भाईओंने नगरमें मनादी कराई रात्रिमें "जैन धर्मकी उदारता" पर व्याख्यान हुआ। व्याख्यान समाप्तिके

अनन्तर, श्रीसनातन धर्मसभाके मंत्री महाशयने तथा, समस्त नगर निवासियोंने एक दिन और रहनेकी प्रार्थना की, तथा 'पुनर्जन्म'पर व्याख्यान प्रदान करनेकी जिज्ञासा प्रगट की।

आगामी रात्रिमें कथित विषय पर प्रवचन हुआ, भाषणके अन्तमें उक्त मंत्री महोदयने खड़े होकर जनतासे कहा कि आज तक ऐसा मधुर और आकर्षक व्याख्यान हमने कभी नहीं सुना। मैं तो यह मुक्त कंठसे कहता हूं कि वास्तवमें जैन ही आस्तिक हो सकता है। अन्यथा और और सम्प्रदाएँ कहती कुछ हैं, आचरणमें कुछ और ही देखा जाता है। साथ ही यह विज्ञप्ति की कि यथा समय फिर कभी यहां अवश्य आइएगा। यहांके लाला बुढामल—गोपिराम अरोड़ा भाई बड़े प्रेमी हैं।

नारंगाबाद—ता० ५—३—४४— । ४/४ मी० यहां शिवालयके पासकी कच्ची धर्मशालामें ठहरना पड़ा। रात्रिमें ग्रामवासियोंने महाराजश्रीका भाषण सुना फल स्वरूप कई खतरी भाइओंने मांस खाना छोड दिया।

नारोवाल—ता० ६—३—४४, ४/८ मी० । महाराजश्री का यहां जैन और जैनेतर सब ही लोग भक्ति प्रेम और बहुमान करते हैं, यहां दोनों समय लोग व्याख्यानका लाभ लेते रहे।

आज जम्मू नगरके १० श्रावकोंका डेप्यूटेशन आया, और महावीर जयन्ती पर जम्मू पधारनेकी जिज्ञासा प्रगट की। महाराजश्रीने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अनुकूलता रखकर स्वीकृति देते हुए फ़र्माया कि, यथावसर सनखतरा-ज़फ़रवाल-हबताल-बिशनाहके रास्तेसे जम्मू आनेका प्रयत्न किया जायगा।

अगले ही दिन स्यालकोटके सुश्रावकोंका एक बड़ा समुदाय भी आया। और उन्होंने एक दिन सत्संग लाभ लिया।

सनखतरा–ता० १०,११,१२–३–४४ ॥= ६०/८८ **मील** । यहां रात्रिमें सार्वजनिक व्याख्यान होता रहा। लोग निरे अंधेरेमें ज्ञान प्रदीप का लाभ पाते थे । हिन्दू-मुसलमान लोगोंसे कमरा खचाखच भर जाता था । यहांके श्वेताम्बर जैन भाइओंमें असीम और अभेद श्रद्धा पाई गई । उनकी तथा एक मुस्लिम महाशयकी प्रार्थना पर महाराजश्रीने वहाँ तीन दिन तक ज्ञानगंगा बहाई ।

ज़फ़रवाल—ता० १३–३–४४, ०/६७ मील । आर्यसमाज मंदिरमें निवास किया । पसरूर निवासी, ला. मुनशीराम जैनके प्रयाससे, रात्रिमें व्याख्यान हुआ । नगरके बहुतसे पठित लोगोंने सम्मिलित होकर लाभ लिया । उन्हें जैनमुनिओं द्वारा यह पहला ही प्रसंग मिला ।

हबताल–ता० १४–४–४४+ १०/७७ मी० । एक ऊँचे टीलेपर राममंदिरमें ठहरे । पं० रुद्रमणि हवल्दारने अतिशय सेवा की।

विशनाह–ता० १५–३–४४– १०/८७ मी० । जम्मू जैन संघ के बहुतसे भाई सन्ध्या होते होते आगए । ग्राममें खासी चहल पहल थी । चौकमें रातके आठ बजेसे १० बजे तक सार्वजनिक व्याख्यान हुआ । नगर निवासियोंने बडे ही चावसे सुना । और कुछ दिन निवास करनेकी जिज्ञासा प्रगट की । यदि ऐसे भद्रभावुकोंके क्षेत्रमें मुनिगण आकर धर्मोपदेश किया करें तो लोगोंमें जैन शासनकी बडी ही प्रभावना फैले । परन्तु आजकलके मुनिओंने तो बड़े बड़े शहरोंमें अड्डा जमा रखा है । दाल-मांडिएका स्वाद उन्हें

वहांसे निकलने नहीं देता। अन्यथा बड़े बड़े शहरोंमें दश-दश बीस-बीस साधुओंको पड़ियल डालनेकी क्या आवश्यकता है। खैर! हमारी समाजके भाग्यमें यही देखना बदा है?

जम्मू—ता० १६-३-४४+ $\frac{११}{१८}$ मील, आज महाराजश्रीका बड़े समारोहसे नगरप्रवेश हुआ। पंजाबकी अधिकांश जैनसमाजकी अपेक्षा यहां की जैन प्रजा सम्पयुक्त और सुधरी हुई है। यहां आपसमें प्रेमकी मात्रा अत्यधिक प्रमाणमें है। पक्षपातकी गंध तक नहीं है। गुणग्राहिता बुद्धि है। सब सम्प्रदायके सन्तोंको समान दृष्टिसे देखा जाता है। यहांका श्रावक-संघ धर्मानुरागी है। खत्रियोंकी खोखरान बिरादरिके हॉलमें भी महाराजश्रीका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। श्रीज्ञातपुत्र-महावीर भगवान की जयन्तीके दिनोंमें महावीर प्रभुके स्याद्वाद-सिद्धान्तोंपर खूब ही प्रकाश डाला गया। सब लोगों द्वारा मुक्त कंठसे यही सुनते थे कि, इस ढंगका समीकरण आज तक सुननेमें न आया। यहां के संघने तथा दिवान बहादुर श्रीयुत बिशनदासजी महानुभावने चतुर्मासकी विनती तथा कश्मीरदेशमें श्रीनगर तक विचरनेकी प्रार्थना की। उत्तरमें महाराजश्रीने संघको उत्तम मान देकर सुख शान्ति पूर्वक वहाँ पहुंचने को स्वीकृति प्रदान की। और ता० २४-४-४४ के शुभदिनमें कश्मीर की ओर विहार करनेका पूर्ण निश्चय किया।

जम्मूसे-नगरोटा—ता०२४-४-४४। ८ मील, जम्मूके सेंकडों भाई शतभिषक नक्षत्रकी भाँति और पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय सिंध-बंग-पार्वत्य प्रदेश पावन कर्ता श्रीपुप्फभिक्खु मार्गशीर्ष नक्षत्रके समान उदीयमानसे भासते थे। पेंलेसके सन्मुख रामनगरके समीप श्रावक

वर्गने श्रीमंगलपाठ श्रवण किया। तदनन्तर महाराजश्रीने अनेक नरपुंगवोंके साथ पहाडीभालके गर्भमें सड़क द्वारसे प्रवेश किया। सड़क कुटिल मानव या पक्षपाती यतिकी तरह टेढी और सुन्दर प्रतीत होती थी। गिरिराजकी वृक्षपंक्तिएँ सुमन सौरभकी बौछार कर रहीथीं। चारमील तक तो धूपका कुछ प्रभाव न हुआ। नगाधिपति अपनी हरी चादर तानकर दूर तक असीम वितानके रूपमें पड़े थे। तवी-नदीके गोल गोल वट्टे गिंदौडों और खर्बूजोंकी रूपरेखा की पूर्तिकर रहे थे। तवी अपनी मस्तानी चालसे नवोढा-नायिकाका सा भाव बता रही थी। पहला पड़ाव नगरोटाकी धर्मशालामें हुआ। जम्मूके सैंकड़ों श्रावकोंने पहाड़ियोंका मन मोहित कर लिया। हलवे की प्रभावनासे उनका सत्कार किया। दो ग्रामोंमें डोंडी फिरवाई। सूचना मिलते ही नियत समय पर रात्रिमें बाज़ार और ग्रामके सेंकडों ब्राह्मण बंधु उत्साहमें भरकर उपदेश श्रवणार्थ आये। बहुतसे भाई तो निरामिषाहारी हैं। मात्र देवताको बकरेकी बलि करते हैं। प्रभावित होकर लोगोंने मान लिया कि हम सब भविष्यमें देवताको पशु बलि भी न करेंगे। इन लोगोंने दोपहरमें आहार बड़े भावोंसे दिया था। आहारमें मकई की मोटी और विशाल रोटी अधिक मिलती है। यह अन्न मीठा और स्वादु होता है। और देशोंकी मकाईकी अपेक्षा सरस होता है। आकृति ठीक लसनिए जैसी मिलती जुलती है। यहांके लोग गेहूं कम खाते हैं। परन्तु शाक करमका खाते हैं तब भत्ता (चावल) नसीबसे ही पाते हैं।

दुमेल-१२-२० ता० २५-४-४४-

रास्तेमें एक ओर चिकनी रेतके तथा कहीं बालुके ऊंचे पहाड़

देखनेको मिले, और दूसरी ओर कलकल नाद करनेवाले नाले, उनके झर झर शब्दसे गिरिकंदराकी प्रतिध्वनि वायुमंडलमें गूँजन करती थी। बहुत दूर चलने पर चीलके वृक्षोंके पाससे गुजरने लगे। ये वृक्ष अभी छोटे कदके ही लगते थे। फिर लोगोंकी धारणमें पूरे १०० वर्षके थे। प्रपात अपनी मद भरी प्यालीसे उन्मत्त होकर पगलीकी जवानीकी सदृश नीचेकी ओर ढुरक कर मद्यपके भावमें अवनत होकर बहे जा रहे थे। व्याघ्र और चीतोंकी नाँदे दूरसे दीख पड़ीं। दुर्जनके दाव की तरह रातको ग्राम्य पशुओंको हानि पहुँचा जाते थे। एक भयानक उपल खंड पूर्ण पगडंडी ने महाराजश्रीके पैरमें चोट भी पहुँचाई और दर्द मुझे हुआ। महाराज साहेब बाल बाल बच गए तथा सँभल गए, किंतु उतराई की समाप्तिके बाद चढ़ाईके प्रसंगमें छातीके तस्मे टूटने लगे। दम फूलने लगा, श्वास उफनने लगा। पूज्य पादश्रीकी जरती देहसे पसीना छूट पड़ा। रह रह कर प्यास बढ़ने लगी। मुँह सूखता था। इतना कुछ सहते सहते बहुत विलम्बके अनन्तर कठिनाई पार करके सड़क पर आगए। दो मीलके चक्करसे तो बचे। पर श्रम अधिक करना पड़ा। थोडी देरमें (टंडल) गुफाका प्रमुख द्वार आगया। यहाँ दो चार दुकानें हैं। सर्कारी चौकी है। मोटरवालोंको २२॥ रुपए टैक्स देना होता है। यह गुफा छोटीसी है। प्रकाश भी काफ़ी है। शीतल और शान्त है। यों तो एक फर्लांग भी नहीं है। कहीं कहीं पानी टपकता है। परन्तु भीगनेका डर नहीं। आनन फ़ाननमें पार कर गए। पार गए तो दहनी ओर धर्मशाला दीख पड़ी। यह किसी रानीने बनवाई है। कुंड भी

सुन्दर है, पर बर्साती पानी भरता है। स्कूलके चंचल बालकोंकी तरह शोर मचाने वाले प्रपात और चश्मे यहां नहीं हैं। पर्वतराज हरियाले बनड़ेकी तरह शोभित तो हैं परन्तु निर्मोहक अवस्था होनेके कारण यहां अपने इनके हृदयसे आंसू नहीं निकालते। रचना भी कच्ची मट्टीकी ही है। आकाशके आंसू पड़ने पर आपका हृदय फटकर धराशाई हो जाता है। तब कई दिन तक प्रवासियों का मार्ग रोके पड़े रहते हैं। पहाड़ी मजदूर इतने निर्दय हैं कि बेलचोंका प्रहार मार मार कर इन्हें गर्तशायी कर देते हैं, वहां आप शेषशायी बन जाते हैं।

दो मीलका मार्ग समाप्त होने पर छोटे छोटे नाले द्विजराजके यज्ञोपवीत सरीखे दीख पड़े कारण दक्षिण की ओर ग्राम भी ब्राह्मणोंका ही बसा है। यहां से एक मील आगे चले तो दुमेल पडाव दीख पड़ा। अमृतसर वालों की धर्मशालामें आसन जमाया। किसी समय यह बड़ी सुन्दर रही होगी। परन्तु अब तो पशु बांधनेके बैलखानेसे कम नहीं है। गंदगी और जालोंकी भरमार है। बेचारी बुढ़ापा छा जानेके कारण कमरसे झुककर टेढी हो गई है। खड़ी खड़ी मानो अपने जीवनकी अन्तिम घडिएँ गिम रही है। पर अभी प्रलयके बहुत दिन शेष हैं। कुछ भी हो हमने वरांडेके उपलचौकों पर आसन रक्खा। दिन तो आजका गर्मागर्म चाय जैसा ही रहा, मगर रात ठंडी खीर सी बन गई। सवेरा होते होते आकाशने काले बादलोंका तहमद पहन लिया। उत्तरकी दिशामें बिजली भी अपनी क्षणभंगुर-चमक दिखाने लगी चमत्कार वैष्णवी देवी वाले पर्वतकी ओर से था। मानो वह लंबी छुरीसी लाल लाल जिव्हा निकालकर नफ़ाखोर दानवोंको विव्हल करनेके समान भाव

बता रही है। कुछ कुछ शुभोदयकी बूंदें भी आईं। भव्य जनोंके हृदयकी सदृश महीतल शान्त और सुखद प्रतीत होने लगा। परन्तु दिनका उदय होते होते सब माया जाल लुप्त हो गया। और नभोमंडल परब्रह्मकी भाँति निर्मल दीख पड़ने लगा। तथा केवलज्ञानके समान चमचमाता तेजस्वी सूर्य उदय होगया, एवं चराचर जगत् हथेली पर रक्खे हुए आमलेकी तरह भासमान होने लगा, एतद्देशीय लोगोंके भाव अच्छे हैं, आहार और छाछ पुष्कल मिलती है। ब्राह्मणोंकी अन्न-पानीकी सेवा भुलाने योग्य नहीं। यहां से एक रास्ता वैष्णवी-देवीको भी जाता है। इसीसे यह दुमेल कहलाता है।

टिक्करी–९।२९ ता० २६–४–४४

पगडंडीके रास्ते ख़ासा उतार था। आहा! वह सामने ही झज्झर नदीका पुल दीख पड़ा। झज्झर तार स्वरमें झर झरके गीत गा रहा था, शिक्षकके रूपमें लोगोंको सीख दे रहा था कि, मेरा भूतकालमें भी यही स्वर था, और अब भी वही स्वर है, एवं भविष्यमें भी इसी प्रकार आलापता रहूंगा। मेरे स्वर-ताल-लय-मूर्छना और नाद-ध्वनिमें कुछ परिवर्तन नहीं आ सकता। तीनों कालमें मेरा वही एक राग है। द्रव्यार्थिक दृष्टिसे मैं एक रसमें प्रवाहित हूं, परन्तु पर्यायार्थिकतया गर्मी-सर्दी तथा बरसातमें घट बढ़ जाता हूं। किन्तु मेरा अत्यन्ताभाव तो नहीं। इसी भाँति जो लोग मेरे समान मुस्तक़िलमिज़ाज होते हैं वे अक्षय मुक्ति पद पाकर मुझसे शाश्वत गुणका पाठ ले सकते हैं।

यह झर्झर नाला बड़ी दूरसे आया जान पडता है। पांच छ मील तक इसके किनारे किनारे चलते रहे। जब इसे ऊपरसे देखते थे तो ऐसा भला मालूम होता था, मानो दयालु कुबेरने अपनी चाँदीकी

लक्ष्मीका भंडार झज्झर नालेमें पत्थरोंकी सफ़ेदी के बहाने बखेर दिया है। सच मुच आंखोंको यही भ्रम होता था। साथमें चलनेवाले स्वयंसेवकों की भी यही धारणा थी।

अब अतिशय शीतल प्रदेश आने लगा चीलके बूढ़े बूढ़े वृक्ष यात्रियोंपर ठंडी माया की बौछार करते जान पडते थे। मैं पगडंडी चलनेका अभ्यास बढ़ाने लगा। १० बजते २ टिकरी पड़ाव पर आगए। परन्तु महाराजश्री तो राजमार्गसे प्रकृतिकी शोभा निहारते हुए भी उसी समय पधारे। रैस्टहाउसमें स्थान मिला। आसपासके ग्रामोंसे आहार पानी लाए। कुलत्थ—धान्यकी उष्णवीर्य दाल थी। छाछ अतिशय खट्टी थी। परन्तु क्षुधा अधिक होनेके कारण सब कुछ अमृत ही अमृत भासता था। आजका दिन तर और ठंडा रहा। कुछ वर्षा भी हुई, जिससे सर्दीकी मात्रा काफ़ी बढ़ गई। बैसाखमें माघका सा आनन्द छा गया। शरीरको बड़ी शान्ति मिल रही थी। आज की वर्षाका प्रभाव आगामी दिनके लिए बड़ा ही अनुकूल सिद्ध हुआ।

ऊधमपुर—१३।४२ ता० २७—४—४४

आजका रास्ता उतराईका ही रहा। मार्गमें दोनों ओर की पर्वत मालाएँ भली मालूम देती थीं। जहां तहां आबशार (प्रपात) और नालोंकी भरमार थी। अनेक सुकोमल और नव रंगी जड़ी बूंटिएँ अपनी हरी भरी जवानीका रंग जमा रही थीं। मार्गमें पहाड़ी लोगोंको चलते हुए महाराजश्री प्रतिबोध देते थे। वे भी आपको अचरज भरी निगाहसे देख कर सहम जाते थे। युवक स्वयंसेवक उनसे मीठी मीठी बातें करते हुए उन पहाडियोंको बड़ा ही मान देते थे।

अन्तमें महाराजश्री उनको मांस न खानेका वरदान प्रदान करते थे। आज ६०–७० से अधिक पहाडियोंने मांस खाना छोडा। प्रसन्नता प्रगट करते हुए उन्होंने वीर प्रतिज्ञा ली। बहुतसे महाशय कृतज्ञताकी दृष्टिसे प्रणाम करते थे।

ऊधमपुर ज़िला समझा जाता है। दो घर ओसवालोंके भी हैं। देवराज डाक्टर जैन ही हैं। अजैनोंमें भक्तिकी मात्रा खूब थी। यहां तो ५० साधुओंको भी आहार पानीका योग प्राप्त हो सकता है। महाराजश्रीका व्याख्यान रात्रिमें होता था। नरनारी पुष्कल संख्यामें लाभ लेते थे। सैंकड़ों मनुष्योंने मांस मदिरा त्याग किया। लोगोंमें प्रेमरस का प्रवाह बह चला था। धनराज महाजनने सकुटुंब मांस भोजन आजन्मके लिए छोड़ दिया। उसकी माता सरल एवं भक्ति वाली है यह प्रेरणा उनकी ही थी।

चनेनिछड्ड—१६–५८ ता० ३०–४–४४

१२ मील चलनेपर एक पुल आता है। वह अपने जीवनमें प्रतिपाती समदृष्टीके समान अनेक वार टूट चुका है। यात्रियों को कई दिन रुकना पडता है। श्रीमान् लाला दसोंधीरामजी महानुभाव (एस. डी ओ. जि० होशियारपुर) श्याम चौरासी निवासीने देखते ही महाराजश्रीकी चरणवंदना की। आपकी अन्तर्मुखी आत्मासे भक्तिका स्रोत बह निकला। साथ साथ चलते हुए वार्तालापमें धर्म चर्चा छिड़ी। और घरोंथल (धरणीस्थल) के रेस्ट-हाउसमें विश्रामकी विनती की। महाराजसाहेबने उनकी प्रार्थनाको मानदेकर कुछ देर विश्राम किया, आहार पानीका सुयोग भी लगा। आप इतने

प्रेमी होगए कि आपने श्रीसंघ जम्मूकी सेवामें ५) रुपये भी भेंट किए और बड़ी श्रद्धा प्रगट की। आपकी भावनाएँ बड़ी उच्चकोटिकी हैं। २ घंटे विराम पाकर चनेनी छज्जुकी ऊंची धर्मशालाके ऊपर-वाले कमरे में ठहरे। सर्दी अतिशय थी। देह कभी कभी काँप उठती थी। रातको गर्म कपड़े ओढ़ने पर ही निद्रा ले सके। वह भी कोठडीके किंवाड़ बंद किए जानेपर। यहां कठोर गर्मी के दिनोंमें भी पोह माघ की सर्दीका आनंद मिलता है। बहुत नीचे जाकर **चनेनि स्टेट** बसता है। जम्मूराजधानीमें यहांके राजाको बड़ा सन्मान प्राप्त होता है। इनके राज्यमें चील और दयार कसरतसे हैं। लक-ड़ीका आय-लाभ बहुत है। गर्मियोंमें यह नरेश बड़ी ऊंची पहाड़ीके ऊपर वाले बंगलोंमें समय काटता है। वहां की उंचाई ९००० फुटसे अधिक है। बड़ी ही तरी और ठंढक है, बर्फ़ भी बहुत रहती है।

कुद—१२-६५ ता० १-५-४४

डेढ़ मील सड़कसे चलने पर एक बावड़ीके पाससे सीधे पगडंडीसे चढ़ना आरंभ किया। चढ़ाई अधिक कठिन तो न थी। परन्तु ज्यों ज्यों ऊपरकी ओर बढ़े, त्यों त्यों शीतल और मंद पवनसे शरीरको चैन मिलता गया। दियारका जंगल अधिकांश बड़ा ठंढा होता है। वायु चलने पर उसकी नरम नरम कोंपलोंवाली शाखाएँ सायँ सायँ करने लग पडती थीं। राजयक्ष्मा जैसे रोगी यहां पर आरोग्य-लाभ बहुत शीघ्र पाते हैं। जल वायु स्वास्थ्यप्रद है। प्रदेश बड़ा ही मनोरम-निर्जन एवं सुहावना है। वास्तवमें सच्चा साधु ऐसे विजन स्थलमें ही स्वाध्याय-ध्यान और कायोत्सर्गकी साध पूरी कर

सकता है, संभव है किसी समय चौथे आरेके मुनिराज ऐसे एकान्त स्थानको ही आत्मकल्याणके लिए चुनते हों। परन्तु आज ऐसे स्थान व्याघ्र और चीतोंसे आकीर्ण हैं। आजकलके साधु तो शहर की गंदी गलियोंके समीपवर्ती उपाश्रयको ही अधिक पसंद करते हैं। वन निवास तो विसरा ही दिया। तभी तो वे आध्यात्मिकतामें निरे कोरे रह गए। ऐसे वनोंमें बसे विना न तो उच्चकोटिका विद्याभ्यास ही हो सकता है, और न यौगिक क्रियाओंमें सफलता ही मिल सकती है?

हाँ तो आज महाराजश्री ७००० फुटकी ऊँचाई पर आगए हैं। दूरवर्ती पहाड़ोंकी थोडी थोडी हिम दिखाई देने लगी। मानो प्रकृतिमाता के छोटे मोटे खादीके स्वच्छ वस्त्र सूख रहे हैं। बर्फ़ानी दृश्य अतिदूर रह कर हमारी आँखोंमें यह भ्रमणा पैदा करते थे, कि मानों इन्द्रका भण्डारी वैश्रवण अपनी चाँदीकी सिल्लिएँ भूल गया है। वास्तवमें कुद बड़ी ही ठंडी जगह है। यहां माघके से शीतल प्रहार सौतके ताने मेहणे की भाँति चुभते थे। जम्मू निवासी श्रीमान् लाला खन्ना साहेबके सड़कस्थ भव्य भवनमें ठहरें। यह प्रदेश चनेनी स्टेट के अधिकारमें है। श्रीमान् **वज़ीरे-आज़म दीवान श्री जसवंतरायजी साहेब** तथा **श्रीयुत पंडित पृथ्वीनाथजी** महानुभाव (प्राईवेट सेक्रेटरी) ने आकर महाराज साहेब के दर्शनोंका लाभ लेकर धर्मोपदेशका वरप्रसाद प्राप्त किया। फल स्वरूप मांस-मदिरा भी छोड़ दिया। श्रीनगरसे पुनः लौटते समय फिर चनैनी पधारनेकी विनय की।

बटोद—१३।७६—ता० २-५-४४

यह जगह भी बहुत ठंडी है, यहीं से एक सड़क भद्रवाह किश्टवाड़को

जाती है । आगे चंबा स्टेट होकर गुरुदासपुर चले जाते हैं । यहाँ निवास गुरुद्वारेमें किया । जिस समय डंडीके रास्तेसे दियारके महावनसे गुज़र कर पत्तनी टाप की सडक पर चढ़े । तब सब चढाई समाप्त होती है । ७५०० फुटकी ऊँचाई है । यहां आते ही महाराजश्रीकी दुर्बल देह अतिशय शीतकी बहुलतासे काँप उठी । वैशाखके दिनोंमे भी दांतोंकी जबाड़िएँ बज उठीं । किन्तु मन सबके प्रसन्न थे । कोई हतोत्साह न था । सब अध्यात्मपथके पथिक थे ।

इस शीतप्रधान देशमें अनेक औषध-जड़ी-बूंटी आदि चमक रहीं थीं । यहां वह औषधि भी पाई गई है, जिसका उपयोग भगवान-ज्ञातपुत्र-महावीर-प्रभुने रेवती गाथा पत्नीके घरसे पा कर किया था । भगवतीसूत्रकी शब्द रचनाके अनुसार उसे मज्जार (जटामांसी) कहते हैं । इसका अधिक विवर्ण पढना चाहें तो महाराजश्रीके कर कमलों द्वारा लिखे हुए "ज्ञातपुत्रका उज्वल-शासन" नामक पुस्तकमें पढें । उसमें आपने उन छहों सौत्रिक-पारि-भाषिक शब्दोंका खूब ही स्पष्टीकरण किया है । यहां यह जड़ी पुष्कल रूपमें पाई जाती हैं ।

इसके अतिरिक्त शामली वृक्ष भी देखे गए हैं । महाराजश्रीने उसके पृथ्वीपर पड़े हुए सूखे पत्र बताकर फ़र्माया, कि इसका वर्णन सूत्रोंमें वर्णित है । यह वही शामली कूड वृक्ष है । आरेके समान इसके पत्ते हैं । देह या पैरमें चुभते हैं । तथा अधिक लगनेपर खून तक निकलनेकी संभावना है । यह वृक्ष श्री महाराजके कथनानुसार ७-८ हज़ार फुटकी उंचाई पर होता है ।

रामबन १८।९४ ता० ३-५-४४

पीछे पड़ावके पास आने पर छल छल करता हुआ चुनाव कर्क-

शाके कर्कश शब्दोंमें बहता दीख पड़ा। यहींपर जम्मू स्टेटका **'कालापानी'** नामक स्थान है। ऊंचे एवं गोल पहाड़ पर गजपातका क़िला है। कठोर पाप करनेवाले अपराधीको यहीं किसी समय रक्खा जाता था। एक ओर ऊंचेसे प्रपात भी गिरता है मानो चुनाबके शिरमें तेल डाल रहा है। या चुनाब को हाथमें हाथ मिलाकर मुलाक़ात कर रहा है। सब नाले इसी प्रकारका शिष्ट व्यवहार करते जान पड़ते थे। रामवन चुनाब नदके तटपर है। किनारे पर ऊंची टीन जड़ी धर्मशाला है। चुनाब के छल छल शब्दकी तर्जना (झिडकिएँ) और मच्छरोंकी भिनकारसे नींद लेना कठिन हो पड़ा। परन्तु अधिक थकावटके कारण नींदने ठीक गंभीर आँखोंमें अपना अड्डा जमा ही लिया। तदनन्तर "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" वाली उक्ति चरितार्थ हो पडी।

रामसू— $\frac{१४}{१०८}$ मी० ता० ४–५–४४

आजका प्रदेश बडा बिकट और भयंकर है, किन्तु शीतल है। बैसाखका अन्त है, मगर माघ मास के समान सुबकियाँ यहीं आती थीं। कहीं रास्तेमें भयावह पहाड़ दीख पड़ते थे। कभी दुःखद उंचाई चढनेका अनुभव होता था। कहीं चश्मों का कल कल नाद सुनाई पड़ता था। कभी मोटरका हॉर्न बज कर सम-सुख-समाधिका भंग कर डालता था। यह लो, डिग डिग कर फिसल पड़ने वाला डिगडोलका पड़ाव आगया। इसे सब लोग बड़ा ही खतरनाक रास्ता कहते हैं। यहां के पहाड़से पत्थर जल्दी २ डिग कर गिरते रहते हैं। लोग दबकर भी मरे हैं। इसीलिये यह स्थान डिगडोलके नामसे प्रसिद्ध हैं। यहीं खूनी नाला भी है। न जाने कितने अनाथ

मनुष्य-पशुओंने जानें दी होंगी इसी लिये यथानाम तथा गुण 'खूनी नाला' नाम पड़ गया।

अधिक क्या लिखा जाय यह पर्वतीय स्थल भयंकरता के अतिरिक्त मनोरम एवं सुन्दर भी लगता था। एक स्थानको निगाह उठाकर देखनेसे ऐसा भला मालूम पड़ता था मानो इसकी रचना V. विक्टरीके आकारसे कुछ भी कम नहीं है। यह प्रकृति माता की प्राकृतिक तथा सुंदर V. की रचना अपने आपको सिद्ध करती है कि हमारी अवस्था अनादि अनन्त है। हमारी सृष्टि साकार है किसी निराकार व्यक्ति द्वारा हमारा निर्माण नहीं हुआ। अपने स्वभावानुसार अपने आप बनते बिगड़ते रहते हैं। और फिर उसी प्रकार ध्रुव हैं। हम उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यताके स्वभावसे समलंकृत हैं। हमारा कोई मालिक नहीं है। हम अपने स्वतन्त्र गुणमें सन्नद्ध हैं। हमारे कितने ही मनोनीत मालिक बने, किन्तु अन्तमें हमारे ही गर्भमें विलीन हो गए। उनके नामका पता निशान हमारे ऊपर ही अंकित है। वे हमारा पक्ष लेकर भी हार गए। अतएव असली विक्टरीविजय हमें ही हस्तसिद्ध है।

इस मार्गमें आगे चलकर मकर-कोट बस्ती है। असलमें मर्कट कोटसे बिगड़ कर मकर-कोट हो गया है। यहां मर्कट-बंदरोंकी बहुलता है। ये बंदर कभी कभी आदमीतकको भी मार डालते हैं। अर्थात् ऊपरके पत्थरको छेड़ देते हैं, वह घिसर कर नीचे आ गिरता है। तब सड़कपर चलनेवाले या आराम पाते यात्री दब कर मर जाते हैं। महाराज श्रीने भी एक ठंडे स्थानपर कुछ देर विश्राम लेना चाहा था परन्तु सड़कके बारामासियोंने आकर निवेदन किया कि, यह निरा-

पद स्थान नहीं है। उपद्रवी बंदरोंसे यहां सतर्क रहना चाहिए। गत वर्ष एक यात्रीकी मृत्यु इसी तरह हुई थी। अतः इस १२ मील के प्रदेशमें किसीको भी निर्भय होकर न बैठना चाहिए।

यहां मार्गमें नीचे बांई ओर एक सूखा वृक्ष भी देखा। जिसमें १५–२० स्थानों पर गोल और सफ़ेद रंगके बट्टे चिपटे हुए थे। यह प्रकृतिकी अपनी कुछ निराली ही शान थी। अधिकांश वृक्षोंपर फल ही लगते हैं। पर पत्थर लगे हुए यहीं देखे गए।

बहनाल ता० ५–५–४४, १०-११८

यह प्रदेश अतिशय शान्त व सुरम्य है। पद २ पर निर्मल जलसे भरपूर गहरे नाले बहते हैं। छल छल शब्दका नाद प्रतिध्वनित होता रहता है। मार्गके कई प्रपात विवेकभ्रष्ट मनुष्यके समान नीचे गिरते देखे गए। जिनकी याद अब भी आती है। इस सुंदर भूधर प्रान्तमें यत्र तत्र जान्हवीको आकाशसे गिरते देखा है।

मार्गमें जज साहेब श्रीमान् पं० श्रीचंदजी महानुभाव मोटरसे उतरे और भक्तिपूर्वक गुरुमहाराजकी चरण वंदना की। आप बड़े उदार न्यायनिष्ठ और सुशील विचारके हैं। फिर आप वहनालके धर्मालयमें भी मिले।

क़ाजीगुँड—४०-१५८ ता० ६–७–५–१९४४

आजका प्रवास सबसे कठिन समझा जाता है इस पहाड़को पीर पंजाल कहते हैं। यह ९२०० फुट ऊंचा है। पूरी २० मीलकी चढ़ाई और उतराई है। इसका दक्षिण भाग गर्म है। उत्तरका ठंडा है। यहां पवन बड़े बेगसे चलता है। यह मार्ग दण्डकारण्यके समान भयानक एवं दुर्गम दुर्गकी भाँति है। सबको कुछ न कुछ

शारीरिक दंड मिला करता है। महाराजश्रीकी कृपाके अनुगामी होकर इस भीषण चर्या परिषह सहनेके लिये सब तैयार किए गए। सवेरा होते ही आज इसके अन्त लेनेकी ठानी। पाँचमील सड़क २ चल कर सड़क को बांई ओर छोड़ दिया। दहिने ओर की पगडंडी पकड़ी। साधारणसी चढाईके बाद 'तकिया' बस्तीको दहिने छोड कर चढ़ाई आरंभ होती है। वायुका वेग क्षणभरके लिए कुछ तीव्र हुआ। कुछ पतले पतले बादल आकाश मार्गमें गुप्तचरकी भाँति आए और चले गए। उस समय महाराजश्रीके मुखसे यह गीत निकला।

"वारीदल ऊपर मँडराए, गर्ज गर्ज कर देते ताल। बिजली की तीखी भौंहें चमकीं, वायुका तांडव विकराल ॥ पाँच मीलकी कठिन चढ़ाई, ऊपर नभका हाल बेहाल। इस कारण सब जन चिंतित, अब कैसे लाँघें पीर पंजाल ॥ × × ×

एक मील तक तो आरामकी चढाई चढते रहे। सड़कके मोड़पर आकर बैठे। और पेट भर कर विश्राम लिया। कुछ समयके अनन्तर संघकी मोटर आगई। संघके सब स्वयंसेवक उतर पड़े। कुछ देर आमोद प्रमोद होनेके अनन्तर मोटर चलीगई। महाराजश्री एक मील तो सड़कके मार्गसे चलते रहे। किसी भारी-कर्मा ने अटकल पच्चू ग़लत रास्ता बता दिया, तब दहिनी ओरकी खड़ी पगड़ंडीसे चले। पहाड़ अधिकांश कच्चा था। कहीं कहीं बर्फ़ भी चोरकी तरह छुपी पड़ी थी। १०० क़दमके बाद कर्मयोगसे खड़ी पगडंडी चलना पड़ा। यह कराल और खड़ी थी। १०—२० गज़ चढनेके पश्चात् सांस फूलनेके कारण एक मिनिट खड़ा रहना पड़ता था। छातीके

तसे हिलते थे। किसी तरह १ बजे तक टंडलके पास आए। यह गुफा एक फर्लांग लंबी है। इस पर असीम बर्फ़ लदी हुई है। इसी कारण कहीं कहीं पानी भी टपकता था। पानीकी बूंद गुल्मेखको ठोकनेकी भाँति कठोर प्रतीत होती थी। सड़कमें कीचड़की बहुलता थी। पैर बर्फ़से ठंडे पड़गए थे। किसी तरह उसे पार तो किया, यह कीचड़ देहलीके किनारी बाज़ार-या तिराहे जैसा फिसलनेवाला था। इसमें अधिक अंधेरा न था, दो मिनिटके बाद उत्तरकी ओर आगए। पार होते ही बर्फ़की बड़ी बड़ी दीवारें दोनों ओर लगी हुई दीख पडीं बीचमें सड़कसे गुज़रते समय गर्मी लगती थी। पारकी सड़कपर २८ पारसी गृहस्थ दो मोटरोंसे उतर कर बर्फ़की होली खेल रहे थे। एक दूसरे पर बर्फ़के लौंदे फेंकनेका खेल इन्हें दिग्मूढ कर रहा था। उनसे पूछा कि भाई! इतना भान भूले? उन्होंने उत्तरमें निवेदन किया कि हमारे बंबई प्रान्तमें यह वस्तु कहां? और ये दृश्य तो स्वप्नमें भी नसीब नहीं।

अब इस ओरसे उतराईका आरंभ होता है। परन्तु सड़क चलनेसे फेर बहुत पड़ता है। सड़क सटकन सर्प के समान बांकी टेडी ९-९ आँटे खाए हुए पड़ी थी। सीधी पगडंडीका मार्ग बर्फ़से ढँका हुआ था। एक पतली सी पगडंडीसे उतरना आरंभ किया। यह इतनी कठिन और साफ़ खड़ी डंडी थी, कि जरासी चूक पड़ जाय तो कई सौ फुट नीचे आसानीसे पहुँच जाय। तब अंगभंग होनेमें क्या संदेह रहे? यह ज्ञानी महाराज जानें। छद्मस्थके बसकी बात नहीं। किन्तु साता वेदनीयका प्रबल उदय रहनेके कारण किसीको कोई क्षति न हुई।

ऊंटसे किसीने पूछा कि भाई ! ऊंट ! चढ़ाई पसंद है या उतराई ? उत्तरमें ऊंटने कहा कि दोनों पर लानत ? हमने तो समझा था कि चढ़ाईमें ही तने टूटते हैं, लेकिन उतराई को देखकर इतने चकराए कि चढ़ाईकी कठिनाई ही भूल गए ।

मार्गमें कई जगह बर्फ़ने थोडा थोडा रास्ता रोक रक्खा था विवश होकर तीन वार बर्फ़परसे भी गुज़रना पड़ा । यह प्राकृतिक दंड था। इसे भी जन्मान्तरके बदले देकर भोग लिया ।

उतरते समय बीहड़ प्रदेशसे गुज़र रहे थे। सँभल सँभल कर पैर रखनेका अभ्यास बढ़ा रहे थे । बड़ी कठिनाई भोगकर सड़क पर आए ही थे कि अकस्मात् एक लारी आई, और एकदम बर्फ़ानी टीलेके सामने खड़ी हो गई । भाई बलवन्तराय उसमेंसे सहसा उतर पडे और पगडंडी बताकर पथ प्रदर्शकका काम देने लगे । यह घटना ऊपरके मुंडेके पासकी है । अब उतराई कुछ सुगम थी । मगर जंगली झाडी दोनों ओर बड़ी सघन थी । यहां साँप बहुत पाए जाते हैं । परन्तु भुजंग अर्थात् फणियर नहीं है । कोप भी अधिकांश कम है । किन्तु फिर भी साँप साँप ही होता है, जंगल पार करके नीचे वाले मुंडेके रेस्ट-हाउसमें कुछ देर विश्राम किया । यहांसे काजीगुँड ५ मी० है । साँझ तक काज़ीगुँड पहुँचे । यहां २-४ घर जैनोंके सीज़नपर होते हैं । लाला हँसराज-बलवंतरायका नाम विशेष उल्लेखनीय है । आप कश्मीरी मेवे और फलोंकी आड़तका काम करते हैं ।

काज़ीगुँडसे श्रीनगर ४४ मील रह जाता है । साम्य-भूमिका आरंभ यहीं से होता है । ३६ मील चौडा और ८० मील लंबा यह

मैदानी इलाका, हरा भरा और शालिकी क्यारीयोंसे समृद्ध बडा सुहावना और स्वर्गका टुकड़ासा लगता है। कश्मीर की जगत्प्रसिद्ध सुंदरता विशेषतया यहांसे आरंभ होती है। कहीं अखरोटोंके वृक्ष हैं तो कहीं बादामोंके बाग़ हैं। कहीं नाख-सेव-गिलास आदि मेवेदार उपवन अपनी निराली छटा दिखा रहे हैं। चुनार नामक चीनी-सघन वृक्षको देखकर कल्पवृक्ष की स्मृति हो आती है। यह आकृतिमें सौन्दर्य पूर्ण और उंचाईमें तीन ताड जितना है। इसके थड़का घेरा ५२ फुट तक का होता है। बड़के स्थान पर यहां इसे ही प्रकर्ष गुरुपद प्राप्त है। कुछ वृक्ष इस प्रदेशमें ऐसे भी हैं जिन्हें हिन्दू और मुस्लीम दोनों पूजते हैं।

यहां अगले दिन महाराज श्रीका व्याख्यान भी हुआ। हिन्दू और मुसल्मानोंने बड़े चावसे सुना लोग सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए।

अनन्तनाग—$\frac{१५}{१७३}$ मी०, ता० ८—५—४४

काजी गुँडसे खनाबल आनेपर सड़क छोड दी, और अनन्तनाग-वाली सड़क ली। यहांसे पहल गाँव चन्दनवाडी होकर लोग अमरनाथ जाते हैं। एक रास्ता खनाबलसे सीधा श्रीनगर जाता है। अनन्त-नागसे पहलगाँव २६ मील है। वहांसे चार पड़ाव अमरनाथ है। अमरनाथ सदैव हिमकी चादर ओढे रहता है। कई नालोंके पुल भी बरफ़के हैं।

काजीगुँडसे ४ मील चले थे, कि भाई बलवंतरायने विशुग्रामके लोगोंमें आकर जैन साधुओंका महत्व समझाया, तो वहां के सेंकडों भव्यजीव—पंडितलोग भागे आए, और महाराजश्रीका मार्ग रोक अनु-रोध करने लगे कि कृपा करके हमारे ग्राममें अवश्यमेव पधारें। और

हमें अपने श्रीमुखसे कुछ उपदेश करें, और संसारसे पार होनेका मार्ग सुझाएँ। आपके श्रीमुख-दर्शनकी अत्यन्त अभिलाषा है। उनकी अत्याग्रह भरी विनती पर महाराजश्रीका हृदय करुणा पूर्ण हो गया और सबको चलनेकी आज्ञा प्रदान की। १० मिनिटमें उनके ग्रामकी धर्मशालामें आकर ठहरे। बातकी बातमें ग्रामीण भद्रलोक और सब पंडित तथा माता-बहनोंसे कमरे खचाखच भर गए। एक घंटे तक महाराजश्रीका व्याख्यान बड़े चावसे सुना। अहिंसा भगवतीका सिक्का जम गया। उनके दिलपर आप जैसे त्यागमूर्तिका गहरा असर पड़ा। प्रवचनके अंतमें सब पंडितोंने प्रसन्न होकर यह विनय की कि— आज वैशाख शुक्ला पूर्णिमा है। हमने सब बर्तनोंको माँजकर बड़ी शुद्धि सफाईसे भत्ता (भोजन) बनाया है, अतः आज हमारे घरकी भिक्षा अवश्य ग्रहण करें; इससे हम सब आज कृतार्थ हो जायंगे। श्रीजी ने फर्माया कि, जब तक आप लोग सदा के लिए मांस खाना न छोड देंगे, तब तक आपके घरोंका आहार किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है। इस उत्तम संदेशको सुनकर दो चार शाक्त व्यक्तियोंके अतिरिक्त शेष सब पंडितोंने मांस न खानेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। कई पंडितोंने इस आशयके हस्ताक्षर भी किए। तदनन्तर जैन संघ जम्मू के स्वयंसेवकोंने पुस्तक प्रभावना बाँटी।

आहारमें भत्ता और करमका शाक लाए। इनमें अधिक भोजन देनेकी प्रथा है। हमारी अल्पाहार लेनेकी पद्धतिको देखकर ये पंड़ित बड़े चकित हुए और जैन साधुओंके तप-त्यागकी महिमाका मुक्त कंठसे बखान करने लगे।

इनकी पंडितानी वैसे तो अप्सरा और देव-अंगना के समान

अतिशय सुरूपा हैं, परन्तु पाक क्रिया का बनाना नितान्त जानती ही नहीं। मात्र करमका शाक और चावलका भात पकाना ही सीखा है। यदि भोजन या रोटी की आवश्यकता पडे तो नानबाईसे पकवाने दौडते हैं। यह ५६ भोगकी रसोई इन आमिषभोजियोंके भाग्यमें कहां बदी है।

इन पंडितोंमें विशेषकर ज़ेलदार साहेबके सुपुत्र और एक असेमबलीके मेम्बर महानुभावके भाव उल्लेखनीय हैं। बहुत दूर तक विदा करने आए। शुभ भावोंसे सब गद्गदायमान हो रहे थे। वापसी पर एक रात रहने की प्रार्थना भी की। इस प्रकार महाराजश्रीने विशु ग्रामका आरंभमें ही उद्धार किया। विशु ग्रामके पंडितोंका भक्ति चित्र हमारी आँखोंके सामने बार २ आता है।

चार मील चलने पर सड़कके ऊपर वनपु ग्राम आया। इसमें भी मनादी कराई गई चुनारके चारवृक्षों की सघन छायामें महाराजश्रीका १ घंटा प्रवचन हुआ। पंडित और मुसलमानोंने चावसे सुना। किन्तु इन लोगोंमें विशु जैसी भक्ति न थी। महाराजश्री की यह देशना खाली गई। वाममार्गी–विश्वनाथने महाराजश्रीको टालना ही चाहा।

साँझ होते होते अनन्त नाग पहुँचे। यहां चश्मोंकी अति या बहुलताके कारण अनन्तनाग नाम पड़ा है। नाग इस ओर चश्मेको कहते हैं। अनन्तनागके चश्मे पर ही ठहरे। यहां कई मंदिर हैं।

जैन संघके युवकोंने साँझ होते होते डोंडी फिरवाई। रातको बड़े समारोहसे व्याख्यान हुआ। एक हज़ार आदमियों से अधिक लोगोंने बड़े चावसे प्रवचन सुना। लोगोंमें भक्ति प्रेम और उत्साह फूटा पड़ता था। ऐसे क्षेत्रोंमें महीनों और वर्षों रहनेसे बड़ी सफलता

मिल सकती है। यहां एक चश्मा गंधक का भी है। पानी गर्म निकलता है। विशेषतया अनन्तनाग का चश्मा २४ घंटे निर्मल जलकी समृद्धिपूर्ण उमंगको लेकर बहता रहता है।

मटन $\frac{१}{१७८}$ ता० ९-५-४४

यहां मार्तण्डका मंदिर है, गया की तरह यहां भी हिन्दू लोगोंका विश्वास है कि मलमास (अधिकमास) में मंत्रोंद्वारा पित्रोंको नरकसे निकालकर उनका स्वर्गमें तबादला कराया जा सकता है। यहां पंड़ोंके ३०० से अधिक घर हैं। यात्रियों की आयको पाकर सम्पन्नता प्राप्त हैं। मगर इनके चरित्र बडे कलूटे हैं। इन्होंने महाराजश्रीको भी और लोगोंके समान तंग किया, और कहा कि आप अपना शुभ नाम हमारी बहीमें लिखाइए। मगर महाराजके तेजके सामने किसीने कान तक न फड़काया। एक पंडा बहुत बडी बही उठा कर लाया। शारदा (काश्मर्य) लिपिमें पढ़कर कुछ बताया, परन्तु अधिकांश भाग अशुद्ध प्रायः था। प्रतीत होता है किसी समय ये पंड़े लोग अपने यजमानोंके यहां गए हों और किसी से पूछ ताछ कर कुछ गप शप लिख लिया हो।

१२ बजे बाद एक गुफा देखनेका प्रसंग आगया। इसके विषयमें यह किंवदन्ती है कि यह गुहा जम्मू तक गई है और इसकी कई शाखें हैं। कुछ भी हो थोड़ा आगे बढ़ने पर शिवकी पिंडी स्थापित है। पासमें दो मट्टीके दिए पड़े थे। वाममार्गियोंका अड्डा प्रतीत होता था। कभी उनका बड़ा ज़ोर-शोर रहा है। न जाने कितनी अगणित अबलाओंका सतीत्व लूटा गया होगा। और

कितने मनुष्य और पशुओंने जानें होमी होंगी। किन्तु अबतो मात्र भग्नावशेष ही रह गया है। आगे किसी छोटीसी बस्तीके ऊपर (अमरनाथ वाली सडक पर ही) एक मंदिर गुफामें पाया गया। वहाँ बर्फ़ानी जल टपकने के कारण ठंडक अधिक थी। मगर इसमें भी वही वाममार्गियोंका ढंग था। पैसा पैसा यात्रियोंसे मांगनेकी रूढि है। यात्री खासे तंग आ जाते हैं।

तीसरे पहर जम्मू जैन संघके युवकोंने बस्तीमें घोषणा कराई, और साढे छ से साढ़े सात बजे तक का समय व्याख्यानके लिए घोषित किया। तीर्थके द्वार पर ही व्याख्यान हुआ। सेंकडों पंडित भी आए थे। उन्हें यह भ्रम था कि जैन नास्तिक होते हैं। परन्तु व्याख्यानके अनन्तर सुधारक विचारके पंडे और इतर लोगोंने मुक्त कंठसे यही कहा कि मुनिजीके आचार-उच्चार-व्यवहारसे स्पष्ट है कि वास्तवमें आस्तिक ये हैं। और हम लोग ईश्वरको मान कर सच्चरित्रके अभावमें नास्तिक ही हैं। साथ ही पंडेलोग महाराजश्रीका लोहा मान गए, कि असलमें हम ब्राह्मणोंके कर्म हमारे अपने शास्त्रानुसार भी नहीं। हम जो कुछ कर रहे हैं वह धर्मविक्रयके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बहुत से पंडोंने कृतज्ञता प्रगट की, और महाराजका धन्यवाद किया। श्रीकाणे पंडा तो अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ते थे। परन्तु अधिक संख्यक पंडे लोग बुड़बुड़ाए भी खूब, जानने के विचारसे भी किसीने कुछ न कहा। अन्तमें श्रीज्ञातपुत्र महावीरप्रभु के जयनादसे ध्वनित होकर यह महासभा विसर्जित हुई। लोगोंको जाते समय महाराजश्रीने यह भी कहा कि यदि किसीको शंका-समाधानके लिए समय इष्ट हो तो ९ से दश तक द्वार खुला रहेगा।

सुधारक भावके लोगोंने उसे आदरसे स्वीकार किया। किन्तु अधिक पोल न खुल जाय इस आशंकासे कोई न आया। सत्य है पैसेका मोह परमार्थका गला दबा देता है।

बीज बिहाडा— $\frac{१८}{११६}$ ता० १०-५-४४

सवेरा होते ही विहार किया, और चढाईके रास्ते से कुछ ऊपर गए तो एक बडी सुंदर नहर बहती हुई दीख पड़ी। यह नहर पुरानी है। पिछले समयके कारीगरोंका यह अचरज भरा नमूना है। यह नहर पहाडी इलाक़ेके खेतोंमें आबपाशी करती हुई नीचे समतल भाग तक चली गई है। यह पहलगामके नालेसे निकाली गई है। पहाड़ ही पहाड़ २०-३० मील चली है फिर कच्चे पहाड़ोंसे इसे नीचे उतारा है। यहां शालिके खेतोंमें इसीके पानीसे सिंचाई होती है। इधरके हातो लोग बडे ही श्रमशील हैं। कठोर मेहनतसे पेट पालते हैं।

नहर की पटड़ीसे २ मील चलने पर दहनी ओर पुराना मंदिर दीख पड़ा। उसके चौकमें जाकर किसी बड़े पत्थरके पट्ट पर महाराजश्री विराजमान होगए। वहांके **गाईड**-पंडितने आकर प्रणाम किया और बताया कि, यह सूर्य भगवान्‌का मंदिर है यह विक्रमकी नवीं शताब्दीमें बना है। परन्तु वास्तवमें यह किसी समय बौद्ध मंदिर रहा है। इसमेंसे मट्टीके कद्दे-आदम बहुतसे बड़े बड़े माट निकलें हैं। गाइडका कहना है कि इनमें किसी समय चावल भरे जाते थे। किन्तु अनुमान होता है कि ताड़ पत्रकी लंबी पुस्तकें इसमें सुरक्षित रक्खी जाती हों। क्योंकि उस समय अलमारी आदि बनवानेकी प्रथा न थी। इसमें चारों ओर ८४ कोठडियां बनीं हैं।

सबमें विद्यार्थियोंके रहनेके चिन्ह अनुमानित होते थे। पर मंदिर कभी विहारके रूपमें रहा है। फिर हिन्दुओंके समयमें इसके देह-सूत्रको खुरचकर शाक्तमत के अनुसार मूर्तिएँ बनवाई गईं। परन्तु सर्वनाशकी इस पूर्तिको सिकंदर बुतशिकन (जो अबसे अनुमान ६०० वर्ष पूर्व कश्मीर का बादशाह हुआ है) ने की। इसने मंदि-रमें लकडियां भरकर सब ओरसे जलवा कर भस्म करवा दिया। लेकिन उस समयकी रचना झांक झांक कर अपनी प्राचीनताकी रूप-रेखाका भान करा रही है। टूटा हुआ एक शिलालेख भी है। यहांके लोगोंकी धारणा है कि इसकी लिपि शारदा है, परन्तु पाली लिपिसे अधिकांश मिलती जुलती है। बहुत संभव है, यहां किसी समय पाली ही बर्ती जाती हो, और बादमें गुरुमुखीके समान अक्षरोंको बदलकर शारदा बना ली हो। पुरातत्ववेत्ता और महाबोधि सभाको इस पर प्रकाश डालना चाहिए।

उस समय बौद्ध धर्म कितना उन्नत होगा ये खंडहर उसका मूक परिचय देते हैं। लेकिन साम्प्रदायिकता की उद्दंडताने इसे फूटी आँखों न देखा और घड़ीमें घड़ुक्का बना डाला।

अछाबल—६ मी०

मटनसे इस सूर्यमंदिर विहारको दृष्टिसे अवलोकन करके समवे-दना प्रगट करते हुए महाराजश्री अछाबल गए, और शाहजहांके बाग़की बिचली बारादरीमें मालीकी आज्ञा लेकर विश्राम किया।

यह बाग़ किसी समय शाहजहांने अपने आमोद प्रमोदके लिए बनवाया था। इसमें राजकीय विलासिता के सारे साधन जुटाए गए हैं। पहाड़से एक बहुत मोटी धार वाला चश्मा निकला है। जिसमें

२४ घंटे छल छल होती रहती हैं। उस समय फ़व्वारे बड़े ही मोहक—आकर्षक बन जाते हैं। पिछली ओर नरक—कुंभी (पापकुंड) बनवाए गए है। इनमें मछलियोंके बीज रक्खे हैं। ये क्रमशः बड़ी होती हैं, और किसी दिन राजाकी गोलीका निशाना बनती हैं। ये बेचारी जान बचानेके लिए ऊपर उछलती हैं किन्तु सब वृथा, शिकारी लोग पाप कमानेकी खुशीमें उछल कूद कर अपनी बुज़दिलाना हिंसकताकी वीरताके गीत बघारते हैं। तब इसे नरककुंभी या पापकुंडके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।

आहार करनेके अनन्तर नगरके बहुतसे हिंदु मुसल्मान एक बडी संख्यामें आए। चुनारके वृक्ष तले प्रवचन हुआ। महाराजश्रीके उपदेशामृतको पी कर बहुतसे हिन्दू और अधिकांश मुसल्मानोंने मांस खाना छोड़ा। जैन संघ जम्मुके युवकोंने उनमें पुस्तक प्रभावना की मैंने अपने पुस्तकमें बहुतसे भव्य जीवोंके मांस न खानेके प्रतिज्ञालेख लिखाए। इस सारी कार्यवाहीकी समाप्तिके अनन्तर २ बजे विहार किया। और अनन्तनागके मार्गसे १२ बजे चलकर बीज साँझ तक बिहाड़े आए।

यहां के हिन्दूओंका कहना है कि किसी समय इस स्थलपर विजयेश्वर महादेवका मंदिर था, इसलिए इस नगरका अपभ्रंश नाम बीजबिहाड़ा पड़ गया। परन्तु नवीन विचारके खोजी और पठित युवकोंने तो यही मत प्रदर्शित किया कि बौद्ध कालमें यहां एक बड़ा भारी **विद्याविहार** था, जिसका अपभ्रंश **'बीजबिहाडा'** है। इस युक्तिने हमारा १६ आने दिल पकड़ लिया। नदी पार बहुतसे भग्नावशेषोंकी रचनासे यही पाया पड़ता था कि वास्तवमें यह विद्याविहार किसी समय बहुत बड़ी काश्मर्य-यूनिवर्सिटी रही होगी। उस

समय लोग दूर दूरसे पढ़ने आते होंगे। कुछ भी हो उस समयके तापमानसे यह निस्संदेह सिद्ध होता है कि किसी समय इस प्रदेशमें बौद्धोंका मध्याह्निक सूर्य खूब जी खोल कर तपा है। जिसके प्रमाण भूत बीजबिहाड़ेके भग्नावशेष हैं। किसी समय इन विहारोंने पद पद पर लोगोंको क्षणिक वाद का पाठ पढ़ाया होगा। आज इनका इस धराशायी अवस्थामें छिन्न भिन्न होना कोई नवीन बात नहीं। जब कि सूर्य सन्ध्याके बाद स्वयं भी लुप्त होता देखा गया है।

सन्ध्याके पश्चात् रातमें जैनसंघ जम्मूके नवयुवक नगरमें घोषणा कर आए और टिड्डी दलकी तरह काश्मर्य श्रोताओंसे शिवमंदिरका विशाल मैदान खचाखच भरगया। हिन्दू-मुसलमान-बड़े बूढे-स्त्री-पुरुष सब की उपस्थिति थी। आज ही यहांसे मिस्टर जिनाह की मोटर साँझ होते २ गुजरी थी। जिसके स्वागत और कोलाहलसे लोग बड़े बेचैनसे थे। परन्तु एक त्यागी जैन-भिक्षुके दर्बारमें प्रस्तुत होते ही जादूकी तरह लोगोंके त्रिताप कुछ समयके लिए हवा होगए। कुछ तास्सुबी मुसल्मानोंने थोड़ा सा होहल्ला किया था किन्तु ५ मिनटमें सब प्रकारसे शान्ति छागई। आज पंडितोंकी सभा जोशमें थी। भारतीय खून था खौल उठा। परिषद् उनकी ज्योंकी त्यों डटी रही। बड़े ध्यानसे १॥ घंटा प्रवचन सुना। अन्तमें एक ज्ञान-वृद्ध पंडितने धन्यवाद किया। जैन धर्मकी बडे उंचे शब्दोंमें प्रशंसा की। साथ ही अगले दिन रहने की विनती की। तथा बहुतसे पंडितोंने मांस न खानेका प्रण किया। इनके प्रेम और सहानुभूतिने कश्मीरमें एक हलचल सी पैदा की। अखबारोंमें भी जैन धर्म और जैन साधु-ओंका बड़ा बखान किया। जिससे शाक्त और वामविचारके पंडितोंके

तो एक प्रकारसे आसन ही हिल गए। यह पंडितोंकी सभामें महाराजश्रीकी अपने ज्ञानकी एक ही जीत हुई। यदि इस प्रकार बारी बारीसे जैनसाधु आकर अपनी योग्यताका प्रकाश दिखाएँ, तो काश्मर्थ संसार जैन साधुओंका लोहा मान जाए।

मकान काठका था। चारों ओरसे खुला था। जेहलम नदीका तट था। आजकी रातमें माघमास जैसे परम शीत परिषहके आनन्दका खूब ही अनुभव हुआ। जो अपने जीवनकी अन्तिम घड़िओंतकके लिए स्मृतिपटपर लिखा गया।

अवन्तीपुर—$\frac{११}{२०७}$ ता० ११-५-४४

प्रायः यह बस्ती गंदी सी ही है। यहां के लोग दुआ और दवाके भूखे बहुत हैं। दो चार सिक्खोंकी दुकान होनेपर भी उन्होंने गुरुद्वारा बनवाया है। रोज दीवान लगता है, और ग्रंथसाहबका प्रकाश होता है। जनसंख्या मुसल्मानोंकी ही अधिक है।

मटनके मार्तण्ड-मंदिरकी तरह यहां भी दो भग्नावशिष्ट इमारतें हैं। सड़कके पास ही हैं। वही रचना, वही माप, वही आकृति, उसी बनावटके मटके, उसी नमूनेका पत्थर, उसी भाँतिकी कारीगरी, बिल्डिंगकी उसी प्रकार मिलती जुलती स्थापत्य कला। लोग कहते हैं कि ये मंदिर पांडवोंके समयके रहे हैं, बहुतोंमें यह किम्वदन्ती भी है कि राजा अवन्तीवर्माके ये महल हैं। और उसीके नाम पर यह नगर बसा था। परन्तु अनुमानकी पुस्तकमें लिखा गया कि अपने जीवनमें ये दोनों विहार और मार्तण्ड विहार एकही कारीगरके बनाए हुए और प्रकृतिसिद्ध हैं।

आज कुछ लक्षण वर्षाके प्रगट हुए, बूंदें आई, शीतने अपना साम्राज्य जमाया, सवेरे से मध्यान्ह तक असह्य गर्मी थी, अब ३ बजे दुर्धर शीतने कराल रूप ले लिया। देखते ही देखते समयने कर्वट बदली। समयके साथ साथ अवस्थाने बदला लिया। आखिर समय भी तो परिवर्तनशील ही है। बनाना बिगाड़ना कालका धर्म है। आकाशमंडल साँझतक फिर स्पष्ट हो गया, स्वर्गीय हवा चली तब एक बढ़ईके मकानमें आजकी रात बिताई।

पाम्पुर—$\frac{१०}{२१७}$ मी० ता० १२-५-४४

चार मील चलनेपर मट्टीके ऊँचे टीलेकी चढ़ाई आरंभ हुई। कुछ दूर आगे बढ़नेपर दाएँ बाएँ छोटी छोटी चबूतरी नुमां क्यारिएँ दीख पड़ीं। एक देहाती कश्मीरीने निवेदन किया, कि ये खेत केसरके हैं। फिर तो महाराजश्रीने पूछताछ आरंभ की, केसरके फूलनेका यह मौसम न था। इसके फूलनेका मौसम कार्तिक मास है। मासके अन्तकी पूर्णिमाके आसपास फसल आरंभ होती है। इसके बूंटेका कद एक आधे फूटके लगभग होता है। फूल आस्मानी रंगका और बड़ा चित्ताकर्षक होता है। दो मासमें जिन्स घर आ जाती है। इसके फूलमें दो या तीन सूत असली जो कि लाल रंगके होते हैं, और नक़ली सूत पांच या छ होते हैं जो निकम्में समझे जाते हैं। आजकल उसका सरकारी ठेका लाखों पर पहुँचा हुआ है। केसर ४) रुपया तोला आज कल बिकती है। कार्तिकी पूर्णिमाकी रातमें बहुतसे लोग केसरका प्राकृतिक दृश्य देखने आते हैं। और टैंट डालकर एकरात रहते हैं।

असल केसर पाम्पुरमेंही होता है। आठ दस मील के एरिएमें ये खेत पाए जाते हैं। तोलमें १६ से २० मन तक होता है। यह मात्र इतनीसी उपज एक सालकी है।

कश्मीर-स्टेटके किस्तवाड़-प्रदेशमें भी १० से १२ मन तक केसर होता है। श्रीनगरसे वह नगर १२० मीलसे अधिक अन्तर पर है। किन्तु बढ़िया केसर पाम्पुरका समझा जाता है, सर्कार वहांका ठेका भी देती है। २ लाखसे अधिक आय आँकी जाती है। केसर देखनेमें जितनी सुंदर है उतनी ही सुगंध तथा तासीर भी अनुकूल है। उष्णवीर्य वस्तु है।

केसरका बीज नहीं होता, प्याजकी तरह तीन गांठें जमीनमें होती हैं। तीन साल तक जमीनमें रह सकती हैं। केसरकी उपजाऊ भूमि विश्राम अधिक चाहती है। प्रति वर्ष एक खेतमें क्रमसे यह उपज नहीं होती। एक-दो साल जमीनकी जुताई बिजाई बंद रक्खीजाती है। तीसरे साल खेत बोया जाता है। इसके फूलमें कुदरतने तीन पहलु रंग और गुणमें सर्वोच्च रक्खे हैं। यही ज़ाफ़रान कहाती है। जिसका रंग और स्वाद-लुब्ध बना देता है। बाकीकी छ पत्तियाँ निस्सार और फेंकने योग्य होती हैं। उन्हें मोचने से चुग कर अलग करते हैं।

पाम्पुरमें 'अखिल भारतीय चर्खा संघ' की शाखा भी है। इसमें अधिकतर हाथका कता, बुना ऊनका कपडा तैयार होता है। इस संघके द्वारा ५००० मुस्लिम श्रमजीवियोंकी आजीविका चलती है। १०-२० हिन्दुभी काम करते देखे गए। ऊनी कश्मीरे-गमरून-लोई-नोंदे-कम्बल-स्वाटर-शाल- दोशाले आदि सभी कुछ बनते

हैं। रिंगशाल श्रीनगरमें ही बनाए जाते हैं। अंगूठीमेंसे वह पार हो जाता है। १५००) या दो-अढाई हजार रुपये तक के मूल्यके होते हैं।

इसके अतिरिक्त इस कार्यालयमें मधु और केसर के व्यापारकी व्यवस्था भी है। मधु १=) पोंड और केसर ४) तोलातक बेचा जाता है। बारीक ऊन १४—२०—२५—रुपया पोंडतक मिलती है। माल गोदाममें सेंकडों तरह की ऊनी वस्तुएँ लगी देखीं। यहांके सर्वेसर्वा-प्रबन्ध कर्ता एक मुसल्मान युवक सज्जन बडी मीठी प्रकृतिके हैं। हँसमुख और मिष्टभाषीभी हैं। साथही उर्दूके १६ आने हामी हैं। ये महानुभाव अच्छे हैं। महाराजश्री आपकी कोठरीमें ही ठहरे। इन्होंने साथ घूमकर धुनाईसे लगाकर बुनाई तकके सब कर्तब दिखलाए। ऊनी कपड़ोंपर रफू करनेवाले कारीगर रफूगरीका काम बहुत ही अच्छा करते हैं, इनके काममें इतनी सफ़ाई है कि जोड़ नहीं दिखता।

जेहलमका किनारा, मच्छुवोंकी पुष्कलता, गंदगीकी बहुलता, और रेहवाली सोरेकी गंदगीवाली जमीनमें मच्छरोंकी भरमार रहनेके कारण पोटुओंका भी आतंक छाया हुआ था। इसीलिए दो बजते २ विहार कर दिया।

दुर्गानाग—$\frac{६}{२२३}$ ता० १२-१३-५-४४

मीलभर चलनेके अनन्तर सडकके दोनों ओर साँपोंकी बारातसी देखी गई। छोटे-मोटे-लंबे-पतले-काले-पीले भयंकर और स्पृहणीय सब तरहके नाग थे। मानों नौकुलीके नागोंका यह थाना ही है। कई तो समीपसे आकर हट गए, किन्तु जैसे हम नए और अनजान

थे वैसे जान जोखम न हुई । इस प्रदेशमें बड़ी सतर्कताकी आवश्यकता है ।

साँझसे पहले दुर्गानागकी धर्मशालामें ठहरे । धर्मशाला क्या है मानो छोटे छोटे डब्बे हैं। धर्मार्थ महकमे वाले अपनी खूब चाँदी पकाते हैं। सीज़नके समय यह धर्मशाला उनके लिए उपजाऊ ज़मीनका काम देती है। सफ़ाईकी ओर ध्यान देना शायद ये लोग किसी आगामी जन्ममें सीखेंगे । उनकी अनिच्छा हो तो विजीटरकी मजाल नहीं कि खाली कोठरियोंमें भी विराम पा सके। महाराजश्रीके पुण्यप्रतापसे मात्र चार आसन जमानेके लिए एक सूखी और लिपी कोठडीको प्राप्त कर तो लिया किन्तु प्रतिलेखनाके समय धूल बहुत उडी, और अपने आप कठीनाईसे देरके बाद दबी ।

अधिक थकान चढ जानेके कारण रात का व्याख्यान न हो सका सवेरा होनेपर नगरके सब ही श्रोता और श्रावक-श्राविका व्याख्यानमें सम्मिलित हुए। प्रवचन धूपमें छतोंपर ही हुआ। यहां आज काश्मर्य लोगोंको बडी ही नवीनता प्रतीत होती थी। सबको जैनसाधुके सुन्दर रूपपर अचरजसा होता था।

यह स्थान शंकराचार्यकी पहाड़ीके नीचे ही है। यहींसे शंकराचार्य रोडसे पहाड़ पर लोग जाया करते हैं। ऊपर शंकराचार्यका मंदिर है। लोग इसी अभिप्रायसे जाते हैं कि समस्त श्रीनगरका सौन्दर्य ऊँचाईसे देखनेपर कितना भला मालूम देता है। जेहलम नदी तो ऐसी प्रतीत होती है मानो-किसी पतले साँपने कई आँटे डाले हैं, या कोई काठियावाडी अपनी पगड़ी भूल गया है। यह दृश्य मनको बडा सुहावना प्रतीत होता है।

श्रीनगर [कश्मीर] ३३८ मी० ता० १४ मई सन् १९४४

आठ बजते बजते नगरके भव्य भावुकोंसे धर्मशालाका आँगन जनाकीर्ण हो गया। एवं **श्रीज्ञातनन्दन महावीर** भगवानके जय-नादसे दिशाएँ ध्वनित हो उठीं। महाराजसाहेबने उपवास होते हुए भी विहार किया। **मीरा कदलको** पार करते हुए, हरिसिंह-हाई-स्ट्रीटके उस पार श्रीमान् भूतपूर्व दिवान-रायबहादुर मैजर जनरल दिवान बिशनदासजी साहब सी. एस. आई, सी. आई. इ. की कोठीमें पदार्पण किया। भाई गंगादास जमादारकी आज्ञा लेकर पधारे। कोठीके बाहर सिंह-द्वार पर सिंह-आसनसे विराजमान होगए। जल्सेकी कार्यवाही आरंभ हुई। जैन समाज, एवं लाला मुनि लाल-मालिक जैन जनरल स्टोरकी ओरसे दो अभिनन्दन पत्र पढे गए।

महाराजश्रीने मानपत्रोंका उत्तर देते हुए अपनी ओजःपूर्ण वाणीमें फर्माया कि—

"कश्मीर जैन संघ! एवं नागरिक श्रोता गण! अन्यान्य आर्य-देशोंके समान कश्मीर प्रान्त भी आर्यदेशोंके अन्तर्गत ही है। किसी समय यहां तीर्थंकर भगवान् और उनके अनेक मुनिमण्डल इस भूमिको पवित्र करते रहे हैं। करोडों वर्ष पूर्व आदिम-तीर्थंकर श्रीऋषभदेव प्रभु तो यहां कई वार पधार चुके होंगे। आपने इस भूमिमें सेंकडों वर्ष रह कर घोरातिघोर तप किया है, तथा जहां आपने मासोप-वासका पारणक किया है यह 'क्षीर भवानी' वही स्थान हो सकता है, जहां गणधरोंने अपने ज्ञानबलसे इस प्रदेशको प्रबुद्ध किया है उस 'गणधर बल' नामके प्रसिद्ध कश्मीरान्तर्गत स्थलको कौन नहीं जानता। रावलपिंडीके पास का क्षेत्र जोकि अब 'संघजानी' के नामसे

प्रसिद्ध है पहले वहां 'जैन संघ' अवश्य रहा है यह निस्संदेह कहा जा सकता है।

हां तो कश्मीरका आर्यदेशमें सम्मिलित होना निर्विवाद और स्वयं सिद्ध है क्योंकि यह पांचालका अन्तर्देश है। यह चार सौ मील चौडा और ५०० मील लंबा है। लद्दाख गिल्गत और असकर्दु जैसे हिम प्रधान प्रान्त भी कश्मीर राज्यके अधिकृत ही हैं। इसे अबके बटवारेके हिसाबसे चार भागोंमें बांट दिया है। जम्मू-कश्मीर-छोटा तिब्बत और गिलगत! इसके पूर्वभागमें चीनी-तिब्बत है। उत्तरमें यारकंद और पायर हैं। पूर्वकी ओर याकिस्तान तथा दक्षिणमें पंजाब है। पश्चिमोत्तर की सीमान्तसे चित्राल और कोट काफ़रका-इलाक़ा बाहें डालकर सोया पडा है। यह वही कोट काफ़िर है जिसमें लाल काफ़िर बसते हैं। जिनकी मातृभाषा भग्नाव-शेषके रूपमें प्राकृत और पाली से मिलती जुलती है। इस जगहको खोदनेसे पद-पद पर बौद्धोंके विहार और २२०० वर्ष-पूर्व भारतकी सभ्यताके कण बिखरे प्रतीत होते हैं। इस कश्मीरकी परिधि ८४४३२ मुरब्बा मील (वर्गीकरण) है। अधिकांश भूभाग पर्वताच्छन्न है। हज़ारों फ़ीट ऊँचे विशाल नगराज भूतलके उरस्थलमें सोए से पडे हैं। जोकि असंख्य-हिमवर्षासे भी सजग नहीं होते। सबका सब प्रदेश अतिशय रमणीय है। प्राकृतिक दृश्योंसे भरा पड़ा है।

यदि इसकी तीन खंडोंमें कल्पना करें तो एक भाग पीरपंजालके दक्षिणकी ओर, दूसरा पीर पंजाल और उसका मध्य जोकि कश्मीरको लद्दाखसे अलग करता है, तीसरा भाग कराकरम पर्वतका दक्षिणी प्रदेश है। पीरपंजाल की पर्वतपरम्परा पंजाबके समतल भागको

अलग करता है। यह दक्षिण पूर्व में चुनाबसे आरंभ होकर उत्तर भागमें जेहलमके पास जाकर समाप्त होता है। कस्तवाडसे लेकर मुज़्ज़फ़र आबाद तक इसकी लंबाई अनुमान १२० मीलसे अधिक है। उत्तरकी ओर की पर्वतमालाएँ अधिक ऊंची हैं। तथा वे हिमकी शशिवर्णीया चादर ओढे हुए हैं। बनिहाल इसका प्रवेशद्वार है। जो कि जम्बू श्रीनगरकी सड़कके ऊपर पहरेदारकी तरह खड़ा पहरा देता है। अनुमान ९२०० फुट ऊंचा यह वीरपंजाल अपनी उग्रताके लिए अद्वितीय प्रसिद्धिप्राप्त है। यह चढाई तनतोड़ कही जा सकती है। चढते समय सर्वप्रथम श्वाँस फूल जाता है। यह चारमासतक बर्फ़की चादर ओढ कर कुंभकर्णी नींद सोता है। यहाँ की सीत-मिश्रित असह्य वायु और हिम खूनी-हवा और खूनी-बर्फ़के नामसे अति प्रसिद्ध है। शायद इसने अब तक असंख्य मानवोंकी प्राणबलि ली हो।

साधुओंके पास मित वस्त्र होते हैं, सीत परिषह सहनेकी शक्ति नाम-शेष है, विरक्ति अधिकांश न होनेपर उनके मुँहसे भी सहसा निकल पड़ता है कि कश्मीर अनार्य देश है। परन्तु उन्हें यह मालूम रहे कि वह तो पांचालसे हाथ मिलाए हुए है। आगे चलकर पंजाबके पश्चिमोत्तर प्रदेशमें **'तक्षकशिला' श्रीबाहुबलिकी** भूतपूर्व राजधानीके सामने तो मानो टकटकी लगाए हुए है। तक्षक-शिलासे श्रीनगर पर्यन्त २२५ मीलके लंबे मार्गमें सेकडों 'बौद्धविहार' ध्वंसावशिष्ट पाए जाते हैं। और हज़ारों ही भूगर्भमें लुप्त-सुप्त हैं। अतः इस दृष्टिसे अपने आप सिद्ध है कि बौद्धोंके साथ २ जैनोंका धर्मप्रचार

भी अवश्य रहा है। बौद्धोंने अपने विहार बनवा डाले थे, जो कि बाहरी देह सूत्रके समान संसारके चर्मचक्षुके आगे 'तद्गुणसंविज्ञान' की तरह हैं। और जैन प्राणप्रतिष्ठा, या प्राणतत्वके समान चरित्र और सिद्धान्त के प्रसरणकी जन्मघुट्टी पिलाते रहे हैं, अतः उनका सद्भाव अतद्गुणसंविज्ञानके रूपमें लोगोंकी अस्थि मज्जा तकमें रम गया। इसमें कई ऐतिहासिक प्रमाण इस प्रकार हैं जिसे कोविद-कुल समझनेकी चेष्टा करें।

(१) **लल्लेश्वरीकी भाषामें—"लल्लेश्वरीवाक्यानि"** नामक पुस्तककी रचना कश्मीरमें अबसे ६२५ वर्ष पूर्व हुई है। इसकी रचना करनेवाली एक नग्न-परिव्राजिका (साध्वी) थी। यह कश्मीरके ब्राह्मण-कुलमें जन्मी। विवाह के पूर्वकालमें भी इसके मनमें नैसर्गिक वैराग्य था। विवाहके पीछे तो आत्मज्ञानकी खोजमें घरसे साध्वी बनकर ही निकल पड़ी। ऐसे हिमाच्छादित शीतप्रधान प्रदेशमें प्रायः अपना संपूर्ण देह भाग अवस्त्रावस्थामें विताना कुछ साधारण बात नहीं है। उनकी सहिष्णुता संसारके लिए कुछ कम आदर्शकी भूमि नहीं है। इसके मुखसे निकले हुए वाक्य हिन्दू और मुसलमान दोनों ही पक्षवालोंमें भगवद्वाक्य और इल्हामकी तरह आदरणीय हैं। इसके जीवनसाहित्य पर फिर कभी प्रकाश डाला जायगा। अब तो इस सतीके वाक्यको उद्धृत करके यह बताना चाहते हैं कि कश्मीरमें अबसे ६२५ वर्ष पूर्व एक साधिकाके मुखसे 'जैनधर्म' के संबन्धमें अध्यात्मिकता और निस्पृहताको उत्तेजना देनेवाले कितने सुंदर उद्गार निकले हैं।

यह 'लल्लेश्वरीवाक्यानि' नामक ग्रंथ जो कि श्रीमतीजीकी एक स्वतन्त्र रचना है । श्रीराजानक-भास्कराचार्यने उसकी संस्कृत छाया की है । जिसमें ६० पद्योंकी रचना है । इसमेंसे आपके सन्मुख आठवाँ पद्य रखते हैं ।

शिव वा केशव वा जिन वा,
कमलजनाथ नाम दारिनयुस् ।
म्य अबलि कांसितन भवरुज्
सुह् वा सुह् वा सुह् वा सुह् ॥ ८ ॥

संस्कृतच्छाया

शिवो वा केशवो वाऽपि जिनो वा द्रुहिणोऽपि वा
संसाररोगेणाक्रान्तामबलां मां चिकित्सतु ॥ ८ ॥

भावार्थ—"मैं एक निराधार और दीन अबला संसाररोग अर्थात् जन्म-जरा-मरणप्रद कर्मरूपी अन्तर-रोगसे आक्रान्त हूं । अतः जगत्के देवताओंमें से-महादेव कृष्ण-वीतरागी-जिन भगवान् अथवा मुझसे विरोध करनेवाले आदिकोंमेंसे कोई भी देव आकर मेरी कर्मरोगरूपी बीमारीकी चिकित्सा करें, एवं मुझे भवबंधनके दुखसे बचाएँ, जिससे मुझे अजरअमर सुख प्राप्त हो।"

प्रचलित देवोंको याद करते समय आपने अपने निष्पक्ष विचारसे परम पुनीत **जिन भगवान्**को भी स्मृतिपथमें रक्खा है । अतः स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय **जैनधर्मका प्रचार कश्मीरमें सोलह आने** सही काम कर रहा था । यही कारण है कि अध्यात्मिकी देवी **श्रीमती लल्लेश्वरी को भी उसके आराधन करने** का अवसर मिला । साथ ही उन्हें यह विश्वास भी था कि जिन **भगवान्के**

आश्रय तले आए विना भव रोगसे क्योंकर छूटा जा सकता है। एवं आत्माका साक्षात्कार भी उनके गुण का अनुगामी होनेपर ही होता है। आत्मासे परमात्मा बनना जिनपदपर ही निर्भर है।

इसके अतिरिक्त वे बली और कुर्बानीके विरुद्ध भी बोली थीं। इस ओर ब्राह्मण जो कि अधिकतर शाक्त ही हैं। वे तो बात बातमें बलिके अतिरिक्त और कुछ सीखे ही नहीं हैं। उन्हें समझानेके लिए श्रीलल्लेश्वरी कहती हैं कि "तुम उसके पशम (बाल-ऊन) से अपने देह कों ढाँकते हो फिर ओ मूर्ख पंडितो ! एक बेज़बान पत्थरके लिए जीते जागते गूंगे भेड-बकरोंको क्यों भेट चढ़ा रहे हो। फिर वह बिचारा तुमसे लेता भी क्या है वह तो घास फूस खाकर तथा पानी पीकर गुज़ारा करता है।" ये वाक्य ६२५ वर्ष पहले उस समयके निकले हुए हैं, जब कि हिन्दूधर्म यह समझे हुए था, कि हमारा सितारा चमक रहा है, बलिके विरुद्ध-पक्ष लेनेवालोंको मौतके घाट तक उतार दिया जाता था। उस समय "**नास्तिको वेदनिन्दकः**" का बिगुल बजाया जाता था। तथा इसी उक्तिके अनुसार अन्य मतावलम्बियोंको नास्तिकताका फ़तवा दिया जाता था। उस समय परम-तपस्विनी **लल्लेश्वरी** देवीने ये शब्द अहिंसा के बोधक तथा प्रचारार्थ निर्भय होकर कहे थे। जिसका कि जैन धर्मसे अक्षरशः समन्वय होता है। बल्कि इतना कटु सत्य तो जैनोंने भी नहीं कहा। साधिका सती तो जड़ देवों की मूर्तियोंको पत्थर तक कह कर पुकारती है। इसने तो जड़ पूजाका शिकार होनेकी अपेक्षा जीवित-मूक भेडके प्राणोंको कितना मौलिक सिद्ध किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध कि ये संस्कार सतीमें जैन धर्ममें से आए हुए ही प्रतीत होते हैं।

सतीकी समदर्शिता-अहिंसकता-आत्मज्ञानके पुजारी-भावोंमें से यह नितार आता है, कि उस समय कश्मीरमें जैनोंका अधिक प्रभाव होना चाहिए।

(२) रिसमौलु—अनन्तनागमें इसी सतीके समकालीन मुस्लिम महात्मा-**रिसमौलू** होगए हैं। इसने अपने जीवनमें अपने मुरीद-शिष्यों और मुतई-लोगोंको मांस न खानेका ही उपदेश किया है। उनके भक्त लोग आज भी कश्मीरमें साल में एक महीना मांस खाना छोड देते हैं। और वे तब समझते हैं कि हमने **रिसमौलूकी यात्राको सफल किया।**

(३) शेख नूरदीन साहब औलिया—कश्मीरमें एक और महात्मा-शेख नूरदीन साहब औलिया-उस समयके आमिल बाअमल सन्त हो गुज़रे हैं। इस महाशयने अपनी लंबी आयुमें मात्र ३१ सेर चावल खाया है। वे भी सब मुसल्मान और हिन्दुओंको मांस न खानेका ही उपदेश दिया करते थे। एकबार उनसे किसी लड़कीने उपहास के रूपमें यह कहा कि नूरदीन! तू बड़ा भगत बना फिरता है। लोगोंको तो यह कहता है कि किसीभी जानदारको मत मारो, तथा मांस न खाओ, परन्तु तेरे बेंतके नीचे वाले भालेने न जाने कितने जीवोंको मौतके घाट उतारा है। साथ ही न जाने कितनी सबजीको काटा और भेदा होगा। क्या इस गुनाहको कभी याद भी करता है। फिर कहता है कि मैं बडा ही रहम दिल हूं। लडकीके कश्मीरी वाक्य ये थे।

"कासा नाल सासा खाया"।

अर्थात् तेरी लकड़ीके भालेने न जाने किस २ को मार खाया है।

इतना सुनते ही शेख नूरदीन साहबने अपनी लकड़ी में से भाला निकलवा दिया। अधिक क्या कहा जाय इन अवतरणोंसे हम इस निर्णय पर आते हैं, कि कश्मीरमें अणुव्रत-पंचकका पद पद पर मनन होता था। लोगोंके आचार-विचार विशेषतासे जैन धर्मसे ही संबंध रखते थे। काश्मर्य रात्रिभोजन और बासी पदार्थ तक नहीं खाते थे।

अर्हन वन–श्रीनगरसे अनुमान १५ मील पर **हॉर्वन** नामक गाँव आबाद है। इसके चारों ओर भयानक पर्वतमालाएँ बहुत ही ऊँची हैं। यहां चीलोंका घना जंगल भी है। खुदाई करने पर यहां कई ऐतिहासिक वस्तुएँ भी मिली हैं वास्तवमें इसका प्राचीन नाम **अर्हन् वन** है। इसे राजतरंगणीके लेखकने अर्हन वनके नाम पर उल्लेख किया है। इस वनमें किसी समय बोधीसत्व नागार्जुनका आना भी इसने स्वीकृत किया है बहुत पुराने समयके पहले कभी जब भगवान् **श्रीऋषभदेव** प्रभु इसी रास्ते **तक्षकशिला** गए थे तब आपने कुछ-दिन यहां रह कर तपश्चर्या की होगी। इसलिए इस स्थलका नाम **'अर्हनवन'** होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि भगवान् ऋषभदेव प्रभुका **छद्मस्थकाल १०००** वर्ष माना गया है। आपने साढेपचीस आर्य देशोंमें लगभग सब जगह भ्रमण किया है। **तक्षकशिलाका** पहाड़ी रास्ता यही रहा है। भगवान् अयोध्यासे दीक्षा लेकर यू. पी. के सब क्षेत्रोंमें विचरते हुए पंजाबके मार्गसे यहां पधारे हैं। बहुत दिन तक तप और ध्यानमें अपना काल निर्यापन करनेके कारण यह निर्जन और भयानक वन **अर्हनवनके** नामसे प्रसिद्ध होगया होगा। इसी कारण बोधिसत्व नागार्जुनको यह स्थान पसंद आया। यही कारण है कि कल्हन अपनी राजतरंगणीके पहले तरंगमें लिखता है

कि "**अर्हन्वनसंश्रयी**" १७३।। अर्हन् वनतो पहलेही से था उसमें नागार्जुनने योगाभ्यास किया है। शाही ज़मानेमें **अर्हन् वनसे** बिगड़ कर इसे **हॉर्वन** कहने लग गए होंगे। **अर्हन् वनका अपभ्रंश हॉर्वन भी हो सकता है।**

जो लोग कश्मीरकी सैर करने आते हैं वे हॉर्वन को देखने अवश्य जाते हैं। इसमें जलका संग्रह-कुंड बहुत बड़ा है। इस पानीको श्रीनगर तक पहुँचाया गया है। अर्थात् श्रीनगरकी जनता हॉर्वनका पानी पीती है।"

इत्यादि सारगर्भित निबंधको सुनकर जनताके मनमें बडाही समुल्लास उत्पन्न हुआ। तदनन्तर जैन संघके मुख्य मंत्री लाला बेलीराम ने खड़े होकर उपस्थित जनतासे विनय की कि, श्रीमहाराजके उपदेशका समय प्रातः ९ से १० तक, एवं रातको भी ९ से १० तक ही रक्खा गया है। साथ ही धर्मचर्चा-शंकासमाधानके लिए भी संध्यामें ४ से ५ तक का समय निश्चित किया है। आशा है सब नागरिक भाई बंधु लाभ उठानेका प्रयत्न करेंगे। इसके उपरान्त महाराजके शरीरका थकान उतर जाने पर सार्वजनिक व्याख्यान भी कराए जायँगे। अथवा जो संस्था महाराजसाहबके श्रीचरणोंमें निमंत्रण प्रस्तुत करेगी, वहां भी प्रवचनकी व्यवस्था की जायगी।

आजसे महाराजश्रीके प्रवचनोंका आरंभ हो गया। प्रातःकालके अतिरिक्त सर्कारी कर्मचारियोंके सुभीते के लिए सन्ध्यामें ९–से १० बजे तक रात्रिमें भी व्याख्यान होता था तब सकल आगन्तुक सज्जनोंको परमानन्द मिला करता था।

संध्यामें ४—से ५ बजे तक शंका-समाधानका समय भी रक्खा गया था। उस निश्चित समय पर तो बहुतसे कश्मीरी पंडित भी आने लगे, एवं महाराज श्रीसे धर्मचर्चा करके अपनेको धन्य मानते थे। फल स्वरूप कई कश्मीरी पंडितोंने मांस खानाभी छोडा और कई तो महाराज साहेबके परम भक्त होगए। विशेषकर ब्रह्मचारी नील-कण्ठ, दीनानाथ धर, गोपीनाथ धर आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। महराजके साथ वार्तालापसे सबको बडा अमृतरस मिला करता था।

श्रीनगरमें जैन संस्था—अभी हाल ही में "श्री जैन संघ" की स्थापना की गई है। स्थानकवासी जैन एवं दिगम्बर जैन आदि इसके सभी सभ्य हैं। जैनमात्रमें प्रेम और संगठन करना, इस संस्थाका मुख्य उद्देश्य है। यहां पक्ष-पात तथा खींचतान नहीं। सब जैनी भाई आपसमें पूर्ण प्रेम रखते हैं। यदि इसी प्रकार १२ लाख जैनोंमें अभेद प्रेम हो तो जैन लोग भी विश्वकी घुडदौडमें अग्रगामी हो सकते हैं।

श्रीनगरमें जैनोंकी संख्या—इस समय जैनोंके १२ घर हैं। ५० से अधिक जनसंख्या है। आर्थिक स्थिति साधारण है। तथापि धर्मभावना सर्व श्रेष्ठ एवं सराहनीय है। आपसमें प्रेमका बर्ताव रहता है। मुनिराजोंके सहवाससे उचित लाभ उठाते हैं।

श्रीनगरमें उपाश्रयकी आवश्यकता—यहांके श्रावक-बांधवोंके पास अपने धर्मध्यान करनेके लिए पौषधशाला या उपाश्रय नहीं है। बाहरसे आनेवाले जैन अतिथिओंके अर्थ **'जैनआश्रम'** भी नहीं। उन्हें बडा कष्ट भुगतना होता है। उनका सामान देर तक सड़क पर पड़ा रहता है। विश्रामके लिए स्थान नहीं मिलता।

भोजन न खानेकी इच्छा प्रगट करने पर तो होटल वाले किराए पर कमरा भी नहीं देते । बोट-हाउस में रहने जायँ तो १०) से लगाकर ३०—४०) रुपया नित्यका किराया चार्ज करते हैं । विशेषकर जैनोंकी बड़ी मट्टी ख़राब होती है । अतः यहां का संघ अनुभव करता है कि यहां उपाश्रय होना आवश्यक है । महाराजश्रीकी सत्प्रेरणा और सदुपदेशोंसे प्रभावित होकर लोगों ने अबतक ३५००) रुपया उपाश्रयके अर्थ दान किया है । जिसमें जैनधर्मभूषण, दानवीर, आदरणीय शेठ श्रीमन्महामना श्री अगरचंद्र भैरोंदान शेठिया बीकानेर निवासीने १००१) की आदर्श सहायता प्रदान की है । श्रीनगर जैन संघ इनका पूर्ण उपकृत है । इन्हें श्रीनगर जैन संघ कोटिशः धन्यवाद देता है । ऐसे ऐसे दानवीर वीरोंकी सेवाशक्तिसे ही यह भगीरथ कार्य सम्पन्न हो सकता है ।

१००१) लाला कस्तूरीलाल जैन फ़र्म लाला लद्धूमल देशराज जैन जम्मू निवासीने प्रदान किया है। १५००) दिवान साहबने दिया है।

५००) का वचन लाला सावणमल जैन स्यालकोट निवासीने भी दिया है ।

लाला वलायती शाह बलवन्त शाह रावलपिंडी निवासीने एक कमरे का वाग्दान किया है । परन्तु अभी उचित भूमि नहीं मिल पाई है । जैन संघके सब सदस्य इसी कोशिशमें हैं कि मौक़ेकी ज़मीन मिल जाय तो उपाश्रयका कार्य आरंभ किया जा सके ।

लाला मुनीलाल-सुशील कुमार जैन लाहौरवालों ने २५०) दान किया है ।

लाला मुनालाल जैन देहली, नए बाजार निवासीने भी १०१) प्रदान किए हैं ।

५०) लाला बशेशर दयाल रूपचंद जैन गुडगाँव निवासी.

५०) लाला रामकला मल सोनी पती इत्यादि कई सज्जनोंने अवकीर्ण दान भी किया है ।

श्रीनगरका खान-पान—यहां के लोग अधिकांश चावल और साथमें कर्मका शाक खाते हैं । यहां कहावत है । कि "तकदीर का भत्ता, कर्मका साग, कश्मीरी लोगोंका बड़ भाग !" कश्मीर-प्रदेशमें प्रवेश करनेके पश्चात् यात्रीको दूध-दही-शाक आदिका संयम रखना होता है । अन्यथा स्वास्थ्यहानिका भय है । मात्र दाल-चावल और चायका उपयोग करनेवाला काश्मर्य-रोगोंसे बच सकता है ।

श्रीनगरकी रचना—श्रीनगर वितस्ता (जेहलम) के किनारे के दोनों ओर बसता है । शहर भरमें इस नदीके मात्र सात पुल हैं । अमीरा कदल सबमें सुंदर है । कदल कश्मीरी भाषामें पुलको कहते हैं । 'अमीरा कदल' और 'हरिसिंह हाई स्ट्रीट' सुन्दर बाज़ार समझे जाते हैं । यहां सफाईका भी उचित प्रबन्ध है । शेष नगरका भाग प्रायः गंदा है । जैन लोग कथित बाज़ारोंमें ही रहते हैं । श्रावकों की धारणा है कि इतनेमें ही कहीं जगह मिल जाय तो अच्छा है । ताकि धर्म-प्रचार अच्छे रूपमें हो सके । ३०—४० नगरोंके धनी मानी श्रावक इस भीष्मकार्यमें योग दें तो जैन स्थानक-जैन हाई-स्कूल-जैनगुरुकुल-जैन आश्रम आदि सभी कुछ हो सकता है । इतनी संस्थाओंकी यहां पूर्ण आवश्यकता है । सब सम्प्रदायोंकी संस्थाएँ हैं । मात्र जैन संस्था ही नहीं है । जैनोंको न जाननेका यही कारण है । आशा है दानवीर इस ओर ध्यान दें, इस सुनहरी अव-

सरको न चूकें। दानादि कार्योंसे सब कुछ बढ़ता ही है। कबीर साहब क्या खूब कहते हैं कि—

चिड़ी चोंच भरलेगई, नेक न घटियो नीर।
दान दिए धन नहीं घटे, कह गए दास कबीर॥

किसीने यहभी कहा है कि,

"दिया जल हमको बादलने, वह उलटा होगया बादल।
रहा नीचा ही सागर है, अदाता को पशेमानी॥"

आजका समय प्रगतिशील है वह संकेत कर के बताता है कि अधिक धनसंग्रह व्यर्थ है। कमाई के खाने पीनेसे शेष बच रहेको धार्मिक संस्था एवं अपने अशक्त-सहधर्मि-भाईयोंमें बांट देना चाहिए। वरन् तुम्हारा धन इंकिम-टैक्स आदि खनकोंमें पड़कर नष्ट हो जाएगा। फिर वह न तुम्हारे काम आयगा न तुम्हारे बन्धुओंके!

क्योंकि—

कोई धन मरके देता है, कोई धन देके मरता है।
ज़रासे फ़र्क़ में बन जाते हैं, अज्ञानी और ज्ञानी॥

× × ×

कुछ परिचय.

लाला बेलीराम जैन संघके मंत्री हैं।

लाला लधूमल देशराजकी बरतनोंकी बहुत बड़ी दुकान है।

लाला कस्तूरीलाल बडे प्रेमी और सेवाभावी हैं।

लाला प्यारेलालकी भी बरतनों की ही दुकान है।

दिवान चेतराम यहां के स्थायी निवासी हैं।

बाबू कन्हैयालाल अग्रवाल जैन हैं। सीज़नके समय आप देहलीसे प्रतिवर्ष आया करते हैं।

श्रीमान् लाला आनंदस्वरूप तत्पुत्र कश्मीरीलाल सोनीपती भी यहां के स्थायी जैन गृहस्थ हैं, आप दिगम्बर जैन हैं। स्थानकके चंदेमें ७००) दान किया है।

लाला सावणमलजी पसरूरी यहांके संघके प्रधान हैं। आपके पुत्र कृष्णकुमार (के. के. जैन) होमियोपैथिक डाक्टर हैं। बाहरसे आनेवाले आधिकांश जैन इनके यहां ठहरते हैं। बडी सेवा होती है। अमीरा कदलमें ही रहते हैं। आप पंजाब कश्मीर बैंकके अध्यक्ष (मैनेजर) भी हैं।

अटल श्रद्धालु—श्रीनगरके लोगोंमें विशेष नवीनता का उत्पादन करने वाले लाला लाजपतराय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप खतरी गृहस्थ हैं। महाराज गंजमें आपका बहुत बडा मकान है। वहां से आप दो मील नंगे पैर पैदल चल कर नित्य व्याख्यान श्रवणार्थ आते रहे हैं। आपने जिस लगनसे प्रवचन सुना है, वह अनिर्वचनीय है। आपका जिनशासन पर उज्वल अनुराग है। आपने श्रावकके १२ व्रतोंका उपदेश श्रवण करते ही अपने घरमें बैठकर उसका अनुभव-मनन-चिंतन आरंभ कर दिया। आपका स्याद्वाद-सिद्धान्त में ऊंचा प्रवेश है। आपने परिग्रह-परिमाण-विरति द्वारा प्रभावित होकर जैन गुरुकुल ब्यावर को ५०१) रुपया दान भी किया है। आपका धार्मिक जीवन बहुतोंकी अपेक्षा प्रशंसनीय ही नहीं वरन् अनुकरणीय है। आपके स्वभाव और चरित्र में अणुव्रत एवं दशधा धर्मका सार निचुड़ आया है। आपका जैन धर्म पर अटल विश्वास है। विशेषता तो यह है कि, आपकी धार्मिक जानकारी हज़ारों जैनोंसे

अधिक है। आप धनी मानी और प्रतिष्ठित व्यक्ति होकर भी श्रावक धर्मका ठीक समाचरण करनेमें अप्रमत्त रहते हैं। प्रत्येक जैनको आपका अनुकरण करना चाहिए।

काश्मर्यों में जैन दर्शनकी योग्यता—यहांके परम-पंडित **सुखदेव शास्त्री** जैन दर्शनके अच्छे विद्वान् हैं। आप आचारांग-उत्तराध्ययन आदि कई सूत्रोंका स्वाध्याय कर चुके हैं। जैन दर्शनका अध्ययन भी किया है। जैन धर्मके आप अजोड़ प्रेमियों में से हैं।

पं० नीलकंठ ब्रह्मचारी—श्रीमहाराजके सदुपदेशमें श्रीमान् पंडितवर्य नीलकंठ ब्रह्मचारीने बहुत लाभ लिया है। धर्म-चर्चाका रस तो इन्हें ही प्राप्त हुआ है। आप विनीत और अहिंसक विचारके हैं। आपने जैन धर्मके ग्रन्थोंका अध्ययन आरंभ किया हुआ है। कई दर्शन ग्रन्थ आपके पास पहुँचाए गए हैं। आपको जैनधर्म एवं जैनमुनिओंपर अनन्य श्रद्धा है। पं० दीनानाथ धर भी ऐसेही विचारके हैं।

श्रीलक्ष्मण ब्रह्मचारी—आपकी शुभ प्रेरणाओंका पवित्र परिणाम यह हुआ कि एक वार गुप्त गंगासे दर्शनार्थ श्रीलक्ष्मण ब्रह्मचारी भी आए थे। दर्शन चर्चा-धर्मचर्चासे आपको बड़ा आनंद मिला। आप समृद्ध घर वाले और युवा होकर भी ब्रह्मचर्य पालनमें निरत हैं। वन्य-पहाड़ीमें आश्रमस्थ एकान्त सेवन कर रहे हैं। नीलकंठ ब्रह्मचारीके आप परम-धर्ममित्र हैं।

कश्मीरमें चतुर्मास—क्षेत्रकी प्रबल और प्रेरणात्मक स्पर्शनासे महाराजश्रीको एक सप्ताहके अनन्तर ही ज्वर आने लग गया। एक मासकी भीषण बीमारीसे आप कृश तनु हो गए। यह सूचना पाते ही जम्मू का एक डेप्यूटेशन स्वास्थ्यकी जाँचके लिए आया और

गुरुदेवकी देह अशक्त देखकर उन विद्वान्-विनीत और देशकालज्ञ श्रावकोंने यह प्रार्थना की कि, यद्यपि जम्मू में आपकी विशेष आवश्यकता है। मेहकी भाँति सब बाट जोह रहे हैं। आपकी ओरसे चतुर्मासका वाग्दान भी प्राप्त है, परन्तु आपकी शारीरिक दुर्बलता ने हमारी आशा पर पानी फेर दिया है, जिसका समस्त संघको महान् खेद है। ऐसी अवस्थामें आप यथोचित समय पर जम्मू न पहुँच पाएँगे। अतः जम्मू-श्रीसंघकी प्रार्थना है कि आप कश्मीर (श्रीनगर) में ही चतुर्मास काल बिताने की कृपा करें। महाराजश्रीने देश-कालके अनुसार जम्मू-संघकी विनती को ऊँचा मान देकर श्रीनगरमें चतुर्मास करनेका आश्वासन दिया। यह सुन कर श्रीनगर-जैन संघको अपूर्व हर्ष हुआ। कारण श्रीनगर जैसे क्षेत्रमें चतुर्मासका होना काकतालीय न्यायवत् है।

असद्वेद्योदय—जल वायु और वेदनीयके विपाकोदयसे महाराजश्रीके औदारिक शरीरमें अतीसार [हिल डायरिया] उत्पन्न होगया जिसका उपशमन तीनमासके उपरांत हुआ। इधर बौद्धभिक्षु श्रीधर्मानंद कौशांबीके संबंध में यह चर्चा छिडी कि उन्होंने जैनधर्मसंबंधी वाक्योंके अर्थ कुछ हेर फेरके साथ किए हैं, जिससे जैन सम्प्रदायके सदनुयायियोंका मन व्यथित हुआ। इस प्रसंग में ऊहापोह भी खूब ही चला। **बंबईके श्रीजैनप्रकाशके अधिपति** एवं **खीमचंद-मगनलाल वोरा** की यह प्रार्थना आई कि इस विषयमें आपके करकमलों द्वारा कुछ अवश्य लिखा जाय। निदान श्रीगुरुदेव तीन माससे इस भीषण रोगासन को सहन करते हुए भी आपने अपने ऊँची कक्षाके अनुभव का संग्रह किया, और **"श्रीज्ञातपुत्रमहावीर**

प्रभुका उज्वल शासन" नामक सुंदर निबंध लिख भेजा। और जिन शासन पर आगत आक्षेपोंसे उसे सुरक्षित किया इसे आप परिशिष्ट भागमें भी पढ़ेंगे।

अहिंसाप्रचार—हरिसिंह हाईस्ट्रीट वाले सर्दार मक्खनसिंहजी के कृष्णमंदिरसे आरंभ होकर हरिसिंह-हाईस्कूल तक श्रीनगरके कई स्थल और संस्थाओंमें महाराजश्रीके सार्वजनिक व्याख्यान हुए हैं। पं० श्रीगोपीनाथ धर जैसे कई काश्मर्य महानुभावोंने महाराजश्रीके अहिंसात्मक आँदोलनमें बड़ी सहायता की है।

हरिसिंह हाईस्कूलमें एक वार **'कश्मीरजीव दया मंडली'** की ओरसे एक मिटींग हुई। जिसकी प्रधाना श्रीमती **मिस-लारेन्स गासक** चुनी गई थीं। महाराजश्रीके उपदेशोंका हिंदु, मुसलमान, सिक्ख, क्रिश्चियन आदि उपस्थित सज्जनों पर गहरा प्रभाव पडा। उक्त प्रधाना- महोदयाने ५०००) का दान भी घोषित किया। तथा यह कहा कि श्रीनगरमें आनेवाले शाकाहारी लोगोंके लिए इस रुपये से **'वेजिटेरियन विज़ीटर रूम'** बनवाए जायँ जिससे, उन्हें किसी भी प्रकारकी असुविधा न हो। उन्होंने यह संदेश भी भिजवाया कि यदि ५०००) की व्यवस्था किसी अन्य व्यक्तिसे हो सके तो १००००) मुझसे और लें। प्रधाना महोदया पवित्र शाकाहारिणी हैं। सब प्रकारके अभक्ष से मुक्त हैं। अमेरिका रहती हैं। यहां प्रतिवर्ष आती हैं। स्थायी निवास बंबई है।

बालकोंमें अहिंसाप्रवाह—विद्यार्थी बालकोंको भी यह प्रेरणा दी गई थी। जिससे उनके झुंडके झुंड आते थे। उनसे मांसत्याग संबंधी प्रतिज्ञा लिवा ली जाती थी। श्रीनगरमें अनुमान छोटे बडे

सब ५०० विद्यार्थिओंने अहिंसा भगवती दीक्षामें भाग लिया। कई कॉलिज और हाईस्कूलों के बडे विद्यार्थी भी इसमें सहयोगी हुए हैं।

५० से ६० तक विद्यार्थिनी बालिकाओं तथा अध्यापिकाओंने भी मांसभक्षण छोड दिया है। जिनमें १० से अधिक मुस्लीम ख़ातून थीं।

मौलवी श्रीअब्दुल कयूम—उपदेशों और सत्संगसे प्रभावित होकर महाराज श्रीके समक्ष पठानकुल-शिरोमणि मौलवी श्रीअब्दुल क़यूम महोदयने प्रतिसप्ताह दो दिन मांसत्याग उदार हृदयसे किया।

रिसर्च डिपार्टमेंट—कश्मीर सरकार की ओरसे **रिसर्च डिपार्टमेंट** अच्छा कार्य कर रहा है। यहां के अधिकारियों की प्रेरणासे महाराजश्रीको इस संस्था की सब पुस्तकें भेंट स्वरूप प्रस्तुत की गईं। गिलगतवाली चार पुस्तकोंमें बौद्धोंका पुराना साहित्य भी है। यह साहित्य अमुक स्थानमें गिलगतकी भूमिकी खुदाई करते समय उपलब्ध हुआ है। हजारों वर्ष पूर्वकी भूर्जपत्र पर लिखी हुई वस्तुका यह प्रकाशन है, इस साहित्यसें जैन दर्शनका भी अच्छा परिचय मिलता है, इस संस्थाने अबतक २५० से अधिक पुराने ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। प्रत्येक जैन पुस्तकालयोंके व्यवस्थापकोंको उचित है कि वे अपने अपने पुस्तकालयोंसे यहांके प्रधान मंत्रीके नाम प्रार्थनापत्र भेजकर नई-पुरानी सब पुस्तकें मंगानेकी व्यवस्था करें। पुस्तकें दर्शनीय एवं तांत्रिक हैं। उन्हें अमूल्य देनेकी व्यवस्था इस संस्थाने भारतीय-स्थानीय संस्थाओंके लिए की है।

पठित काश्मर्य—सुना करते थे कि काश्मर्य पंडित संस्कृतज्ञ तथा ज्योतिर्विद्यामें निपुण होते हैं। परन्तु विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ

है कि अब ऐसे विद्वान् नहीं हैं। ज्योतिषी तो दुरंगे हैं, दोनों ओर गिरते हैं। हाँ अंग्रेजीके विद्वान ख़ूब हैं। संस्कृत विद्या लुप्त-प्राय होती जा रही है। थोड़े से विद्यार्थी शारदा-विद्यापीठमें हैं। यहां संस्कृत पाठशाला बहुत कम हैं।

कश्मीरमें कीडियोंकी कमी—काश्मर्य पर्वतीय स्थानोंमें कीड़ी-मकोड़े आदि जन्तुओं का उपद्रव नहींके बराबर है। अधिकतर कीडिएँ बिहार देशमें पुष्कल हैं। वे किसी अपेक्षा विषैली भी अधिक हैं। वे काटती हैं कि तुरंत छाला पड़जाता है, वेदना व्याप्त हो जाती है। घावके अच्छे होनेमें १०—१२ दिन लग जाते हैं। वे लोग इन्हें बी वेल कीड़ी कहते हैं। पर यहां यह उपद्रव नहीं है।

वेश्यावृत्तिपर प्रतिबंध—कश्मीर राज्यकी व्यवस्थाके अनुसार यहां वेश्या वृत्तिपर कड़ा प्रतिबंध है। ज्ञात होनेपर ऐसे आरोपीको कठोर दंड मिलता है। यदि देश भरमें भारत सरकार यही नियम बनादे तो देश व्यभिचारके संकट और दोषसे मुक्त हो सकता है।

काश्मर्य पंडितोंका शासन—काश्मर्य प्रदेशका बस्तीपत्र अनुमान १६००००० के लगभग है। जिसमें १५००००० से अधिक तो यावनी प्रजा है, और ८०००० हिन्दुओंकी संख्या है। तथा ७०००० कश्मीरी पंडितोंकी गणना है। सिकंदरबुत शिकन और बड़शाहके समय कश्मीरके हिन्दुओंपर इतना अत्याचार हुआ था कि कश्मीरी पंडितोंकी संख्या मात्र ११ ही रह गई थी। अब इतनी संख्या होने पर भी योग नगण्यसा ही है। तथापि इनकी कूटनीतिमें इतनी प्रबल निपुणता है कि यावनी संख्या अधिक होनेपर भी सत्ता काश्मर्योंकी ही है।

काश्मर्य-शाल—कश्मीरी कहावत है कि "बाद बादी बलग़म, शाल शाली शलग़म" इस उक्तिके अनुसार यहां शाल बड़े मूल्यके होते हैं। स्पर्श सुकुमाल और भार कम। मूल्य २०००–२५०० तक का भी होता है। कुछ ऐसे कारीगर भी हैं जिनके बनाए हुए शाल अंगूठी से पार हो जाते हैं। इन्हें **रिंगशाल** कहते हैं। शायद पहले ये रत्नकंबल कहाते हों तो क्या आश्चर्य है। रेशमके भी कई कारखाने हैं। रेशम अधिक प्रमाणमें तैयार होता है।

काश्मर्य–आहार—इनका अधिकांश आहार चावल है। और देशोंके गेहुओंकी अपेक्षा यहां के चावलमें शक्ति तत्व विशेषाधिक पाया जाता है।

काश्मर्य जलवायु-कुछ जलवायुका विलक्षणसा प्रभाव है। यहां का आहार और वायु मनुष्यको कुछसे कुछ बना डालता है। अंगोपांग दृढ और सशक्त होनेके अतिरिक्त कुछ बढ़ भी सकते हैं। देहका भार भी बढता है। ऐंद्रिय-नैर्बल्य पलायन करने लगता है। मनुष्य अपनी खोई हुई शक्ति को यहां पुनः लौटाने लगता है। साथ ही मनुष्य को यहां आकर संयमी भी होना चाहिए, वरन् इन्द्रियोंके घोडे बे बस हो जायँगे। संयमी मनुष्य यहां से असंख्य-निधि बटोर सकता है।

काश्मर्य-सौन्दर्य-वास्तवमें काश्मर्य-सौन्दर्यकी छटा कुछ अनुपम सी है। लोगोंकी देहयष्टि गौर वर्णीया और मदभरी आँखें नीलमको लज्जित करनेवाली हैं परन्तु रामपुर-बशहर वालोंका कलेवर तपेसोनेकी तुलना करता है, उनकी छबी कंधारी अनार सरीखी सराहनीय है।

काश्मर्य-काग़ज़—कश्मीरी काग़ज़ जगत्प्रसिद्ध वस्तु है, भारतीय लेखक और चित्रकार इन्हीं का आदर करते आए हैं। परन्तु मध्यकालमें अंग्रेज़ी प्रकारके प्रचारने इस पद्धतिको जड़से मिटाना चाहा था किन्तु काँग्रेसके खादी प्रचारने इस शुष्क स्रोतको फिरसे प्रवाहित करदिया। तथा चर्खा संघके आश्रयमें इसका एक अलग कार्यालय अपना सुंदर कार्य कर रहा है। यहां मोटे-पतले सफ़ेद और रंग बिरंगे सब भाँतिके काग़ज़ बनते हैं। इसकी वास्तविक उत्पत्ति तो सन से है, पर अब तो फटे पुराने कपडोंको गाल कर बनाया जाता है। घासकी तीलिओंकी जालीके ऊपर कढाएमेंसे घुले मसालेका अंश चढ़ाया जाता है एवं बातकी बात में फटाफट काग़ज़ बनते जाते हैं। सूखने पर शंखसे घुटाई होती है और लिखने के कामका होता है। जितना घोटा जाता है, उतना ही बढ़िया मेल बनता है। पर ये लोग घुटाई कम करते हैं। यह काग़ज़ प्रेसके लिए भी उपयोगी होता जा रहा है। बरफ़के समय काम मंद पड जाता है। काग़ज़ सुखानेके लिए धूपकी भी आवश्यकता होती है। फिर भी यहां काग़ज़ उचित मात्रामें बनता है। महाजनोंकी बहिएं इसी प्रकारके काग़ज़की होती हैं। इस काग़ज़की अवधि बहुत होती है।

बडी-मसजिद—हरि-पर्वत जाते समय मार्गमें एक दर्शनीय मसजिद भी खडी है। अनुमान १००००० मनुष्य बैठसकते हैं। इसकी निर्माण कला बताती है कि किसी समय यह बौद्ध-विहार रहा होगा। शाही समयने इसका चर्म छीलकर नमाज पढ़नेकी वस्तु बना दिया होगा। रचनामें पराकाष्ठा होगई है। इतनी बडी तथा सुंदर इमारत कश्मीर भरमें नहीं है। चारों ओर चार बडे बडे द्वार

हैं। दो द्वार खुलते है। मुसल्मानों का अधिकार इस पर ६५० वर्ष से है। आखिर मसजिद ही जो ठहरी।

दर्शनार्थ आनेवाले—चतुर्मासमें दर्शनार्थ यात्री भी आए हैं। उनकी यथोचित आतिथ्य सेवामें जैनसंघने कोई कर कसर बाकी न छोड़ी। परन्तु लोगोंके अपने मकान छोटे होनेके कारण आए हुए भाईयोंको रहनेकी बड़ी तकलीफ रही है। अतः यहां स्थानक-अतिथिभवन जैनपुस्तकालय आदि संस्थाओंकी उपयोगिताकी दृष्टिसे विशेष आवश्यकता है। आशा है भारतीय श्रावक मंडल और श्रीश्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फरन्स इस ओर अवश्य लक्ष्य दे।

लोग प्रतिवर्ष अपने सांसारिक कार्योंमें लाखों रुपया व्यय करते हैं परन्तु अर्थवस्तुका अत्यन्ताभाव नहीं होता, तब उन्हें शासनीय कार्येंमें व्यय करनेके प्रसंगमें अनुद्योगी हतोत्साह न होना चाहिए। यदि पंजाबके प्रत्येक संघ द्वारा १०००)-१०००) रुपया भी कश्मीर संघको दानमें मिले तो ४००००) रुपये से यहां जैन उपाश्रय, व्याख्यान हाल, जैन अतिथि भवन, जैन पुस्तकालय, जैन विद्यालय आदि सभी कुछ बन सकते हैं। जिससे आगन्तुक बांधवोंको सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं, और विद्यालय द्वारा काश्मर्यों पर जैन धर्मका रंग चढाया जा सकता है। यहां के लोग वास्तवमें अनुकरणप्रिय भी हैं।

यहां सब सम्प्रदायकी संस्थाएँ हैं, मात्र एक जैन सम्प्रदायकी ही कोई संस्था नहीं है। क्या जैन संघको लज्जा न आनी चाहिए। इस विषयमें पुनरुक्ति भी आगई है। परन्तु इसका कारण मेरे अन्तरमें इन वस्तुओंका अभाव खटक रहा है। इस लिए इसे कई बार दोहरा गया हूं। यहां सैंकड़ों कश्मीरी पंडित बौद्ध हैं तब जैन कोई भी नहीं, यह किसे न अखरे!

परिशिष्ट नं. १

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

श्रीज्ञातपुत्र महावीर भगवानका उज्वल शासन.

श्रीजैनशासनके समस्त प्रतिनिधिस्वरूप मुनियोंसे इतना ही निवेदन है कि यह लेख आपके सामने स्थालीपुलाक न्यायके समान प्रस्तुत है। इसमें उन आपत्तिजनक शब्दोंपर विचार किया है जिनका कि विरोधी लोग गतानुगतिक भ्रमणाके कारण विलोम अर्थ करनेका दुःसाहस करते आए हैं। वे शब्द कपोत-शरीर-मज्जारकृत-कृतक-कुक्कुट-मांसक-मत्स्य-कंट-कंटक-और अस्थि-अस्थिक आदि।

वास्तवमें आयुर्वेदकी तालिका डाले विना इस यंत्रका खुलना सुगम नहीं है। अतः मैंने गवेषणापूर्ण साधनासे सात्विक परिश्रम एवं निष्पक्ष विचारोंसे आयुर्वेदिक ग्रंथोंका अध्ययन करनेके अनन्तर अपने अनुकूल भावोंका मंथन किया है। आशा है इसे पढ़कर क्षीर-नीरके पृथक् करनेके समान विवेकी हंस पुरुष इससे अवश्य लाभ उठाएँगे। विशेष कर धर्मानंद कौशांबी आदिको इसे पढ़कर सन्तोष होगा। वे इस मननीय विषयको और भी विचारके गंभीर क्षेत्रमें पहुँचनेकी चेष्टा करेंगे। यदि आपकी स्खलना आपको सद्भावकी प्रेरणा से अखरने लगे तो आप विवेकी जनतामें अवश्य इसका संशोधन करनेका प्रयत्नही करें।

"सत्पुरुषों कि निधि सत्य ही है"।

श्रीनगर, चतुर्मास
ता० १८-१-४४

लघुतम,
पुप्फ भिक्खु.

अतिसार[1].

इस रोगमें मल बढ़कर उदराग्निको मंद रके रसोंको लेता हुआ बार बार निकलता है । इसमें आमाशयकी भीतरी झिल्लीमें वर्म हो जानेके कारण, खाया हुआ पदार्थ नहीं ठहरता, और अंतडियोंमेंसे पतले दस्तके रूपमें निकल जाता है । यह भारी-चिकनी-रूखी-गर्म-पतली, चीजोंके खानेसे, एक भोजनके विना पचे फिर भोजन करनेसे, विषसे, भय तथा शोकसे, मद्यपानसे, तथा कृमिदोषसे उत्पन्न होता है । वैद्यकके मतसे इसके छः भेद हैं । वायुजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य, शोकजन्य, आमजन्य. (हिं. श.)

रक्त-आमातिसार.—इस रोगमें लहूके दस्त आते हैं । अपानमार्गसे खून गिरा करता है । यह रोग आगके सेक या धूपमें अथवा उसकी गर्मीमें अधिक रहनेसे भी होता है । (हिं. श.)

आर्षमत.

व्युत्पत्ति—अतीव सरति, प्रकृतिमतिक्रम्य गुदमार्गेण सरतीति अतिसारः ।

भा०—जो अधिक पतला होकर निकलता है । एक दो बारके अतिरिक्त गुदमार्गसे विपरीत निकलता है वह अतिसार है ।

तच्च द्विविधम्—विप्रकृष्टसन्निकृष्टभेदेन । तयोर्विप्रकृष्टं विरुद्धाहारादि, सन्निकृष्टं वातादि ॥

---

१ नाम-सं. अतिसार. पं. दस्त. अ. इसहाल. इं. डायरिया. Diarrhoea.

भा०—और वह विप्रकृष्ट-सन्निकृष्ट भेदसे दो प्रकारका होता है। विरुद्ध आहार आदिसे प्रथम और वातपित्तादिके प्रकोपसे सन्निकृष्ट अतीसार होता है।

एतद्बहुद्रवमलनिस्सारणरोगे, तस्य निदानं (रोगनिर्णयः) गुरुभोजनादिकम्।

भा०—इसका निदान यह है कि, अधिक गरिष्ठ भोजनादिसे यह बहुत मल निकालनेवाला रोग हो जाता है।

तस्य निरुक्तिः—रसादिद्रवधातूनामग्निं मंदीकृत्य मलेन सह मिश्रितानां वायुना चाधः प्रणुन्नानां अतिनिस्सरणादतिसार उच्यते।

भा०—रसादि द्रवधातु मलके साथ निकलने लगते हैं। तब जठराग्नि मन्द हो जाती है। और वे वायुके साथ मिल कर नीचे गुदमार्गसे निकलनेके लिये प्रेरित होते हैं। इस अप्राकृतिक रूपसे मलके अधिक निकलनेको अतीसार कहा जाता है।

तस्य च पूर्वरूपं, हृदयनाभिगुह्योदरादिस्थानेषु सूचीविद्धवेदना, कायाऽवसादवायुमलविबन्धतोदोदराऽऽध्मानापरिपाकादिकं च।

स षड्विधः—वायुपित्तकफसन्निपातशोकाऽपरिपाकजभेदाद्भवति।

तत्र वातजे १—मलस्यारुणता-फेनिलता-रुक्षता-पक्वता-तथा सशब्दवेदनामल्पशो मुहुर्निस्सरणं च लक्षणं भवति।

पित्तजे च २—मलस्य हरितपीतलोहितवर्णता तृष्णामूर्च्छादाहाः, मलद्वारे ज्वालाक्षतं च लक्षणम्।

कफजे च ३—शुक्लगाढसकफामगन्धिशीतलमला निस्सरन्ति, रोगी सरोमाँश्च भवति।

सान्निपातके च ४—वातजादिलक्षणानि दृश्यन्ते, प्रायशश्चात्र मलाः शूकरवसामांसधावनवारिवद्भवंति ।

शोकजे च—५—गुंजाफलसदृशशोणितं केवलं मलमिश्रितं मलरहितं वा सरति । तच्च मलसहितं चेद्दुर्गन्धं मलरहितं चेन्निर्गन्धं भवति ।

आमातिसारे च ६—नानावर्णं वारं वारं चातिसार्यते, तथा तत्रोदरशूलमतीव जायते ॥

अतिसारका पूर्वरूप.

हृदय-नाभि-गुदा-पेट आदि स्थानोंमें सूइयोंके प्रहार के समान पीडा होती है, शरीर गिरा पड़ासा रहता है, वायु और मलके रुकनेसे वेदना होती है-अन्नका अपच होनेसे पेट फूलसा जाता है । इत्यादि । और वात-पित्त-कफ-सन्निपात-शोक-अपरिपाक (आम) के भेदसे इसके छ प्रकार हैं ।

वातज १—इसमें मल लाल-झागवाला-रूक्ष और पक्व होता है, गुदासे शब्द होता है, हल्कासा कष्ट-मल वार वार निकलता है । ये वातातिसारके लक्षण हैं ।

पित्तज-अतिसारके लक्षण—मल हरा-पीला-लाल वर्ण युक्त होता है, प्यास-मूर्छा और दाह लग जाती है, मलद्वारमें आगकीसी जलन तथा ज़ख्मकासा कष्ट होता है ।

कफज-अतिमारके लक्षण—गाढा-सफ़ेद तथा कफसहित आमगन्ध-और ठंढा मल निकलता है । रोगीके रोमांच हो उठते हैं ।

सान्निपातिक-अतिसार—तीनों दोष विकृत हो जाते हैं, इसमें मलका रंग शूकरकी चर्बी, धुले हुए मांस के पानीके समान होता है ।

शोकज-अतिसार— गुंजाफलके समान खून केवल मलमें मिलकर या मलरहित निकलता है। यदि मलके साथ हो तो बांस मारती है और मलरहित दुर्गन्धित नहीं होता।

आमातिसार—यह नाना प्रकारसे निकलता है, एवं इसमें शूलके प्रहारके समान उदरपीडा होती है।

अतिसारस्य चासाध्यलक्षणं—मलस्य कृष्णस्निग्धता-यकृत्खंडवत् कृष्णरक्तवर्णता-घृततैलवसामज्जदधिदुग्धमांसधावनवारिसदृशता-कृष्ण-नीलवर्णता-ईषत्कृष्णरुक्षचिक्कणता-शिखिपुच्छवत् विविधवर्णचन्द्रकयुक्तता-घनशवगन्धिमस्तिष्काभता-सुगन्धपूतिगन्धबहुलता च-तथा तृष्णा-दाहान्धकारदर्शनं-हिक्काश्वासपार्श्वशूलेंद्रियचित्तमोहाः, गुह्याभ्यन्तरवलिपाकः प्रलापश्च, तथा गुदसंवरणाक्षमता बलमांसहीनता अतीवोदराध्मानं शोथः मलद्वारस्य पक्कता सत्त्वेऽपि गात्रस्य शीतलता उपद्रवाश्च। **चिकित्सा** स्वस्वपर्याये प्रदर्शनीया ॥ अतीसारे नानाविधद्रवधातुनिस्सरणं-अन्यत्र केवलमेव कफनिःसरणमित्यतिसारप्रवाहिकयोर्भेदः। इति माधवकरसंग्रहादतीसारसंग्रहः। शार्ङ्गधरस्तु भयजमुक्त्वा सप्तविधमाह। तस्य सम्प्राप्तिः—संशम्यापां धातुरन्तःकृशानुं वर्चोमिश्रो मारुतेन प्रणुन्नः। वृद्धोऽतीवाधः सरत्येव यस्माद्व्याधिं घोरं तं त्वतीसारमाहुः। हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः। विट्संङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि। **तस्य निदानम्**। गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥

स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषाद्भयात्।
शोकाद्दुष्टाम्बुमद्यातिपानात् सात्म्यर्तुपर्ययात् ॥

जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः ।
नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ सु. उ. अ. ४०
(मा. नि.)

असाध्य अतिसारके लक्षण

मल चिकना होना यकृत्का खंडोंकी भाँति रक्त कृष्णवर्णताका होना, घी, तेल, चर्बी, मज्जा, दही, दूध, धुलेमांसके पानीके समान, काला, नीलापन लिए हुए, कुछ कालापन, रुक्षता या चिकनाहट, मोरपंखके समान नाना वर्णके अर्धचन्द्राकार युक्त, मृतक कीसी बदबू मस्तकसे आना, गंध या दुर्गंध की बहुलता, प्यास या जलनका होना, अँधेरी का आना, हिचकी, श्वास खिचना, पसलीका दर्द, इन्द्रिय और मनका विवेक नष्ट होना, गुदाका पकना आयबाय बकना, या गुदाको संकुचित करनेकी शक्तिका नष्ट होना, बल और मांसका हीन होना, पेट पर अफारा और वर्म, मलद्वारका फोड़ेकी तरह पकना, इस परभी देहमें शीतलताका उपद्रव इत्यादि ।

चिकित्सा—इसका इलाज अपने अनुभवके अनुसार करना उचित है ।

इतना और स्मरण रहे कि अतीसारमें नाना प्रकारके द्रव धातु निकलने लगते हैं । या कहीं कहीं केवल कफ ही निकला करता है । मात्र अतिसार और प्रवाहिकामें यह विशेष अन्तर है ।

इति माधवकर-अतिसारसंग्रहः ।

शार्ङ्गधर तो भयातिसारको मिलाकर सप्त-प्रकारका अतिसार मानता है । यह वृद्धोंपर बुरी तरह आक्रमण करता है । उन्हें अतिसार घोर

यातना पहुँचाता है, हृदय-नाभि-मलद्वार-उदर और कुक्षिमें पीड़ा होती है। शरीर टूटता सा है। वायु रुक जाता है।

इसका निदान इस भाँति है—जो कि माधवनिदान और सुश्रुतमें एकही प्रकारसे वर्णित है।

गुरु (मात्रागुरु अथवा स्वभावगुरु) अतिस्निग्ध-अतिरुक्ष-अति-उष्ण-अतिद्रव (पतला) अतिस्थूल-और अतिशीतल-पदार्थोंके सेवनसे, संयोगविरुद्ध, देशविरुद्ध, मात्राविरुद्ध, कालविरुद्ध भोजनसे, पूर्व (दिनमें) भुक्त अन्नके पचनेसे पूर्व ही पुनः भोजन करनेसे, अपक्व अन्नके खानेसे, अधिक, अल्प एवं असमय भोजन करनेसे, स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन, अनुवासन, और निरूहण इनके अतियोग या मिथ्यायोगके प्रयोगसे, विष (स्थावर या दूषी विष) और भयसे, शोक, दुष्टजल या अतिजलपान तथा अतिमद्यसेवनसे, सात्म्यविपर्यय, ऋतुविपर्ययसे, जलक्रीडा, वेगावरोध और उदरमें कृमि पड जानेसे, इत्यादि कारणोंसे मनुष्योंको अतीसार होता है। माधवनिदानकी अपेक्षा अतिसारके लक्षण इस प्रकार वर्णित हैं।

अतिसारकी उत्पत्तिके छः प्रकार.

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः, शकृन्मिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः।
सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥
एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥४॥

भावार्थ—वायुसे नीचेकी ओर प्रेरित किया हुआ प्रदुष्ट रस, जल-मूत्र-स्वेद-मेद-कफ-पित्त-रक्तादि रूप जलीय धातुके जठराग्निको मंद करके मलके साथ मिश्रित होकर अधोमार्ग (गुदमार्ग) से अत्य-

धिक निकलनेको आचार्य अतिसार व्याधि कहते हैं । यही व्याधि वात-पित्त-कफ-सन्निपात-शोक और आमसे उत्पन्न होनेके कारण छः प्रकारकी होती है ।

अतिसारका पूर्वरूप.

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः । सु. ६-४०
विट्संग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि । ५ मा.नि.

भावार्थ—हृदय-नाभि-गुदा-उदर और कुक्षिमें सूईकी तरह चुभान, शरीरमें पीडा, अधोवायु तथा मलका न निकलना, पेटका फूलना, एवं अन्नका न पकना, ये लक्षण होनेवाले अतिसारके पूर्व लक्षण हैं ।

वातातिसारके लक्षण.

अरुणं फेनिलं रुक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ।
शकृदामं सरुक् शब्दं मारुतेनातिसार्य्यते ॥ ६ ॥ मा. नि.

भावार्थ—वातातिसारमें अरुणवर्ण, झागयुक्त, रुक्ष, एवं आममल बारबार थोड़ाथोड़ा करके पीडा और शब्दके साथ गुदमार्ग से निकलता है । अर्थात् उपर्युक्त लक्षण वातातिसारके हैं ॥

पित्तातिसारके लक्षण.

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा, तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम्
सु. ६-४० ॥ मा. नि. ॥

भावार्थ—पैत्तिक-अतिसारमें पुरीष पीला नीला या अत्यन्त लाल आता है । और इसमें रोगीको तृष्णा-मूर्च्छा भी होती है । उसके सर्वांगमें दाह और गुदामें पाक होता है ।

कफातिसारके लक्षण.

शुक्लं सांद्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं ।
विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ७ ॥

भावार्थ—श्लैष्मिक अतीसारमें मल श्वेत, गाढा, श्लेष्मवाला, आमगंधी, और शीत होता है । और वह श्लेष्मातिसारी मनुष्य रोमांचित हो जाता है ॥

त्रिदोषातिसारका स्वरूप.

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम् ।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥ ८ ॥

भावार्थ—शूकरकी मेदा वा मज्जाके समान अथवा मांसोदकके समान, वात-पित्त-कफ- इन तीनोंके रूपवाला अतीसार त्रिदोषज तथा कृच्छ्रसाध्य होता है ।

शोकज-अतिसारके लक्षण.

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य,
बाष्पोष्मा वै वन्हिमाविश्य जन्तोः ।
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं,
तच्चाधस्तात्काकणन्ती प्रकाशम् ॥ सु. ६-४०
निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा,
निर्गन्धं वा गन्धवद्वातिसारः ।
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं,
रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥ १० ॥ सु. ६-४०

भावार्थ—धन-दारा-बन्धुआदिके वियोगादिमें शोकातुर अल्पभोजी

मनुष्यकी अतिबाष्पके त्यागसे उत्पन्न उष्मा उसके कोष्ठमें जाकर जठराग्निको दूषित कर रक्तको क्षुब्ध करती है। जिससे कि क्षुब्ध हुआ वह रक्त अपानमार्गसे रत्तियोंकी लालिमाके समान मलसे युक्त वा मलसे रहित गन्धयुक्त वा निर्गन्धरूपसे निकलता है। यही शोकज अतीसार नामक रोग अत्यन्त दुश्चिकित्स्य होनेके कारण कष्टप्रद कहा जाता है। इसलिये कि यह आगन्तुक है। अतः इसमें मानसिक दोषोंकी चिकित्साभी करनी पडती है। मनमें से वे भाव भी दूर करने पड़ते हैं। जिनसे कि इसकी प्रवृत्ति होती है। इसलिये यह दुश्चिकित्स्य है, किसीका मत है कि यह रक्त अतिसार होता है।

आमातिसारका स्वरूप.

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः,
कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलाँश्च।
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति,
शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ ११ ॥

भावार्थ—अजीर्ण अन्नसे (अन्नाजीर्णसे) प्रकुपित दोष कोष्ठ रक्तादि धातुओं तथा पुरीषादि मलोंको दूषितकर अनेक वर्णवाले पीडा सहित मलको बार बार निकालते हैं। तथा इसेही वैद्यलोग छठवाँ अतीसार कहते हैं। इसमें संख्या वाचक छठा पद देनेसे यह सिद्ध होता है कि भय-स्नेहाजीर्ण-विसूचिका अर्श और अजीर्ण आदिसे होनेवाले अतिसार अलग नहीं हैं। अतः यह छठवाँ अतिसार है या अतीसार छः ही होते हैं। प्रत्युत वे दोषोंमें ही अन्तर्गत होकर इन छः में ही सब आजाते हैं॥

आममल-लक्षण.

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।
पुरीषं भृशदुर्गन्धिपिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ १२ ॥ सु० ६-४०

भावार्थ—इन वातादि दोषोंसे युक्त तथा जलमें डालनेपर डूब जानेवाला अत्यन्त दुर्गन्धित एवं पिच्छिल मल (पुरीष) आम कहलाता है ।

पक्कमलके लक्षण.

एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै ।
लाघवं च विशेषेण तस्य पक्कं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥ सु० ६-४०

भावार्थ—उपर्युक्त आमलक्षणोंसे जो विपरीत अर्थात् वातादिसे अदूषित जलमें न डूबने वाला अत्यन्त दुर्गन्धित और पिच्छिल न हो वह, तथा जिसमें कोष्ठ और शरीर लघु हो वह मल पक्क होता है ॥

पित्तातिसारकी अवस्थाविशेषमें रक्तातिसार.

पित्तकृन्ति यदाऽत्यर्थं, द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ।
तदोपजायतेऽभीक्ष्णं, रक्तातीसार उल्बणः ॥ २० ॥

भावार्थ—पैत्तिक अतिसारमें या उसके पूर्वरूपमें यदि पित्तकारक पदार्थोंका निरन्तर अत्यन्त सेवन किया जानेपर प्रबल रक्तातिसार हो जाता है ॥

ज्वरातिसारका निदान.

ज्वरातिसारयोरुक्तं, निदानं यत्पृथक् पृथक् ।
तत्स्याज्ज्वरातिसारस्य, तेन नात्रोदितं पुनः ॥

भावार्थ—जिसका मूत्र और अधोवायु मलकी प्रवृत्तिके विना ही

भलीप्रकार प्रवृत्त हो जाता है और जिसकी जठराग्नि दीप्त तथा कोष्ठ हलका होता है, वह मनुष्य अतिसारसे मुक्त जानना चाहिए [जो निदान ज्वर और अतिसारका कहा है वही ज्वरातिसारका भी है। अतः उसे पुनः नहीं कहा है ॥

वेगस्तीक्ष्णोतिसारश्च, निद्राल्पत्वं तथा वमिः ।
कंठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥
प्रलापो वक्त्रकटुना मूर्छादाहौ मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं, पैत्तिके भ्रम एव च ॥ नि०

भावार्थ—पित्तजन्यज्वरमें अतिसारका तीक्ष्ण वेग रहता है, नींद घट जाती है, वमन होता है, पसीना आता है, गला-मुंह और नाक पक जाता है । प्रलाप करता है मुँह कड़ुआ रहता है, मूर्छा-दाह-प्यास और मद उत्पन्न होते हैं। पुरीष-मूत्र और आँखोंका वर्ण पीला पड जाता है तथा चक्कर आने लगते हैं ॥

अश्वातिसारके लक्षण.

अनिलेनाथ पित्तेन, श्लेष्मणा चापि वाजिनः ।
अतिसारस्तथा चान्यः सन्निपातेन जायते ॥
संकोचितांगस्वानेन, सकफं योतिसार्यते ।
अल्पं तनु स शब्दं च, पुरीषं बहु वा हयः ॥
तस्य वातात्मकं विद्यादतीसारं विचक्षणः ।
पित्तजं चैव वक्ष्यामि, श्लेष्मजं च समासतः ॥
स्वेददाहपरीतानां लक्षयेन्मतिमान् भिषक् ।
स्रावेण नीलरक्तेन, विस्रगन्धेन पित्तजम् ॥

मन्दाहारस्तथा वाहो हृष्टरोमातिपीडितः ।
श्यामैः सपिच्छलैर्भिन्नैर्विद्याच्छ्लेष्मसमुद्भवम् ॥
सन्निपातात्मकं चैव सर्वेषां लक्षणैर्युतम् ।
द्विरूपं द्वन्द्वजं ज्ञेयमतीसारं विचक्षणैः ॥
अतीसाराः समुद्दिष्टाः शालिहोत्रादिभिः पुरा ॥

ज. द. अ. ४२ ॥

भावार्थ—मनुष्योंके समान घोडोंकोभी अतिसार होता है, उसकी चिकित्सामें कुछभी भेद नहीं है नाही औषधियोंमें अन्तर है, मात्र मात्रामें अधिकता होती है, अश्वातिसारका स्वरूप ज० द० संहितामें इस प्रकार वर्णित है ।

वात पित्त और कफके प्रकोपसे घोडोंके शरीर में भी अतीसारका उपद्रव उत्पन्न होजाता है । किसी किसी भिषग्वरका यह भी मत है कि घोडोंको सांनिपातिक-अतीसार भी हो सकता है ।

जब घोडेका अंग-संकोच होता हो, कफ सहित पतला दस्त अतिशय छेरता हो, रह रह कर थोडा बहुत पर्द (गुद-शब्द) भी होता हो, अथवा अधिक मल सरता हो तब वाताऽश्वातिसार जानना चाहिए ।

पित्तज-और श्लेष्मजातिसार.

पसीनेके अतिरक्त दाह भी हो, स्राव नीलिमा और लाली युक्त हो, मलमें बदबू आती हो, तब उत्तम वैद्य उसे **पित्तज अतिसार** कहते हैं ।

जब घोडा चारा कम खाता हो, शरीरमें बेचैनी हो, रोंगटे खडे

हो जाते हों, काला अथवा चिकना मल हो, तब कफातिसार जानना चाहिए।

सांनिपातिक अतिसारमें भिन्न भिन्न दोष विकृत होकर तीनोंमेंसे किसी दो दोषोंके दूषित होनेको कहते हैं।

ये अतीसार शालिहोत्र या नकुल अश्ववैद्य ने बतलाए हैं। अधिक विवरण वहांसे जानना चाहिये।

अतीसार चिकित्सा

मत्स्यकाष्ठी—उपोदिका अर्थात् पुदीना[1] अतिसारमें बडी उपयोगी एवं अपना चमत्कार तत्काल दिखाती है। इसका उपयोग चरकमें वर्णित है। इसके अतिरिक्त खिरनी-यवानी (अजवायन), वथुआ-सुवर्चला चंचोर्वा-शटी-कर्कारुका-जीवन्ती-चिर्भट-लोणिका-सपाठा-दाडिम-आदि औषधिएँ भी अतीसारमें हित पडती हैं। उसके दोषोंको पचा डालती हैं।

चांगेरी—चांगेरी बूटी और आकारमें इसीके समान चौपत्ती (चतुष्पत्री) जडी तो अतीसार में संजीवनीका काम करती है। इसका घृतभी इसीमें काम आता है। यथा—

"चांगेरीकोलदध्याम्लनागरक्षारसंयुतम्।
घृतमुत्कथितं पेयं."................ ॥ ४७ ॥

---

१ यूषेण मूलकानां तु, बदराणामथापि वा।
उपोदिकायाः क्षीरिण्या यवान्या वास्तुकस्य वा ॥ ३५ ॥
सुवर्चलायाश्चंचोर्वा, शोकेनावल्गुजस्य वा।
शट्याः कर्कारुकाणां वा, जीवन्त्याश्चिर्भटस्य वा ॥ ३६ ॥
लोणिकायाः सपाठायाः शुष्कशाकेन वा पुनः।
दधिदाडिमसिद्धेन, बहुस्नेहेन भोजयेत् ॥ ३७ ॥
च. अ. ॥ १९ ॥

"चांगेरीकोलतक्राम्लाँश्चतुरस्तान् कफोत्तरे" । च. अ. १९

शतावरीकल्क–(जटामांसी-गंधमार्जार) इसमें शतावरी (इसका पर्याय गंधमार्जार होता है ।) कल्क तो अत्यन्तही हित पड़ता है । जो कि रक्तातिसारको नष्ट करता है । यथा–

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुक् जयेत् ।
रक्तातिसारं पीत्वा वा तथा सिद्धं घृतं नरः ॥ ८२ ॥
चरक अ. १९

कुटज–(कुक्कुट) कुटजका प्रयोग करनेसे अर्शः–अतिसारको पूर्णतया लाभ पहुँचता है । यथा—

घृतं यवागूमंडेन कुटजस्य फलैः शृतम् ।
पेयं तस्यानुपातव्या पेया रक्तोपशान्तये ॥ ८३ ॥ च. अ. १९

शतावरीघृतम्—जटा या गन्धमार्जारीका घी भी चाटनेसे अतिसार को लाभ पहुँचता है । यथा—

शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ १०२ ॥ च. अ. १९

पीपल-अश्वत्थ (कपोत)—पीपल या पारीशपीपलके वल्कल फल आदि भी अतिसारके लिये उपयोगी सिद्ध हैं । यथा—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ·········वासयेत् ॥ १०८ ॥ च. अ. १९

कर्कटिका (ककोडा)—बेलगिरि-नागरमोथामिश्रित ककोडेका उपयोग अतिसारीको अद्वितीय लाभ पहुँचाता है । यथा—

बिल्वं कर्कटिकामुस्तामभया विश्वभेषजम् ॥ १०९ ॥
च. अ. १९

मातुलुंग (नींबू)—दहीके साथ नीबूका भुर्ता अतीसारीको अतीव लाभदायक है। यथा—

धातकीद्विगुणं दद्यान्मातुलुंगरसाप्लुतम् ॥ ११२ ॥ च. अ. १९

शताह्वा—इसके अतिरिक्त शतावरी तो अपना सद्यलाभ ही पहुँचाती है। यथा—

पिप्पलीबिल्वकुष्ठानां, शताह्वावचयोरपि ।
कल्कैः सलवणैर्युक्तं पूर्वोक्तं सन्निधापयेत् ॥ २२२ ॥ च. अ. १९

कपोत.

(१) कपोत—परेवा,

(२) कपोत—पारीश पीपल (अश्वत्थ)

अस्य गुणाः—मधुर-कषाय-शीतल-कफपित्तनाशकरक्तदाहशमनः ।

अस्य फलगुणाः—पक्वफलं हृद्य-शीतल-विष-आर्ति-दाह-वमन शोष-अरुचिनाशकः । रा. नि. व. ११

पारीशगुणाः—पारीशो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफप्रदः ।
फलोऽम्लो मधुरो मूले कषायो रक्तपित्तहः ।

भावार्थ—पारीश वैसे तो दुर्जर है, स्निग्ध है, कीडोंका नाशक और वीर्यवर्धक तथा कफकर है । इसका फल अम्ल-मधुर है । और मूलमें कषायगुण होनेसे रक्तपित्तनाशक है ।

कपोतका पर्याय—पारावत (नपुं०) भी है ।

पारावतका आशय यहां परूषकसे है । हिंदीमें जिसे फ़ाल्सा कहते हैं ।

फालसेके गुण—"पारावतं (फालसा) सुमधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत्" । सु. सू. अ. ॥ ४६ ॥

भावार्थ—पारावत (फालसा) अतिमधुर-रुच्य-अत्यग्नि और वायुको जीतनेवाला है ।

पुनश्च—द्विविधं शीतमुष्णं च, मधुरं चाम्लमेव च ।
गुरु पारावतं ज्ञेयं, अरुच्यत्यग्निनाशनम् ॥ १३४ ॥ च.अ.२७

भावार्थ—फालसा खट्टे और मीठेके भेदसे दो प्रकारका है । यह ठंडा-गर्म-गुरु होनेपर भी अरुचि-अत्यग्निका नाश करता है ।

(नोट) परूषककी जड़का वल्कल एक तोला १० तोले गुलाबके अर्कमें या गोजिव्हा (गाओज़बान) के अर्कमें अतिसारीको अनुपान करानेसे तुरंत लाभ पहुँचाता है । गुलाबका अर्क या काजवानका अर्क इसलिए डाला जाता है कि रोगीका जी नहीं घटता ।

पुनश्च गुणाः—
तर्पणं बृंहणं फल्गु, गुरुविष्टम्भिशीतलम् ।
परूषकं मधूकं च, वातपित्ते च शस्यते ॥ १२८ ॥ च. अ. २७

स द्विधा—विटप-वृक्षभेदात् । सु. सू. ३८६
परूषकादि वा. सू. १४ अ.

इसके पर्याय—परूषक-नागदलोपमं-गिरिपीलुः-पारावतं-परावरं-परावतं-**नीलचर्म.** नीलमंडलं परापरं-**अल्पास्थि**-अल्पास्थिकं-कपोतं ।

पुनश्च गुणाः—अम्लकटुकं-कफरोगहरं-पित्तकरं-कफघ्नं इत्यामपरूषकगुणाः ।

पक्वं—तन्मधुरं-रुचिप्रदं-रक्तपित्तघ्नं, तर्पणं-शोफहरं-"वात-पित्त-रक्तघ्नं-" अत्रि. अ. ॥ १७ ॥

पुनश्च—परूषकं कषायाम्लं आमघ्नं पित्तहं लघु ।
तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टंभिबृंहणम् ॥
हृद्यं तृट्पित्तदाहाऽऽमज्वरक्षतसमीरहृत् ॥ भा० ॥

भावार्थ—यह फ़ालसा (कपोत या पारावत) कषाय-खट्टा-आमवातको दूर करनेवाला, लघु पित्तनाशक पका फल मीठा-ठंडा हृद-यको टिकानेवाला, विष्टंभि-बृंहण-प्यास-पित्त-दाह-आमज्वर वात आदिका हरनेवाला है ॥

फलके गुण—'मलसंग्राहि-शैत्यकरं ।'
"मलको रोकता है । तरावट देता है ।"

पत्तोंके गुण—'व्रण-पिडिकादौ हितम्' ।
'घाव और छोटी फुन्सीआदि पर हित है ।'

त्वक्— 'कषाया च शीतला ।'
"इसका वल्कल कषाय और शीतल है ।"

(नोट) जब किसी शब्दका किसी शब्दसे समास किया जाता है तब उसका अर्थान्तर यानी कुछ और ही अर्थ हो जाता है । यथा—

कपोतांजन—किसी वस्तुविशेषका नाम जो तद्रंग समतात्मक हो

कपोतपर्णी—इलायची को कहते हैं ।

कपोतपदी—नलिका-गन्धद्रव्यको कहते हैं ।

कपोतांडोपमफलम्—एक प्रकारका नींबू ।

कपोतिका—कोमल जड़ ।

कपोतनिषादी—घोडेकी वातव्याधिका एक भेद।

कपोतचक्र—वृक्षविशेष, या कबोड़चक्र वृक्ष।

कपोतपुटम्—औषधपुटविशेषमें घटित होता है। उसका लक्षण इस प्रकार वर्णित है–

यत्पुटं दीयते खाते, अष्टसंख्यैर्वनोपलैः।
कपोतपुटमेतत्तु कथितं·········भा० म. १ भ.

भावार्थ—खड्डेमें आठ जंगली (आरण्यक-आरणे) उपलोंकी जिसमें पुट दी जाती हो उसे **कपोतपुट** कहते हैं।

शरीर.

इसका पर्याय पिंड (वोल-वर्वर) भी होता है।

पिंड-वोलके गुण—कटु-तिक्तोष्ण-कषाय-रक्तदोषघ्न कफ-पित्तरोगघ्न. रा. नि. व. ६

अपि च—वोलं रक्तहरं-शीतं-मेध्यं, दीपन-पाचनम्।
मधुरं-कटु तिक्तं च, दाह-खेद-त्रिदोषजित्॥
ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं······························

तत्पर्यायो वर्वरस्तस्य गुणाः

स्वनामख्यातकंटकवृक्षे [हिं. कीकर या बावल] कषायोष्ण-कफ-कासघ्नः आमरक्तातिसारघ्नः पित्तार्शोघ्नश्च॥ रा. नि. व. ६

भावार्थ—पिंड-वोल कडवा तीखा-उष्णवीर्य कषाय-विकृत रक्तका नाशक और कफ-पित्तादि रोगको जडसे खोता है।

अन्यच्च—वोल (शरीर) रक्त दोषका हर्ता है, शीतवीर्य, मेध्य-दीपन-पाचन-मीठा-कटुक-तिक्त और दाह खेदको मिटानेवाला, अथवा

रक्त-पित्त-कफ आदि त्रिदोषको जीतनेवाला है। ज्वर-मृगी-और कुष्ठ-नाशक है।

वोलका पर्याय-बबूल-कीकर या बावल भी कहते हैं, इसीको वैद्यक-शब्द परिभाषामें वर्वर कहते हैं, इसके गुण (पिंड-शरीर) वोलसे बिल्कुल मिलते जुलते हैं।

यह कषाय-उष्णवीर्य-कफ-खांसीको मूलसे मिटानेवाला, आम-रक्तातिसारको दूर करता है। पित्त विकार तथा अर्शके लिये हित पड़ता है।

(नोट) शरीर-पिंड अथवा कायके समान वस्तु, जिस प्रकार मानवोंका आत्माऽऽधारभूत शरीर कहलाता है। इसी तरह वनस्पतिका वनस्पतिरूप शरीर भी काय या शरीर ही होता है। यही कारण है कि जैनग्रंथोंमें वनस्पतिशरीर-वनस्पतिकाय इत्यादि शब्दोंका उपयोग किया गया है।

"शीर्यते इति शरीरं' इस वृद्धव्याख्याकी अपेक्षासे शरीरका आशय बहुत शीघ्रतापूर्वक उड़जाने (नष्ट होने) वाले पदार्थ (सत या अर्क) विशेषको भी कहा जा सकता है। पीपरमेंट या अजवायनके सत्त और स्पिरिटमें अति शीघ्र उड़जानेका स्वभाव है।

प्राकृत परिभाषामें सरीर दन्त्य सकारसे लिखा जाता है और इसका पर्याय 'सरिल' समझलें तो इसका सम्बन्ध जल या शरबतसे होता है। यथा सरिलम्—क्ली. जले। अ. टी. भ.। वै. श.। र,-ल की सवर्णता होनेके कारण 'ल'को'र' पढ़नेपर सरिलका सरिर बन सकनेपर जलार्थ समझा जाना उचित है।

मज्जार-मज्जर.

(१) मज्जर—तृणविशेष होता है.

गुण—मीठा-शीतल-तरावट देनेवाला.

'मधुरः धेनुदुग्धकरश्च' रा. नि. व. ८

इसका अर्क या शरबत मज्जार या माज्जर होता है

'शीतं ज्वरातिसारघ्नश्चापि । क. सं.

इसके पर्याय—पवन-सुतृण[1]-स्निग्ध-पत्रक, मृदुग्रंथी आदि ।

(२) मज्जाम्—वृक्षदेरन्तःसारभागे ।

भावार्थ—वृक्षादिके भीतर वाले सार भागको मज्जा कहते हैं । इस सार भागका प्रदाता मज्जार (पानी) होता है।

(३) मज्जार(सः)सारः—इसका अर्थ 'वीर्य' 'सप्तसा' [सेवती-नवमालिका] होता है

इसके गुण—अतिशीता-सुरभि-सर्वरोग नाशिक ।

(४) मज्जासारम्—जातिफले (जायफल)

इसके पर्याय—जातीकोष-फलं-जातिः—जातीकोषक-कोशं-जातिकोषं-(श. र.) राजभोग्य-जातीकोशं-जातिफल (अ. टी.) जातिशस्यं शालूकं-मालतीफलं-मज्जारसारं-जातिसारं-पुटं-सुमनःफलं । "जातीफलं सशब्दं च, स्निग्धं गुरु च शस्यते । लघुकं शब्दहीनं च, रुक्षांगमतिनिंदितम् । भै.

१ गुणाः—ईषत्तिक्तं, रसायनं, मधुरशीतं, कफपित्तश्रमघ्नञ्च । रा. नि. व. ८

गुण—तिक्त-कटु-कफघ्न-लघु-तृष्णाघ्न-मुखक्लेददौर्गन्ध्यघ्नं च ।
सु. सू. अ. ४६

कषायोष्णं-कटु-कण्ठामयघ्नं-वातातिसारमेहघ्नं-वृष्यं-लघु-दीपनं च ।
रा. नि. व. १२ ।

तृष्णा-शूलघ्नं, राज. ।

रसे तिक्तं-तीक्ष्णं-रोचनं-ग्राहि-स्वरकरं-श्लेष्मवातपित्त-मुखवैरस्य-मल-दौर्गन्ध्यघ्नं कृमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रोगहरं च । भा. ।

तैलगुणाः—तैलं जातीफलोद्भूतं, समुत्तेजनमग्निदम् ।
जीर्णातिसारशमनं आध्मानाक्षेपशूलहृत् ॥
आमवातहरं बल्यं, दन्तवेष्टव्रणार्तिनुत् ॥ अत्रि.
जातीकोषवद्गुणम् । सु. सू. अ. ४६ ।

भावार्थ—यह जायफल (मज्जार) पुराने और सब प्रकार के अतिसारों को हितकर और पुराने आमवातको भी हरनेवाला है ।

(नोट) मज्जा नाम वस्तुके सार या स्थिरांश को भी कहते हैं । यथा—

'सारो मज्जा नरि' इत्यमरः इति वृक्षादेः ।

मार्जार.

(१) **रक्तचित्रक**–क्षुपे (लाल चीतेका पौधा)

इसके पर्यायः–उपबुंधः-कालः-अत्यालः-कालमूलः-अतिदीप्यः-मार्जारः-अग्निः-दाहकः-पाचकः-चित्रांगः-महाङ्गः ।

गुणाः—स्थौल्यकरः-रुच्यः-कुष्ठघ्नः-रसनियामकः-रसायनः-लोहवेधकः-चित्रकान्तर्गुणाढ्यः । रा. नि. व. ६

अतिसारे परमोपयोगी । यथा—

"यवानीं पिप्पलीमूलं, चित्रकं हस्तिपिप्पलीम्" ॥ ३१ ॥

"सचव्यपिप्पलीमूलं सव्योषविडदाडिमम् ।
पेयमम्लं घृतं युक्त्या सधान्याजाजिचित्रकम् ॥ ४८ ॥"

इति गुदभ्रंशे चव्यादिघृतम् ।

"दशमूलोपसिद्धं वा, सबिल्वमनुवासनम् ।
शताह्वाशटिबिल्वैर्वा वचया चित्रकेण वा ॥४९॥" च.अ.१९

इति गुदभ्रंशेऽनुवासनम् ।

इन प्रमाणोंसे सिद्ध है कि चित्रकचूर्ण-चव्यादि घृत, अनुवासनमें अतिसारीको हित पड़ता है ।

(२) पूतिसारिजायाम्–(अवलेह-सुगन्धित चटनी)

(३) खट्टाशे–सुगन्धमार्जारे-(जटामासी)

तत्पर्यायः–खट्टाशी-शालिः-पुष्पलकः-गन्धमार्जारः-वनवासनः-खट्टासः-मृगचेटकः-(शब्द. मा.) । तस्यांडं (फलं) खाटाशी इत्युच्यते । तच्छुद्धिर्यथा—

"यथालाभमपामार्गस्नुहादिक्षारलेपितम् ।
बाष्पस्वेदेन संस्वेद्य पूतिं निर्लोमतां नयेत् ॥
दोलापाकं पचेत्पश्चात्पंचपल्लववारिणि ।
खलः साधुमिवोत्पीड्य, ततो निःस्नेहतां नयेत् ॥
आजशोभांजनजलैर्भावयेच्च पुनः पुनः ॥
शिग्रुमूलेन केतक्याः पुष्पपत्रैः पुटेच्च तम् ।
पचेदेवं विशुद्धस्य मृगनाभिसमो भवेत् ॥
स च वृत्तो मांसलश्च प्रशस्तः ॥"

खट्टाशं अपामार्गस्य सुह्या वा क्षारेण संलिप्य बाष्पस्वेदेन लोमरहितं कृत्वा आम्रजंबूकपित्थमातुलुंगबिल्वपल्लवजले दोलापाकेन पक्त्वा निस्नेहं विधाय च छागमूत्रेण शोभांजनक्वाथेन वा पुनःपुनर्भावयेत् । अथ शिशुमूलेन केतकीपुष्पपत्रैः सम्पुटीकृतः शुद्धो मृगनाभि-कस्तूरिका-समो भवति । च. द. । भै. वा. । व्या. चि. ।

"कस्तूरी छर्दिदौर्गन्ध्यरक्तपित्तकफापहा" । राज. ।

"कटुः–तिक्ता" । भा. ।

तद्वत् जटाऽपि (खट्टाशोऽपि)

(४) **मयूरे**–अपामार्गवृक्षे-अजमोदायाम्-इश्वरीलतायां (जटायाम्) रुद्रजटायाम् । फंजीवृक्षे.

क-अपामार्गः–हिन्दीमें इसे चरचिरा-चिरचटा-लटजीरा-वा अंधकुडक भी कहते हैं ।

स-त्रिधा–श्वेत-कृष्ण-रक्तभेदात् । भिन्नोऽपि गुणैः समश्च ।

अस्य गुणाः–कफघ्नः-अर्शः कंडूरामघ्नो रक्तघ्नः । रा. नि. व. ४ ।

तत्पत्रं–रक्तपित्तघ्नं । म. व. १ ।

दुर्नामानं-रक्तरुजं मेदोरुगुदरे तथा ।

बीजमस्य–मलावष्टम्भकं-रक्तपित्तजित् ।

अस्य तैलं–अपहरति कर्णनादं-बाधिर्यं चापि पूर्णतः ।

भावार्थ–चिरचटा तीन प्रकारका होता है । श्वेत-लाल और काला तीन भेद होनेपर भी गुणमें तीनों समान हैं ।

गुण–कफनाशक-अर्श-खाज-आमातिसारनाशक और रक्तविकार को नष्ट करता है ।

पत्ते–रक्त-पित्तनाशक हैं । रक्तातिसार-मेद-उदर-गुदविकार को

दूर करता है । सन्तानप्रद और बलकारक है । यजुर्वेदमें इसकी बडी प्रशंसा की है । यदि जंगलोंमें यह न होता तो वनतापस अपना निर्वाह कैसे करते ।

इसके बीज—मलको रोकते हैं, रक्तपित्तको जीत लेता है। अतिसारमें हित पडता है ।

इसका तेल—कानके घूं घूं शब्दको बंद करता है । बहरापन बिल्कुल मिट जाता है ।

ख—अजमोदायाम्—अजवायनकी तरहका पेड सारे भारतमें उपलब्ध है इसके बीज या दाने मसाले या औषधमें काम आते हैं । अजीर्ण-मंदाग्नि-अतीसार-संग्रहणी-तथा शरीरकी अनेक पीडा दूर करता है ।

इसके पर्याय—उग्रगंधा-वनयमानी-मायूरी-मयूरमर्कटी-गंधदला-हस्तिकारवी-शिखिमोदा-वन्हिदीपिका.

अस्य गुणाः—कटु-उष्णा-रुक्षा-कफवातघ्नी-रुच्या-शूला-ध्मानारोचकजठरनाशिनी च । रा. नि. व. ६ । कटु-तीक्ष्णा-दीपनी-वातकफघ्नी-उष्णा-विदाहिनी-हृद्या-वृष्या-बद्धमला-लघुः— । मद. व. २ । कटुः—तीक्ष्णा-आग्नेया-वातकफघ्नी-विदाहिनी-बल्या शुक्रवर्द्धनी-कृमिवमिहिक्काबस्तिशूलघ्नी च, भा. पू. १ भ. ह. व. सि. यो. अग्निमान्द्य-चि. । "त्रिकटुकमजमोदा" । यक्ष्म-चि. एलादिमंथे । तथा ग्रहणी-चि. चित्रक-गुडे । च. सू. ४ अ. ४५ दश ।

भावार्थ—कडवी-गर्म रुक्ष-वातकफनाशक-मलको बांधती है । जठराग्निको बढाती है । कीडे-वमन-बस्तिशूलको शांत करती है ।

(ग.) फंजी वृक्षे—(भार्गी)

तत्पर्यायः—गर्दभशाकः-वर्वरः-दूर्वा-गर्द्दभशाखी-ब्राह्मी-ब्राह्मणी-वातारिः-कासजित्-भारंगी-शक्रमाता-भ्रमरेष्टा-फंजी-फंजिका-वान्तारिः ।

गुणाः—भार्गी तु कटुतिक्तोष्णा कासश्वासविनाशिनी ।
शोफव्रणक्रुमिघ्नी च, दाहज्वरनिवारिणी ॥

तथा—फंजीपत्रं कफघ्नम् ।

फंज्यादिपंचकम्—फंजिका-जीवनी-पद्मा-तर्कारी-चुचुक इति वनजपत्रशाकवर्गे.

गुणाः—वातहारित्वं-ग्राहित्वं दीपनं-रुच्यत्वं च । वर्गोऽयं पाचनः बलवर्णकरश्च । त्रिदोषनाशनः, पथ्यः-ग्राही वृष्यश्च । रा. नि. व. ७ ।

भावार्थः—वास्तवमें फंजी (भार्गी) त्रिदोषनाशक-कटु-तिक्त कास-श्वासको खोनेवाली-तथा दाहज्वर का भी निवारण करनेवाली है

(नोट) इनमें मार्जार (खट्टाश) जटामासी ही है । इसके तीन प्रकार गन्धमार्जार-लोमशमार्जार-जटामांसी (मार्जारी नाम वनौषधि) आदि भेद हैं । साधारण जटामांसी, सुगन्ध जटामांसी (बिल्ली लोटन) सूक्ष्मजटामांसी भी एक ही बात है ।

इसके पर्याय—नलदं-वन्हिनी-पेषी-मांसी-कृष्णजटा-जटी-किरातिनी-जटिला-लोमशा-तपस्विनी-मिषिका-भूतजटा-क्रव्यादी-पिशितापिशी-पेशी-पेशिनी-जटा-हिंस्रा-मांसिनी-जटाला-नलदा-मेषी-तामसी-अमृतजटा-माता-चक्रवर्तिनी-जननी-जटावती-मृगभक्षा (रा.) जटामांसी मिंसिः-मिसिः-मिसी-मिसिका-मिषिः (श. र.)

इसके गुणः—सुरभिः-कषाया-कटुः-शीतला-कफहृत्-दाहघ्नी-भूतघ्नी-पित्तघ्नी च । रा. नि. व. १२।

इसका लेपन—ज्वरघ्नं रूक्षताघ्नं च । रा. नि. ।

तिक्ता-कषाया-मेध्या-कान्तिदा-बल्या-स्वादुः हिमा त्रिदोष-रक्त-दाह-वीसर्प-कुष्ठघ्नी च । भा. ।

रूपं यथा—"ससूक्ष्मकेसरा-स्निग्धा-मांसी-पिंडजटाकृतिः ।" भैष. ।

जटामांसी=नखी-पत्री-लवंग-तगर-शिलारसगंधपाषाणेषु । (रा.नि.).

जटामांसीकी उत्पत्तिका स्थान—यह एक सुगंधित पदार्थ है. वनस्पतिकी जड़ है । यह हिमालयमें १७००० फिट तककी उँचाई पर होती है । इसकी डालियाँ एक हाथसे १॥-२ हाथ तक लंबी और सींकेकी तरह होती हैं । जिनमें आमने सामने डेढ दो अंगुल तक लंबी और आधेसे एक अंगुलतक चौडी पत्तियां होती हैं । इसके लिए पथरीली भूमि जहां पानी पडा करता हो, या सर्दी बनी रहती हो, अधिक उत्तम है । इसमें छोटी उंगलीके बराबर मोटी काली भूरी पत्तियां होती हैं । जिन पर तामड़े रंगके बाल या रेशे होते हैं । इसकी गंध तेज और मीठी तथा स्वाद कड़ुआ होता है । वैद्यकमें जटामांसी बलकारक-उत्तेजक-विषघ्न-तथा उन्माद काश-श्वास-रक्तपित्तादिके दूर करनेमें समर्थ औषध है ।

लोगोंका कथन है कि इसे लगानेसे बाल बढते और काले होते हैं । इसका तैल भी खींचा जाता है । जो कि औषधोपचार और सुगन्धिके काम आता है । २८ सेर जटामांसीमेंसे १॥ छटाँकके लगभग तेल निकल सकता है । इसे बालछड़-बिल्लीलोटन या बलिछर भी कहते है । हिं. श. सा.

बिल्लीलोटन—एक प्रकारकी बूँटी (बालछड-जटामांसी) जिसके विषयमें प्रसिद्ध है कि इसकी गंधसे बिल्ली मस्त होकर उसपर लोटने लगती है । यह दवा अतीसार आदिमें भी काम आती है । यूनानी हकीम इसे 'बादरंजबोया' कहते हैं । हिं. श. ।

कृत्त–कृतक.

(१) बनाया हुआ ।

(२) चारकी संख्या । हिन्दी. श.

(३) कृतम्=फले,

(४) कृतकम्=रसांजने,

अस्य गुणाः—"विषनेत्रविकारनुत्"
"व्रणदोषहृत्" भा० । रसायनम् ।

(५) विडलवणे–

इसके पर्याय—विडगन्धं-विडलवणं-काललवणं-दाडिकं-खण्डं-कतकं-क्षारं-आसुरं-सुपाक्यं-धूर्तं खण्डलवणं-कृत्रिमकं-चि. क.क. केशरपाके । प. मु. ।

इसके गुण—दीपन-उष्ण-वातघ्न-रुच्य-अजीर्ण (अतीसार) शूलनाशक. रा. नि. व. ६ ।

(६) कृतकः—कृत्रिमे–'युगपर्याप्तयोः कृतमित्यमरः ।'
युगे-प्रथमयुगे पर्याप्ते-अलमर्थे कृतम् ।

कुक्कुट

(१) चिनगारी

(२) मरसेकी जातिका एक पौधा जिसके उपर कलग़ीके आकारके लहरदार लाल फूल लगते हैं । जिसका पर्यायवाचक मुर्ग़केश और जटामांसी भी होता है । कुरु जांगल देशमें इसे लोक भाषामें कुक्कड़छिद्दि कहते हैं । हिं. श. सा.

(१) शाल्मलि वृक्षे । [हिं. शिंभल]

(२) अग्नि—कणे ।

अग्नि—निम्बूफले ।

कणः—वनजीरके ।

(३) सुनिषण्णशाके—

(४) शैवाले—

तत्र शाल्मलिः—

अस्य पर्यायाः—पिच्छिला-पूरणी-मोचा-स्थिरायुः—कदला-तूलिफला-दुरारोहा-शाल्मलः—शाल्मलकः—अपूरणी-निर्गंधपुष्पी-तूलिनी-कुक्कुटी-रक्तपुष्पा-कण्टकारी-मोचिनी-शीमुलः-चिरजीवी-पिच्छिलः-रक्तपुष्पकः तूलवृक्षः मोचाख्यः-कण्टकद्रुमः-कुकूटी-रक्तोत्पलः—रम्यपुष्पः-बहुवीर्यः-यमद्रुमः-दीर्घद्रुमः-स्थूलफलः-दीर्घायुः ।

अस्य गुणाः—वृष्यो-बल्यः-स्वादुः-शीतः-कषायो-लघुः स्निग्धः-शुक्रश्लेष्मवर्धनश्च ।

तद्रसस्तद्गुण एव । ग्राही-कषायश्च ।

तत्पुष्पफलमपि—तत्समगुणमेव । रा. नि. व. ८ ।

तत्पुष्पम्—घृत-सैन्धवसाधितं वात-पित-कफघ्नं-रसे पाके च मधुरं-कषायं-गुरु-शीतलं-ग्राही वातलं च । भा. पू. १ भ. शा. व. ।

कृमिमेहघ्नं रुक्षमुष्णं पाके कटु-लघु-वातकफघ्नं च । सु. सू. ४६ अ. ।

तत्र अग्निकणः—

अग्निः—निम्बूफले.

अस्य पर्यायाः—अम्लजम्बीरः-वन्हिः-दीप्तः-वन्हिबीजः-अम्लसारः-दन्ताघातः-शोधनः-जन्तुमारीनिम्बूः-रोचनम् ।

अस्य गुणाः—फलमम्लरसं-कटूष्णं-गुल्छाऽऽमवातहरं-आग्नेयं-चक्षुष्यं-कासकफकण्ठछर्दिहरं-पक्वमतीव रुच्यं. रा. नि. व. १

निम्बूकमम्लं-वातघ्नं-दीपनं-पाचनं-लघु-कृमिघ्नं-शूले हितं-तीक्ष्णमुदरग्रहघ्नं-रोचनं-मन्दाग्नौ बद्धगुदेऽतीसारे हितम् । भा. ।

"निम्बूकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमुष्णमुदरग्रहाऽपहम् ।
वातपित्तकफशूलिनां हितं, नष्टधान्यरुचिशोधनं परम् ॥"

"त्रिदोषसद्योज्वरपीडितानां,
दोषाश्रितानां च स्रवज्जलानाम् ।
मलग्रहे बद्धगुदे हितं च,
विसूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ अत्रि. अ. १७ ।

तत्र कणः—वनजीरके-हिं-ज़ीरा ।

तत्पर्यायाः—बृहत्-पाली-सूक्ष्मपत्रः-अरण्यजीरः-कणः ।

गुणाः—पाके कटुकाः-कृमिघ्नाः-दीपनाः-जीर्णज्वरहराः-रुच्याः-व्रणहराश्च । रा. नि. व. ६ ।

गुल्माध्मानातिसारघ्नः । रा. नि. व. ६ ।

ज्वरघ्नं-पाचनं-वृष्यं-बल्यं-रुच्यं-कफघ्नं-चक्षुष्यमतिसारघ्नं च । भा. ।

सुनिषण्णशाकः—अस्य पर्यायः—शितावरी क्षुपे ।

तत्पर्यायः—सुनिषण्णशाकः-सोमराजी-तत्पर्यायः बाकुची ।

(बाकुची) सोमराजीगुणाः—

बाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी ।

विष्टम्भहृद् हिमा रुच्या, सरो श्लेष्मास्रपित्तनुत् ।
रुक्षा हृद्या श्वासकुष्ठमेहज्वरक्रिमिप्रणुत् ॥

तत्फलम्—तत्फलं पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु ।
केश्यं त्वच्यं क्रिमिश्वासकासशोथाऽऽमपांडुनुत् ।
वै. नि. । रा. नि. व. ४ ।

शितावरीगुणाः—संग्राही-कषाय-उष्ण-त्रिदोषघ्न-रसायनः-मेधा-रुचिकरः-दाहज्वराऽऽमहरश्च । रा. नि. व. ४ ।

चतुष्पत्र्याम्—चांगेरीसदृशचतुष्पत्रशाके ।
यथाह—चांगेरीसदृशः पत्रैःचतुर्दल इति स्मृतः ।
शाको जलान्विते देशे, चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥

सुनिषण्णशाकपर्यायाः—वितुन्नं-वितुन्नः-चुचुः-सुतपत्रः-शितिचारः-सूच्याह्वः-सूतिपत्रकः श्रीवारकः-शिखी-बभ्रुः-स्वस्तिकः-कुरंटः (कुटजः) कुक्कुटः श्वेतावरः-सितिवरः-सितिवारः-मेधाकृत् ग्राहकः-शितिवारः-शितिवरः पर्णकः । रा. नि. व. ४ ।

अस्य गुणाः—सुनिषण्णो (कुक्कुटः) हिमो ग्राही मोहदोषत्रयापहः ।
अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रुक्षदीपनः ॥
वृष्यो रुच्यो ज्वरश्वासमोहकुष्ठभ्रमप्रणुत् ।
भा. पू. १ भ. शा. व. ।

पुनश्चः—संग्राही-कषायोष्णः—त्रिदोषघ्नः-मेधारुचिकरः-दाहज्वरहरः-रसायनश्च । रा. नि. व. ४ ।

तदन्तरपर्यायः कुटजः—**कुटजगुणाः**—कटु-तिक्तोष्णः-कषायः अतिसारघ्नः । रा. नि. व. ९ ।

पुनश्च—कुटजः कटुको रूक्षो, दीपनस्तुवरो हिमः ।
अर्शोऽतिसारपित्ताम्लकफतृष्णाऽऽमकुष्ठनुत् ॥

तत्पुष्पं—तत्पुष्पं वातलं शीतं तिक्तं पित्तातिसारजित् ।
भा. पू. १ भ. ।

अन्यच्च—पुष्पं तु वत्सकस्योक्तं तुवरं चाग्निदीपनम् ।
तिक्तं शीतं वातलं च, लघु पित्तातिसारनुत् ॥ वै. नि. ।

कुटजस्य पर्यायः—इन्द्रयवः—

इन्द्रयव (कुटजगुणाः) कटुः-तिक्तः-शीतलः-कफवातरक्तपित्तहरः । दाहातिसारघ्नः-नानाज्वरघ्नः । शूलघ्नश्च । रा. नि. व. ९ ।

अन्यच्च—त्रिदोषघ्नं-कटुशीतं-दीपनं-ज्वरातिसाररक्ताऽर्शोवमिविसर्पकुष्ठवातरक्तकफशूलघ्नं च । भा. पू. १ भ ।

"कुटजा इन्द्रयवा इति ।" रा. नि. ।

अथ शैवालः—

अस्य गुणाः—शीतलं स्निग्धं व्रणघ्नं च । रा. नि. व. ६ ।

अपि च—शैवालं तुवरं तिक्तं, मधुरं शीतल लघु ।
स्निग्धं दाहतृषापित्तरक्तज्वरहरं परम् ॥ भा.

अतिसारचिकित्सामें[1]—

लोध्रक-पाठा-चित्रा-चन्दन, दारुहल्द-उत्पल-दुखकन्दन ।
मुलठी-लेसुन कुकडे (कुटंज) छाल, पीवे क्वाथ तामें मधु डाल ॥
कफ पैत्तिक अतिसार नसावे, याहि चिकित्सा इहविध गावे ॥

---

१. श्रीरणबीरप्रकाश ५४१ पृष्ठ, कश्मीर प्रेसका छपा हुआ.

(नोट) कुकड छालसे मतलब यहां कुटज और शिभलके त्वक् से भी है। अतिसार चिकित्सामें दोनोंका प्रयोग होता है।

अन्यच्च—सुशुष्कां मृत्तिकां ज्ञात्वा तानि वृन्तानि शाल्मलेः।
शृते पयसि मृद्नीयादोपोथ्योलूखले ततः॥ ६९॥
च. १९ अ.।

मांसक.

मांसक—फलके गूदेको पारिभाषिक दृष्टिसे कहा जाता है। फलका मांस गूदा (सं. गुप्त-प्रा. गुत्त) होता है। यहां पांच इन्द्रियवाले प्राणीको मारकर उसके शरीरके मांसका ग्रहण नहीं है। अहिंसा प्रधान धर्ममें इसका उपयोग करना पाप और नरकका कारण बताया है। मांस या मांसक गुद्दा (फलका सारभाग) है। इसके संबंधमें वैद्यक का मत गुद्दा ही है। यथा—

त्वक् तिक्ता दुर्जरा तस्य वातकृमिकफापहा।
स्वादुशीतं गुरु स्निग्धं, मांसं मारुतपित्तजित्॥ सु. सं.

भावार्थ—मातुलुंगके अवयवोंके गुणको वर्णित करते हुए उसके बक्कल और गुद्दे (मांस) का कथन किया है।

कटाह—प्राचीन टीकाकार मांसक शब्दका उपयोग **कटाह** (मुरब्बा) पाकके रूपमें करते हैं। कटाह कई अर्थोंमें बँटा हुआ हैं।

(१) **कटाह**—तैलपाकपात्रे।

(२) **सूपे** (दाल)

(३) **बड़ी-कढाई**।

(४) कछुएका खपड़ा ।

(५) कुआँ ।

(६) नरक ।

(७) झोंपडी ।

(८) भैंसका पड्डुआ, जिसके सींग निकल रहे हों ।

(९) ढेर । या ऊंचा टीला ।

(१०) मातुलुंगादेरभ्यन्तरस्थांत्रवद्भागे ।

(११) गुद्दा—फलका सारभाग ।

(१२) करह—कलि (फूलकी कली) या बहेडा ।

(१३) **बहेडा—बहेड़ेके पर्याय**—अक्षः-तुषः-कर्षफलं-भूतवासः-भूतावासः-कलिः ।

गुणाः—कटु-तिक्तः-कषायः-कफघ्नः ।

बैभीतको मदकरः कफमारुतनाशनः । सु. सू. अ. ४६

विभीतफलं—स्वादुः-पाकं-कफपित्तरक्तघ्नं कासघ्नं । भा. पू. अ. १

अस्य तैलगुणाः—पित्ताऽनिलपीडाघ्नं । रा. नि. व. १५ ।

'वातपित्तरक्तपित्तघ्नं' । सु. सू. अ. ४५ ।

(१४) मांस—मांसक फलके सारभाग (गूदे) को कहते हैं यथा—मातुलुंगके सब अवयवोंका जहां वर्णन है, उसे पढनेसे ज्ञात होगा कि मांस शब्दका प्रयोग सारभाग गूदेके लिये भी किया गया है ।

मातुलुंग. **केसर**=अरुचौ मातुलुंगस्य केसरम् ।

तत्फलगुणाः=श्वासकासारुचिहरम् ।

मध्यं फलं=तादृशमेव ।

पक्वं फलम्=वर्णकरं-शूलहरं-अजीर्णनाशनम् ।
त्वक्—तिक्ता दुर्जरा कृमिकफवातघ्नी ।
तत्करहं—(कलिका) वातपित्तहरं च ।
तन्मध्यं—उष्णं शूलपित्तहरमरोचकघ्नं च ।
तद्वद्धकेसरं—पित्तमारुतघ्नं ।
तत्कटाहः—(मुरब्बा या पाक) कफकृत् दुर्जरश्च ।
तत्पुष्पं—तिक्तम् ।
तद्बीजं—गुल्मघ्नम् । अ. अ. १७ ।
तत्केसरं—वातघ्नं-उदररोगघ्नं ।
तद्बीजं—तिक्तं कफार्शःशोथहरं च । रा. नि. व. ११ ।
तन्मांसं—बृंहणं शीतलं गुरु वातपित्तजित् ।

(१५) वास्तवमें फलके सारभाग अर्थात् खाद्यपदार्थ को मांस या मांसक (गूदा) कहते हैं । जैसे अमलतासके पर्यायवाचक शब्द मांसद्रावी-शंखद्रावी भी हैं । वैद्यकवाले उसके गूदेको ही मांसद्रावी कहते हैं । अतः मांस शब्दका एकान्त अर्थ मांस न होकर (गुद्दा-या गुत्त-गुत्त) अर्थात् फलका सारभाग होता है । यथा—

स्थूलमांसाऽमृता स्मृता इयं च चम्पा जाता रा. नि. व. ११

(१६) बीजपूरफलं रुच्यं रसोऽम्लं दीपनं लघु ॥ ७६ ॥
रक्तपित्तहरं ग्राहि जिह्वाहृच्छोधनं परम् ।
त्वक् तस्य तिक्ता गुर्व्युष्णा कृमिवातकफापहा ॥ ७७ ॥
तन्मांसं बृंहणं शीतं, गुरु पित्तसमीरजित् ।"

च. । १९ ।

मांसका आशय यहां मातुलुंग फलके गूदे ही से है ।

(१७) मेदनी कोशका लेखक मांसके पर्याय आमिष शब्दकी गणना भोग्य (खानेपीनेकी) वस्तु में ही करता है । यथा—

"आमिषं-भोग्यवस्तुनि" मे. ष-त्रिकम् ।

(१८) आमिषगन्धिनी=पूतन्यां=पुदीना । अ. टी. भ. ।

आमिषगंधिनीका पर्याय हरापुदीना किया है मांसकी बदबू नहीं ।

(१९) आमिषी—जटामांस्याम् । अ. टी. भ.

(नोट) यहां जटामांसीको आमिषी कहा है किसी गंदी वस्तुका अर्थ नहीं ।

(२०) **मांसकेशी**—उस घोडेको कहते हैं जो पादरोगभेद युक्त हो यथा—

केशाऽऽकाराणि मांसानि, यस्य स्युस्तलजानि च ।
मांसकेशीति तं विद्यात्······ज. द. अ. ३९ ।

(२१) **मांसखुर**—उस घोडेको कहते है कि जो पादरोगयुक्त हो । उसका लक्षण इस प्रकार वर्णित है ।

बहुमांसखुरश्चैव ज्ञेयो मांसखुरो हयः । ज. द. ३९ अ. ।

(२२) **मांसच्छदा**—मांसरोहिणीको कहते हैं ।

उसके पर्याय—मांसरोही मांसी-(जटामांसी) रसायनी-सुलोमा-लोमकारिणी-रा. नि. व. १२ ।

वास्तवमें यह वस्तु बाल छड यानी बिल्लीलोटन ही है ।

(२३) **मांसतान**—एक प्रकारका रोग होता है, मांसका गाना नहीं । यह कंठगत मुखरोग का एक भेद है । यथाऽऽह—

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ।
स मांसतानः कथितोऽवलम्बी-प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥
सु. नि. १६ अ. ।

(२४) **मांसपाक**—इसका संबंध शूकरोगसे है, मांसके पचन पाचनसे नहीं। इस रोगमें मांस अपने आप कटने लगता है। बड़ी वेदना होती है। यथा—

शीर्यन्ते यत्र मांसानि, यत्र सर्वाश्च वेदनाः।
विद्यात्तं मांसपाकस्तु सर्वदोषकरं भिषक् ॥ सु. नि. १४ अ.।

(२५) **मांसपुष्टिका**—यह वृक्ष होता है। भौंरा इसके पास नहीं जाता। इसीलिये इसवृक्षको "भ्रमरारिपुष्पवृक्ष" कहते हैं। मालव देशमें उसी वृक्षको भ्रमरमारी कहते हैं। रा. नि. व. १०।

(२६) **मांसफल**—मांससे जायमान कोई भी फल नहीं होता। अन्दरका सारभाग गुद्दा लाल वर्णका होंनेके कारण तरबूज को ही मांस फल कहते हैं। मारवाडमें इसे मतीरा कहते हैं। पेशावरमें तरबूजको हिंदवाना कहा जाता है। कश्मीरी लोग हदवाना कहते हैं।

(२७) **मांसफला**—बेंगनका नाम है।

(२८) **मांसमाषा**—माषपर्णी को कहते हैं। जो जनप्रसिद्ध बूंटी है। हिंदीमें इसे माषोणी कहते हैं।

इसके पर्याय—अश्वपुच्छी-सिंहपुच्छी-काम्बोजी-पांडुलोमा-आर्द्रमांषा-मांसमाषा-हंसमाषा-शालपर्णी-सिंहविन्ना.

इसके गुण—मांषपर्णीरसे तिक्ता, वृष्या दाहज्वरापहा।
शुक्रवृद्धिकरी बल्या, शीतला पुष्टिवर्धिनी ॥
रा. नि. व. ३।

पुनश्च—माषपर्णी हिमा तिक्ता रुक्षा शुक्रबलाशकृत्।
मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्रजित् ॥ भा. पू.

(२९) **मांसरक्ता**—रोहिणी अर्थात् कट्फलको कहते हैं।
देखो 'मांसरोहिणी'।

(३०) मांसरुहा—
मांसरोहिणी—
मांसरोहा—
मांसरोहिका—ये सब मांसरोहिणीके ही नाम हैं।

गुण—यह मांसरोहिणी अग्निवर्धक, शीत, कषाय, कीडों को मिटानेवाली, गला साफ़ करनेवाली, रुच्या, और वातदोषको हरती है।
रा. नि. व. १२।

पुनश्च—मांसरोहिण्यग्निरुहा, वृत्ता चर्मकरी वसा।
प्रहारवल्ली विकषा वीरवत्यपि कथ्यते ॥
स्यान्मांसरोहिणी वृष्या सरा दोषत्रयापहा ॥

(३१) मांसलः—उडद नामक प्रसिद्ध शिंबी (फलीवाले) धान्यको कहते हैं।

(३२) **मांसबल**—शिविघोषा नगरमें शिबि राजा राज्य करता था। वह रोगी और याचकों को यथाशक्य सब कुछ दिया करता था।

एक समय शिबिराजाके पुत्रको पार्श्वशोष=पसली सूकनेका रोग हो गया। राजाने वैद्योंसे कहा कि राजकुमारकी यथावत् चिकित्सा करें। वैद्योंने उत्तरमें निवेदन किया कि राजन्! **सर्वसारघृत** बनाना होगा। १२ वर्ष हुए हमने सब औषधियाँ एकत्र कर रक्खी हैं किन्तु एक वस्तु नहीं मिल सकी है। वह है जीवजीवक=चकोरका मांस। राजाने कहा कि जहाँ से मिल सकता हो मँगा लें, व्ययभार मैं दूंगा।

वैद्योंने चिडीमारोंसे कहा कि काच और पढ़े हुए कुक्कुटको लेकर

समुद्रतटपर चले जाओ। और वहाँ जाल फैलादो। एवं कुक्कुटके सामने काच रख दो। वह अपने प्रतिबिंब को दूसरा मुर्गा समझकर अज़ान देकर बोलेगा। तब उसकी आवाज़ सुनकर जीवजीवक कौतूहल वश वहाँ अवश्य आयगा। उसके पकड़नेका सरल उपाय यही है। उन्होंने इस विधिको उपयोगमें लाकर उसे पकड़ ही लिया। कहा जाता है कि उस समयके पक्षी मनुष्यभाषा भी बोल सकते थे या यों कहिए कि मनुष्य ही किसी प्रकार पशुओंके भावों को समझ जाते थे। इस दृष्टिसे जीवजीवकने पूछा कि तुम मुझे पकड़कर कहाँ लेजाना चाहते हो?

उन्होंने सब स्पष्ट कह सुनाया। उसने उत्तर दिया कि भाईयो! मुझे छोडदो। 'माँसबल' नाम तो एक औषधविशेष है, मांस नहीं है। वह तो रत्नोंको पानीमें डालकर तैयार की जाती है।

वे बोले, रत्नोंको पानीमें डालनेपर वह दवा किस ढंग से बनाई जाती है। इसका सरल भेद प्रकट किजिए। जीवजीवक बोला, भाई! उसमें सात उदकमणि डालकर उसमें मेरा स्नानोदक ही मांसबल कहा जाता है। अतः ये रत्न लो और मुझे लेकर चलो। उसके दिए हुए रत्नों को अपने अधिकारमें करनेके अनन्तर उसे पकड़कर वे राजाके पास लाए। और उसकी बताई हुई औषध घटना का सब वर्णन किया। राजाने सात उदकमणि निर्मल पानीमें डाल दिए। जीवजीवकने उसमें अपनी पांखें फैलाकर उन्हें फड़फडाते हुए स्नान किया। और वैद्योंने घी को औषधियोंमें पकाकर उस पानीमें ठंडा किया। इसीप्रकार सब जलमें घी ठंडा किया जानेपर मांसबलघृत बन गया। अर्थात् इस भाँति सर्वसारघृत तैयार किया एवं इसीकी मालिशसे राजपुत्रका पार्श्वशोष जाता रहा। पक्षी वनमें उड़ गया।

(नोट) इससे स्पष्ट सिद्ध है किसी शब्दके मात्र शब्दार्थ पर न जाकर उसके मूल-आशयकी गहरी तहमें पहुँचना चाहिए। जैसे मांसबलका परमार्थस्वरूप जीवजीवकके द्वारा किसी विलक्षण भावकी ओर ही आकृष्ट कर ले जाता है। यहां यदि कोई शब्दार्थकी गली बनाकर मनोनीत अर्थमें जाय तो स्नानोदकको मांसबल न समझकर जीवजीवक का ही गला मरोड देता।

'गिलगतके बाद्ध साहित्यका संस्कृतांशके भावानुवाद' रिसर्च डिपार्टमेंट श्रीनगर (कश्मीर) का छपवाया हुआ.
Gelgit manuscripts Vol. III. p. 2, 1942—
Srinagar, Kashmir, Pagas, 133.

(३३) **मांससंघातः**—तालुका रोगविशेष है। तच्च—तालुमध्ये श्लेष्मणा दुष्टः अवेदनो मांससंघातो जायते।

"दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च, ताल्वन्तःस्थं मांससंघातमाहुः"
भा. म. ५. म. मु. रो. चि.।

(३४) **मांसारिः**—अमलतासको कहते हैं। वै. निघ.।

(३५) **मांसिका-मांसिनी**—बालछड, बिल्लीलोटनको कहते हैं।

(३६) **मांसी**—मुरामांसीको कहते हैं। च. द. यक्ष्मचि.। मुरामांसी स्वनामख्यात गुजरात देशमें एक प्रसिद्ध गंधद्रव्यको कहते हैं।

इसके पर्याय—तालपर्णी (मधुरिका—रा. नि. व. ४ मुषल्यां, मुरामांसी अम, बृहच्छताह्वायां, वै. निघ.) दैत्या-गंधकूटी, गंधिनी, भूतगन्धा, सि.यो.च.द. यक्ष्मचि.। चन्दनादितैले। भा.म. १ भ. चित्तविभ्रमज्वरचि.।

गुणाः—मुरा तिक्ता हिमा स्वाद्वी लध्वी पित्तानिलापहा।
ज्वरासृग्मूतरक्षोघ्नी कुष्ठकासविनाशिनी॥ भा. पू. १ भ.

"किञ्चित्पीता मुरा शस्ता मांसी पिंगजटाकृतिः। भैष.

(३७) **मांस्याव्हया**—यह भी बालछडका ही नाम है।

(३८) श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत योगशास्त्रमें उन्होंने अपनी स्वोपज्ञ व्याख्याके एक श्लोकमें **आमिषका** अर्थ खाद्यवस्तु अर्थात् नैवेद्य ही किया है! यथाऽऽह,

"शुचिः पुष्पाऽऽमिषस्तोत्रैः" इत्यादि।

न्हाकर फूल, खाद्य वस्तु और स्तोत्रादिसे।

(नोट) इन सब अवतरणोंसे मांस और आमिषका एकान्त मांस अर्थ न होकर और और अर्थ भी होते हैं।

फारसी परिभाषामें

(३९) इसके अतिरिक्त फारसी पारिभाषिक शब्द भी वनस्पतिका मांस उसका गुद्दा अर्थ ही करता है।

जैसे

"अम्बए सब्ज अज पोस्त व उस्तख्वां साफकर्दह बखुरेद"।

भावार्थ—हरे आमको छिलका और गुठलीसे अलग करके खाओ।

(नोट) फारसीमें पोस्त चमडेको कहते हैं और उस्तख्वां हड्डीको। यहां आमका पोस्त और उस्तख्वां उसके छिल्के और गुठलीसे मुराद है, क्योंकि आमका चमडा-हड्डी उसका छिलका तथा गुठली ही है। मांसमें रहनेवाले चमडे और हड्डीसे सम्बन्ध नहीं है।

मत्स्य.

(१) **मत्स्यः**—कंकर पत्थर या पूजनीय सुवर्णशिला।

(२) **मत्स्याक्ष**–सोमलता।

(३) **मत्स्यकाली** (ळी) पोदीना (उपोदिका) वै. निघ.। जटामांसी । बावची । बिच्छूघास । (च. सू. २७ अ. ।)

(४) **मत्स्यगन्धा**–जलपिप्पलीको कहते हैं । रा. नि. व. ४

(५) **मत्स्यण्डी** (ण्डिका) मिश्रीका नाम है ।

(६) **मत्स्यपित्ता**–कुटकी । रा. नि. व. ६ ।

(७) **मत्स्यभिन्ना**–कुटकी । रा. नि. व. ६ ।

(८) **मत्स्यभेदिनी**–कुटकी । रा. नि. व. ६ ।

(९) **मत्स्यविन्ना**–कुटकी । रा. नि. व. ६ ।

(१०) **मत्स्यवेधिनी**–जटामांसी । श. र. ।

(११) **मत्स्यशकलम्**–कुटकी । भा.म.१ भ. चित्तभ्रमज्व. चि.

(१२) **मत्स्या**–कुटकी । वै. निघ. ।

(१३) **मत्स्याङ्गी**–गण्ड दूब । रा. नि. व. ८ हिलमोचिका (स्वनामख्यात उत्तम शाक) हिं. हरहुच । त्रिका.

गुणाः–तिक्ता कफपित्तघ्नी । भा. पू. १ भ. शा. व. ।

(१४) **मत्स्यांडी**–चीनी खांड गुडशक्कर ।

(१५) **मत्स्यादनी**–जलपिप्पली । रा. नि. व. ४ । छोटी इलायची । मत्स्याक्षी (सोमलता ब्राह्मी काकमाची गण्डदूब मण्डूकी (मुलहटी) ब्राह्मीके समान) रा. नि. व. २३

(१६) **मत्स्याक्षकम्**–ब्राह्मीबूंटी । पत्रांगचन्दन । भा. म. ४ भ. बालचि. । मत्स्याक्षकं शंखपुष्पी, स. शा. १० अ. पतूर पतंगकी लकडी । वा. उ. अ. ३९ ।

(१७) **मत्स्याक्षिका**–गण्डदूब। वै. निघ.।

(१८) **मत्स्याक्षी**–मछीछी को भी कहते हैं। इसकी सम्पुटमें संखिया मारा जाता है। यह सर्वत्र पाई जाती है। जिला रोहतक (हरियाना देस) में तो तालाबोंके किनारोंपर बहुलतासे होती है।

गुण–शीतला रुच्या व्रणक्षयघ्नी च रा. नि. व. ५।

पुनश्च–मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठपित्तकफास्रजित्।
लघुस्तिक्ता कषाया च, स्वाद्वी कटुविपाकिनी। भा. गु. व.।

(१९) **मत्स्यी**–जटामांसी वै. निघ. २ भ.।
व्याधिचिकित्सामें इसे शतावरी तैल भी कहते हैं।

कंटः–कंटकः

(१) **कंटः**–बकुल मौलसिरी।

(१) **कंटकः**–गोखरू।

(२) मदनवृक्ष मैनफल (धतूरा कोशातकी यानी कडवी तोरी चिरचिटा आदि।)

(३) जंगली मूँग.

(४) बिल्व वृक्ष।

(५) पद्मबीज (कमलगट्टा) वै. श. सिं. कमलडोडा (जो कश्मीरमें खानेमें उपयुक्त होता है।

अस्थि–अस्थिकम्

अस्थि–हड्डी वाच्यार्थके अतिरिक्त अस्थिशब्दका प्रयोग बीज अथवा गुठली या बीजके सारभाग (गिरी) में भी होता है। यथा—

(१) "जम्ब्वाम्राऽस्थि दुरालभा" ॥५८॥ च. सं. अ. १९ ।

भावार्थ–जामुन और आमकी हड्डी अर्थात् गुठली ।

अस्थिकं–

(१) बीजको भी अस्थिक कहते हैं । वै. श. सिं. ।

(२) तालास्थिमज्जगुणाः

भावार्थ–तालकी अस्थि (गिरी) और मज्जा सारभागके गुण ।

(३) **अस्थिफलम्**–पनसवृक्ष कटहलवृक्ष (कट्फल)

(४) वृक्षके अग्रभागको मस्तक भी कहा है । यथा 'मस्तकाख्यवृक्षाग्रे' मस्तक नाम वृक्षके उपरिभागको कहा है ।

(५) मज्जाको शस्य (मस्तकमज्जा वृक्षके ऊपर वाले सारभागको) कहते हैं । यथा 'तालशस्यं' ११६ श्लो. १६० पृ. च. सं. । 'शस्यशब्देनेह मस्तकमज्जा गृह्यते' ।

भावार्थ–शस्यका अर्थ मज्जा (वृक्षके ऊपर वाले भागके सार अंशको) कहा है ।

(६) शस्य (मज्जा) को कहीं फल भी सम्बोधित किया है । यथा तालशस्यानीति तालफलानि यथा हरीतकीनां शस्यानि (फलानि) चि. अ. १ इत्यत्र फलमेव शस्यमुच्यते ।

भावार्थ–फलको शस्य (मस्तक मज्जा) कहते हैं ।

(७) बदरास्थिशस्ये कोलं नाम प्रयुज्यते । 'कोलत्वक्मज्जा' । रस. र. वा. चि. । भावार्थ कोल बेरकी गुठली या सार भागको कहते हैं ।

कोलास्थि–बेरकी गुठली ।

(८) फारसी परिभाषामें गुठलीको उसकी हड्डी ही कहा है। मनुष्य और पशुकी हड्डीसे वहां संबन्ध नहीं है।

जैसे—'अम्बए सब्ज अज पोस्त व उस्तख्वां साफकर्दह बखुरेद

भावार्थ—हरे आमको पोस्त(छिलका) और उस्तख्वां (गुठली) से अलग करके खाओ।

(नोट) फारसीमें पोस्त चमडेको और उस्तख्वां हड्डी को कहते हैं। परन्तु यहां आमका पोस्त छिल्का है और उस्तख्वां उसकी गुठली समझी जायगी। क्योंकि आमका चमडा उसका छिल्का और हड्डी उसकी गुठली है। यहां मांससे उपलब्ध हड्डी-चमडेका ग्रहण नहीं है जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है।

अन्तिम

क्रूरकर्मसु निःशंकं, देवतागुरुनिन्दिषु।
आत्मशंसिषु योपेक्षा, तन्माध्यस्थ्यमुदीरितम् ॥

नमो त्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

परिशिष्ट, नं० २

अनेकान्त-प्रसाद

परम-श्रुत मंडलकी सब प्रजा सुखी है, उसका स्याद्वाद नगर अपनी शानका निराला शहर है, उसमें अपेक्षावाद नामक चतुष्पथ-चौक बाज़ार बड़ा सुंदर है, चन्द्रलोक जैसी तो उसकी स्वच्छता है, यहां कभी अंधेरी रातका अनुभव नहीं होता, सब ओर प्रकाश ही प्रकाश है, अंधकार और निशाजालको मानो स्थान ही नहीं मिलता, बाज़ारों और गलियोंके लोग निर्भय एवं निर्भ्रान्त विचरते हैं। स्वचक्र परचक्रका भय उनसे सर्वथा दूर है। लोगोंके व्यवसायमें छल और चोरी का लेश तक नहीं है। सबका मात्र धर्म व्यापार है, पाप और अनीतिका मानो 'अदर्शनं लोपः' है।

चौक बाज़ार में शेठ अनेकान्त प्रसाद की दुकान सबसे बड़ी है। आप जगत्प्रसिद्ध हैं, 'सबके हितैषी हैं' अतः आपका सब सन्मान करते हैं, परन्तु आपको कभी मानका उदय नहीं होता। शक्रेन्द्र द्वारा आपको 'कौत्रिक' पद प्राप्त है, अतः आपकी देवाधिष्ठित दुकानमें तीनलोक व्यापी वस्तुएँ सुलभ्य हैं। साधारण मूल्यसे लगाकर अधिकाधिक मूल्य पर सब कुछ मिलता है। कुछ ऐसे भारकी वस्तुएँ भी हैं, जिनका बोझ सुमेरु से भी अधिक अनुमान किया जाता है। तीन लोकके व्यापारी आपको महाप्रामाणिक मानते हैं। आपकी गिनती लब्धप्रतिष्ठ महामनुष्योंमें है। पठित-अनपढ-आबाल-वृद्ध-ऊँच-नीच-देव और कीट आदि सब व्यक्तियोंसे आपके यहाँ

समान बर्ताव किया जानेका नियम है। क्रय-विक्रयमें बड़ी सुविधा रक्खी गई है। उधार माल लेने यहाँ कोई नहीं आता। मालके बदले माल भी लिया जाता है। हिसाबमें पाई पैसेका फ़र्क नहीं पड़ सकता। वस्तुएँ नई या पुरानी बताकर ही दी जाती हैं। मालका खरीदार इतना प्रसन्न होता है, कि वापस करनेका नाम नहीं लेता। मालको देखते ही सन्तोष होता है। एक भावकी ही पद्धति है। मुँह देखी या रू-रियायतका काम ही नहीं है। राजासे रंक तक नाप-तोल सबके लिए समान है। न्यूनाधिकता का प्रसंग नहीं आने पाता। आपको जगत्प्रसिद्ध-अद्वितीय धर्मात्मा-धर्मनायक-धर्मचक्रवर्तीकी निगाहसे देखा गयाहै। धर्मके साथ ही न्याय-नीति भी सम्मानित है। धर्मको देहसूत्र समझकर नीतिको उसका परिधान माना गया है। आपके जीवन-प्राणमें धर्म और नीति दोनों को आदर प्राप्त हुआ है। आप इतने लोकप्रिय हैं, कि बाजार और नगरनिवासियोंमें परस्पर मनमुटाव हो जाय तो दोनों पक्षवाले आपसे ही निपटारा कराकर प्रसन्न होते हैं। आपके उत्तम निर्णयसे कोई असन्तुष्ट नहीं हुआ। पत्थरकी लकीरकी भाँति आपकी बात अमिट है। वादी और प्रतिवादी आपके वादका खंडन न करसके। आपका वाद सबके लिए आदेय है। आपके आदेश ईश्वर-वाक्य हैं। आपके यहां लोकैषणाका अत्यन्ताभाव है। आपके अपार-कृपाकटाक्षसे मानव-प्रजा और इतर प्रजामें चैनकी वंशी बजती है। आपके न्यायकी गूँज विश्वव्यापक है। आपकी उदारताकी सराह लोगोंके कंठमें है। आपका अन्तर्मुखी सौंदर्य जगतीतलसे निराला है। आपकी देह-रचनाकी प्रशंसामें शब्दसागरकी तलाशी लेने पर भी शब्द ढूंढे नहीं मिलते।

शेठ अनेकान्त-प्रसादके छहों अंगोंमें षड्दर्शनका रहस्य समाया हुआ है, मानो छ दर्शन आपके अंगानुरूप हैं। आपने उनको एक प्रकारसे पीकर भली भाँति पचा ही लिया है।

श्रेष्ठ अनेकान्त-प्रसादके देह स्वरूप कल्पवृक्षके दोनों पद सांख्य और योगमय थे। सांख्य और योगका कथन आपके समान सत्ताकी स्वीकृतिसे निकट संबंध रखता है। तथा वे आपके पास से ही आत्म-सत्ताका वर्णनीय माल लेगए हैं। अतः "जैसा खावे अन्न, वैसा रहे मन" की उक्तिके अनुसार उनकी धारणा आपसे मिलती जुलती बन गई है। क्योंकि अपने उनके विचार आपसे ही जो मिले हैं।

सांख्यको अनेक आत्माएँ मान्य हैं, वह प्रत्येक देहमें आत्मा भिन्न भिन्न मानता है। उसके मूलतत्व २५ हैं। उसमें ५ ज्ञानेंद्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, पाँच भूत, ५ तन्मात्र, तथा मन, बुद्धि और अहंकार! इन २४ तत्वोंसे भिन्न आत्मा २५ वाँ तत्व है। वह अकर्ता और अभोक्ता है। जगत्प्रवृत्तिका विकाररूप है। इस प्रमाणसे तत्वज्ञानसम्पन्न आत्मा क्लेशमुक्त है। तथा मुक्तात्मा अकर्ता-अभोक्ता आदि निर्गुण-स्वरूपमें रमाये रहता है। राग-द्वेषादि विभावको छोडकर प्रकृतिके कार्यको अपना कृत्य न मानकर तटस्थताका बर्ताव रखना, उसका अपना आत्मीयत्व है। इस जगतका कर्ता कोई नहीं है। आत्मापर कर्मबंधका लेप न होनेके कारण अलिप्त-निर्लेप है।

श्रीमान् अनेकान्त-प्रसादके दर्शनमें निश्चयनयकी दृष्टिसे उनका भी यही मन्तव्य है। उनके अपने अपेक्षावाद-क्षेत्रभंडारमें आत्मा कर्मबंधसे अलेपी है। पुनश्च मोक्ष दशामें आत्माके रहे हुए अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त-सुखादि अनन्त-चतुष्टय ज्यों के

त्यों रहते हैं, किन्तु शक्तिका बहिर्मुखी उपयोग नहीं किया जाता। जहाँ जहाँ आत्माकी सत्ता वर्णित है, वहाँ वहाँ अनेक विषयोंमें सांख्यदर्शनको सब माल अनेकान्तप्रसादसे ही मिला है। यही कारण है, कि यह दर्शन आपका पायदान बन गया है। उन्हें आपके पैरोंमें स्थान मिलनेसे अभूतपूर्व सन्तोष प्राप्त है।

योग—अथवा नैयायिक पृथिवी-पानी-अग्नि-वायु-आकाश-काल-दिशा-आत्मा और मन, इस प्रकार नव तत्त्वोंको मानता है, ईश्वरको जगतका कर्ता मानता है, एवं आत्माको आठवाँ तत्व। वह मुक्तावस्थाको प्राप्त होता है। कर्ता ईश्वर है। आत्माको कार्यका कारणरूप मानता है।

योगके मतमें क्लेश और कर्मादिसे रहितको मुक्ति और उसकी प्राप्तिके लिए चित्तवृत्ति-निरोधके उपाय बताए हैं। योगको राजयोग और हठयोगके भेदसे दो प्रकारोंमें विभक्त किया है। हठयोगसे बलपूर्वक यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान और समाधि आदि उपायोंसे चित्तको वशमें लाकर आत्मा मुक्तिको पा सकता है। राजयोगमें हठका उपयोग नहीं किया जाता। अर्थात् बलात्कारसे वायु आदिका अनुरोध किए विना ही सहज विचार द्वारा मनको प्रशान्त करके आत्मा क्लेश-कर्मादिसे अलग हो सकता है। इस प्रकार ये दोनों मत भिन्न भिन्न रीतिसे आत्माकी सत्ताका वर्णन करते हैं। यही कारण है कि ये दोनों अनेकान्त-प्रसादके अंगरूप हैं। यह माल आपकी दुकानमें पायदान के स्थानपर उपलब्ध हो जाता है। आत्माकी सत्तासे ही सब कार्य बनपाते हैं। और यह आत्माका माल अनेकान्त-प्रसादकी दुकानमें मूलपूँजीरूप है।

(२)

बौद्धमतावलंबियोंने आत्माकी जगह मनको तथा उसे भी क्षणिक माना है। पांच स्कन्धों में जो प्रतिक्षण परिवर्तन होता है, उसके अनुसार मात्र एक क्षणकी आयुवाला, या क्षणमात्र रहनेवाला, विज्ञानधातु माना है। अर्थात् वह एक देहमें प्रतिक्षण बदल जानेके कारण प्रत्येक आत्मामें ऐसा ही भेद मानता हैं। इसीभाँति अनेकान्तप्रसाद के भाव दार्शनिक दृष्टिसे स्वभावमें अलग अलग ज्ञेयका ज्ञानरूप, और विभावमें कर्मके आश्रित पुद्गलसे सम्प्राप्त देहोंमें पर्यायको क्षण क्षणमें परिवर्तित होना माना है। अर्थात् बौद्धदर्शनने पर्यायोंका परिवर्तन मूलका परिवर्तनरूप माना है। इस प्रकार पर्यायार्थिक नयके प्रमाणानुसार बौद्धदर्शन ठीक है। और अनेकान्तप्रसादकी दुकानके मालका आंशिक अंगरूप है। पर्यायकी अपेक्षा आत्मा प्रतिक्षण बदलता है। यह कहना असत्य नहीं है, परन्तु कुछ अंशों में सत्य है। व्यवहारनयसे पर्यायान्तर कालसे आत्माको देखते हुए बौद्धदर्शन यथातथ्य है।

मीमांसक इससे विपरीत सबमें एक ही आत्मा मानते हैं। उनकी एक श्रुति इस प्रकार है—

एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥"

भावार्थ—आत्मा एक ही है, और वह प्राणीमात्रमें व्यवस्थित है, जैसे चंद्रमा एक होनेपर भी हज़ारों घड़ोंमें अलग अलग हज़ारों चन्द्रमा दिखते हैं। इसी प्रकार आत्मा एक होनेपर भी प्रत्येक शरीरमें भिन्न भिन्न दिखता है। पुनः कहा है, कि **"एकः सर्वगतो नित्यः, पुनर्विगुणो न बाध्यते, न मुच्यते।"** इत्यादि, भावार्थ

यह है कि आत्मा एक है, सर्वगत है, नित्य है और जिसे त्रिगुण बाधा नहीं पहुँचाता इत्यादि; आशय यह है कि आत्मा एक है, नित्य और अबंध है, उसे त्रिगुणी माया बाध्य नहीं करती। ऐसी मान्यता है। तब किसी अंशमें वह ठीक है। जैनदर्शनके अनुसार आत्माकी सत्ताका ग्रहण करें तो सब आत्माओंकी सत्ता समान होनेसे "ठाणायंग सूत्रके 'एगे आया' वचनानुसार" आत्मा एक ही है। इसप्रकार आत्माओंमें निश्चयनयानुसार बंध भी नहीं है अतः यह दर्शन भी अनेकान्तप्रसादकी दुकानके मालका नमूना रूप एक अंग है। बौद्धदर्शनका बर्ताव व्यवहारनयकी अपक्षासे मेल खाता है, अतः वह बायाँ हाथ, और मीमाँसकोंका निश्चयनयके मतानुसार बर्ताव है। इसलिए वह दहना हाथ कहा जा सकता है। इस प्रमाणसे अलग अलग दर्शनोंको अनेकान्तप्रसादके माल का तद्रूप अंग कहा जा सकता है आशय अतिशय गंभीर है इसकी सही परख अनेकान्त-प्रसादके हाथों हुआ करती थी। × × +

ब्रह्मरंध्रके नीचेका भाग लोक है, उसके ऊपरका भाग अलोक है। इस हेतुसे सालंबन और निरालंबन ध्यानकी सूचना की गई है। प्रथम रेचक, पूरक और कुंभकादिसे पदस्थादि सालंबन ध्यान होनेके पीछे रूपातीतादि निरालंब ध्यान हो सकता है, और इस प्रकारको ध्यानाभ्याससे अनेकान्त प्रसादके मालको गंभीर आशयपूर्वक परखा जाता है।

(२)

लोकायतिक-नास्तिक दर्शन धर्म-अधर्म-पुण्य-पाप-स्वर्ग-नरक-बंध और मुक्ति आदि कुछ भी नहीं मानता। कारण दृश्यमान शरीरसे

भिन्न आत्मा पदार्थ नहीं है। और जब आत्मा ही नहीं है तो पुनर्जन्म किसका? और उसके अभावमें स्वर्ग-नरक किसे? इस प्रकार शून्यरूप माननेवाले नास्तिक हैं। इस भवमें खाना-पीना-इन्द्रियजनित भोगविलासमें सुखी और मस्त रहना उनका काम है।

इस मतके माननेवाले अनेकान्तप्रसादके कुक्षिरूप तो नहीं हो सकते, परन्तु यदि आंशिकरूपसे विचार किया जाय तो वे भी उनकी कोखमें समा तो सकते हैं। कोख अर्थात् पेटका भाग, वह खाली है, शून्य है, मूल विचारका स्थान है, अतः सबसे पहले शून्यमें से विचार उद्भव होता है। अर्थात् प्रथम जहाँतक जीवको किसीभी दर्शन (केवल दर्शन) का ज्ञान न हुआ हो वहाँ तक सब जीव नास्तिक (मिथ्यात्वी) ही हैं। और सम्यग्ज्ञान होनेपर तत्वविचार किया जा सकता है। इस दृष्टिसे वे उनकी कुक्षिरूप हैं।

जब ध्यानका आरंभ होता है तब इस संबंधके विचार अनेकान्त प्रसादके पास ही निर्णित होते हैं।

तत्वविचाररूप अमृतधाराका स्वाद अनेकान्तप्रसादको छोड कर और कौन चखाए? उसके विना उस स्वादकी परख किसी और से नहीं पा सकते। अतः सब लोगोंकी यही धारणा थी, कि उसकी दुकानको छोड़कर अन्यत्र जानेमें क्या लाभ?

(४)

भिन्न भिन्न दर्शन अनेकान्त प्रसादके अलग अलग अंग हैं परन्तु जैन दर्शन आपका उत्तमांग (मस्तक) है। शरीरके समस्त अवयवोंमें मस्तक श्रेष्ठतम होता है। शरीरके अन्यान्य अवयव आदि न्यूनाधिक हों तो भी निर्वाह चलाया जा सकता है, परन्तु मस्तक

के विना सब वृथा हैं । मस्तक सारे शरीरके लिए आधारभूत है, विचारशक्ति मस्तकमें होती हैं । तत्वविचारका साधन मस्तक ही है, मस्तिष्कके शुभविचारों द्वारा मुक्तिका स्वरूप समझकर उसे प्राप्त भी किया जाता है। अतः अन्तरंग अर्थात् अभ्यन्तर दृष्टिसे देखोगे तो इस निश्चय पर आना होगा कि जैनदर्शन अनेकान्तप्रसादका उत्तम अंग है।

जैनदर्शन सब मतोंको अपनेमें समा लेता है। अन्यमत एक एक नय की अपेक्षासे कथन करते हैं, अथवा मात्र एक दृष्टिबिंदुसे वस्तुको देखकर वे वस्तु ऐसी है, यह कल्पना करते हैं। अतः बहिर्दृष्टिसे देखते हुए जो दर्शन सब दर्शनोंको अपनेमें स्थान देकर निजमें समा लेता हो वही दर्शन उत्तम हो सकता है। मस्तकपदके योग्य वही होता है अतः इस दर्शनके आराधक का कर्तव्य है, कि इस दर्शनका अक्षरन्यास और धराको साथ रखकर इसकी आराधना करे अर्थात् अक्षरमात्र भी न्यूनाधिक न होने दे। एवं अक्षरमात्र को भी अर्थान्तर, स्थलान्तर न होने दे। इसके प्रत्येक अक्षरको समझकर प्रसंगानुकूल आशयको समझे।

योगकी दूसरी रीतिके अनुसार पुरुषाकारकी कल्पना करके अनेकान्तप्रसादके अंगोंके स्थानपर दर्शनोंको स्थापनकरके यदि ध्यानसे देखा जाय तो सब दर्शन परस्पर मिल जायंगे, मतभेद कुछ भी न देख सकोगे। इन पंक्तिओंमें जो गूढतम आशय है। उसे अनेकान्तप्रसादद्वारा ही समझा जा सकता है।

जिसप्रकार सब नदियाँ समुद्रमें मिल जाती हैं। इसी प्रकार धर्मके अलग अलग मतोंका जैनदर्शनमें समावेश होता है। जैसे नदिएँ

पर्वतोंसे निकलकर अनेक खड्डे-कूटोंवाली जगहसे होकर अन्तमें समुद्रमें आकर मिलती हैं। इसी प्रकार और दर्शन भी उन उन मतके अनेक प्रवर्तक महात्माओंके मुखरूप पहाड़ोंसे निकलकर समयरूप खड्डे और पर्वतकी उदरकंदरा वाली भूमिमें क्रियारूप होकर अन्तमें जैनमतरूप महासागरमें आ मिलती हैं। इस दृष्टिसे सब मतोंका जिनमतमें समावेश होता है। परन्तु अखिल मतोंमें जैनमतका तो मात्र आंशिकरूप है। आशय यह है कि किसी भी मत को काटने या निंदाकी ओर न दौड़कर उसके स्वरूपको समझकर, मध्यस्थ भावमें अखिलमतशिरोमणि अनेकान्तप्रसादके सहवासमें रहकर, उसकी मौलिक औषधियोंका सेवन करते रहें तो भव-व्याधियोंका उपशमन होता है। और वह कालान्तरमें कायाकल्प द्वारा आत्मासे परमात्मा बनता है।

(५)

जिस प्रकार भ्रमरी कीड़ेको डंक मारती है, और उसके सामने देखा करती है। उस डंककी वेदनासे कीड़ेकी वृत्ति भ्रमरीमें तदाकार हो जाती है। और उस तदाकार वृत्तिसे कीड़ा भ्रमरी बन जाता है। वर्षाकालमें जब भ्रमरी गीली मट्टीका घर बनाकर उसमें कीड़ोंको लाकर एकत्र करती है। और बारी बारीसे सबको मुखसे मुख मिलाकर डंक मारती है तथा अलग अलग कोठों में जमाकर देती है, और मट्टीसे सबके द्वार ढँक देती है। वे कीड़े भ्रमरीके डंककी वेदनासे भ्रमरीका ध्यान करते हुए मरकर उसी कलेवरमें उत्पन्न होते हैं, और उन्हें भ्रमरीके समान पँखें और डंक हो जाते हैं। सत्तरहवें दिन वे उस घरको अपने डंकसे फोड़ने लगते हैं, और बाहर निक-

लनेका मार्ग बनाकर उड़ जाते हैं। इसी प्रकार अनेकान्तप्रसाद के सम्यक्त्वरूप चटकेसे आत्मा परमात्माका ध्यान करता है। और तदाकार ध्यान होनेपर आत्मा परमात्मारूप बन जाता है। तब वह जगत्के सब लोकों को जानने लगता है। इसी प्रकार सब दर्शन, भावसे अनेकान्तप्रसादकी दुकानकी वस्तु हैं। वे उनसे ही सही रूपसे उपलब्ध होती हैं। अनेकान्त प्रसादके छहों अंगोंकी भाँति योगके भी छ अंग हैं। मुद्रा-बीज-धारणा-अक्षर-न्यास और अर्थ विनियोग। इन्हें अनेकान्तप्रसाद परखा परखा कर सबको देते हैं। और खरीदार उसकी अच्छे प्रकार साधना करते हैं। जिससे उन्हें आगे कोई नवीन रोग नहीं होता। अथवा अन्तरके षड्रिपु और कषायों द्वारा नहीं ठगे जाते। **मुद्रा**—अर्थात् जिनमुद्रा योगमुद्रा और शुक्तिसंपुटमुद्राके भेदसे हैं। **बीज**—बोधिबीज आदि हैं। **धारणा**—पंच परमेष्ठीमें चित्तवृत्तिका स्थिर करना। **अक्षर** ककारादि। **न्यास**—स्थापन, हृदय-कमल, नाभिकमल, कंठ और ब्रह्मरंध्र आदि स्थलोंमें मनको स्थापित करना। मनके द्वारा योग्य वर्णों को क़ायम करना। **अर्थविनियोग**—आलेखकके समान शुष्क न होकर, कार्यके भावको समझते हुए सार्थक क्रिया करना। जिससे ज्ञानमय जीवन निरर्थक न हो। तब ठगरूप क्रिया न होनेसे वंचना नहीं होती। परन्तु जो पौद्गलिक सुखोंको सम्पन्न करनेके लिए आस्रवोंका सेवन करते हैं, तथा जो पापस्थानकोंका सेवनकरके अपनेको धन्य मानते हैं, वे अपने आत्माको ठगते हैं। अधिक क्या कहें वे नकली माल लेकर खरी वस्तुको गवाँ रहे हैं। अन्तमें सुख पानेके बदले अनन्तकाल तकके लिए दुःखके भाजन होते हैं। इस प्रकार आस्रवका माल बटोरने

वाले आत्माको ठगते हैं। इस नकलीमालको अनेकान्तप्रसादकी दुकानमें स्थान नहीं मिलता। आप की दुकान तो संवरके मालसे भरपूर है। आपके खरीदार आपका माल लेकर मालामाल हो जाते हैं। इसलिए जगत् भरमें आपकी पैंठ जमी हुई है।

(६)

आज पाक्षिक दिन होनेके कारण शेठ अनेकान्तप्रसाद दुकानपर कुछ देरसे आए। पटल! और कसुंभा उनके दोनों नौकर दुकान खोलकर बैठे ही थे। सेठजी के आते ही ग्राहकोंकी भीड़ लग गई सबने अपने अपने नुस्खे अनेकान्तप्रसादके सामने पड़ी हुई मेज़ पर रख दिए। तथा क्रमवार बेंच पर बैठ गए।

अनेकान्तप्रसाद—अरे पटल!

पटल—स्वामीनाथ! फरमाइए, क्या आज्ञा है।

अनेकान्तप्रसाद—देखो! प्रथम श्रीमान् ज्ञानदेव का नुस्खा बनादो।

पटल—जैसी आज्ञा!

यह कह नुसखा पढ़ना आरंभ किया। बिल्ली लोटन १ तोला, विसखपरा ६ मा., बीजमातृका २ तो., बीजरेचन २ मा., पंडक १ मा., पुरीष १० तो., पूतिकन्या १० तो., खोखा १ सेर।

इन अद्भुत वस्तुओंके नाम पढ़कर पटल तो आश्चर्य में पड़ गया। उसे यह ज्ञान न हो सका कि आखिर ये वस्तुएँ हैं क्या? मनकी सिकुड़न मनमें न रख सका। अन्तमें लजाते हुए शेठजी से पूछ ही बैठा।

पटल—मालिक! इन चीजोंको नहीं समझ पा रहा हूं, मेरा ऐसा ख़याल है कि ये दवाइयाँ अपनी दुकानमें न होंगी।

अनेकान्तप्रसाद्–क्या ये असंभव और अलब्ध वस्तुएँ हैं जो इस दुकानमें लोगोंको न मिल सकेंगी? ।

पटल–मूल्यवान न सही असंभव तो हैं; बिल्लीलोटन, भला हमारी दुकानमें कब हो सकता है? हमारी दुकानमें क्या कभी बिल्लियाँ लेटी हैं। यह हो नहीं सक्ता कि हम यहाँ विद्यमान रहें और बिल्लियाँ लेट जायँ।

अनेकान्तप्रसाद्–तुम्हारी उधेड़ बुन अब समझे अरे भाई बिल्ली लोटन बिल्लीका लेटना नहीं, किन्तु जटामांसीका नाम है।

पटल–अब समझा! बुद्धिका ओछा जो ठहरा, तभी तो यह नौकरी करता हूं, अन्यथा वैद्यराज न बना फिरता। अच्छा यह विसखयपरा (सरीसृप जन्तु) तो कोई विषैला जानवर ही होना चाहिए, यह हमारी दुकानमें कहाँ से आया?

अनेकान्तप्रसाद्–तुम भी अच्छे मिले, यदि सभी दुकानदारोंको तुम जैसे काम करनेवाले मिल जायँ, तो फिर दुकान तो चल चुकी। वीरा! विसखपरेका मतलब पुनर्नवा (साँठी) से है। वह देखो बोरी भरी पड़ी है, तब तुम बगलें झाँक रहे हो।

पटल–अजी तो फिर यह बीजमातृका क्या होना चाहिए? बीजकी माँ तो न सुनी है न देखी। तब बीजरेचन (दस्तका बीज) क्या है?

अनेकान्तप्रसाद्–वाह भाई वाह! इस प्रकार कबतक काम चलेगा? ज़रा ज़रासी बातमें भी अटक जाते हो। भाई! बीजमातृका कहते हैं कमलगट्टे को, और बीजरेचन अमालगोटा है। अब तो समझे न?

पटल–कमलगट्टेकी कमी नहीं है, परन्तु नुस्खा विचित्रतम है।

कुछ समझ नहीं पडता । अब पंडक अर्थात् हीजडा, पुरीष=विष्ठा और पूतिकन्या=सड़ी लडकी हमारी दुकानमें कब हो सकती है ?

अनेकान्तप्रसाद्–देवानुप्रिय ! प्रत्येक देश और प्रान्तकी भाषाएँ अलग अलग होती हैं । प्रसंगानुसार शब्दका अर्थ करना युक्ति युक्त होता है । पंडक=बेंत अफल वृक्ष (कश्मीरमें) होता है । पुरीष=पालर पानी का नाम है । पुरीषम=उडद माष धान्यका नाम है और पूतिकन्या=पौदिना सब कोई समझ सकते हैं ।

पटल–तब भगवन् ! खोखा तो लडकेको (बंगालमें) कहते हैं । वह एक सेर किस प्रकार दिया जाय और कैसे दिया जाय ?

अनेकान्तप्रसाद्–अरे मूर्ख ! वह बोरीमें सामने देख ! खोखा भरा पड़ा है, कल बीकानेरसे ही तो माल आया है । वहां खोखा पके हुए साँगरको कहते हैं, जो खेजड़े के लगा करते हैं । वहाँ तुम्हें दिखा भी चुका हूं, खेद ! तुम्हें फिर भी याद न रहा ।

आज तुमने कुछ भांग तो नहीं पी है ? जो इस प्रकार एक ही नुस्खेमें बहक उठे । यदि यों ज़रा ज़रा सी बातमें अटकोगे तो लोगोंका क्या हाल हो, शीघ्रता करो और लोगोंकी सेवा अतिवेगसे करो ।

× × × ×

नगरके प्रसिद्ध ठाकुर सम्यग्दर्शनसिंह भी अनेकान्तप्रसादकी दुकानपर आ खड़े हुए । उन्हें किसी विशेष रोगीके लिए कई दवाई-ओंकी आवश्यकता थी । वे अभी **भेदविज्ञान भिषगालयसे** आ रहे थे । क्षपक वैद्यराजने एक नुस्खा लिखकर उन्हें दिया था, और यह कहा था, कि अनेकान्तप्रसादकी दुकानसे लिखित दवाइयाँ अच्छी मिलेंगी । ठाकुर महानुभावको कुछ जल्दी थी, अतः खड़ेही खड़े नुस्खा देकर बँधवानेकी प्रार्थना की ।

अनेकान्तप्रसाद्—अरे कसुँभा! यह ले नुस्खा, पुडियाएँ शीघ्र बाँधकर ला और पहला काम इन्हीं का कर।

कसुँभा नुस्खा पढ़ते ही शान और भान दोनों खो बेठा, अन्धेकी भाँति दिग्भ्रान्तसा हो गया, तथा जमीनकी ओर मुँह लटका कर भराए गलेमें बोला कि श्रीमन्! अपनी दुकानमें इन दवाइयोंका मिलना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है। मैंने तो ऐसे नाम भी नहीं सुने, पढ़कर अक्ल हैरान होती है!

अनेकान्तप्रसाद्—क्या कहा? दुकानमें ये औषधियां नहीं हैं, क्या ऐसी भी कोई दवा है जो मेरी दुकानमें न मिलती हो, यहाँ तो तीनों लोककी वस्तुएँ हैं, तब तू कहता है यहाँ असंभव है। मूर्ख कहीं का! ज़रा विचार कर ही बोलता।

कसुंभा—महामनुष्य! मैंने खूब सोचा है, और तब कहीं इस निश्चयपर पहुँचा हूं, कि पूतिकाष्ठ की जड=सड़े वृक्षकी जड, पूति-केशर=मुश्क बिलाव, पूतिगंधा=सड़ी हुई बदबू, पूतिगन्ध=बांस मारना, हमारे यहाँ न होनी चाहिए, और पूतिपल्लव=सड़ा पत्ता, पूतिपुष्पिका=सड़े फूलवाली, पूतिफल=सडियलफल, पूति मयूरिका= सड़ी मोरनी, पूतिमारुत=सडी बुसी हवा, पूरा=कीडा, पूरी=तबलेपर मढ़ा हुआ चमड़ा, पृश्नि=भील, पृषत=मछली, पेचक=उल्लू-जूं या हाथीकी दुम इत्यादि वस्तुएँ क्या औषध हो सकती हैं? कोई ऊँट वैद्यही होगा, जिसने यह ऊटपटाँग नुस्खा लिखा है। ऐसी वाहियात चीजें आपकी दुकानमें नहीं हो सकतीं?

अनेकान्तप्रसाद्—क्या ही अक्लका दुश्मन है? पटल की तरह तुम्हें भी आज क्या हो गया है? उसकी भाँति तुम भी अनूठे समझू

हो, तेरी बुद्धि किस खेतमें अपामार्ग चरने गई है? यदि उसकी एकान्तमति इन नुस्खोंको समझनेमें असमर्थ है, तो क्या तुझ जैसे अगदंकार शास्त्र पारंगत की भी बुद्धि मारी गई, सचमुच तुम्हारा बुरा हाल है। इसी मार्ग पर चलते रहे तो कमा कर खा लिया। अच्छा-ख़ैर, देखो—पूतिकाष्ठकी जड़–देवदारकी जड़, पूतिकेशर–नागकेशर पूतिगन्ध–गंधक, पूतिगंधा–सोमराजी, आदि सब वनौषधिएँ हमारे यहाँ पुष्कल रूपमें हैं। पूतिपल्लव–बडा करेला, पूतिपुष्पिका–निंबू, पूतिफल–बावची, पूतिमयूरिका–वनतुलसी, पूतिमारुत–झड़बेर, पूरा–परिपूर्ण, पूरी–तली हुई पूरी, पृश्नि–अन्नपानी, पृषत–ओसकी बूंद, पेचक–पतला डोरा, आदि उपयोगी एवं सार्थक वस्तुएँ सब अंदर मौजूद हैं। तुम्हें यह भी ज्ञान नहीं कि एक शब्दके कई अर्थ होते हैं। अच्छा जाओ शीघ्रतासे दवाइयाँ बाँधकर दो। इनको कितनी समय हानि हुई है। ठाकुर महाशय! क्षमा करें।

कसुँभा—जी हाँ, कह कर काम करने लगा।

पटल और कसुँभा आपसमें कहने लगे कि हम इतने तो पढ़े लिखे हैं, भिषक्शास्त्रनिष्णात हैं, भाषा-विज्ञान पर खूब ही अधिकार है, सब हमें विद्वान ही कहते हैं, फिर भी हमारे लगाए हुए अनुमान और अर्थ सही नहीं उतर रहे हैं। यह हमारे लिए कितनी लज्जाकी बात है। हमें प्रासंगिक अर्थ करने ही नहीं आते। आज हम ग्राहकोंमें कितने लजाए गए हैं, लोग हमें क्या कहते होंगे। अपनी मति-विचारके विना मनुष्य कुछ भी नहीं है। इतने में सर्दार सम्यक्-चरित्रसिंह सेनापति हाथमें एक श्वेत रंगके काग़ज़ पर लिखा नुस्खा लिए दुकान पर पधारे, नुस्खा शेठजीके हाथमें देकर कहा कि 'ज़रा

जल्दी है, यदि शीघ्र बँधवा देनेकी व्यवस्था करादें तो पूर्ण अनुग्रह होगा।'

अनेकान्तप्रसाद—अरे पटल! ये दवाइयाँ शीघ्र बांध कर दो।

पटल नुस्खा पढ़ कर किंकर्तव्यमूढ हो जाता है। इधर कसुंभा भी कनखइयोंसे पढ़कर सहमकर गहरे विचारमेंसे डूबने उतराने लगता है। कुछ देर बाद पटल मनके भावोंको बटोर कर साहससे शेठजीसे नम्रतापूर्वक बोला कि मालिक! यह नुस्खा न होकर मज़ाक मालूम होता है। समझमें नहीं आया कि उस वैद्यके हाथ क्या आया होगा, निरा उपहास और अवज्ञाएँ भरी पड़ी हैं। मरा हुआ झींगा, अस्थिपंजर, अस्थिका गोल खंड, कुतिया, साँप, कुमारी कन्या, मछली का कलेजा, माँसकी गोल पेशी, बंदरी, ज़रासा पखाना, कछुआ, कुत्तेका पेशाब, आदि २ भी क्या दवाइयाँ हो सकती हैं? (सब लोग ठहाका मार कर हँसते हैं।)

अनेकान्तप्रसाद—अरे अबोध! तुम्हें यह अर्थ किस गुरुने बताया है? जब तुम्हें दवाइयोंके प्रसंगोपात्त नाम याद नहीं आते तो तुम्हें पठित मूर्खके अतिरिक्त क्या कहा जाय। इस प्रकार इस धंधेको कैसे संभाल सकोगे। तुम्हारा यह अव्यापारेषु व्यापार है। यदि प्रत्येक नुस्खेको मैं ही समझाने बैठूं तो लोगोंका समय नष्ट होता है, और मेरी कीर्तिका भंग, किसी अनुभूत ज्ञानी गुरुके पास अभ्यास किया होता तो आज उपहासका अवसर न आता।

पटल—अजी विचार तो खूब किया था, अभी गुदाज़ और करनाल इन दो दवाओंका आशय तो कुछ समझ ही नहीं पाया। परन्तु गुदाज तो अनुमान सब लोगोंके देह में होता ही है और कर-

नाल शायद पंजाबका एक मंडल (ज़िला) है। भला ये कोई पुड़ियामें बाँधने योग्य हैं ?

अनेकान्तप्रसाद—हाय ! हाय ! इन जड़मतिया पठित मूर्खोंको न जाने कब समझ आयगी। अरे अज्ञान। गुदाज़ फारसीमें फलके सार भाग (गूदे) को कहते हैं, और तुम समझ बैठे गुदा, बलिहारी तुम्हारी समझ पर। करनाल डब्बेका नाम है जिसमें तरल दवाइयाँ भरी जाती हैं। तब तुम उलटा ही समझ बैठे। यदि तुम नहीं समझ सकते हो तो मुझसे पूछ ही लिया करो, जिससे लोगोंके पल्ले सही चीजें जल्दी पड़ सकें।

पटल—आप कृपा पूर्वक बताइएगा।

अनेकान्तप्रसाद—मुझे तुम्हारे पांडित्य पर इतना ही खेद है, कि स्वयं कुछ समझ नहीं और दूसरोंसे समझनेकी लगन नहीं। अपने औद्धत्य मतसे मन चाहा तोड़ मरोड़ कर अर्थका अनर्थ करने लग पड़ते हो। यदि स्वयं समझने में कठिनाई पड़ती हो तो किसी योग्य वेत्तासे पूछना चाहिए। अच्छा तो सुनो। पुद्गल=रूपी अरूपी जड़ पदार्थ या फलका सार भाग, अस्थिवान्—बीज, अस्थिफल—कटहल, शुनि—कूष्मांडी पेठेकी जाति, कुमारी—बड़ी इलायची, मत्स्यपित्ता कुटकी, मांस फली—तर्बूज-मतीरा, मर्कटी—अजमोद, मल—समुद्र फेन अथवा कर्पूर, कच्छप—चर्चेटा-ऊँगा, कुक्कुरमुत्ता—कुकुन्दर, इत्यादि औषधियोंके नाम सरल एवं स्पष्ट हैं।

पटल—तब भदन्त ! मूत्रला, मूत्रफला, प्रणासका अर्थ भी समझाएँ।

कसुँभा—(बीच ही में बोल उठा) पेशाब लानेवाला, कतई चोड़

चपट्ट, और नाश करनेवालेसे संबंध है। मतलब सीधासा है, मालिकसे पूछनेकी क्या ज़रुरत थी? (सब हँसते हैं)

अनेकान्त-प्रसाद—अरे चुप रह! मूत्रला-मूत्रफला तो ककोड़ेको कहते हैं, एवं प्रणास बथुएके सागका नाम है, वैद्यक ग्रंथोंका वास्तुक प्रसिद्ध ही है। इतने लंबे चौड़े सोचनेकी आवश्यकता ही क्या है। वास्तवमें तुम दवाइयोंका सही अर्थ न करके प्रसिद्ध अर्थकी ओर दौड़ जाते हो, इसीलिए आजसे तुम दोनों को अपनी दुकानके कामसे अलग करता हूं, यह कह अनेकान्तप्रसादने दोनोंको काम काजके अयोग्य समझकर निकलवा दिया। वहाँ से निकलकर बेचारोंने कहीं प्रेसमें नौकर हो कर कम्पोज़का काम ले लिया।

सब लोक अनेकान्त-प्रसादकी अनेकार्थ-यथार्थ और प्रसंगोपात्त नामार्थज्ञानकी चातुरी पर प्रसन्न हो गए एवं मुक्तकंठसे प्रशंसा करने लगे।

उस समय वहाँ बावा दुर्विदग्धनाथ भी उपस्थित थे, उन्होंने सविनय यह कहा कि भगवन्! महाकपोत तो शायद दुमदार बड़े कबूतर को ही कहते होंगे। जो झरिया-मानभोम-वीरभोम और सिंहभोममें पाया जाता है।

अनेकान्त-प्रसाद—अजी आप भी बैलके बाबा ही हो, शब्दके अर्थ पर ही गए, महाशय! वास्तवमें फणियर साँप को महाकपोत कहते हैं। जो कि काठनेके साथ प्राणोंको भी शोष लेता है।

अल्पज्ञनाथ—अनेकान्त प्रसादके पैरों में गिर पड़े, और बोले कि वास्तव में आप मनुष्यके रूपमें कोई देवता मालूम होते हो, तुम जैसी भाववाही सन्मति मनुष्यों में बहुत कम होगी। "मनुष्य एकान्त

दृष्टिसे अबोध रहता है।" द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावकी अपेक्षाको विचार कर बोलने वालाही साक्षर और समझदार हो सकता है। आपके मार्गका अनुयायी हुए विना अपने आपको सम्पूर्ण समझना वृथा और मिथ्या है। आपका अनेकान्त नाम सचमुच रहस्य पूर्ण है। आप "अप्पा के रूपमें परमप्पा हैं।" आपको साधुवाद और आपके अपेक्षावादको भी साधुवाद!

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

परिशिष्ट नं. ३

मानपत्र.

सेवामें श्रीश्रीश्री १००८ श्रीफूलचंद्रजी महाराजके चरण-कमलोंमें, श्रीजैन संघ श्रीनगर काश्मीर की तरफ से हाथ जोड कर वन्दना नमस्कार स्वीकार हो!

पूज्य श्रीस्वामीजी महाराज!

आज हमारी खुशीकी कोइ हद नहीं। श्रीजैन संघ श्रीनगरका बच्चा बच्चा, आपकी रियास्त कश्मीर की राजधानीमें तशरीफ आवरी पर फूला जा रहा है। और बडे ही आनंद मंगलसे आपका रस भरा उपदेश सुननेके लिए बेताब हैं। चूंकि दूरोदराज मुल्कमें दुशवाराना पहाडियों और खतरनाक रास्तोंसे पापयादा आप जैसे महात्मा पुरुषका यहां तशरीफ लाना वहमोगुमानमें भी न था। हम सब छोटे बड़े श्रावक और श्राविकाएँ आपको इस कठिन और मुश्किल सफरके बखैर तह करने और यहां पहुँचने पर मुबारक बाद अर्ज़ करते हैं।

स्वामीजी महाराज!

यह आपकी बडी ही कृपा है कि आपने हमको याद फ़र्माया। और अपने श्रावकोंको नहीं भुलाया। इस कोहस्तानी इलाकेमें आपका बडे कठिन सफरके बाद पहुँचना बिलाशक आपका हम पर भारी अहसान है, जिसको हम कभी भी नहीं भूल सकते। आपकी यह तशरीफ आवरी श्री नगर जैव संघके लिए हमेशा ज़िन्दा रहनेवाली यादगार है।

गुरुदेव !

हमको मुद्दतोंसे कोई रूहानी ग़िज़ा नहीं मिली थी। हम सब आपके प्रेमभरे उपदेश सुनने के लिए बेताब हैं। इसलिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि हमारी विनतीको स्वीकार करते हुए यहां काफी अर्सा क़याम फ़र्मावें।

हम हैं आपके सेवक

"मेम्बरान श्री जैन संघ श्रीनगर कश्मीर।"

(नोट) यह अभिनन्दन पत्र
'श्रीनगर जैन श्रीसंघकी ओरसे' पढा गया

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

मानपत्र.

ओं नमोऽर्हते

साधुशिरोमणि, सिन्ध-बंगदेश विहारी, जिनवाणीप्रसारक, देश तथा समाजके उद्धारक, श्रीश्रीश्री १००८ जैनमुनि श्रीफूलचंद्रजी महाराजके पवित्र पदकमलोंमें सादर समर्पित स्वागत अथवा मानपत्र ॥

पूज्य गुरुवरजी !

हमारे अहोभाग्य हैं कि आज हमको आप जैसे उच्चकोटिके महात्मा की सत्संगति तथा आपकी सौम्यमूर्तिके दर्शन सुलभ्य हो रहे हैं।

श्रद्धेय मुनिरत्न! आपका धर्मप्रेम अद्वितीय है। आपकी समाजसेवाएँ अनुपम हैं। धर्मप्रचारमें जिस धीर और गंभीर मनोबलका परिचय आपने दिया है वह केवल आपके ही आदर्श मुनिजीवनका हिस्सा है। आपने सिन्ध-संयुक्तप्रान्त बंगाल और बिहार देशमें परिभ्रमण करके धर्मप्रचारका महान् कार्य और जैन समाजकी प्रशंसनीय सेवा की है। यह वह देश थे जिनमें सहस्रों वर्षोंसे जैन मुनिओंका आगमन नहीं हुआ था। और यहां जैन धर्म मानो लुप्त हो रहा था।

स्वामिन्!

धर्मउदासीनताकी दृष्टिसे कश्मीर भूमिभी उक्त देशोंसे विशेष बेहतर नहीं है। यह सुंदर खंड जो कभी प्राचीन कालमें जैन

महर्षियों का साधन क्षेत्र रहा है। आदीश्वर श्रीऋषभदेव भगवानका निर्वाण भी इसी देशमें हुआ था। जिस स्थानको अष्टापद पर्वत कहते हैं। शताब्दियोंसे जैन मुनियोंके पदार्पणसे वंचित रहनेके कारण यह देश धर्मविहीनसा होगया है। ऐसी स्थितिमें आहार-विहारकी दुर्गम वेदनाओंको सहकर आपका अत्यन्त दूरवर्ती सीमा प्रान्तके इस अनजान प्रदेशमें पधारना बहुत बड़े महत्वकी बात है।

हृदयसम्राट्!

आपका धर्मोपदेश जनताके हृदय पर जादूकासा प्रभाव उत्पन्न करता है। उससे प्रभावित होनेवाले प्रेम, शान्ति, एकता और उत्साहके निर्मल स्रोत श्रोताओंके मानसिक सन्तापको दूर करनेमें अतिनिपुण हैं।

आपने प्राचीन शास्त्रग्रन्थोंको संकीर्ण अर्थोंमें कैद न करके उन्हें उदार रूप देकर बंधनमुक्त कर दिया है। जैन धर्मकी शास्त्रमर्यादाओंको ध्यानमें रखते हुए उसे युगधर्मका रूप देकर विश्व-शान्तिका सन्देशदायक बना दिया है। समाजके जीवनमें घुसी हुई रूढियोंको एक कुशल कलाकारके नाते आपने उन्हें अपने कौशलसे उखाड़ फेंका है। जिससे समाज और संघके उद्धारकी प्रवृत्तिको काफी बल मिला है। अतः आपश्री समाजकी वन्दनीय विभूति हैं।

आपके पराक्रम-तेज-साहस-ज्ञान-वक्तृत्वशैली और प्रेमप्राबल्यकी जो प्रशंसा हम प्रायः सुना करते थे आज हम उसे प्रत्यक्ष रूपमें देखकर गद्गदायमान हो रहे हैं।

भगवन्!

आप पधारे हैं, इसलिए पूर्णश्रद्धा और भक्तिसे हम आदर और

सत्कार पूर्वक स्वागत करते हैं। उदारतासे स्वीकार करके उसे अपने चरणकमलोंमें स्थान दीजिये।

२ ज्येष्ठ २००१ वि., रविवार महावीर निर्वाण संवत् २४७०।

जैन जनरल स्टोर श्रीनगर (कश्मीर)

तथा

सुशील ब्रदर्स लाहोर.

(नोट) इसके अध्यक्ष श्रीमुनिलाल भाई लगातार कई वर्षोंसे प्रार्थना किया करते थे कि भगवन्! एक ब्रार आप कश्मीर जैसे नवीन प्रदेशमें पदार्पण करके अपने उपदेशामृतसे उसे सींचकर अवश्य पुनीत करें। इस भांति प्रतिवर्षकी प्रार्थना एवं सद्भावनाकी विशद-शक्तिद्वारा किसी जन्मकी प्रतिबद्ध अन्तराय कर्मकी प्रकृतिके तारतार होगए। आपकी सफल भावना सफल हुई। आप इसी हर्ष-भारसे निर्भृत होकर गद्गदायमान होते हुए था समर्थ एवं स्वतन्त्र उद्गार प्रगट करते हुए अभिनन्दनपत्रकी उपायनभक्तिके रूपमें समर्पित की।

नमो त्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

अभिनन्दन पत्र

प्रेमके सागर श्रीश्री १००८ श्रीजैनमुनि फूलचन्द्रजी महाराजकी सेवामें प्रेजीडेंट मेम्बरान ट्रस्ट नयाजमन्द भगवान् श्रीकृष्णमहाराज (सरदार मक्खनसिंह जी) की ओर से हाथ जोडकर वन्दना स्वीकार हो।

श्रीश्री प्रेमके सागर मुनिजी महाराज !

आपके भगवान मंदिरके स्थानपर पधारनेपर हम जुमला हाज़रीनको खुशी हुई है, जिसके लिए हम जुमला मेम्बरान ट्रस्ट नयाज़मन्द तह दिलसे आपका धन्यवाद करते हैं, कि आपने हमारी दरख्वास्तको मंज़ूर करते हुए अपने प्रेमसे तमाम हाज़रीनको मश्कूर व ममनून किया।

श्रीश्री प्रेमके सागर स्वामीजी महाराज !

आप सच्चे त्यागी होनेके बावजूद भी प्रेमके सागर हैं। क्योंकि आप किसीका भी खंडन नहीं करते। हक़ीकतमें तमाम मज़ाहब जिस बातका खंडन करते हैं आप भी उसीका करते हैं। और वह हिंसा कहलाती है। आपका व्याख्यान हमेशा तमामसे मुताबकत रखता है। आप 'अहिंसा परमो धर्मः' के सच्चे मायनोंमें हामी हैं। आप आत्मिक ज्ञान रखते हुए आत्मिक बल भी रखते हैं। और आप धर्मके सच्चे रहनुमा हैं। आपका पवित्र मिशन सच्चे असूलों पर मबनी है। जो कि महज़ नेक और उच्च अफआलसे तअल्लुक रखता है। और जैन फिलॉसफ़ीके फ़ाज़िल होते हुए आप भगवद्गीताके भी बखूबी माहर हैं। बल्के तमाम धार्मिक ग्रन्थोंसे भी आप बखूबी वाकिफ़ हैं।

इसलिए तमाम हाज़रीन आपके व्याख्यान की दिलो जानसे

ख्वाहिशमंद हैं। आपके व्याख्यान से मानो फूल बरसते हैं, जिससे सबको शान्ति प्राप्त होती है।

प्रार्थी

प्रेजीडेंट सेक्रेटरी व मेम्बरान ट्रस्ट नयाज़मंद मंदिर
श्रीकृष्ण महाराज जी,
सरदार मक्खनसिंहजी (धर्ममूर्ति) हरिसिंह हाईस्ट्रीट,
श्रीनगर कश्मीर,

स्वयंसेवकोंकी व्यवस्था

जम्मूसे नगरोटे तक १०० भाई साथ थे। तदुपरांत उन सज्जनोंके नाम उल्लिखित हैं, जिन्होंने श्रीनगर तक सत्संग और सहवासका लाभ प्राप्त किया है।

(१) लाला हीरालाल गदिया.
(२) ,, फकीरचंद गदिया.
(३) ,, चुनीलाल मनानी.
(४) ,, हरिचंद वरड़.
(५) ,, निरंजनदास नाहर.
(६) ,, मुल्कराज गदिया.
(७) ,, कस्तूरीलाल दूगड़, जम्मु निवासी दुमेलसे ऊधमपुर तक।
(८) ,, तिलकचंद दूगड़.
(९) ,, बलवन्तराय गदिया.
(१०) ,, शान्तिप्रकाश नाहर.

(११) लाला मुनिलाल बाहर. जम्मु
(१२) ,, शादीलाल लीगे.
(१३) ,, प्यारेलाल वावेल.
(१४) ,, हरदयाल गद्रिया.
(१५) ,, दर्शनलाल.
(१६) ,, बोधराज शर्मा.
(१७) ,, पनालाल गदिया, ऊधमपुरसे बटोत तक ।
(१८) ,, बालकृष्ण, टीकरीसे ऊधमपुर तक ।
(१९) ,, सावणमल बरड़.
(२०) ,, दिवानचंद गदिया.
(२१) ,, शंकरदास रावलपिंडी निवासी ऊध०से बटोत.
(२२) ,, ओंप्रकाश गदिया मटनसे श्रीनगर तक ।
(२३) ,, मुनीलाल गदिया लाहोरी, मटनसे बीजबिहाडा.
(२४) ,, गणेशदास मुल्तानी काजीकुंड्से अनंतनाग तक.
(२५) ,, प्यारेलाल दुगड़ अनन्तनागसे मटनमार्तण्ड, बीज-बिहाड़े तक ।

(नोट) इन सज्जनोंने सहवासमें रहकर सेवा प्रचार, धर्मचर्चा आदिमें खूब ही योग दिया है । भाई बलवन्तराय तो उस समय दुभाषियेका काम देते थे । ये सबको साथ लेकर ग्रामीण कश्मीरी लोगोंको बुलाकर लाते थे और धर्मसभा की शोभा और गौरव बढ़ाते थे । इनका अदम्य उत्साह साथियोंको उल्लास प्रदान करता था । इनमें साहस अधिक है । निर्भयता तो इनका जन्मजात

अधिकार है। लाला हीरालाल फ़क़ीरचंद गदिया जम्मू निवासीकी ओरसे स्वयंसेवकोंके सामानादि ढोनेके लिए ६००) व्यय करके एक मोटरकी व्यवस्था की गई थी। तथा लाला टेकचंद, रोशनलाल, जी महानुभावकी ओरसे भोजन व्यवस्था की गई थी। आपका प्रबंध स्वयंसेवकोंके लिए बड़ा संतोषजनक रहा है। एतदर्थ ये दोनों कुटुंब धन्यवादके पात्र हैं।

इति पूर्वार्ध

उत्तरार्ध

प्रयाण

रावलपिंडी जैन संघका प्रार्थनापत्र—

चतुर्मास समाप्त होते होते एक दिन रावलपिंड़ी जैन संघका प्रार्थना पत्र आया। उत्तरमें महाराजश्रीने फर्माया कि "जम्मू जैन संघका विशेष अधिकार है अतः वहांसे अनुमति आने पर रावल-पिंडी होकर जम्मु जाया जा सकता है" अन्यथा नहीं। श्रीनगर जैन संघकी स्फूर्ति बढ़ी, और इस आशयका टेलीफ़ोन किया, कि पीरपंजाल पर हिम पड़ जानेकी संभावना है। तथा फिर मार्ग खराब हो जायगा इसलिये श्रीमहाराजका विहार रावलपिंडीवाले पथसे होना उचित है। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिए रावलपिंडी जैन संघका प्रार्थनापत्र भी आया है। अतः जम्मु जैन संघ इस पर यथोचित विचार करे।

जम्मु जैन संघने औदार्य और चातुर्य युक्त उत्तर दिया कि 'यदि श्रीमहाराज और श्रीनगर जैन संघको उस मार्गसे सुख साता प्राप्त हो तो जम्मु जैन संघ उस मार्गसे विहार करनेमें सहमत है'। उत्तर सन्तोषजनक आनेपर श्रीरावलपिंड़ी जैन संघको सूचना की गई, और चतुर्मास पूर्ण होनेसे चार दिन पूर्व अनुमान २० स्वयंसेवकोंका एक डेप्युटेशन ठीक समय पर आगया।

'रावलपिंडीकी ओर विहार हो' इस आन्दोलनमें लाला वलायती शाह मैयाशाह का तथा विशेषतया नव युवकोंका पूरा हाथ था। युवक दलकी वेगवती प्रेरणाने उनकी सदिच्छा को पूर्ण किया।

उनके मार्गमें अनेक आवरण भी उत्पन्न हुए, परन्तु सफलता उनके करतल पर आ बिराजी। उनका मूलमंत्र यह था कि 'आज बूढ़ोंकी है तो कल जवानों की'। युवकोंका वीररस समुद्रकी भाँति लहरायमान था। सत्प्रेरणा एवं पक्षोपेक्षाने इच्छित वरदान दिया। यही कारण है कि यथा समय मुनिसेवाका उत्तम लाभ लेनेके अर्थ श्रीनगर आए।

डॉ. अमरनाथ होमियोपेथ उनके अध्यक्ष और डॉ. लालचंदजी सबके सर्वे सर्वा थे।

पूर्णाहुति.

चातुर्मासका आनँद लेखनी लिखनेमें असमर्थ है। धर्मध्यान दान सन्मान सभी कुछ हुआ। आगन्तुक सहधर्मिओंकी सेवा भी पूर्णरूपेण समृद्ध हुई। जैन संघ और देशमें सुख शांति छा गई। बातकी बातमें सुख समाधिके चार मास पूरे हो गए। जैन और जैनेतरमें धार्मिक प्रेम प्रगाढ़ था। लोगोंके सत्संगलाभने प्रेमवात्सल्यको उत्तेजित कर दिया। विहारके लिए पहली नवंबर श्रीनगरके नवीन इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे लिखी गई।

विहारका उत्सव.

इस वर्ष चतुर्मास अक्टोबरकी अन्तकी तारीखमें पूर्ण हुआ। इस वर्ष गर्मी अधिक थी तथा वर्षाएँ कम। लोगोंकी यह धारणा थी कि इस वर्ष बरफ़ ज़रा देरसे पडेगी। परन्तु हैमिक समय आने पर बरफ़ और वर्षोंकी अपेक्षा मात्रामें अधिक पडेगी। इसी पक्षकी विजय रही। २० दिनतक रावलपिंडी पहुंचनेका निश्चय किया।

छताबल मील ३. ता- १–११–४४.

श्रोताओंकी आँखें सजल हैं, सत्संगका अवसान और वियोग सबको अखरता है । दिनके ११॥ बजे श्रीमहाराजने विहार किया । सबसे आगे रावलपिंडीके स्वयंसेवक चलते थे । उनके पीछे श्रीनगरकी प्रजा थी । साधुवियोगकी चिन्तामें सबके सब उद्विग्न थे । नुमायशगाहके सामने श्रीगुरुदेवने मंगल पाठ श्रवण करानेकी कृपा की । पांच मिनिट तक अन्तिम उपदेशामृतकी वर्षा हुई । उचित रीतिके त्याग कराए । एक बजेके लगभग छताबल पधारे, श्रीमान् सरदार बलदेवसिंह शार्दूल सिंहजी साहब ठेकेदार की कोठी में ठहरे । रात्रिमें प्रवचन हुआ । कई सिख बांधवोंने तथा दोनों सरदार महानुभावोंने और उनके मामाजी आदिने सदाके लिए मांस खाना त्याग दिया । सरदार साबहने श्रीनगर और पिंडीके भाईओंकी ऊँचे मनसे ख़ूब सेवा की । आतिथ्य स्वागत नियम पूर्वक हुआ । इनके यहां लोगोंको सब प्रकारका सुख मिला ।

पटन मील १५।१८ ता. २।३–११–४४.

गुरुद्वारेके भाईजीने साग्रह आज्ञा देकर उत्तम और छोटासा स्थान दिया । यहां रावलपिंडीवालोंकी कई दुकानें हैं । रात्रिमें व्याख्यान किया । लोगोंकी संख्या सन्तोषजनक थी । दो दिन ठहरनेकी प्रार्थना की । महाराज साहबने उनकी माँग पूरी की । जिसका प्रभाव इतना उत्कृष्ट पडा कि कई खत्री और सिक्खों ने आमिष खाना छोड दिया । बस्तीमें हिंदू और सिक्ख बडे सेवा भावी हैं ।

किसी समय पटन बौद्धोंका काशीधाम जैसा तीर्थ समझा जाता था ।

श्रीमती-तपस्विनी-लल्लेश्वरी देवीने अपने व्यंगवाक्योंमें यह बात कई बार दुहराई है कि "चाहे मटन जाओ या पटन, परन्तु वहां जाकर आत्म साक्षात्कार किसने पाया ? अर्थात् आत्म-समाधिके विना मटन और पटन जानेमें कोई लाभ नहीं है। और यदि आत्माका भान होगया हो तो भी मटन और पटन जानेमें क्या लाभ ?" कुछ भी हो यहां पर बौद्ध विहार इतना बडा था, कि बिल्ली इस सिरे से चलती तो तीनकोस चलकर दूसरे सिरेके अन्तको पाती। किसी समय मध्यान्हके समय बौद्धोंका प्रताप असह्य था। बडे बडे विहार थे, बौद्ध भिक्षु अपार संख्यामें यात्रा करते। हजारों विद्यार्थी यहां का पाठ पूरा करके 'तक्षकशिला' विश्वविद्यालय में अध्ययन-पूर्तिके लिए जाया करते थे। प्रतिवर्ष भिक्षु सम्मेलन होते थे। अन्तिम सम्मेलनमें १०००० भिक्षुओंका समुदाय एकत्रित हुआ था।

यहां से तीन मीलके अन्तर पर खोद काम चल रहा है। बहुतसी अपूर्व वस्तुएँ निकलती हैं। लडाईके कारण प्रवृत्ति कुछ मंद है। मटन जैसा महाकाय विहार निकला है वैसा ही सुंदर भी है। यह भी किंवदन्ती है कि इसके नीचे हजारों वर्षका तपस्वी नागदेव रहता है। इसका तेज असह्य एवं दारुण है, किसी २ की यह धारणा भी है कि यहां अपार धनराशि गडी है। अब तक मट्टीकी कई चीजें निकली हैं, और पालीभाषामें कुछ भग्नावशिष्ट शिलालेख। परन्तु खेद है कि कार्य अव्यवस्थित रूपमें होता है। तब भी किसी न किसी समय कुछ न कुछ सार अवश्य निकलेगा। दूरसे दीखनेवाले महाकाय टीले इसके साक्षी हैं कि यहां किसी समय भिक्षु समुदाय बहुत ही बड़ी संख्यामें काम करता रहा होगा। आज उसका अन्त भी विशाल रूपमें देखा जा रहा है।

बारामूला १७।३५ ता. ४-११-४४

यह स्थान रमणीय है। भूमिकी समतल सीमा यहां समाप्त होती है। आगे बड़े बड़े पर्वत खड़े खड़े पहरा भर रहे हैं। यहां का जलवायु अति सराहनीय है। व्यापारी जन संख्यामें पंजाबी अधिक हैं। बड़ी बडी इमारतें खड़ी करली हैं। काश्मर्य फलोंकी मंडी भी यहीं है।

समस्त पंजाबी और कश्मीरी पंडितोंने मिलकर व्याख्यानका लाभ लिया। धर्मचर्चा और वार्तालाप ११ बजे तक हुआ। लोगोंमें मनकी लगन अच्छी है। कई काश्मर्य पंडितोंने मांस खाना भी छोड दिया।

रामपुर १७।५२ ता. ५-११-४४

यह पडाव नितान्त वनमें है। दोनों ओर ऊँचे पहाड़ और पार्वत्य वृक्षोंकी भर मार। चीड़ और दियारकी समीर मनको मुग्ध कर डालती है। व्याघ्र चित्रक और भालुओंकी चीत्कारसे कान खडे हो जाते हैं। मोटरका हॉर्न समाधिभंग करता है। यह स्थान अतिशय शीतल है। क्षयके रोगियोंके लिए तो अत्यन्त हितावह है। यहां से विद्युत् उत्पादनार्थ एक नहर निकाली गई है। यह पहाड़के ऊपर से बहती है। सचमुच स्थान प्रदर्शनीय है। साधुसन्तोंका मन तो ऐसे रम्य स्थलमें ही लगता है। प्रदेश विजन है। समाधिका योग यहीं पूर्ण हो सकता है।

पोस्ट ऑफिसमें विश्राम मिला। पोस्टमास्टर बड़े ही मिलनसार एवं साधुपुरुष हैं। कश्मीरी पंडित होनेके नाते साधुसेवा और सत्संगका खूब ही लाभ लिया। प्रेम और भक्तिका प्रदर्शन करते हुए

मांसाहार भी त्याग दिया। आपकी सेवाका गुण सराहनीय है। अधिक क्या लिखा जाय, आपको सेवाकी जीवित जागृत मूर्ति कहना चाहिए।

उडी—१३-६५ ता० ६-११-४५

पांच मील चलने पर **मोहरा** नामक पड़ाव आता है। वह नहर यहीं आकर दरियावमें डाली है। इसे प्रपात बना कर इससे बिजली उत्पन्न की गई है। यहां बिजलीका बहुत बडा यंत्र लगा हुआ है। श्रीनगरमें विद्युत्प्रकाश की सब सुविधाएँ यहीं से प्राप्त होती हैं। द्वार पर कड़ा पहरा रहता है, किसीके प्रवेशकी आज्ञा नहीं है। यंत्रोंकी रचना और विद्युत् शक्तिको देखकर मनुष्य दंग रहजाता है।

रावलपिंडीके पास वाले सदादपुर निवासी लाला **जयरामदासजी** खत्तरीने अपने स्वयंसेवकोंकी बड़ी ही लगनसे सेवा की, कड़ाह प्रसादका सत्कार ये भूलनेवाले नहीं है। उदार और सेवाभावी शत शत मुखोंकी प्रशंसाके योग्य होता है। सबको एक रात ठहरनेका आग्रह खूब ही किया, परन्तु शीतप्रधान प्रदेश होनेके कारण किसीका साहस न हुआ। यहां पानीके घोरनादसे अनहदनादकी समता की जा सकती है। आद्यशंकराचार्यजीने शायद अद्वैतवादका बोध ऐसे ही किसी स्थानसे पाया हो!

सन्ध्या तक उड़ीकी धर्मशालामें वास किया। स्थानकी सुंदरता वर्णनीय है। पंजाबी भाइओंकी कई दुकानें हैं। स्कूलके लड़कोंने बड़ा ही भक्ति प्रदर्शन किया। बहुत दूर तक छोडने आए। अयोध्याकी प्रजा जिस प्रकार वनवास जाते समय रामको दूरसे जाते

देखती थी, इसी प्रकार एक टीले पर चढ़कर महाराजश्रीको बहुत दूरसे देखते रहे।

चकोठा १३-७८ ता० ७-११-४४

यहां गुरु द्वारेकी पिछली कोठड़ीमें पुरालके घास पर शीतकी अतिव्याप्ति नहीं हुई। बड़े सुहावने दृश्य हैं। सिक्खोंकी आबादी पर्याप्त है।

हटियां ११-८९ ता० ८-११-४४

भाई ज्ञानचंद लखमीचंदके मकानमें आश्रय मिला। रातके समय व्याख्यान हुआ। परिणामस्वरूप कई भाईओंने मांसत्याग किया। यहां तारके रस्सेका पुल है। लोग बड़े साहससे आते जाते हैं, बोझ भार और घोडे तकको भी पार कर देते हैं। काम जोखम भरा है, परंतु इन पहाड़ियोंका साहस कुछ विलक्षणही है। बैठने वाली वस्तुको **मकोड़ा** कहते हैं, और रस्सेको इनकी परिभाषामें **नाड़ा** कहा जाता है। **'धर्मानंद कौशांबी तो शायद पजामेंका नाडा ही समझ बैठेंगे। तथा झूलेको कीडा मकोडा ही कहने लगेंगे'**। रात्रिमें व्याख्यान हुआ, कई सज्जनोंने मांस मदिराका प्रत्याख्यान किया। कई भाई बहुत दूर तक पहुँचाने आए। पहाड़ी लोग परदेशियोंमें शीघ्र मोहित हो जाते हैं, परन्तु परदेशी तो कट्टर निर्मोह होता है। किसीने कहा भी है कि—

दोहा—परदेशीकी प्रीतिको, सबका मन ललचाय।
अवगुण उसमें एक है, रहे न सँग ले जाय॥

गढ़ी—११—१०० ता० ९—११—४४

दरिया पार नगर वसता है। पुल भी है, परन्तु रातको आय व्यय

बंद कर दिया जाता है। रात्रिमें सब नगरके भद्र पुरुषोंने आकर व्याख्यान सुना। स्वयंसेवक इस व्यवस्थामें बड़े ही निपुण हैं। फल स्वरूप कई खतरियोंने मांस खाना त्याग दिया। यहां जेहलम की झर झर आवाज़ बहुत होती है। मनुष्य घंटों तक इस तमाशेको देखाकरे, परन्तु मन नहीं अघाता। मनुष्य इस झरनेसे स्थायी-भावका बोध भी पा सकता है।

दोमेल—१३-११३ १०-११-१२—११—४४

यहांसे एक सड़क मुज़फ्फ़राबादको जाती है, इस लिए इसका नाम दोमेल सार्थक है! कृष्णा नदी बड़ी दूरसे आकर यहां जेहल-ममें मिली है। इसलिएभी दोमेल नाम ठीक बनता है।

स्वयंसेवकोंने शहरमें मुनादी की और सबको जैन मुनिके पधार-नेकी ठीक समय पर सूचना मिली। अच्छे अच्छे भव्य नागरिक जन प्रवचनमें सम्मिलित हुए। तत्पश्चात् वहां के प्रमुख महाशयने सवेरेका व्याख्यान नगरमें करनेकी प्रार्थना की। तदनन्तर महाराजश्री और स्वयंसेवक समारोह पूर्वक सनातन धर्मसभामें आए। १। घंटा प्रवचन हुआ। कई भाईओंने मांसादि त्याग किया। दोमेल लौटते समय आकाशने अपना रंग बदला। बादल-सेनाने आ घेरा। बड़े प्रमाणमें सीकरें पडने लगीं। बचनेके लिए कोई स्थान न था। धर्मशालामें आकर ही त्राण पाई। फिर क्या था मुशलधार वर्षा होने लगी। जेहलम और वारिदलका युद्ध बढ़ता ही चला गया। अन्तमें चौथे दिन प्रातः होनेसे पहले ही अंधेरे २ वारिदल हार कर पलायन कर गया। जेहलमने विजय पाई। उसका रंग मारे प्रसन्नताके सुनहरी होगया। कृष्णा भी नीलमरंग की भेट देती हुई वर्धापनिका करती जाती थी।

सूर्य के नव प्रकाशने विश्वभर में स्वर्णिमकान्ति पोतदी। ऊँचे ऊँचे कूटोंने हिमकी सफ़ेद चादर ओढकर शुक्ल ध्यान की समाधि लेली। इनकी इस धवलिमा दीक्षाके बहिर्निष्क्रमणसे स्वयंसेवकोंका दल भय-भीत हो उठा और यह परामर्श किया कि कहीं कोह मरी पर हिम वर्षा न हो जाय? वरन् मार्ग रुक जायगा, और अवस्था चिन्तनीय हो जायगी। इसी बातका मानो निर्णय करनेके लिए सब स्वयंसेवक चले गए। तथा निर्णय लेकर नवीन दल सेवामें उपस्थित हो गया।

मध्यान्हका आहार करके श्रीमहाराजने भी विहार कर दिया। पर्वतीय मार्गमें यही विशेषता है कि पानी सब ढल जाता है और कर्दम नहीं होता। मार्ग तो मानो स्नान करके अपना देह सुखा रहा है, ऐसी भाव बताने लगा।

छतर—१३।१२५ ता० १३-११-४४

स्थान गुरुद्वारा, भाईजी भक्ति और प्रेमकी प्रकृतिके थे, श्रीगुरु ग्रंथसाहबका विसर्जन करके सबके लिए विश्रामकी व्यवस्था की। सबने ख़ूब आराम पाया। सत्य है अपना वैभव औरोंका बनाना ही मानव धर्मका अंग है।

बासियाँ ११।१३७ ता० १४-११-४४

सातमील चलकर पुल पार होते ही कोहाला दीख पडा। यह गवर्नमेण्टकी हद समझी जाती है। यहां सब की तलाशी ली जाती है। नियम विरुद्ध वस्तु मिलने पर कडा कारावास भोगना पड़ता है। परन्तु आँख मिचौलीका खेल यहां भी होता है। श्रीनगरकी सीमा यहीं समाप्त है। यह १३० मीलकी उतराई है। अब चढ़ाईका

आरंभ है। दरिया जेहलम वाम गतिको प्राप्त होकर अपना वियोग, वितान करता जाता है। कान झर झर शब्दके अभावमें शान्त हो जाते हैं। तनतोड चढ़ाई बढ़ती जाती है। कहीं कहीं समाश्वासन भी मिलता है। आख़िर हिम्मतका हिमायती राम है। वासियामें सब मौलाबख़्स हैं, रामनाथ कोई नहीं।

अलीओट १४।१५१ ता० १५-११-४४

इस पड़ावको नहीं भुलाया जा सकता, यहां तो सेवाभावकी मानो पुष्कल वर्षासी होगई। लाला मुनशीमल की प्रशंसा करते ही बनती है। शीतसे सुरक्षित रहनेके लिए पटवारख़ानेकी व्यवस्था कर दी। यह स्थान शीतप्रधान है। यहां शैत्यकी प्रबल प्रेरणासे भजन चिन्तनमें ही मन लगता है। उक्त लालाजीने अबाध सेवाका लाभ लिया।

कोहमरी—१२।१५३ ता० १५-११-४४

यहांके श्रीमानजीने यह सम्मति दी कि दो तीन मील की चढ़ाई अवश्य खराब है, परन्तु बहुत बड़े सारे चक्करसे बच रहोगे। तथा कोहमरी १२ बजनेसे पहले जा सकोगे। इस सुसम्मतिको मान देकर सड़क को छोडकर पगडंडी से चढ़ना आरंभ किया। कुछ दूर चलकर चढ़ाईका मुंह तो सुरसा आसुरीकी भाँति बढ़ चला। हम सब उसके उदरकंदरामें लुप्तप्राय होगए। परन्तु शीघ्र ही बादलोंसे सूर्यके सदृश बाहर आगए। अन्तमें थोड़ी सी उतराई उतरनेके पीछे सड़कको पा लिया। कोहमरीकी घोड़ा-गली दीख पडी। जानमें जान आई। एक बजते बजते मरी बाज़ारमें आकर ठहरे। बाज़ार और दुकानें पहाड़ी ढंगकी तथा सुंदरता पूर्ण हैं। सफ़ाई अच्छी है। ज़रासा काग़ज़ भी

सड़क पर पड़ जायतो दंड पाए बिना छुटकारा नहीं। लोग भयसे प्रेरित होकर भी स्वच्छता रखते हैं।

१०-१५ दुकानें जैनोंकी भी हैं, सब रावलपिंडी की हैं। अब सीज़न समाप्त हो चला है, अतः लोग हिमके भयसे नीचे उतरते जा रहे हैं। बाज़ारों और गलिओंकी शोभा नीरस होती जा रही है।

सुना गया है कि अंग्रेजोंने इस पहाड़को किसी समय ६०) में लिया था परन्तु अबतो करोड़ोंकी आयकी कामधेनु बना हुआ है। वे लोग यहां आकर रंग रलियां मनाते हैं और काले आदमी श्रम कर करके घुलते जाते हैं। यहांका दंडसंग्रह बड़ा कठोर है। बाज़ार हास्पीटल हाईस्कूल सैनीटेरीयम आदि सभी कुछ है। मरीकी उँचाई ७००० फ़िटकी उँचाईके लगभग है। शरदी अत्यधिक है। यहांसे रावलपिंडी तक उतराई ही है चढ़ाई को तो यहीं से दंडवत् कह दीजिएगा।

तरेट १४।१७७ ता० १७-११-४४

स्कूलमें अच्छी जगह मिलगई। हिन्दु-मुसल्मान भाइओंने मिलकर श्रीमहाराजका उपदेश सुना। एक सूबेदार यवन भाईने भावोंके उचानसे मांस खाना छोडा, कई हिंदुओंने भी। यहां शीत कुछ कम है। बहुत कुछ उतार हो चुका है।

रावल १८।१९५ ता० १८-११-४४

यहां रात भर के लिए आर्यगुरुकुलमें एक कमरा मिला। यह सड़कके किनारे पर बड़ा ही सुंदर स्थान है। ब्रह्मचारी और विनयी ब्रह्मचारी हैं, १५० के लगभग संख्या है। अध्यापकोंने श्रीमहाराजकी चरणसेवामें उपस्थित होकर धर्मचर्चाका लाभ लिया। स्वयं-

सेवकोंने रावलपिंडी जैनसंघकी ओरसे गुरुकुलके विद्यार्थिओंके लिए अनुमान १००) की खाद्य-सामग्रीका दान किया।

रावलपिंडी ७।२०२ ता० १९-११-४४

प्रातःकाल होनेसे पहले ही रावलपिंडीसे सेंकडों श्रावकोंकी भीड़ गुरुकुलमें हो गई, मार्गमें तो हज़ारों की संख्या बढ़ गई। बड़े समारोहपूर्वक श्रीमहाराजका नगर प्रवेश हुआ। मार्ग विशुद्धिके अनन्तर एक मुहूर्ततक व्याख्यान भी हुआ।

प्रातः कालके प्रवचनमें श्रोताओंकी संख्या शुक्ल पक्षमें चंद्रमा और समुद्रकी भरतीके समान बढ़ने लगी। लोग दूर दूरसे आने लगे, तथा महाराजश्रीके व्याख्यान से लाभ उठाने लगे। लोगोंकी असाधारण संख्या देखकर संघ को ध्वनिवर्धक यंत्रकी व्यवस्था करनी पड़ी। × × ×

रावलपिंडीकी जैनसंस्थाएँ

श्रीजैनउपाश्रय—यहाँ का जैनउपाश्रय तथा व्याख्यान-भवन दोनों विशाल हैं। मंज़िल भी तीन हैं। हजारों श्रोता प्रवचनका लाभ ले सकते हैं। नीचेके भागमें चार कक्षाकी प्राथमिक शिक्षाका जैन स्कूल है। इसके मुख्याध्यापक लाला पिंडीदास जैन हैं। पढ़ानेकी धुनमें मस्त रहते हैं। छोटे छोटे बालकोंको सुसंस्कृत बनानेके पूर्ण अधिकारी हैं। ये अद्वितीय पुरुष पात्र हैं। ऐसे अध्यापक सद्भाग्य से मिलते हैं।

श्रीमहावीर जैन मॉडर्न हाईस्कूल—अबतक मरीरोड़पर किराएके मकानमें कथित जैन हाईस्कूल है। अनुमान ६०० से अधिक, सब जातिओंके लड़के पढ़ते हैं। इसके आचार्य [हेड मास्टर]

श्रीमान् पिंडीदास जैन B. A. B. T. बडे ही सुयोग्य विद्वान् हैं। आप जैन फ़िलॉसफ़ीके अच्छेसे अच्छे अभ्यासी हैं। आपने इसे जबसे सँभाला है, कार्य सन्तोषजनक है। परिस्थितिको तो अच्छे ढंगसे सुधार लिया है। श्रीमान् स्वर्गीय लाला रोचीशाह जैन ओसवालकी माता तथा उनकी धर्मपत्नीने जैन हाईस्कूलकी बिल्डिंगके लिए, श्रीमहाराजके व्याख्यानके अनन्तर ४०००० रु० दानकी घोषणा की, तथा ४०००० रु० मालियतकी ज़मीनका दान भी किया है। आशा है जैन हाईस्कूल अपने विलक्षण ढंगसे कार्य-परिणत होगा। पंजाबमें समुन्नत दशामें समासीन जैन हाईस्कूल यह एक ही है। यहांकी जैन समाजका उत्तम सहयोग है। कार्य सन्तोषजनक है।

जैनकन्यापाठशाला—४०० से अधिक कन्याएँ हिन्दीकी शिक्षा पाती हैं। ४०००० रुपयेकी लागतकी बिल्डिंग जग्गी महल्लेमें है २०-२२ अध्यापिकाएँ हैं। शिल्पकला, पाकक्रिया आदिका अभ्यास भी कराया जाता है। आठ कक्षा तक हिन्दीकी पढ़ाई होती है। थोडासा धर्मका अध्ययन भी होता है। कार्यकी अपेक्षा बिल्डिंगको देखकर प्रसन्नता होती है। जैन अध्यापिकाएँ कम मिलती हैं।

जैनपुस्तकालय—सहस्रों पुस्तकोंका संग्रह है। स्वाध्याय करनेवालोंके लिए अनुकूल संयोग प्राप्त है।

जैनरीडिंगरूम—इसमें ५० के लगभग समाचारपत्र आते हैं, पढ़नेवालोंकी भीड़ खासी लगती है।

जैन औषधालय—जैन बाज़ार तथा उपाश्रयके नीचे ही यह संस्था

है, दोनों समय सैंकड़ों रोगी आरोग्य लाभ लेते हैं। अभेदरूपसे चिकित्सा-निदान किया जाता है। औषधिएँ बहुमूल्य बनवाई गई हैं।

जैन सुमति मित्र मंडल—इसमें एक विशाल शास्त्रभंडार है। अहिंसाप्रचार-कार्य इसी संस्था द्वारा अधिकृत है। कई भाषामें **'गोहरेबेबहा'** छपवाकर अमूल्य वितरण किया जाता है। यह पुस्तक भारतके कोने २ में पहुँचाई गई है। सब संप्रदायोंके लिए उपयोगी वस्तु है। इसमें अहिंसाका विषय भली भाँति समझाया गया है।

जैन रात्रिपाठशाला—इस संस्था द्वारा हिन्दी और धर्मविषयक प्रचार हुआ है।

जैन लिटरेरी लीग—इस संस्थाने जैन साहित्यको अनेक भाषाओंमें छपवानेका निश्चय किया है। महाराजश्री द्वारा लिखित **'परदेशीकी प्यारी बातें'** आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके कार्यकर्ता उत्साही हैं।

जैनकुमारसभा—कुमार सभा क़दर करनेयोग्य है। कुमार-बालकोंकी योग्यता बढ़नेका प्रचार क्षेत्र है।

श्रीजैनशिरोमणि बिरादरी—यह सभा २०० घरोंकी प्रमुख सभा है। इसके कार्यकर्ता बड़े ही सुघड़ हैं। उलझे हुए कामको घंटोंमें सुलटा लेते हैं। इसका न्याय सबको मान्य होता है।

S. S. **जैनसभा**—जनरल इजलास इसीकी प्रेरणाका फल है, इसके अधिकारमें सब संस्थाएँ हैं। इस सभामें दीर्घसूत्रता नहीं है।

जैनआखाड़ा—यह संस्था मरीरोड़ पर है, इसमें युवक और बालक वर्ग सायं प्रातः व्यायाम करने आते हैं। अनेक आश्चर्यजनक एवं

चित्ताल्हादक कर्त्तब सिखाए जाते हैं। कर्त्ता बलवान् और नीरोग हैं। समाजकी शोभा शारीरिक शक्तिभी है। सन् १९२६ में इन जैन-वीरोंने ही अपनी और हिन्दुओंकी जान बचाई थी।

जैन बाजार–जहां अपने जैन भाइओंकी दुकानें और क्रय विक्रय होता है, उसे जैनबाज़ार कहते हैं। सर्राफ़ा बजाजा अदि सब प्रकार का व्यापार होता है। लोग सम्पन्न सुखी एवं उद्योगशील हैं।

जैनमहल्ला–जहां ओसवाल जैन रहते हैं, उसे पंजाबी भाषामें **'भाबडखाना'** कहते हैं। ओसवालोंको **'भाबड़ा'** कहा जाता है। किसी समय मूलसंज्ञा 'भावबड़ा' रही है। इसका अपभ्रंश भाबड़ा बन गया है। यह महल्ला त्र्यंस (सिंघाडे) के आकारका है। इसके तीन लोहद्वार हैं। रातको बंद हो जाते हैं। जैनोंके अतिरिक्त किसीको नहीं बसाया जाता। इसमें दो कूवे भी हैं। पानीकी चिन्ता नहीं। यह अजेयगढ सब प्रकारसे सुरक्षित है। आपसमें सबका सम्प है।

जैनडॉक्टर—लाला लालचंद डाक्टर, डाक्टर अमरनाथ, डाक्टर ऋषभचन्द्र, वैद्य रवेलचंद, आदि १०-१२ जैन डाक्टर हैं। होमियोपेथिक, एलोपेथिक और वैद्यकशास्त्र निष्णात हैं। प्रेमी हैं, सेवाका भाव रहता है। इन सबका कार्य सन्तोषप्रद है।

जैनसमाज–आपसमें पूर्ण एकता प्राप्त है, संघपतिके आज्ञानुवर्ती हैं। रावलपिंडी और जम्मूके अतिरिक्त इतनी ऐक्यता अन्य स्थलोंके जैनोंमें कम पाई गई है। यहां की जैन समाज सब बातोंमें लायक़ है। लोग दंडसंग्रहमें चतुर और कुशल हैं।

जैनोंकी गुरुभक्ति—यहांका समाज मुनिओंका अद्वितीय भक्त है, साधु मुनिराजोंकी सब आज्ञाएँ पूर्ण करते हैं। चतुर्मासकी विनती करनेके लीए हज़ारों रुपयेका व्यय करके सैंकड़ों श्रावक पंजाबमें जाया करते हैं। परन्तु पंजाबी मुनिओंपर खेद होता है, कि वे इस क्षेत्रमें प्रतिवर्ष चतुर्मास करनेकी कृपा नहीं करते। कितनी सुस्ती है। आशा है, भविष्यमें मुनिराज ऐसी ग़लती न करेंगे। यह क्षेत्र प्रतिवर्ष विद्वान् मुनिराजोंसे अलंकृत रहना चाहिए।

जैनोंकी वीरता—यहांकी जैन जाति वीरपूर्णा है। शारीरिक और संघटित शक्तिमें इसने जगतीमें खूब नाम पाया है। अमृतसर-जालंधर और अजमेरमुनि सम्मेलनके अवसरपर इन्होंने अच्छे हाथ दिखाए हैं। इनके स्वर्णिम कार्य अमरसाहित्यमें अंकित हैं। आशा है अन्य क्षेत्रोंकी जैनजातियाँ भी इनका अनुकरण करें। क्योंकि सबसे बड़ा पाप कायरताही है।

जैनोंकी उदारता और दानवीरता—यहां के जैनोंमें दानवीरता का गुण सर्वोपरि है। प्रत्येक सामाजिक एवं धार्मिक कार्योंमें अपनी जेबोंसे महालक्ष्मीको मेंहके समान बरसाते हैं। जिस कार्यमें उद्यत होकर लगते हैं, उसे पूर्ण करते हैं। उत्साह, धैर्य, शौर्य, वीर्य और प्रामाणिकता आदि इनमें सभी कुछ है।

जैन वीरांगना—जैन महिलाओंको वास्तवमें वीरांगना कहना चाहिए। ये मारवाड़नियोंकी तरह डरपोक नहीं हैं। अपने दोनों जनाने उपाश्रयोंमें उभय काल धर्म ध्यान करती हैं, और इन्होंने आपत्कालमें बड़े २ हाथ दिखाए हैं। सन् १९२६ में इनके द्वारा

कई वीरताके कार्य सम्पन्न हुए तथा समाजकी प्रतिष्ठामें धब्बा नहीं आने दिया है।

जैनाश्रम—बाहरसे आए जैन अतिथि **'जैनाश्रम'** में विश्राम और सुख पाते हैं। समाजकी ओरसे उच्च कोटीका **'आतिथ्य स्वागत'** किया जाता है। इतनी सेवा मैंने पंजाबभरमें **रावलपिंडी और जम्मूके** अतिरिक्त अन्य क्षेत्रोंमे कम देखी है। अधिक क्या लिखा जाय रावलपिंडीका जैन समाज सब गुणोंमें सोलहकला समृद्ध है।

अजैन बांधवोंकी मुनि भक्ति—यहां की जैनेतर जनता जैनमुनिराजोंमें अपूर्व श्रद्धा रखती है। हज़ारोंकी संख्यामें प्रतिदिन व्यवधान रहित लाभ लेते हैं। आहारादि प्रदान करके अपनेको भाग्यशाली समझते हैं। मुनिवरोंके उच्च चरित्रगुणपर इन्हें बड़ा गर्व होता है। माता और बहनेंभी असंख्य संख्यामें व्याख्यान सुनती हैं। अधिक क्या लिखें यह फरंटियर प्रदेश श्रद्धा और प्रेमकी साक्षात् प्रतिमूर्ति है।

कराचीसे विनती पत्र—इन्हीं दिनोंमें कराची से श्रीश्वेतांबर स्थानकवासी जैन संघका **'चातुर्मासिक प्रार्थना'** संबंधी **तीसरा** प्रार्थना पत्र आया। जैन संघकी ओर से यह विज्ञप्ति की गई थी, कि बहुत वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, साधुमुनिराजोंका चतुर्मास नहीं हो रहा है इस सिंधके द्वारको चम्पापुरके द्वारकी तरह आपने ही खोला है अतः आपके विना इस क्षेत्रकी सुध और कौन ले सकता है, किसका साहस है, जो कठिन परिषह सहकर **'ज्ञातपुत्र श्री महावीरका संदेश'** सिंधके अनार्य लोगोंके अन्तरतक पहुँचाएँ। कराची संघ आपका उपकृत है। वह आपके विना जलके अभावमें मछलीके समान तड़प रहा है। इसलिए कराची क्षेत्रको पवित्र

करें और शान्तिमय किरणकी उज्ज्वलतासे संघको प्रकाशित, तथा संघके कार्य क्षेत्रका वितान करें। साथ ही सिंध जैसे अनार्य प्रदेशमें अहिंसाके प्रचार द्वारा मानवोंको मानवधर्मकी झाँकी कराएँ। इस क्षेत्रमें आप जैसे मुनिपुंगवकी ही आवश्यकता है। अतः सिंधमें द्वितीयावृत्तिके रूपमें पधारकर जैन संघको अनुगृहीत करें।" इत्यादि करुण प्रार्थना को पढ़कर महाराजाधिराजका मानस द्रवीभूत हो गया। तथा श्रीमान् शेठ रामदासजीको आज्ञा की कि "कराची संघको आगामी चतुर्मासकी स्वीकृतिकी सूचना टेलीग्राम द्वारा पहुँचा दी जाय" उन्होंने उसी समय आज्ञाका पालन किया। उत्तरमें कृतज्ञताकी सूचना कराची संघकी ओरसे आगई।

इस प्रवृत्तिका पता जैन संघ रावलपिंडीको लगने पर उनके मनको बड़ा आघात पहुँचा। तथा श्रीगुरुदेवके चरणोंमें विनय की कि 'इस फ़रंटियरकी उपलभूमिमें कई वर्षोंके बाद संतजन कभी कभी आनेकी कृपा करते हैं, अतः यहां शीघ्र ही सुकान पड़ जाता है। तीन वर्षसे कोई भी मुनिराज नहीं आए। और यह आया हुआ मोदका का ग्रास छिन रहा है। यह हम पर बडा अन्याय हो रहा है। इसलिए इस वर्ष यहां ही चतुर्मास काल बितानेकी कृपा करें। अन्यथा युवकलोगोंमें कई प्रकारकी विकृति उत्पन्न होनेकी संभावना है। आपके विना युवकोंका सुधार होना कठिन है। इस प्रकार बहुत ऊहापोह होनेपर श्रीमहाराजने उत्तरमें यह फर्माया कि **'मैं रावलपिंडी जैन संघकी बडी क़दर करता हूं। मेरे दिलमें संघकी प्रतिष्ठा है।** साथ ही मुझे तो किसी भी संघका प्रार्थना पत्र मिल जाय तो मैं कभी इन्कार नहीं करता। इस संबंधमें विनतीके लिए सैंकड़ों श्रावकोंका आना

S. S. जैन सभाके प्रमुख पद भोक्ता.

WILAYATI RAM JAIN

PROPRIETOR — MAYA SHAH & SONS,

EDWARDS ROAD, RAWALPINDI.

रखनेवाले जिज्ञासु बांधव हैं। आपके व्यावहारिक गुण स्पृहणीय हैं, आपके आग्रहसे पूज्यपादश्रीने दो दिन निवास किया।

सुहावा ११।२४६ ता० २८-१२-४४

रोहतास निवासी मास्टर प्यारेलाल और रोहतासगढ के बहुतसे श्रावक सामने आए। मास्टरजीमें भक्तिभाव तो १६ कला सम्पन्न है। आपके प्रयाससे सब नगरनिवासियोंने व्याख्यान सुना।

दीना १७।२६३ ता०२९-१२-४४

रोहतासवाले दूनीमलके कमरे में ठहरनेकी व्यवस्था।

जेहलम ११।२७४ ता० ३०/३१।१२।४४

जैनोंकी बस्ती कम है। १५-१६ घर ही हैं। जैन उपाश्रय नया ही बना है। जैन व्याख्यान हॉल भी है। रावलपिंडी जैन संघने उदारतापूर्वक दानमें २०००) से अधिक दान किया है।

चोआकडियाल ५।२७९ ता० १।१।४२

मास्टर पं० ब्रह्मदत्तने ऑयलरूम का कमरा प्रेमसे रहने को दिया। रात्रिमें धर्मचर्चाके लिए स्टेशन मास्टरने स्वयं गीताका प्रसंग छेडा, और प्रार्थना की, कि गीता और उस सिद्धान्तके विषयमें हमारी अटल श्रद्धा है। आजकल इसका अनेक भाषाओंमें अनुवाद और प्रचार बडे ज़ोरों पर है। जगह जगह गीता भवन बनवाए जा रहे हैं। गीताके संबंध में आपका क्या मन्तव्य है।

श्रीगुरुदेव—देवानुप्रिय! गीताको सन्मतिकी कसौटीसे कसने पर पता चलता है, कि—गीतामें आत्मा, ईश्वर और जगत्के स्वरूपका

प्रमाणपूर्वक कुछ भी विचार न करके सीधे ही यह कह डाला, कि आत्मा भगवानका अंश है, ईश्वर एक अद्वितीय चेतन तत्व है, जो जगत् का एक मात्र कर्ता धर्ता और हर्ता है! जगत् ईश्वरके अधीन रहनेवाली प्रकृतिका कार्य है। इस प्रकार माननेके पश्चात् उसके अनुसार कर्तव्य या साधनका विधान किया है और उसके फलरूपसे परलोक-संबंधी गतिका उल्लेख किया है। इन सिद्धान्तोंकी **समालोचना** इस प्रकार है।

गीतामें किसी भी विषयको युक्ति पूर्वक सिद्ध नहीं किया गया है। दृष्टान्तके लिए पहले आत्माका स्वरूप प्रमाणित करके, फिर उसके नित्यत्वादि धर्मोंका उल्लेख करना था परन्तु गीतामें आत्मा का स्वरूप कैसा है! वह स्वयं ज्ञानस्वरूप है या ज्ञानका आश्रय! यदि ज्ञान स्वरूप है, तो भी क्षणिक है, या नित्य! एक या अनेक! यदि ज्ञानाश्रय है, तो भी वह स्वरूपतः ज्ञानरूप गुणसे युक्त है, या वह ज्ञानरूप परिणामसे युक्त, अथवा ज्ञान और अज्ञान दोनों ही उसके परिणाम हैं! या वह ज्ञानस्वरूप होकर ज्ञानधर्मयुक्त है! आत्माका लक्षण क्या है! देहमें कहां तक किस प्रकारव्याप्त है। इन सब विषयोंका गीतामें कुछ भी वर्णन नहीं है। जीवात्माको केवल ईश्वरका अंश कह कर छोड दिया है। परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया, कि देश और काल से अतीत जो मूल तत्व है, उसका अंश कहनेसे क्या अभिप्राय है! इस अंश शब्दके अनेक अर्थ हो सकते हैं। जो कि अणुवादी ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं। अणुवादीके विरोधी अन्यवादियोंने भी, इसके कई अर्थ किए हैं। इन सब विषयोंका स्पष्टीकरण किए विना ही केवल

'ममैवांशो' कह देनेसे जीवात्मा का कोई स्वरूप समझमें नहीं आता, आठ या तीन प्रकारके आत्माओंमेंसे गीताकार किस आत्मासे सम्मत हैं। यह गीता पाठसे नहीं पता चलता।

इसी प्रकार गीतामें इस जगत्के मूलतत्वको विना कार्य कारण भाव का निर्णय किए ही एक विशेष प्रकार का ईश्वराधीन प्रकृति मान लिया है। इस जगत्में पाए जानेवाले पदार्थका स्वरूप ध्रुव है, या उत्पाद है, या व्यय तथा त्रयात्मक है, इत्यादि कुछ भी निर्णय नहीं किया है। जिससे इस जगत्प्रवाह का निश्चित प्रकारसे अनुमान किया जा सके। यदि इस जगत्के कारणको पुद्गलका पर्याय अवस्थान्तर माना जाय तो क्या हानि है? तब तो गीतामें कहे हुए ईश्वराधीन प्रकृतिकी अलीकता मिट जाती। उक्त प्रकारके परमाणुवादके माननेकी कितनी आवश्यकता है, या इसके माननेमें क्या दोष है। इसका कारण बताना तो दूर रहा, गीतामें इन विषयोंको छुआ तक नहीं है। इन बातोंका उल्लेख ही नहीं है। गीतामें प्रकृतिवादको ही क्यों मान लिया गया, तथा प्रकृतिको स्वतन्त्रगुणरूपमाननेमें क्या दोष है। अनन्त आत्मा और वह भी अनन्त ज्ञान गर्भित मानने क्या हानि है, (ऐसा मानने पर ईश्वरकी अपेक्षा नहीं रहती) इत्यादि विषयोंका कोई भी कारण न बताकर केवल दूसरे मतोंका सर्वथा निषेध कर डाला, उन्हें किसी भी प्रकार से न्याय न देना गीताकारकी कितनी स्खलना है।

गीतासम्मत प्रकृति ईश्वरसे भिन्न और उसके द्वारा नियमित, अथवा वह अद्वितीय चेतनकी शक्ति, या परिणाम-गुण-विलास अथवा निर्विशेष चेतनमें अध्यस्त, क्या है! इसका कुछ भी निर्णय नहीं किया है। ईश्वरको मानने वाले अनेक सुप्रसिद्ध सम्प्रदायों के होते हुए भी

ईश्वरको सिद्ध करनेवाले प्रमाणोंका संग्रह नहीं किया गया है। ईश्वरको माननेवाले सम्प्रदायोंमें भी परस्पर नाना विरोधी मत हैं। उनमेंसे गीताकार को कौनसा मान्य है। और अन्य क्यों माननीय नहीं। इत्यादि अत्यन्त आवश्यक विषयों का प्रतिपादन ७०० श्लोक वाली गीतामें कहीं भी नहीं पाया जाता।

'प्रकृतिका अध्यक्ष ईश्वर' उसका केवल निमित्तकारण है, या वास्तव अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है, अथवा अवास्तव अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है (इस वादमें अवच्छेदवाद-प्रतिबिंबवाद-आभासवाद-और एक जीववाद आदि गौण भेद हैं) इसका भी कुछ निर्णय नहीं है। प्रकृतिका ईश्वरके साथ किस प्रकारका संबंध है, संयोग-समवायस्वरूप या तादात्म्य ! इत्यादि आवश्यक विषयोंका कोई वर्णन नहीं है। यदि गीताके भगवान्‌का गीता-उपदेश से यह अभिप्राय हो, कि इससे संसार के सभी मनुष्य धर्मके यथार्थ रहस्य को समझकर, उसके अनुकूल आचरण करें, तो साथ ही यह प्रदर्शन करना भी आवश्यक होगा कि एक मात्र गीतासम्मत सिद्धान्त ही क्यों मान्य है, अन्य विरुद्ध मतोंमें क्या दोष हैं ! जब तक कि परस्पर विरोधी अनेक मतोंमेंसे किसी एक को ग्रहण करते समय अपने मतके अनुकूल और अन्यमतोंके प्रतिकूल प्रमाणोंका प्रदर्शन नहीं किया जाता, तब तक केवल अपने सिद्धान्तके कथन मात्रसे ही विशेषज्ञोंको संतोष नहीं हो सकता।

गीतोक्तसाधनसमालोचना—देशकालातीत तत्वका स्वरूपतः ध्यान होना कठिन है। चित्तके विषयका बाह्य विषयके साथ कोई संबंध न होनेसे भी हमारा ध्यान व्यक्तिगत कल्पना मात्र होगा;

ध्यानजनित जो कुछभी अनुभव होता है, वह अपनी भावनाका परिणाम है, (ईश्वरका परिणाम खंडित हो चुका है) तत्वका भान चिद्वृत्तिमें संयुक्त होकर चेतना शक्ति द्वारा होता है ईश्वर कृपासे नहीं। चिद्वृत्ति किसी पदार्थके स्वरूपको गुण पूर्वक ही ग्रहण कर सकती है, विना गुणके जानना असंभव है, अतः यह भी मानना होगा, कि तत्त्व वास्तवमें एकाग्र चित्तके अनुभव का विषय भी किसी न किसी विशेषणसे युक्त अवश्य होगा। वृत्ति यदि अपने विशिष्ट स्वभावको त्याग दे, तो यह क्रियासे रहित होकर अपने कारण स्वरूपमें लीन हो जायगी, तथा उसके अस्तित्वका भान न रहेगा। ऐसी अवस्थामें किसी वस्तुका अनुभव नहीं हो सकता (जैसे कि निर्विकल्प सपाधि-सहज समाधि में होता है) इसलिए यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि तत्त्वका अनुभव करते समय चित्तवृत्ति अपनी पूर्व शिक्षा और संस्कारोंके दृष्टिकोणसे ही उसे ग्रहण करेगी, अर्थात् उसको जो कुछ भी अनुभव होगा वह चित्तकी तत्वविषयकवासनाके प्रभावसे शून्य न होगा। अतः अपनी शिक्षा और संस्कारके अनुसार वह तत्वके स्वरूपको जैसी कल्पना कर लेता है, पहलेसे लेकर सविकल्प समाधि-सावरण केवलज्ञान पर्यन्त वह उसीका अनुभव करता रहता है। अत एव साधनाको तत्व विषयक मानकर जो गीतामें नानाप्रकारसे उसके फलका वर्णन किया है, वह सरासर विचारविरुद्ध और अनुभव विरुद्ध तथा कल्पना मात्र है, उस साधनाके साथ पारलौकिक फलके कार्यकारण निमित्त नैमित्तिक संबंध का निर्णय न करते हुए, गीतामें सीधे ही विचार रहित मुक्तिकी कल्पना कर ली गई है। जब कि हमारी मानसिक भावनाका उस भावित विषयके साथ कोई संबन्ध

सिद्ध नहीं हो सकता, तब मृत्युके पीछे भावनाबलसे अपने भावित विषय (ईश्वर) की प्राप्तिका सिद्धान्त भी सर्वथा विचार विरुद्ध और कल्पना मात्र है ।

इसी भाँति गीतामें कर्म नियमपर निश्चय करनेका कोईभी कारण न दिखाते हुए उसके संबंधमें केवल नाना विध कल्पनाएँ की गई हैं। विना प्रमाण और विना विचारके ही कर्म-नियमको मानकर उसे गहन करनेकी अपेक्षा ऐसा कहना अधिक सरलता का सूचक है, कि जगत्में पाई जाने वाली इस विचित्रताका निर्णय गीता नहीं कर सकी। जिससे देशमें श्रद्धान्धतामूलक साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न हो कर कलह और अशान्ति के फैलनेका अवसर न आता ।

सारांश यह कि गीतामें आत्मा, ईश्वर और प्रकृति, इन दोनोंका आपसमें संबन्ध साधनाका मूलतत्त्वसे सम्बन्ध और उसके फलस्वरूप मुक्ति आदि विषयोंको प्रमाण द्वारा सिद्ध न करके केवल घोषणा मात्र की गई है । अतः गीतामें वर्णित विषयोंको प्रमाण पूर्वक स्थापित न होनेसे उनको सिद्धान्त न कह कर केवल कल्पनामात्र कहना होगा।

गीताके मतको प्रमाणभूत मानकर उसे युक्ति पूर्वक सिद्ध करनेके लिए दार्शनिक विद्वानोंने भरसक प्रयत्न किया है परन्तु वे इस प्रयत्न में सर्वत्र असफल रहे हैं। इत्यादि भाववाही विषयको सुनकर मास्टर-महानुभावने सन्तोष और कृतज्ञता प्रगट की ।

खारियां—७।२८६ **ता०२-१-४५**

मार्गमें कई मीलका जंगल पडता है इसे यहां की भाषामें 'पब्बियाँ' कहते हैं। प्राकृतमें पर्वतका अपभ्रंश है। मार्गमें मिलिटरीकी गाड़ीकी टक्कर लगनेसे मेरा पात्र टूट गया, परन्तु मैं बच गया बाल बाल।

ये लोग गाडिएँ निर्दय और उन्मत्त होकर चलाते हैं। इनकी दाद फ़र्याद भी नहीं होती। यहाँ ठहरनेके लिए सनातन धर्मसभा का ऊपर वाला कमरा ख़ाली था।

लालामूसा–११।२९७ ता० ३-४-५।१।४५

वर्षाका उपद्रव तीन दिन तक रहा। आर्यसमाजमंदिरकी कोठरी कच्ची थी। सरदीकी मात्रा चोटी पर जा चढी थी। श्रीकिरसननाथकी समाधिके अधिष्ठाता महंत श्रीविरखानाथजी महानुभाव में सेवाभाव और विनयकी मात्रा उत्कट रूपमें है। आप जैन मुनिओंके असाधारण भक्तशिरोमणि हैं।

गुजरात–१२।३०९ ता० ६।१।४५

वजीराबाद–१०।३१९ ता० ७-८।१।४५

लाला लादुमलजी सर्राफ़के मकानमें निवास किया। दो दिन वर्षाका उपद्रव सीमोपरान्त रहा। मानो शैत्यका शैशव समाप्त होकर जवानी आई है। दीन और अर्धनग्न लोगोंके घर धूनी जलाई जाने लगी। वे अपवस्त्र-निहत्था-मुक़ाबला कर रहे थे, तथा यह शीत उनपर अनीतिके सफ़ेद अणुबम गिरा रहा था। अंगीठीका धूआँ उनके गर्म अश्रू कणोंको बाहरकी ओर धकेल रहा था।

शोहदरा–५।३२४ ता०९-१-४५

लाला ताराचंदकी साधुसेवा विशेष उल्लेखनीय है, गुरुद्वारेकी, ज़ीनेके पास ऊपर वाली कोठड़ीमें सीधी हैमक वायु छन छन कर आती थी। रात भर आनँद मंगल बरसता रहा।

संबड़िआला–१०।३३४ ता० १०-१-४५

लाला सीतारामजी, बस्तीका दान सब साधुओंकेलिए अभेद रूपसे करते हैं।

उगोकी—८।३४० ता० ११-१-४५

स्यालकोट पधारनेकी अनिच्छाके कारण स्यालकोट-छावनी का मार्ग खोज रहे थे, परन्तु **उगोकी** स्टेशनके पास स्यालकोट-जैनसंघ मोर्चासा बांधकर बैठाथा जिसका नेतृत्व श्रीमान लाला मोतीशाह जैन (रईसे आज़म) कर रहे थे। सबने उठ कर श्रीसद्गुरुदेवकी चरण वन्दना की, साथ ही स्यालकोट पधारनेकी प्रार्थना भी। श्रीमहाराजने फ़र्माया कि चतुर्मास करनेकी जल्दीके कारण कराची शीघ्र पहुँचना है, आपका भक्तिबहुल क्षेत्र है, स्यालकोटमें आप अधिक दिन ठहरानेका प्रयत्न करोगे और समय इतना है नहीं, अतः आपके क्षेत्रका स्पर्शन-करनेमें औदासीन्य भाव है। सेवामें श्रीमान् लाला मोतीशाहने निवेदन किया कि, आप जितने दिन उचित समझें रहें, परन्तु अपने दर्शन और बोधवाणीसे नितांत वंचित न रखें। श्रीमहाराजका नवनीतके समान सुकोमल हृदय पसीज गया, और स्यालकोट स्पर्शन करनेकी आज्ञा सुनाई। फिर क्या था? इतने सुंदर शब्दोंके निकलते ही स्यालकोट जैन संघको तो मानो खोया हुआ निधान मिलगया। सबको अपार सन्तोष प्राप्त हुआ। दिनका थोड़ा भाग रहनेके कारण पासके उगोकी ग्राममें सनातन धर्मसभामें ठहर गए। रात्रिके समय उपदेश वर्गणा भी बखेरी। इससे अबोध लोगोंमें हर्ष और उल्लासका पार न रहा।

स्यालकोट ६।३४६ ता० १२-१३-४६

बाल-वृद्ध-युवकोंका दल का दल बनकर सामने आने लगा, हज़ारों नर नारी सन्मुख आकर जयनादसे आकाश को मुखरित करने लगे। यहां ओसवालोंके ३०० से अधिक घर हैं। सुन्दर

जैन पुरी है। एक ही महल्लेमें सब मिलकर रहते हैं। यहां के श्रावक प्रकृतिके बडे विलक्षण हैं। मुनिवर्गकी सेवामयी उपासनामें लगे रहते हैं। श्रीमहाराज जन घरमें पधारे।

श्रीमहाराजके दो व्याख्यान जन घर एवं एक जैन उपाश्रयमें हुआ। उपाश्रयमें प्रवचनके उपरान्त श्रीमान् लाला कर्मचंदजी महाशय गुप्ताने [ये बडे ही ख्यातिप्राप्त धनाढ्य एवं नगरशेठ हैं। सम्पन्न होनेपर भी जैनमुनिओंके विशेष सेवक हैं। उदारताके नाते अपने धनके व्ययसे आपने एक मस्जिद भी बनवा दी है।] श्रीमहाराज तथा जैन संघसे यह विनय की कि "एक दिनका उपदेश मेरे गेस्टहाउसमें भी करनेकी कृपा करें, ताकि उन गली और महल्लेके भक्त लोगोंको महाराजश्रीके वचनामृत मिलें। श्रीमान् नगरशेठ की इस प्रकार विनती करने पर लाला मोतीशाहने उठ कर विनीतभावसे उक्त लालाजीकी प्रार्थना को श्रीचरणोंमें फिर दुहराई। भला महाराज श्रीके दरबारमें झोली फैलानेवाला कभी खाली जा सकता है! श्रीप्रभुने तुरंत स्वीकृति दी।

ता० १३-१-४५ को प्रातः समय जैनधर्मकी विशेषताओंपर २५०० मनुष्योंने उत्कृष्ट-प्रवचन सुना। मानव मेदनी मंत्रमुग्ध सी हो गई। तदनन्तर महाराज साहेब उक्त लालाजीकी अधिक भावना देखकर उनके घर आहारार्थ पधारे थे।

स्यालकोट छावनी–३।३४९ ता० १४-१-४५

श्रीमान् लाला चुनीलालजी महानुभावके अनुनय-विनय पर आपके हाँडा प्रेसमेंपधारे। ऊपर छोटासा मकान बड़ा रमणीय है, उसीमें

पधारे । श्रीमहाराजने यहां भी दो बार जिनवाणीका नाद प्रतिध्वनित किया । नगर और छावनी के सैंकडों नरनारियोंने लाभ लिया ।

श्रीमान् पं० नृसिंहदेव शास्त्री तथा उनके सुपुत्र पं० चंडीदत्त शास्त्रीने साधुसमागममें आकर विशेष लाभ लिया । हाँडा प्रेसके अधिपति लाला चुन्नीलालजी मुनिराजोंके अजोड़ भक्त और अनुरागी हैं। सेवाका अनल्प-भाव है । तन मनसे सच्चे प्रेमी हैं । आपका समस्त कुटुंब जिनशासनका पूर्ण अनुरागी है । आपके सब पुत्र-पुत्री आदि विनीत-सदाचारी एवं नम्र प्रकृतिके अनन्य भावुक हैं ।

सचेतगढ़—१०३५९ ता० १५-१-४५

कस्टम हॉऊसमें रात बिताई, जम्मू स्टेटकी सीमाका आरंभ यहीं से होता है ।

नवाशहररनबीरपुर—५।३६४ ता० १६-१-४५

जम्मू जैनसंघ और स्यालकोट जैन संघने मिलकर यहां मध्य-बाज़ारमें सुन्दर दो-मंज़िला उपाश्रय बनवाया है । सैंकडों श्रावकों की भीड़ लग गई । जम्मू संघ मुनिराजोंका अश्रुतपूर्व गुणग्राहक है । मुनिराजोंके आगमनको सुनकर इन्हें चाव चढ़जाता है ।

जम्मू—१४।३७८ ता० १७ से ३-२-४५ तक

बड़े उत्सवसे नगरप्रवेश हुआ । ज्ञातपुत्र महावीर भगवान् के जयनाद से जम्मूकी गलियां प्रतिध्वनित हो उठीं ।

अगले दिन 'वसन्त' विषय पर श्रीगुरुदेवका धर्म और व्यवहार की दृष्टिसे मनोहारी और वैराग्यप्रद प्रवचन हुआ । तदुपरांत भाई तिलक चंद ने श्रीमहाराजके सन्मानमें एक भावपूर्ण गद्यकाव्य पढ़कर सुनाया, जिसे सुनकर लोग गदगदाय मान हृदयसे उक्त योग्यता पर बड़े प्रसन्न हुए । यह पढ़ो इसका गद्य काव्य ।

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

श्रीसत्यसनातनजैनधर्मप्रचारक, जगद्वन्द्य, पूजपाद,
अखिल साधुशिरोमणि, आदर्शमुनि, ज्ञान दाता,
श्रीज्ञातपुत्रमहावीर जैनसंघीय, प्रसिद्ध-
जैनधर्मोपदेष्टा, श्रीमज्जैनमुनि,
फूलचंद्रजी महाराजके पवित्र
पदपंकजमें,

श्रद्धाके पुष्प

श्रद्धेय गुरुदेव! आज वसन्तोत्सवके शुभ अवसर पर जब कि समस्त जगती आनन्दकी मस्तीमें विभोर है। आपके पदार्पणने हमारी प्रसन्नताको लक्ष गुणित कर दिया है। कश्मीर विहारके पश्चात् आपका यहां पधारना हमारे लिए अति हर्ष और बधाईका प्रसंग है। भगवन्! अब आप पहले से भी अधिक अनुभूत हैं। कश्मीर विहारद्वारा आपके अनुभव, विचार और निर्मल ज्ञानको चार चाँद लग गए हैं। आपने इस भ्रमण में जिनशासनकी उज्ज्वल उन्नति करके अत्यधिक निर्जरा प्राप्त की है।

प्रभो! आपके जम्मू पधारनेके सुन्दर अवसर पर मैं आपकी सेवामें तुच्छ पुष्प-उपायन अर्पण कर रहा हूं। आप जैसे परमोत्तम ऋषि, और भेंटमें तुच्छ पुष्प! है न मेरी धृष्टता? पर भगवन्! मेरे पास और है भी क्या? जो आपको प्रस्तुत करता।

"अजब हैरान हूं भगवन्! तुम्हें क्यों कर रिझाऊं मैं।
कोई वस्तु नहीं ऐसी, जिसे सेवा में लाऊं मैं॥"

तेजःपुंजमहर्षे! आप प्रशम और तपके प्रभाव से तेजस्वी हैं यह निस्संदेह है। परन्तु कुछ भोले लोग, उपेक्षा का उपनेत्र चढ़ाए रखने वाले बालमित्र आपकी महत्ताको नहीं समझ पाते। किन्तु मुझसे क्षुद्र व्यक्ति जिसने कि आपकी चरण सेवामें कुछ दिन रह कर आपके विलक्षण एवं अद्वितीय चमत्कार देखें हैं वेही आपकी विद्वत्ताका अनुमान लगा सकते है परन्तु यह कार्य सहज नहीं है।

साधुशिरोमुकुटमणे! आप संयम, साधना, विनय, शौर्य, धैर्य, वीर्य, साहस, प्रोत्साहन आदि साधुता की जीवित-प्रतिमूर्ति हैं। आपका चरण-करणका प्राकार सुदृढ एवं लोमहर्षक है। आपके प्रचार कार्यने तो पराकाष्ठा कर दिखाई है। प्रमाण स्वरूप **'श्रीनगर'** में एक अमेरिकन बहनने प्रभावित हो कर **'अहिंसाभवन'** के निर्माणार्थ ५००० रु. प्रदान किया है, तथा यह वाग्दान भी किया है, कि कार्यारम्भ होने पर इतनी ही सेवा और दूंगी। है न यह जादूभरे आपके प्रचारका सुन्दर फल! और कौन है ऐसा माईका लाल जो रिसर्च डिपार्टमेंट के कर्मचारियोंसे सब पुस्तकें लेकर अपनी पुस्तकें भी उक्त संस्थामें भिजवानेकी व्यवस्था करे?

अमृतपान करानेवाले सुधांशो!

आपके मुखारविंदसे सच मुच अमृत ही का झरना झरता है। हमारे कश्मीर प्रदेशमें तो केवल पानीके ही स्रोत हैं, किन्तु आपके श्रीमुखरूप हिमाचलसे प्रज्ञान और प्रशमके प्रपात निकलते रहते हैं। मैं अपने आपको भाग्यशाली स्वीकार करता हूं, क्योंकि मुझे कश्मीर विहार में आपकी सेवाका सुयोग मिला है। मैं यह निस्संदेह कहता हूं, कि आपकी सुवाग्धारामें इतनी अधिक मधुरता है, कि श्रोता उस

सुधा धाराका पान करते करते नहीं अघाता, तथा उसके अन्तःपट पर अमित प्रभाव पड़े विना नहीं मानता। इसका मेरे सन्मुख प्रत्यक्ष प्रमाण यह है, कि आपके 'जम्मू' से 'श्रीनगर' तक विचरते हुए अनुमान ५०० मनुष्योंने मांसाहार तो सदाके लिए छोड दिया। और अपनी मानवी पर्यायको कृतकृत्य करके अपना उद्धार किया।

शीतल शमपुँज ! आपकी सरल एवं आकर्षक आकृतिको देखकर ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आनन्द मदमें चूर होकर गद-गदायमान न हो जाता हो ! आपकी शान्तमुद्राको देखकर भव्य-भक्तोंका मानस सागर शान्तिकी लहरोंसे लहरायमान हो उठता है। अनुभव शक्तिकी परम सहायतासे यह दृढ निश्चय होता है कि "प्रकृति देवीने शान्त स्वभाव वाले साधुओंमें मानो आपको सर्वोपरि आदर्शरूपमें स्थापित किया है।"

सिंध-बंगाल और कश्मीर देश पावनकर्ता मुने !

आपने असंख्य परिषह और क्रूर कष्टोंको झेलकर, सिंध और बंगाल जैसे अनार्य देशोंमें सर्व प्रथम, अहिंसा धर्मका प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय प्रचार किया है। विशेषतया विहार तथा बंगालमें काली मंदिरोंकी निर्घृण हिंसाको सदा के लिए बंद कराकर उनके आगेसे पशु हिंसाके यूप (खूंटों को) उखड़वा दिया। यह आपके पौरुषका परिणाम है। विहार और बंगालकी मण्डल जाति और मल्लाह जातिके सहस्रों लोग आपसे अहिंसा की दीक्षा पाकर आपका पूर्ण उपकार मानते हुए कृतज्ञताका प्रकाश करते हैं ! उनके धर्म गुरु चैतन्य महाप्रभु अन्दाल नीवासी ने भी आपसे मांस मदिराका त्याग किया है। अधिक क्या लिखा जाय आपके स्फूर्तिमय प्रचार कार्यकी महिमाका

वर्णन मेरी जड लेखनी कर नहीं सकती । मैं तो केवल कश्मीर यात्राके समय अपनी आँखों देखा दृश्य देखकर तथा उसी का आधार पाकर यही कहता हूं, कि आपकी बोध वाणीसे प्रभावित होकर हज़ारों नर नारियोंने मद्य मांस छोड़ा है । इस संबंधमें कश्मीरान्तर्गत 'एक ग्रामकी घटना मैंने आँखोंसे देखी है।' वहांके सैंकड़ों भद्र विनीत कश्मीरी पंडितोंने आपके उपशम वाले नैर्वृत्तिक उपदेशसे थोड़ी ही देरमें मांसाहार त्याग दिया, और आपको आहार दान देकर अपनेको कृतार्थ समझा । यह घटना वैशाख शुक्ला पूर्णिमा की है । संवत् २००१ को इस तरह कभी नहीं भुलाया जा सकता ।

सर्वशास्त्र पारंगत ! आपकी ज्ञानसमाधिकी साधनापर जैन समाजको अभिमान है । स्वसमयके अतिरिक्त परसमयका ज्ञान भी आपने खूब ही पचाया है । मेरे विचारमें ३२ सूत्रोंका परिचय पाकर उसे अनुभव क्षेत्रमें उतारनेके लिए नाना देशमें घूमना अत्यावश्यक है । विशेषतः विविध वनस्पतियोंका विज्ञान रहस्य जाननेके हेतु वनस्पति बहुलतावाले प्रदेशमें विचरना लाभप्रद है, संभव है आपका काश्मर्यविहार इस विषयका ज्ञान बढ़ानेके लिए भी हुआ हो! इसे और भी स्पष्टता देताहूं कि जम्मूसे कश्मीर जाते समय **पत्तनीटापके** ७००० फ़िट ऊँचे नगाधिराजको पार करके बटोत जाते समय आपने एक वृक्षके पत्रों की ओर संकेत करते हुए फ़र्माया था कि यह कूट शामली वृक्ष है । हमने देखा कि इसके पत्ते आरे अर्थात् करवतके समान तीक्ष्ण धार दार थे । इनके कांटे सूईके सदृश पैने थे । तब जैन शास्त्रद्वारा कथित नारकीय 'कूटशामली' वृक्षके पत्र तरवार या बरछी जैसे घातक हों तो क्या आश्चर्य है ?

अनेकगुणगणालंकृत !

मैं अपने अपनाए हुए अनुभव शून्य मतिज्ञान से आपके किन किन गुणोंका वर्णन करूं! समुद्र के समान आपके गुणोंका पार पाना कठिनतम है। यदि कथन करने लगूं तो जिव्हा थकने लगती है। यह चर्मजिव्हा आपकावर्णन भी क्या कर सकती है। मस्तिष्क थकने लगता है। अलसाकर लेखनी का मुंह तो घिसने लगता है। मनकी इतनी स्मरणशक्ति भी नहीं जो आपके गुणोंको याद रक्खा जा सके। यह काम सरस्वती और बृहस्पतिकी शक्तिसे बाहर है। तब मुझसे मन्दमतिकी क्या बिसात है।

सर्वविषयज्ञ !

आप जैसे उपमेयको उपमा भी क्या दूं, यदि आपको विकास पाने वाले फूलकी उपमा दूं तो भी ठीक न होगा क्योंकि फूल अन्तमें कुमला जाता है तब आपका अनुभव ज्ञान-शाश्वत रूपसे तद्वत् रहता है।

यदि आपको चन्द्रकी उपमा दूं तो आप चन्द्रसे भी बढकर हैं। क्योंकि चन्द्रमामें कालिमा होती है तब आपका सर्वांग चरित्र अदूष्य है।

आपको सूर्य भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उससे तीक्ष्ण तापसे कभी कभी लोग घबरा उठते हैं, परन्तु आपके तेजमें प्रभावित होकर लोगोंको शान्ति मिलती है। तथा आप सबके लिए अभेद रूपसे सुखप्रद हैं।

आप रत्नाकरसे भी अधिक हैं। समुद्र रत्नोंका आगर होकर भी किसीको कुछ न देकर कृपणवत् है, परन्तु आप तो अपनी ज्ञान समाधि निधि अनेकोंको बाँट चुके हैं। तथा समुद्रकी अनन्त जलराशि

होने पर भी अपेय है, परन्तु आपकी बोधवाणीका पान करते करते कभी मनही नहीं भरता।

आपको गुणग्राहिताकी दृष्टिसे हँसकी उपमा देना भी आपका अनादर करना है। क्योंकि हँस मनुष्यको पाकर उसे जीवित नहीं छोडता, उसे मनुष्यसे इतनी अप्रसन्नता है। परन्तु आप तो सबको प्रसन्नताका वरदान करते हैं।

आपको पारसमणि भी नहीं कहा जा सकता! कारण पारसमणि तो लोह को ही सुवर्ण कर सकता है अपने समान नहीं बना सकता; किन्तु आप तो सबको अपने सदृश गुणाकर बनानेमें ही समर्थ हैं।

आप कामधेनुसे भी बढ़कर हैं, क्योंकि कामधेनु तो मात्र पयः पान ही कराती है, तब आपमें से तपः संयम, धैर्य, औदार्य, शौर्य, वीर्य आदिके झरने झरते हैं। आखिर कामधेनु पशु ही तो हैं, परन्तु आप तो महामनुष्य और पुरुषोत्तम पुरुष प्रधान हैं।

कल्पवृक्षकी उपमा देकर तो मानो आपका अविनय ही करना है। क्योंकि कल्पवृक्ष तो लौकिक वस्तुएँ प्रस्तुत करता है, तब आप अलौकिक अध्यात्म तत्त्वनिधि प्रदान करते हैं जिससे मानव समाज ऐहिक और पारलौकिक सफलता पाता है। तथा कल्याण कामनाका मार्ग आपके द्वारा ही मिलता है।

अधिक क्या लिखूं मुझे तो तीनों लोकमें कोई उपमा मिल ही नहीं रही है। तब हार कर मुँहसे यही शब्द निकलते हैं कि आप सब प्रकारसे अनुपम '**अनेकगुणगणालंकृत**' हैं। अतः आप देव-वन्द्य हैं, मैं आपको तीन प्रदक्षिणा दे कर नमस्कार करता हूं।

महामुने! अति हर्षका विषय है कि आप हम पर पूर्ण कृपा करके पधारे हैं। आप यहां सदैव विराजमान रहें, तथा अपनी मनोहर वाणी द्वारा हमें कृतकृत्य करें। यहां मास कल्प करें वीर-प्रभु ज्ञातपुत्र-महावीर भगवान् की जन्मजयन्ती मनवाएँ। एवं चतुर्मास काल विताकर हमें अनुगृहीत करें। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि हमारे प्रान्तमें चार ग्राम [अखनूर-सांबा-कटरा और रियासी] ऐसे हैं, जहाँ आपके द्वारा प्रचारकी अत्यावश्यकता है। सचमुच इन ग्रामोंमें आपके पदार्पण करनेसे जिनधर्म प्रवृत्ति होगी। आशा है आप हमारी इन प्रार्थनाओं पर ध्यान देकर इन लोगोंमें प्रचार द्वारा नया जीवन उत्पन्न करनेकी कृपा करेंगे।

गुरुवार वसंतपंचमी — 'मैं हूं'
(सं० २००१) — लघुतम **'तिलक'**

मैं हूं तिलक ललाटका, तुम गुरु! स्वयं ललाट।
तुमसे शोभा है मेरी, तुम गुण-मणि के घाट॥
जहाँ तहाँ लगवादिए, धर्मध्यानके ठाठ।
सिंध-बंग-कश्मीरको, दिया अहिंसा पाठ॥
मेरा अन्तर कह रहा, जिएँ वर्ष शत-साठ।
भूमंडलमें विचर कर, काटें मिथ्या गाँठ॥

तदनन्तर जम्मू संघने यह विनय की, कि आगामी वर्षावास यहीं वितानेकी कृपा करें। श्रीमहाराजने संघका सन्मान करते हुए फर्माया कि इस वर्ष सिंध प्रान्तको लाभ देनेके लिए आगामी चतुर्मास कराचीमें बितानेका निश्चय किया है, आशा है श्री ज्ञातपुत्र महावीर भगवानके उज्वल शासनकी उन्नतिमें आप भी सहमत होंगे। इस

सुन्दर आदेशको सुनकर सब अवाक रह गए। और निवेदन करने लगे कि १२०० माइलके इतने लंबे और कड़े सफ़र को किस प्रकार पूर्ण कर सकोगे ? हम लोग सांसारिक कार्यके लिए रेलके साधन द्वारा कराची जाया करते हैं। मात्र तीन ही दिनमें बैठे २ घबरा जाते हैं। तब आप नंगे पैरों गर्मीकी बहुलतामें कैसे विहार करोगे। बड़ा ही क्रूर मार्ग है! श्रीसद्गुरुदेवने उत्तरमें कृपा की, कि **श्रीज्ञातनंदन महावीर** भगवान् ने भी तो अनेक अनार्य देशोंमें घूम घूम कर कठोर यातनाओंका सामना करते हुए संसारको धर्मका सच्चा राह सुझाया था। हम उनके वीर पुत्र हैं, हमारे लिए महावीर भगवानकी देन है। हमें उनका अनुगामी होना चाहिये। भगवानके आदेशानुसार हमें २५॥ साढ़े पच्चीस आर्य देशोंपर अपना धार्मिक कब्ज़ा रखना चाहिए। साढे पच्चीस देशोंमें विचरना, वहां भगवान्के उज्ज्वल शासनका प्रचार करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि हम उक्त देशोंमें न विचरें तो वे सब आर्य देशके स्थानपर अनार्य देश बन जायँगे। वहां मिथ्यात्वका तमस्तोम फैल जायगा। तब उसके अपराधी हम ही कहलायँगे, यदि साधुवर्ग मार्गकी कठिनाई और परिषहके भयसे उन देशोंमें विचरनेकी उपेक्षा करेंगे तो जैन धर्म विश्वधर्म नहीं बन सकेगा ? अतः हमारा परम कर्तव्य है कि हम यदि अनार्य देशोंमें विचरनेमें अशक्त हैं, तो साढे पच्चीस आर्य देशोंमें विचारनेकी अपेक्षा तो रखें। वहां कठिनाईयाँ भोगकर प्राणोंकी बलि तक देकर भी विचरण क्षेत्रको विशाल बनाएँ। वहां तक घूमना हमारा जन्म सिद्ध हक़ है, जिसे वीरका सपूत क्योंकर छोड दे ? इस लिए हम सिंध प्रान्तमें दूसरी बार

अवश्य जायँगे। श्रीमहाराजके दृढ निश्चय पर सब दाँतों तले अंगुली दबाने लगे । तथा सबने मुक्त कंठसे यही कहा कि सिंध बंगाल कश्मीर आदि प्रदेशोंको स्पर्शनेका आपके अतिरिक्त और कौन साहस कर सकता है। आप समर्थ हैं, आपके द्वारा ही यह संपन्न हुआ है। बहुत कुछ वाद प्रतिवादके पश्चात् जम्मू संघने प्रसन्नता पूर्वक उस और पधारनेकी सहमति प्रगट की ।

वास्तवमें जम्मू-संघ एक समर्थ संघ है, सब लोगोंमें सुमति है। प्रेम और संगठन है। गुणग्राहिता-निष्पक्षता उदारता-भक्तिपरायणता आदि अनेक सद्गुणोंसे यह संघ समृद्ध है। यहां का बच्चा बच्चा मुनि-राजोंकी आज्ञा पालनमें अपनी अर्पणताका साहस रखता है, निछावर होने तक की जिज्ञासा है। समयका भोग देना सीखा है। धर्मनिष्ठातो मानो कूट कूट कर भरी है। ऐसे अच्छे २ गुण यदि पंजाबके समस्त संघोंमें हों तो जैनसंघ एक समर्थ शक्तिशाली, एवं प्रभावोत्पादक बन जाएँ, तथा संसार पर प्रभुताका वितान करें। अंतमें श्रीजम्मूसंघने मासकल्पकी माँग की । अधिक समय न होनेपर भी उनकी विनतीको मान देकर २० दिन निवासकरनेका वाग्दान दिया। इन दिनोंमें नगरके जैन और जैनेतरोंने कड़ाकेकी सर्दीमें भी ज्ञानप्रपामें लाभ लिया।

बिशनाह—१०।३८८ ता० ४।२।१९४५

आज संघमें मुनि वियोगसे बड़ा खेद हुआ। सैंकडों ही भाई यहाँ तक पहुँचाने आए।

हबताल—१०।२९८ ता० ५।२।४५

ज़फ़रवाल–१०।४०८ ता० ६।२।४५

सनखतरा–१०।४१८ ता० ७।२।४५

बाबूराम जैन भक्तिके भावमें प्रशंसास्पद हैं। यह क्षेत्र स्यालकोट मण्डलान्तर्गत है।

नारोवाल–१०।४१८ ता० ८।२।४५

रइय्या–१२।४४० ता० ९।२।४५

पं० गोविंददासने ठहरनेकी व्यवस्था की।

पसियांवाला– ता० १०।२।४५

सेवाभावसे ला० हजारीलाल-खज़ानचंद बहल खत्रीने अपने मकानमें स्थान दिया। रावीका तट है।

मसचक–१२।४६४ ता० ११।२।४५

गुरुद्वारा सड़क पर ही है।

पड़थ–१२।४७६ ता० १२।२।४५

आबड़ खाबड़ गुरुद्वारा।

लाहौर–५।४८४ ता० १३ से १७ तक २।४५

श्रीजैन हॉल-सैदमट्ठा बजार-[जैन स्ट्रीट]

गोर माँगटा–३।४९० ता० १८।२।४५

कान्हाकच्छा–१०।५०० ता० १९।२।४५

आर्यसमाज-मंदिर।

ललियानी–९।५०९ ता० २०।२।४५

हरनामदास कोठीराम सेवा करते हैं।

क़सूर–१०।५१९ ता० २१।२।४५

१५० वर्ष पहले यहां ला० हरजस राय जैन श्रावक बड़े उच्च-कोटिके विद्वान् हो गए हैं। आप तुलसीदास गोसांई और पं० बनारसीदासकी जोडके विद्वान् थे। आपका प्रखर पांडित्य अनुपम था। आपकी शैलीका साक्षर अब कहां ? आपने कई ग्रंथ लिखे हैं। परन्तु देवरचना, देवाधिदेव रचना और साधुगुणमाला ये तीन रचना ही प्रकाशित हैं। इन तीनों ग्रथोंको मुखस्थ करनेसे सरस्वतीकण्ठाभरण बन जाता है। जैन धर्मके चरण करण एवं सिद्धान्तका बहुतसा परिचय मिलता है। रचना इतनी उत्तम शैलीकी है कि जितनी बार पढ़ो मनमें नवीनता बिखरती रहती है। नव रसोंका अद्वितीय आनंद मिलता है। उनका शास्त्र भंडार अब नहीं मिल रहा है। "साह पुरुषकी माया और कल्पवृक्षकी छाया" उनके अपने साथ जाती है।

जैन उपाश्रय गलीमें एकान्त प्रायः है। खटपटका नाम नहीं। स्वाध्याय ध्यानके योग्य बस्ती है। **चठियां वाले** श्रावक भी धर्म-ध्यानमें अत्युत्तम योग देते हैं।

गंडासिंहवाला–७।५२६ ता० २२।२।१९४५

फिरोज़पुर-छावनी–११।५३७ ता० २३।२।४५

मुसद्दीलाल जैनकी धर्मशाला बहुत बड़ी है। ला० तिलोकचंद-प्रद्युम्नकुमार जैन काँधले वाले विशेष भावुक हैं।

गोलेवाल–१२।५४९ ता० २४।२।४५

दो-चार घर ओसवाल जैनोंके हैं।

फ़रीदकोट–१०५५९ ता० २२-२६।२।४५

ओसवाल जैनोंके १०० घर हैं। अधिकृत राजकर्मचारी भी हैं। ला० रूपलाल जैन पहले जज रह चुके हैं, आप दानी और धर्मानुरक्त हैं,

अपनी नौकरीका तीसरा भाग दानमें वितरण करते रहे हैं। यहां जागृती और नवीनता पाई जाती है। विद्यारत्न अच्छे कवि हैं। इनकी कवितामें ईश्वर कर्तृत्व दोष नहीं है। श्रीकिशोरीलाल वकील सुधारक विचारके युवक हैं। ला० हंसराज ज्ञानचंद भक्तिकी प्रतिमूर्ति हैं।

अगले दिन व्याख्यान-सभाके बाद श्रीमहाराजने सबके सन्मुख केशलुंचन किया। यह दृश्य सबने जीवनमें पहली बार देखा है। श्रीगुरु-लुंचन कराते समय कीर्तन करते जाते थे। लोग चित्रलिखितसे हो रहे थे। अधिकांश आधुनिक मुनि लुंचनक्रिया बंद कोठरी में ही करते हैं। इसका प्रभाव भी कोठरीमें बंद ही रहता है। परन्तु यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो जैन-जैनेतर सबने अपनी सगी-आँखोंसे सहिष्णुतका सजीव चित्रण होते देखा। फाल्गुण चातुर्मासिका का यहीं आराधन किया।

कोटकपूरा—७।५६६ ता० २७-२-४५

नागशी भाई गुजरातीकी भक्ति उल्लेख्य है।

जैतों मंडी—१०।५७७ ता० २८-२-४५

यह नाभा स्टेटमें हैं। भाई दत्तामल नंदलाल तुलसीराम जगन्नाथ आदि जैन हैं। उपाश्रयकी व्यवस्था होनेवाली है, रात्रिमें सार्वजनिक भाषण हुआ।

गुणियाणा मंडी—८।५८५ ता० १।३।४५

विरजलाल चौधरीकी प्रेरणासे रात्रिमें प्रवचन की व्यवस्था उत्तम ढंग से सम्पन्न हुई।

भटिंडा—७।५९२ ता० २।३।४५

ला० चाननराम मोहनलाल जैनके कमरेमें ठहरनेकी व्यवस्था हुई। यहां कुछ दिनोंसे सट्टा बहुत बढ़ गया है। १००० से ऊपर तो दलाल हैं। किसीको किराए पर मकान मिलना कठिन हो रहा है। "हलदी लगे न फिटकड़ी रंग चोखा जम जाय" की उक्तिके अनुसार लोग धनाढ्य बनना चाहते हैं। सट्टा बाजार खुलते समय, शांतिभंग हो जाती है, कोलाहल बढ़ता चला जाता है। लोगोंके मनमें गुदगुदी मच जाती है। इतनी कुछ धर्मभावना भी बढ़ी, कि उपाश्रयके लिए २५००० रुपया एकत्र किया है।

कोट फत्ता—१२।२०४ ता० ३।३।४५

यह उजड़ी मंडी है, १०-११ दुकान खुलती हैं ला० देवीदयाल जैन की भावना अब भी जागृत है।

मोड़मंडी—१०।६१४ ता० ४।३।१९४५

यह मंडी पटियाला स्टेट में है। ला० भोलामल शादीराम जैन ढूंढ़िया के मकानमें ठहरे। यहां भी उपाश्रय बनने की संभावना है।

मानसा मंडी—१२।६२६ ता० ५।३।१९४५

ला० रामजीदास-किशोरचंद जैन अग्रवालके भाव श्रेयस्कर हैं। मुनिभक्तिकी लय बढ़ती पर है। आपकी हवेली बहुत बडी हैं उपाश्रय भी बनेगा।

बडलाडा मंडी—१०।६३६ ता०६-७।३।४५

जैन उपाश्रय भी है। मंडिएँ दो हैं। जैनोंके घर ५० के लग भग हैं। ला० शंभुमल मोहनामल जैन प्रख्यात श्रावक हैं। ला०

बुधराम किशनचंद चन्दनकी माला की प्रभावना करते हैं। यहां जि० हिसार है। श्रावकोंने साग्रह एक दिनका अधिक समय लिया, मंडीमें सार्वजनिक व्याख्यान हुआ।

बरोटा मंडी १०।६४६ ता० ८।३।४५

स्थान धर्मशाला, ला. रोशनलाल भिक्खीवाले प्रेमी हैं।

जाखलमंडी—९।६५५ ता. ९।३।४५

ला० व्रजलाल कानचंद जैन का मकान ठहरने योग्य है।

टुहाना ८।६६३ ता० १०।३।४५

माइधन सीतारामजैन भावुक हैं। यहां उपाश्रय बनेगा। यहींसे जि. हिसारका आरंभ है

उकलाना मंडी १६।६७९ ता० ११-१२।३।४५

स्थान धर्मशाला-मंडीमें सार्वजनिक भाषण।

बरवाला ९।६८८ ता० १३।३।४५

डॉक्टर कश्मीरीलाल जैन बंगावालों की सरस प्रेरणाओंसे अस्पतालमें ही ठहरे, तथा रात्रिमें नगर निवासियोंमें प्रवचन भी हुआ। हिंदु-मुस्लिम पुष्कल संख्यामें थे। कई यवनोंने धर्मचर्चासे लाभ उठाया, कई लोग सूफ़ी विचारके हैं। गोपीराम महाजनको नया प्रेम जागृत होगया, उक्त डॉ० महोदयके पुत्र देशराज-महेशचंद्र-नरेशचंद्र शतीशचंद्र आदि मुनिओंका विनय अत्यधिक करते हैं।

सरसौध-धिगताना–१०-६९८ ता० १४।३।४५

यह कच्ची सड़क हिसारके पिछले दुकालमें सरकारने दो आना प्रतिमनुष्य सहायता देकर बनवाई थी। रोही-उजाड़-जंगल है, वृक्ष कहीं कहीं हैं। कठिनाईसे कीकरके वृक्षको पाकर उसके तले विश्राम

करने बैठे। इतनेमें एक बूढ़ा प्रवासी आया और चलते २ अचेत होकर भूमिपर लुढ़क गया, कुछ देरमें मूर्छा टूटी और विद्यार्थी रतनज्योतिसे हाथके संकेतसे कुछ भोजन मांगा, इसकी तड़पनको देखकर रत्नज्योतिने अपने पाससे कुछ भोजन उसे खानेको दिया। खा-पीकर चलते समय यह कहता गया, कि १६ पहरमें कुछ मिला है। अब जीमें जी आया है। 'लड़के तेरा भला हो' की आसीस देकर धीरे धीरे चला गया। यह घटना बुधवार, संध्याके ६ बजे की है। दिन थोड़ा रह गया था, अतः धिगताने ग्रामके स्कूल में विश्राम किया। रात्रिमें श्रीमहाराजकी बोधवाणीकी गूँज फैली। ग्रामीणोंको बडी प्रसन्नता हुई।

चनोंका खेत—अगले दिन विहार किया, मार्गदर्शकके रूप में एक किसान पीछे चल रहा था। श्रीमहाराज उसे कुछ बोध भी देते जाते थे। चनोंके खेतोंमें से चले जा रहे थे। बहुत दूर चले जानेपर एक खेतमें वह किसान ठिठका, और नम्रता पूर्वक बोला, कि यदि भूख हो तो कुछ चने उखाड़ दूं? श्रीमहाराजने उत्तरमें फर्माया कि नहीं, किसान बोला कि महाराज! अब तक औरोंके खेत थे। अब ये मेरे खेत आगए हैं, इसलिए प्रसन्नतासे खाएँ! श्रीमहाराजने जैन साधुओंके चरित्रकी कुछ बातें बताकर उसे समझाया, और कहा कि साधु इस प्रकारकी हरी चीज नहीं खाते। परन्तु उसके मुनिभक्तिके अतिरिक्त राष्ट्रीय विचार भी थे। यह घटना ता० १५-३-४५ गुरुवार सवेरे के समय की है।

हिसार—८।७०६ ता० १५।३।४५

आगे चलनेपर रेतका कुछ रास्ता आया, उसे लाँघ कर सड़क पर

चलने लगे, कुछ दूर तलवंडी ग्रामकी सीमामें चल रहे थे कि मार्गमें चलते समय एक बछड़ी और बैलोंका प्रेम विलक्षण रूपमें देखा, किसान बैलगाड़ीमें बैठे आ रहे हैं, बैलोंके बीचमें आगे आगे एक सुंदर बछड़ी चल रही है, जिसका मुख प्रसन्न प्रतीत होता था। श्रीगुरुराजने फर्माया, कि भाई कुछ विवेक करो, कहीं यह छोटीसी बछड़ी बैलोंकी झपेटमें न आ जाय? उन्होंने कहा कि इन दोनों बैलोंका बछड़ीसे गहरा प्रेम है। तीनों एक स्थान पर मिलकर रहते हैं। एक दूसरेके विरहको क्षण भरके लिए भी नहीं सह सकते। क्या छोटीसी बछड़ी है। बैलोंसे सदैव खेलती रहती है। बैलोंका अलग रहनेका विश्वास नहीं करती। खेतमें भी साथ चलती है। यदि बैलोंको १० कोस ले जाना हो तो बछियाको धोखा देना पड़ता है। उनके अलग होनेपर वह ज़ोरसे राँभ २ कर रोया करती है। दूध पीना बंद कर देती है। उनकी सूरत देखते ही सब रोम खिल उठते हैं, प्रसन्नतासे नाचने लगती है। इन संज्ञी पशुओंकी भी अजब समझ है। परस्पर कितनी सहानुभूति है। यदि मनुष्यमें यह गुण अभेद रूपमें होता तो वह संसारका स्वरूप ही बदल देता! यह घटना दिनके १०॥ बजे देखी गई।

मीठापीर! तलवण्डी ग्रामके पास 'मीठापीर' का मज़ार-(क़बर) है। लोग उसे अब भी 'जजिया' करके समान मीठा पदार्थ चढ़ाकर उसे पूजते हैं। विशेषतया हिन्दुओंने उसकी मानता बढ़ाई है। समझाने पर भी राह नहीं लगते। कभी वह जीवित था, तब दुकानदारोंसे ज़बरदस्ती गुड़ माँग कर खाया करता। माँ बाप मरने पर औलिया-फ़क़ीर बन गया, परन्तु गुड़ माँगना न छोड़ा।

मरने पर अब तक भी हिंदु लोग गुड ही चढाते आए हैं। बरसों हो गए उस लकीरसे अब भी डरते हैं। न जाने इन हिन्दुओंकी अन्धश्रद्धाकी नीन्द कब टूटेगी।

इस ग्रामसे आगे बढ़ते ही हिसारके श्रावकोंका ताँता लग गया, बीड़ पार करने पर तो बहुतसे बाई-भाई मिले, इस चरागाहको लाँघने पर हिसार शहर दीख पड़ने लगा। यहां जैनस्थानक अभी बन कर चुका है। मुनिराज कम पधारते हैं। दिगम्बर-श्वेताम्बरोंका आपसमें प्रेम है। भेद भाव नहीं है। लाला न्यामतसिंहजीके पुत्र तो बड़ी श्रद्धासे आते हैं। आपका मुनिराजोंसे बड़ा हेत है। दिन तथा रात्रिमें तीन व्याख्यान हुए। उपाश्रय-हॉल खचाखच भर जाता था। अजैन भाई भी उत्साह लेकर आते हैं। समभाव भावितात्मा होना, प्रत्येक मनुष्यके लिए आवश्यक है।

हाँसी (बागमें)–१५।७२१ ता. १७-१८-१९।३।४५

हाँसी (मुगलपुरा)–मुग़लपुरेमें जैनउपाश्रय है। श्रावकों और जैनेतर बांधवोंमें प्रसन्नताकी बाढ़ सी आगई। अगले दिन धर्मशालामें पब्लिक व्याख्यान हुआ। लोगोंने अगणित संख्यामें भाग लिया। जैन धर्मका ऊंचा प्रभाव पड़ा। ठहरनेके लिए अत्यनुरोध किया, परन्तु दो रात रह कर विहार कर दिया।

सोरखी–१०।७३३ ता. २०।३।४५

महम–१३।७४६ ता. २१।३।४५

मदीना–९ }
लडू ४ } १३।७५९ ता. २२।३।४५

रोहतकमंडी ७ }
बोहर ४ } ११।७७० ता. २३।३।४५

साँपला–११।७८१ ता. २४।३।४५

बहादरगढ़–१२।७९३ ता. २५।३।४५

शिखरचंद जैन चौधरी हैं। आपकी प्रेरणासे नागरिक लोगोंमें जैन मंदिरमें रात्रिके समय व्याख्यान हुआ।

नज़फ़गढ़ ७ }
छाबला ४ } ११।८०४ ता. २६।३।४५

दिगंबर जैनोंके बहुत घर हैं। पं० भगवानदास अच्छे योग्य व्यक्ति हैं। चंदूलाल अखतर कवि हैं तथा वकील भी।

गुडगाँव—७।८११ ता० २७।३।४५

यहां श्रीमान् पूज्यपाद श्री १०८ भूतपूर्व जैनाचार्य श्रीश्री रत्न-चंद्रजीमहाराजके पट्टानुयायी श्रीश्री १०८ श्रीमज्जैनाचार्य श्री पृथ्वी-चंद्रजी म. पंजाबी, और मुनि अमरचंद कविराज, आदि ठा० ७ विराजमान थे। आपके स्वभावमें बड़ी कोमलता और नम्रता है, आपके सब शिष्य स्वागतार्थ आए। सब मुनियों में विनय गुण प्रधान था। साधु व्यवहार श्लाघनीय था। जैनोंके अतिरिक्त अजैन भी बहुत थे। उपाश्रयमें सह निवास किया। मुनिराजोंने आहा-रादिका पूर्ण सेवाभाव बताकर वीतरागके अनुगत होकर अपना आदर्श स्थापन किया, जिनके मृदुसंस्मरण कभी भुलाए नहीं जा सकते।

श्रीमान् वकील मेहरचंद्रजी महानुभावसे अगलेदिन श्रीजीने फर्माया कि गत चतुर्मासमें आपके यहां चतुर्मासकाल व्यतीत करते हुए १४

पात्र रंगे थे, और रंग सूखने तक के लिए आपके पास ही रख छोड़े थे, अतः अब उन पात्रों की आवश्यकता है ?

वकील साहब—गुरुदेव ! गत १॥ वर्ष पहले यहां पर पंजाबमें विचरने वाले मुनि श्रीप्रेमचंदजीके साथ श्रीगणिवर्य श्री १००८ श्रीउदयचंद जी स्वामीके शिष्य श्रीमुनि रघुवरदयाल जी आए थे। उनसे हमने आपके पात्रों के विषयमें परिचय दिया, तो उक्त मुनिराजोंने कहा कि वे पात्र हमें अवश्य दिखा दो ! हमने दिखाए, तो उन्होंने कहा कि हमें ये पात्र पसंद आगए हैं, अतः ये तो हमें दे दो। हमें आवश्यकता है। यह कह वे चौदह पात्र दिल्ली ले गए। मुझे आप चाहे जैसा दंड दें, उसे सहन करनेको तैयार हूं।

श्रीगुरुदेवने फ़र्माया कि भाई ! तुम तो क्षमाके योग्य हो, परन्तु ये ....हैं। शासनदेव सद्बुद्धि प्रदान करे। अन्तमें दो पात्र अमर मुनिसे लेकर काम चलाया।

मोहमदपुर ५।८१६ ता० २८।३।४५

कासन ७।८२३ ता० २९।३।४५

पाटोदी ७।८३० ता० ३०-३१।३।४५

गोकुल १२।८४२ ता० १।४।४५

खोरी १०।८५२ ता० २।४।४५

शिवलाल महाजनका मन भक्तिरससे भरपूर है।

कुंड ८।८६० ता० ३।४।४५

स्लेटका काला पत्थर यहां से निकलता है। बिच्छु भी इसी रंगका अधिक होता है।

एटली ९।८६९ ता० ४।४।४५

यहां ठाकुर अमरसिंह-शास्त्रीसे अवतारवाद पर चर्चा छिड़ी।

शास्त्रीजी—महाराज! आज संसारमें अराजकता छाई हुई है। इसे मिटानेके लिए भगवान् अवतार लेंगे, तब धर्मका उत्थान होगा तथा साधुओंका रक्षण होगा और पापिओंका विनाश।

श्रीगुरुदेव—शास्त्रिन्! धर्मका कभी नाश नहीं होता, वस्तुका स्वभावधर्म है, वह कभी नहीं जा सकता। और साधुकी पहचान ही यह है, कि उसका मन कभी दुःखित नहीं होता, तथा कष्ट पड़ने पर वह किसीकी सहायता नहीं मांगता। रहा अवतार लेना, यह तो वेदकारको भी मान्य है कि **'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** इस उक्तिसे तो वह निराकार और अजन्मा ईश्वर, जन्मका ग्रहण निमित्तिक तथा कार्य कारण के अभावमें कैसे कर सकता है। इस संबन्धमें अनेक विकल्प हैं। पहला प्रश्न यह होता है कि क्या ऐसी धारणा समंजस है? यदि किसी आकारविशेषको भगवान्का नित्यगत स्वरूप माना जाय तो क्या इस आकारमें किसी विकारकी कल्पना नहीं करेंगे? क्योंकि आकारमें स्थित विकार भगवान्की मृत्यु तथा नए जन्मकी पद्धतिको बोधित करेगा। अतः आपकी धारणाके अनुसार भगवान्से सृष्ट व्यावहारिक जगत्में विभिन्न दैहिक आकार में भगवान्का आकार उनके अपने एक विशिष्ट रूप सहित भगवान्की धारणासे सर्वथा असमंजस है। यह कैसे धारणा कर सकते हैं, कि भगवान् स्वभावगत-नित्य-अच्युत स्वरूपको छोड कर हाड-चामके विनश्वर दुर्गंध-पूर्ण देहमें मरनेके लिए उत्पन्न हो जाता है। आखिर

जन्म-वृद्धि-रोग-अपक्षय-मृत्युके अधीन नवीन नवीन व्यावहारिक-आकारको ग्रहण करने से उसे क्या लाभ होता है ! इसी प्रकार उसकी सर्वशक्तिमत्ताके आधारपरभी ऐसी बुरी धारणा नहीं कर सकते, कि वह अपने स्वभावगत-स्वरूपको वृथा ही परिवर्तन करनेमें समर्थ है। यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि भगवान् अपने नित्यगत-रूपके साथ जगत्में अवतार बन कर उतरता है। क्योंकि अवतारोंके आकार परस्पर भिन्न तथा अपक्षय और मृत्युके अधीन पाए जाते हैं।

अनेक सम्प्रदायोंमें भगवान् निराकार-पुरुष रूपसे मान्य है। क्योंकि निर्दिष्ट-दैहिक आकारकी धारणा के साथ ईश्वरकी नित्यता-अनन्तता-अद्वितीयता और सर्वज्ञताकी धारणा सुसमंजस नहीं रह पाएँगी। भला क्या ऐसा निराकार पुरुष जो कि सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञरूपसे माना जाता हो, और वह व्यावहारिक जगत्में शरीरके दलदलमें स्वयं अवतीर्ण हो सकता है ! इस प्रकारके भगवान्‌की संभावनाकी विवेचना की जाय तो इस निराकार भगवानको ऐसा मानना होगा कि—

(क) वह सशरीरी जन्ममरणके प्रवाहमें जीवके समान परिणामको प्राप्त है, अतः संसारी जीवका ही भाई बंधु है भगवान् नहीं।

(ख) वह एक विशिष्ट-मानस-भौतिक देहकी सृष्टि करता है। और उसमें स्वयं आत्माके समान मरता जन्मता है।

(ग) वह अपनी विशेष-शक्ति और ज्ञानको किसी विशेष शरीरधारीके जीवनमें अभिव्यक्त करता है। जिससे कि वह तादात्म्यभावको प्राप्त होता है।

(क) प्रथम कल्पके विषयमें यह धारणा करना निकृष्ट और कठिन है, कि देश और कालसे अतीत, समस्त विकार और सीमासे अतीत पूर्ण आध्यात्मिक पुरुष किस प्रकार स्वयमेव देशकालसीमायुक्त और विभिन्न-विकाराधीन किसी शरीर विशेषके परिणामको प्राप्त होता है ! यदि उसकी निराकारता आकारके रूपमें परिणत हो सके, और उसकी भगवत्ता भी सुरक्षित रह सके, तो निराकारिताको भगवत्स्वरूपके प्रति नित्य और स्वभाव-स्वरूपगत नहीं माना जा सकता। बल्के उसके स्थानमें उसके विपरीत अनित्य विकारी आकारवाला ही मानना होगा। तथा ऐसे परिणामकी संभावनासे यह भी अपने आप सिद्ध होगा, कि अनन्तस्वरूपवाला अन्तवाले रूपमें स्वयं परिणत हो सकता है, और उसकी अनन्तता भी बनी रहती है। नित्य स्वरूप अचिरकालस्थायी पुरुषरूपसे जन्म ग्रहण कर सकता है, तथा साथ ही अपने नित्य स्वरूपको भी अक्षुण्ण रख सकता है। पूर्णस्वरूप अपूर्णपुरुषका सा जीवन यापन कर सकता है, और फिर भी अपने पूर्णस्वरूपमें ही स्थिर है। ये सब धारणाएँ अस्पष्ट-विरुद्ध एवं अमाननीय हैं।

ऐसे विरोधोंके होते हुए भी यदि नित्य और स्वरूपगत निराकार भगवानका शरीरी भगवान् या अवतार रूपमें परिणामकी सम्भावना स्वीकृत हो, तो उनसे यह पूछो, कि क्या भगवान् प्रत्येक विशेष-अवतारमें स्वयं सम्पूर्णरूपसे परिणामको प्राप्त होता है, या आंशिक रूपसे परिणामको प्राप्त होता है ! यदि पहला कल्प स्वीकार है, तो यह मानना होगा, कि जब तक एक अवतार जगत्में जीवित रहता है, तब तक निराकार भगवान् नहीं रहता, अर्थात् निराकारिताकी गद्दी

खाली रहती है। इसी अपेक्षा-कारणसे मृतकरूप से भी गण्य हो सकेगा। तथा भगवान् जगत्के एक विशेष स्थलमें बँधा हुआ है। ऐसा होनेपर अवतरित भगवान्का ज्ञान और शक्ति आन्तरिक रूपसे अनन्त [यद्यपि बाहरसे अन्तवाला अभिव्यक्त होता है]और जगत्प्रपंच के शासन और रक्षणमें समर्थ माना जाता है, तब भी उसका अस्तित्व सर्वव्यापकरूपसे नहीं माना जा सकता। और वह जगत्में अनुस्यूत-ओतप्रोत है, यह भी नहीं मान सकते। उसका और जगत्का संबन्ध केवल बाहरी रूपसे ही मानना होगा। फलतः इस प्रकारका सिद्धान्त उस धारणाके साथ असमंजस होगा, कि भगवान् व्यावहारिक जगत्का उपादान कारण या द्रव्य तथा आश्रय भी है। अथवा जब विशेषरूपसे अवतरित भगवान् मर जाता है, या उसका शरीर व्यावहारिक जीवनसे तिरोभावको प्राप्त होता है, तब निराकार भगवान् फिर किसीके पेट पड़ कर रज-वीर्यके सहारे पर जन्म लेता है साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उसका निराकारस्वरूप उसके शरीरी-आकारके परिणाम से उत्पन्न होता है, बल्कि यह तो लज्जित होकर स्वीकार करना होगा। फलतः निराकार भगवान् इस प्रकार बार-बार मरने और जन्म लेने के फेर में ही पडा रहेगा। भगवान्का अवतार मानने वाले लोग क्या ऐसे सिद्धान्तको स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत होंगे!

यदि ऐसे अग्राह्य सिद्धान्तसे [जिस सिद्धान्तमें निराकार भगवान् के सम्पूर्ण अस्तित्व के परिणाम की धारणा उनको जन्म मरणके कुचक्रमें डालती है] छुटकारा पानेके लिए भगवान् को ऐसा माना जाय कि वह स्वयं आंशिकरूपसे अवतारमें परिणत होता है, तब तो

पूरे अवतार की धारणा [भक्तोंके किसी किसी सम्प्रदायमें प्रसिद्ध] का त्याग करना होगा। किन्तु यहां भी प्रश्न होता है, कि निराकार भगवान्‌के आंशिक परिणाम का अर्थ क्या है ? स्पष्टतः इसका अर्थ यह होगा, कि उसके निराकार अस्तित्व का एक टुकड़ा शरीर-धारी-पुरुषरूपसे परिणामको प्राप्त होता है, और दूसरा टुकड़ा निराकार बना रहता है। इससे यह बोधित होता है, कि अनन्त-नित्य-अखंड और निराकार भगवान् कई टुकड़ोंमें विभाग के योग्य है। तथा आत्माके यथार्थ स्वरूपको क्षति न पहुँचाते हुए कोई विशेष टुकडा (अंश) किसी विशेष देहधारी रूपसे विकारको प्राप्त होता है, जो कि स्पष्ट विरुद्ध है। परमआत्मा निराकार, साथ ही अंशयुक्त और अंशमें विभाग करने के योग्य, नहीं माना जा सकता। यदि ऐसी धारणा संभव हो तो किसी अंशमें कुछ परिणाम होने पर आत्मा विकारको प्राप्त होगा, और इससे यह एक विकारी, अस्थायी और साधारण-व्यावहारिक पुरुषके समान सिद्ध होगा। यदि इस आपत्तिको त्याग भी करें तो यह प्रश्न उठेगा, कि अवतार-शरीरमें परिणत भगवत्-अंश पूर्ण भागवत चेतनासंपन्न है ! अथवा यह चेतना विशेषित या सीमायुक्त होती है ? अवतार क्या स्वयं भगवान् के समान अनन्त ज्ञान और शक्ति को धारणा करता है, या भगवान्‌के अंशसे परिणामको प्राप्त (आकारवान्) होनेके कारण, उसका ज्ञान और शक्ति अन्तयुक्त होता है ? यह स्पष्ट है कि आंशिक अवतार, स्वयं भगवान्‌के समान सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ नहीं हो सकता, क्योंकि अन्यथा अंश और सम्पूर्णमें पृथक्ताका लोप होगा, या एक ही कालमें दो प्रतिद्वन्द्वी भगवान् होंगे, एक रूपी

और दूसरा अरूपी। भगवान्‌की आंशिक अभिव्यक्ति की धारणा उनकी शक्ति और ज्ञानके आंशिक अभिव्यक्ति को बोधित करता है। ऐसा होने पर यह अवश्य स्वीकार करना पडेगा, कि अज्ञानका आवरण अवतारी चेतनके ऊपर विद्यमान है; तथा उसका ज्ञान और शक्ति चाहे उसके समकालीन व्यक्तियोंकी तुल्नामें कितनी भी ऊँची क्यों न हो, सीमायुक्त है; तथा उसकी सम्पूर्ण रूपसे अभिव्यक्ति भी नहीं है। तब व्यावहारिक जगत्‌का असाधारण सामर्थ्य युक्त किसी मनुष्य और अवतारसे मान्य व्यक्तिमें वस्तुगत भेद क्या रह गया है? सब प्राणी या मनुष्य भगवान्‌की आंशिक अभिव्यक्ति हैं, जो सब व्यावहारिक पदार्थोंका एक मात्र आश्रय, कारण और द्रव्य माना जाता है।

(ख) अब दूसरे कल्पके विवेचन पर भी ध्यान दीजिए, यदि भगवान् एक विशेष मानस-भौतिक देहकी सृष्टि करता है, और आत्मा रूपसे उसमें घुसता है, जब सभी मानस-भौतिक देह भगवान की ही सृष्टि है, तो फिर इस कथनका क्या अर्थ है, कि अवतार देह एक विशेष रूपसे सृष्ट देह है। क्या यह और देह जिस नियम और पद्धति से उत्पन्न होते हैं, उसके अनुसार उत्पन्न नहीं हुआ? क्या यह विशेष काल और देशमें मातापिताजनित व्यावहारिक देह नहीं है? क्या यह और शरीरोंकी भाँति वयोवृद्ध होकर, या नाना विकार को प्राप्त होकर मरता नहीं? फिर किसप्रकार अवतार देह और अन्य किसी जीवित देहमें कोई भेद कर सकते हैं? इसका उत्तर आप इतना ही देंगे, कि अवतार देहमें जितने विशेष लक्षण हैं, उतने अन्य किसी साधारणरीतिसे उत्पन्न देहमें नहीं

पाए जाते। परन्तु फिर भी यह सिद्धान्त नहीं किया जा सकता, कि ऐसा विशेष लक्षणयुक्त देह पूरे भगवत्-आत्मा द्वारा अधिष्ठित होनेके उद्देश्यसे विशेषरूपसे सृष्ट हुआ है। इस वैचित्र्यमय विश्वजगत्में असंख्य प्रकारके विशेष-लक्षणसहित असंख्य प्रकारवाले जीवदेह पाये जाते हैं। एक मनुष्य जातिमें ही विभिन्न जातिके मनुष्य विभिन्न प्रकारके भेद सहित स्व-स्व-जातीय लक्षणयुक्त होते हैं, और एक ही जातिके अन्तर्भूत अनेक व्यक्तियों में भी परस्पर अत्यन्त भेद पाया जाता है। यह सर्वथा संभव है, कि कुछ व्यक्ति किन्हीं विशेष लक्षणोंसे सहित जन्म लेते हैं, जो उस जातिके अन्यान्य व्यक्तिओंमें साधारणतः नहीं पाए जाते। तब ऐसे सन्दिग्ध लक्षणों के आधार पर कैसे माना जाय, कि जब कि वे ऐकान्तिक सर्वसाधारण विलक्षण महत्ववाले प्रमाणित नहीं हो सकते-किसी शरीर विशेष को भगवत्-आत्माके अवतरण का चिन्ह माना जाय ? इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं है, कि-आवरणरहित भगवत्-आत्माकी क्रीडा के विशेष उद्देश्यसे कोई विशेष जीवित देह विशेष रूपसे सृष्ट होता है।

यह भी प्रश्न उठता है, कि किसी विशेष देहमें भगवान्का आत्मारूपसे प्रवेश करनेका अर्थ क्या है ? क्या भगवान् स्वयं उस देहमें बद्ध या सीमायुक्त होता है ? अथवा भगवत्-चेतना क्या उस देहमें क्रियाकारी-मानस-ऐन्द्रियक देहद्वारा विशेषित या सीमाबद्ध होता है ? भगवत्-आत्मा और विशेष-देहमें क्या किसी प्रकारका अभेदाभिमान है ? यदि ऐसा विकार भगवत्-चेतनामें संघटित हो, तो भगवान् पुनः भगवान् ही नहीं रहेगा। वह अन्य साधारण जीवोंके समान एक जीव मात्र होगा। तब तो अवतारके जीवनकाल

तक अवशिष्ट-जगत्को भगवत्-रहित मानना होगा। यदि अवतार-देह की मौत होगई, तो भगवान उस शरीरके बंधनसे मुक्त हो तो भगवानको बन्ध (स्वारोपित) और मुक्तिके अधीन मानना पडेगा। विशेष (अवतार) देहोंमें भगवानके बन्ध और सीमाबद्धपना को ऐसा मानना होगा, कि वह जगत्प्रपंचकी विपत्ति-युक्त अवस्थाके कारण आवश्यक रूपसे उत्पन्न होता है, और उस बद्धावस्थासे वे उसे साधारण अवस्थामें लाते हैं, न कि उनकी जगदतीत महिमा और पूर्णताकी अवस्था से। ऐसी कल्पना स्पष्टतः विचारहीन है।

यदि भगवत्-चेतना मानस-भौतिक देहसे विशेषित या सीमाबद्ध नहीं, यदि भगवान् किसी प्रकारसे देह या मनके साथ स्वयमेव अभेदाभिमान युक्त नहीं, यदि भगवान् देश काल शक्ति और ज्ञानकी सब सीमाओंसे अतीत रहता है, जिससे कि किसी विशेष देहका संबन्ध उनके ऊपर आरोपित न किया जा सके, तब उनका अवतरण और देहमें प्रवेश निरर्थक है। भगवदस्तित्ववादियोंकी धारणाके अनुसार भगवान् विश्वात्मा भी है। वे सब आत्माओंके आत्मा हैं। सब व्यावहारिक-चेतनाओंके मूल चेतन है, वे जगत्में सब जीवोंके जन्म-मरण और जीवनके अन्तिम नियामक है। यदि वे इस उपर्युक्त साधारण अर्थानुसार अवतार देहोंके आत्मारूपसे मान्य हों तो इस धारणामें कोई विशेष अर्थ नहीं उपलब्ध होता, और अवतार देहको अन्य जीवदेहोंसे भिन्न श्रेणीगतरूपसे माननेका कोई हेतु नहीं है।

यह भी कहा जाता है, कि अवतार देह अपर जीवदेहोंकी भाँति कर्मका कोई फल नहीं है। तथा उन अवतार देहोंके द्वारा किए हुए कर्मोंके फलरूपसे वे नवीन देहोंकी (स्थूल या सूक्ष्म) उत्पत्तिके

कारण नहीं होते । यह कथन तब स्वीकार कर सकते थे, जब कि भगवान् का अवतारत्व, अपर यौक्तिक हेतुसे प्रमाणित होता, परन्तु ऐसे प्रमाणके न मिलने पर कुछ विशेष व्यक्तियोंको जो अन्यप्रकारसे जीवोंके समान साधारण स्वभावयुक्त पाए जाते हैं, ऐसा मानना कि वे कर्मनियम के अतीत हैं, तथा व्यावहारिक जगत्के साधारण नियमोंसे अनियमित हैं, यह असमीचीन कल्पना है ।

(ग) अब उपरोक्त तीसरा कल्प जाँचिए । इस मतके अनुसार भगवान् स्वयं इस जगत्में विशेष व्यक्तिरूपसे अवतीर्ण नहीं होता, किन्तु उसकी शक्ति और ज्ञान विशेषका अवतरण विशेष व्यक्तिमें कर डालता है । तब क्या अनन्त-शक्ति और ज्ञान सम्पूर्ण रूपसे उस व्यक्तिमें अभिव्यक्त करता है, या वह आंशिकरूपसे अभिव्यक्त होता है ? इसमें कोई प्रमाण नहीं है, कि ऐसा कोई व्यक्ति अनन्त शक्ति और ज्ञानवाला भी है । भगवानके अवतार रूपसे मान्य प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति और ज्ञान सीमायुक्त पाया जाता है, और आपेक्षिक विशिष्टतायुक्त भी । तथा उनमें अभिव्यक्त ज्ञान और शक्तिका परिमाण अपर व्यक्तियोंके समान ही सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक और अन्य प्रभावोंके अनुकूल सुनियमित प्रयत्नके द्वारा तथा विरोधीप्रभावके विरोधमें तदुपयोगी उद्यमके द्वारा प्राप्त होते हुए पाया जाता है । इसमें कोई उपयुक्त हेतु नहीं है, जिससे अनुमान कर सकें, कि तथा-कथित अवतारोंके ज्ञान और शक्ति, भगवान्के साक्षात् अवतरण करते हैं, और उनके प्रति स्वतः प्रगट होते हैं । परन्तु अन्य सब व्यक्तियोंके ज्ञान और शक्ति उन्हींके द्वारा अर्जित और उनके अपने प्रयत्नके फलरूप हैं । प्रत्युत सार्वजनीन दृष्टिकोणसे

ऐसा माना जाता है, कि ऊंच, नीच, छोटा, बडा, प्रत्येक व्यक्तिमें अभिव्यक्त-ज्ञान और शक्ति भगवानसे अवतरण कराते हैं, उत्पन्न होते हैं। जोकि समस्त ज्ञान और शक्तिका मूल समझा जाता है, इसी हेतुसे यह भी माना जाता है कि वे अवतार भगवत्-ज्ञान और शक्तिके टुकड़े अभिव्यक्त रूप हैं। इस अर्थसे तथा-कथित अवतारों के ज्ञान और शक्ति तथा अपर-व्यक्तियोंके ज्ञान और शक्तिमें कोई मौलिक भेद माननेका अवकाश नहीं। उसी भाँति सर्वसाधारण की दृष्टिमें सब व्यक्तियोंके सब ज्ञान और शक्ति (भगवत्-अवतार रूपसे मान्य व्यक्तिओंके भी) व्यावहारिक अनित्य प्रयत्नसे साध्य और उन्नति प्राप्त हैं वे भिन्न भिन्न स्थलों में केवल आपेक्षिक 'तर' और 'तम' भावसे भेदयुक्त प्रतीत होते हैं, **अतः किसी विशेष व्यक्तिमें किसी विशेष अर्थसे भगवत् ज्ञान और शक्तिका अवतरण युक्तियुक्त रूपसे सिद्ध नहीं होता**। अलबत्ता, कोई पवित्रात्मा अपने ऊपरके आवरणसे विगत होने पर स्वयं अवतार कहला जाता है। परन्तु **निराकार-परमात्माका शरीरग्रहण तथा अवतार लेना असिद्ध है अर्थात ईश्वर का अजन्मा-अविकारी होनेके नाते शरीर धारण करना असंभवित है।**

इन असाधारण एवं अश्रुतपूर्व युक्तिओंसे समायुक्त समालोचनाको सुनकर शास्त्री-महाशय अत्यन्त रंजित और प्रसन्न हुए, सत्य है गुणग्राहक व्यक्ति ही सच्चा व्यक्ति और मनुष्य होता है।

नारनोल—१२।८८१ ता० ५-६-७-८-९-तक

छोटासा उपाश्रय है। मुझे कई दिन ज्वरका सामना करना पड़ा।

जैन और जैनेतरोंकी उचित संख्यामें श्रीगुरुदेवका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। गांधीवंशके भाइओंकी सेवा स्मरणीय है।

निज़ामपुर–८।८८९ ता० १०-४-४५

डाबला–७।८९६ ता० १०-४-४५

डाबलेकी धर्मशाला न जाने क्यों गंदी रक्खी जाती है। वास्तवमें वहाँ के पुजारीमें हिंदुत्वका अभाव है। टका पंथी है।

मांवडा–१०।९०६ ता० ११-४-४५

नीमका थाना–६।९१२ ता० १२-४-४५

भगेगा–६।९१८ ता० १२-४-४५

श्रीमान् ठाकुर बालजीके बंगले में रातके समय धर्मचर्चा हुई। उस समय कई सनातन विचारके पंडित भी थे। उनमें से हरिश्चन्द्र शास्त्रीने यह प्रसंग छेडा कि आप राम, कृष्ण, हनुमान्, चंडी, गणेश आदि भगवान् की मूर्तिकी साधना क्यों नहीं करते?

श्रीगुरुदेव–ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास रखनेवाले सरल हृदयके आत्मसाधकको मूर्तिपूजा या ईश्वर-प्रार्थना आदिसे कोई लाभ नहीं है। यदि साधक अपने अन्धपरम्परासे प्राप्त विश्वासको त्याग कर सरल अथवा निश्छद्म हृदयसे निष्पक्ष होकर विचार करें तो मूर्तिमें ऐसा कोई भी गुण या स्वभाव तथा आकर्षण या धर्म नहीं दिखाई देगा, जिसके आधार पर उसमें ईश्वर रूपसे विश्वास कर सके, या किसीने मूर्ति-पद्धतिसे अपने अभीष्ट (साध्य) को पाया हो। इसी प्रकार यदि ईश्वरमें विश्वास रखकर प्रार्थना की जाय, तो भी वह प्रार्थना स्वरूपतः ईश्वरप्रार्थना नहीं हो सकती। प्रार्थना चाहे घंटे घडियाल या डेरू बजाकर ऊंचे स्वरसे की जाय,

अथवा मनमें ही भावोंको प्रगट किया जाय, दोनों ही प्रसंगोंमें पूजककी यह धारणा है, कि भगवान् इन्द्रियोंके सामने विराजमान है, और हमारी प्रार्थना सुन रहा है। आवाहन-विसर्जन की कल्पना भी की जाती है, परन्तु भगवान् वास्तवमें जैसा माना जाता है (यद्यपि आपके मतमें उसका स्वरूप और अस्तित्व निर्णीत नहीं हो सकता है) उसके अनुसार वह एक दृश्य पदार्थके रूपमें किसी देश काल विशेषमें स्थित नहीं हो सकता। भगवान् देश कालसे अतीत है। जब विचार बुद्धिमें वह सर्वव्यापक और अचिन्त्य निश्चित है, तब पूजा या प्रार्थना के समय जो दृश्य पदार्थके रूपमें चिन्ताका विषय होता है, उसे भगवान् नहीं कहा जा सकता, न वह भगवान्‌की प्रार्थना ही है। किन्तु उसके विरोधी स्वरूपकी अथवा अपने 'प्राइवेट' बनावटी भगवानकी पूजा या प्रार्थना कही जा सकती है। जिसका यथार्थ भगवान्‌से कोई संबन्ध नहीं है। भगवान्‌की पूजा या प्रार्थना का नाम समाजमें एक मनःकल्पित संकेत मात्र है। माता-पिता-भाई बन्धुसे रहित भगवानका नामकरणभी संभव नहीं है। देशकालसे भिन्न वस्तुकी व्यावहारिक संज्ञा सर्वथा असंभव है। जो कुछ उसके नामकी कल्पना की जाती है, उसका भगवान्‌के साथ कोई वास्तविक संबंध नहीं है। यह मात्र एक कल्पनाका अभ्यास है। तब सरल एवं अनुभवी साधक ऐसी देखादेखीकी भूल क्यों करने लगा। अत एव निष्कपट विचारशील हृदयवाले साधकका यह ठीक २ अनुभव है, कि मूर्तिपूजावाली प्रार्थना द्वारा अपने दुःखकी निवृत्ति किसी भावसे नहीं हो सकती। इत्यादि.

इसके पश्चात् सभा बडी अबेर से विसर्जित हुई। सत्य है खींच-तानसे कोई लाभ नहीं ले सकता। गुणग्राहकने सब कुछ पाया है।

काँवट—७।९२५ ता० १३-४-४५

धर्मशालामें भींतों पर न जाने गालिएँ लिखकर लोग क्या प्रतिफल पाते हैं।

श्रीमाधवपुर-१०।९३५ ता० १४-४-४५

धर्मशाला तो बडी है, परन्तु भीतें गालियाँ लिख कर बिगाड दी हैं। क्या मारवाड़ियोंके लिए यह लज्जाकी बात नहीं है।

रींगस जं० ७।९४२ ता० १५-४-४५

रणजीतपुरा ५।९४७ ता० १५-४-४५

चौकी नं० ११२ में मंगली जाटसे पूछ कर ठहर गए।

बद्हाल ६।९५३ ता० १६-४-४५

रामनारायण भाईने दलाली कराई। धर्मशाला नवीन है। आहार-पानी आवश्यकतानुसार मिल गया।

रेनवाल—९।९६२ ता० १७-४-४५

भैंसलाना ७।९६९ ता० १८-४-४५

इस ओर दिगम्बर मुनिओंने अपने कुछ अनुगतोंको यह प्रतिज्ञा कराई है, कि स्था० साधुको आहार-पानी न दिया जाय! कई माताएँ उनकी चुँगलमें फँस गई हैं। इसी हठयोग वश उन्होंने मुझे ग्रामोंमें आहार प्रदान करनेसे स्पष्ट नकारका प्रयोग किया। मैंने मुस्कुराते हुए इन्हें कुछ सद्बुद्धि देकर उनके इस व्यवहार की उपेक्षा की।

फुलेरा जं० १४।९८३ ता० १९-४-४५

कच्छी भाई अमरसिंह भाई ठेकेदार के मकान के पास आते हुए दिन थोड़ासा रहने के कारण उनसे पूछ कर उनके छपरेमें ठहर गए। रात्रिके समय उनके चाचाजीने श्रीगुरुदेवसे जैन धर्मके विषयमें चर्चा छेड़ी जिसका समाधान श्रीगुरुदेवने बड़े विस्तारके साथ कह समझाया जिसका सार पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करता हूं।

"जैन मतके विषयमें भारतीय और यूरपीयन लोगोंको सम्यक्तया परिचय न होनेके कारण यद्वा तद्वा अनेक प्रकार के विचार बांध बैठे हैं। कोई कहता है 'शंकराचार्यके पीछेका है', 'कोई बौद्धमतकी शाखा मानता है', 'कोई नास्तिक कहते हैं'। कोई कहता है 'महावीर या पार्श्वनाथ' इसके चालक हैं। जितने मुँह उतनी ही बात। कोई यह कह डालता है, कि जैन लोग दाँत नहीं धोते। यहाँ तक भ्राँति फैलाई कि ब्रह्मांडको भड़कानेके लिए यह भी लिख मारा कि,—

न पठेद्यावनीं भाषां, प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमंदिरे॥

इस झूठी भ्रमणाका मूल कारण यह प्रतीत होता है, कि भारतवर्षमें पृथ्वीराज-जयचंदकी लडाईके अनन्तर मुसल्मानी राज्य फैलनेके कारण धार्मिक रोकथाम बढीं, तब भारतवासियोंमें नाना-शास्त्रोंका प्रचार बंद हो गया। अविद्याके बढ़नेसे पारस्परिक सम्प्रदायोंमें द्वेष उत्पन्न होना, और किंवदन्तियाँ फैलजाना स्वाभाविक बात है।

एक बार वासुदेव गोविंद आपटे बी. ए. इंदौर निवासी ने बंबईके हिन्दू-यूनियन-क्लब में दिसम्बर १९०३ में जैन धर्मके विषयमें प्रवचन किया था। उसमें उन्होंने एक स्थान पर कहा था कि "जैन धर्मके विषयमें लोग अब तक कुछ ही जान सके हैं। भारतमें अनुमान २४०० वर्षसे पूर्वका यह धर्म प्रचलित है। जैनोंके पूर्वज इतने अच्छे स्मरणीय काम कर चुके हैं, तब भी जैन कौन है? उनके धर्मके तत्त्व क्या हैं? आदि सब इतिहाससे लोग अब भी अनजान हैं, इसका कारण आपसके द्वेषके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?"

इसी प्रकार युरपीयन लोग भी जैन धर्मसे प्रायः अपरिचित से ही हैं। Barth बार्थ अपनी बनाई हुई Religions of India 1892 (भारतके धर्म) नामक पुस्तकमें लिखते हैं, कि "पुरातन कालमें भारतमें ऐसे धर्म थे, कि जिन्होंने बडे २ आदर्श कार्य किए हैं, उनमें जैन एक ऐसा धर्म है, जिसके विषयमें हमको सबसे कम मालूम है।

Weber साहब अपनी लिखी पुस्तक (History of Indian Literature 1892) में लिखते हैं, कि जो कुछ वृत्तान्त हमको जैनमतके विषयमें मिला है, वह केवल ब्राह्मण पुस्तकोंसे मालूम किया है।

परन्तु विश्वके धर्मोंमें जैन धर्म सबसे अधिक पुराना है। जो लोग कहते हैं कि जैनधर्म ६०० ईस्वीमें शंकराचार्यके समकालीन प्रचलित हुआ है। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि माधव और आनंदगिरिने अपने लिखे 'शंकरदिग्विजय' नामक ग्रंथमें और सदानंदने

'शंकरविजयसार' में लिखा है, कि शंकराचार्यने उज्जैनसे बाल्हीक-देशमें जाकर जैनोंसे शास्त्रार्थ किया।

शंकरने स्वयं व्यासकृत वेदान्तसूत्रके भाष्यमें २ अ० के २ पादके ३३ से ३६ सूत्र तक यह लिखा है, कि "जैनमत बहुत काल पहलेसे था" यदि शंकराचार्य के पीछे जैन मत निकला होता, तो शंकर किससे शास्त्रार्थ करने जाता, तथा शंकर को यह लिखनेकी आवश्यकता न होती, कि 'यह मत बहुत पहले से विद्यमान था।'

इसके अतिरिक्त हिंदूशास्त्रोंसे यह भी सिद्ध होता है, कि जैन और बौद्ध दो अलग अलग मत हैं।

वराहमिहिर जो डॉक्टर Kern कर्नके मतानुसार ६०० ईस्वीमें हुआ, अपनी "बृहत्संहिता" नामक पुस्तकमें जैन और बौद्धोंको अलग अलग करता है। यथा—

'बुद्धके उपासक शाक्य, और जिनके उपासक जैन होते हैं'।

'भागवतमें कहा है कि बुद्ध बौद्ध मत और ऋषभदेवजी जैन-मतके प्रचारक थे।

महाभारत अश्वमेधपर्वकी अनुगीता में अ० ४८ श्लो० २ से १२ तक इसी साक्षीकी पूर्ति की है कि 'जैन और बौद्ध अलग अलग हैं'

जिन लोगोंका जैनोंसे कुछ भी संबंध है, या जिन्होंने जैनों का कोई तात्त्विक ग्रंथ पढ़ा है, वे इतना अवश्य जानते हैं, कि जैनोंका मन्तव्य 'स्याद्वाद' और 'नय' है। वे इसी वाद के द्वारा वस्तुसिद्धि करते हैं। इस स्याद्वाद-नयका वर्णन महाभारत शांतिपर्व मोक्षधर्मके अध्याय २३८, ६ वें श्लोक में इस प्रकार है। यथा—

एतदेवं न नैवं च न चोभये नानुमे तथा।
कर्मणोऽविषयं ब्रूयुः सत्वस्थाः समदर्शिनः॥ ६ ॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है, कि जिस समय महाभारतका निर्माण हुआ था, उससे पहले जैन धर्म था।

इसके अतिरिक्त योगवासिष्ठके वैराग्य प्रकरणमें, श्री रामचंद्रजीने जिन [जिन्हें जैन अर्हन् वीतराग कहते हैं] के समान बननेकी इच्छा प्रगट की है। यथा—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु न च मे मनः।
शान्त आसितुमिच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा॥

योगवासिष्ठ अ० १५-श्लो० ८

यदि व्याकरणकी दृष्टिसे निर्णय करें तो शाकटायन व्याकरण पाणिनिसे भी बहुत काल पहलेका माना जाता है। तथा वह जैन था। इसका स्पष्टीकरण मद्रासके प्रेसीडेन्सी कॉलेजके संस्कृत प्रोफेसर गुस्टवा-उपर्ट महोदयने, शाकटायन व्याकरणकी पहली जिल्द, जिसे कि उक्त प्रोफेसर साहब ने १८९३ ई० में छपवाया था। आपने उसकी भूमिकामें भली भाँति सिद्ध किया है कि "पाणिनिने अपने व्याकरणमें शाकटायनका कई जगह वर्णन किया है। उनके मतको भी स्वीकृत किया है। पतंजलिने भी अपने महाभाष्यमें शाकटायनका प्रमाण अंगीकृत किया है। शाकटायनके रचे हुए उणादि सूत्र वर्तमानके वैयाकरणियोंमें सम्यक्तया पाए जाते हैं।"

शाकटायनका नाम ऋग्वेदकी प्रतिशाखा, शुक्ल यजुर्वेद और यक्षकी निरुक्तिमें भी पाया जाता है। बोपदेव द्वारा लिखित

कविकल्पद्रुममें जहाँ आठ प्रसिद्ध वैयाकरणियोंकी संज्ञा वर्णित है, उनमें शाकटायनका नाम भी है। यथा—

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नावपिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा, जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥

इनमें से मात्र इन्द्रका नाम ही शाकटायनने अपने व्याकरणमें सम्मिलित किया है।

शाकटायनकृत 'शब्दानुशासन'के प्रत्येक पाठके आरम्भमें यह वाक्य आता है "महाश्रमणसंघाधिपतेः श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य" अर्थात् महामुनियोंके संघाधिपति, शाकटायन, श्रुतकेवली, देशीयाचार्यका कहा हुआ, इत्यादि। **श्रमण** शब्दका अर्थ निघंटुकारने **जैनमुनि** कहा है।

अब आप ही विचारिए कि शाकटायनका समय कितना पुराना है।

जिस यक्षने अपनी निरुक्तिमें शाकटायनका वर्णन किया है, वह पाणिनिसे कई सौ वर्ष पहले हुआ है। पाणिनि महाभाष्यके रचयिता पतंजलिसे पहले हुआ है। सुना गया है, कि पतंजलिका जन्म ईसाके २०० वर्ष पूर्व हुआ है।

कल्हणकृत राजतरंगिणीके प्रथम सर्ग १०१-१०२ श्लोकमें वर्णित है कि चन्द्रगुप्तके पौत्र अशोकने जिनमतको स्वीकार किया था बादमें वह बौद्ध हो गया।

बौद्ध साहित्यमें यह वर्णन भी मिलता है, कि सिंह सेनापति श्रीज्ञातपुत्र महावीर भगवान्का शिष्य था, कुछ कालके अनन्तर उसने जैन धर्मको छोडकर बौद्ध मत स्वीकार किया।

इन अवतरणोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि जैनमत बौद्धमतकी शाखा नहीं है, न यह शंकरके बादका है। न यह नया मत है। बल्कि बहुत ही प्राचीन धर्म जैनधर्म है। भारतके बडे २ विद्वानोंने इसे स्वीकार किया है।

साथ ही बौद्ध ग्रन्थोंमें तो जैनधर्मका वर्णन पद पद पर वर्णित है। जिससे यह प्रमाणित होता है, कि जैन धर्म बौद्धमतसे अलग है। बौद्ध ग्रन्थोंमें श्रीमहावीर भगवान्‌को ज्ञातपुत्र (निग्गंथ नाठपुत्त) कहा है। आचारांगसूत्र सूत्रकृतांगसूत्र उत्तराध्ययनसूत्र दशवैकालिकादि पवित्र जैनग्रन्थोंमें भी श्रीमहावीर भगवान्‌का पर्याय वाचक नाम ज्ञातपुत्र ही है। भगवान् महावीर प्रभु क्षत्रियोंके ज्ञातवंशमें उत्पन्न हुए थे। क्षत्रियोंकी ज्ञात नामक एक जातिविशेष थी। जिसका नाम पीछे जथरिया पड गया जिसे आज भूमिहार कहते हैं। यह जाति बिहारमें लाखोंकी संख्यामें अब भी है।

बौद्ध-परिभाषामें जैनोंके साधुओंको निग्रन्थ भी कहा है। जैसे निग्गन्थ-नाथपुत्त [निग्रन्थ-ज्ञातपुत्र] अर्थात् निग्रन्थ महावीर।

जेकोबी जर्मनके एक डॉक्टरने Sacred books of the east "पूर्वकी पवित्र पुस्तकें" के ४५ वें भागमें, इन शब्दोंका अर्थ बौद्धमतसे भिन्न जैनपरिभाषामें वर्णित है।

महावग्ग और महापरिनिव्वाणसूत्र आदि बौद्ध ग्रंथों में निग्गंथ का अर्थ जैनमुनि ही किया है। इनके ये सब ग्रंथ ईसा से पहलेके हैं।

श्रीसुधर्माचार्य, भगवान् महावीर प्रभुके पीछे, जो दूसरे केवली हुए हैं, उनका गोत्र और महावीरके निर्वाणका स्थान भी बौद्धोंने लिखा है।

बौद्धोंने निग्रंथ शब्दका उपयोग मात्र जैन मुनिओंके लिए ही किया है । राजा अशोकके आज्ञापत्रोंमें भी निग्रंथ का अर्थ जैनमुनि किया है ।

प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर Maxmuller ने अपनी पुस्तक "षट्दर्शन" Six systems of philosophy और स्वाभाविकधर्म Natural Religions में तथा ओल्डनबर्ग Oldenberg ने अपनी बनाई 'दी बुद्ध' The Buddha नामक पुस्तकमें, नातपुत्र और महावीर को एक ही बात लिखा है। साथ ही यह भी लिखा है, कि नात्तपुत्त जैन अथवा निग्रन्थ मतका प्रचारक था ।

इस अवतरणसे सिद्ध है, कि जैनधर्म बौद्धमतकी शाखा नहीं है ।

यह ही नहीं बल्कि जैनधर्म बौद्धमतसे भी अति प्राचीन है। इसे कॅप्टन सी. एकफोर्ड-लुआर्ड, एम. ए. Captain C. Eckford Luard M. A. ने मध्यप्रदेश Central India की १९०१ के बस्तीपत्रकी रिपोर्ट (यह जैन गज़ट अंग्रेज़ी सप्लीमेंट ता० १६ जून १९०३ में ४ थे पृष्ठपर छपी है) में लिखा है, कि "वर्तमानके प्रयाससे पता चला है, कि जैनधर्म बौद्धमतसे बहुत ही पुराना है, एवं जैन धर्मके उपदेश और आचरण बौद्धमतसे बहुत ही असाधारण हैं। कोलब्रुक Colbroke की भी यही सम्मति है, कि जैनधर्म बौद्धमतसे प्राचीन है। जैनों और बौद्धोंमें निर्वाणके विषयमें भी बड़ा अन्तर है। जैन मानते हैं, कि यही जीव पूर्ण ज्ञान और सुखकी दशामें रहता है। State of eternal perfected consciousness and eternal rectitude stated by M. Gandhi म० गांधीने कहा है ।

और बौद्ध मानते हैं, कि जीव रहता ही नहीं है, cessation of individual existence Rys Davids राई डेविड इस बातकी साक्षी युक्तप्रान्तकी १९०१ की रिपोर्ट बनानेवाले R, Burn आर. बर्न साहब देते हैं।

इस विषयमें अधिक न कहकर, यह बताना चाहता हूं, कि इस कालमें जैनधर्मके आद्यप्रवर्तक Founder न पार्श्वनाथ और न महावीर थे, बल्कि श्रीऋषभदेव प्रभु थे। जिन्हें कि जैन चौवीस तीर्थंकरोंमें प्रथम तीर्थंकर मानते हैं। बौद्ध मतकी पुस्तकोंमें महावीर भगवान्‌को निग्रंथोंका अधिपति कहा है, न कि आद्य प्रवर्तक। डॉक्टर जेकोबीने भी यही मालुम किया है।

जैनशास्त्रोंमें कहा है, कि जब ऋषभदेव क्षत्रियों के इक्ष्वाकु कुलसे निकलकर संसारसे उदासीनभावसे मुनि हुए, तब उनके साथ उग्रकुल-भोगकुल-क्षत्रियकुल और राजन्यकुलके ४००० पुरुषोंने भी, उनके साथ मुनि दीक्षा ली। परन्तु वे सब ऋषभदेवके समान चरित्रका पालन करनेमें पीछे रह गए। इसी लिए मुनिपदसे पतित होकर उन्होंने ३६३ पाखंड मत चला डाले, जिनमें से एक शुक्र भी था। यह बहुत पुराने समयकी बात है।

इससे प्रतीत होता है, कि पुरातन कालमें ज्ञानसंबंधी विचारके अगणित केन्द्रस्थान देश-भरमें व्याप्त थे।

जैनोंके इस कथनको हिंदुमतके शास्त्रोंने भी प्रमाणित किया है। *भागवत पुराण स्कन्ध* ५ *अ०* ३ से ६ तक लिखा है, कि १४ मनु हुए। [तब जैनोंके सूत्रोंमें भी १४ कुलकरके नामसे वर्णित हैं।] जिनमें स्वयंभू मनु पहला था। ब्रह्माने देखा कि मनुष्य संख्या

बढ़ नहीं रही है, तब उसने स्वयंभू मनु और सत्यरूपाको उत्पन्न किया। सत्यरूपा स्वयंभू मनुकी स्त्री हुई। उनके द्वारा प्रियव्रत नामक पुत्र हुआ। इसके अनन्तर क्रमसे अग्निधम और नाभि हुए। नाभिका मेरु देवीसे विवाह हुआ। उनसे ऋषभदेव उत्पन्न हुए। ये वही ऋषभावतार हैं, जिनके विषयमें भागवतकार जैनमतका पहला प्रवर्तक लिखता है। भागवत स्कन्ध २ अ० ७ पृष्ठ ७६ [शालिग्रामकृत भाषा टीका वेंकटेश्वर प्रेस बंबई में छपा है] वहां स्पष्ट लिखा है। कि "श्रीऋषभदेव द्वारा जैनधर्म प्रगटित हुआ"।

श्रीऋषभदेवकी उत्पत्तिकी जाँच पडताल पर विचारिए। सृष्टिके आद्यमें ही जब ब्रह्माने स्वयंभू मनु और सत्यरूपाको पैदा किया। वे उनसे पांचवीं पीढी में हुए। और पहले सत्ययुगके अन्तमें हुए। और अब तक २८ सत्ययुग व्यतीत हो चुके हैं।

इसी भाँति महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म अ० २६३ श्लोक २० वें की टीकामें नीलकंठ महाभारत शान्तिपर्व प्रसिद्ध टीका-कार कहता है, की अर्हत् व जैन, ऋषभदेवके शुभाचरण को देखकर मोहित होगए। इस प्रकार ब्राह्मणमतानुसार ऋषभदेव जैनमतके आद्य प्रवर्तक थे। इन्होंने सबसे प्रथम उन सिद्धान्तोंका प्रचार किया जिनसे जैन धर्मका पाया परिपक्व हुआ।

जहाँतक पता लगा है, हिन्दूशास्त्रोंमें पार्श्वनाथको जैन धर्मका प्रथम प्रवर्तक नहीं बताया। बल्कि ऋषभदेवको ही आदि जिनधर्म-संस्थापक कहा है।

एक यह भी पुष्ट प्रमाण है, कि प्रोफेसर बुहलर Buhler ने एक पुस्तक Epigraphia India नामक लिखी है। इसके पहले और

दूसरे भागमें जैनोंके कई शिलालेख प्रकाशित किए हैं। ये शिलालेख २००० वर्षके पुराने हैं, तथा इनपर इंडो सिथियन Indo sythian राजा कनिष्क-हुवष्क और वासुदेवका संवत् है। इनसे ज्ञात होता है, कि उस समय जैन गृहस्थ स्वयं स्थापत्य कलामें प्रवीण होते थे। देखिए—

नं० 8

(अ A) सिद्धम् म(हा)रा(ज)स्य र(ाजा)तिराजस्य देवपुत्रस्य हुवष्कस्य स ४० (६०?) हेमन्तमासे ४ दि० १० एतस्यां पूर्वायां कोदिए गणे स्थानिकीए कुल अटय(बेरि)याण शाखाया वाचकस्यार्य्य वृद्धहस्ति(स्य)(बB) शिष्यस्य गणिस्य आर्यस्व(र्ण)स्य पुय्यम(न)स्य (व)यतकस्य (क)सकस्य कुटुम्बिनीये दत्ता ये-न धर्मा महाभोगताय प्रीयतां भगवानृषभ श्रीः।

अर्थ—"जय! प्रसिद्ध राजा और महाराजाधिराज देवपुत्र हुवष्क के संवत् ४० (६०?) (शीतकाल) के चतुर्थ मासकी १० दशमी को यह उत्कृष्ट दानवत निवासी का पासक की स्त्री दत्ताने पूज्य वृद्धहस्ति आचार्य जो कोत्तिय गण, शानिकीय कुल, और वेरिओंकी शाखामें से था, उसके शिष्य माननीय स्वरत्न गणिन की प्रार्थना पर किया था, भगवान् तेजस्वी ऋषभ प्रसन्न हों।"

(पृ० ३८६ जिल्द १)

इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे शिलालेख हैं, परन्तु लेखका क्षेत्रकाय बढजानेके डर से इतना ही पर्याप्त समझा गया है।

अब आप विचार सकते हैं, कि अनुमान २००० वर्ष पूर्व ऋषभ पहले तीर्थंकर समझे जाते थे। श्रीमहावीर भगवान्ने विक्रम संवत् ४७० वर्ष पहले मोक्षपद प्राप्त किया, और भगवान् पार्श्वनाथ

प्रभुका निर्वाण उनके निर्वाणसे २५० वर्ष पूर्व हुआ। बस शिला लेख जो इन दो तीर्थंकरोंके कई सौ वर्ष पीछे लिखे गए थे, इस बातको प्रमाणित करते हैं, कि ऋषभ जैन तीर्थंकर थे। यदि महावीर और पार्श्वनाथ जैन मतके आदिम प्रवर्तक होते, तो वे मनुष्य जिन्हें २००० वर्ष हुए ऋषभ का उल्लेख क्यों करते ?

अब इस विषयको अधिक न बताकर यह समझाना चाहते हैं, कि जैनों के मन्तव्य क्या है ?

जैनधर्मका मन्तव्य

१ हम कौन हैं ?

२ यह संसार क्या है ?

३ हमारा कर्तव्य क्या है।

हम कौन हैं ?

हम संसारी आत्मा हैं। अनादि कालसे संसार भ्रमण किया जा रहा है। कठिनाईसे मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। ज्ञान-दर्शन-चरित्रके आधार पर **'अप्पा सो परमप्पा का'** भाव व्यक्त होता है। देहभाव-मोह-भाव-कषायभावसे चावल और छिलके के समान भिन्न होकर, जन्म मरण की परिपाटीसे छूट कर, मुक्तावस्थाको प्राप्त करता है। उस समय 'अहं ब्रह्माऽस्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म' की अवस्था में अनन्तकाल तक रहता है। तब बहिरात्मासे हटकर परमात्मा की अवस्था रहती है। उस पदको पाना ही ईश्वरोपासना है।

अखिल ब्रह्माण्ड अनादि अनन्त वस्तु है। बनना बिगडना इसकी पर्याय हैं। समुद्र नित्य वस्तु है, उसकी लहरें अनित्य हैं। इसी भान्ति यह जगत् अनादि अनन्त है, परन्तु आत्मा और पुद्गलके

मिलने विछुडने वाली पर्याएँ स्वयं बनती बिगड़ती हैं, इस पद्धतिका आदि अन्त न होनेके कारण संसार भी अनादि अनन्त स्वभावसे है। जैसे गीतामें भी यही स्वीकार किया है, कि—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगः स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥
नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥

अर्थ—परमात्मा जगतका कर्तृत्व व कर्म को उत्पन्न नहीं करता, न कर्मफलकी योजना ही करता है, बल्के सब कुछ स्वाभाविक अनादि अनन्त है। परमेश्वर किसीका पाप नही लेता, और न पुण्य ही लेता है। अज्ञान द्वारा ज्ञान पर आवरण छाया रहने के कारण प्राणीमात्र मोहमें फँसे पडे हैं। धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीव ये द्रव्य प्रकृतिके गर्भमें अनादिकालसे हैं। इनका मेल ही संसार है। इनमें ५ जड और जीवात्मा चेतन है

हमारा कर्तव्य है कि हम अपना चरित्र उत्तम बनाएँ, अपने व्यावहारिक-व्यावसायिक-राष्ट्रीय-जातीय-अध्यात्मीय चरित्रमें सब प्रकारसे १६ आना प्रामाणिकता रक्खें। अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह-दिशामान-उपभोगपरिमाण-अनर्थदंड-त्याग-सामायिक-देशावकाशिकप्रौषध-उपवास-अतिथि संविभाग तथा न्यायनिष्ठ-बनना, न्यायसे धन कमाना देशसे द्रोह न करना-उसकी उन्नतिके अर्थ अपना तन-मन-धन और वचन सब कुछ न्यौच्छावर करना-आततायियोंका गंदा प्रवाह सब प्रकारसे रोकना-विश्वमें शान्ति और प्रेम तथा धार्मिकता की लहर पैदा करना हमारा सबका मुख्य कर्तव्य है। अधिकसे अधिक

निरपराध या निष्पाप होना मनुष्यका कर्तव्य तथा जैनधर्मका सार है। इस विवरणको सुनकर उन्हें सन्तोष प्राप्त हुआ।

फुलेरा— ता० २०-४-४५

प्रातः होते ही धर्मशालामें आ गए। थोडी देरके बाद जयपुरसे अमरचंद-धर्मचंद नाहर गोपीचंदजी आदि ८-१० श्रावक दर्शनार्थ आए। धर्मविचार भी वहीं हुआ। यहां कई घर दिगंबर जैनों के हैं। कुंदनलाल शामलाल जैन ने बड़ी सेवा की।

साँभर लेक—५।९८८ ता० २१-४-४५

श्रीमान् फूलचंद्रजी रावका गुढ़े वाले दिगंबर जैनने आहारकी दलाली कराई। यहां रोशनलाल जैन बरसती सेंट्रलबेंक में ख़ज़नचीके पद पर हैं। अगले दिन नगरके श्रावकोंकी प्रार्थना पर शहरके टॉउन-हालमें प्रवचन किया। श्रोताओं ने अद्वितीय सन्तोष प्रगट किया।

यहां नमककी बहुत बड़ी झील है। तीन पाई मन के व्ययसे सर्कारके प्लेटफॉर्म पर नमक आ जाता है। स्टेटमें ।) प्रतिमनके हिसाबसे बिकता है। १॥=) मन का कस्टम ब्रिटिश सर्कार लेती है। इस प्रकार यह छोटीसी झील बर्तानियाको प्रतिवर्ष करोडों रुपयोंकी आय द्वारा खूब सेवा करती है। तब भारतके ग़रीबोंको सागमें नमक डालनेको भी नहीं मिलता। न जाने इस शोषक नीतिका कब अन्त आयगा।

यहां दुर्गंधि इतनी तीव्र है, कि शुद्ध नाक सह नहीं सकता। इसी कारण यहाँ मलेरिया बहुत सताता है। फिर भी विषका कीड़ा विषमें ही जीवित रहता है। यह जयपुर और जोधपुरकी सीमाके योग पर है।

गुढ़ा—५।९९३ ता० २२-४-४५

कुचामन-रोड़—१०।१००३ ता० २३-४-४५

मेरे प्रगुरु श्रीमज्जैन मुनि साधुशिरोमणि श्री१०८ श्रीमन्महर्षिप्रवर श्रीफक़ीरचंद्रजी स्वामीका दीक्षासंस्कार सं० १९४६ में यहां ही हुआ था।

जोधपुर रेल्वेकी हद यहीं से शुरु होती है।

नारनपुरा—१०।१०१३ ता० २४-४-४५

स्टेशनके पास धर्मशाला है, इसीमें निवास किया, दोपहरमें प्रबल अंधेरी आई, कुछ कालके अनन्तर वर्षा भी हुई, मोसिम अच्छी होगई, तापमान शान्त हो गया, कहीं से पं० गणेशीराम शास्त्री आगए, श्रीमहाराजके पास आकर कुछ वार्तालापकी इच्छा प्रगट की। श्रीमहाराजकी अनुमति पाकर ईश्वर की सृष्टिरचनाका प्रसंग छेडा, तथा इसी विषय पर चर्चा बहुत लंबी होगई, अनुमान तीन घंटे बीत गए होंगे। परन्तु शास्त्री महानुभाव अपनी समझ (चिद्वृत्ति) के सच्चे अर्थमें अधिपति थे। अन्तमें श्रीगुरुदेवके युक्ति प्रमाण और तर्कोंको स्वीकार करते हुए कहा कि आपका मन्तव्य सही है, मैं आपकी बातोंका आदर करता हूं।

विषय गंभीर-उपादेय एवं मननीय होनेके कारण इसे अति विस्तारसे पाठकोंके ज्ञानवृद्ध्यर्थ सन्मुख रख रहा हूं, आशा है अनुभूत पुरुषोंको अपूर्व लाभ मिलेगा! ऐसी ज्ञानचर्चाका वितान लोगों में बढ़े तो लोगोंके एकीभाव हो जायँ, वे अँधेरेसे निकल कर प्रकाशमें आ जायँ, तो देशका हित हो, तथा धार्मिक कलह मिट जाएँ।

श्रीगुरुदेवने फ़र्माया कि देवानुप्रिय! यद्यपि अरबों मनुष्यों की यही धारणा है, कि जगत्को ईश्वरने ही बनाया है। परन्तु लोगोंने

इस विषयको अपनी सन्मतिकी कसौटी पर कस कर नहीं देखा। यदि इसकी गंभीर तहमें पहुँचें तो अनायास अपने मुँहसे कह उठेंगे कि मात्र एक ईश्वरको भी दार्शनिकोंने अब तक एक रूप, प्रवाह और प्रकारसे नहीं समझा। देखिए ईश्वरके विषयमें दार्शनिकों तथा धार्मिक समाजोंमें नानाविध मतभेद हैं। जैन-बौद्ध-पूर्वमीमांसक-सांख्य और पातंजल तो किसी ईश्वरविशेषको जगत्कर्ता रूपसे स्वीकार ही नहीं करते। इसके अतिरिक्त ईश्वरको मानने वालों में भी परस्पर बडा मतभेद है। जैसे—

न्याय तथा वैशेषिक सिद्धान्तवादीके मतमें ईश्वर जगत्-रूप कार्यका निमित्त कारण है। जिस प्रकार जुलाहा वस्त्रके उपादान कारण सूत्रोंका परस्पर संयोजक मात्र है। तथा स्वयं उससे भिन्न और स्वतन्त्र है। उसी प्रकार ईश्वर भी जगत्के उपादानभूत परमाणुओंका परस्पर संयोजक है।

पाशुपत-माध्वमतवादी—प्रकृति (जड शक्ति) को जगत् को उपादान कारण मानते हुए ईश्वरको निमित्त कारण मात्र मानते हैं। इनके मतमें नैयायिकोंकी तरह नाना परमाणुओंके संयोगसे कार्यजगत् की रचना नहीं होती। किन्तु एक मूल कारण प्रकृतिसे ही नानाविध संसारकी उपज है।

भास्कर-निंबार्क-चैतन्य और वल्लभाचार्यके मतमें प्रकृति-ईश्वर (अद्वैत ब्रह्म) की शक्ति है। (शक्ति और ब्रह्म चैतन्य अविनाभूत) तथा उस शक्ति-युक्त अद्वैत-चैतन्यका परिणामरूप जगत् भी सत्य है। जिस भाँति जीव सुखदुःखादि का निमित्तकारण होकर भी स्वयं

अभिन्न रहकर उनका उपादान रूपसे भोक्ता है, उसी प्रकार ईश्वर भी अपने परिणामस्वरूप जगत्‌का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है।

कश्मीरी शैवाचार्योंने जगत्‌को अद्वैत चैतन्यका विलास माना है। जिसको वह अपनी स्वतंत्र इच्छासे—(जीवका संकल्प नगरके समान जो सत्य भी नहीं और मिथ्या भी नहीं है) उत्पन्न कर अपने अभिन्न स्वरूपमें भिन्नताका दर्शन करता है।

वीरशैव—श्रीकर-श्रीकंठ-शैव तथा रामानुजके मतमें जगत् प्रकृतिका कार्य है। इसलिए ब्रह्मसे सर्वथा भिन्न है। फिर भी जगत् और प्रकृति ब्रह्मसे अपृथक् संबंधसे सम्बद्ध है। इसी कारण इस मतमें जगत् अद्वैत ब्रह्मका परिणाम, विलास या अध्यास (मिथ्या) नहीं है। जैसे आत्मा बाल्य-युवादि विभिन्न अवस्थाओंसे विशेषणयुक्त होता है, उसी भाँति अपरिणामी ब्रह्म भी जड़चेतनात्मक जगद्रूप विशेषणसे युक्त है।

शंकराचार्यके मतमें सत् स्वरूप अधिष्ठान ब्रह्मका अज्ञान ही मिथ्या जगत्‌की प्रतीति (उत्पत्ति) का कारण है। यथा स्वप्न द्रष्टाका अज्ञान ही मिथ्यास्वप्नप्रपंचका कारण होता है।

स्वप्नविषयक मतभेद

बौद्ध—स्वप्नावस्थामें जिन विषयोंकी उपलब्धि होती है वे सब असत् हैं।

रामानुज—वही स्वप्न-विषय ईश्वररचित होनेके कारण सत्य है।

अख्यातवादी—स्मर्यमाण पदार्थोंका असंसर्गग्रहमात्र होता है, संसर्गानुभव नहीं। अतः स्वप्नज्ञान भ्रम नहीं होता, तथा उसका विषय 'असत्' या पुरोवर्ती 'सत्' भी नहीं, किन्तु 'दूरवर्ती सत्' है।

न्याय-वैशेषिक—स्वप्ननामक भ्रमज्ञान पूर्वानुभूत पदार्थविषयक है। सुतरां जागरितावस्थामें जो विषय दृष्ट या अनुभूत होते हैं, स्वप्नावस्थामें भी उन्हीं सत्पदार्थोंका स्वप्नज्ञान विषय होनेके कारण स्वप्नज्ञान सर्वथा असत् या झूठ नहीं है। इस मतमें अविद्यमान विषय में ही उक्त ज्ञान होनेसे विशिष्टज्ञानरूप स्वप्नज्ञान मान्य है।

वैशेषिकाचार्य-प्रशस्तपाद—चतुर्विध भ्रम में से स्वप्नको चौथा भ्रम मानता है। आत्मा और मनका संयोग तथा संस्कारविशेषसे उत्पन्न अविद्यमान विषयका मानस प्रत्यक्षविशेषरूप कथन स्वप्न है।

न्यायाचार्य—स्वप्नज्ञानको अलौकिक मानस प्रत्यक्ष विशेष मानता है, स्मृति नहीं।

नैयायिक और वैशेषिक, सम्प्रदायका सिद्धान्त यह है, कि स्वप्नके अनन्तर जाग्रत् होने पर "मैंने हस्ती देखा था" "मैंने पर्वत देखा था" इत्यादिरूपसे उस स्वप्नदर्शनका मानस ज्ञान स्मृतिरूपसे उत्पन्न होता है। इससे यह ज्ञात होता है, कि वह स्वप्नज्ञान प्रत्यक्ष विशेष है। यदि वह स्मृतिरूप होता तो "मैंने हस्तीका स्मरण किया था" इत्याकारक ज्ञान होना चाहिए था। किन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिए स्वप्नज्ञानको एक विशेष कोटिका प्रत्यक्ष ज्ञान मानना-ही उचित है। **प्रशस्तपादने** स्वप्नका तीन प्रकारसे कथन किया है।

(१) संस्कारकी पटुता या आधिक्यजन्य।

(२) धातुदोषजन्य—वातपित्तकफदोषसे उत्पन्न।

(३) अदृष्ट—विशेषजन्य।

इनके मतमें सर्वथा अननुभूत-अप्रसिद्ध पदार्थ में संस्कारके न रहनेसे अदृष्टविशेषके प्रभावसे स्वप्नज्ञान उत्पन्न होता है। परन्तु—

न्यायमतमें—स्वप्नज्ञान सर्वत्र संस्कारविशेषसे ही होता है। सुतरां सर्वत्र ही पूर्वानुभूतविषयक है।

मीमांसाचार्य—कुमारिलभट्टने भी विज्ञानवादी बौद्धमतका खंडन करते समय स्वप्नज्ञानको पूर्वानुभूत बाह्यपदार्थविषयक रूप ही समर्थन किया है।

विवर्तवादी—वेदान्त सम्प्रदायवाले-अद्वैतवेदान्ती स्वप्नज्ञानको स्मृतिरूप नहीं मानते, किन्तु अनुभवरूप ही मानते हैं। वे लोग स्वप्नस्थलमें मिथ्याविषयकी सृष्टि और उसकी प्रातिभासिक सत्ता स्वीकार करते हैं। इन अवतरणोंसे आपको ज्ञात होना चाहिए कि स्वप्नकी धारणा भी एक दूसरेसे नहीं मेल खाती।

इन अवतरणोंसे इस परिणाम पर आया जा सकता है कि दर्शनोंकी साधारणसी स्वप्नविषयक धारणा भी एक नहीं है। ईश्वर और सृष्टिके विषयमें तो आप दर्शनकारोंके भिन्न भिन्न मन्तव्योंका भाव जानही गए होंगे, कि उनकी गति-विधि ईश्वर तत्वको पूर्णतया नहीं समझ पाई। यदि आप चाहें तो इनकी ईश्वर सिद्धि नामक धारणाकी सैर भी करा दी जाय। यद्यपि यह इनकी अपनी बालक्रीडा अपनी अपनी तूंबी और अपने अपने रागके समान हास्यास्पद है। इसके अनन्तर उनके मन्तव्योंकी समालोचनाका माप भी आपके सन्मुख रक्खा जायगा, जिसके श्रवण-मननसे आपको अपूर्व आश्चर्य और अनुभव होगा।

शास्त्रीजी! आप अपने मन्तव्य तथा मत पक्षका मोह त्यागकर न्यायनिष्ठा तथा निष्पक्षतासे सारग्राही होनेका साहस करेंगे?

शास्त्रीजी—भगवन्! मुझे तत्त्वका सार और सत्यता से प्रयोजन है। पड़ौसीके मीठे कुँएका पानी कौन न पीना चाहेगा ?

श्रीगुरुदेव—अच्छा तो महानुभाव ! सुनिए। ये लोग ईश्वरकी सिद्धि और उसके स्वरूपविषयक विभिन्न धारणाओंमें अपने साध्यको सही न समझनेके कारण उसकी स्थापना भी अलग अलग करते हैं, जैसे जंगलमें पशुओंकी पगदंडिएँ।

देश-काल और सीमायुक्त पदार्थोंको देखकर, उनके कारण सम्बन्धमें जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है। जगत्में अस्तित्ववान् समस्त पदार्थ कार्यरूप हैं। वे इसीसे यह अनुमान कर बैठते हैं, कि ये किसी उपादान कारणसे उत्पन्न हुए होंगे। जिस कार्यका जो उपादान कारण उपलब्ध होता है, वह भी कार्यरूप होनेके कारण उत्पत्तिशील पाया जाता है। और अन्य किसी उपादानके सम्बन्धसे युक्त होता है। इस प्रकार प्रवाहरूपसे इस कार्य कारण की अवधि या अन्त अवश्य होना चाहिए। परन्तु एक तार्किककी विचार-बुद्धि इस बेतरह को स्वीकार करके तो सन्तुष्ट नहीं होती। या तो इस कारणपरम्पराका अन्त ही नहीं है; अथवा जगत्को ही निष्कारण मान लिया जाय। कार्य यदि निष्कारण हो, तो कार्योंकी विचित्रता सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि निष्कारणता (कारणका अभाव) निर्विशेष होती है। निर्विशेष कारणसे कार्यमें विषमता का होना समुचित नहीं। इस विषमताकी सिद्धिके लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है, कि या तो कारण अनेक हैं, अथवा एक ही कारण नानाशक्तिसमन्वित होगा; तभी उक्त कार्य वैचित्र्यकी सिद्धि हो सकेगी, यदि कार्य निष्कारण हो, तो उसका कादाचित्कत्व-अर्थात्

कभी होना और कभी न होना, परन्तु यह संभव नहीं। या तो सदैव होता ही रहेगा, अथवा कभी भी न होगा। सुतरां सापेक्ष होनेके कारण, कार्यका कारण होना तो आवश्यक है। अतः 'जगत् निष्कारण ही उत्पन्न है' यह निश्चय गले उतरना कठिन है। 'जगत्की कारण परम्पराका कहीं अन्त नहीं है' इस कथन में भी अनवस्था दोष होगा। जगत्के कारणधाराकी परम्पराका अवसान न होनेसे हमारी उक्त (कार्यको देखकर कारण की) जिज्ञासा अपूर्ण रह जाती है। तथा इस पक्षको भी सन्मति स्वीकार नहीं करती।

यदि कारण परम्पराका अन्त मान लिया जाय, तो यह भी विचार उत्पन्न होता है, कि वह अन्तिम कारण चेतन है, अथवा जड? केवल अचेतन कारणमें स्वतन्त्र क्रियाकी स्फूर्ति न होनेसे क्रियाका नियमन न हो सकेगा। तथा सांसारिक क्रम और सामंजस्यका सन्तोषजनक हेतु भी प्राप्त न होगा। अतः सांसारिक क्रियाओंके क्रमको नियमबद्ध देखकर अनुमान करना पडता है, कि कारणमें क्रियाकारी उद्देश्य है, जिससे कि जगत्की उत्पत्ति स्थिति तथा सांसारिक पदार्थोंमें साम्य और सामंजस्य सुरक्षित रहते हैं। इससे यह ज्ञात होता है, कि जगत्का कारण केवल अचेतन नहीं है, किन्तु 'जड़ संसारका उपादान कारण भी जड़ ही होना चाहिए' इस नियमको मानते हुए यह व्यवस्था करनी होगी कि, उक्त अंतिम कारण किसी सचेतन पुरुषके द्वारा नियमित है। उसे भी एक ही मानना पडता है, अन्यथा सृष्टि आदिमें अव्यवस्था होनेका भय है। एक चैतन्य माननेसे भी उसे सर्वशक्तिमान-सर्वविषयक ज्ञानवान् और इच्छावान् भी कह डालना पड़ता है। **परन्तु यदि कारण**

अनेक हों तो उनकी सर्वशक्तिमत्ता निष्फल हो जाती है, कारण एक सर्वशक्तिमान् या तो दूसरे सर्वशक्तिमान्की शक्तिका तिरस्कार कर डालेगा, वरन् उसको सर्वशक्तिमान् मानना भी असंगत होगा। सीमित शक्तिमान् और प्रयत्नवान् होनेके कारण वे इस असंख्य-वैचित्र्यमय विश्वके सृष्टिकर्ता और नियामक न हो सकेंगे। फलतः "जगत्का कारण ईश्वर एक है; सबकी बुद्धिमें यह ही ठसा हुआ है" और लोग इसीको समीचीन मानते आरहे हैं।

ईश्वरस्वरूपविषयक भिन्न विवेचन—उपर्युक्त विचारधाराके द्वारा यह मन्तव्य बननेके पीछे कि जगत्का मूलकारण ईश्वर है, उसीकी विवेचनामें सन्मानवकी बुद्धि इस प्रकार परीक्षामें प्रवृत्त होती है। यथा—

शांकर मतानुयायी कार्यप्रपंचमें जडांशको देखकर अनुमान करते हैं, कि कारण में भी जडांश है, तथा उसके अवधि रूप होनेसे मूलकारणगत-चेतनको ये लोग स्वतः स्वयंसिद्ध एवं प्रकाशक मानते हैं। मूलकारणगत चेतनांश और जडांशमेंसे, चेतनके स्वप्रकाश होनेसे, तथा जडांशको अपने प्रकाशके लिए [निमित्त] चेतनकी अपेक्षा होनेसे दोनों ही अंश स्वतन्त्र कारण नहीं हैं, किन्तु केवल चेतनांश मात्र स्वतन्त्र है। जड पदार्थ चेतनका स्वरूपगत नहीं होसकता, क्यों कि एक द्रव्य अपना भाव नहीं बदलता, अतः चेतन निर्विशेष है, और उससे प्रकाशित जड़कारण एक है, [जडत्वके सर्वत्र समरूपसे प्रतिभान होनेके कारण जडकारण एक है] चेतन स्वरूपतः [अखंड] भासमान होकर जडकार्योंमें विभक्त

रूपसे प्रतिभासित होता है। सुतरां उस अवधिरूप निर्विकार चेतन-तत्वके इस प्रकार भान होनेकेलिए आवरण–विक्षेपात्मक शक्ति (कार्यदृष्टिसे) आवश्यक है। वह अज्ञान है, जिससे उक्त तत्व आवृत [स्वरूपतः प्रतिभात नहीं] होकर अन्यरूप से भासमान [विक्षिप्त] होता है। वह जड़ कारण (अज्ञान) चेतनसे भिन्न ही है। अतः उसे अनिर्वचनीय कहा जाता है। अद्वैतवादी उपर्युक्त प्रकारसे ईश्वर के स्वरूपका विश्लेषण कर एक स्वप्रकाश निर्विशेष चैतन्यस्व-रूप अधिष्ठान [सत्ता स्फूर्तिप्रद कारण] और अनिर्वचनीय अज्ञानको जगत्का कारण मानते हैं। अतः इस मतमें निर्विशेष अधिष्ठान चेतन सहित अज्ञान ही ईश्वर है, तथा वही मायावी जगत्का नियामक है। जैसे जीव अपने मनोराज्य (मिथ्या) का नियामक होता है।

रामानुज–मतमें जगत्के चेतनकारणको निर्विशेष मानकर उसकी निर्विशेषता बनाए रखनेके निमित्त जो आवरण-विक्षेपात्मक जडकारण अज्ञानको मानना पड़ा है, वह सब व्यर्थ है। कारण इस विषयमें प्रत्यक्षादि कोई प्रमाण नहीं है। श्रुतिके द्वारा भी उक्त निर्विशेषताकी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि श्रुतिके शब्द मात्र गुणादियुक्त पदार्थोंका ही बोध करा सकते हैं। निर्विशेषका नहीं। अत एव रामानुज के मतानुसार जगत्का चेतन कारण, निर्विशेष अधिष्ठान रूप चेतन मात्र नहीं, किन्तु वह सविशेष तथा चेतनायुक्त है। चेतन कारणका निर्विशेष होना उचित नहीं तथा जड़का कारण (उपादान) भी जड़ ही होना चाहिए, और जड़ चेतन सर्वथा भिन्न होंगे ही। इसलिए यह स्वीकार करना होगा, कि जगत्का मूलका-

रण चेतनायुक्त है, तथा उससे भिन्न जड़शक्ति (प्रकृति) भी कारण है। ये जड़कार्य और जड़कारण उस चेतनायुक्त सविशेष ब्रह्मसे सर्वथा भिन्न होते हुए भी उस अद्वैत चैतन्यसे अपृथक् संबन्धसे सम्बद्ध हैं। जो उस अद्वैत तत्वके विशेषणरूप हैं। फलतः जिस प्रकार शरीर रूप विशेषण से युक्त जीवात्मा शरीरका नियामक है, उसीप्रकार जीव और जगत्रूप विशेषणसे युक्त, अद्वैत ईश्वर (ब्रह्म) भी अपनेसे पृथक् सिद्ध वास्तव जगत्का नियामक है।

भास्कर-निम्बार्क-चैतन्य और वल्लभाचार्योंका कथन है कि 'दृश्यमान जगत् ब्रह्मका परिणाम है, इनकी स्थापना है, कि ब्रह्मसे जगत् का भेद स्वीकार कर पुनः जगत्को उसका विशेषण मानना समीचीन नहीं। इसमें गौरव होता है सुतरां यह मानना उचित है, कि ब्रह्मसे जगत् स्वभावतः भिन्नाभिन्न (भिन्न और अभिन्न दोनों ही) है। क्योंकि इसमें लाघव है। अतः जिसे जड़ कारण कहते हैं, वह (प्रकृति) ब्रह्मका विशेषणरूप (सर्वथा भिन्न) नहीं, किन्तु शक्तिरूप है, उस शक्तिके सहित चेतनावान् अद्वितीय ब्रह्म ही जड़ रूपसे परिणामको प्राप्त होता है। और वही ईश्वर है। जिस प्रकार सुख-दुःखादिका नियामक जीव, उनसे भिन्न होता हुआ, भी अभिन्न रूपसे उनका अनुभव कर्ता है, उसी प्रकार ईश्वर भी स्वात्मान्तर्गत जगत्प्रपंचका नियामक है।

द्वैतवेदान्ती मध्वाचार्यमतके वादियोंका कहना है, कि निर्विकार ब्रह्मको केवल निमित्तकारण मात्र मानना चाहिए, **उपादान कारण भी माननेसे उसकी निर्विकारता न रहेगी।** सत्कार्यवादके अनुसार उक्त मतमें जो जड़ जगत्का उपादान कारण जड़ प्रकृति है,

उसे ब्रह्मकी शक्ति नहीं, किन्तु ब्रह्मसे सर्वथा भिन्न मानना उचित है। अतः इनके मतमें चेतनकारण (ईश्वर) जड़ कारण (प्रकृति) से सर्वथा भिन्न और जड़ शक्तिका नियामक है, तथा स्वयं निमित्तकारण मात्र है।

नैयायिक तथा वैशेषिक मतका कथन है कि **एक अव्यक्त (रूपादिरहित) शक्ति जगत्-रूपसे परिणामको प्राप्त नहीं हो सकती ।** किन्तु रूप-रस-गन्ध और स्पर्श युक्त चार प्रकारके परमाणु ही कार्य जगत् के आरंभक हैं। कार्य जगत्का मूल उपादान प्रकृति नहीं किन्तु परमाणु हैं। मूल उपादानके विषयमें—

इस प्रकारके मतभेद होनेका कारण यह है, कि उपर्युक्त प्रकृतिवादी कार्य और कारणमें भेदाभेद मानते हैं, तथा मृत्तिकारूप कारणमें घटरूप कार्यको सत् मानते हैं, और इसी नियमके आधार पर जगत् के मूल उपादान (प्रकृति) कारणमें, भी उत्पत्तिसे पूर्व जगत्प्रपंचकी सत् रूपसे कल्पना करते हैं। परन्तु परमाणुवादी (न्याय-वैशेषिक) प्रकृतिवादी-सम्मत-सत्कार्यवादका तिरस्कार करते हुए, कार्य और कारणमें परस्पर भेद मानते हैं। सत्कार्यवादी (प्रकृति-वादी) का कथन है, कि यदि कारणमें सूक्ष्मरूपसे कार्य नहीं रहता, तो उस कारणसे वही कार्य नियमपूर्वक नहीं उत्पन्न होगा। अतः कारणमें कार्यका अवस्थान अवश्य होनेसे कार्यकी उत्पत्ति अभिव्यक्ति मात्र है। अभिव्यक्ति भी सत् की ही हो सकती है असत्की नहीं । यद्यपि कारणमें कार्यका अवस्थान अभेदरूपसे है, एवं कारण भी कार्यमें नित्य अनुगत पाया जाता है, तथापि कार्य और कारणमें भेदका व्यवहार प्रत्यक्ष व्यवहृत होनेसे भेदाभेदात्मक सत्कार्य सुसंगत है।

परन्तु असत्कार्यवादी (नैयायिक) को यह मान्य नहीं। उनके मतमें अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा ही इसकी व्यवस्था हो जाती है।

उन उन कार्यविशेषोंके प्रति उन उन कारण विशेषोंकी कारणता स्वीकार कर लेनेसे ही अतिप्रसंग का निवारण हो जायगा। अतः सूक्ष्म रूपसे अवस्थान को स्वीकार करना व्यर्थ है।

इस प्रकार परमाणुवादके प्रतिष्ठित होनेपर परमाणुके स्थिर और अचेतन होनेसे उनकी गति, संयोग और नियमित क्रियाओंकी सिद्धिके लिए न्याय-वैशेषिक वादियोंने सचेतन क्रियाशील निमित्त-कारण रूप ईश्वरको स्वीकार किया है। इनके मतानुसार ईश्वर कार्य-जगत्का उपादान नहीं किन्तु निमित्तकारण मात्र है। उपादान कारणमें जो रूपरसादि विशेष गुण हैं, उनसे उत्पन्न द्रव्यमें भी वे अनुगामी होते हैं। और उसी जाति वाले में विशेषगुण उत्पन्न होता है। ईश्वरमें रूपरसादि गुण किसी प्रमाणसे भी सिद्ध नहीं है। **यदि ईश्वर किसी कार्यका उपादानकारण बनेगा तो उससे उत्पन्न कार्यमें भी रूपादि गुणोंका अभाव होगा।** ईश्वरमें केवल चेतना ही एक विशेष गुण है, अतः उससे उत्पन्न द्रव्यमें चेतनताकी उत्पत्ति हो सकती है। फलतः रूपादि युक्त जड़ जगत्का उपादान रूपादि गुणयुक्त जड़ द्रव्य ही हो सकता है, चैतन्य ईश्वर नहीं। क्यों कि चेतनका काम चेतन और जड़का कार्य जड़ करता है। यदि ईश्वरको जगत् रूपसे परिणत मानें तो जगतकी चेतनत्वापत्ति भी अनिवार्य होगी। जो कि प्रत्यक्ष विरुद्ध है। वस्तुतः निर्विकार ईश्वर का जगत् रूपसे परिणामको प्राप्त होना ही असंभव है। इसलिए ईश्वर जगत्का केवल निमित्त कारण है और रूपादि गुणयुक्त परमाणु उपादान कारण हैं।

अथ जगदुपादानके विषयमें मतभेदवर्णन

परमाणुवाद–संघातवादी बौद्ध मतमें जडप्रपंच, कर्मनियमित, क्षणिक तथा परमाणुपुंजरूप-परमाणुओंसे अभिन्न है, अर्थात् कार्य, कारणका संघात मात्र है, न कि नवीन उत्पन्न द्रव्य अथवा कारण का परिणाम।

प्रभाकर मीमांसक के मतमें जगत्, कर्मनियमित तथा परमाणुका कार्य (भिन्न) है।

न्याय-वैशेषिक—कार्य जगत्, ईश्वरनियमित (कर्मसहकार) तथा परमाणुका कार्य भिन्न है। इस मतमें उत्पत्तिके पूर्व तथा विनाशके पश्चात् कार्य की उपलब्धिके न होनेसे कार्य सत् नहीं होता। अतः इस मतका नाम वास्तवमें **असत्कार्यवाद** है। अतः कार्योत्पत्तिके पूर्व कारणके अस्तित्वकालमें उसमें कार्य न रहेगा, उसमें कार्यका अभाव रहेगा। इसलिए प्रागभाव मानना पडेगा। इस मतके अनुसार कार्य, कारणमें अनभिव्यक्त रूपसे नहीं रहता, किन्तु वह कारणसे उत्पन्न होते हुए भी उससे सर्वथा भिन्न होता है। कारण और कार्यके बुद्धिभेद-शब्दभेद-कार्यभेद-संस्थानभेद और संख्याभेद आदि भेद होनेसे वे विभिन्न होते हैं। कार्य और कारणका अभेद हो तो उत्पत्तिविरोध-निरोधविरोध-बुद्धिभेदविरोध-व्यपदेशभेद-विरोध-अर्थक्रियाभेदविरोध ऐसे विरोध उत्पन्न होंगे। घटादि कार्य अपनी उत्पत्तिके पूर्व और विनाशके पश्चात् अपने उपादानकारणमें नहीं रहता, तथा स्थितिकालमें अपने कारणके साथ अपृथक् रहता है। इस प्रकार कार्य और कारण दोनोंसे अतिरिक्त इनको परस्पर संबंध युक्त करनेवाला एक समवाय संबंध भी माननीय है। जिससे दो

पृथक् संबंधियोंका अपार्थक प्रतीत हो। इनके मतमें उपादानकारणका नाम समवायिकारण है, उस समवायिकारणसे उत्पन्न कार्यका, अपने कारणके साथ समवायसंबंध रहता है। कार्योत्पत्तिके पूर्वमें सत् (विद्यमान) उपादान कारणसे जो असत् (अविद्यमान) कार्यकी उत्पत्ति है, उसीका नाम आरंभ है। अतः इसी (आरंभवाद के) नामसे यह वाद प्रसिद्ध हुआ है। उक्त असत्कार्यवाद ही इस आरंभवादका मूल है। असत्कार्यवाद ग्रहण करनेसे परिणाम और विवर्तवादकी उत्पत्ति (सिद्धि) नहीं हो सकती। **परिणामवाद**—सांख्यादि दार्शनिक कार्यको सत् मानकर उसके कारणको सत् मानते हैं। कार्य कारणाभिन्न होता है। एक परिणामी मूल उपादानरूप सत् ही कार्यरूपसे अभिव्यक्त होता है। इस मतमें कार्य और उपादान कारण समस्वभाव होनेसे जड़ कार्योंके कारण रूप प्रकृति सिद्ध होती है। ब्रह्मपरिणामवादी वैष्णवलोग ऐसा नियम नहीं मानते। उनका आशय यह है कि यदि उपादानके समस्त गुण उपादेयमें अनुगत हों तो उसको कार्य नहीं कह सकते। अतः ब्रह्म (अद्वितीय चेतन) के समस्तगुणोंका जगत्में अन्वय नहीं है, किन्तु वह केवल सत्ता रूप धर्मसे अपने परिणाम जगत्में अनुगत है। 'घटः सन्' 'पटः सन्' इत्यादि सद्रूपसे जगत्के प्रत्येक अवयवमें ब्रह्म की प्रतीति होती है।

विवर्तवाद—अद्वैत-वेदान्तीलोग भी सत्को अद्वितीय तत्त्व मानते हैं, परन्तु इस मतमें वह परिणामिरूप धर्मी (या नैयायिकादिसम्मत अपरिणामी धर्म) नहीं, किन्तु वह अपरिणामी धर्मी वा अधिष्ठान है। इस मतमें अनिर्वचनीय कार्यका समस्वभाव अनिर्वचनीय परिणामशील उपादान कारण (माया या अज्ञान) माना जाता है।

आरंभवाद—न्यायवैशेषिक लोग कार्यको उत्पत्तिके पूर्व और नाश के बाद असत् मानते हैं। मध्यमें वह सत् होता है। इससे विभिन्नव्यक्ति से भिन्न नित्य-सत्रूप जाति (धर्म) सिद्ध होती है। इस मतमें जाति-व्यक्ति के समवाय मान्य होनेसे व्यक्ति और जातिका सर्वथा भेद होनेसे सत् को परिणामी नहीं मान सकते। समजातीय पदार्थसे समजातीय कार्य दृष्ट होनेसे [लाल सूतसे निर्मित वस्त्र लाल रंगका ही होता है] बहुतसे एकका आरंभ देखनेसे सूक्ष्मसे स्थूलकी उत्पत्ति होनेसे, कार्यप्रपंचका **मूलउपादान रूपादियुक्त (व्यक्त) चार प्रकार का परमाणु अनुमित होता है।**

इस मतमें व्यक्तकार्यकी उत्पत्तिका कारण भी व्यक्त ही होता है, अव्यक्त नहीं। अर्थात् रूपादि गुणविशिष्ट व्यक्त उपादान कारणसे ही व्यक्त कार्यद्रव्यकी उत्पत्ति होती है। अव्यक्त उपादानसे व्यक्त कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। **सांख्यशास्त्रसम्मत** अव्यक्त पदार्थ [रूपादि रहित त्रिगुणात्मिका प्रकृति] व्यक्त कार्यका मूलकारण नहीं। किन्तु रूपादिगुणयुक्त पार्थिवादि परमाणु ही शरीरादि व्यक्त द्रव्यके मूलकारण हैं। प्रत्यक्ष सिद्ध सावयव रूपादिगुणयुक्त [रूप-रस-गंध-स्पर्श] पदार्थका दर्शन कर **न्यायवैशेषिक** लोग उनके अवधिभूत [अवयवधाराका विश्रामस्थल] तथा उन कार्योंसे सर्वथा भिन्न रूपादिगुणयुक्त, निरवयव परमाणु मानते हैं। पृथ्व्यादि चारों भूतों का सर्वापेक्षा सूक्ष्म अंश जिनकी उत्पत्ति, विनाश अथवा अन्य किसी प्रकारका परिणाम या विकार नहीं हो सकता, वेही इनके मतमें परमाणु हैं। इसका **स्पष्टीकरण**—उक्त मतमें अप्रत्यक्ष परमाणु प्रत्यक्ष अवयविके द्वारा अनुमित होते हैं। जलका आहरण

आदि कार्य घटसे होता है, न कि मट्टीके पिंड से, आवरणादिरूप कार्य वस्त्रसे होता है, न कि सूत्र से। अत एव उक्त पिंड और सूत्र से अतिरिक्त घट और वस्त्र मानना उचित है। इस प्रकार अवयवि सिद्ध होनेपर उसके अवयवधारा का कहीं अवश्य विश्राम कहना होगा। यदि इस अवयवधाराका कहीं अवसान न मानकर अनन्त अवयवपरम्परा स्वीकार की जाय, तो पर्वत और सरसोंकी परिमाणकी तुल्यत्वापत्ति होगी। कारण जिस प्रकार अवयवधाराका अवसान न होनेसे पर्वतके अनन्त अवयव होंगे, उसी प्रकार सरसोंकी अवयवधाराका अवसान न होनेपर, सरसोंको भी अनन्त अवयववान् कहना होगा। फलतः दोनोंके अनन्त अवयववान् होनेके कारण तुल्यत्वापत्ति होगी। और इनके परिमाणमें भेदव्यवहार न हो सकेगा। किन्तु पर्वत और सरसोंकी अवयवधाराका किसी स्थानमें विश्रामको स्वीकार करनेपर, पर्वतके अवयव परम्परासे सर्षपकी अवयव परम्पराके संख्याकी न्यूनता सिद्ध होनेसे, पर्वतकी अपेक्षा सर्षपका क्षुद्र-परिणामत्व सिद्ध हो सकता है। अतः यह स्वीकार करना पड़ता है, कि पृथिव्यादि स्थूल भूतोंकी अवयवधाराका विश्राम कहीं न कहीं अवश्य होगा। जिन अवयवों पर उसका विश्राम स्वीकार किया जायगा, वे अवयव या अंशसे रहित होंगे, और उनका उपादान भी कोई न होगा, जिससे उनको नित्य द्रव्य रूप स्वीकार करना होगा, इसप्रकारके नित्य द्रव्य को ही 'परमाणु' कहते हैं, जो सर्वापेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय है। अतः सिद्ध होता है, कि रूपादि गुणविशिष्ट मृत्तिकादि स्थूलभूतसे सजातीय अन्यस्थूलभूत (घटादि द्रव्य) की उत्पत्ति जब प्रत्यक्ष सिद्ध है, तब

इसी दृष्टान्तसे अनुमानप्रमाण द्वारा सिद्ध होता है, कि रूपादिगुण-युक्त भूतात्मक कार्यजगत् भी (इस मतमें आकाश अवयववान् न होनेसे नित्य द्रव्य है) अपने सजातीय सूक्ष्म परमाणुसे ही उत्पन्न होते हैं। अतः पार्थिव-जलीय-तैजस-और वायवीव अतिसूक्ष्म नित्य द्रव्य ही पृथिव्यादि जन्य द्रव्यके मूलकारण हैं। परमाणुओंके अनेक होनेके कारण उनका परस्पर संयुक्त होना आवश्यक है। मिले विना वे स्थूलके आरंभक न हो सकेंगे। इस सम्मेलनके फलस्वरूप क्रमशः स्थूल, स्थूलतर एवं स्थूलतम भंग की रचना होती है।

(नोट) न्याय-वैशेषिक सिद्धान्तको अन्य सब वादों [द्वैतवाद-विशिष्टाद्वैतवाद-अद्वैतवाद] से पृथक् करके बहुत्ववाद भी कह सकते हैं। इस सिद्धान्तके प्रतिपादनकी रीति इस प्रकार प्रदर्शित है। प्रत्येक सिद्धांत की प्रतिष्ठाके निमित्त अन्यान्य सिद्धान्तोंका खण्डन होना आवश्यक है, तब ही उसकी ऐकान्तिक प्रतिष्ठा हो सकती है।

यदि बहुत्ववाद सिद्धान्तका प्रतिपादन करना हो, तो **द्वैत-विशिष्टाद्वैत** और **अद्वैत** सिद्धान्तकी असमीचीनता प्रदर्शित करते हुए, अपने स्थापन किए गए पक्षको दृढतर युक्तितर्क एवं प्रमाणोंके द्वारा परिपुष्ट करना चाहिए। **सांख्य सम्मत द्वैतवादके** खंडनके लिए **बहुत्ववादीको** यह प्रतिपादन करना होगा कि साक्षीपुरुष कोई नहीं है, किन्तु ज्ञानाश्रय जड़ आत्मा ही विषयोंका ज्ञाता है। ज्ञानगुण समवेत आत्मा ही सुखादिमान है। इसलिए सांख्य सम्मत बुद्धिको माननेकी आवश्यकता नहीं। सुखादि आकारमें परिणत होनेवाली बुद्धिको स्वीकार करने पर, ही, उसके प्रतिसंवेदी (अनुभवकर्ता) रूपसे साक्षी चेतनके मानने की आवश्यकता होती है।

उक्त आत्माको स्वयं सुखादि युक्त मानने पर साक्षीचेतन और बुद्धिके विना ही निर्वाह हो जाता है। आत्माकी उपष्टंपके लिए यह प्रतिपादन होना चाहिए, कि चेतनके (ज्ञानगुणसे) अतिरिक्त कोई अपर ज्ञान [नित्यज्ञानस्वरूप] नहीं है, तथा चेतनप्रतिबिंबित अन्तः-करणविशेष भी कोई वस्तु नहीं है। **सांख्यसम्मत** प्रकृतिके खंड-नकेलिए यह सिद्ध करना आवश्यक है, कि **सत्कार्यवाद** समीचीन नहीं। स्थूल और सूक्ष्मकार्यरूपमें परिणाम को प्राप्त होनेवाली वस्तु, कोई उपादान प्रमाणसिद्ध नहीं है। उपरोक्त रीतिसे प्रदर्शन करने पर, द्वैतवादकी असमीचीनता प्रतिपादित होगी।

इसी प्रकार **विशिष्टाद्वैतवाद** के निराकरण के लिए **बहुत्ववादी** को यह प्रतिपादन करना होगा, कि कार्य और कारणमें भेदाभेद नहीं किन्तु सर्वथा भेद है। अत्यन्त भिन्न कार्य और कारण को सम्बद्ध करने वाला समवाय है। अखंड चेतन स्वयं उपादान कारण नहीं हो सकता, तथा उसकी सर्वशक्तिमत्ता भी युक्तिसिद्ध नहीं है। प्रत्युत इस प्रकार का अखंड चेतन और शक्ति दोनों अलीक हैं।

केवलासिद्धान्तके खंडनके निमित्त **बहुत्ववादीको** यह निरूपण करना होगा, कि अन्तःकरणसे अतिरिक्त बाह्यप्रदेशमें ज्ञान या स्फुरण (सत् चित्) नहीं है, अतः अन्तर्बहिर्व्यापक अखंड ज्ञानस्वरूप चेतनके साथ तादात्म्य को प्राप्त होकर, ज्ञेय प्रपंच प्रतिभात होता है, ऐसा सिद्धान्त नहीं माना जा सकता; किन्तु यह मानना उचित है, कि आभ्यन्तर उत्पत्तिशील ज्ञानका विषय होनेके कारण बाह्यप्रपंच कदाचित् ज्ञात और अज्ञात होता है। अतः बाह्य प्रपंचकी स्वतंत्र सत्ता है।

अद्वैतवादी सम्मत-सत्की अखंड स्फुरणरूपता, धर्मीरूपता और उपादानरूपताका खंडन करके यह प्रदर्शन करना होगा, कि सत्ता अनुगत जातिरूप धर्म है, तथा जाति और विभिन्न व्यक्तियोंका समवाय है। साक्षीखंडनके प्रसंगमें यह प्रतिपादन करना चाहिए, कि धारावाहिक ज्ञानस्थलमें एक अनुगत साक्षीचेतनको न मानकर यह निरूपण करना होगा, उक्तस्थलमें साक्षी नहीं, किन्तु अनुव्यवसायज्ञान मात्र है। धाराके अन्तमें उक्त ज्ञानों की उपस्थिति होनेपर ज्ञानत्व सामान्य लक्षण के द्वारा उक्त अनुभव उपपन्न होता है। यह भी प्रतिपाद्य है कि अज्ञानभावरूप और बाह्यदेशस्थ नहीं, किन्तु ज्ञानका प्रागभाव रूप है। बाह्यविषयके ज्ञात होनेके पश्चात् उसकी अपेक्षासे अज्ञातत्वका कथन (अनुमान) होता है; अतः अज्ञान कोई भावरूप पदार्थ नहीं जिसकी (बाह्यदेशस्थ अज्ञानकृत अज्ञातत्व की) सिद्धिके लिए साक्षीचेतनकी आवश्यकता हो। त्रिविध अवस्थाका साक्षी भी कोई नहीं है, क्योंकि सुषुप्तिमें ज्ञानाभाव होता है, जिसका अनुमान व्युत्थित होकर किया जाता है। अज्ञानको ज्ञानाभावरूप प्रदर्शन करने पर ज्ञानका स्वरूप आगन्तुक अर्थात् उत्पाद-व्ययशील एवं मनःसंयोगजनित सिद्ध होगा। ऐसा होनेपर निरवयवका संयोग भी माननीय होगा, जिससे परमाणु संयोगका दृष्टान्त मिलेगा। स्वप्नज्ञान भी केवल स्मृतिरूप है अथवा ज्ञानलक्षणाजनित प्रत्यक्ष है। अत एव इस रीतिसे साक्षीके असिद्ध होनेपर केवलाद्वैतवादी सम्मत ब्रह्म (अखंडचेतनतत्व) खंडित होगा। फलतः स्वप्रकाश चेतनरूप ब्रह्मको जडप्रपंचका विषयीरूप मानकर विषय और विषयीको तमः प्रकाशके समान विरुद्ध स्वभाववान बतलाकर युक्तिविरुद्ध अध्यासको

मान लेना भी अनुचित है। क्योंकि स्वप्रकाश अखंडसाक्षीस्वरूप किसी चेतनका अस्तित्व असिद्ध है। एवं जो विषयी होता है वह विषय नहीं हो सकता यह कल्पना भी समीचीन नहीं है क्योंकि आत्मा विषयी या ज्ञाता होकर भी मानस प्रत्यक्ष का विषय होता है। इसी प्रकार आत्मा और अनात्मा का विरुद्ध स्वभाव नहीं है तथा तादात्म्य भी नहीं है किन्तु आत्मसमवेत ज्ञानके साथ विषयका विषयविषयी संबंध (तात्त्विक) होता है। उक्त सिद्धान्तके अनुसार जगत्का मिथ्यात्व (अध्यास) भी नहीं मानना चाहिए क्योंकि मिथ्यारूप अनुमानके लिए दृष्टांत का अभाव होनेसे व्याप्तिज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। भ्रान्तिस्थलमें भी ऐसी व्यवस्था देनेपर कि ज्ञानलक्षणा सन्निकर्षसे दूरवर्ती विषय भी सन्मुख प्रत्यक्ष रूप से स्थित होकर साक्षात्कारका विषय हो सकता है, अर्थाध्यास (साक्षात्कारके अनुरोधसे अनिर्वचनीय पदार्थकी उत्पत्ति) सिद्ध नहीं होगा और अनिर्वचनीय ख्याति निराकृत होगी। इसी प्रकार स्वप्नमें भी अनिर्वचनीय पदार्थकी उत्पत्ति असिद्ध हो जायगी। सुतरां अनिर्वचनीय कार्यके उपादान रूपसे अनिर्वचनीय भावरूप अज्ञान की कल्पना भी असंगत सिद्ध होगी।

उपरोक्त वादोंको खंडित करनेके पश्चात् बहुत्ववादकी प्रतिष्ठाके लिए पदार्थोंकी परस्पर भिन्नता अव्याहत रहनी चाहिए। 'सत् सत्' इत्याकारक अनुगत प्रतीतिस्थलमें सत्को अनुगत जातिरूपधर्म मानकर (असत्कार्यवाद सिद्ध होनेपर भी सत् धर्मरूप सिद्ध होगा धर्मी नहीं) उसके साथ भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका समवाय मानना चाहिए। समवाय दो पृथक् संबंधियोंसे स्वयं पृथक् रहता हुआ भी उनको

परस्पर अपृथक् रूपसे प्रतीत कराता है। अतः बौद्धसम्मत अनुगत प्रतीतिका भ्रान्तित्व तथा जैमिनि आदि सम्मत सामान्यविशेषात्मक अथवा अनुगत व्यावृत्तात्मक वस्तु एवं अद्वैतवादीसम्मत विशेषका मिथ्यात्व आदि सभी पक्षको युक्तिरहित और असंगत मानकर ऐसा मानना उचित है, कि सामान्य और विशेष ये दोनों सत्य होते हुए भी परस्पर भिन्न हैं।

प्रकृतिवाद—सांख्य तथा पातंजल मतमें **सत्कार्यवाद** मान्य है। उपादान कारणके साथ असंबद्ध कार्यकी उत्पत्ति माननेसे अव्यवस्था [मृत्तिकासे घट की उत्पत्ति होती है पटकी नहीं ऐसी व्यवस्था नहीं] होगी, अथ च कारण और कार्य का संबन्ध वे दोनों रहे विना नहीं रह सकता, अतः उत्पत्तिके पूर्व कार्यको सत् मानना पडेगा, उपादान कारणमें कार्यके अव्यक्त रहनेसे, उत्पत्तिके पूर्व कार्यकी अनुपलब्धि होती है। कार्यकी उत्पत्ति होती है इसका अर्थ यही है, कि पदार्थ अव्यक्त अवस्थाको छोड कर व्यक्त अवस्थाको प्राप्त होते हैं। घट मृत्तिका स्थलमें मृत्तिकाके पिंडादिरूपसे आवृत होनेके कारण उस कालमें उसमें विद्यमान घटकी भी उपलब्धि नहीं होती। कुलालादि कारणके व्यापार द्वारा उक्त आवरणके भंग होनेपर घट अनुभवगोचर होता है। उस सत् कार्यका अव्यक्तावस्थासे व्यक्तावस्थामें आना ही कारणका 'परिणाम' है। उत्पत्तिके पूर्व भी कार्यके सद्रूप सिद्ध होनेपर तथा कारणावस्थामें स्थित कार्य और कारणके भेद से प्रमाणाभावके कारण अभेद सिद्ध होनेसे, उत्पत्तिके बाद भी उन दोनोंका अभेद ही अंगीकार करना उचित है। कार्य और कारणके बुद्धिभेद, शब्दभेद, कार्यभेद, संस्थानभेद, और संख्याभेद आदि

भेद अवस्था (पर्याय) भेद के कारण भी संभव हैं। मृत्तिका और घटका एकवस्तुत्व होनेपर भी पर्याय भेदके कारण अर्थक्रियादि व्यवहारभेद होता है। अतः वह कार्यकारणके भेदको साधित नहीं करता। रूपकी दृष्टिसे घटादि कार्य मृत्तिकादि कारणसे भिन्न है। किन्तु वस्तु की दृष्टिसे कार्य कारणसे अभिन्न है। अतः कार्य और कारणमें भेदाभेद संबंध है, कार्यका कारणसे अभेद होनेपर भी भेद व्यवहार होनेसे रूपान्तर (पर्याय या परिणाम) होता है इस मतमें सत् कारणसे सत् ही कार्य का भेद और अभेद अंगीकार करके परिणाम वाद स्वीकृत होता है।

(नोट) सत्कार्यवादके अनुसार यह भी कहा जाता है कि सूत्रमात्र ही वस्त्र है, अर्थात् सूत्रसे वस्त्र किसी भी प्रकारसे भिन्न द्रव्य नहीं; तथा कोई आकृतिविशेषविशिष्ट सूत्रसमूह को ही वस्त्र कहते हैं। एवं किसी का कथन है कि सूत्रसमूह ही वस्त्ररूपसे अवस्थित होते हैं अर्थात् सूत्रसमूह सूत्ररूपसे वस्त्रसे भिन्न होनेपर भी वस्त्र रूपसे अभिन्न है। और किसीके मतमें सूत्रसमूहसे वस्त्र नामक किसी पृथक् द्रव्यका आविर्भाव नहीं होता। किन्तु उस सूत्रके ही रूपान्तरका आविर्भाव (पर्यायान्तर) और तिरोभाव मात्र होता है। तथा किसीके मतानुसार शक्तिविशेषविशिष्ट सूत्र-समूहवान् वस्त्र है। × × ×

सांख्यमतमें अनागतावस्था या कारणव्यापारकी पूर्वावस्था या अव्यक्तावस्थाका नाम अनुत्पत्ति है। वर्तमानावस्था या व्यक्तावस्थाका नाम उत्पत्ति है, और अतीतावस्था या कारणप्रवेशावस्थाको विनाश कहते हैं। अनागतावस्थामें स्वरूपतः घट सत् है, और व्यक्तावस्थायुक्त रूपसे

असत् है। तथा उत्पत्तिके पीछे स्वरूपतः घट सत् है, एवं अनागतावस्थायुक्त रूपसे असत् है। तथा मुद्‌गरपातादिकेद्वारा घटका अदर्शन होनेपर अतीत अवस्थायुक्त रूपसे सत् और पर्याय—अन्यावस्थायुक्तरूपसे असत् है। इस रीतिसे सभी कार्योंका अवस्था (पर्याय) रूपसे विनाशित्व (वह अवस्था भेद) आगन्तुक है, और स्वरूपतः नित्यत्व सिद्ध होता है, जिसका सरल आशय यह है, कि वस्तु द्रव्यार्थिकी दृष्टिसे नित्य और पर्यायार्थिकी दृष्टिसे उत्पाद और व्ययरूप हैं।

जब यही नियम मूलकारणमें तथा कार्यजगत्‌के साथ उसके संबंध के विषयमें प्रयुक्त होता है, तो यह अनुमान किया जाता है, कि वह एक सर्वथा अव्यक्त पदार्थ है, जिसमें संपूर्ण कार्यजगत् अविभक्तरूपसे अव्यक्त और प्रत्यक्ष अवस्थामें रहता है। जगत्‌की उत्पत्ति उक्त मूल कारणका क्रमिक परिणाम या विकार है, जिससे वह अव्यक्तसे व्यक्तरूपमें अविभक्तसे अधिकाधिक विभक्तरूपमें तथा सूक्ष्म और अप्रत्यक्षसे अधिकाधिक स्थूल तथा प्रत्यक्षके योग्यरूपमें आता है।

(नोट) विकारशील जगतका उपादानकारण भी अवश्य विकारशील ही होगा, इसलिए स्वभावतः विकारशील एक प्रधान नामक मूल कारण (प्रकृति) का अनुमान किया जाता है। प्रधानरूप गुणी नित्य होनेपर भी विकारशील है। उक्त विकार अवस्था ही धर्म या बुद्ध्यादिरूपसे अभिव्यक्त है। उन धर्मोंके लयोदयरूप परिणामको देखकर ही मूल गुणीको परिणामी नित्य कहा जाता है। परिमित पदार्थोंके एक संसर्गी दृष्ट होती तथा जो एक जाति अनुगत (जैसे

मृत्तिकासे अनुगत घट शरावादिके) भेद उनके एक ही तथाभूत कारण दृष्ट होगा । तथा शक्तिपूर्वक प्रवृत्ति दृष्ट होती है, इसलिए व्यक्तकार्य देखकर सामान्यतः दृष्ट अनुमानसे उनके कारण एक अव्यक्त (रूपादिरहित) शक्ति (प्रकृति) सिद्ध होती है । × × ×

उपर्युक्त असत्कार्यवाद अथवा कार्य और कारणका भेदवाद समीचीन नहीं प्रतीत होता । यदि कार्यको कारणसे सर्वथा भिन्न माना जाय और कारणमें अनभिव्यक्त कार्यकी अवस्थिति न स्वीकार की जाय, तो कार्यका अपने समान कारणके अनुरूप ही उत्पन्न होनेका जो नियम है, वह भंग हो जायगा, तथा कोई भी कार्य किसी भी कारणसे उत्पन्न हो सकेगा । अर्थात् अपने अनुरूप कार्यको पैदा करनेके नियमकी उपादानता कारणमें न होनेसे कार्यको देखकर कारणका अनुमान होनेकी जगत्प्रसिद्ध रीतिका सर्वथा लोप हो जायगा । इस दोषकी निवृत्ति के लिए वादीका कथन है, कि कार्यका प्रागभाव कारणमें रहता है, तथा जिस कार्यका प्रागभाव जिस कारणमें रहता है, वहीं से वह उत्पन्न होता है । परन्तु ऐसा प्रागभावका कथन निरर्थक है, कारण वह (अभाव) भावरूप पदार्थ नहीं है, तथा उसमें किसी कार्यको उत्पादन करनेकी शक्ति है, यह भी किसी उपाय से ज्ञात नहीं हो सकता । यदि कार्योत्पत्तिके पूर्व कार्योत्पादनकी शक्ति और सामर्थ्य कारणमें स्वीकृत हो तो कार्यकी अभिव्यक्तिके पूर्व कारणमें कार्यका सूक्ष्मरूपसे अवस्थान भी मानना होगा; फलतः सत्कार्यवादको स्वीकार करना पडेगा । (इस मतमें कार्यके पूर्व कारणमें कोई अवस्थाविशेष या कारणगत शक्तिविशेष अथवा उत्पत्स्यमान कार्यका धर्मविशेषही कार्यका प्रागभाव है) यदि पक्षान्तरमें प्रागभाव

केवल अभावसे भिन्न और कुछ न हो तो उससे केवल कार्यकी अनुपस्थिति या अनस्तित्व ही ज्ञात होगा, तथा किसी विशेष कार्यके प्रति उसका विशेष संबंध मानना सर्वथा निरर्थक ही होगा। फलतः संसारमें कार्य और कारणका सामंजस्यपूर्ण कोई नियत संबंध न रहेगा यदि कारणमें कार्योत्पादन की शक्ति स्वीकृत हो तो कारणसे कार्यको सर्वथा भिन्न न मान सकेंगे। और अन्ततोगत्वा कारण और कार्यमें वास्तविक एकता की प्राप्ति अवश्य होगी। पुनश्च, ऐसा मान्य होनेपर कार्य जगत् का मूल कारण, स्थिरस्वभाववाला, पृथक्, स्वतःसिद्ध तथा अनेक भौतिक परमाणुओंसे युक्त नहीं हो सकता, क्यों की कार्योत्पादनकी शक्ति एक एक परमाणुमें पृथक् पृथक् रूपसे नहीं रह सकती है, और नहीं उनके सम्मेलनमें, तब हम इस सिद्धान्तमें पहुँचते हैं, कि सांसारिक समस्त कार्योंके शक्ति सहित (अव्यक्त) एक मूल उपादानकारण (प्रकृति) है, न कि अनेक परमाणु।

सांख्याचार्योंके मतमें सत्व रजः और तमः इन तीनों परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले गुणोंका परस्पर समभावसे विद्यमान रहना ही अव्यक्त या प्रधान या प्रकृति नामसे कहा जाता है। वह गुणत्रय क्या है? इसके उत्तरमें **सांख्यमतमें** कहा जाता है, कि जगत्के यावत् जड़ पदार्थ ही उक्त गुणत्रयके न्यूनाधिक भावसे मिश्रणके फल हैं। सभी वस्तु सुख (प्रकाश, लाघव, प्रसाद) दुःख (चांचल्य या क्रिया) और मोहरूप (जडता, अवसाद, आवरण) धर्मके आश्रय या मूर्ति हैं। यदि बाह्य विषय सुखादिमय न होते तो बाह्य विषयोंके अनुभवसे कोई भी सुखादि के आस्वादन करनेमें समर्थ नहीं होता। सजातीय वस्तुके साथ सम्पर्क होनेपर सजातीय वस्तुकी

अभिव्यक्ति होती है। सदृश कारणके साथ संपर्क होनेपर सदृश धर्म की अनुभूति देखी जाती है। जैसे गंधकी उपलब्धिके लिए गंधयुक्त (पार्थिव) जो घ्राणेंद्रिय है, उसके साथ गंधविशिष्ट वस्तुका सम्पर्क होना आवश्यक है। रूप की उपलब्धिके लिए रूपयुक्त (तैजस) जो इन्द्रिय अर्थात् चक्षु है, उसके साथ रूप का सन्निकर्ष होना आवश्यक है। इस नियमके अनुसार जब हम लोग अपने मनमें सुखादिकी उपलब्धि करते हैं उस समय सुखादिमय किसी वस्तु के साथ हमारे मनका सन्निकर्ष या संबंध अवश्य होना चाहिए। त्रिगुण अर्थात् सुख दुःख और मोहमय वस्तु जब जिस रूपसे अर्थात् सुख दुःख या मोहरूप से हमारे सन्मुख अभिव्यक्त होता है, उस समय यह हमारे हृदयमें भी यथाक्रमसे सुख, दुःख और मोह को उत्पन्न (अभिव्यक्त) करता है। तात्पर्य यह कि बाह्य प्रकृतिके साथ हमारी आन्तर प्रकृति एकसूत्रसे ग्रथित है; बाह्य प्रकृतिकी अभिव्यक्तावस्था हमारी आन्तरप्रकृतिमें सदृश अवस्था को अभिव्यक्त करती है। अतः सभी वस्तु सुख दुःख और मोह इन तीनों गुणोंके संघात हैं। अतः सांख्य तथा पातंजल मतमें जगत् स्वतन्त्र स्वतःपरिणामी प्रकृतिका कार्य है। जो (प्रकृति) सुखदुःखमोहात्मक जगत्की समजातीय त्रिगुणात्मिका है तथा रूपादि रहित (अव्यक्त) मूल उपादान कारण है। त्रिगुण अनन्त होने पर भी वे न्यायवैशेषिकसम्मत परमाणु नहीं हैं, क्योंकि वे शब्दस्पर्शादि रहित हैं।*

*सांख्य पातंजल सम्मत (द्वैताद्वैतवाद) (कूटस्थ-नित्य या अपरिणामी तत्व और परिणामी-नित्य या परिवर्तन शील तत्व) की सिद्धिके लिए यह प्रतिपादित करना होगा, कि ज्ञेय स्थूल और

सूक्ष्म प्रपंच एक अव्यक्त शक्तिका ही परिणाम है। असत् कार्यवादका खंडन करके सत्कार्यवादके प्रतिष्ठित होनेपर "समन्वयात्" इस हेतुसे जगत् प्रकृतिका परिणाम सिद्ध होगा। उक्त परिणामिनी प्रकृति के साक्षीरूपसे चेतन पुरुषका सिद्ध होना भी आवश्यक है, (वरन् जडाद्वैतवाद सिद्ध होगा) इस रीतिसे जड़ और चेतन दो मूलतत्व उपलब्ध होते हैं। परिणामी और अपरिणामीकी एकता या परस्पर अन्तर्भाव नहीं हो सकता। इस मतके अनुसार चेतनका बहुत्व और अपरिणामित्व सिद्ध होनेपर विशिष्टाद्वैतवाद खंडित होता है, एवं चेतनके अखंड-अद्वितीय और अधिष्ठान रूप सिद्ध न होने पर अद्वैतवाद भी निरस्त हो जाता है।

× × ×

पाशुपत तथा माध्वमतमें उक्त जड प्रकृति उससे भिन्न एक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वात्मचेतनवान् पुरुष (ईश्वर) से शासित और नियमित है, जो कार्यजगत्का निमित्तकारण माना जाता है।

सगुणब्रह्मवाद—भास्कर-निम्बार्क (द्वैताद्वैतवादी) तथा वल्लभाचार्य (शुद्धाद्वैतवादी) के मतमें, प्रकृति स्वतंत्र अथवा उससे भिन्न ईश्वरसे नियमित नहीं है, किन्तु वह ईश्वर (ब्रह्म) की उससे अविनाभूत (एकके विना दूसरा नहीं रहता) शक्ति है। सुतरां जगत् शक्तियुक्त अद्वैतचेतनका परिणाम है। **तांत्रिकसम्मत** शाक्ताद्वैतवाद (शक्तिविशिष्टाद्वैतवाद) तथा **कश्मीरी शैवमत त्रिकाद्वैतवाद** भी इसी प्रकारका है, इन लोगोंके मतमें शक्तियुक्त चेतन अथवा चेतनयुक्त शक्ति ही, जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। इनके मतमें भी कार्य और उपादानकारण का भेदाभेद संबंध

मान्य है। भेदाभेदसे यह अभिप्राय है, कि एक उपादानसे जिन सब कार्योंकी उत्पत्ति हुई है, उन कार्योंमें कार्यगतरूप मात्रसे परस्पर भेद ही है, तथा कार्यगतरूप और उपादानगतरूप द्वारा परस्पर भेदाभेद है, अर्थात् एक घटरूप उपादानसे उत्पन्न जो रूप और रस (कार्य) हैं, वे रूपत्व और रसत्वरूपसे परस्पर भिन्न ही हैं, किन्तु घटत्व और रूपत्व इन दोनों रूपसे रसमें रूपका और रूपमें रसका भेदाभेद है। सुतरां एक ही उपादानसे उत्पन्न नाना कार्योंके दृष्टान्तके द्वारा तथा कारणगत और कार्यगत रूपके द्वारा भेदाभेद सिद्ध होता है। क्योंकि आत्यन्तिक भेद रहने पर गौ अश्वके समान सामानाधिकरण्य बुद्धि उत्पन्न नहीं होती, तथा आत्यन्तिक अभेद होनेपर, भी उक्त प्रत्यय नहीं हो सकता। यथा 'घट घट'। अतः कार्य यदि कारणसे भिन्नाभिन्न न होता तो सामानाधिकरण्य भी नहीं होता, तथा यह 'भेद' या 'अभेद' सामानाधिकरण्यमें अवच्छेदक के भेदसे व्यवहृत नहीं होते। अर्थात् किसी आधारभूत अंशके भिन्न होनेसे भेद तथा अभिन्न होनेसे अभेद नहीं है, किन्तु समकालमें जिस रूपसे भेद है, उसी रूप से अभेद भी है। मृत्तिकाका अपने साथ अभेद ही होता है किन्तु घटके साथ भेदाभेद दोनों ही होते हैं। एक ही कारणसे उत्पन्न अनेक कार्योंमें परस्पर कार्यगत रूपसे भेद है, तथा उपादानगतरूपसे अभेद भी है। (ये दोनों भेद और अभेद परस्पर अविरोधी समसत्ताक हैं और निर्वचनीय भी हैं) अतः भेद होनेसे कार्यकी उत्पत्तिके पूर्व उसकी अनुपलब्धि होती है, और कार्यकारणभाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार भेदाभेदके सिद्ध

होनेसे इस मतमें अद्वैतब्रह्मचेतन, जगत्‌रूप कार्यका भेदाभेदयुक्त परिणामी कारण है ।*

*विशिष्टाद्वैतवादको स्थापन करनेके लिए चेतनका अद्वैतत्व प्रतिपादन होना चाहिए । समवायका खंडन करके जड प्रपंचको चेतनकी शक्ति या गुण रूप सिद्ध करना आवश्यक है । जड़ प्रपंच अद्वय चेतनका यथार्थ विशेषण है, यह प्रतिपन्न होनेपर द्वैत और अद्वैतवाद दोनोंही खंडित हो जायँगे । × × ×

उक्त वादीसम्मत भेदाभेदवादमें भेद और अभेद दोनों ही विचारसिद्ध हैं । किन्तु अचिन्त्य-भेदाभेदवादी चैतन्यके मतमें भेदाभेद विचार सिद्ध नहीं तथापि सत्य है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है, कि घटादि कार्य और उनके उपादानकारण मृत्तिकादि एक रूपसे भिन्न तथा अन्यरूपसे अभिन्न हैं, यह अनुभवसिद्ध है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । अतः उक्त दोनों मतोंके अनुकूल अनेक युक्तितर्कोंके होनेसे उन दोनोंकी सत्यता लोगोंको माननी चाहिए थी, परन्तु युक्ति और तर्क द्वारा उन दोनोंके मतमें अनेक दोष पाए जाते हैं, तब तर्क की निवृत्ति नहीं होती । इसलिए भेद और अभेदकी विचारसिद्धता को अंगीकार कर नहीं सकते । सुतरां उन दोनोंको अचिन्त्य (परन्तु अनिर्वचनीय या मिथ्या नहीं) मानना ही उचित है । अचिन्त्य शब्दसे यह तात्पर्य है, कि वह तर्क का विषय नहीं । संसारके प्रत्येक कारण पदार्थमें अपने अनुरूप क्रियाको उत्पन्न करनेकी शक्ति या सामर्थ्य है, किन्तु विचार द्वारा यह कभी ज्ञात नहीं हो सकता, कि कारणकी शक्ति कारणमें भिन्नरूपसे रहती है, अथवा अभिन्न रूपसे । इसी प्रकार

इस शक्तिसे कार्यका कोई संबंध है, अथवा नहीं; यह भी निर्णय होनेके योग्य नहीं है, तथापि यह कभी नहीं स्वीकार कर सकते, कि ऐसी कोई शक्ति कारणमें अवश्य रहती है। लोग एक पदार्थको दूसरेसे भिन्न या अभिन्नरूपसे कभी नहीं जान सकते, तर्क इसको निर्धारित करनेमें कुंठित होता है। फलतः वे अचिन्त्य हैं, और युक्तितर्कद्वारा सिद्ध न होने पर भी इन्हें स्वीकार करना ही होगा।

उत्पत्तिशील पदार्थोंमें ही जब ऐसी अचिन्त्य शक्ति है, जिसका कि निर्णय कर सकनेमें लोग असमर्थ होते हुए भी उसको निर्विवाद स्वीकार करनेके लिए विवश हैं। तब इसको अवश्य स्वीकार करना होगा कि सब कारणोंका कारण ब्रह्म, जिससे अचिन्त्य शक्तियुक्त अनन्त प्रकारके पदार्थ उदित होते हैं, वह जगतको सृष्टि स्थिति और प्रलयके अनुरूप ही अनन्त शक्तिमान् है, अतएव यद्यपि ब्रह्म स्वतः विकाररहित है, तथापि वह अपनेमें अनन्त परिणामके अनुकूल शक्तिको धारण करता है। फिर भी विचारके द्वारा उसके निर्णय होनेकी संभावना नहीं है, कि ये सब शक्ति इससे भिन्न हैं या अभिन्न? जब ब्रह्म जगत् रूपसे परिणामको प्राप्त हुआ है, तब यह अवश्य मानना पडेगा, कि जगत् ब्रह्मसे अभिन्न है, तथा यह भी अंगीकार करना होगा, कि जड़ जगत् ब्रह्मसे भिन्न है। जब ब्रह्म अचिन्त्य शक्तियुक्त है, तब इसकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे वह अपने कार्य जगत्से भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही रूपसे रह सकता है। 'यह किस प्रकारसे संभव है? यह विषय अचिन्त्य है, अतः विषादका विषय नहीं।*

*जिस प्रकार शंकराचार्यने स्वसम्मत अचिन्त्यशक्तिवाली अनिर्वचनीया माया का आश्रय लेकर जगत्को ब्रह्मका विवर्तरूप समर्थन किया है, तथा उसी अचिन्त्य शक्तिवाली मायाकी महिमासे ही ब्रह्ममें हठात् प्राप्त होनेवाले नानाप्रकारके विरुद्ध कल्पनाओंका समाधान किया है, इसी प्रकार से वैष्णवाचार्योंने भी स्वसम्मत-ईश्वरकी अचिन्त्यशक्ति का आश्रय लेकर जगत्को ईश्वर का परिणामरूप समर्थन किया है। ईश्वरकी अचिन्त्य शक्ति की महिमासे उसमें नानाविरोधी गुणों का भी एकत्र समावेश हो सकता है। अर्थात् ईश्वरमें गुणविरोध नहीं तथा किसी प्रकारका दोष भी नहीं है "विरुद्धसर्वधर्माणामाश्रयो युक्त्यगोचरः"। × × ×

रामानुजके मतमें उपादानकारण मृत्तिकादि अपने कार्यरूप घटादि के आश्रय हैं। इनके मतमें नैयायिकोंके समान दो पृथक् संबंधियोंको अपृथक् रूपसे संबद्ध करनेवाला समवाय संबंध मान्य नहीं है, किन्तु संबंधियों का परस्पर स्वभावसिद्ध अपार्थक्यका ज्ञानमात्र मान्य है। इसी ज्ञानसे ही अद्रव्य पदार्थ भी अनौपाधिक रूपसे द्रव्यको विशेषणयुक्त करता है, तथा उसके स्वरूपभूत रूपसे उसमें रहता है। जब कि समवाय संबंधको अस्वीकार कर आश्रय-आश्रयी संबंधको अंगीकार करते हैं। तब इसका तात्पर्य यह होता है, कि कार्य कोई अपर द्रव्यरूपसे उत्पन्न नहीं होता है, किन्तु वह उपादान कारण की दूसरी अवस्थाकी प्राप्ति मात्र है। कोई भी कार्य अपनी उत्पत्तिके पूर्व कारणमें द्रव्यरूपसे रहता है, किन्तु कार्यरूपसे नहीं। यद्यपि इस रीतिसे यह मानना पडता है, कि असत् ही कार्य सत् रूपसे उत्पन्न होता है, तथापि नैयायिकोंके

समान यह कदापि मान्य नहीं हो सकता है, कि कार्य अपने कारणसे पृथक् अवयवी द्रव्यके रूपसे उत्पन्न होता है। अतः कार्य और कारणका भेद पूर्वकालीन विशेष अवस्थाके संबंधके उल्लेखसे विवेचित होता है; अर्थात् उत्पत्तिका अर्थ कारणकी अभिव्यक्ति या कारणके साथ समवाय नहीं है, किंतु वह उपादान कारणकी एक विशेष अवस्था मात्र है, उपादान कारणकी अपनी विशेषावस्था (कार्य) के साथ सामानाधिकरण्य है, क्योंकि यह विशेष अवस्था उसके आश्रयमें उसके साथ अभिन्न-जैसी होकर रहती है, इसी से कार्य उसका कारणसे भिन्नरूपसे मान्य है, अतः कार्यकारणस्थलमें कारणकी कार्यावस्था आगन्तुक गुण है, और कारणसे अपृथक् सिद्ध है, उक्त रामानुज तथा दक्षिण देशीय शैवमतावलंबियोंके अनुसार जगत्का उपादान कारण प्रकृति है, [ब्रह्मका परिणाम नहीं] परन्तु जगत् (प्रकृति) के साथ ब्रह्मका अपृथक् संबंध होनेसे अद्वैत ब्रह्म जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है।

निर्गुणब्रह्मवाद—शांकरमतमें घटादि कार्य अपने उपादान कारण मृत्तिकादिसे सर्वथा भिन्न अभिन्न या भिन्नाभिन्न मान्य नहीं है, भिन्न नहीं है, क्योंकि दो संबंधि सर्वथा पृथक् है, ऐसी प्रतीति नहीं होती किन्तु 'मृत्तिकाघट' इस रूपसे अभेदका ही अनुभव होता है, कार्य और कारण सर्वथा भिन्नभी नहीं हैं, विलक्षणताके न होनेपर कार्यकारण-भावसे भेद व्यवहार नहीं हो सकता, तथा अत्यन्त अभिन्न दो पदार्थोंका संबंध भी अयुक्त है, परस्पर विरोध होनेसे भिन्नाभिन्न भी मान्य नहीं। यदि मानें तो भाव और अभाव के भी एकदा एकत्र स्थिति को स्वीकार करना होगा। समसत्तावान् भेद और अभेदका एक ही

कालमें एकत्र स्थिति होनेसे विरोध उपस्थित होता है। अतः यह कहना होगा, कि भेदकल्पित या न्यूनसत्ताक (प्रातिभासिक) मात्र है। भेद भिद्यमान वस्तुके ही अधीन होता है, तथा भिद्यमान वस्तु पुनः प्रत्येक ही एक होती है। एक (अभिन्नवस्तु) के अभाव होने पर आश्रय न रहनेके कारण-भेदभी अयुक्त होता है, और एक वस्तु भी भेदके अधीन नहीं होती। "यह नहीं, यह नहीं" इस प्रकारका भेद ग्रहण ही प्रतियोगी-ज्ञानके अधीन होता है, किन्तु एकत्वग्रह और किसी की भी अपेक्षा नहीं रखता। इन सब कारणोंसे अभेदमूलक सापेक्ष या कल्पित भेद मान्य होता है। अभेदकी अपेक्षासे भेदकी कल्पना होती है, तथा 'मृत्तिकाघट' इस स्थलमें मृत्तिकाका अभेद अनुभवसिद्ध है, सुतरां मृत्तिका और घटका कल्पित भेद है। भेदाभेद-स्थलमें पारमार्थिक भेदके रहने से "भूतलमें घट नहीं है" के समान "मृत्तिकाघट नहीं है", ऐसी प्रतीति होती थी। घट और भूतल इन दोनोंमें समसत्ताक भेद है, इस हेतुसे घट और भूतलमें अभेदानुभवका विरोध होता है। अपरस्थलमें समसत्ताक भेद, अभेदानुभवका विरोधी होने के कारण, कार्यकारणस्थलमें भी विरोध प्रदर्शन करेगा, और अभेदकी प्रतीति न होने देगा। समसत्ताकभाव और अभावका विरोध होनेपर कहीं भी विरोध न रह सकेगा, अतः कार्यकारणके भेद और अभेदको भिन्न सत्ताक (वास्तव अभेद अनिर्वचनीय या कल्पितभेद) ही मानना होगा। अद्वैत मतमें कार्य-कारणका भेदाभेद स्वीकृत है, परन्तु उक्त मतमें कारणके व्यतिरेकसे कार्य की सत्ता मानकर उनका परस्पर अभेद मान्य नहीं होता, किन्तु कल्पित भेद माना जाता है। ब्रह्मका इस प्रपंचके साथ भी

इसी प्रकारका संबंध है। जिस प्रकार मृत्तिकाकी सत्ताका भेदक घट नहीं होता, उसी प्रकार जगत् प्रपंच भी व्यावहारिक रूपको प्राप्त ब्रह्मकी पारमार्थिकताका भेदक नहीं होता, अतः इस मतमें ब्रह्म जगत्का अवास्तव-अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। *

*अद्वैतवादकी प्रतिष्ठाके निमित्त निम्नलिखित रीतियोंका अवलंबन करना पडता है। जैसे बहुत्वादके खंडनके समय असत्कार्यवाद, प्रागभाव, कार्यकारणका भेदभाव, समवाय, सत्ताका जातित्व, अनुव्यवसाय, अन्यथाख्याति और अज्ञानका अभावत्व आदि सभी विषयोंका खंडन करना होगा। द्वैतवादके खंडन स्थलमें सत्कार्यवाद, कार्य और कारणका अभेद या भेदाभेद सत्की विभिन्नता या प्रकृतिकी परिणाम रूपसे एकता, पुरुषका बहुत्व और अनधिष्ठानत्व इत्यादि सिद्धान्तोंको निरस्त करना पडेगा। विशिष्टाद्वैतवादका खंडन करते हुए यह प्रदर्शन करना होगा, कि कार्य-कारणका भेदाभेद (उभय-सत्य) मानना संगत नहीं, तथा जड़ प्रपंचको अद्वयचेतनका विशेषण या शक्तिरूप मानना उचित नहीं, ब्रह्म का परिणाम मानना भी असंगत है।

अद्वैतवादने यह शैली स्वीकार की है, कि नानारूप अखिल-विश्व-प्रपंचका अवभासक एवं सत्तादायक एक ही अखंड स्वप्रकाश-तत्व है, ऐसा प्रतिपादन होनेपर अद्वैतवाद बनता है। इसके साथ ही पर प्रकाश्य जगत् की अवास्तविकता सिद्ध होने पर 'केवलाद्वैतवाद' प्रतिष्ठित होगा। इस वादके निरूपणके लिए बाह्यपदार्थोंके स्वरूपका विचार करते हुए, क्रमशः उनके प्रकाशक तत्वमें पहुँचना होगा, तथा आभ्यन्तर (मानसिक) पदार्थोंके विश्लेषणके द्वारा भी उसका भासकत्व सिद्ध करना होगा। इसके अनन्तर उसके विभुत्व और

एकत्वका प्रदर्शन करते हुए यह प्रमाणित करना होगा कि, बाह्याभ्यन्तर परितः ज्ञायमान विश्वप्रपंच स्वतः सत्तावान् नहीं है अतः मिथ्या है । अथवा उक्त रीति से बहिर्देशसे विचारका आरंभ न करके प्रथम ज्ञानके स्वरूपका विवेचन करते हुए, उसका स्वप्रकाशकत्व निर्द्धारित करना होगा; उसके पश्चात् उसका अखंडत्व प्रतिपादन करके विभक्त-प्रतिभासका मिथ्यात्व निरूपण करना होगा ।

सत्ताका बहुत्व सिद्ध न होनेपर अथवा एक ही सत्ता में विभिन्नव्यक्तियों का समवाय सिद्ध न होनेपर बहुत्ववाद स्थापित नहीं हो सकता, साक्षीस्वरूप चेतनमें ज्ञेयधर्मके सिद्ध न होनेसे उसका अखंडत्व अवश्य प्रतिपादित होता है । अतः एक अखंड चेतनमें जीव-ईश्वररूप भेद स्वीकार नहीं किया जा सकता, एवं उससे जड़ जगत्की पृथक्ता भी सिद्ध नहीं होती । कारण ज्ञेयप्रपंच ज्ञानस्वरूपका सापेक्ष है । अतः उससे भिन्न, अभिन्न और भिन्नाभिन्नरूपसे इसका निर्वचन नहीं हो सकता । इस प्रकार ईश्वर, जीव, जगत् आदि बहुत्ववाद का निराकरण कर लेने पर सांख्य सम्मत द्वैतवाद भी सत्कार्यके सिद्ध न होनेसे निरस्त हो जायगा, त्रिगुणात्मक एवं जड़ कार्यप्रपंचका परिणामी कारण भी जड़ और त्रिगुणात्मक होना चाहिए। इस विषयमें यद्यपि सांख्य और वेदान्ती दोनों सहमत हैं, तथापि सत्स्वरूप अधिष्ठान चेतनकी दृष्टिसे त्रिगुणात्मक जड़ कारणको, वेदांती लोग अनिर्वचनीय कहते हैं; एवं कार्यस्वरूपकी दृष्टिसे भी उनके मतमें, परिणामी कारण अनिर्वचनीय है, सत् नहीं । चेतन और जड़ दोनों मूलकारण 'सत् नहीं हो सकते, अतः द्वैतवाद सिद्ध नहीं होता । ऐसे ही द्वैताद्वैत या भेदाभेदभी मान्य नहीं हो सकता । क्योंकि अधिष्ठान

रूप चेतन ही सद्बुद्धिगोचर होता है, जो वास्तव स्वरूप है; उससे भिन्न दृश्यवर्गमें स्वतः सत्ताका अभाव है, अधिष्ठान की अभिन्न सत्ताका सबके साथ अभेद है, सुतरां भेदाभेदवाद (उभयसत्तात्मक) असंगत है । शुद्धाद्वैतवादमें भी जगत्को शुद्धचेतनका परिणाम मानते हैं; चेतन से जड़ अभिन्न नहीं हो सकता, अतः जगत्को माया या अज्ञानका परिणाम मानना उचित है, चेतनका परिणाम नहीं । सुतरां शुद्धाद्वैतवाद भी माननेके योग्य नहीं है । विशिष्टाद्वैत-वादके अनुसार जीव और जगत् अखंड चेतनके विशेषण या शक्तिरूप हैं । परन्तु विशेषणभूत जगत्के सत्य न होनेसे विशिष्टाद्वैत या शक्तिविशिष्टाद्वैत भी माननीय नही हैं । सुतरां विवर्तवाद, केवलाद्वैतवाद, मायावाद या अनिर्वचनीयवाद ही अवशेषमें प्रतिष्ठित रहता है ।

अद्वितीयब्रह्म आरंभकरूप उपादान नहीं हो सकता, क्योंकि अद्वितीय वस्तु के साथ सजातीय द्रव्यान्तर का संयोग अनुपपन्न है । परमाणु द्वयके संयोगके समान असमवायि कारणका लाभ संभव होनेपर ही द्व्यणुकादिक्रमका आरंभ हो सकता है । अद्वितीय उपादानमें यह संभव नहीं अतः कूटस्थ ब्रह्म जगत् का आरंभक उपादान नहीं है । इसी प्रकार ब्रह्म रूप उपादानको परिणामी भी नहीं कह सकते, क्योंकि ब्रह्म कूटस्थ है । कूटस्थ का परिणाम मानने पर उस परिणत कार्य को भी ब्रह्मके साथ अभिन्नस्वरूप मानना होगा, जिससे उसकी जन्म मरण आदि विकार रहित कूटस्थता नहीं रहेगी । अतः ब्रह्म परिणामी उपादान भी नहीं है । अब अविशिष्ट तृतीय पक्ष रह जाता है, कि जड जगत्के चेतन ब्रह्मका विवर्त होनेके कारण, उसके

साथ जगत्का मिथ्या तादात्म्य है, जिससे सद्रूपसे जगत्की उपलब्धि होती है, और ब्रह्मकी कूटस्थता भी अव्याहत बनी रहती है, फलतः इस जगत्का उपादान ब्रह्म विवर्त है।

ईश्वरका कर्तृत्व प्रमाणसिद्ध नहीं है।

इसकी

समालोचना

पूर्वोक्त विचारस्थलमें ईश्वर और उसके सृष्टि रचना सिद्धिके निमित्त सब लोग दो प्रकारका अनुमान करते हैं। जैसे—

(१) जगद्-रूप कार्य को देखकर इसके कारण रूपसे।

(२) नियमित जगत्प्रपंच को देखकर इसके नियामक रूपसे। परन्तु ये दोनों ही विषय **समालोचनीय** हैं।

(१) जगत् कारण रहित है, अथवा इस कारणपरम्परा का कहीं अन्त नहीं है, इन दोनों पक्षोंका तिरस्कार करते हुए कारण परम्पराके अंतिम मूलकारण रूप ईश्वरकी सिद्धि पूर्वोक्त सब मतवादियोंकी विवेचनाके द्वारा प्रदर्शित हुई है। प्रत्यक्ष जगत्में अनुभूत एक कारणके पश्चात् अपर कारणकी उपस्थितिका अवलोकन कर तथा इस कारणपरम्पराके अनन्त होनेकी असंभावनासे यह अनुमान किया गया था कि कोई आदि (मूल) कारण अवश्य है। यह एक ऐसा अनुमान है, जिसको अपने अनुभव राज्यके अन्दर भी नियम रूपसे प्रयोग करना विचार संगत प्रतीत नहीं होता, तो इसको अनुभवसे अतीत राज्यमें किस प्रकार प्रसारित किया जाय, जहां कि कारणकी परम्परा है ही नहीं। अथवा यदि मान भी लिया जाय कि कारणोंकी परम्पराका अनन्त होना असंभव है, तथापि उक्त सिद्धा-

न्तकी प्रतिष्ठाके निमित्त समीचीन युक्तियोंका अभाव होनेसे, उनको केवल कल्पना मात्र कहना होगा, क्योंकि मूल कारणकी कल्पना नाना प्रकारके दोषोंसे दूषित है। मानव बुद्धिके द्वारा साधारणतया ऐसी कल्पना की जाती है, कि ईश्वर अस्तित्ववान् है। किन्तु इसका अस्तित्व कालमें सादिमान् नहीं है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं, या तो यह कि—**ईश्वरका अस्तित्व कालमें है, तथापि आदियुक्त नहीं है, क्योंकि वह अनन्त भूतकालसे चला आ रहा है; अथवा वह कालातीत है, जिसमें आदिका प्रश्न ही नहीं उठ सकता।** प्रथम पक्षमें (ईश्वर काल में है) हमें एक ऐसा पदार्थ मानना पडता है, जो अनन्त भूतकालसे चला आ रहा है। अब यदि एक ऐसा पदार्थ स्वीकार किया जाय जो कालमें रहता है, तथापि उसका कारण नहीं है; तब क्या अन्य पदार्थ (जगत्) ऐसे नहीं हो सकते? यदि ईश्वर भिन्न अन्य पदार्थ भी कारण रहित हों तो उनके उत्पादनके लिए ईश्वरके अस्तित्व को माननेका कोई प्रयोजन नहीं रहेगा। यह कैसे कहा जा सकता है, कि कालमें रहनेवाले तीन (ईश्वर-जीव और जगत्) पदार्थोंमेंसे जीव और जगत्के सृष्टि कर्ताकी आवश्यकता हुई, किन्तु ईश्वर के सृष्टाकी ज़रूरत नहीं हुई। हाँ यदि ईश्वरको कालातीत माना जाय, तब यह अवश्य कह सकते हैं, कालमें रहने वाले समस्त पदार्थोंके सृष्टिकर्ताका होना आवश्यक है, तथा कालातीत होनेके कारण ईश्वरके रचयिताका कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु इस समय प्रथमपक्षका विवेचन कर रहे हैं, कि ईश्वरका अस्तित्व कालमें है।

जगत् केवल स्थिर पदार्थोंसे युक्त नहीं है। इसमें नाना प्रकारकी घटनाएँ या काल जन्य अवस्थाओंका परिणमन होता है। प्रकृत स्थलमें यह कहना होगा, कि ईश्वर ही इन जड पदार्थोंका कारण है, तथा इनमें होनेवाला काल्युक्त जो अवस्थाओं (पर्यायों) का परिणाम है, इनका भी वह मूल कारण है, इससे यह नियम सिद्ध होता है कि प्रत्येक कालजन्य अवस्था किसी ऐसे अन्तिम कारणसे उत्पन्न है, जो काल्युक्त परिणामकी सीमासे बाहर है, वरन् प्रत्येक कारण कालिक अवस्था स्वरूप होगा, और इसीसे उस कारणके भी कारणकी आवश्यकता होगी सुतरां अनवस्था होगी। अतः अनवस्थाके निवारणके निमित्त यह मानना होगा कि अन्तिम मूलकारण कालजन्य विकारसे रहित है। परन्तु यह प्रश्न उठता है, कि ईश्वर किस प्रकार किसी घटनाको विशेषकालमें संघटित करता है, जो पूर्व में नहीं थी? वह घटना क्या इच्छा रूप क्रिया के द्वारा संघटित होती है, जो पूर्व में नहीं थी? तब तो उस इच्छा रूप क्रिया को भी एक घटना कहना होगा, जिसका कोई कारण आवश्यक है। यदि ईश्वर के मनमें स्थित किसी पूर्वकालीन घटना इस इच्छा के प्रति कारण हो, तो इसका कारण अन्य घटना तथा उसका भी अपर इस प्रकार कारण-परम्परा की अनवस्था होती जायगी जिसको वादी ने असम्भव माना है। अतएव यह स्वीकार करना होगा कि ईश्वर स्वयं विकार का उत्पादनकर्त्ता है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि ईश्वर किसी इच्छारूप घटना के बिना ही साक्षात् किसी घटना विशेष को उत्पन्न करता है, अथवा यदि ईश्वर ऐसी इच्छा करता भी है तो उस

इच्छा का कारण, कोई घटना नहीं है[1]। परन्तु क्या यह संभव है कि जो विकाररहित है, वह किसी घटना का सम्पूर्ण कारण हो सके? कोई विकाररहित अवस्था, निःसन्देह किसी निर्विकार घटना का आंशिक कारण हो सकता है, परन्तु विकाररहित कारण से किसी घटना की उत्पत्ति मानना कार्यकारण-नियम के सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि ऐसा होनेपर कार्य को उत्पादन न कर कारण प्रथम रहेगा, और पश्चात् उसको उत्पादन करेगा। ऐसा मान लेने का अर्थ यह होगा कि कार्योत्पत्ति के पूर्व कारण में जो विकाररूपी घटना होती है वह निर्निमित्तक एवं निष्कारण है, अर्थात् कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति मानना होगा।

अब यदि ईश्वर के स्वरूपविषयक प्रथम पक्ष को अस्वीकार करके द्वितीय पक्ष (ईश्वर कालातीत है) की विवेचना की जाय, तो भी यह स्पष्ट है कि कालातीत पदार्थ में काल-जन्य विकार नहीं हो सकता और इस प्रकार से भी वह उपर्युक्त दोष का भागी होता है। साधारणतया ऐसा कहा जाता है कि किसी घटना के होने में तथा उसके द्वारा जगत् के स्वरूप के परिवर्त्तन में कालातीत ईश्वर ही कारण है जो घटना के पूर्व या पश्चात् समस्वरूप (निर्विकार) रहता है[2]। यदि

---

१ यहां पर यह स्मरण रखना चाहिए कि अभी उस सिद्धान्त पर विचार नहीं कर रहे है कि, ईश्वर कालातीत है, किन्तु अभी इस सिद्धान्त की विवेचना हो रही है कि, ईश्वर काल में स्थित होता हुआ भी स्वयं विकाररहित रहकर कैसे किसी घटना तथा कालिक-विकार का कारण हो सकता है।

२ यद्यपि कालातीत ईश्वर में स्वरूपतः पूर्व और पश्चात् का प्रश्न नहीं हो सकता तथापि उक्त कथन का अभिप्राय यह है कि यदि कोई मनुष्य घटना की अपेक्षा से पूर्व काल में स्थित ईश्वर की और पश्चात् काल के ईश्वर की समरूप से ही विवेचना करता है तो वह, निर्भ्रान्त ही समझा जायगा।

ऐसा मान लिया जाय तो उस निर्विकार स्वरूप में विकार को उत्पन्न करने वाला कोई कारण नहीं पाया जाता, जिससे कि उसको जगद्रूप विकार के प्रति कारणरूप से स्वीकार किया जाय। यदि यह कहा जाय कि कारण एकरस ही रहता है और अनेक विचित्र कार्य होते रहते हैं, तो यह स्पष्ट है कि उस एकरस कारण को कार्य-वैचित्र्य के प्रति कारण रूप से स्वीकार करना ही व्यर्थ है। ईश्वर से भिन्न अन्य पदार्थ, यदि किसी विशेष काल में उत्पन्न होते हैं, तो वह घटना (उत्पत्ति) कालातीत ईश्वर के द्वारा संपादित नहीं हो सकती। यदि, पक्षान्तर में ऐसा माना जावे कि उन पदार्थोंकी सत्ताएं सब अतीतकाल से हैं (अर्थात् वे अनन्त भूतकाल से ही सत्तावान हैं) तो वे उनके स्वभाव—उनके प्रारम्भ (विशेष काल के आने पर वे उत्पन्न हो जाते हैं ऐसा स्वभाव) को त्याग करेंगे। फलतः वादी को अपने इस कथन का त्याग करना होगा कि, इन कार्यरूप पदार्थों के सृष्टिकर्त्ता का होना आवश्यक है। यदि यह माना जाय कि, कालातीत ईश्वर के प्रति कालयुक्त घटनाओं की परम्परा भी कालातीत रूप से ही प्रतीत होती है और इसीसे उस पुरुष के नित्य अविकारी इच्छाजनित कार्य हो सकता है, तथापि उक्त दोषों से मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि यदि कालिक रूप से भासमान घटना—परम्परा का वास्तविक स्वरूप कालातीत है, तो उसको घटनाओं की परम्परा भी नहीं कह सकते। और इसीसे कारण—नियम इसमें प्रयुक्त नहीं होता; कारण, कालातीत वस्तु में क्रम के न होने से कार्यकारणभाव नहीं होगा और जिस प्रकार ईश्वर कारणरहित है उसी प्रकार इस घटना—परम्परा को भी कारणरहित मानना होगा, फलतः उक्त तर्क भी व्यर्थ हो जायगा।

अब यदि यह कहा जाय कि, ये सब आपत्तियां यथार्थ हैं, परन्तु ईश्वर का स्वरूप बुद्धि का विषय नहीं होने के कारण, ऐसा भी किसी प्रकार का होना सम्भव है (जो हमको ज्ञात नहीं) जिससे कि वह स्वयं निर्विकार रहता हुआ भी विकार का मूल कारण हो सके। इसके उत्तर में यह कहना है कि लोग केवल ईश्वर के स्वरूप को नहीं जानते ऐसा नहीं है, किन्तु कारण के स्वरूप को भी यथार्थ रूप से नहीं जान सके हैं। हमारे विचार की प्रवृत्ति इस सिद्धान्त के आधार पर हुई कि विकाररहित ईश्वर ही जगत्प्रपञ्च का मूल कारण है; इस पर मेरी आपत्ति यह प्रतिपादित करना चाहती है कि, कोई भी (सम्पूर्ण) कारण विकाररहित नहीं हो सकते हैं। इसमें यदि यह सन्देह हो कि कारण का विकाररहितत्व भी किसी अन्य प्रकार से सम्भव होगा, जिसे लोग नहीं जान सकते; तो इस अद्भुत रीति से जो सम्भव होगा उसे केवल विकाररहित ईश्वर नहीं किन्तु विकार-रहित कारण कहना होगा, तथा उस कारण का स्वरूप भी उस प्रकार का होगा कि जिस प्रकार को बुद्धि असम्भव समझती है। अब, यदि विचारबुद्धि कारण के स्वरूप को यथार्थरूप से नहीं जान सकती जिससे कि उस पर विश्वास कर सकें, तो जगत् के मूलकारण के विषय में किये जाने वाले समस्त तर्क खण्डित हो जाते हैं। यदि लोग कारण के विषय में इस प्रकार अविश्वासी या सन्दिग्ध हों तो इस पर विश्वास करने का कोई अधिकार नहीं रहेगा कि अमुक घटना का कोई कारण अवश्य होगा, अथवा कारण–परम्परा की अनवस्था असम्भव है; क्योंकि इस विषय के समस्त सिद्धान्त उसीके ऊपर निर्भर हैं जो हमारी विचारबुद्धि कारण के विषय में हमलोगों

को कहती है। हम पूर्व ही प्रदर्शित कर चुके हैं कि कारणरहित विकार तथा कारणों की अनवस्था, इन दोनों पक्षों के तिरस्कारपूर्वक ही आदि कारण–विषयक सिद्धान्त प्रतिष्ठित हो सकता है। उपर्युक्त विवेचना के फलरूप से हमको इस निर्णय पर पहुंचने के लिए बाध्य होना पडता है कि, कारणों की अनवस्था रूप दोष से मुक्त होने के लिए, आदिकारण (ईश्वर) को स्वीकार करना निष्फल है तथा कार्य-कारणभाव के आधार पर जगत् के कारण रूप से ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती।

(२) अब हम द्वितीय पक्ष की समालोचना में प्रवृत्त होते हैं कि नियमित जगत् को देखकर इसके नियामकरूप से ईश्वर का होना आवश्यक है। इस विषय का दो प्रकार से विवेचन करना होगा। प्रथम यह कि क्या विश्व नियमित है? तथा दूसरा, यदि है तो उसकी सिद्धि के निमित्त ईश्वर का अनुमान करना कहांतक यथार्थ है। स्वाभाविक घटनाओं में हमलोग, ऐसी असंख्य घटनाओं का अनुभव करते हैं, जिसमें कोई क्रम और नियमन नहीं पाया जाता, प्रत्युत वे अबतक हमारे द्वारा ज्ञात नियमों से सर्वथा विरुद्ध पाये जाते हैं। इसके दृष्टान्त के लिए भूमिकम्प, महामारी, अतिवृष्टि आदि का उल्लेख करना ही यथेष्ट होगा। जगत् के किसी अंश के नियम–ज्ञान से हम अनुमान नहीं कर सकते कि सम्पूर्ण जगत्, किसी उद्देश्यपूर्वक नियमबद्ध है किम्वा सार्वजनीन एक ही नियम से नियमित है। अतएव सम्यक् वस्तु परीक्षण के बिना ही यह अनुमान कर लेना कि सम्पूर्ण जगत् का एक ही नियामक है, युक्तिसंगत नहीं। दुःखपूर्ण और अपूर्णतामय जगत् को देखकर हम यह कैसे अनुमान कर

सकते हैं कि, इसका नियामक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, कृपालु तथा न्यायकारी ईश्वर है। यदि यह कहा जाय कि जगत् वस्तुतः दुःखपूर्ण, नियमरहित तथा विपत्तिपूर्ण नहीं है, परन्तु हम अल्पज्ञ लोगों को ऐसी प्रतीति होती है; तो समालोचक का यह प्रश्न है कि हमारे अनुभव यथार्थ हैं या भ्रान्त? यदि यथार्थ है तो उस अनुभव के आधार पर यह स्वीकार करना होगा कि, वास्तव में जगत् अनियमित ही है। यदि हमारे अनुभव भ्रान्त हों तो कहना पड़ेगा कि हमको जगत् की प्रत्येक वस्तु, घटना तथा क्रिया के नियम और धर्म के निर्णय कर सकने का सामर्थ्य नहीं है। इससे उक्त आपत्ति निवृत्त नहीं होती वरन् अधिक बलवान् होती है। हमलोग भी इस जगत्प्रपञ्च के अंश हैं और यदि ईश्वर इस जगत् का सृष्टिकर्त्ता और न्यायकारी नियामक है, तो वह हमारे अज्ञान और भ्रान्ति के लिए तथा अनियम और विपत्ति के लिए तथा अयथार्थ अनुभवों के लिए तथा उसके फलरूप दुःखों के लिए अवश्य उत्तरदायी होगा। कोई सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान पूर्णपुरुष इस प्रकार के दुःख, अज्ञान, भ्रान्ति और अपूर्णतामय सृष्टि की रचना कर उसे पालन करता है, यह मान्य नहीं हो सकता। यह उसकी सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता, न्यायकारिता और दयालुता के सर्वथा विरुद्ध है कि वह अपने द्वारा रचे हुए जीवों को अपने से ही उत्पन्न अज्ञान, भ्रान्ति और क्लेश से युक्त करे। यहां पर जीवों के कर्मानुसार सुखदुःख को मानकर सृष्टि की व्यवस्था नहीं हो सकती; क्योंकि कर्म भी तो ईश्वर-प्रेरित माना जाता है। ईश्वरवादी यह कैसे अङ्गीकार कर सकते हैं कि, दयालु ईश्वर अज्ञानी जीव को कुत्सित तथा दुःखानुबन्धि कर्म में प्रवृत्त

करता है, अथवा उस प्रकार के कर्म के फलस्वरूप अदृष्ट को, दुःख देने के निमित्त प्रेरणा करता है। अचेतन के द्वारा प्रवर्त्तित होकर अचेतन को प्रवर्त्तन करता है, ऐसा मानने पर अन्धपरम्परा की प्राप्ति होगी। अथवा यदि ऐसा मान लिया जाय कि यद्यपि हमलोग, जगत् के घटनाओं का क्रम, नियम तथा सामञ्जस्य का अवलोकन कर उसकी शासन-प्रणाली का आविष्कार करने में असमर्थ हैं, तथापि वे किन्हीं नियमों के अनुसार ही नियमित होते होंगे जिनके विषय में अबतक लोग अज्ञ हैं। परन्तु फिर भी ऐसा कोई योग्य हेतु प्राप्त नहीं होता, जिससे हम अनुमान कर सकें कि वे नियम, किसी स्वात्मचेतनावान नियामक के ज्ञान और इच्छा की अभिव्यक्ति हैं। लोग, उक्त नियामक व्यक्तिविशेष के उपस्थिति की अनिवार्यता (नियत सम्बन्ध वा व्याप्ति ज्ञान) केवल मनुष्यकृत पदार्थों में ही पाते हैं। कृत्रिम पदार्थों में नियामक की अनिवार्यता-रूप व्याप्तिज्ञान के बलपर (क्योंकि इस स्थल में यह हेत्वाभास है) हम यह अनुमान नहीं कर सकते कि, स्वभावजात (अकृत्रिम वा प्राकृतिक) पदार्थ भी जहां कि क्रम और नियम विद्यमान है—किसी नियामक व्यक्तिविशेष के द्वारा शासित होगा। यदि हम मनुष्यकृत पदार्थों में दृश्यमान व्याप्ति के नियम को, क्रम और नियमन सहित जगत् के समस्त प्राकृतिक कार्यों में प्रयोग करें, तो बाध्य होकर यह अनुमान करना होगा कि, **जगत् का नियमाक व्यक्तिविशेष भी हमारे ही समानस्वभाववाला है;** क्योंकि हमारी अनुभवसीमाके भीतर पाए जाने वाले समस्त नियामक और शासक—जोकि किसी कार्यविशेष में क्रम और साम्य उत्पादन के निमित्त यत्नवान्

होते हैं—अनित्य, ससीम, ज्ञानवान्, इच्छावान् तथा प्रयत्नवान् होते हैं। अत एव हमारे अनुभूत व्याप्तिज्ञान के आधार पर जगत् के नियामक का अनुमान करने का अर्थ यह होता है कि, वह भी सीमित प्रयत्न, इच्छा तथा ज्ञानवान् है, जोकि ईश्वर--धारणा से सर्वथा विरुद्ध है। यहां पर यह भी विचारणीय है कि साधारणतया हमारे द्वारा अनुभूत कार्यकर्त्ता, अपने कार्य में एकवार क्रम, नियम और साम्य का उत्पादन करके उससे पृथक् हो जाते हैं तथा वह कार्य स्वाभाविक ही अपनी नियमित क्रिया के अनुकूल समरूप से होता रहता है, कर्त्ता के सर्वदा उपस्थित रहने की आवश्यकता नहीं। यदि इसी अनुभव के बल पर हमलोग जगत्‌नियामक का अनुमान करने जायँ, तो यह स्पष्ट है कि, उसका वर्त्तमान अस्तित्व सन्दिग्ध हो जाय। और भी, नियमित–जगत् की सिद्धि के लिए नियामक ईश्वर को मानने वालों के पास इस विषय में कोई पुष्ट युक्ति नहीं है कि जिससे हम–अनन्त ज्ञानवान्, सर्वज्ञ नियामक ईश्वर के अनुरूप उसके उद्देश्य और प्रयत्न के साथ नियमित जगत् का समन्वय कर—ईश्वर-धारणा को बलवान् बना सकें। और भी, ईश्वर जगत् का नियामक है, इसको प्रमाणित करने के लिए प्रथम यह प्रदर्शन करना आवश्यक होगा कि, एक नित्यज्ञानवान् पुरुष है जो कर्त्ता है; द्वितीयतः, उसका ज्ञान सम्पूर्ण विषयों को विषय करता है अर्थात् वह सर्वज्ञ है; तृतीयतः, जगत् के नियम के बनाये रखने में उसकी नित्य इच्छा है अर्थात् वह नित्य उपस्थित रहकर इसका पालन करता रहता है; चतुर्थतः, जगत् के नियमन में उसकी प्रवृत्ति किसी विशेष उद्देश्यपूर्वक है - इन सब विषयों के प्रमाणित न होने पर

जगन्नियामक ईश्वर की धारणा प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। जगत् की नियमन-शैली का बारम्बार परीक्षण करके कतिपय वैज्ञानिकलोग इस धारणा पर पहुंचे हैं कि इसका कोई स्वतन्त्रचैतन्य ईश्वर नियामक नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो जगत् का नियमन उसकी स्वतन्त्र इच्छा के आधीन होता, जिससे कि वैज्ञानिक के लिए, किसी भी प्राकृतिक नियम का आविष्कार अथवा निर्णय कर सकना असम्भव हो जाता; सुतरां उक्त उद्देश्य और नित्य इच्छा के साथ सांसारिक नियम का सम्बन्ध प्रतिपादित हुए विना, ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती। आगे चलकर यह प्रदर्शित करेंगे कि ये सब विषय प्रतिपादित होने के योग्य भी नहीं है। और भी, ईश्वर को जगन्नियामकरूप से प्रमाणित करने के लिए यह कहना होगा कि प्रकृतिराज्य में जो सौन्दर्य और क्रम दृष्टिगत होता है वह कार्य है तथा उस कार्य का कोई मूल कारण होना आवश्यक है। इसके द्वारा भी जगन्नियन्ता को सिद्धि नहीं हो सकती, जैसा कि हम पूर्वोक्त कार्य-कारण विषयक प्रकरण में प्रदर्शित कर चुके है। फलतः

जगत्-नियामक रूप से ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती।

दर्शन के (लौकिक अनुभव) द्वारा हमको यह ज्ञात होता है कि, प्रत्येक सावयव पदार्थ, अनित्य तथा कार्यरूप होते हैं। इसी कारण से सावयवत्व और अनित्यता के साथ कार्यत्व का नियत-सम्बन्ध (व्याप्ति) सिद्ध होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्यरूप द्रव्य के निमित्तकारणकी उपलब्धि नियमपूर्वक होने से कार्य और निमित्तकारण का भी नियत-सम्बन्ध (व्याप्ति) सिद्ध होता है। अब इस व्याप्ति-ज्ञान के आधार पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि,

पृथ्वी आदि चारों महाभूत, सावयव होने के कारण, अनित्य हैं और इसी हेतुसे वे कार्य हैं तथा कार्य होने से उनका निमित्तकारण भी अवश्य है। इसी प्रकार हम यह भी देखते हैं कि, कार्य के उत्पादन में जितनी शक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है, निमित्तकारण में वह शक्ति तथा ज्ञान, कार्य की अपेक्षा अधिक रूपमें अथवा समान रूप में होता है, किन्तु न्यून नहीं हो सकता। सुतरां, हमको यह अनुमान करना पडता है कि, जगत्‌रूप कार्य को कर सकता है (सर्वशक्तिमान) तथा समस्त कार्यों का निमित्तकारण, अलौकिक ज्ञान और शक्ति सम्पन्न है, जो सब कार्यों का आद्योपान्त ज्ञाता (सर्वज्ञ) है। वह अवश्यमेव अशरीरी होगा तथा उसके ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न नित्य सीमारहित होंगे; क्योंकि जो शरीरी होता है वह कार्यकोटि के अन्तर्गत होता है तथा उसके ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न भी अनित्य सीमित होते हैं। अत एव नित्य, स्वतः सिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, शरीररहित, सक्रिय ईश्वर को, कार्यजगत् के (संपूर्ण जगत् का नहीं, क्योंकि देशकालादि कार्य नहीं) निमित्तकारण रूप से स्वीकार करना आवश्यक है[1]।

---

१ यहां पर सर्वज्ञ शब्द से यह तात्पर्य है कि, ईश्वर अथवा परमात्मा सर्वविषयक नित्यज्ञान का आश्रय है; किन्तु वह नित्य ज्ञानस्वरूप नहीं है। न्याय तथा वैशेषिक मत में, ईश्वर को नित्यज्ञान स्वरूप, आनन्द स्वरूप तथा वास्तविक निर्गुण रूप से स्वीकार नहीं किया है। कारण, कणाद और गौतम के मत में ज्ञान और आनन्द स्वरूपतः विभिन्न गुण हैं। ज्ञान का स्वरूप आनन्द से स्वरूपतः ही भिन्न है। कणाद (वैशेषिक) ने गुण का लक्षण करते हुए उसको द्रव्याश्रित एवं गुणशून्य कहा है तथा उसके मत में ईश्वर भी द्रव्यपदार्थ के अन्तर्गत होने से, गुणवान् (सगुण) पदार्थ है। गौतम (न्याय) ने ज्ञान को,

समालोचना

अब निमित्तकारण रूप से ईश्वर का अनुमान करनेवाले नैयायिकों के सिद्धान्त की-संक्षिप्त एवं सरल रीति से—समालोचना की जाती है।

(क) प्रत्येक अनुमान में, अनुमान का हेतु (साधन) और साध्य के नियत सम्बन्ध का ज्ञान होना आवश्यक है। इनमें से एक व्याप्य तथा अपर व्यापक होता है। जैसे 'पर्वत वह्निमान् है धूम के होने से' इस अनुमान में साध्य अग्नि है तथा उसको सिद्ध करने का हेतु (साधन) धूम है। धूम के दर्शन से ही पर्वत में वह्नि होने का अनुमान होता है। धूम व्याप्य है तथा अग्नि व्यापक है। इस धूम और वह्नि के व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध को हम पूर्व ही महानस (पाकशाला) में प्रत्यक्ष कर चुके हैं; अतएव पर्वत में उठते हुए व्याप्य धूम को देखकर, हमें व्यापक वह्नि का अनुमान होता है। व्याप्य और व्यापक के नियतसम्बन्ध के ज्ञान को व्याप्ति कहते हैं। दो पृथक् पदार्थों में नियत सम्बन्ध के होने पर वे परस्पर व्याप्य-व्यापक भाव वाले होते हैं। पिता और पुत्र में नियत सम्बन्ध है, अर्थात् पिता के होने पर ही पुत्र हो सकता है, अन्यथा नहीं; अत एव पिता व्यापक है "तथा पुत्र व्याप्य है।" अनुमान काल में प्रथम व्याप्य (धूम) दृष्टिगोचर होता है, पश्चात् (धूम और वह्नि का

आत्मा के गुणरूप से समर्थन किया है। सुतरां, गौतम के मतमें नित्यज्ञान परमात्माका गुण है। इस (न्याय) मत की व्याख्या करते समय भाष्यकार वात्स्यायन ने भी दृढतापूर्वक कहा है कि, ज्ञानादि गुणशून्य ईश्वर किसी भी प्रमाण का विषय न होने के कारण, उस प्रकार के ईश्वर को सिद्ध करने में कोई भी समर्थ नहीं हैं, अर्थात् प्रमाणाभाव से निर्गुण, निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि ही नहीं हो सकती।

नियत सम्बन्ध रूप) व्याप्ति के ज्ञान से, वह्नि का अनुमान होता है। अत एव अनुमान के लिए व्याप्ति-ज्ञानका होना नितान्त आवश्यक है। यह व्याप्ति, दो प्रकार के दृष्टान्तों से निश्चित होता है, एक अन्वयी तथा अपर व्यतिरेकी। 'जहां जहाँ धूम होता है वहां वहां अग्नि होता है यथा पाकशाला (रसोई घर)' यह अन्वयी दृष्टान्त है तथा जहां पर अग्नि नहीं होता वहां धूम नहीं होता यथा 'जलपूर्ण सरोवर' यह व्यतिरेकी दृष्टान्त है। प्रथम में साध्य (वह्नि) और हेतु (धूम) एक ही स्थल में रहते हैं; तथा द्वितीय में साध्य के अभाव से हेतु का अभाव होता है। प्रथम अन्वय व्याप्ति कहलाता है तथा द्वितीय को व्यतिरेक व्याप्ति कहते हैं[1]।

---

१ व्यतिरेक का अर्थ होता है "अभाव"। उक्त दृष्टान्त के द्वारा यह निश्चय करने पर कि, 'साध्य (अग्नि) के व्यतिरेक से हेतु (धूम) का भी व्यतिरेक होता है, हमको यह निश्चय उत्पन्न होता है कि साध्यर्म के अभाव का व्यापक जो हेतु का अभाव है उसका प्रतियोगी हेतु पदार्थ है! व्यतिरेकी दृष्टान्त के अभाव को साध्य के व्यापकरूप से निश्चय कर लेने पर, अन्वयी दृष्टान्त से यह निश्चय होता है कि, उक्त हेतु के अन्वय का व्यापक साध्य (अग्नि) है। इन दो प्रकार के (अन्वयी और व्यतिरेकी) दृष्टान्तो से प्रथम व्याप्ति का (अग्नि और धूमके नियत सम्बन्ध का) निश्चय होता है, पश्चात् पर्वत में धूमको देखकर हम, उक्त अन्वयीव्याप्ति के आधार पर वह्नि का अनुमान करते हैं। (यह नैयायिकमत है. परन्तु मीमांसक और वेदान्तसम्प्रदायवाले उक्त "केवलव्यतिरेकी" को अनुमान का कारण न मान कर, उसको पृथक् "अर्थापत्ति प्रमाण" रूपसे ही स्वीकार किया है। उनके मत में, जहां पर भी अनुमान होता है, वहां अन्वयव्याप्ति ज्ञान से ही होता है। अतएव 'अन्वयी' को ही अनुमान प्रमाण कह सकते हैं, व्यतिरेकिको नहीं)।

यदि अनुमान का हेतु, साध्य की व्याप्तिविशिष्ट तथा पक्ष में (पर्वत में) रहे, तो वह हेतु यथार्थ होता है और हेत्वाभास (अयथार्थ) से सर्वथा भिन्न

कार्य के निमित्त कारणरूप से ईश्वर का अनुमान तब हो सकता था, जब कि, किसी कार्यविशेष के साथ अशरीरी सर्वज्ञ ईश्वर का कर्त्तारूप से नियत–सम्बन्ध का ज्ञान हमको प्रत्यक्ष होता। जगत् निःसन्देह हमको प्रत्यक्ष है, किन्तु ईश्वर नहीं। यदि ईश्वर भी साक्षात् अनुभव का विषय होता तो हमको उसके साथ जगत् के नियत सम्बन्ध का ज्ञान होता, तथा इस व्याप्ति के आधार पर हम ईश्वर को निमित्त कारणरूप से अनुमान कर सकते थे। उस अवस्था में ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता भी नहीं रहती तथा ईश्वर–विषयक जो विभिन्न मत प्रचलित हैं, इनका भी अभाव होता। ईश्वरवादियों का, अनुमान के द्वारा ईश्वर को प्रमाणित करने का जो प्रयास है, इसीसे यह प्रमाणित होता है कि वह साक्षात् अनुभव का विषय नहीं है। जगत् ही केवल अनुभव-

---

होता है। अन्वय–व्यतिरेकी अनुमान में निम्नलिखित पांच धर्मवाला हेतु यथार्थ होता है। (१) हेतु का पक्ष में रहना आवश्यक है; (२) पक्ष को छोड़ कर हेतु वहां भी रहता है जहां कि साध्य हो; (३) जहां पर साध्य का अभाव है, वहां हेतु का भी अभाव होना चाहिए; (४) हेतु इसप्रकार धर्मवाला हो, जो प्रमाण से बधित न हो तथा (५) अन्य किसी विरोधी हेतु से प्रतिपक्ष प्राप्त (खण्डित) न हो।

अन्वय–व्यतिरेकी के समान केवलान्वयी और व्यतिरेकी अनुमान भी होते हैं। केवलान्वयी अनुमान में (यथा, जो प्रमेय है सो अभिधेय भी है) हेतु का तृतीय (३) धर्म आवश्यक नहीं है, तथा केवल–व्यतिरेकी में (यथा, जो आत्मवान नहीं है वह प्राणादिविशिष्ट भी नहीं होता है यथा घट) हेतु का (२) द्वितीय धर्म आवश्यक नहीं। अर्थात् इनमें हेतु के केवल चार धर्म आवश्यक होते हैं। आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रिकापत्ति तथा अनवस्था-दोष रूप हैं; क्योंकि इन अनुमानों के हेतु में द्वितीय तथा तृतीय धर्म के ज्ञान होने से, इनसे हेतु और साध्यकी व्याप्ति का निर्णय नहीं हो सकता।

गोचर है; यह क्या ईश्वर से सम्बद्ध है अथवा ईश्वर–भिन्न अन्य किसी के साथ युक्त है, इसका हमको अनुभव नहीं। प्रत्यक्ष–विषय के साथ, प्रत्यक्षातीत विषय का जो सम्बन्ध है, उसे हम प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। कारण, सम्बन्ध–ज्ञान के लिए दो सम्बन्धियों के ज्ञान का होना आवश्यक है। सम्बन्धियों का प्रत्यक्ष ही, सम्बन्ध के प्रत्यक्ष में कारण होता है। दो सम्बन्धियों में से केवल एक के प्रत्यक्ष होने से ही अन्य का ज्ञान नहीं हो सकता। प्रकृत स्थल में ईश्वर के अप्रत्यक्ष होने के कारण, जगत् के साथ उसके सम्बन्ध का भी अनुमान नहीं हो सकता। कारण के साथ जिसका विशेष सम्बन्ध नहीं जाना जाता ऐसा जो कार्य है, वह अपने कारणविशेष के निर्णय में सहायता भी नहीं कर सकता; क्योंकि हेतु और साध्य के नियतसम्बन्ध–ज्ञान के ऊपर ही अनुमान निर्भर है। अत एव यह प्रतिपन्न हुआ कि, अप्रत्यक्ष ईश्वर के साथ, पृथ्वी आदि कार्य का सम्बन्ध, किसी भी उपाय से सिद्ध न होने के कारण, कार्यजगत् के अस्तित्व से ईश्वर के अस्तित्व का अनुमान नहीं हो सकता। किसी पदार्थ के कार्यरूप सिद्ध होने पर उसके कारण का अनुमान अवश्य हो सकता है, किन्तु कारण, स्वरूपतः किस प्रकार का तथा किन धर्मों से युक्त है? इसका अनुमान नहीं हो सकता। सारांश यह कि, अनुमान दो प्रकार से होता है। प्रथम प्रकार तो वहां पर प्रयुक्त हो सकता है जहां कि दोनों सम्बन्धी प्रत्यक्षगोचर हों। परन्तु प्रकृत स्थल में ईश्वर के प्रत्यक्षातीत होने के कारण, प्रथम प्रकार से अनुमान नहीं कर सकते। अवशिष्ट द्वितीय प्रकार के अनुमान के द्वारा केवल साधारण रूप से यह सिद्धान्त स्थापित कर सकते हैं कि, कार्यरूप

जगत् का कोई कारण अवश्य है; किन्तु वह चेतन है वा अचेतन, अथवा एक है वा अनेक, इत्यादि उसके स्वरूप और धर्मका निर्णय नहीं हो सकता। **फलतः अनुमान के द्वारा किसी ईश्वर विशेष की सिद्धि नहीं हो सकती।**

(ख) यह समस्त कार्यजगत् किसी चेतनावान् निमित्तकारण से (ईश्वर से) उत्पन्न हुआ है, यह निश्चय भी हम तब कर सकते हैं, जब कि प्रथम हम इस अव्यभिचारी-नियम का दर्शन करलें कि चेतन कारण के विद्यमान होने पर ही समस्त कार्य होते हैं (अन्वय) और अविद्यमान होने पर नहीं होते (व्यतिरेक)। प्रकृत स्थल में ईश्वर, प्रत्यक्ष दर्शन का विषय न होने से, अन्वय का विषय भी नहीं हो सकता तथा पृथिव्यादि पदार्थों की अविद्यमानता का दर्शन सम्भव न होने से, व्यतिरेक भी असम्भव है। अत एव, पृथ्वी आदि पदार्थों का अस्तित्व और अनस्तित्व, **किसी चेतनावान् पुरुष के अस्तित्व और अनस्तित्व से होते हैं, यह कभी प्रमाणित नहीं कर सकते।**

उपरोक्त विचार के द्वारा यह सिद्ध हुआ कि, अन्वयव्याप्ति के द्वारा ईश्वर का अनुमान नहीं हो सकता; अब व्यतिरेक व्याप्ति के द्वारा भी ईश्वर का अनुमान नहीं हो सकता, यह प्रदर्शन करते हैं। यहां पर वादी इस प्रकार का अनुमान करते हैं कि, 'अनित्य जगत् कार्यरूप होने से, ईश्वर के द्वारा रचित है; क्योंकि जो सर्वज्ञ कर्त्ता द्वारा रचित नहीं होता वह कार्य भी नहीं होता, यथा आकाश'। परन्तु, यह अनुमान अन्योन्याश्रय दोष से दूषित है; क्योंकि, 'जो पदार्थ सर्वज्ञ ईश्वर के द्वारा कृत नहीं होता वह कार्य भी नहीं होता', इस

व्याप्ति की सिद्धि के निमित्त, प्रथम ईश्वर और उसकी सर्वज्ञता का ज्ञान होना चाहिए [कारण, किसी कार्य के अभाव का ज्ञान तभी हो सकता है जब कि उस अभाव के प्रतियोगी (अर्थात् कार्य) का ज्ञान हो] पश्चात् इस व्याप्ति की सिद्धि हो सकती है। किन्तु, उक्त अनुमान का उपयोग, ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने में किया गया है। ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध होने पर इस व्याप्ति की सिद्धि होगी तथा इस व्याप्ति के सिद्ध होने पर ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हो सकेगा; इस प्रकार यह अन्योन्याश्रय दोष से दूषित है। अत एव, उपरोक्त व्यतिरेक व्याप्ति भी, जगत्कर्त्तारूप ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने में सहायक नहीं हो सकता।

यहां पर यह आपत्ति हो सकती है कि, यदि किसी कारणविशेष के साथ कार्यविशेष का कार्यकारण-सम्बन्ध; अन्वय-व्यतिरेक के प्रत्यक्ष दर्शन से ही सिद्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं, तो किसी भी दृश्यमान कारण (धूम) के दर्शन से अदृश्य कारण (पर्वतीय वह्नि) का अनुमान करना भी अनुचित हो जायगा। यदि ऐसे स्थल में धूमसामान्य और वह्निसामान्य में ही कार्यकारण सम्बन्ध को स्वीकार कर लेने से उपर्युक्त दोष का परिहार हो सकता है तो, कार्यत्वसामान्य जगत् का और निमित्तकारणत्वसामान्य चेतन का परस्पर कार्यकारण-सम्बन्ध माना जा सकता है। इसके उत्तर में समालोचक का यह कहना है कि, इस विषय में साक्षात् अनुभूत तथा सयुक्तिक पक्ष को अङ्गीकार करना उचित है। हमारा प्रत्यक्ष अनुभव यह है कि विशेष कार्य अपने नियत विशेष कारण से ही उत्पन्न होता है, तथा कार्य-कारण सम्बन्ध भी सदैव विशेष सम्बन्धिविषयक होता है। क्योंकि

सभी प्रकार के कार्यों में कार्यत्वरूप सामान्य धर्म दृष्टिगोचर नहीं होता, अत एव उक्त कार्यत्व को हेतु मानकर उसके कारणरूप से हम किसी प्रत्यक्ष व्याप्ति—रहित का अनुमान नहीं कर सकते। कार्यत्वधर्म को भिन्न भिन्न स्थलों में विभिन्न रूप से मानना होगा, न कि सब कार्यों के प्रति सामान्य धर्मरूप से। घट का निर्माणकर्त्ता कुम्हार, अपने कार्य घट के प्रति ही कारण है तथा इसी प्रकार वस्त्रकार जुलाहा भी अपने कार्य पट का ही कारण है। यह स्पष्ट है कि कार्यत्वसामान्य साक्षात् प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। कार्यविशेष के साथ कारणविशेष के सम्बन्ध का साक्षात् दर्शन करके, पश्चात् कार्यत्व रूप सामान्य धर्म का अनुमान करना पड़ेगा। परन्तु, जब कि विशेष विशेष कार्य सदा हीं विशेष विशेष कारण विषयक होते हैं तथा विभिन्न स्थलों में विभिन्न विशिष्ट रूप में उनके कार्यत्व रूप का ज्ञान होता है, तव हमारे पास ऐसा कोई हेतु नहीं है, जिसके आधार पर हम यह अनुमान कर सकें कि, सांसारिक समस्त कार्य का आधार रूप जगत् भी कार्यत्व सामान्यधर्म से युक्त है। अत एव कार्यत्व रूप सामान्य धर्म के सिद्ध न होने के कारण, पृथ्वी आदि समस्त पदार्थों के निमित्त कारण रूप से किसी कर्त्ता का सयुक्तिक अनुमान नहीं हो सकता। और भी, मनुष्यकृत गृहादि कार्य की उत्पत्ति का हम लोगों को साक्षात् दर्शन होता है किन्तु प्राकृतिक अंकुरादि कार्यों की उत्पत्ति हमको दर्शन—सिद्ध नहीं है, अतः इन दो प्रकार के कार्यों में स्पष्ट भेद है। परन्तु, पर्वतीय धूम (कार्य) तथा महानसादि के धूम में कोई स्वरूपगत भेद नहीं है, केवल स्थानभेद ही है; अतः पर्वतीय धूम से वह्नि का अनुमान होना सम्भव है; क्योंकि

पर्वत में भी हम उसी तुल्य स्वभाववाले अग्निका अनुमान करते हैं, जिसको हमने पाकशालादि स्थानों में धूम के सहित प्रत्यक्ष दर्शन किया था। परन्तु, ईश्वर का अनुमान इस रीति से सङ्गत नहीं होता, क्योंकि इस स्थल में हमलोग एक ऐसे चेतन पुरुष का अनुमान करते हैं, जो पूर्वज्ञात चेतन पुरुष से सर्वथा विलक्षण स्वभाववाला है। अत एव पर्वत में धूम की उपस्थिति देखकर अदृष्ट पर्वतीय वह्नि का अनुमान हो सकता है, परन्तु गृहादि कार्यों के चेतन निमित्त–कारण का दर्शन कर इसी आधार पर पृथ्वी आदि कार्य का अदृष्ट चेतन–कारण अनुमान करना युक्तिसंगत नहीं है। फलतः यह प्रतिपन्न हुआ कि जब कि अनुमान, पूर्वकाल में प्रत्यक्ष नियत–सम्बन्ध के अनुभव की अपेक्षा रखता है तथा पूर्वदृष्ट हेतु के साधर्म्य से प्रवृत्त होनेवाला अनुमान दृष्टमर्यादा को उल्लंघन करने में समर्थ नहीं होता, तब अनुमान के बल से ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि नहीं हो सकती।

(ग) जगत् के समस्त कार्यों के कर्त्तारूप से एक नित्य सर्वशक्तिमान् ईश्वर का अनुमान नहीं किया जा सकता, इसी विषय पर अब एक और प्रणालीद्वारा विचार करते हैं। कार्य के उत्पादन करने में, निमित्त–कारण में जो प्रयत्न अपेक्षित है, उसके ईश्वर में सम्भव न होने से ईश्वर को निमित्त कारण रूप से अनुमान नहीं कर सकते। यह हमको अनुभवसिद्ध है कि जहां पर प्रयत्न से कार्य की उत्पत्ति होती है वहां पर उत्पत्तिशील (जन्य) प्रयत्न से ही उत्पन्न होता देखा जाता है। ईश्वर में जन्य–प्रयत्न के न होने से, उसको निमित्त कारण रूप से अनुमान नहीं कर सकते (क्योंकि नैयायिकों के ईश्वर के ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न नित्य हैं, न कि उत्पत्तिशील)। यदि ऐसा

तर्क किया जाय कि, जो कार्य है वह किसी प्रयत्न का कार्य अवश्य होगा, तो यह भी स्वीकार करना होगा कि, यावत् कार्यमात्र जन्य-प्रयत्न के ही कार्य होते हैं। यदि हम इसी सिद्धान्त को कार्य रूप से माने हुए पृथ्वी आदि में प्रयोग करें तो यह अनुमान करना पडता है कि पृथ्वी आदि भी जन्य (उत्पत्तिशील) प्रयत्न के कार्य अवश्य होंगे। परन्तु यह सिद्धान्त उस मत का विरोधी है, जिसमें कि पृथ्वी आदि कार्य को प्रयत्न से उत्पन्न होना माना है, किन्तु जन्यप्रयत्न से नहीं। यदि हमलोग भी यह स्वीकार करें कि पृथ्वी आदि कार्य, जन्यप्रयत्न से उत्पन्न नहीं हैं, तो उक्त नियम के अनुसार इसका यह अर्थ होता है कि, पृथ्वी आदि किसी भी प्रयत्न से उत्पादित नहीं हैं, क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होने का अर्थ जन्य-प्रयत्न से उत्पन्न होना होता है। अत एव, जब कि न्यायवैशेषिक मतके अनुसार पृथिव्यादि में कार्यत्व धर्म है, किन्तु जन्य-प्रयत्न-जनित उत्पादन रूप धर्म नहीं है, तो जहां जहां कार्यत्वधर्म है, वहां वहां जन्य-प्रयत्न-जनित उत्पादन धर्म भी अवश्य रहेगा, ऐसी जो व्याप्ति (नियत-सम्बन्ध) है, उसका अवश्य विरोध होगा।

यहां पर न्यायवैशेषिक मतवादी यह आपत्ति करते हैं कि, कार्यत्व के साथ जन्य-प्रयत्न-जनित उत्पादन की व्याप्ति न मानकर लाघवतः ऐसा मानना उचित है कि कार्य प्रयत्न-जनित उत्पन्न होता है। इस पर समालोचक का यह प्रश्न है कि, क्या आपको अजन्य-प्रयत्न का भी किसी रूप से ज्ञान हुआ है! यदि कार्य के साथ जन्य तथा अजन्य इन दोनों प्रकार के प्रयत्न का सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता, तब उक्त लाघव विषयक प्रश्न उत्पन्न हो सकता था; किन्तु जब कि

आपने अजन्य-प्रयत्नजनित कार्य का कोई दृष्टान्त कहीं भी नहीं देखा है, तब यह कदापि नहीं कह सकते कि कार्य और प्रयत्न का नियत-सम्बन्ध स्वीकार करने पर लाघव होता है। पृथ्वी आदि कार्य-स्थल में प्रयत्नजनित उत्पादन रूप धर्म का ज्ञान हो सकना असम्भव होने से, ऐसे स्थल में व्याप्ति-प्रयोग के निमित्त लाघव विषयक प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। और भी, जब कि अजन्य-प्रयत्न आपको ज्ञात नहीं है तथा वह केवल आपकी कपोल-कल्पना है, किन्तु आप इस धारणा से उसका प्रयोग करते हैं कि, कदाचित् वह अजन्य-प्रयत्न-विषयक सिद्धान्त का अनुग्राहक हो सके, तो वास्तव में आप ही गौरव कल्पना कर रहे हैं; क्योंकि अनुभव का विरोध करते हुए किसी अलौकिक प्रयत्न के सिद्ध करने की चेष्टा, गौरव कल्पना नहीं तो क्या है[१]।

---

१ लाघव तर्कके द्वारा अनुमिति के विषय की लघुता को सिद्ध करना, नैया-यिको के लिए सुसंगत नहीं है। यथा प्रभाकर मीमांसकों के मतानुसार जब लोग शुक्तिको रजत मानकर उसको ग्रहण करने के लिए जाते हैं, तब उनकी रजतग्रहणप्रवृत्ति के ये तीन ही कारण होते हैं (१) पुरोवर्त्ती विषयक 'इदंज्ञान' (२) उसके-पश्चात् हट्ट (दुकान) में दृष्ट जो रजत है उसका स्मृतिरूपज्ञान (३) तथा शुक्ति और रजत का भेदविषयक ज्ञानाभाव। परन्तु नैयायिकों के मत में उक्त ग्रहण की प्रवृत्ति का कारण केवल तीन ही नहीं, किन्तु अन्य एक चतुर्थ वैशिष्ट्यज्ञान (इदं पदार्थ में रजतत्व की विशिष्टता का ज्ञान) भी आव-श्यक है। अब, यदि लाघव-तर्क, अनुमिति के विषय की लघुता का ही साधन करता हो अर्थात् रजतग्रहणप्रवृत्ति के कारणों के अनुमानकाल में उस अनुमिति का विषय जो उक्त अनेक कारण हैं, उनकी अल्पता को सिद्ध करता हो, तो प्रभाकर मत क्यों नहीं ग्राह्य होता? कारण, प्रभाकर उक्त प्रवृत्ति के तीन ही कारण मानते हैं किन्तु नैयायिक चार मानते हैं; अतएव लाघव-तर्क के होने से अपना अभीष्टरूप से प्रभाकर मत ही, नैयायिकों को माननीय होना चाहिए

लाघव—तर्क की उभय पक्ष में समानता होने से, इसके बल पर ईश्वर की सिद्धि भी नहीं हो सकती; कारण, विपक्षवादी भी लाघवतर्ककी सहायता से ईश्वर का खण्डन कर सकेगा। यह निम्न-लिखित प्रकार से हो सकता है, जो कि प्रणिधान के योग्य है। प्रत्यक्षसिद्ध कर्ता और कार्य के नियत—सम्बन्ध का दर्शन कर ईश्वर का मात्र अनुमान होता है। कर्त्ता के प्रयत्न के होने से कार्य होता है तथा कर्त्ता के प्रयत्न के अभाव से कार्य उत्पन्न नहीं होता, इस अन्वय—व्यतिरेक के दर्शन से कर्ता का प्रयत्न और कार्य का नियत-सम्बन्ध स्थापित होता है। अब उक्त प्रयत्न का अभाव किस प्रकार का है? इस पर विचार करने से यह प्रतिपादित होता है कि, वह अन्योन्याभाव या प्रध्वंसाभाव अथवा अत्यन्ताभाव नहीं, किन्तु प्राग-भाव है। अर्थात् अभाव दो प्रकार के होते हैं, संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव (भेद)। संसर्गाभाव के भी तीन भेद हैं:—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। इनमें से प्रयत्न का अन्योन्याभाव, घटाभाव (कार्याभाव) का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि प्रयत्न का अन्योन्याभाव होता हुआ भी घटादि कार्य दृष्टिगोचर होता है अर्थात् कार्य से प्रयत्न का भेद कार्य के अभाव का कारण नहीं हो सकता; क्योंकि इनका आपस में भेद अनुभवसिद्ध है, तथापि कार्य उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है। प्रयत्न का अत्य-न्ताभाव भी कार्य के अभाव का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि पृथ्वी

था। परन्तु, वास्तव में नैयायिक, प्रभाकर मत को स्वीकार करने के लिए कभी भी उद्यत नहीं हैं। अतएव यह कहना होगा कि लाघव तर्क के द्वारा अनुमिति के विषय की लघुता सिद्ध नहीं होती। जिस (लाघव) को स्वयं ही प्रमाण रूप से स्वीकार नहीं करते, वह अन्य प्रमाण को किस प्रकार दृढ कर सकेगा?

आदि पदार्थों में प्रयत्न का अत्यन्ताभाव है, तथापि इनसे घटादि कार्य उत्पन्न होते हैं। यहां पर यदि यह कहा जाय कि आत्माश्रित प्रयत्न का अभाव ही घटादि कार्य के अभाव का कारण है (न कि पृथिव्यादिगत प्रयत्नाभाव) क्योंकि कुम्भकार के आत्माश्रित प्रयत्न के अभाव होनेपर ही घटादि कार्य का अभाव देखा जाता है; तो इसका उत्तर यह है कि उपर्युक्त कथन से इस पक्ष का विरोध नहीं होता। कारण, आत्मा में प्रयत्न का अत्यन्ताभाव नहीं है तथा कार्य के पूर्व में भी आत्मा में प्रयत्न का अत्यन्ताभाव नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि, देहावच्छिन्न (सर्वव्यापक नहीं) आत्मा में प्रयत्न का अभाव ही, कार्याभाव के प्रति कारणरूप से अनुभूत होता है। क्योंकि प्रयत्न के सहकारी समस्त आवश्यक सामग्रियों के होते हुए भी, यदि आत्मा में प्रयत्न का अभाव हो तो कार्य का भी अभाव देखा जाता है तथा यह अनुभव भी कभी बाधित होता हुआ नहीं पाया जाता। अत एव आत्माश्रित प्रयत्नाभाव ही कार्याभाव का कारण है यह कहना होगा। किन्तु आत्मा में प्रयत्न का अत्यन्ताभाव सम्भव नहीं है, क्योंकि वादी के मतानुसार जहां पर भविष्य में प्रयत्न के होने की सम्भावना है, वहां पर प्रयत्न का अत्यन्ताभाव नहीं रह सकता। इस प्रकार कार्योत्पत्ति के पूर्व भी प्रयत्न का अत्यन्ताभाव आत्मा में न रहने के कारण, आत्मगत प्रयत्न का अत्यन्ताभाव भी घटाभाव के प्रति कारण नहीं है। फलतः यह प्रतिपन्न हुआ कि, न तो पृथिव्यादि बाह्यपदार्थों में और न आत्मा में प्रयत्न का अत्यन्ताभाव, घटाभाव का कारण है। अत एव प्रयत्न-का अत्यन्ताभाव, कार्याभाव के कारणरूप से नहीं सिद्ध हो सकता। इसी प्रकार प्रयत्न के प्रध्वंसाभाव को भी कार्याभाव का

कारण नहीं मान सकते; क्योंकि कुम्भकार में प्रयत्न का प्रध्वंसाभाव है, किन्तु फिर भी घटोत्पत्ति देखी जाती है। अत एव अवशिष्ट पक्ष को सिद्धान्तरूप से अङ्गीकार कर यह कहना पड़ता है कि, कार्याभाव के प्रति प्रयत्न का प्रागभाव ही कारण होगा। अब, जहां जहां प्रयत्न का प्रागभाव होता है वहां वहां कार्य का भी अभाव होता है, इस व्यतिरेक की उपपत्ति के निमित्त हमको प्रथम, प्रयत्नाभाव तथा कार्याभाव में रहने वाले नियत–सम्बन्ध (व्याप्ति) को सिद्ध करना होगा, जोकि प्रयत्न के प्रागभाव–प्रतियोगी होने पर ही हो सकता है। इसी सिद्धान्त का अन्य रीति से भी प्रतिपादन हो सकता है। साधारणतया यह सभी को स्वीकृत है कि, कार्य का कर्त्ता, कार्य और उपादानकारण का ज्ञानवान् होता है तथा कार्य को उत्पादन करने की इच्छा भी उसमें अवश्य होती है; तभी इस ज्ञान और इच्छा के कारण कार्यरूप फल की उत्पत्ति होती है। अब, कार्य के प्रति ज्ञान और इच्छा की कारणता को भी स्वीकार करते हुए यदि हम इस सिद्धान्त को भी साथ में रखना चाहें कि, कार्योत्पादन के निमित्त प्रयत्न भी आवश्यक कारण है; तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि ज्ञान और इच्छा के फलरूप से प्रयत्न होता है जोकि कार्योत्पत्ति के पूर्व तथा ज्ञान और इच्छा के पश्चात् अर्थात् इन दोनों के मध्य में रहता है। कार्योत्पत्तिमें प्रयत्न ही मध्यस्थ तथा आवश्यक साधन है, जिसकी सहायता से ज्ञान और इच्छा कार्य को उत्पादन करते हैं; यह ज्ञात होनेपर ही सिद्ध हो सकता है कि ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न ये तीनों ही क्रमसे कार्य के प्रति कारण रूप से सम्बद्ध हैं। फलतः यह ज्ञात हुआ कि, ज्ञान और इच्छा का कार्य होने के कारण, प्रयत्न, प्रागभाव–प्रतियोगी है। अतः प्रयत्नाभाव

और कार्याभाव में यदि व्याप्ति है तो वह अभाव, प्रागभाव स्वरूप होगा। अब यहां पर यह विचारणीय है कि यह प्रागभाव—प्रतियोगित्व धर्म, क्या नित्य, अनित्य सभी प्रकार के प्रयत्नों में है? अथवा केवल अनित्य प्रयत्न में ही है। यहां लाघव के निमित्त यह मानना उचित है कि उक्त प्रागभाव—प्रतियोगित्व प्रयत्न—सामान्य में ज्ञात होता है, न कि केवल अनित्य प्रयत्न में। जहां प्रयत्न का अभाव है वहां कार्य का भी अभाव है, इस व्यतिरेक के निर्णय के लिए यह ज्ञात होना भी आवश्यक है कि उक्त प्रागभाव—प्रतियोगित्व धर्म, प्रयत्न—सामान्य का अवच्छेदक है। प्रयत्न—सामान्य के प्रागभाव—प्रतियोगित्व द्वारा अवच्छिन्न होने से यह सिद्धान्त प्रतिपादित होगा कि प्रयत्न मात्र जन्य हैं। अत एव जो जन्यप्रयत्न से उत्पन्न नहीं है, वह प्रयत्न से भी उत्पन्न नहीं है। सुतरां, यदि पृथिव्यादिकों को जन्यप्रयत्न से उत्पन्न होनेवाला नहीं मान सकते, तो वे किसी प्रयत्न के द्वारा उत्पादित हैं, यह भी नहीं मान्य हो सकता। फलतः प्रयत्न—जन्यत्व और कार्यत्व में अन्वय—व्यतिरेक के द्वारा व्याप्ति सिद्ध न होने से, कार्यत्व में प्रयत्नजन्यत्व का अनुमान भी नहीं हो सकता है।

यहां पर न्यायवैशेषिकों को यह आपत्ति है कि, यदि पृथ्वी आदि कर्त्ता के बिना ही उत्पन्न होते तो वे कभी भी अस्तित्ववान् नहीं हो सकते थे; क्योंकि चेतन कर्त्ता के बिना कार्य की उत्पत्ति कहीं नहीं देखी जाती। इसके उत्तर में समालोचक का यह कहना है कि, प्रत्येक कार्य, किसी प्रयत्न और चेतनावान् पुरुष के द्वारा ही उत्पन्न होता है, इसके निर्णय के बिना उँपर्युक्त तर्क का प्रयोग नहीं हो सकता। अर्थात् प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति के लिए यदि कर्त्ता की

अनिवार्य आवश्यकता प्रमाणित हो, तभी यह कह सकते हैं कि कर्त्ता के अभाव से कार्य का भी अभाव होगा। परन्तु यह निर्णय के अयोग्य है सो उपर्युक्त विचार से प्रदर्शित हुआ है; अतः उक्त आपत्ति अकिञ्चित्कर (निष्फल) है। यदि यहां पर पुनः ऐसी आपत्ति उठाई जाय कि, प्रत्येक कार्य के निमित्त चेतनकर्त्ता आवश्यक है ऐसा सिद्धान्त घटादिकार्य के दर्शन के बल से सिद्ध होता है, सुतरां यह अनुमान करना युक्तिसंगत है कि पृथिव्यादि कार्य भी कर्त्ता के बिना नहीं हो सकता; तो इसका उत्तर यह है कि, यदि यह माना जावे कि प्रयत्नवान चेतनपुरुष के द्वारा केवल विशेष २ घटादि कार्य उत्पादित होता है, तो वादि का सिद्धान्त न मानकर उक्त दर्शन के अभाव का (कर्त्ता के बिना घटादि कार्य नहीं देखा जाता) उपपादन हो सके। यदि वादी को यह पक्ष स्वीकृत न हो तो कार्यत्वधर्म और शरीरजन्यत्व धर्म की व्याप्ति को भी अङ्गीकार करना होगा। कारण, **शरीरधारी कर्त्ता के बिना कोई भी कार्य, उत्पन्न होता हुआ नहीं देखा जाता।** कर्त्ता के अभाव से विशेष कार्य का भी अदर्शन होता है, यदि इसी हेतु के आधार पर यह मान लिया जाय कि समस्त कार्यों की उत्पत्ति एक कर्त्ता के द्वारा ही होती है, तो साथ ही यह भी हमको स्वीकार करना होगा कि, प्रत्येक कार्य किसी शरीरधारी से ही उत्पन्न होता है। परन्तु यह सिद्धान्त आपत्तिकारी को कदापि स्वीकृत नहीं हो सकता, क्योंकि यह वादी के उस सिद्धान्त के विरुद्ध है कि ईश्वर अशरीरी तथा नित्य ज्ञान, इच्छा और प्रयत्नवान् है। अतएव, जो कार्यत्वधर्मयुक्त है वह प्रयत्नजनित उत्पादनरूप धर्म से भी अवश्य युक्त होगा, इस व्याप्ति की सिद्धि

नहीं हो सकती। प्रयत्न, सदैव अनित्य और शरीरजन्य है तथा प्रयत्नकारी पुरुष भी शरीरधारी ही होता है; क्योंकि अशरीरी में प्रयत्न का होना सम्भव नहीं। अतः लाघवानुगृहीत इन सब प्रमाणोंसे उक्त व्याप्ति के निवृत्त होने से, कार्यजगत् की उत्पत्ति के निमित्त ईश्वर का प्रयत्नप्रमाणित नहीं हो सकता। सुतरां जगत्कर्त्ता रूप से ईश्वर के अस्तित्व के अनुमानमें किसी योग्य हेतु के न होने से, ऐसा अनुमान करना भी निष्फल ही है।

उल्लिखित विचार के द्वारा यह सिद्ध होने पर कि, ईश्वर की सिद्धि अनुमान द्वारा नहीं हो सकती, अतएव ईश्वर के एकत्व की सिद्धि मानकर उसे सर्वविषयक ज्ञानवान् तथा इच्छावान् भी नहीं माना जा सकता; अब निम्नलिखित विचार के द्वारा यह प्रदर्शन करते हैं कि अपने अनुभव और युक्ति के आधार पर, यह मी निर्णय नहीं कर सकते कि (१) ईश्वर की सर्वज्ञता कैसी है तथा (२) उसकी इच्छा किसी प्रकार की है?

---

१ ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न के संघटित होने में शरीर कारण होता है। यह कार्यकारणभाव अवच्छेदकता और तादात्म्यसम्बन्ध से घटित होता है; अर्थात् ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न शरीर का अवच्छेदक है और शरीर भी ज्ञानेच्छाकृति के साथ तादात्म्यसम्बन्ध से युक्त होने के कारण, ज्ञानेच्छाकृति के द्वारा अवच्छिन्न है, अर्थात् शरीर में तादात्म्यसम्बन्ध से ज्ञानेच्छाकृति का कारण शरीर भी होता है तथा ज्ञानेच्छाकृतिरूप कार्य भी अवच्छेदकतासम्बन्ध से शरीर में है। अतएव कार्यरूप ज्ञानेच्छाकृति के प्रति कारणरूप शरीर का सामानाधिकरण्य है। शरीर में जो ज्ञानादि की कारणता है वह अन्वयव्यतिरेक से सिद्ध है यदि ज्ञानेच्छाकृति को नित्यरूप स्वीकार किया जायगा, तो इनका कोई अवच्छेदक या कारण न रहने से उपरोक्त कार्यकारणभाव (अर्थात् अवच्छेद-कतासम्बन्ध से ज्ञानादि के प्रति शरीर कारण होता) भंग हो जायगा।

(१) यह लौकिक नियम अनुभवसिद्ध है कि, आत्मा के साथ मन (जन्य ज्ञान का करण) का संयोग होने पर ही घटादि विषयों का ज्ञान होता है, और आत्ममनःसंयोग के न होने से सुषुप्ति अवस्था के समान किसी भी विषय का ज्ञान नहीं होता। यह मन ही करण (साधन) है जिसके द्वारा आत्मा को घटादि विषयक ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। अतएव, आत्मारूपी ईश्वर की सर्वज्ञता के निमित्त प्रथम, एक ऐसे मन को स्वीकार करना होगा जो भूत, भविष्यत् तथा वर्त्तमान समस्त घटनाओं को और जगत् के समस्त पदार्थों को एक ही काल में विषय कर सके। ऐसा मन अनुभव-सिद्ध नहीं, तथा युक्ति के द्वारा भी सिद्ध नहीं हो सकता, यदि ऐसे मन की धारणा को किसी प्रकार अपने हृदय में स्थान भी दे दें, तो भी शरीररहित ईश्वर में मन का होना कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता। अर्थात् इस प्रकार के अनुमान के द्वारा ईश्वर की सर्वज्ञता सिद्ध नहीं हो सकती। अब, यदि यह कहें कि, सर्वशक्तिमान् ईश्वर को ज्ञानोत्पादन के निमित्त मन की आवश्यकता ही क्या है? उसमें उसके विभूतिबल से ही नित्यज्ञान विद्यमान रहता है; उसके ऐश्वर्य का कोई अन्त नहीं; अतः वह अपने ऐश्वर्य के बिना ही, नित्य ज्ञानवान् अर्थात् सर्वज्ञ है; किन्तु यह कल्पना भी समीचीन नहीं है। क्योंकि, यदि ऐसा स्वीकार किया जाय तो यह मानना होगा कि ईश्वर अपने ऐश्वर्य के बल से, ज्ञान की उपलब्धि के बिना ही, जगत् का निर्माण करता है अतः उसके 'उपलब्धिमत्कर्तृत्व' को स्वीकार करना व्यर्थ है। यदि जगत्की उत्पत्ति का कारण ईश्वरीय ज्ञान को नित्य मानें तो जगत् की उत्पत्ति भी नित्य हो

जायगी अर्थात् सभी समय जगत् उत्पन्न ही होता रहेगा ऐसा स्वीकार करना होगा। वस्तुतः वादी को यह मान्य है कि, जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय क्रम से होते रहते हैं। अत एव, इस क्रम को सुरक्षित रखने के लिए वादी को यह भी मानना होगा कि, जगत् की उत्पत्ति के पश्चात्, जगदुत्पादक ज्ञान का नाश होता है तथा जगत् के स्थापक ज्ञान की उत्पत्ति होती है; इसी प्रकार प्रलय काल में स्थापक ज्ञान का नाश होकर लयकारक ज्ञान उत्पन्न होते हैं। सुतरां, जगत् का कारणभूत ईश्वरीय-ज्ञान जन्य (उत्पत्तिशील) ज्ञान है, जो कादाचित्कत्वधर्म से युक्त होने के कारण, मन की आवश्यकता रखता है। मन की सहायता के बिना जन्यज्ञान का अनुभव आज तक किसी को भी नहीं हुआ है। यदि ईश्वर में इस प्रकार का ज्ञान (उसके ऐश्वर्य बल से) हो सकता होगा, तो भी यह स्पष्ट है कि **अनुमान प्रमाण के द्वारा वह सिद्ध नहीं हो सकता।**

इसी विषय में पुनः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि, जगत्कर्त्ता का ज्ञान नित्य है अथवा अनित्य? यदि नित्य है तो उस नित्य ज्ञान के द्वारा जगत्कर्त्ता समस्त पदार्थों को प्रत्यक्षरूप से जानता है अथवा परोक्षरूप से? प्रथम पक्ष सम्भव नहीं है क्योंकि अतीत-अनागत का प्रत्यक्षज्ञान नहीं हो सकता। यह सुविदित है कि केवल वर्त्तमान विषय ही प्रत्यक्षरूप से ज्ञात हो सकता है। यह भी निरर्थक है कि, अतीत-अनागत का भी वर्त्तमान होने का स्वभाव है। यदि ऐसा होता तो हमको भी कदाचित् उसकी उपलब्धि होती। अतीत की स्मृति का प्रत्यक्ष होता है, विषय का नहीं। इसी प्रकार भविष्य की

भी कल्पना का मानस में प्रत्यक्ष होता है। यदि विषय का भी प्रत्यक्ष होना माने तो वह अतीत और अनागत धर्म से रहित होगा; अर्थात् फिर उसको वर्त्तमान कहना होगा; क्योंकि वर्त्तमानकालीन विषय का इन्द्रियों के साथ जो संयोग है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं। विषय और विषयी के सम्बन्ध के बिना प्रत्यक्ष नहीं हो सकता और सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है, जब कि दोनों पदार्थों का अस्तित्व वर्त्तमान हो। एक अस्तित्व वाले पदार्थ के साथ, अस्तित्वरहित पदार्थ का सम्बन्ध नहीं हो सकता। अत एव, अतीत और अनागत पदार्थों के साथ ईश्वर के ज्ञान का सम्बन्ध न होने से, ईश्वर उसे प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। केवल यही नहीं, किन्तु वर्त्तमान विषय के साथ भी ईश्वर के नित्य ज्ञान का सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसकी विवेचना करते समय यह प्रश्न उपस्थित होता है कि, विश्वनियामक के साथ जो नियमित पदार्थों का सम्बन्ध है, वह साक्षात् है किम्वा करण अथवा आश्रय के द्वारा? प्रथम पक्ष अर्थात् साक्षात् संयोग सम्बन्ध का होना असम्भव है; क्योंकि गुणरूप (अत एव अंशरहित) से मान्य ज्ञान का संयोग सम्बन्ध नहीं हो सकता। पदार्थों के साथ ज्ञान की अपृथक् सिद्धता न होने के कारण, उसका समवाय सम्बन्ध भी नहीं हो सकता। पदार्थ और ज्ञान, इन दोनों के परस्पर विरुद्ध जड और चेतन, ज्ञाता और ज्ञेय स्वभाववान् होने के कारण, तादात्म्य सम्बन्ध भी असम्भव है। जब कि वर्त्तमान स्थल में ये तीन मूल सम्बन्ध ही सम्भव नहीं हैं, तब मूल सम्बन्धमूलक परम्परा—सम्बन्ध तो सर्वथा असम्भव ही है। अतएव पदार्थों के साथ ज्ञान का साक्षात् सम्बन्ध नहीं हो सकता। **द्वितीय पक्ष भी सम्भव नहीं है**। जब कि ईश्वर

के ज्ञान को नित्य माना जाता है, तब वह ज्ञान करण जनित नहीं हो सकता। सुतरां यहां पर, करण-जनित सम्बन्ध भी सम्भव नहीं है। यदि ईश्वरीय ज्ञान को करण–सम्बन्ध–जनित मानें, तो उसके ईश्वरत्व की भी हानि होगी। इसी प्रकार तृतीय पक्ष भी उचित नहीं है। यहां आकाशादि सर्वव्यापक पदार्थ और उसमें समवेत गुणों का अप्रत्यक्ष होगा, क्योंकि वादी के मतानुसार ज्ञान का आश्रय ईश्वरात्मा तथा आकाशादि, दोनों ही व्यापक पदार्थ हैं और व्यापक पदार्थों का परस्पर संयोग ("अज संयोग") भी उनके मत-में स्वीकृत नहीं है। अत एव आकाशादि के साथ ईश्वर का संयोग सम्भव न होने से, आकाशादिकों के शब्दादि गुण के साथ भी ईश्वरीय ज्ञानका संयोग नहीं होगा। फलतः ईश्वर के साथ पदार्थों का आश्रय के द्वारा सम्बन्ध स्वीकार करने से ईश्वरीय ज्ञान को शब्दादि गुण प्रत्यक्ष नहीं होंगे[1]।

---

१ ईश्वरीय ज्ञान के साथ ईश्वरात्मा के सम्बन्ध का निर्णय होना भी कठिन है। वादी के मत में ज्ञान, गुणरूप है जो ईश्वरात्मा के साथ समवाय सम्बन्ध से नित्य ही सम्बद्ध है। परन्तु, यह सिद्धान्त भी समीचीन नहीं है; क्योंकि उक्त मत में समवाय पृथक् सम्बन्धियों से सर्वथा पृथक् है तथा वह सर्वत्र सम है। इस प्रकार का समवाय, कोई एक विशेष आत्मा (ईश्वर) और विशेष गुण (नित्य ज्ञान) को कैसे सम्बन्धयुक्त कर सकता है? यहां पर यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि ईश्वरीयज्ञान, सम्पूर्ण ईश्वरात्मा में समवेत है, अथवा नहीं? यदि है, तो ईश्वरीय ज्ञान के अपरिच्छिन्न होने के कारण; हमारे देहावच्छिन्नज्ञान से भिन्न मानना होगा; जोकि अनुभवगोचर नहीं होता। वादी के मत में हमारी आत्मा भी सर्वव्यापक है तथा ज्ञान गुण से समवेत है; किन्तु देह के द्वारा परिच्छिन्न होने के कारण, हमको देहावच्छिन्न (परिच्छिन्न) ज्ञान की ही उपलब्धि होती है परन्तु परमात्मा का ज्ञान उसके सम्पूर्ण आत्मा में व्याप्त है, अतः अपरिच्छिन्न है। वादी का यह अनुमान उस अवस्था में स्वीकृत हो सकता है, जब कि इसके

उपपादन के निमित्त हमारे पास कोई अनुभूत हेतु हो। इसी प्रकार ईश्वरीय-ज्ञान की नित्यता और सर्वव्यापकता की सिद्धि के लिए प्रथम यह सिद्ध कर लेना आवश्यक है कि, एक ही ज्ञान गुण, व्यापक ईश्वरात्मा के तो सम्पूर्ण अंश में समवेत हो सकता है, किन्तु वही ज्ञान, हमारी व्यापक आत्मा के पूर्णांश में क्यों नहीं समवेत हो सकता? (देहावच्छिन्नता भी इसके प्रति योग्य हेतु नहीं है; कारण, वादी के मत में देह और आत्मा में समवाय सम्बन्ध नहीं है)। जब कि ज्ञान का समवायसम्बन्ध ईश्वरात्मा और जीवात्मा दोनों में ही समान है तथा हमारा ज्ञान परिच्छिन्न और अनित्यरूप से अनुभूत होता है; तब हम कैसे अनुमान कर लें कि, ईश्वरीयज्ञान इसके विपरीत नित्य और व्यापक होगा? अतएव यह स्पष्ट है कि, समवायसम्बन्ध, ईश्वरीयज्ञान की नित्यता और व्यापकता को सिद्ध नहीं कर सकता; जिसका यह अर्थ होता है कि, जबतक इस प्रकार का कोई ज्ञान न उपपादित हो तब तक इस प्रकार के ज्ञान से युक्त कोई ईश्वर विशेष भी प्रमाणित नहीं होता। यदि पक्षान्तर में ऐसा माना जाय कि ज्ञान, व्यापक आत्मा के सम्पूर्ण अंश में नित्य समवेत नहीं है, तो यह भी स्वीकार करना होगा कि उसका ज्ञान सर्वविषय को ग्रहण नहीं करता, सुतरां उसका ज्ञान, असर्वज्ञ, सीमित और जन्यधर्मयुक्त है; जोकि ईश्वर-विषयक सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है। फलतः यह उपपन्न हुआ कि ज्ञान को, यदि ईश्वरीय आत्मा के प्रकृत स्वरूप से भिन्न मानें तो यह सिद्ध नहीं हो सकता कि, किस प्रकार वह ज्ञान ईश्वरात्मा से नित्य सम्बन्धयुक्त रहता है तथा जीवात्मा से नहीं।

यदि उक्तज्ञान को ईश्वरात्मा से अभिन्न मानें तो भी दोष होगा; क्योंकि 'स्वयं' कभी 'स्वीय' नहीं हो सकता, किसी पदार्थ का आत्मा उसके गुणरूप से मान्य नहीं हो सकता। ज्ञान को ईश्वर का गुण मानते हुए भी उसको ईश्वर से अभिन्न कहना विरुद्ध है। इसी प्रकार इस पक्ष में और भी दोष उत्पन्न होता है कि, ज्ञान आत्मा के स्वरूप में अन्तर्भूत है, अथवा आत्मा ही ज्ञान के स्वरूप में अन्तर्भूत है? प्रथम कल्प के अनुसार यह मानना होगा कि ज्ञान, आत्मा का स्वकीय गुण नहीं है; फलतः आत्मा अचेतन होगा, जोकि जगत्कर्ता नहीं हो सकता। यदि द्वितीय कल्प को मानें तो यह स्वीकार करना होगा कि केवल

यहां पर वादी इस प्रकार का तर्क कर सकता है कि पदार्थों के प्रत्यक्ष करने के लिए ईश्वर को किसी सम्बन्धविशेष की आवश्यकता नहीं होती, वह, सम्बन्ध की अपेक्षा के बिना ही समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष कर लेता है, यही तो ईश्वर की अचिन्त्य-शक्ति है! परन्तु यह कथन भी समीचीन नहीं है। जगत्कर्त्ता की सिद्धि के निमित्त इस प्रकार का सिद्धान्त उपस्थित करना चाहिए कि, हम लोग अपने अनुभव के आधार पर युक्तिसंगत रूप से उसकी धारणा कर सकें। परंतु ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय में किसी प्रकार के (साक्षात् या असाक्षात्) सम्बध के बिना भी ज्ञान उत्पन्न हो सकता है, यह एक ऐसा सिद्धांत है, जो हमारी अनुभव-सीमा के सर्वथा बाहर है, अतः ऐसी धारणा हमारे लिए सर्वथा असम्भव है, सुतरां, वादी के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर तर्कशास्त्र के समस्त नियमों को तिलाञ्जलि देना होगा। अत एव, युक्तिसंगत सिद्धान्त यही होगा कि, ईश्वर समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान सकता। इसी प्रकार परोक्ष रूप से भी ईश्वर को पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकता। यह हमको अनुभवसिद्ध

ज्ञानरूप गुण है अथ च ऐसी कोई द्रव्य नहीं है जिसमें वह समवेत हो; अर्थात् कोई ज्ञानवान पुरुष के बिना ज्ञान रहेगा। परन्तु यह वादी के उक्त प्रतिपाद्य मत के सर्वथा विरुद्ध है कि, नित्य ज्ञानवान जगत् का कर्त्ता केवल एक ही है। और भी, यदि इसी तर्क का अनुसरण किया जाय तो यह भी स्वीकार करना होगा कि, मानव-ज्ञान भी निराश्रय है। फलतः किसी कार्य को देखकर हम यह सिद्ध नहीं कर सकेंगे कि यह कार्य किसी ज्ञानवान् पुरुष के द्वारा उत्पादित है। अर्थात् जगत्रूप कार्य का अवलोकन कर किसी ज्ञानवान् कर्त्ता का अनुमान भी असङ्गत हो जायगा। सारांश यह कि, इस प्रकार के तर्क को ईश्वरास्तित्व के प्रमाण की अनुकूलता में उत्थापन करना व्यर्थ है।

है कि सभी परोक्षज्ञान करण-जनित उत्पन्न (अनित्य) होते हैं। सुतरां, यदि ईश्वर का ज्ञान परोक्ष होगा तो वह भी करण—जनित होगा, अत एव उसके नित्यत्व में हमको विश्वास का त्याग करना होगा। यदि वादी को यह स्वीकृत हो कि ईश्वरीय ज्ञान अनित्य है, तो वह भी जीव के समान होगा और ईश्वरत्व की हानि होगी। फलतः ईश्वर में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रकार के ज्ञान से सर्वज्ञता की सिद्धि नहीं होती।

अब ईश्वरीय इच्छा की समालोचना करते हैं कि, ईश्वर में वह कहां तक योग्य है, तथा किस प्रकार से होती है। यहां पर सर्व प्रथम यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि, ईश्वरेच्छा नित्य है, अथवा जन्य (उत्पत्तिशील)? यदि नित्य मानें, तो ऐसी नित्य इच्छा की उत्पत्ति के लिए ईश्वरीयज्ञान की आवश्यकता नहीं होगी और वह निरर्थक होगा, क्योंकि यह नियम है कि ज्ञान पूर्वक ही इच्छा की उत्पत्ति होती है। केवल ज्ञान की निरर्थकता मात्र ही नहीं, किन्तु इच्छा को नित्य मानने पर प्रलय काल में भी सृष्टि होनी चाहिए तथा किसी काल में भी किसी (इच्छाद्वारा उत्पन्न) पदार्थ का अभाव नहीं होना चाहिए। यदि ईश्वर सर्वदा सर्व—विषयक समान ज्ञानवान है, सर्वदा सर्व विषयों की इच्छावाला है तथा समस्त कार्यों के उत्पादन के प्रति सर्वदा समानरूप से प्रयत्नवान् है, तो समस्त कार्यों की एक ही काल में उत्पत्ति होनी चाहिए तथा उनकी उपस्थिति भी सदैव होनी चाहिए; अर्थात् इस रीति से जगत् में उत्पत्ति और ध्वंस तथा क्रम—नियम का भी अभाव होना चाहिए। यहाँ पर वादी यह कह सकता है कि, अन्य सहकारी कारणों के द्वारा उक्त सांसारिक

उत्पत्ति और ध्वंसादि के नियम की व्यवस्था हो सकती है। किन्तु सहकारी कारण के सम्बन्ध में भी वही प्रश्न उत्पन्न होता है; अर्थात् वे नित्य हैं; अथवा अनित्य? यदि नित्य हैं तो ईश्वरीय इच्छा और प्रयत्न के साथ उनका संयोग भी सर्वदा ही रहेगा और वही उपर्युक्त दोष उत्पन्न होगा। यदि सहकारी कारण अनित्य हैं तब यह स्वीकार करना होगा कि, ईश्वर के ज्ञान और इच्छा से उसकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार से भी उन कारणों का (जन्य सहकारियों का) सर्वदा संयोग बना रहेगा; क्योंकि सहकारी कारण की उत्पत्ति की इच्छा भी नित्य होगी और वही सदैव सृष्टि होने का पूर्वोक्त दोष बना ही रहेगा तथा अनवस्था भी होगी। क्योंकि यदि जन्य सहकारियों के संमेलन से जन्य पदार्थों की सृष्टि होगी तो उन सब जन्य सहकारियों की सृष्टिके निमित्त, अपर जन्य सहकारियों की आवश्यकता होगी। इस प्रकार कार्य-कारण की परम्परा अनन्त होने से अनवस्था होगी। और भी, ईश्वर की सृष्टिस्थिति एवं प्रलयकारिणी अमोघ इच्छा के सदैव होने से, एक ही काल में समस्त कार्यों की युगपत् सृष्टि स्थिति और प्रलय हुआ करेंगे; जो कि सर्वथा अनुपपन्न है। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ को उत्पन्न करने की जो ईश्वरेच्छा है, वह केवल उस पदार्थ के उत्पत्तिकाल में ही फलीभूत हो सकेगी तथा अपर काल में नहीं होगी। अर्थात् पदार्थ की उत्पत्ति के पूर्व अनादि काल से और नाश के पश्चात् अनन्त काल तक ईश्वरेच्छा के वर्त्तमान होते हुए भी कार्योत्पत्ति के न होने से, उस इच्छा के अमोघत्व की हानि होगी और साथ ही ईश्वरत्व की भी हानि होगी। कार्योत्पत्ति के पूर्व और पश्चात्, अनादि और

अनन्त काल तक, ईश्वरेच्छा की निष्फलता को न सहन कर सकने के कारण, वादी दुराग्रहवश यदि ऐसी कल्पना करे कि, उस काल में भी सृष्टि होती है; तो यह कहना पड़ेगा कि ईश्वरेच्छा, असम्भव पदार्थ अर्थात् बन्ध्यापुत्र तथा आकाशपुष्पादि की भी सृष्टि करती है। इसी प्रकार यही आपत्ति ईश्वर की संहारकारिणी इच्छा में प्रयुक्त होगी; अर्थात् ध्वंस काल के प्रथम और पश्चात्, उसकी संहारेच्छा फलप्रद नहीं होगी। यदि यह कहा जाय की प्राणियों के अदृष्ट के अनुसार क्रमिक उत्पत्ति होती है, जिस प्रकार कि ऋतु-काल में क्रम से फलफूलादि होते हैं; तो यह कथन भी संगत नहीं है; क्योंकि, यह अदृष्ट भी ईश्वरेच्छा का विषय है, अतएव वह भी स्थायी रूप से फलप्रद होगा और इसी कारण से उत्पत्ति, स्थिति एवं ध्वंस में कोई नियम नहीं रहेगा। इसी प्रकार और भी आपत्ति होती है कि, जब कि ईश्वरेच्छा सर्व-विषयक नित्य तथा अमोघ है तो हमारा देह इन्द्रिय और ज्ञान भी नित्य होना चाहिए, परन्तु यह हमारे अनुभव के सर्वथा विरुद्ध है[1]।

१ उपर्युक्तस्थल में वादी की सम्मति के अनुसार प्रलय के विषय में कहा गया है, परन्तु इस विषय में कोई प्रमाण नहीं है। ऐसा प्रलय किसी के प्रत्यक्ष होने के योग्य नहीं है और न उसे अनुमान के द्वारा जान सकते हैं। क्योंकि क्रियाशील मन एवं इन्द्रियों के साथ विषय के संयोग को प्रत्यक्ष कहते हैं, और प्रलय का अर्थ होता है मन एवं इन्द्रियों के सम्पूर्ण क्रियाओं का विराम। यदि उस अवस्था में इन्द्रिय और मानसिक क्रिया को स्वीकार किया जाय तो प्रलय नहीं रहेगा। अतः प्रत्यक्ष अनुभूत व्याप्ति के न होने से, ऐसे प्रलय के अनुमान में कोई हेतु भी नहीं है। सुषुप्ति की उपमा से प्रलय का अनुमान नहीं हो सकता, क्योंकि वह अवस्था जीवोंकी है, एवं व्यक्तिगत है। जिसकाल में एक

जीव सुषुप्ति (प्रलय) का अनुभव कर रहा है, उसी काल में अपर जीवों की सृष्टि की उपलब्धि हो रही है तथा एक पदार्थ के सामर्थ्य का ह्रास हो रहा है, तो उसी समय दूसरे की वृद्धि हो रही है, और एक पदार्थ का संकोच हो रहा है तो अन्य पदार्थों का विकास होता हुआ भी देखा जाता है। अतः युगपत् क्षय एवं वृद्धिशील जगत् को देखकर हम किस हेतुके आधार पर यह अनुमान कर सकते हैं कि, सुदूर भविष्य में एक ऐसा समय होगा, जब कि सम्पूर्ण जीव तथा पदार्थों के सामर्थ्य का क्रम से ह्रास होकर प्रलय हो जायगा। यह कथन सर्वथा अप्रामाणिक है। एक पदार्थ के क्रमिक ह्रास एवं लोप को देखकर सम्पूर्ण जगत् के क्रमिक ह्रास का अनुमान नहीं हो सकता कि, सब जीव मृत्यु अवस्था को प्राप्त होंगे और समस्त सीमायुक्त पदार्थ अव्यक्तावस्था में गमन करेंगे। कार्य का कालान्तर में, कारण में अवस्थान अवश्यम्भावी है, किन्तु यह तब हो सकता है जबकि कार्य के समस्त अवयवों में विनाशकाही क्रम उपलब्ध हो और विकास का नहीं। प्रकृतस्थल में जगत् समुद्रके समान है जिसको एक तरफ प्रचण्ड मार्तण्ड अपने किरणों से निरन्तर शोषण कर रहा है तो दूसरी तरफ अहर्निश प्रवहणशील नदियां उसकी पूर्त्ति कर रही हैं। अतएव जिसप्रकार समुद्र के आत्यन्तिक नाश की कल्पना विचारवानों को सम्मत नहीं हो सकती; उसीप्रकार उपचय एवं अपचयमय जगत् के आत्यन्तिक प्रलय की धारणा भी युक्तिसंगत नहीं है। इसीप्रकार अतीत प्रलय के निमित्त भी हमारे पास कोई युक्तिसंगत हेतु नहीं है, जिससे यह अनुमान कर सके कि भविष्य में भी होगा। सभी बहुत्व किसी समतत्त्व का परिणामी अभिव्यक्तरूप होता है, अतः जगत् में भी बहुत्व की अभिव्यक्ति के पूर्व कोई एकता की समानावस्था थी यह कथन भी समीचीन नहीं; कारण इस अनुमान के निमित्त उपयुक्त हेतु नहीं है जिससे कि प्रमाण कर सकें कि सम्पूर्ण जगत् किसी एक काल में अनभिव्यक्ति अवस्था में था और पश्चात् बहुरूप से अभिव्यक्त होता है। प्रलय के विषय में शब्द भी प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि शब्द का प्रामाण्य, यथार्थ प्रत्यक्ष एवं अनुमानमूलक होता है। प्रकृतस्थल में इन दोनों का अभाव होने से शब्दप्रमाण भी सार्थक नहीं हो सकता।

ईश्वरेच्छा को अनित्य भी नहीं कह सकते। यदि ऐसा हो तो उसका कारण होना चाहिये। इस अनित्य इच्छा की सृष्टि, उसी अनित्य इच्छा से होती है, अथवा किसी अन्य अनित्य इच्छा से? आत्माश्रयदोष होने के कारण, प्रथम पक्ष नहीं हो सकता। द्वितीय पक्ष को मानने से भी अनवस्था होगी; क्योंकि यदि उक्त इच्छा अनित्य होगी, तो अनित्यता के कारण, उसकी उत्पत्ति के लिए किसी निमित्तकारण (अनित्य इच्छाविशेष) की आवश्यकता होगी; फलतः अनवस्था होगी। यदि प्रत्येक कार्य के निमित्त अनादि इच्छा-प्रवाह की कल्पना की जाय, तो अनन्त कार्यों के निमित्त अनन्त प्रवाहों की कल्पना करनी पड़ेगी; क्योंकि कारणसामग्री में भेद को माने बिना कार्यसामग्री में भेद का होना सम्भव नहीं है। और भी, यदि ईश्वर का अनित्यज्ञान उसकी अपनी इच्छा का कार्य हो, तो उस इच्छा की उत्पत्ति के निमित्त किसी अन्य कारण का अनुसन्धान करना होगा। ईश्वर का नित्यज्ञान उस इच्छा का कारण है ऐसा नहीं मान सकते; क्योंकि वादी के मतानुसार आत्मा और मन का विलक्षण संयोग, उक्त अनित्य इच्छा का असमवायिकारण है; परन्तु ईश्वर के मनरहित होने से आत्मा और मन का संयोग उसमें सम्भव नहीं है; सुतरां ईश्वर के केवल ज्ञान से ही इच्छा की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि ऐसा मान भी लिया जाय कि, ईश्वर के ज्ञान से इच्छा की उत्पत्ति होती है, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इच्छा के उत्पादन के लिये ईश्वर की इच्छा होने के पूर्व, ईश्वर में भविष्य पदार्थ विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। और उस ज्ञान के ईश्वरीय होने के कारण उसकी यथार्थता को स्वीकार करने पर,

उसके विषय जो समस्त कार्यवर्ग हैं उसको भी अस्तित्ववान् मानना होगा। फलतः जब सम्पूर्ण कार्यजगत् ईश्वरेच्छा के पूर्व में विद्यमान था तब उसकी उत्पत्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं हो सकता। सारांश यह कि, यदि ईश्वरेच्छा को अनित्य माना जाय, तो उस इच्छा और प्रयत्न के निमित्त; ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अतएव ईश्वरीय इच्छा को नित्य मानें अथवा अनित्य; दोनों ही पक्षों में नानाप्रकार के अखण्डनीय दोष उपस्थित होते हैं।

पुनश्च, ईश्वर के ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न यदि नित्य हों, तो उसके द्वारा जगत् का कोई उपकार नहीं हो सकेगा। कारण, नित्य ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न के द्वारा किसी भी कार्य का सम्पादन नहीं हो सकता। अनित्य ज्ञानादि के उपयुक्त काल में उत्पन्न होने पर ही तदनुकूल प्रयत्न के द्वारा कार्य की सिद्धि होती है। यदि इच्छा अथवा प्रयत्न को नित्य मान लिया जायगा, तो इच्छा—धारा अथवा प्रयत्नधारा की समाप्ति ही नहीं होगी और अनन्त काल तक भी उक्त प्रयत्न के फल की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि यह नियम है कि प्रयत्न की परिसमाप्ति के पश्चात् ही फल की प्राप्ति हुआ करती है। और भी, इच्छा के नित्य होनेका प्रयत्न भी व्यर्थ होगा, क्योंकि भगवत्-इच्छा ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने में पर्याप्त समर्थ है। अथवा इच्छा के नित्य होने पर इच्छाधारा अविराम रूप से प्रवाहित होती रहेगी और अन्तिम निश्चयात्मिका इच्छा के न होने से अनन्त काल तक प्रयत्न की उत्पत्ति भी नहीं हो सकेगी, फलतः प्रयत्न को स्वीकार करना भी व्यर्थ हो जायगा। इसीप्रकार नित्य ज्ञान धारा के अनन्त काल तक विरत न होने पर इच्छा की उत्पत्ति कभी

नहीं हो सकेगी एवं उसको स्वीकार करना भी निष्प्रयोजन होगा। अर्थात् यदि चिकीर्षा प्रयत्न नित्य हो तो उसके उत्पादन के लिए आवश्यक ज्ञान एवं इच्छा व्यर्थ हो जायंगे, क्योंकि नित्य होने के कारण वह ज्ञानादि की अपेक्षा नहीं रखता। कार्योत्पादन के लिए प्रयत्न की जैसी प्रधानता है वैसी ज्ञानादि की नहीं। प्रयत्न विशेष से ही कर्त्ता और उपादान का अधिष्ठाता समझा जाता है, केवल ज्ञान इच्छा वाले को नहीं। प्रयत्न के समय ज्ञान और इच्छा का उपयोग नहीं होता इसलिए भी कार्योत्पत्ति में प्रयत्न प्रधान अंग है। प्रयत्न के द्वारा ही कार्य की निष्पत्ति होती है। अतएव यदि ईश्वर का उक्त प्रयत्न ही निष्फल सिद्ध हो जायगा तो उसकी सर्वज्ञता भी दत्तजलाञ्जलि के समान है। अब यदि यह कहा जाय कि ईश्वर की सृष्टि-विषयक इच्छा और प्रयत्न की सिद्धि के लिए ही उसमें ज्ञान (सर्वज्ञता) का होना आवश्यक समझा जाता है, तो ज्ञानमूलक उक्त इच्छा और प्रयत्न को नित्य नहीं कह सकते। यदि ईश्वरीय इच्छा और प्रयत्न को नित्यरूप सिद्ध करने के लिए यह कहा जाय कि, ईश्वरीय ज्ञान का उक्त इच्छा और प्रयत्न में कोई उपयोग नहीं होता (अर्थात् इच्छा आदि ज्ञान की अपेक्षा से रहित स्वतन्त्र रूप से प्रवृत्त होते हैं), तो इसका अर्थ यह होगा की जगत् की उत्पत्ति आदि कार्य, ईश्वरीय ज्ञान के पूर्व से ही होना आरम्भ हो जायगा, फलतः ईश्वरीय सर्वज्ञता की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी तथा सर्वज्ञता के अभाव से उसका ईश्वरत्व भी लुप्त हो जायगा। और भी, अपने प्रयत्न के द्वारा आप ही व्यवधानयुक्त होने के कारण, ईश्वर जगत् का साक्षात् कारण भी नहीं रहेगा एवमेव उसका प्रयत्न भी नित्य होने के कारण जगत् का

व्यवस्थापक नहीं हो सकता। और भी, प्रयत्न को नित्य स्वीकार कर लेने पर ईश्वर में चिकीर्षा और अपरोक्षज्ञान के लिए अवकाश कहां रहेगा? ज्ञान और चिकीर्षा का उपयोग प्रयत्न की उत्पत्ति के लिए ही होता है यदि वही प्रयत्न नित्य हो तो ज्ञान–इच्छा–रहित केवल प्रयत्न के फलरूप जो भी कार्य होंगे वे अनिर्द्धारित स्वरूप वाले और यदृच्छा से उत्पन्न होंगे। फलतः नियम–रहित यदा कदा कार्यकी उत्पत्ति और विनाश हुआ करेंगे तथा ईश्वरको जगत्का कारण मानना भी निष्फल हो जायगा।

उल्लिखित समालोचना द्वारा निमित्तकारणरूप ईश्वरके विषयमें प्रमाणकी असिद्धिका स्वयंसिद्ध प्रदर्शन होनेसे यह निस्संकोच मानना पडेगा, कि ईश्वर सृष्टिकी रचना नहीं कर सकता, न सिद्ध ही होता। इस गंभीर विषयको यदि इस श्लोक द्वारा समझा जाय तो मनमें किसी प्रकारका इस विषयमें संदेह ही नहीं रह पाये।

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥

इस लंबी चौडी चर्चा पर शास्त्री महोदय बडे प्रसन्न हुए और हर्षाश्रुओं द्वारा श्रीमहाराजके युक्ति पूर्ण समालोचनाकी द्वारा प्रकृत विषयकी बडे उत्तम शब्दोंमें अनुमोदना की। उस समय प्रकृतिने भी बहुत ऊँचेसे सिताश्रु छोडकर जगत्का उत्ताप ठंडा कर दिया। शास्त्री जी कृतज्ञताका प्रकाश करके यथास्थान चले गए।

मकराना ८। १०२१ **ता. २५। ४। ४५**

ओसवालोंके ३ घर हैं। भूमिमें से संग मर्मर पत्थर खूब निकलता है। १३०० घर शिल्पी मुसल्मान-संगतराश कारीगरोंके हैं।

राम-कृष्ण-महावीर-पार्श्वनाथ आदि की मूर्तिएँ बनाते हैं। प्रतिवर्ष लाखों रुपया जैनों और हिंदुओं की जेबोंसे निकल कर इनके घरोंमें पहुँचता है। ये सबलोग जैनोंसे अधिकांश पलते रहे हैं। हिंदु कारीगर १०—२० चमार हैं, तब जैन कारीगर एक भी नहीं है। ये शिल्पी जनतोपयोगी चीजें भी बहुत बनाते हैं।

ये कारु पहले क्षत्रिय और ब्राह्मण थे। शाही समय के बने हुए मुस्लिम हैं। यही कारण है कि इनके सब गोत्र नाम हिंदुओं जैसे हैं। किसी समय हिन्दु बननेको भी तैयार थे, पर अब तो कट्टर मोहमदी हैं।

वेसरोली । ११ । १०२२ ता. २६ । ४ । ४५

३० घर महेसरी बनियोंके हैं, पहले दर्जेके सूद खोर हैं, इनके काटेका कोई भी मंत्र नहीं है।

गच्छीपुरा । ७ । १०३९ ता. २७ । ४ । ४५

यहां २२ टोला और १३ पंथकी बडी पूछ-ताछ की जाती है। स्थान ठहरनेको कठिनाई भोगने पर भी नहीं मिलता। निदान कस्टम पुलीस थानेके अध्यक्ष पंडित श्री घीसूलालजी थानेदारने बडी भक्ति की, और थानेकी इमारतके एक कमरेमें ठहरनेके लिए प्रार्थना की। थानेके वरांडेमें सार्वजनिक व्याख्यान हुआ, इन दो व्याख्यानोंसे लोगोंकी मुंदी हुई आँखें खुल गई। २२ सम्प्रदायके सिद्धान्त और वर्तनको लोक और लोकोत्तरोपयोगी समझा। थानेदार महानुभाव बडे प्रसन्न हुए और श्रीगुरुदेवके अनन्य भक्त बन गए। सिंगल आउटर तक पहुँचाने आए। आपने दो बार दार्शनिक चर्चा भी की, जिसका सार इस प्रकार है। आपने जो कुछ विनय पूर्वक पृच्छा की उसका

विवरण ध्यान पूर्वक पढ जाइएगा। वास्तव में यह चर्चा बुधजनोंके बडे कामकी वस्तु है।

पंडितजी–श्रीमुनिमहाराज! हम सनातन लोग वेदको अपौरुषेय और आप्तशास्त्र मानते हैं। हमारी यह धारणा है, कि वेद अनादि और ईश्वर रचित हैं वेद वाक्य को हम सत्य मानते हैं, वेद में जो कुछ पाया जाता है, वह अन्यत्र किसी भी शास्त्र पुस्तकमें नहीं है। वेद अद्वितीय ज्ञानकी निधि और अगाध समुद्रके समान है, इस संबंधमें मैं आप जैसे महात्माओंके स्वतंत्र विचारोंका अध्ययन करना चाहता हूं। आपके अश्रुतपूर्व वचनोंको सुनकर हमें महान् लाभ और उन्नतिकी आशा है।

श्रीगुरुदेव–पंडितवर्य्य! वेद शास्त्र (मंत्र और ब्राह्मण नामक शब्द राशि) को प्रमाणभूत मानते हुए कई विकल्पोंसे मानते हैं। वैदिक सम्प्रदाय वाले कहीं उसे—

स्वतः प्रमाण मानते हैं। कहीं अलौकिक पदार्थका बोधक भी, कहीं त्रिकालाबाधित तत्वका ज्ञापक, कहीं निराकार ईश्वर रचित, तथा कहीं ईश्वर के शरीर द्वारा कृत कहते हैं। परन्तु ये सबके सब स्थल **समालोचनीय** हैं।

'जगत् ईश्वर रचित है,' जिस प्रकार इस विषयमें नाना दोष आरोपित होते हैं, उसी प्रकार वेद ईश्वरने रचे हैं, इस पक्षमें भी अनेक दोष आए विना नहीं रहते। अतः अपनी विचार कसौटी आपके सन्मुख रखते हैं।

किसी भी सिद्धान्तको स्थापन करनेके लिए यह आवश्यक है, कि उसके अनुकूल कोई प्रमाण हो। प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा तो यह बताया

ही नहीं जाता, कि वेद सृष्टिके आदिकाल में ईश्वर द्वारा रचे गए हैं। क्योंकि उक्त कालके साथ इन्द्रियोंका कोई संबंध नहीं हो सकता। अतः उक्त काल संबंधी वेदके साथ भी उनका संबंध नहीं है। अतः विषयके साथ इन्द्रियसंबन्धसे उत्पन्न होनेवाला प्रत्यक्ष, वेदके तथा कथित सृष्टिके आद्यकालीन अस्तित्व को विषय नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त वेद शास्त्र प्रत्यक्ष है, परन्तु वह उसके रचयिता ईश्वरके साथ संबद्ध है, ऐसा किसीको प्रत्यक्ष गोचर नहीं होता है।

ईश्वर परोक्ष है, यह मान्य होनेसे उसके साथ शास्त्रका संबंध प्रत्यक्ष रूपसे नहीं जाना सकता, क्योंकि संबंधके प्रत्यक्ष होनेके लिए दोनों संबंधियोंका प्रत्यक्ष होना आवश्यक है।

अनुमान द्वारा भी उक्त सिद्धान्त प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, यह जो हेतु कहा जाता है, कि वेदका रचयिता कोई मनुष्य वर्तमानकालमें ज्ञात न होनेसे वेदका ईश्वर रचित होना, समीचीन नहीं। क्योंकि ऐसा ही तर्क अनेक लोग नाना विषय में भी समान रूपसे प्रदान कर सकते हैं। जिनके कि रचना काल और रचयिता अज्ञात हैं। मान लीजिए कि कोई ईसा जैसा अपरिचित या अज्ञात माता-पिता द्वारा परित्यक्त शिशु आपके निकट आता है; उस स्थलमें क्या आपको यह सिद्धान्त समीचीन प्रतीत होगा, कि वह मनुष्यजनित नहीं, किंवा वह सृष्टिके आदिकालमें भी विद्यमान था?

मानलो किसी पुस्तकका किसी समाजमें बहुतकालसे अध्ययन होता आ रहा है, और ग्रन्थकर्ता नितान्त अज्ञात है। केवल इसी घटना–हेतु से उसका सृष्टिके आद्यकालमें ईश्वर रचितत्व होना अनुमान सिद्ध नहीं हो सकता।

यह भी नहीं माना जा सकता कि वेदका मनुष्यकर्तृत्व स्मृतिपथमें नहीं आता, इस लिए वह ईश्वर रचित है। अनेक प्राचीन पदार्थ ऐसे हैं, जिनके बनाने वाले स्मृतिगोचर नहीं हैं, इस हेतु-आधार से क्या उन्हें सृष्टिके आद्यकालमें सृष्ट या ईश्वर कृत मानेंगे! इसी प्रकार और भी अनेक वचन पाए जाते हैं, जिनके रचयिता ज्ञात नहीं किन्तु स्मरणातीत कालसे लोगोंमें जे अखंड रूपसे प्रचलित हैं, परन्तु यह कोई हेतु नहीं है, कि जिससे हमें यह फलित प्राप्त हो कि वे सृष्टि के आद्यकालसे ईश्वर रचित हैं।

इसके अतिरिक्त यह तर्क भी उपस्थित हो सकता है, कि वैदिक शब्दको साधारणतः जो शब्द व्यवहारमें लाते हैं उनसे पृथक स्वरूप वाला नहीं मान सकते। यदि लौकिक और वैदिक शब्दोंमें स्वरूप गत भेद स्वीकृत हो तो मनुष्योंको वेद और उसका अर्थ बोधगम्य ही नहीं हो सकेगा। वेद स्वयं हमें वेदार्थका प्रतिपादन नहीं करते। उनके अर्थकी अवगतिके लिए कोई अपौरुषेय (ईश्वर रचित) व्याख्या भी नहीं है, जिससे वेदके अर्थ का बोध हो सके। इसलिए वैदिक और लौकिक शब्दों में भेद स्वीकार करना विवेक संगत नहीं। जब कि लौकिक शब्द और वैदिक शब्दोंमें उनकी स्वाभाविक अवस्थामें कोई प्रकृतिगत (शब्दस्वरूपमें) भेद नहीं है। जब दोनोंका एक ही शब्द संकेत है। जब दोनों प्रयुक्त संकेत और उच्चारणके अनुसार मात्र शब्दज्ञानका उत्पादन करते हैं, जब वैदिक और लौकिक शब्द दोनोंही उच्चारणके रूपमें न हों तो श्रुतिगत (श्रुतिगोचर) नहीं हो पाते, और जब वैदिक अक्षरोंमें दूसरी कोई विशिष्टता नहीं; तब उनकी उत्पत्तिके विषयमें भी वे विशेष भेद युक्त नहीं हो सकते, और ईश्वर

रचित रूपसे अनुमान भी नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रमाणित हुआ कि वैदिक शब्दको भी लौकिक शब्दके समान, मनुष्य रचित मानना होगा। जब वैदिक शब्द, हम लोग जो शब्द साधारणतः व्यवहार करते हैं, वह उनके साथ समस्वभाववाला है, तब इसमें क्या प्रमाण है, कि जिससे यह सिद्ध हो, कि वैदिक शब्दकी आनुपूर्वी (पौर्वापर्य) और उसमें संलग्न अर्थ ऐसा विलक्षण स्वभावयुक्त है, कि वह किसी मनुष्यरचयिताका फल नहीं हो सकता, किंवा साधारण रीतिसे साधारण बुद्धि वाले मनुष्यके लिए बोधगम्य न हो सकता हो।

परस्पर अपने भावोंको प्रगट करनेके उद्देश्यसे भाषाकी रचना होती है। सांकेतिक भाषा प्रचलित होनेके अनन्तर संशोधित रूपसे (संस्कृत) ग्रंथकी भाषा सृष्टिके आदिकालमें तो नहीं हो सकती।

विज्ञान-इतिहास तथा वेदके अन्तर्गत विषयोंकी दृष्टिसे विवेचन करनेपर उसे "सृष्टिके आदिकालमें निराकार ईश्वरके द्वारा रचित है" ऐसा अनुमान तक भी नहीं कर सकते।

वर्तमान कालीन उन्नत वैज्ञानिक गवेषणाके फलसे यह पता लगा है, कि पृथिवीमें अति प्राचीन अवस्थामें मनुष्यके उचित वास योग्य जलवायु और भूमिका औचित्य नहीं था। प्रथम खनिज पश्चात् उद्भिज्ज तदनन्तर प्राणीजगत् इसके पीछे मनुष्यका आविर्भाव हुआ है। एक के पश्चात् दूसरी अवस्थाके आनेमें बहुत काल व्यतीत हुआ है।

वेदोंमें पाए जानेवाले तत्कालीन नदियोंके नाम और ग्राम आदिकोंके विवरणसे तथा अन्य अनेक कारणोंसे यह अनुमान किया जाता है कि आर्योंके उत्तरीय देशोंमें निवास करते समय वेदोंकी रचना

हुई है। इतिहासज्ञ लोग वेदोंकी रचनाके समय का भी निर्देश करते हैं।

वेदोंमें प्रमाणसिद्ध ऐसी कोई वस्तु नहीं पाई जाती, जिसको मनुष्य न कह सकते हों, तथा जिसके वर्णनके लिए सृष्टिका आदि-काल, किंवा विना हाथ मुँहके लेखक और वक्ता की आवश्यकता हो। इसलिए प्रतिपन्न हुआ कि वेदका ईश्वररचितत्व अनुमान प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता।

इसी प्रकार शब्द प्रमाणसे भी वेदका ईश्वररचितत्व सिद्ध नहीं होता। इसका समाधान यह है, कि शतपथ ब्राह्मण का "अस्य महतो तस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो" आदि वचन वेदके ईश्वररचितत्व सिद्धान्तको स्थापित नहीं करता, क्योंकि मनुष्यरचित रूपसे प्रसिद्ध शास्त्रोंको भी उक्त श्लोकमें ईश्वरके निःश्वाससे उपन्न होनेवाला माना है। पूर्ण श्लोक इस प्रकार है। यथा—

"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषद् श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यान्यान्यस्यैवेतानि सर्वाणि निःश्वसितानि"

इसमें उन इतिहास और पुराणोंका भी उल्लेख है, जिनकी रचना इतिहासमें वर्णित—राजर्षि और महर्षियोंके पश्चात् कालमें हुई थी। इसलिए इसकी यह व्याख्या सर्वथा असंगत और स्वकपोलकल्पित है, कि ईश्वरने साँस लिया, और यावत् वेदादि शास्त्र उत्पन्न होगए। वस्तुतः उक्त श्रुतिमें रूपकालंकार है। जिसका यह अर्थ होता है, कि "संसारके जितने वेदादि शास्त्र उस महान् पंचभूतात्मक विराट रूप ब्रह्मके निःश्वास रूप हैं,।" निम्न श्रुति से भी इसी अर्थ की

पुष्टि होती है। यथा ईशोपनिषद्में कहा है कि "इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे" इस श्रुतिसे भी यह ज्ञात होता है, कि इसके रचयिताने किसी पूर्वकालीन ऋषिसे तत्वज्ञानको सुनने के पीछे इसकी रचना की है। अतः श्रुतिप्रमाणसे भी यह सिद्ध होता है, कि श्रुति किसी मनुष्यकी बनाई हुई है।

पुनश्च, वेदका ईश्वर रचितत्व पक्ष, वेदमें वर्णित ऋषियोंके नाम और क्रियाओंके ऐतिहासिक वर्णनके साथ सुसमंजस नहीं होता।

वेद भिन्न अपर शास्त्रोंकी प्रमाणता वेदानुकूल होनेपर ही मान्य होती है; इसकारण वेदकी प्रमाणिताके लिए वेदकोही प्रमाण मानना पड़ता है, ऐसा कथन विचार संगत नहीं है।

इसके अतिरिक्त अनुमान प्रमाणसे सिद्ध ईश्वरका स्वरूप उक्त वैदिक-सम्प्रदायोंको मान्य न होनेसे ("पत्युर सामंजस्यात्" ब्रह्मसूत्र २ अ० २ पाद ३७–४१ सूत्र द्रष्टव्य) शास्त्रसे ही ईश्वरकी सिद्धि माननी पडेगी। फलतः यहां अन्योऽन्याश्रय दोष भी होगा। क्योंकि ईश्वर शास्त्रसे प्रमाणित होता है, और शास्त्रका रचयिता ईश्वर माना जाता है। तथा शास्त्रका यथार्थत्व इस हेतुसे स्वीकृत होता है, कि वह ईश्वरकी रचना है। अर्थात् जब शास्त्रके रचयिता ईश्वर की विश्वस्ततासे शास्त्रकी यथार्थता निर्णीत होगी, तब उस शास्त्रके द्वारा ईश्वर सिद्ध होगा, और जब उस शास्त्रके द्वारा अत्यन्त विश्वासके योग्य ईश्वरत्व प्रमाणित होगा, तब उसके रचयिता रूपसे शास्त्रकी यथार्थता ज्ञात होगी; इसलिए अन्योन्याश्रय दोष होनेसे शास्त्रसे तो ईश्वर प्रमाणित हो ही नहीं सकता। किंवा ईश्वरके रचयितृत्व (निर्माणकर्तृत्व) से शास्त्रकी यथार्थता प्रमाणित नहीं हो सकती। ईश्वरविषयक अनुमान सिद्ध है, सुतरां शास्त्र उसके द्वारा बने हैं, ऐसा अनुमान नहीं हो सकता।

प्रकृत विषयमें उपमान प्रमाणका तीर भी नहीं लग सकता, यदि वेदभिन्न कोई वाक्य ईश्वर रचित पाया जाता, तब उसके साथ वेदके सादृश्यज्ञानसे उपमानके द्वारा वेदका ईश्वररचितत्व प्रतिष्ठित हो सकता था, परन्तु ऐसा कोई वाक्य वेदवादियोंको सम्मत नहीं है।

अर्थापत्तिके द्वारा भी ईश्वररचितत्व सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थापत्तिसे हम लोग किसी अप्रत्यक्ष पदार्थकी कल्पना करते हैं, जिसको माने विना प्रत्यक्ष गोचर कोई घटना उपपादित न हो सकती हो, परन्तु वर्तमान स्थल में वेदसंबंधी किसी प्रत्यक्ष गोचर घटनाकी उपपत्तिके लिए वेदका ईश्वररचितत्व कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है।

पुनश्च, यदि अर्थापत्तिके अतिरिक्त अपर किसी प्रमाणसे वेदका ईश्वरद्वारा रचा जाना ज्ञात हुआ हो तो वादीके मतानुसार अर्थापत्ति प्रदान करना समुचित नहीं है। अर्थापत्तिसे यह कभी नहीं जाना जा सकता; क्योंकि यह अन्योन्याश्रय दोषसे दूषित होगा। वेदका मनुष्यरचयितृत्वका अभाव, उसकी अयथार्थताके अभावके उपपादनके लिए स्वीकार किया जाता है, और पुनः उसकी अयथार्थताका अभाव, मनुष्यकी रचितत्वताके अभावके हेतुसे पाया जाता है।

यदि वादी स्वतन्त्र हेतुसे यह प्रमाणित कर सके कि वेद के सब वाक्य अभ्रान्त हैं, और जो ग्रन्थ मनुष्य रचित होता है, वह नियम पूर्वक भ्रान्त होनेसे दूषित है, तब उनका ईश्वररचितत्व पक्ष प्रबल हो सकता था, परन्तु वे लोग इसे सिद्ध करनेमें कहीं भी समर्थ नहीं हुए हैं। सुतरां उनके सिद्धान्त असंगत हैं।

अतः यह प्रमाणित हुआ की वेदके ईश्वररचितत्व पक्षके अनुकूल कोई भी प्रमाण, साक्षात् या असाक्षात् नहीं है।

पुनश्च, शास्त्र तो वर्णात्मक है, और वर्णोंकी (तालु आदि व्यापार-जन्य होनेके कारण) उत्पत्ति शरीरसे ही हो सकती है, शरीररहित ईश्वरसे बिल्कुल नहीं । शरीररहितका प्रयत्न ऐसे रूपमें आज तक कहीं देखा नहीं गया, और उसकी संभावना तक नहीं हो सकती। ईश्वर स्वेच्छा-निर्मित शरीरके द्वारा रचना करता है, ऐसी कल्पना भी असंगत है । इच्छा रूपी निमित्तके द्वारा देहेन्द्रियादि परिग्रहको स्वीकार करने पर परस्पराश्रयका प्रसंग होगा । देहेन्द्रियके होनेपर ही इच्छा उत्पन्न होगी, एवं इच्छाके उदित होनेपर ही देहादि प्राप्त हो सकेंगे, इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष होगा ।

ईश्वरके शरीरको यदि कार्य रूप माना जाय तो उसका कर्ता कौन होगा? यदि कर्ताके न होते हुए भी ईश्वर का शरीर कार्यरूप स्वीकृत हो, तो कार्यत्वलक्षण व्यभिचारी होगा, अर्थात् जगत् कार्य भी कर्ताके विना ही उत्पन्न होनेमें कोई दोष न होगा, और ईश्वर की नितान्त आवश्यकता ही न रहेगी । यदि उक्त विरोधके लिए ईश्वरके शरीरको नित्य कहा जाय, तो जिस प्रकार ईश्वरका शरीर शारीरिक धर्मका अतिक्रमण करके भी नित्यरूप स्वीकृत हो सकता है, उसी प्रकार घटादिसे विलक्षण वृक्षादिके कार्यत्व होनेपर भी अकर्तृ-पूर्वकत्व (कर्ता से जनित नहीं) स्वीकृत हो सकता है । किं च यदि ईश्वर को शरीरवान् कहना हो, तो उसके शरीरको नित्य अनादि अथवा नित्य सादि या शरीरान्तर के संबंधसे सशरीर कहना होगा। परन्तु उक्त तीनों ही पक्ष असंगत हैं । क्योंकि हमारे शरीरके समान ईश्वर शरीरके भी सावयव होनेके कारण उसे नित्य—अनादि नहीं कह सकते, तथा नित्य सादि मानने पर भी उस शरीरकी उत्पत्ति के

पूर्व ईश्वर को अशरीर ही कहना होगा। इसी प्रकार शारीरान्तरके द्वारा ईश्वर के सशरीर होने पर अनवस्थाका प्रसंग होगा। अतः ईश्वरके शरीरवान् सिद्ध न होने पर कंठ-तालु आदि स्थानों से उच्चारणके योग्य वर्णात्मक वेदादि शास्त्रकी रचना भी उसके द्वारा नहीं हो सकती। फलतः वेदशास्त्रको ईश्वर रचित नहीं कह सकते।*

*जैमिनि के मतमें वेद नित्य है, वेदके नित्यत्वको (अपौरुषेयत्व) अव्याहत रखनेके लिए वे लोग (मीमांसक) जगत्की आदिसृष्टि, महाप्रलय, ईश्वर और सर्वज्ञता को अस्वीकार करते हैं (सर्वज्ञ पुरुषको स्वीकार करने पर धर्म विषयमें उसके भी वाक्य प्रमाण हो सकेंगे, इससे मीमांसकोंके वेदका प्रामाणिकत्व निष्फल होगा, अतः किसी सर्वज्ञ पुरुष को मानना उचित नहीं। (सर्वज्ञताका अतिविस्तार पूर्वक खंडन भामतीकार कृत विधिविवेकटीका न्यायकणिका में उपलब्ध होता है पृष्ठ ११०—२२७) वे लोग वेदाध्ययन में वर्तमान गुरुशिष्य परम्पराको, अविच्छिन्न और अनादि गुरुशिष्यपरम्परासे प्रचलित स्वीकार करते हैं। इस मतमें वर्ण नित्य और विभु है। उसकी अभिव्यक्ति या ज्ञानका जो आनुपूर्वी अर्थात् पौर्वापर्य है, वही वर्णसमष्टि के ऊपर आरोपित होनेसे वह वर्ण पद रूपसे व्यवहृत होता है। इस क्रमिक अभिव्यक्ति के अनित्य होनेपर भी वर्ण नित्य हैं। उक्त मीमांसक मतकी समालोचनामें वक्तव्य यह है, कि आपको किस प्रमाणसे उक्त अपौरुषेयत्व विदित हुआ है? (इस पक्षका खंडन भी उपरोक्त प्रकारसे जानना चाहिए) और यह भी बात है कि "अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत" इत्यादि वैदिक-शब्द समूह अनादि कालसे हैं, यह कल्पना शोभनीय नहीं है।

मीमांसक लोग वेदको नित्य और निर्दोष मानते हैं, तब प्रश्न यह उठता है, कि वेद किस प्रकार निर्दोष हैं? क्या वर्णका नित्यत्व ही वेदकी निर्दोषतामें हेतु है? या आनुपूर्वी–विशिष्ट वेदनित्यत्व वेदकी निर्दोषतामें हेतु है? परन्तु ये दोनों ही पक्ष संगत नहीं हैं। आद्य पक्षको मानने पर अन्य लौकिक वाक्य भी निर्दोष होनेके अधिकारी हैं। क्योंकि वर्णमात्रके नित्य होने के कारण, वर्णात्मक समस्त लौकिक शास्त्र भी नित्य होंगे, तथा इसी हेतुसे निर्दोष भी होंगे। फलतः वर्णात्मक होनेसे वेद निर्दोष है, और सब शास्त्र सदोष हैं, इस प्रकारका विभाग पूर्वक कथन भी नहीं हो सकेगा, तथा कोई भी वाक्य अप्रमाणित नहीं रहेगा। इसी प्रकार अन्तिम पक्ष भी समीचीन नहीं है, कारण आद्यपक्षके अनुसार वर्णोंका नित्यत्व सदोष सिद्ध होता है, तब उसे त्यागकर वर्णोंका अनित्यत्व स्वीकार करना होगा। अतः वर्णोंके अनित्य होनेसे वर्ण समुदाय रूप पद और पदसमुदायरूप वाक्य भी अनित्य होंगे। फलतः वाक्यसमुदाय रूप वेद भी अनित्य हो जायगा। यदि वर्णात्मक शब्दको नित्य स्वीकार किया जाय, तो भी वेदका नित्यत्व सिद्ध नहीं होता, कारण अनेक शब्दोंकी योजनासे वाक्य और अनेक वाक्योंकी योजना से शास्त्र बनता है। अतः वही पूर्वोक्त दोष होगा, अर्थात् नित्य शब्द प्रयुक्त वेदकी नित्यताके साथ ही साथ अन्य लौकिक शास्त्र भी नित्य होंगे, अथवा शब्दका नित्यत्व संभव होगा, परंतु शब्दसमुदायरूप वाक्यात्मक वेदादिशास्त्र तो किसी भी प्रकार से नित्य सिद्ध न होंगे। सुतरां वर्ण यदि नित्य भी हों तो भी वर्णसमूहात्मक वाक्य अनित्य होंगे। किं च, वर्णके नित्यत्व पक्षमें भी पदवाक्यादि विभाग क्रमकृत

होता है, और क्रम (उच्चारण या उपलब्धरूप) स्वाभिव्यक्तिकारित (वर्णोंकी अभिव्यक्तिसे उत्पादित) होता है । अतः वेदको भी सकर्तृक (पौरुषेय) मानना ही उचित है । तात्पर्य यह, कि वर्णोंके नित्य होने पर भी वर्णसमूहमात्र वेद नहीं, किन्तु क्रमविशेष और स्वरविशेषसे विशिष्ट ही वेद होता है । नित्य और विभु वर्णोंका देश और कालसे क्रमका होना संभव नहीं है, एवं कंठ–तालु आदि स्थानविशेष से सम्पादित होनेके कारण अनित्य स्वरका नित्यवर्णमें होना संभव नहीं है, किन्तु स्वरको प्रगट करनेवाली ध्वनिको ही स्वरादिरूप (ध्वनि उपाधिक ही स्वरादि) स्वीकार करना होगा । अतः वर्णोंके विशेषणरूप क्रम और उपाधिरूप स्वर (ध्वनि) के अनित्य होनेपर तद्विशिष्ट वेद कैसे नित्य हो सकता है? फलतः मीमांसक सम्मत वेदका नित्यत्व विचारसह नहीं है, इसलिए वेद अपौरुषेय न होकर मनुष्यकृत सिद्ध होते हैं ।

× × ×

महानुभाव ! आप भली प्रकार जान गए होंगे की वेद ईश्वररचित नहीं हो सकते, तथा वेदको प्रमाणभूत माननेका समीचीन हेतु प्राप्त नहीं होता । अर्थात् वेदादिशास्त्र ईश्वररचित नहीं है, किन्तु वे अवैज्ञानिक–अदार्शनिक युगमें (समकाल में न होकर किन्तु भिन्न भिन्न कालमें) भ्रमप्रमाणपूर्ण कवियोंके द्वारा रचित, गडरियोंके गीतके नमूने से हैं । उनमें जो लोक भिन्न वर्णन पाए जाते हैं, वे किंवदन्तीमूलक या स्वकपोलकल्पित हैं । फिर भी लोग उनको विद्वान् होकर प्रमाणिक मानते रहे हैं, यह उनके स्वतन्त्र विचार का अभाव तथा सम्प्रदाय वृद्धि करनेकी वासनामूलकता है, साथ ही उनका केवल

अन्धपरम्परागत-साम्प्रदायिक मोहके अतिरिक्त वास्तविकता कुछ नहीं है।

पंडितजी—आपके कथनानुसार तो यह पता चलता है, कि वास्तवमें वेदोंके बनानेवाले मनुष्य ही थे!

श्रीगुरुदेव—महाशय! इसमें संदेह ही क्या है। यदि मनुष्य भी निस्पृह और संयमी होते तब भी वेदोंका कुछ मूल्य आँका जाता परन्तु कुरुपंचाल (पश्चिमी युक्त प्रान्त) में ईसासे १५०० वर्ष पूर्व सुदास्का पिता दिवोदास् बडा ही प्रतापी राजा हुआ, जिसकी प्रशंसामें वसिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाज * जैसे महान् ऋषियोंने मंत्र पर मंत्र बना डाले, किन्तु ऋग्वेदमें जमा कर देने मात्रसे उनके भीतर भरी चापलूसी छिपाई नहीं जा सकती। यह घटना आजसे १४४ पीढी पहलेकी हैं। पढ़ो वोल्गासे गंगा। **इसके अतिरिक्त कुछ और प्रमाणोंपर भी विचारिए।**

* ऋग्वेद ६–२६–२११–२५

× × ×

प्रवाहणके समय (ईसासे ७०० वर्ष पूर्व, आजसे १०८ पीढी पहले) उसने लोपासे बातें करते हुए कहा है, कि अदृष्ट ब्रह्मकी सत्ताका मंत्र मैंने संसारके मन में इतना अच्छा फूँका है, कि लोग चाहे ५६ पीढी तक भटकते फिरें, परन्तु ब्रह्मको चमडेकी आँख से तो न देख पाएँगे, और विश्वास भी न खो सकेंगे। उसने स्पष्ट शब्दोंमें यह भी कहा, कि मैंने पुराहितोंके स्थूल हथियारको बेकार समझ, इस सूक्ष्म हथियार को निकाला है, तूने शबरोंके पास पत्थर और ताँबे के हथियार देखे हैं लोपा? (पढ़ो वोल्गासे गंगा)

वसिष्ठ और विश्वामित्रने भी पेटके लिए वेद रचे, उत्तर पंचाल (रुहेलखंड) के राजा दिवोदास् की कुछ शबर दुर्गों की विजय पर कविता पर कविता बनाई। प्रगटमें पेटका प्रबंध करना बुरा नहीं है, और हम जब अपने पेटके साथ हजार वर्षोंके लिए अपने बेटे-पोते-भाई-बाँधवोंके पेटका भी प्रबन्ध*कर डालते हैं, तो हम शाश्वत यशके भागी होते हैं। प्रवाहण वह काम कर रहा है, जिसे पूर्वज ऋषि भी नहीं कर पाए। यानी जिसे धर्मकी रोटी खाने वाले ब्राह्मण भी न कर सके।

*त्वं तदुक्थमिन्द्र वर्हणाकः
प्रयच्छता सहसा शूर-दर्षि।
अव गिरेर्दासं शबरं हन्
प्रावी दिवोदासं चित्राभिरुती॥

ऋग्वेद. ६–२६–२५

× × ×

यदि उनके वादमें तथ्य होता तो वे प्रश्नकर्ताको मारने की धमकी कभी न देते, जैसी कि मारनेकी धमकी याज्ञवल्क्यने गार्गी को दी थी। यथा—

"प्रवाहण मरचुकाथा उसके ब्रह्मवाद उसके पुनर्जन्म या पितृ-यानवादकी विजय-दुंदुमी सिन्धुसे सदा नीरा-गंडकी के पार तक बज रही थी। यज्ञोंका प्रचार अब भी कम नहीं हुआथा, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी उन्हें करनेमें ख़ास तौरसे उत्साह प्रदान करते थे। क्षत्रिय-प्रवाहणके निकाले ब्रह्मवादमें ब्राह्मण बहुत दक्ष हो गए थे और इसमें कुरुके याज्ञवल्क्यकी बडी ख्याति थी। कुरु पांचाल में जिसने

अन्धपरम्परागत-साम्प्रदायिक मोहके अतिरिक्त वास्तविकता कुछ नहीं है।

पंडितजी—आपके कथनानुसार तो यह पता चलता है, कि वास्तवमें वेदोंके बनानेवाले मनुष्य ही थे !

श्रीगुरुदेव—महाशय ! इसमें संदेह ही क्या है। यदि मनुष्य भी निस्पृह और संयमी होते तब भी वेदोंका कुछ मूल्य आँका जाता परन्तु कुरुपंचाल (पश्चिमी युक्त प्रान्त) में ईसासे १५०० वर्ष पूर्व सुदास्‌का पिता दिवोदास् बडा ही प्रतापी राजा हुआ, जिसकी प्रशंसामें वसिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाज * जैसे महान् ऋषियोंने मंत्र पर मंत्र बना डाले, किन्तु ऋग्वेदमें जमा कर देने मात्रसे उनके भीतर भरी चापलूसी छिपाई नहीं जा सकती। यह घटना आजसे १४४ पीढी पहलेकी हैं। पढ़ो वोल्गासे गंगा। **इसके अतिरिक्त कुछ और प्रमाणोंपर भी विचारिए।**

* ऋग्वेद ६-२६-२११-२५

× × ×

प्रवाहणके समय (ईसासे ७०० वर्ष पूर्व, आजसे १०८ पीढी पहले) उसने लोपासे बातें करते हुए कहा है, कि अदृष्ट ब्रह्मकी सत्ताका मंत्र मैंने संसारके मन में इतना अच्छा फूँका है, कि लोग चाहे ५६ पीढी तक भटकते फिरें, परन्तु ब्रह्मको चमडेकी आँख से तो न देख पाएँगे, और विश्वास भी न खो सकेंगे। उसने स्पष्ट शब्दोंमें यह भी कहा, कि मैंने पुराहितोंके स्थूल हथियारको बेकार समझ, इस सूक्ष्म हथियार को निकाला है, तूने शबरोंके पास पत्थर और ताँबे के हथियार देखे हैं लोपा? (पढ़ो वोल्गासे गंगा)

× × ×

वसिष्ठ और विश्वामित्रने भी पेटके लिए वेद रचे, उत्तर पंचाल (रुहेलखंड) के राजा दिवोदास् की कुछ शबर दुर्गों की विजय पर कविता पर कविता बनाई। प्रगटमें पेटका प्रबंध करना बुरा नहीं है, और हम जब अपने पेटके साथ हजार वर्षोंके लिए अपने बेटे-पोते-भाई-बाँधवोंके पेटका भी प्रबन्ध*कर डालते हैं, तो हम शाश्वत यशके भागी होते हैं। प्रवाहण वह काम कर रहा है, जिसे पूर्वज ऋषि भी नहीं कर पाए। यानी जिसे धर्मकी रोटी खाने वाले ब्राह्मण भी न कर सके।

*त्वं तदुक्थमिन्द्र वर्हणाकः
प्रयच्छता सहसा शूर-दर्षि।
अव गिरेर्दासं शबरं हन्
प्रावी दिवोदासं चित्राभिरुती॥

ऋग्वेद. ६–२६–२५

× × ×

यदि उनके वादमें तथ्य होता तो वे प्रश्नकर्ताको मारने की धमकी कभी न देते, जैसी कि मारनेकी धमकी याज्ञवल्क्यने गार्गी को दी थी। यथा—

"प्रवाहण मरचुकाथा उसके ब्रह्मवाद उसके पुनर्जन्म या पितृ-यानवादकी विजय-दुंदुमी सिन्धुसे सदा नीरा-गंडकी के पार तक बज रही थी। यज्ञोंका प्रचार अब भी कम नहीं हुआथा, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी उन्हें करनेमें ख़ास तौरसे उत्साह प्रदान करते थे। क्षत्रिय-प्रवाहणके निकाले ब्रह्मवादमें ब्राह्मण बहुत दक्ष हो गए थे और इसमें कुरुके याज्ञवल्क्यकी बडी ख्याति थी। कुरु पांचाल में जिसने

अन्धपरम्परागत-साम्प्रदायिक मोहके अतिरिक्त वास्तविकता कुछ नहीं है।

पंडितजी—आपके कथनानुसार तो यह पता चलता है, कि वास्तवमें वेदोंके बनानेवाले मनुष्य ही थे!

श्रीगुरुदेव—महाशय! इसमें संदेह ही क्या है। यदि मनुष्य भी निस्पृह और संयमी होते तब भी वेदोंका कुछ मूल्य आँका जाता परन्तु कुरुपंचाल (पश्चिमी युक्त प्रान्त) में ईसासे १५०० वर्ष पूर्व सुदास्का पिता दिवोदास् बडा ही प्रतापी राजा हुआ, जिसकी प्रशंसामें वसिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाज * जैसे महान् ऋषियोंने मंत्र पर मंत्र बना डाले, किन्तु ऋग्वेदमें जमा कर देने मात्रसे उनके भीतर भरी चापलूसी छिपाई नहीं जा सकती। यह घटना आजसे १४४ पीढी पहलेकी हैं। पढ़ो वोल्गासे **गंगा**। **इसके अतिरिक्त कुछ और प्रमाणोंपर भी विचारिए।**

* ऋग्वेद ६–२६–२११–२५

× × ×

प्रवाहणके समय (ईसासे ७०० वर्ष पूर्व, आजसे १०८ पीढी पहले) उसने लोपासे बातें करते हुए कहा है, कि अदृष्ट ब्रह्मकी सत्ताका मंत्र मैंने संसारके मन में इतना अच्छा फूँका है, कि लोग चाहे ५६ पीढी तक भटकते फिरें, परन्तु ब्रह्मको चमडेकी आँख से तो न देख पाएँगे, और विश्वास भी न खो सकेंगे। उसने स्पष्ट शब्दोंमें यह भी कहा, कि मैंने पुराहितोंके स्थूल हथियारको बेकार समझ, इस सूक्ष्म हथियार को निकाला है, तूने शबरोंके पास पत्थर और ताँबे के हथियार देखे हैं लोपा? (पढ़ो वोल्गासे गंगा)

वसिष्ठ और विश्वामित्रने भी पेटके लिए वेद रचे, उत्तर पंचाल (रुहेलखंड) के राजा दिवोदास् की कुछ शबर दुर्गों की विजय पर कविता पर कविता बनाई। प्रगटमें पेटका प्रबंध करना बुरा नहीं है, और हम जब अपने पेटके साथ हजार वर्षोंके लिए अपने बेटे-पोते-भाई-बाँधवोंके पेटका भी प्रबन्ध*कर डालते हैं, तो हम शाश्वत यशके भागी होते हैं। प्रवाहण वह काम कर रहा है, जिसे पूर्वज ऋषि भी नहीं कर पाए। यानी जिसे धर्मकी रोटी खाने वाले ब्राह्मण भी न कर सके।

*त्वं तदुक्थमिन्द्र वर्हणाकः
प्रयच्छता सहसा शूर-दर्षि।
अव गिरेर्दासं शबरं हन्
प्रावी दिवोदासं चित्राभिरुती॥

ऋग्वेद. ६—२६—२५

× × ×

यदि उनके वादमें तथ्य होता तो वे प्रश्नकर्ताको मारने की धमकी कभी न देते, जैसी कि मारनेकी धमकी याज्ञवल्क्यने गार्गी को दी थी। यथा—

''प्रवाहण मरचुकाथा उसके ब्रह्मवाद उसके पुनर्जन्म या पितृ-यानवादकी विजय-दुंदुभी सिन्धुसे सदा नीरा-गंडकी के पार तक बज रही थी। यज्ञोंका प्रचार अब भी कम नहीं हुआथा, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी उन्हें करनेमें ख़ास तौरसे उत्साह प्रदान करते थे। क्षत्रिय-प्रवाहणके निकाले ब्रह्मवादमें ब्राह्मण बहुत दक्ष हो गए थे और इसमें कुरुके याज्ञवल्क्यकी बडी ख्याति थी। कुरु पांचाल में जिसने

किसी समय मंत्रोंके कर्ता और यज्ञोंके प्रतिष्ठाता वशिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाजको पैदा किया था। याज्ञवल्क्य और उसके साथी ब्रह्मवादियों-ब्रह्मवादिनियोंकी धूम थी। ब्रह्मवादियों की परिषद रचनामें यज्ञोंसे भी अधिक नाम होता था। अतः राजा राजसूय आदि यज्ञोंके साथ या अलग ऐसी परिषदें कराते थे। जिनमें हजारों गायें घोडे और दास-दासियाँ (दासी ख़ास तौर से, क्योंकि राजाओंके अन्तःपुरमें पली दासियोंको ब्रह्मवादी विशेष रूपसे पसन्द करते थे) वादविजेताको पुरस्कारमें मिलते थे।

याज्ञवल्क्य कई परिषदोंमें विजयी हो चुका था, अब की बार उसने विदेह (तिर्हुत) के जनककी परिषद्में भारी विजय प्राप्त की, और उसके शिष्य सोमश्रवाने हजार गायें घेरी थीं। याज्ञवल्क्य विदेहसे कुरु तक उन गायोंको हाँक कर लानेका कष्ट क्यों उठाने लगा? उसने उनको वहीं ब्राह्मणोंमें बाँट दिया। ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्यकी भारी ख्याति हुई, हाँ हिरण्य-अशर्फ़ी-सुवर्ण-दास-दासी और अश्वतरी (खचरी) रथको वह अपनेसाथ कई नावोंमें भर कर कुरु देश लाया।

प्रवाहणको मरे साठ साल होगए थे, उस वक्त याज्ञवल्क्य अभी पैदा भी नहीं हुआ था, किन्तु सौ वर्षसे भी ऊपर पहुँची लोपा पंचालपुर (क़न्नौज) के बाहरके राजोद्यानमें अब भी रहती थी। उद्यानके आम्र कदली जंबूवृक्षोंकी छायामें रहना वह बहुत पसंद करती थी। ज़ीवनमें प्रवाहणकी बातोंका वह बराबर विरोध किया करती थी। साथ ही ब्रह्मवादियोंसे वह अब भी बहुत चिढ़ती थी। उसदिन पांचालपुर में ब्रह्मवादिनी गार्गी वाचक्नवी उतरी। राजोद्यानके पास ही एक उद्यानमें गार्गीको बड़े सम्मानके साथ ठहराया गया।

जनककी परिषद्में याज्ञवल्क्यने जिस तरह धोखेसे उसे परास्त किया था, गार्गी उसे भूल नहीं सकती थी। 'तेरा सिर गिर जायगा गार्गी ! यदि आगे प्रश्न किया तो' यह कोई वादका ढंग न था। ऐसा उग्र-लोहित पाणि (खूनसे हाथ रंगने वाले) ही कर सकते हैं, गार्गी सोचती थी।

गार्गी, लोपाकी पितृकुलकी कन्या थी, लोपा उससे सुपरिचित थी। यद्यपि ब्रह्मवादके सम्बन्धमें वह उससे बिल्कुल असहमत थी। अबकी बार याज्ञवल्क्यने जिस तरहका ओछा हथियार उसके खिलाफ इस्तेमाल किया था, उससे गार्गी जल गई थी। इस लिए जब अपनी परदादी बुआके पास गई तो उसके भावोंमें जरूर कुछ परिवर्तन था। लोपाने पास आई गार्गीके ललाट और आँखोंको चूमकर छातीसे लगाया, और फिर स्वास्थ्य–प्रसन्नताके बारे में पूछा, तब गार्गी ने कहा "मैं विदेहसे आ रही हूं, बुआ।"

"मल्लयुद्ध करने गई थी गार्गी बेटी !"

"हाँ मल्लयुद्ध ही हुआ, बुआ ! यह ब्रह्मवादियोंकी परिषदें मल्ल-युद्धसे बढकर कुछ नहीं हैं। मल्लोंकी भाँति ही इनमें प्रतिद्वन्द्वीको छल बलसे पछाडनेकी नियत होती है।"

"तो कुरु पंचालके बहुतसे ब्रह्मवादी अखाडेमें उतरे होंगे ?"

"कुरु पंचाल तो अब ब्रह्मवादियोंका गढ होगया है"

"मेरे सामने ही ब्रह्मवादकी एक छोटीसी चिनगारी, सो भी अच्छी नियत से नहीं–मेरे प्रवाहणने छोडी थी, और वह बनकी आग बन सारे कुरु पंचालको जलाकर अब विदेह तक पहुँच रही है।"

"बुआ तेरी बातकी सचाई को अब मैं कुछ कुछ अनुभव करने

लगी हूं । वस्तुतः यह भोग-अर्जनका एक बड़ा रास्ताहै । विदेहमें याज्ञवल्क्य को लाखोंकी सम्पत्ति मिली, और दूसरे ब्राह्मणोंको भी काफ़ी धन मिला ।"

"यह यज्ञसे भी ज्यादह नफ़ेका व्यापार है, बेटी! मेरा पति इसे राजाओं और ब्राह्मणोंके लिए भोग प्राप्तिकी दृढ़ नौका कहा करता था! तो याज्ञवल्क्य जनककी परिषद्में विजयी रहा, और तू कुछ बोली नहीं?"

"बोलना न होता तो इतनी दूर तक गंगामें नाव दौडाने की क्या जरूरत थी?"

"नावमें चोर डाकू तो नहीं लगे?"

"नहीं बुआ! व्यापरियोंके बहुत बडे सार्थों (कारवाँ) में भटोंका प्रबंध रहता है । हम ब्रह्मवादी इतने मूर्ख नहीं हैं, कि अकेले दुकेले अपने प्राणोंको संकटमें डालते फिरें ।"

"और याज्ञवल्क्य ने सबको परास्त कर दिया?"

"उसे परास्त करना ही न कहना चाहिए!"

"सो क्यों?"

"क्यों कि प्रश्नकर्ता याज्ञवल्क्य का उत्तर सुन चुप हो गए?

"तू भी?"

"मैं भी? किन्तु मुझे उसने वादसे नहीं, बकवादसे चुप कर दिया ।"

"बकवाद से?"

"हाँ मैं ब्रह्मके बारेमें प्रश्न कर रही थी, और याज्ञवल्क्यको इतना घेर लिया था, कि उसको निकलनेका रास्ता न था । इसी वक्त याज्ञवल्क्यने ऐसी बात कही; जिसके सुनने की मुझे आशा न थी ।"

"क्या बेटी?"

"उसने यह कहकर प्रश्नका उत्तर माँगनेसे मुझे रोक दिया—'तेरा सिर गिर जायगा, गार्गी, यदि आगे प्रश्न किया तो ?"

"तुझे आशा न थी बेटी ? किन्तु मुझे सब आशा हो सकती थी। गार्गी ! याज्ञवल्क्य प्रवाहणका पक्का शिष्य सिद्ध हुआ। प्रवाहणके मिथ्यावादको इसने पूर्णताको पहुँचाया। अच्छा हुआ गार्गी ! जो तूने आगे प्रश्न नहीं किया।"

"तुझे कैसे मालूम हुआ, बुआ !"

"इसीसे कि मैं अपनी आँखोंसे तेरे सिरको कन्धे पर देख रही हूं।"

"तो क्या तुझे विश्वास है बुआ ! यदि मैं आगे प्रश्न करती तो मेरा सिर गिर जाता !"

"जरूर ! किन्तु याज्ञवल्क्यके ब्रह्मबलसे नहीं, बल्कि, वैसे ही, जैसे औरोंके सिर गिरते देखे जाते हैं।"

"नहीं बुआ !"

"तू बच्ची है, गार्गी ! तू जानती है कि यह ब्रह्मवाद सिर्फ, मनकी उडान, मनकी कलाबाजी है। नहीं गार्गी इसके पीछे राजाओं और ब्राह्मणों का भारी स्वार्थ छिपा हुआ है। जिस क्षण यह ब्रह्मवाद पैदा हुआ था। उस समय इसका जन्मदाता मेरी बगलमें सोताथा। यह राज-सत्ता और ब्राह्मण-सत्ता को दृढ करनेका[1] भारी साधन है—वैसे ही जैसे कृष्ण लोह (लोहे) का खड्ग जैसे उग्र लोहित पाणि भट।"

---

१ बुद्धकी सत्ताके विषयमें भी यही बात थी, बुद्धकी बातको असत्य ठहरानेवाले वादीका सिर देवता कुल्हाडेद्वारा गुप्त रूपसे काट देते थे, बुद्धचर्या, ले०।

"बुआ, मैंने ऐसा नहीं समझा था।"

"बहुतसे ऐसा नहीं समझते ! मैं नहीं समझती, जनक विदेह भी इस उपनिषद् (रहस्य) को न समझता होगा। किन्तु याज्ञवल्क्य समझता है वैसे ही जैसे मेरा पति समझता था। प्रवाहणको किसी देवता, देवलोक, पितृलोक, यक्ष और ब्रह्मवादमें विश्वास न था। उसे विश्वास था सिर्फ भोगमें, और उसने अपने जीवनके एक एक क्षणको उस भोगके लिए अर्पण किया, मरने के दिनसे तीन दिन पहले विश्वामित्र कुलीन पुरोहित की सुवर्णकेशी कन्या उसके रनिवासमें आई। बचनेकी आशा न थी, तो भी वह उस बीस वर्षकी सुन्दरी से प्रेम करता रहा।"

"गायों को दानकर विदेहराजकी दी हुई सुंदर दासियोंको याज्ञवल्क्य अपने साथ लाया है, बुआ?"

"मैंने भी कहा न कि वह प्रवाहणका पक्का चेला है, देखा न उसका ब्रह्मवाद? और यहं तो तूने दूरसे देखा। यदि कहीं नज़दीकसे देखनेका मौका मिलता, तो देखती बेटी!"

"तो बुआ! तू सच मुच समझती है, कि यदि मैं आगे प्रश्न करती, तो मेरा सिर गिर जाता!"

"निस्संदेह; किन्तु याज्ञवल्क्य के ब्रह्मतेजसे नहीं, किन्तु दुनियामें कितनोंके सिर चुपचाप गिरा दिए जाते हैं।

"मेरा सिर चकराता है, बुआ!"

आज? और मेरा सिर तब से चकराता है, जबसे मैंने होश संभाला। सारा ढोंग, पूरी वंचना। प्रजाकी मशक्क़तकी कमाईको मुफ़्तमें खानेका तरीक़ा है, यह राजवाद, ब्राह्मणवाद, यज्ञवाद।

प्रजाको कोई इस जालसे तब तक नहीं बचा सकता जब तक कि वह खुद सचेत न हो, और उसे सचेत होने देना इन स्वार्थियों को पसन्द नहीं।"

"क्या मानव-हृदय इन्हें इस वंचनासे घृणा करने की प्रेरणा नहीं देगा?"

"देगा बेटी! और मुझे एक मात्र उसी की आशा है।"

× × ×

पंडितजी! श्रीमहाराज! जैनोंके समान सनातन 'अहिंसा परमो धर्मः' कहकर अहिंसा को तो अपनाता ही है।

श्रीगुरु—रत्तीभर भी नहीं! यदि सनातन अहिंसाका बाना सोलह आने पहने हुए होता तो मनुको यह लिखने का साहस न होता कि "न मांसभक्षणे दोषो।" यदि सनातन अहिंसाका सच्चा पुजारी होता तो मनु श्राद्ध प्रकरणमें ब्राह्मणोंकी थालीमें माँस परोस कर यह न लिखता, कि अमुक बकरे या प्राणीके माँस का श्राद्ध में व्यवहार करनेसे इतने दिन पितर तृप्त रहता है × × ×

पश्चिमी उत्तरापथ गांधारमें अब भी मधुपर्कमें बछडे का माँस दिया जाता है, किन्तु मध्यदेश-युक्तप्रान्त-विहार में गोमाँसका नाम लेना भी पाप है। वहाँ गो-ब्राह्मणरक्षा सर्व श्रेष्ठ धर्म है। आखिर धार्मिक नियमोंमें इतनी धूप छाँह क्यों?

(वोल्गासे गंगा)

× × ×

एक पिताके दो पुत्रोंमें कोई रंतिदेव की भाँति क्षत्रिय होकर गौओंकी अधिकाधिक हिंसापर उतारू हो जाता है, फिर भी ब्राह्मणों

द्वारा काव्यों में उसकी प्रशंसाके गीत गाए जाते हैं, तब कोई गौर-वीतिके समान (ब्राह्मण) ही रहजाता है,

चर्मण्वती (चंबल) नदीके किनारे ही दशपुरमें उपरोक्त अधर्म हुआ है। यही दशपुर रंतिदेवकी राजधानी थी। तथा चर्मण्वती नाम क्यों पड़ा? यह तो और भी आश्चर्यपूर्ण है।

ब्राह्मण-संकृतिके पुत्र किन्तु स्वतः क्षत्रिय राजा रंतिदेव अपनी अतिथि सेवाके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। वह सतयुगके सोलह महान् राजाओं में हुआ है। रंतिदेवके रसोईघरमें दो हजार गाएँ मारी जाती थीं। उनका गीला चमडा रसोईमें रक्खा जाता था, उसीका टपका हुआ जल जो बहा वही एक नदी बन गया। चर्मसे निकलने के कारण चर्मण्वती नाम पड़ा। अहिंसा के पुजारी के पुराण रूपी घरमें भला यह मुद्दा क्यों मिलता। इसके विषयमें महाभारत * में साफ़ लिखा है।

*"राज्ञो महानसे पूर्वं, रन्तिदेवस्य वै द्विज !
अहन्यहनि वध्येते, द्वे सहस्रे गवां तथा।"
"समांसं ददतो ह्यन्नं, रन्तिदेवस्य नित्यशः।
अतुला कीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम !" वनपर्व २०८।८।१०

"महानदीचर्मराशेरुत्क्लेदात्संसृजे यतः।
ततश्चर्मण्वतीत्येवं, विख्याता सा महानदी"।

शान्तिपर्व—२९—२३

भला महाभारत जैसे पंचम वेदमें एक नहीं दो नहीं पूरी २००० गऊएँ एक आदमीके भोजनालयमें पकती हों, तब सर्वसाधारण प्रजामें तो न जाने कितनी गोहिंसा होती होगी, जिसे शायद लेखक लिखना भूल गया है। × × ×

रंतिदेवके यहां अतिथियोंके खानेके लिए इस गोमाँस के पकाने वाले २००० रसोइए थे। तिस पर भी ब्राह्मण अतिथि इतने बढ़ जाते थे, कि रसोइयोंको माँसकी कमीके कारण सूप ज्यादा ग्रहण करनेकी प्रार्थना कीजाती थी। ब्राह्मण गोमाँसतक न छोड़ें, और सनातन धर्म फिर भी हिंसा रहित; यह क्यों कर समझमें आ सकता है। या फिर महाभारत पाँचवाँ वेद······कहता है? क्या धर्मशास्त्र कहलाकर इतने काले धोले कारनामे लिख सकता है।*

*"सांकृतिरन्तिदेवं च, मृतं संजय! शुश्रुम।
आसन् द्विज शतसहस्रा तस्य सूदा महात्मनः।
गृहानभ्यागतान् विप्रान्-अतिथीन् परिवेशकाः"।
द्रोणपर्व—६७—१—२

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति, सुमृष्टमणिकुंडलाः।
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं, नाद्यमांसं यथा पुरा।"
द्रोणपर्व ६७-१७-१८, शान्तिपर्व २७-२८

जहाँ ऐसे काण्डोंकी साख महाभारत देता हो वहाँ अहिंसक-सनातन के गीत गाना यह तो दिवांध सबकी आँख मुँदवाने जैसा है। ब्राह्मणोंके पूर्वज गोरक्षा गोभक्षणके लिए ही करते थे। यदि यह बात न होती तो मेघदूतका बनानेवाला चर्मण्वती (चंबल) को गाय मारनेसे समुत्पन्न रन्तिदेवकी कीर्तिके गीत क्यों जोड़ता *।

*व्यालम्बेथाः सुरभितनयालंभजां मानयिष्यन्,
स्रोतो मूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्॥
मेघदूत १-४५

× × ×

सनातन धर्मके ऐसे ऐसे विगड़े कारनामोंको देखकर धर्मकीर्ति जैसे पुरुषसिंह नालंदामें बैठ कर ऐसे ऐसे सुन्दर तीर चलाने का अवसर अपने प्रमाणवार्तिकमें पाजाएँ तो कौन बड़ी बात है ।

वेदप्रामाण्यं कस्यै चित्कर्तृवादः,
स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः ।
सन्तापारम्भः पापहानाय चेति,
ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये ।। (प्रमाण वार्तिक)

बुद्धिके भी ऊपर पोथीको रखना, संसारके कर्ता ईश्वर को मानना, स्नान करनेमें धर्म होनेकी इच्छा रखना, जन्मजातिका अभिमान; पाप नाश करनेके लिए शरीरको तपाना, अक्ल मारे हुओंकी जड़ताके ये पांच लक्षण हैं ।"

× × ×

श्रीमहाराज के इन बोधवचनों की पंडितजीने बडी ही क़द्र की और मुक्तकंठसे प्रशंसा करते हुए महाराज श्रीके सुन्दर उपदेशका अनुमोदन किया । इस प्रकार यहां दो दिन महाराजका निवास करना बड़ा सफलताका कारण सिद्ध हुआ ।

(नोट) ये अवतरण 'वोल्गासे गंगा' में से बताए हैं ।

(लेखक)

जाट ढाणी—४-१०४३ ता० २८-४-४५

बरकतराम बरमाराम के छोटेसे छप्पर तले रात बिताई ।

डीगाना ५ }
जालसु कटेडी ६ } ११।१०५४ ता० २९-४-४५

रेन } १२।१०६६
खेडोली } ५।१०७१ ता० ३०-४-४५

मेडता रोड ७ }
जोगीमगरा ६ } १३।१०५४ ता० १-५-४५

यहां दिगम्बर श्वेतांबरोंके अलग २ दो मंदिर हैं। इस स्थानको पारसनाथ फलोधी भी कहते हैं। दिगम्बरोंके मंदिरमें स्थानकवासि-साधुओंके ठहरनेकी सख्त मनाही है। इसी कारण हमको निकलवा दिया गया। अन्त में शुकनराजजी का फ़ोन आनेपर देहलीके मुस्लिम स्टेशन-मास्टरने रेस्ट हाउसमें ठहरनेकी प्रार्थना कि, यहां के दिगम्बरोंकी कट्टरता सराहने तथा व्याख्या करने योग्य है।

गोटन ६ }
बाशनी प्याऊ ५ } ११।१०९५ ता० २-५-४५

उमेद ५ }
रातकुड़ियाप्याऊ ३ } ९।११०३ ता० ३-५-४५

पीपाड़ रोड ९।१११२ ता० ४-५-४५

आसारानाड़ा १० }
जालेली ३ } १३।११२५ ता० ५।५।४५

बनाड़—९।११३५ ता० ६।५।४५

महामंदिर—६।११४० ता० ७।५।४५

यहां ओसवालोंके १००घरसे अधिक हैं। कालुराम कटारिया, धनराज धारीवाल, मूलचंद सुजानमल संचेती आदि भावुक हैं। साँझ होते होते जैन मुनि श्री रूपचंद जी मुरुधर सम्प्रदायानुयायी जोधपुर शहरसे पधार गए, एवं गुरुदेवसे प्रार्थना करने लगे कि

शहर में श्री १००८ श्रीमुनिशिरोमणि शार्दूलसिंह जी स्वामी, श्री १००८ श्रीमुनि नारायणजी स्वामी, तथा मुनि श्री १००८ श्री रावतमलजी स्वामी आदि ठा० ७ विराजमान हैं, सब की यही अभिलाषा है, कि आगामी कलको प्रातः ही जोधपुर पधारें। कथित मुनिमहानुभाव आपकी पेशवाई में यहां ही पधारेंगे। साथ ही आपसे ढौंढीदारोंके उपाश्रय में विराजनेकी भी प्रार्थना है। मुनिराज आपके सह निवासके अभिलाषी हैं। अस्तु,

श्रीगुरुराजने उत्तरमें निवेदन किया कि भगवन्! मैं तो शासनपतिके सब मुनियोंका अकिंचन हूं। वे जिस प्रकार आज्ञा करें, उसी भाँति आज्ञा पालन किया करता हूं, जिस मुनिका निमंत्रण प्रथम पालेता हूं उन्हीकी सेवामें अपनेको समर्पित कर देता हूँ। मैंने तो सम्प्रदायके भेदको मिटा दिया है। अभेद रूपसे सब की सेवा करना अपना परम कर्तव्य समझता हूं। मुनिओंके द्वारपर कूकुर की सदृश रहना अपना सौभाग्य समझता हूं। जहां मुनिराज आज्ञा करेंगे वहीं उनकी चरणरज स्पर्श करके कृतकृत्य होनेको तैयार हूं। इस उत्तरसे मुनि रूपचंदजी को बड़ाही संतोष हुआ और आप गुरुदेवकी पाद-पद्म-धूलि लेकर शहर चले गए।

जोधपुर २।१।१४२ ता० ८-९+५-४५

ओसवालोंके घर तो २२०० से अधिक हैं, छ सम्प्रदाय और तीन सम्प्रदाय हैं। मिलकर सब ९ संप्रदाय हैं परन्तु ९ के अंकके समान मेल नहीं है। परस्पर रेणु और पय के सदृश अलग रहते हैं दूध पानी की तरह मिलना नहीं चाहते। प्रतिपल मतभेद रखते हैं। सवाईसिंहजीकी पोलको नौं सम्प्रदायोंने मिलकर

खरीद किया है । परन्तु मरुधरकी ६ सम्प्रदायों को अलग निकालकर मात्र पूज्य श्रीजवाहरलालजी म०, श्रीज्ञानचंदजी और पूज्य श्रीहस्तीमलजी म० की संप्रदायके लोग अपनी तीन सम्प्रदायके नामपर उक्त जायदादका पट्टा बनवाना चाहते हैं । और नवीन रजीस्ट्री में यह भी लिखवा डाला कि यदि किसी समय छ सम्प्रदायके मुनि कथित पोलमें ठहरे हुए हों और पीछे से तीन सम्प्रदायके मुनि आ जायँ तो पोल में बादमें आनेवालोंको ठहरने दिया जायगा और पहले से ठहरे हुए छ सम्प्रदायके साधुओंको अपने ठहरनेके लिए कहीं अन्यत्र व्यवस्था करनी होगी । बस, यही प्रेमके पयमें विषसा घुल रहा है । पर यदि साधु नियम के नाते देखा जाय तो तीन सम्प्रदायके साधुओंके लिए तो वह मकान उद्दिष्ट-दोषसे दूषित हो गया, एवं साधु चरित्रकी दृष्टिसे वह स्थान उनके लिए भगवदाज्ञानुसार अकल्पनीय है । फिर भी यदि तीन सम्प्रदायके मुनिराज उक्त पोलमें ठहरें, तो जीवित....का निगलने के समान भूल करेंगे । यदि यह सच है तो तीन संप्रदायके लोग बड़ी भूल कर रहे हैं । खेद है आजके नव युगको खींचतान का युग बनाकर समय-धन-प्रभुता और सम्पका सर्वनाश किया जा रहा है, आशा है हमारे भाई इस बदीसे बाज़ आकर शासनपतिकी शान रखनेके लिए आपसी-मनोमालिन्य मिटानेका प्रयत्न करें, जिससे संघशक्ति दृढ और पुष्ट हो सके।

× × ×

सबके सब मुनिराज श्रीगुरुदेवका स्वागत करने आए । नगर निवासियोंका और श्रावकोंका तांता सा लग गया । महत्समारोहसे नगरप्रवेश हुआ । श्री ज्ञातपुत्र-महावीर भगवानके 'जयनाद' से नगर

प्रतिध्वनित हो उठा। श्रीमहाराजने सप्तर्षिओंकी सेवामें दौढ़ीदारोंके उपाश्रयमें पधारकर सम्प शक्ति, प्रेमशक्ति, और संघ शक्तिको बलकर बनानेका उपदेश किया। उपसंहार करते समय यहां तक भी कहा कि आपसकी खटपट और झगड़ेको मेरी झोलीमें डाल दें। मैं उसे एकान्तमें परिष्ठापित कर दूंगा। सचमुच सत्पुरुष जगत्की भलाई के लिए क्या कुछ नहीं कहते? परन्तु······का कीडा अमृतमें जानेके लिए प्रस्तुत नहीं होता।

दो बार खंजेड़ियोंके सट्टा हॉलमें भारी मानव मेदिनीमें **'मानवधर्म'** और **'सर्वधर्मसमभाव'** पर प्रवचन हुए।

आज एक डेप्युटेशन कराची संघकी ओर से आया। मास्टर मोहनलाल अंबावीदास, भूधर भाई हरजीवन (संघपति) देवचंद नेणशी संघवी (संघपति) हरजीवन भाई ओघडलाल, नवलचंद अभयचंद देवजी राजपाल आदि छ श्रावक महानुभावों का आगमन हुआ। जोधपुर संघने आपका हर्ष और भक्तिपूर्वक स्वागत किया। संघमें एक प्रकारसे नवजीवनका संचार होगया।

कराची संघने यथा समय कुछ आर्थिक दान भी किया जिसकी जोधपुर संघने मुक्त कंठसे प्रशंसा की।

साधुमुनिराजोंका प्रेम ऊँचे दर्जे का था। दो दिवस साधुसत्संगमें बीते। बहुतसी अगम्य और अदृष्ट एवं अनन्य-अभूतपूर्व बातोंका अनुभव हुआ। सचमुच मुनिओं की कृपाका फल हमारे लिए वरद-हस्त सिद्ध हुआ।

शनीचरजीका स्थान ११।१४३ ता० १०-५-४५

सबमुनिराजोंने यहां तक पहुँचानेका कष्ट किया, धूपका ताप

असीम था। अगले दिन व्याख्यान भी यहीं हुआ। नगरके नर-नारियोंकी अधिक संख्या थी। श्री १००८ श्रीशार्दूलसिंहजी महाराज यहीं ठहरे। आपका मृदु स्मरण चिरस्मरणीय रहेगा।

ओसवाल बोर्डिङ्ग १।११४४ ता० ११-५-४५

रात्रिमें सार्वजनिक प्रवचन हुआ। सेंकडों श्रोताओंने भाग लिया। श्री १००८ श्रीशार्दूलसिंहजीम०का वरद हस्त और शुभाशीर्वाद आज भी हमारे मस्तक पर था।

सालावास ८।११५२ ता० १२-५-४५

यहां ओसवालोंके घर भी हैं। जैन धर्मका पालन करते हुए रामदेवके चरण स्थापित करके उसे भी पूजते हैं। अंधश्रद्धाका बाज़ार गर्म है। परछिद्रान्वेषकता भी कुछ कम नहीं हैं। पर स्वभाव कुछ सरल है। आर्थिक दशा शोचनीय है। मुनिराजोंकी उचित शिक्षाके अभावमें धर्मकी लगन शिथिल होकर विसर्जन हो रही है, अतः मुनिराजोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए।

सरेचा ४।११५६ ता०१३-५-४५

सतलाना ६।११६२ ता० १४-५-४५

स्टेशन मास्टर पं० सागरदत्तजीने बडे अनुरोधसे स्टेशनके ऑफिसमें स्थान दिया तथा ५ बजे तक सत्संग और धर्मचर्चाका इस प्रकार लाभ लिया।

पंडित सागरदत्त—भगवन्! अनेक मतोंका यह मन्तव्य है, कि इस विश्वका कर्ता एवं हर्ता ईश्वर है। अतः इस विषयमें न्यायसे मीमांसा करके समझाएँ? पूर्ण आशा और दृढ विश्वास है, कि आप जैसे पक्षपात रहित विचार वाले महात्मा हमारे जैसे मुमुक्षुओंको

सम्मार्ग सुझाकर कल्याण मार्गका अन्वेषण कराएँ, जिससे हम मोक्ष पदके साधन करनेमें धर्मपुरुषार्थका सेवन करने में ठीक तरहसे उद्योग कर सकें। जैन धर्मका इस विषयमें क्या सिद्धान्त है, इसका विवेचन करते हुए सृष्टिकर्तृत्व पर निष्पक्ष मीमांसा करके समझाएँ। हम प्रथम यह जानना चाहते हैं, कि लोक क्या वस्तु है?

श्रीगुरुदेव—"जीवादयो यस्मिन् लोक्यन्ते स लोकः" इस आकाश में जीवादिक द्रव्य अनुभवकी दृष्टिसे दीख पड़ रहे हैं, वह सब लोक समझा जाता है।

पं० सागरदत्त-द्रव्यका सामान्य और विशेष लक्षण क्या है? बतलानेकी कृपा करें।

श्रीगुरुदेव—जो सत् अर्थात् उत्पत्ति विनाश और स्थितिसे युक्त हो वह द्रव्य है। जो एक अवस्थाको छोड़ कर दूसरी अवस्थाको प्राप्त हो वह द्रव्य कहाता है। उसकी अवस्था दो प्रकारकी है। एक सहभावी और अन्य क्रमभावी। सहभावी अवस्थाको गुण कहते हैं, क्रमभावीको पर्याय कहते हैं। अतः गुणपर्यायवत्त्व भी द्रव्य का लक्षण बनता है। गुणके विकारको पर्याय या विभाव कहते हैं। जैसे समुद्र और उसकी लहर।

द्रव्य छः जगह विभक्त हैं, जैसे—जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म आकाश और काल। चेतना (ज्ञान) सहितको जीव कहते हैं। जो स्पर्श-रस-गंध और वर्ण युक्त हो वह पुद्गल है। जीव और पुद्गलके संचालन (गमन) में सहकारी धर्मद्रव्य है। उक्त दोनों की स्थिति (रुकावट) में सहकारी अधर्मद्रव्य कहाता है। जीवादि पदार्थोंको आकाश द्रव्यके द्वारा अवकाश प्राप्त होता है। जीवादि पदार्थोंके परिणमन (परिवर्तन) में सहकारीको काल द्रव्य कहते हैं।

पं० सागरदत्त-इन द्रव्योंके भेद, आकार और निवासस्थान क्या हैं?

श्रीगुरुदेव--धर्म-अधर्म और आकाश ये तीनों अखंड द्रव्य हैं। जीव अनन्त हैं। पुद्गलके दो प्रकार हैं, अणु और स्कन्ध। स्कन्धके अनन्त भेद हैं। आकाश सर्वव्यापी है। धर्म और अधर्म लोक व्यापी हैं, तथा लोक ऊपर नीचे के मापमें १४ राजू, उत्तर दक्षिण ७ राजू; पूर्व पश्चिम, मूल-मध्य व ब्रह्मान्त और अनन्तमें ७।१५ और ७ राजू हैं, तथा घनाकार ३४३ राजू हैं।

जीव और पुद्गलका निवासक्षेत्र लोक है। प्रत्येक संसारी जीव का आकार अपने अपने शरीरके अनुसार है। मुक्त जीवोंका आकार किंचित् ऊन अन्तिम शरीर प्रमाण है। पुद्गलका आकार अनेक प्रकारका है। काल लोकाकाशमें व्याप्त है। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं; काल के भी उतने ही कालाणु हैं। एक एक प्रदेश पर एक एक कालाणु स्थित है। आकाशके जितने हिस्सेको पुद्गलका एक परमाणु रोके उसे प्रदेश कहते हैं।

पं० सागरदत्त--जीवके मुख्य भेद प्रतिभेद कौन कौन से हैं?

श्रीगुरुदेव--महानुभाव! मुक्त और संसारी की अपेक्षा दो भेद हैं। मुक्तजीव यद्यपि अनंत हैं, परन्तु सब समान हैं। संसारी जीवों के पांच प्रकार हैं। एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय; संज्ञी (मनसहित) और असंज्ञी (मनरहित) ये पंचेंद्रियके दो प्रकार हैं, चतुरिन्द्रिय तक सब जीव अमनस्क हैं। संज्ञीजीव नारक-तिर्यक्-मनुष्य और देव होते हैं। भुवनवासी-व्यंतर-ज्योतिषी और वैमानिक ये चार भेद देवोंके हैं।

पं० सागरदत्त—भगवन्! संसारी और मुक्तके लक्षण क्या हैं?

श्रीगुरुदेव—कर्मके निमित्तसे जिनका परिभ्रमण नारक-तिर्यक् देव और मनुष्यात्मक चतुर्गति रूप संसारमें परिभ्रमण होता हो वे संसारी जीव कहाते हैं, तथा जो कर्मका नाश करके संसारके परिभ्रमणसे छूट कर जलतुम्बिका न्यायसे लोकशिखर पर होकर समस्त दुःख-रहित अनंत और अविनाशी सुखका भोक्ता हो, उसे मुक्त जीव कहते हैं।

पं० सागरदत्त—कर्मका रहस्य क्या है?

श्रीगुरुदेव-पुद्गलका एक स्कन्ध विशेष जिसे कार्मण वर्गणा कहते हैं। जीवके रागद्वेषादिक परिणामोंका निमित्त पाकर जीवके प्रदेशों से एक क्षेत्रावगाह होकर उदयकालमें नाना दुःख देकर इस जीवको जो चारगतिरूप संसारमें घुमाता है वह कर्म कहता है।

पं० सागरदत्त—ईश्वर किसे कहते है?

श्रीगुरुदेव—मुक्त जीव ही ईश्वर-परमेश्वर-परमात्मा-ब्रह्मा-विष्णु-शिव-बुद्ध-खुदा गॉड-इत्यादि अनेक नामसे प्रसिद्ध है।

पं० सागरदत्त—तब क्या मुक्त जीवोंसे अलग कोई ईश्वर नहीं है? यदि यही बात है तो इस लोकको किसने बनाया?

श्रीगुरुदेव—देवानुप्रिय! मुक्त जीवोंसे अलग कोई ईश्वर नहीं है, और न उसके अस्तित्वमें कोई प्रमाण है। लोक अनादि-अनंत है।

पं० सागरदत्त-अभी तो कहा जा चुका है कि यदि ईश्वर नहीं है तो लोकको किसने बनाया?

श्रीगुरुदेव—हम कह चुके हैं कि जितने आकाशमें जीवादिक दीखते हैं, वही लोक है। अर्थात् जीवादिक छद्रव्यका समूह लोक है,

तब द्रव्योंके बनानेवाले की अथवा द्रव्योंको समूह रूप करने वालेकी क्या आवश्यकता है? यदि यह कहो कि द्रव्योंके बनाने वालेकी भी आवश्यकता है, तब यह बताना होगा कि वे पहले थे या नहीं? यदि कहो कि थे, तो फिर उनके बनानेकी क्या आवश्यकता थी? यदि नहीं थे, तो वे द्रव्य ईश्वरने उपादान कारणके विना कैसे बनाए? यदि यह कहो कि ईश्वर ही उनका उपादान कारण है, तो उपादान कारणके गुण कार्य में आते हैं। इस लिए ईश्वरके सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तिमत्वादि गुण इन द्रव्योंमें भी आने चाहिए थे, परन्तु देखे नहीं जाते। अतः ईश्वर द्रव्योंका उपादान कारण कदापि नहीं हो सकता।

पं० सागरदत्त–ईश्वर लोकका उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है। जीव और प्रकृति ये लोकके उपादान कारण हैं और लोक कार्य है। जैसे घट कार्य है, कुम्हार उसका निमित्त कारण है, और मट्टी उपादान कारण है।

श्रीगुरुदेव–आपके कथन का यह अर्थ निकला कि जो कार्य होता है, उसका कोई कर्ता अवश्य होता है, जैसे घटका कर्ता कुम्हार। इसी प्रकार लोक भी कार्य है, अतः इसका भी कोई कर्ता होना चाहिए। क्या आपका आशय यही है?

पं० सागरदत्त–निस्सन्देह, हमारा यही अभिप्राय है।

श्रीगुरुदेव–सर्व प्रथम यह विचरना चाहिए कि समस्त कार्य कर्ताके किए हुए ही होते हैं? या कोई कार्य विना कर्ताके भी हो सकता है? यदि सूक्ष्म दृष्टिसे विचारें तो आँधी, उल्कापात, मेघ-वृष्टि, घासकी उत्पत्ति आदि कर्ताके विना भी होते देखे जाते हैं। अतः लोकरूपी कार्यके लिए कर्ताके निमित्तत्वकी कोई आवश्यकता नहीं।

पं० सागरदत्त–मेघवृष्टि और घासकी उत्पत्ति आदि कार्योंमें भी ईश्वरके कर्तृत्वका ही हाथ है? भला कोई वस्तु अपने आप भी बन सकती है?

श्रीगुरुदेव–जगत्‌में कार्य दो प्रकारके होते हैं, एक ऐसे हैं, जिसका कर्ता होता है, जैसे घटका कर्ता कुंभकार । दूसरे ऐसे हैं, जिनका कर्ता कोई नहीं है जैसे मेघवृष्टि और घासकी उत्पत्ति आदि । इन दो प्रकारके कार्योंमें घटादिका कर्ता देखकर, जिनका कर्ता न दिख पड़ता हो उनके कर्तृत्वमें ईश्वरकी कल्पना करनेमें क्या प्रमाण है? यदि आप यह कहें कि कार्यत्व ही हेतु है, तब विचारिए कि यदि कार्य हो और उसका कर्ता न हो तो उसमें क्या बाधा आसकती है? यदि कोई बाधा न हो तो आपका हेतु 'शंकितव्यभिचारी' है। क्योंकि जिस हेतुके साध्यके अभावमें रहने पर भी किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो, तो वह शंकितव्यभिचारी दोष है। जैसे किसीके मित्रके चार पुत्र हैं तथा चारों ही काले हैं, कुछ कालके पश्चात् उसकी भार्या गर्भवती होती है, तब वह मनुष्य कहने लगे कि अबकी बार यह पाँचवाँ पुत्र भी काला ही होगा। क्यों कि वह मित्रका पुत्र है। जो जो मित्र के पुत्र हैं वे सब काले हैं। गर्भस्थ भी मित्रका पुत्र है, अतः वह भी काला होगा। यदि मित्रका पुत्र गोरे रंगका हो जाय तो उसमें कोई बाधक तो है नहीं। इसी प्रकार यदि कार्य कर्ताके विना भी हो जाय तो इसमें बाधक कौन है?

पं० सागरदत्त–यदि कर्ताके विना भी कार्य हो सकता है, तो न्यायका यह वाक्य मिथ्या ठहरेगा कि 'कारणके विना कार्य नहीं होता।'

श्रीगुरुदेव–कभी नहीं! कार्य कारण के विना नहीं होता यह

ठीक भी है, परन्तु यदि कोई दूसरा ही पदार्थ कारण हुआ तो क्या हानि है ! इसमें क्या प्रमाण है, कि वह कारण ईश्वर ही है ?

० सागरदत्त—प्रत्येक कार्यके लिए कोई बुद्धिमान् निमित्त कारण अवश्य होना चाहिए। बुद्धिमान् पदार्थ जगत्में जीव और ईश्वर ये दो ही हैं। परन्तु लोकके बनानेकी सामर्थ्य जीवमें नहीं है। अतः इस लोकका बुद्धिमान् निमित्त कारण ईश्वर ही है।

श्रीगुरुदेव—यदि लोकरूपी कार्यका निमित्त जड़ हो तो क्या हानि है ?

पं० सागरदत्त—जड़ पदार्थके निमित्त कारण होनेसे तो कार्यकी सुव्यवस्था हो नहीं सकती। लोक सुव्यवस्थित कार्य है, अतः बुद्धिमान् निमित्तकारणका होना आवश्यक है।

श्रीगुरुदेव—लोक सुव्यवस्थित कहां है, पृथ्वी कहीं ऊँची और कहीं नीची है। भूकम्प-अतिवृष्टि-अनावृष्टि-महामारी आदिका कोई क्रम नहीं है। बलवान् निर्बलका आहार कर जाता है। सोना गंध रहित है। ईख को फल नहीं आते। काश्मीरी बेंत और चन्दनके फूल नहीं होते। विद्वान् निर्धन और अल्पायु होते हैं। सन्त जन सब जगह सताए जाते हैं। भलाई पर बुराई करने वालोंकी संख्या अधिक है। यदि ईश्वर लोकका कर्ता होता तो ऐसी दुर्व्यवस्थाएँ होतीं? ये कार्य तो मूर्खों जैसे घटित हैं। नीतिकार भी इसी की पूर्ति करते हैं, यथा—

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु।
विद्वान् धनाढ्यो न तु
धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोषः ॥ १ ॥

ईश्वर जैसा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, दयालु इस लोकका कर्ता होता तो जगत्में पाप नाममात्रको भी न होना चाहिए था। जिस समय मनुष्य पापका उद्यम करने लगे तो ईश्वर तो पहले क्षण में ही जान लेता है। क्योंकि वह सर्वज्ञ है। यदि उसे ज्ञात न हो तो वह सर्वज्ञ नहीं है। साथ ही वह मनुष्यको रोक भी सकता है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् भी है। यदि न रोक सकता हो तो उसमें सर्वशक्तिमत्ता नहीं है। यदि यह कहो कि वह सर्वज्ञ-और सर्वशक्तिमान् तो है, परन्तु उसे क्या गर्ज है, कि वह किसीको पापसे रोके? परन्तु साथ ही उसे दयालु भी कहा जाता है, जिससे उसका रोकना आवश्यक ठहरता है। जैसे कोई किसीको मारने जाता हो, और नगरके न्यायाधीशको पता चल जाय तो उसका कर्तव्य है, कि वह घातकको सब प्रकारसे रोकने की व्यवस्था करे तथा हत्या न होने दे। परन्तु मालूम भी हो और उसे रोका भी न हो, बल्कि हत्या करनेके अनन्तर घातकको दंड दे तो वह न्यायाधीश दयालु और न्यायकारी नहीं ठहरता है। इसी भाँति किसीका बालक भाँगके नशेमें चूर होकर कुएँ में गिरता हो तब उसके पिता या साथीका कर्तव्य है, कि उसे कुएँ में न गिरने दें, न कि उसे कुएँसे निकालकर दंड दें। ठीक यही बात ईश्वर और मनुष्यके ऊपर भी घटती है। ईश्वरका कर्तव्य है, कि मनुष्यको पाप न करने दे। न कि उसके पाप करने पर उसको दंड दे। इसलिए यदि ईश्वर सर्वज्ञ, शक्तिमान् और दयालु होकर इस लोकका कर्ता होता तो लोकमें किसी भी प्रकारके पापकी प्रवृत्ति न होती। परन्तु ऐसा देखा नहीं जाता, अतः सिद्ध है, कि ईश्वर इस लोकका कर्ता नहीं है। बस! आप जान गए होंगे, कि

लोकरूप कार्यका कोई बुद्धिमान् निमित्त कारण नहीं है। या यों कहिए कि ईश्वर और सृष्टिमें कार्य—कारण संबंध नहीं बनता, क्योंकि व्यापकका अनुपलंभ है, न्यायका यह वाक्य है कि "अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावः।" अर्थात् कार्यकारणभाव और अन्वयव्यतिरेक भाव इन दोनोंमें गम्य-गमक अर्थात् व्याप्य व्यापक संबंध है। अग्नि और धुएँमें व्याप्य-व्यापक संबंध है। अग्नि व्यापक है और धुआँ व्याप्य है। जहाँ धुआँ होगा वहाँ वहाँ आग नियमपूर्वक होगी। परन्तु जहाँ अग्नि है वहाँ धुआँ हो भी और न भी। जैसे तपे हुए लोहेके गोलेमें आग तो है, परन्तु धूम नहीं है। भाव यह कि जहाँ व्याप्य है वहाँ व्यापक अवश्य होता है। परन्तु जहाँ व्यापक होता है वहाँ व्याप्यके होने न होनेका नियम नहीं। अतः यहाँ कार्यकारण-भाव व्याप्य है और अन्वय-व्यतिरेकभाव व्यापक है। अर्थात् जहाँ कार्यकारणभाव होगा वहाँ अन्वयव्यतिरेक अवश्य होगा। परन्तु जहाँ अन्वयव्यतिरेक भाव है, वहाँ कार्य कारण होता है, और नहीं भी। कार्यके सद्भावमें कारणके सद्भावको अन्वय कहते हैं। यथा—जहाँ जहाँ धुआँ होता है, वहाँ वहाँ अग्नि अवश्य होती है। और कारणके अभावमें कार्यके अभाव को व्यतिरेक कहते हैं। जैसे जहाँ जहाँ अग्नि नहीं है, वहाँ वहाँ धुआँ भी नहीं है। जब ईश्वर और लोक में कार्य-कारण संबध है, तो उनमें अन्वय व्यतिरेक अवश्य होना चाहिए। परन्तु ईश्वरका लोकके साथ व्यतिरेक संबंध सिद्ध नहीं होता, क्योंकि व्यतिरेक दो प्रकार का है, एक कालव्यतिरेक और दूसरा क्षेत्रव्यतिरेक। ईश्वरमें दोनों प्रकारके व्यतिरेकमें से एक भी सिद्ध नहीं होता। क्योंकि क्षेत्रव्यतिरेक जब सिद्ध हो जाय, तब

यह वाक्य सिद्ध हो जायगा, कि जहाँ जहाँ ईश्वर नहीं है वहाँ वहाँ लोक भी नहीं है। परन्तु यह वाक्य सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है, अर्थात् ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ ईश्वर न हो। अतः क्षेत्रव्यतिरेक सिद्ध नहीं हो सकता। इसीभाँति ईश्वरमें कालव्यतिरेक भी सिद्ध नहीं होता। कालव्यतिरेक तब ही सिद्ध होता है, जब यह वाक्य घटित हो जाय, कि जब जब ईश्वर नहीं है, तब तब लोक भी नहीं है। परन्तु यह अघटित है क्योंकि ईश्वर नित्य है, अर्थात् कोई ऐसा काल नहीं है, जिसमें ईश्वर न हो। अतः ईश्वरमें कालव्यतिरेक भी सिद्ध नहीं हो सकता। तथा जब व्यतिरेक सिद्ध नहीं होता है, तब ईश्वर और लोकमें कार्यकारणभाव भी सिद्ध नहीं होता। एवं जब कार्यकारणभाव ही नहीं है तब ईश्वर लोकका कर्ताभी नहीं ठहरता। जैन शास्त्रोंमें इस प्रकारके अनेक पूर्व-पक्ष उठाकर उनकी सविस्तर समालोचना की है। परन्तु विषय गंभीर और विस्तृत है, अतः इस संबंध को यहीं पूर्ण करके ईश्वरके लोककर्तृत्व विषयमें अन्यान्य अनेक दूषणोंकी समालोचना की जाती है।

कर्तृत्ववादका पूर्वपक्ष—कर्तावादियोंका सबसे प्रबल प्रमाण ईश्वरको सृष्टिकर्ता सिद्ध करनेके लिए यह है कि, पृथ्वी आदि बुद्धिमत्कर्तृक (किसी बुद्धिमान्‌की बनाई हुई) हैं। क्योंकि यह कार्य है, जो जो कार्य होते हैं वे वे बुद्धिमत्कर्तृक हैं। यथा घटादि, पृथ्वी आदि भी कार्य हैं, अतः ये बुद्धिमत्कर्तृक हैं। इसी अनुमितिमें पृथ्वी आदि पक्ष है, बुद्धिमत्कर्तृक साध्य है, कार्यत्व हेतु है, घटादि दृष्टान्त है [कर्तावादी कार्यत्व हेतुका समर्थन करते हैं]।

"इस अनुमितिमें कार्यत्व हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि पृथ्वी आदिमें कार्यत्व अनुमानांतरसे सिद्ध है। पृथ्वी आदि इसलिए कार्य हैं कि सावयव हैं। तब जो जो सावयव होते हैं वे वे कार्य होते हैं, जैसे घटादिक, पुनः यह हेतु विरुद्ध भी नहीं है, क्योंकि निश्चित कर्तृक घटादिकमें कार्यत्व हेतु प्रत्यक्ष सिद्ध है। साथ ही यह हेतु अनेकान्तिक (व्यभिचार) भी नहीं है। क्योंकि निश्चित-अकर्तृक आकाशादि उनमें अविद्यमान है। फिर कालात्ययापदिष्ट भी नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष और आगमसे अबाधित विषय है। यहां कोई यह शंका करे कि "उक्त अनुमितिमें जो घटादि दृष्टान्त हैं, उनके जो कर्ता हैं वे अल्पज्ञ हैं। और तुम्हारे साध्यमें जो बुद्धिमान् है, वह सर्वज्ञ है, इसलिए तुम्हारा हेतु विरुद्ध है। क्योंकि साध्यसे विपरीत का साधन करता है। तथा दृष्टान्त साध्य विकल हैं, क्योंकि घटादि का कर्ता सर्वज्ञ नहीं है, अतः यह शंका निर्मूल है। क्योंकि साध्य साधनमें सामान्य अन्वयव्यतिरेकके द्वारा ही व्याप्तिका निश्चय जो विशेषान्वय-व्यतिरेकके द्वारा व्याप्तिका ग्रहण करोगे, तो सकलानुमानका उच्छेद (अभाव) हो जायगा। क्योंकि विशेष अनन्त होते हैं तब अपने आप उनमें व्यभिचार आ जायगा। अतः कार्यत्व हेतुकी बुद्धिमत्पूर्वकत्व मात्रके साथ व्याप्ति है, न कि शरीरवान् बुद्धिमत्कर्तृक आदिके साथ। कदाचित् कोई यह कहे कि शरीर कारणकलापमें से एक सामग्री विशेष है, अर्थात् कार्यकी उत्पत्तिमें अनेक कारणोंकी आवश्यकता है। उनमें शरीर भी एक मुख्य कारण है। क्योंकि जगत्में जितने भी कार्योंके कर्ता हैं, वे सब शरीरवान् दीख पडते हैं, अतः यह कहना अयुक्त है। क्योंकि कार्यकारण संबंध वहीं होता है, जहां अन्वयव्यतिरेकसंबंध है। तदुक्तं

'अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावः।' परन्तु कार्य का शरीरके साथ अन्वय और व्यतिरेक एक भी नहीं घटता। क्योंकि जिस समय शरीरका हलन चलन कार्य होता है, उस समय उसमें मात्र ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न ही कारण है। अन्यथा शरीरान्तरकी कल्पना करनेसे अनवस्था-दूषण आवेगा। इसलिए शरीरके अभावमें कार्यका सद्भाव हुआ। तथा शरीरके सद्भावमें परिज्ञान इच्छा व्यापारका अभाव हो तो कार्यका सद्भाव नहीं दीखता, इसलिए अन्वय-व्यतिरेक एक भी घटित नहीं होता। यदि सहचर मात्रसे शरीरको कारणता मानोगे, तो अग्निके पीतत्वादि गुण भी धूमके प्रति कारण हो जायँगे। यदि सन्मतिसे सोचा जाय तो कार्यकी उत्पत्तिमें पहला कारण तो कारणकलापका ज्ञान है, उसके पीछे दूसरा कारण उस कार्यके करनेकी इच्छा है। और तीसरा कारण व्यापार है। इन तीनोंका समुदाय ही समर्थ कारण है। यदि इनमेंसे किसी एक का भी अभाव हो तो कार्यकी उत्पत्ति न होगी। ऐसा माननेसे सर्वत्र व्यभिचार दोष होता है।"

"इस अनुमितिके साध्यमें जो बुद्धिमान् है वह सर्वज्ञ है। क्योंकि वह समस्त कार्योंका कर्ता है। जो जिस कार्यका कर्ता होता है, वह वह उस कार्यके कारणकलापोंका ज्ञाता होता है। जैसे घटोत्पादक कुलाल मृत्पिण्ड आदिका ज्ञाता है तब यह जगत्का कर्ता है, अतः सर्वज्ञ है जगत्का उपादान कारण पृथ्वी-जल-वायु-तेज संबंधी चार प्रकार के परमाणु हैं और निमित्तकारण जीवोंका अदृष्ट है भोक्ता जीव है, और शरीरादिक भोग्य हैं। जो इस विषयका ज्ञाता न होगा, वह अस्मदादिकी भाँति समस्त कार्योंका कर्ता भी न होगा

उसके ज्ञानादिक अनित्य भी नहीं हैं। क्योंकि कालादिके ज्ञानसे विलक्षण हैं, और पृथ्व्यादिकका कर्ता एक है। लोकमें यद्यपि किसी प्रासादादिके बनानेमें अनेक संगतराश तथा कर्मकरोंकी प्रवृत्ति होती है। तथापि उन सबकी प्रवृत्ति एक मिस्तरीके ज्ञानके अधीन है। यदि कोई यह शंका करे कि ईश्वर तो नित्य और एकरूप है, तब उसका कार्य भी नित्य और एकरूप होना चाहिए, परन्तु जगत्के कार्य विचित्र और अनित्य दीखते हैं, किन्तु इस शंकाका करना उचित नहीं है, क्योंकि जगत्के कार्योंकी उत्पत्तिमें केवल ईश्वर ही कारण नहीं है, किन्तु कारणका एक देश है जगत्का निमित्तकारण जीवोंका अदृष्ट हम पहले कह चुके हैं, इसलिए निमित्तकारणकी अनित्यता और विचित्रता होनेसे कार्यमें भी अनित्यता और विचित्रताकी संभावना है।"

"कोई यह शंका करे कि घट-कूप-प्रासादादिके दृष्टान्त को विचारकर उनके बननेकी क्रियाको न देखनेवालोंको भी ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है, कि वह कार्य किसीके किए हुए हैं। परन्तु जगत्को देखकर ऐसी बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। इसलिए तुम्हारा हेतु असिद्ध है। परन्तु यह कहना अनुचित है क्योंकि यह कोई नियम नहीं है, कि जगत्के समस्त कार्योंको उनके बननेकी क्रिया को न देखनेवालोंके 'ये किसने निर्माण किए हैं' ऐसी बुद्धि उत्पन्न अवश्य होती है। जैसे किसी स्थान पर गढ़ा था, उसको कुछ आदमियोंने भर कर समभूमि करते समय नहीं देखा था, तब उन्हें यह नहीं होता, कि यह किसका किया हुआ है। कोई कोई इसभाँति की शंका भी कर सकते हैं, कि तुम्हारा हेतु सत्प्रतिपक्ष है। क्योंकि यह अनुमानसे बाधित

विषय है ।"तथापि पृथ्व्यादिक किसी बुद्धिमान् कृत नहीं है। क्योंकि उसका बनानेवाला तो किसीने देखा नहीं । जिस जिसका बनानेवाला किसीने नहीं देखा, उस उसका बनानेवाला कोई बुद्धिमान् कारण भी नहीं है, जैसे आकाशादि ।" परन्तु यह कथन समीचीन नहीं है, क्योंकि जो पदार्थ दृश्य होता है, उसीकी अनुपलब्धिसे उसके अभावकी सिद्धि होती है, परन्तु ईश्वर दृश्य नहीं है अतः उसके अभावकी सिद्धि नहीं हो सकती । जो अदृश्य पदार्थकी अनुपलब्धिसे ही उसके अभावकी सिद्धि करोगे तो किसी अदृश्य पिशाचके किए हुए कार्यमें पिशाचकी अनुपलब्धिसे पिशाचके अभावका प्रसंग आवेगा ।" इस प्रकारसे कर्तावादी अपने पक्षका मंडन करते हैं, परन्तु यह विषय समालोचनीय है । इसके खंडन करनेमें मानव बुद्धि इस प्रकार प्रवृत्त होती है ।

कर्तृत्ववादके पूर्वपक्षका खंडन—आपने "क्षित्यादिकं बुद्धिमत्कर्तृजन्यं कार्यत्वात्" इस अनुमान द्वारा कार्यत्वरूप हेतुसे पृथिव्यादिको बुद्धिमत् कर्तासे जन्य सिद्ध किया है, परन्तु इस कार्यत्वरूप हेतुके चार अर्थ हो सकते हैं, प्रथम कार्यत्व और सावयवत्व, द्वितीय पूर्वमें असत्पदार्थके स्वकारणसत्तासमवाय, तृतीय 'कृत' अर्थात् किया गया, इस प्रकारकी बुद्धिका विषय होना, चतुर्थ 'विकारित्त्व' इन चार अर्थोंमें से यदि सावयवत्वरूप अर्थ माना जाय तो इसके भी चार ही अर्थ हो सकते हैं । सावयवत्व अर्थात् अवयवोंमें वर्तमानत्व १, अवयवोंसे बनाया गया २, प्रदेशित्त्व ३, अथवा सावयव बुद्धिका विषय होना ४ ।

इन चार पक्षोंमें आद्यपक्ष अर्थात् अवयवोंमें वर्तमान होना माना

जाय तो अवयवोंमें रहनेवाली जो अवयवत्व नामक (नैयायिकों द्वारा मान्य) जाति उससे यह हेतु अनैकान्तिक नामक हेत्वाऽऽभास हो जायगा। क्योंकि अवयवत्व जाति अवयवोंमें रहने पर भी स्वयं अवयव रहित और अकार्य है। अर्थात् उस हेतुका विपक्षमें पाए जानेका नाम अनैकान्तिक दोष है। इसी प्रकार यहभी कर्तृविशेषजन्यत्वादि साध्यका विपक्ष जो नित्य जाति विशेष उसमें वर्तमान होनेसे अनैकान्तिक दोष युक्त सिद्ध हुआ। इससे यह हेतु कर्तृविशेषजन्यत्वका साधन करनेमें आदरणीय नहीं हो सकता (इति प्रक्षम पक्षका प्रथम भेद)।

इसी भाँति सावयवत्व अर्थात् प्रथम पक्षका द्वितीय भेद अर्थात् अवयवोंसे बना हुआ। यह अर्थ स्वीकार किया जाय तो कार्यत्वरूप हेतु साध्यसम नामक दोषसहित मानना पडेगा। (यह भी एक पूर्ववत् हेतुका दोष है, जिससे कि हेतु साध्य सदृश सिद्ध होनेसे अपने कर्तृविशेषजन्यत्वरूप साध्यको सिद्ध नहीं कर सकता।) क्योंकि पृथ्व्यादिकोंमें कार्यत्व और जन्यत्व साध्य, और परमाण्वादि पृथ्व्यादिके अवयवोंसे बनाया गया रूप हेतु दोनों ही सम हैं। और साधन यदि साध्यके समान हो तो कार्यको सिद्ध नहीं कर सकता (कार्यत्व हेतुके प्रथम पक्षका द्वितीय भेद)।

प्रथम पक्षका तीसरा भेद अर्थात् प्रदेशिवत्त्व माननेसे भी कार्यत्व हेतुमें आकाशके साथ अनैकान्तिक दोष आता है, क्योंकि, आकाश प्रदेशवान् होकर भी अकार्य है। इसी प्रकार प्रथम पक्षके चतुर्थ भेदमें भी आकाशके साथ दोष आता है। क्योंकि "सावयव" ऐसी मति का विषय होता है। यदि आकाशको निरवयव माना जाय तो

इसमें व्यापित्व धर्म नहीं रह सकता, क्योंकि जो वस्तु निरवयव होती है, वह व्यापी नहीं हो सकती, तथा जो वस्तु व्यापी होती है, वह निरवयव नहीं हो सकती। क्योंकि ये दोनों ही धर्म परस्पर विरुद्ध हैं, इसका दृष्टान्त परमाणु है, परमाणु निरवयव है, इसीसे वह व्यापी नहीं है, किन्तु सावयव ही है। अतः तीसरे तथा चौथे पक्षके माननेमें आकाशके साथ अनैकान्तिक दोष हेतुमें आता है, इस तरह प्रथम पक्षके चारों अर्थोंमें दोष होनेसे चारोंही पक्ष अनादरणीय हैं।

इस दोषके दूर करनेका द्वितीय पक्ष यानी "प्राक् असत् पदार्थके स्वकारणसत्तासमवायरूप कार्यत्वको हेतु माना जाय तो स्वकारणसत्तासमवाय नित्य होनेसे तथा कर्तृविशेषजन्यत्वादि" साध्यके साथ सर्वथा न रहनेसे यह हेतु असंभवी है, यदि पृथ्व्यादि कार्योंके साथ इसका रहना मान भी लें तो पृथ्व्यादि कायको भी इसी प्रकार नित्य होनेसे बुद्धिमत्कर्तृजन्यत्व किसमें सिद्ध होगा! क्योंकि नित्य पदार्थोंमें जन्यत्व असंभव है। तथा कार्य मात्रका पक्ष होनेसे पक्षान्तःपाति जो योगियोंके अशेषकर्मका क्षय होता है, उसमें कार्यत्वरूप हेतु न घटनेसे इस हेतुमें भागासिद्ध दोष भी है, क्योंकि कर्मके क्षयको प्रध्वंसाभावरूप होनेसे स्वकारणसत्तासमवायकी सत्ताभाव पदार्थ में ही है। यदि 'किया हुआ है' इस प्रकारकी बुद्धि का जो विषय हो वह कार्यत्व है, यह कहो तो कार्यत्व हेतुका भी यह अर्थ करने पर आकाशसे अनैकान्तिक दोष कार्यत्व हेतुमें आता है, क्योंकि पृथिवी आदिके खोदने या सींचनेसे गढ़ा होने पर "आकाशने किया है" ऐसी बुद्धि अकार्यरूप आकाशमें भी उत्पन्न हो जाती है। अतः कार्यत्व हेतुका यह अर्थ करनेसे भी छुटकारा नहीं होता। फिर भी सन्तोष न होनेसे

कार्यत्व हेतुका "विकारित्व" अर्थ करते हैं। किन्तु यह अर्थ करने पर उनके महेश्वर पर्य्यन्त कार्यत्व हेतुको संभव होनेसे महेश्वरमें भी अनित्यता का प्रसंग आता है। क्योंकि सत्-वस्तुका अन्यथा रूप होना ही कार्यत्व है। और विकारित्व रूप हेतु भी वही है, अतः अपर बुद्धिमत् शब्दसे जो महेश्वरको जगत्कर्ता सिद्ध करते थे, उनको भी विकारित्व होनेके कारण 'उनका भी कोई कर्ता है' ऐसी कल्पना उठे विना नहीं रहेगी, एवं जब उनका भी कोई बनानेवाला होगा, तो उसमें विकारित्व आनेसे उसके बनानेके लिए किसी तीसरे ही बुद्धिमान् कर्ताकी आवश्यकता है। इस प्रकार कहीं भी अवसान न होने पर अनवस्था दोष आता है। अनवस्थाका यही अर्थ है, कि किसी वस्तुको सिद्ध करनेपर भी अन्त (निश्चय) पर न आना। तथा जिसमें अनवस्था दोष होता है, वह पदार्थ सत्य और सिद्ध होने तक नहीं पहुँचता। इस दोषके घटित होनेपर यदि महेश्वरको अविकारी भी समझ लिया जाय, तो उससे अपना कार्य होना अत्यन्त दुर्घट हो जायगा। क्योंकि अविकारित्व तथा कार्यकर्तृत्व ये दोनों धर्म परस्पर विरुद्ध हैं अतः जहां अविकारित्व नहीं होता, वहां ही कार्यकर्तृत्व सम्भव है, अतः अविकारित्व भी सिद्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार कार्यत्व हेतु अनेक प्रकारसे विचारनेपर भी कार्यत्व हेतुको सिद्ध न होनेसे कार्यत्वहेतु यहाँ कुछ भी वस्तु नहीं रहजाती। तथा जो वस्तु कभी कभी होती है, वही वस्तु लोकमें कार्यत्वरूपसे समझी जाती है। जगत् तो महेश्वरके समान अर्थात् जिस प्रकार महेश्वर सदा विद्यमान रहता है, अतः वह कार्य नहीं, इसी भाँति जगत् सदैव रहनेसे कार्य नहीं हो सकता। यदि उसके अन्तर्गत

'तृणादि वस्तुओंके कार्य होनेसे तत्समूह जगत्को भी कार्यता हो सकती है' यदि यह कहो कि महेश्वरके अन्तर्गत बुद्ध्यादि तथा परमाणु आदिके अन्तर्गत रूपादिको कार्यत्व होनेसे महेश्वर तथा परमाणु आदिको भी कार्य मानना पड़ेगा। इस प्रकार महेश्वरादिकोंका भी दूसरा बुद्धिमान् कर्ता तथा उसका भी तीसरा, इस प्रकार पहलेके समान अनवस्था दोषका प्रसंग तथा 'महेश्वर ही सब वस्तुओंका कर्ता है' इस सिद्धान्तका निधन भी मानना पड़ेगा।

अथवा कुछ क्षणके लिए जगत्को कार्यरूप भी मान लिया जाय तब भी क्या कार्यत्व हेतुसे कार्यमात्र साध्य है? अथवा कोई कार्य विशेष? यदि कार्यमात्र विवक्षित हो तो कार्यरूप सामान्य हेतुसे बुद्धिमत्कर्तृस्वरूप विशेष साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती, जिससे कि ईश्वरकी सिद्धि हो सके। किन्तु सामान्य कर्ता की सिद्धि हो सकती है। क्योंकि सामान्य हेतुकी व्याप्तिसे सामान्य साध्यकी ही सिद्धि होती है, जैसे धूम सामान्यसे वन्हिसामान्यका ही अनुमान हो सकता है। पर्वतीय चत्वरीय आदिका नहीं। इसलिए हेतु अकिंचित्कर है। अर्थात् प्रकृत अभीष्ट ईश्वर रूप विशेष कर्ता का साधक नहीं हो सकता, (प्रकृत साध्यको जो सिद्ध नहीं कर सके, उस हेतुको अकिंचित्कर हेत्वाभास कहते हैं। यह हेतुका एक मोटा दोष है। तथा साध्यसे विरुद्धका साधक होनेसे यह हेतुविरुद्ध भी है।) (विरुद्ध भी हेतुका एक दोष है। इसके होनेसे भी हेतु आदरणीय नहीं हो सकता) तथा कार्यत्व हेतु जो सामान्य है, वह बुद्धिमत्कर्ताका गमक नहीं हो सकता, किन्तु जो कार्यत्व कृतबुद्धिको पैदा करनेवाला है, वही बुद्धिमत्कर्ताका गमक हो सकता है। यदि सा-

रूप्य मात्रसे (कार्यत्व रूपसे सादृश्य मानकर) बुद्धिमत्कर्ताका गमक माना जावे तो अग्निके जलानेमें वाष्पको भी मानना पडेगा। इसी प्रकार महेश्वर में भी संसारी पुरुषोंकी आत्माका सादृश्य होनेसे आत्मत्व हेतुसे सांसारिकत्व किंचिज्ज्ञत्व तथा जगत्का अकर्तृत्व मानना पड़ेगा। क्योंकि आक्षेप तथा समाधान दोनों ही तुल्य हैं। अतः धूम बाष्पका किसी अंशसे सादृश्य होनेपर भी कोई ऐसा विशेष है। जिससे धूम ही वन्हिका गमक हो सकता है बाष्प नहीं। इसी प्रकार क्षित्यादि कार्य उनसे उलटे (जिनसे कि बुद्धिमत्कर्ताका भान हो सके) कार्योंमें भी कोई विशेषता माननी चाहिए। जिससे कि वे ही बुद्धिमत्कर्ताके गमक हो सकते हैं, सामान्यरूपसे सब नहीं।

कथित कार्य कर्तृजन्य नहीं है, अतः सब कार्यका कर्ता न होनेसे ईश्वरकी सिद्धि कर्तृस्वरूपसे नहीं हो सकती।

यदि दूसरा पक्ष अर्थात् प्रागसतः स्वकारणसत्तासमवाय (प्रथम-असत् पदार्थके स्वकारणसत्ताका समूह) ऐसा कार्यत्व शब्दका अर्थ माना जाए तो हेतु-कार्यत्व असिद्ध हो जायगा। क्योंकि तादृश कार्य-विशेषका अभाव है। अर्थात् प्रथम असद्भूत पदार्थके स्वकारणसत्ताका समूह असंभव है। यदि सद्भाव माना जाय तो जीर्ण मकान आदि देखनेसे जिस प्रकार उसकी क्रिया न देखनेवालेको भी 'कृत' इस प्रकार बुद्धि हो जाती है। तथैव यावत्कार्योंके देखनेसे कार्योंमें "कृत" ऐसी बुद्धि होनी चाहिए किन्तु नहीं हो पाती। अतः याव-त्कार्य ही प्रागसत्के स्वकारणका समूह नहीं है। यदि कहा जाय कि समारोप अर्थात् संशयादि दोषसे "कृत" ऐसी बुद्धि नहीं होती, तब दोनों ही जगह अविशेष है, अर्थात् "कृत" ऐसी बुद्धिके विषय

जीर्णमकानादि तथा जिनके देखनेसे 'कृत' बुद्धि नहीं होती, ऐसे पर्वतादिक, ये दोनों ही कार्य कर्ताकी अपेक्षा अप्रत्यक्ष हैं, फिर एक जगह(पर्वतादिमें) संशयादिसे "कृत" बुद्धि नहीं होती, तथा जीर्णप्रासादादिमें "कृत" बुद्धि हो जाती है, यह कथन नहीं बन सकता, क्योंकि कार्यत्वरूपसे दोनों ही समान हैं यदि कहो कि, प्रामाणिक पुरुषोंको तो इसमें "पर्वतादिमें" भी "कृत" बुद्धि ही है, तब यह पूछना चाहिए कि, इसी अनुमानसे 'कृत' बुद्धि हुई है, या अनुमानान्तरसे; यदि इसीसे हुई कहो तो अन्योन्याश्रय दोष होगा, क्योंकि जब कार्यत्व यावत् पदार्थोंमें सिद्ध हो जाय, तब 'कृत' बुद्धि सिद्ध होगी तथा कृतबुद्धि सिद्ध होनेपर कार्यत्व हेतु सिद्ध हो, इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष है। (अन्योन्याश्रयदोष युक्त पदार्थ यथार्थ नहीं माने जाते।) यदि दूसरे अनुमानसे माना जाय, तो उस अनुमानकी भी सिद्धि कृतबुद्धि उत्पादकत्वरूप विशेषण, विशिष्ट हेतु सिद्ध होनेसे ही हो सकती है, तथा कृतबुद्ध्युत्पादकत्वरूप विशेषण, उससे अन्य अनुमान द्वारा सिद्ध होगा। इस प्रकार फिर भी अनवस्था दोष आ पडता है। अतः कृतबुद्ध्युत्पादकत्वरूप विशेषण सिद्ध नहीं हो सकता, विशेषण न होनेसे विशेषणासिद्धत्व दोष हेतुमें आ पडता है।

कचडे-मट्टी आदिसे भर दिए गए गढेके देखनेसे जिस प्रकार कृतक पुरुषोंके हृदयमें कृतबुद्धिका उत्पाद नहीं होता, इसी तरह पर्वतादि में कार्य होनेपर भी कृतबुद्धि नहीं होती, ऐसा कहना भी अयुक्त है, क्योंकि वहाँ पर (गढे आदिकोंमें) इधर उधर अकृत्रिम भू-भाग कृतबुद्धि के उत्पन्नमें बाधक विद्यमान है, उसके रोकनेसे वहाँ पर कृतबुद्धि नहीं, परन्तु इस प्रकार पृथ्वी-पर्वतादिमें तुम अपने सिद्धान्तानुसार कोई बाधक नहीं बतला सकते, अतः स्वमतकी अपेक्षा

तुम्हारे ऊपर दोष आरूढ है। अर्थात् पूर्वोक्त दृष्टान्तसे आप निर्वचन नहीं कर सकते, क्योंकि, आपके मतानुसार सम्पूर्ण पदार्थ कृत्रिम ही हैं। फिर किस प्रकार तथा कौन बाधा डाल सकता है। यदि भूधरादिको अकृत्रिम ही मान लिया जाय तो सिद्धान्त का अर्थात् आपके मतका विघात होता है। इस प्रकार कृतबुद्धिकी किसी प्रकारसे भी उत्पत्ति न हो सकनेके कारण (हेतु) में विशेषणासिद्धत्व दोषका आघात होता है। अर्थात् कृतबुद्ध्युत्पादकत्वरूप जो विशेषण कार्यत्व हेतुका होना चाहिए था वह नहीं बन सकता। अतः विशेषणासिद्धि दोष है। या किसी प्रकार जरासी देरके लिए विशेषण की सिद्धि भी मान ली जाय, तब भी यह हेतु जिस प्रकार उदाहरण रूप 'घटमें शरीरादि सहित ही कर्ता होता है' इसी तरह क्षित्यादिकोंका कर्ता भी शरीरादि विशिष्ट ही सिद्ध हो सकेगा। अतः अशरीर और सर्वज्ञ ईश्वरके सिद्ध करनेके बदले सशरीर तथा असर्वज्ञकी सिद्धि करनेसे साध्यसे विरुद्धका साधक होनेसे विरुद्ध है।

(शंका) इस प्रकार दृष्टांत तथा दार्ष्टांतमें परस्पर यदि समानता देखी जाय तो सर्वत्र हेतु ही नहीं बन सकते। अतः कार्यकारणभावमात्रसे ही व्याप्ति करनी चाहिए। तथा इसीमें दृष्टांत भी है। यावद्धर्मोंसे समानता नहीं।

(समाधान) यह कहना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि धूमसे अनुमान करते समय महानस (रसोईघर) तथा इतर सर्वत्र की अग्निके साथ सामान्यरूपसे ही व्याप्ति की जाती है।

(शंका) इसी भाँति सामान्यरूपसे-बुद्धिमत्कर्तृत्वमात्रसे ही मान लिया जाय तो काम चल सकता है। अतः हेतु विरुद्ध नहीं है।

(समाधान) जिन जिन दृश्य आधार विशेषोंमें हेतु दृष्ट हो, उन उन आधार विशेषोंकी सामान्यरूपतामें कार्यत्व हेतु माना जा सकता है, जो आधार विशेष अदृश्य है, वह आधार हेतुके आधार सामान्यमें गर्भित नहीं हो सकता, यदि ऐसा भी किया जाय तो अतिप्रसंग होगा, अथवा खरविषाणकी भी सिद्धि महिषविषाणवत् हो जायगी। जैसे यहां अदृश्यविशेषाधार होनेसे खर विषाण नहीं माने जाते। इसीप्रकार ईश्वर भी अदृश्य विशेषाधार होनेसे ईश्वरकी सिद्धि नहीं मानी जाती। किंवा यह हेतु ईश्वरमें नहीं जा सकता। फलित यह हुआ कि यादृशकारणसे जिसप्रकारके कार्यकी उत्पत्ति दीख पड़ रही है, वैसे ही कार्यसे वैसे ही कारणकी उत्पत्ति अनुमान द्वारा अनुमिति करनी चाहिए। जैसे यावद्धर्मात्मक वन्हिसे जितने धर्मविशिष्ट धूमकी उत्पत्ति दीखती है। दृढ प्रमाणसे तादृश धूमसे तादृश वन्हिकी अनुमिति करनी चाहिए। इस प्रकार कथन करनेसे विशेषरूपसे व्याप्तिग्रह नहीं किया जाता, क्योंकि ऐसा करनेसे कोई भी अनुमान न बन पायगा। इस प्रकार एकान्तरूपसे कहनेवालेक निराकरण किया गया।

(फलित) दृश्यविशेषाधारोंमें हेतुको सामान्यरूपसे मानने पर भी अदृश्यविशेषाधारमें हेतुकी सत्ता नहीं मानी जा सकती। इसलिए ईश्वर अदृष्टविशेषाधार है। उससे अशरीर तथा अज्ञानमय सब दृष्टाधारोंसे विलक्षण ईश्वरका कर्तृत्व बन नहीं सकता, किन्तु कार्योंका कर्तृत्व दृश्यविशेषाधार तथा सशरीर-असर्वज्ञत्व कुलालादिमें ही बनने योग्य है।

जगत्के कार्य दो प्रकारके देखे जाते हैं, यथा-कुछ तो बुद्धिमत्कर्ता

द्वारा बनाए गए घटादि, तथा कुछ कार्य तद्विपरीत अर्थात् स्वयं उत्पन्न तरु-तृणादि। कार्यत्व हेतु दोनों ही कार्योंको पक्षरूप करनेसे व्यभिचारी हैं। यदि व्यभिचार न माना जाय तो "दूसरे पुत्रोंकी समान मित्रकी स्त्रीका गर्भस्थ पुत्र भी काला होगा। उसीका पुत्र होनेसे" इस अनुमानको भी सत्य मानना पडेगा। तथा इसका हेतु भी गमक कहा जा सकता है। इस प्रकार कोई भी हेतु व्यभिचारी न होगा क्योंकि जहाँ जहाँ हेतुमें व्यभिचार है, वे सब हेतु पक्षीभूत हो सकते हैं। यदि ईश्वरसे अन्य कोई बुद्धिमान् कल्पित किया जाय तो अनवस्था दोष आता है। इस प्रकार कालात्ययापदिष्ट दोष भी आएगा। क्योंकि स्वतः उत्पन्न तरुतृणादिमें कर्ताका प्रत्यक्ष अभाव है। जिसतरह अग्निमें अनुष्णता सिद्ध करते समय द्रव्यादि हेतु प्रत्यक्षसे बाधित हो जाते हैं, कारण प्रत्यक्ष ज्ञान अनुमानकी अपेक्षा विशेष प्रमाण है, इसी प्रकार स्वयं उत्पन्न तरु आदिमें कर्ताका अभाव प्रत्यक्ष होनेसे प्रबल प्रत्यक्ष द्वारा कार्यत्वरूप हेतु बाधित होनेसे ईश्वर तरु-तृणादिका कर्तृत्व-सिद्ध नहीं हो सकता। यदि तृणादि कार्योंमें अदृष्ट ईश्वर कर्ता माना जाय तो क्या हानि है? यह शंका भी ठीक नहीं, क्यों कि **उसकी सत्ता ही सिद्ध नहीं है**। तब कर्ताकी कल्पना करना निर्मूल है। क्या ईश्वर का सद्भाव इसी द्वारा मानते हो या अन्य प्रमाणसे? यदि इसी द्वारा माना जाय तो चक्रक दोष आता है। (यह अन्योन्याश्रयके समान है, वह अन्यान्योंमें रहता है, यह तीन पर स्थिर रहता है।) वह दोष इस प्रकार है। इस अनुमानसे सिद्ध हुए ईश्वरके सद्भावमें ईश्वर अदृष्टत्वपर अनुपलंभ (अप्रत्यक्ष) सिद्ध हो, तथा इसके अदृष्टत्व सिद्ध होनेपर "काल-

त्ययापदिष्ट" हेतु दोष (तरु-तृणादिमें कर्तृत्वाभाव प्रत्यक्ष होनेसे कार्यत्व हेतुमें जो दोष बताया गया है वह) निवारण हो सके, और कालात्ययापदिष्ट दोष दूर होनेपर ईश्वर-सद्भाव सिद्ध हो, इस प्रकार ईश्वरसद्भावसिद्धि होनेपर इसका अनुपलंभ अदृश्यत्व द्वारा सिद्ध हो, इत्यादि पुनः वह उसके अधीन, इस प्रकार एककी सिद्धिमें परस्परकी अपेक्षा रहनेसे इसी प्रमाण द्वारा ईश्वरकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती; यदि प्रमाणान्तरसे सत्ता सिद्ध की जाय तब भी रूपक बन नहीं सकता, कारण उसकी सत्ताका आवेदक दूसरा प्रमाण ही नहीं है, अथवा आग्रहसे माना भी जाय तो सिद्धान्तका विघात होगा।

'तुष्यतु दुर्जनः' इस न्यायसे किसी प्रकार एक क्षणके लिए अदृष्ट पदार्थोंमें ईश्वरका सद्भाव भी मान लिया जाय, तो भी इसमें अदृष्टत्व क्यों है! क्या उसके अदृष्ट होनेमें शरीरका अभाव है? या विद्या-बलका अभाव या जातिविशेष कारण है? या ईश्वरकी जाति ही ऐसी है? जिससे वह दिखाई नहीं देता। यदि ईश्वरके अदृष्ट होनेमें शरी-रके न होनेका कारण माना जाय, तो ईश्वरमें कर्तृता युक्तिसंगत नहीं बनती, क्योंकि मुक्तात्माओंके समान शरीर रहित होनेसे, अर्थात् मुक्तात्मा अशरीरी होनेसे कर्ता नहीं हो सकते, इसी प्रकार अशरीर ईश्वरमें भी कर्तृता नहीं बन सकती। यदि यह कहा जाय कि अपना शरीर बनाने में ज्ञान-इच्छा-प्रयत्नके आश्रयसे ही कर्तृता देखी जाती है, उसी भाँति ईश्वरमें शरीराभावके कारण कर्तृता केवल ज्ञान-इच्छा प्रयत्नकी आधारतासे ही सिद्ध हो सकती है, अतः यह कथन असंगत है। क्योंकि देह संबंध होने पर ज्ञानेच्छादिमें शरीर प्रेरणा करता है, शरीरके अभावमें नहीं। यदि शरीराभावमें भी प्रेरणा मानी

जाय, तब मुक्तात्माओंमें भी प्रेरणा होनी चाहिए। फलित यह कि शरीर संबंध वाले ही ज्ञानादिके साथ कार्यकारणत्व व्याप्ति है। शरीरको अन्यथासिद्ध मानने पर भी प्रतिज्ञात सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि शरीराभाव में ज्ञानादि की उत्पत्ति ही सिद्ध नहीं है। ज्ञानादि की उत्पत्तिमें शरीर कारण है। यदि शरीराभावमें भी ज्ञान माना जाय तो मुक्तात्माओंको भी ज्ञान हो जायगा। ऐसा होनेपर सिद्ध नष्ट होता है। अतः शरीर होनेपर ही ज्ञानादि होते हैं। तब ही शरीरादिकी कर्तृता सिद्ध हो सकती है, अतः अशरीरीमें कर्तृता नहीं बनती। विद्याबलादि अदृश्यतामें हेतु माना जाय, तो कभी तो वह दीख पड़नी ही चाहिए। क्योंकि विद्याधरोंके अदृष्ट होनेपर भी उनमें सर्वदा अदृष्टता नहीं पाई जाती कारण कभी उन्हें देखा भी जा सकता है। जिस प्रकार पिशाचादि विद्याबलसे अदृश्य होनेपर भी कभी कभी वे देखे भी जाते हैं। जाति विशेष भी अदृश्यतामें कारण नहीं हो सकती। क्योंकि जाति अनेकमें रहनेके कारण एकमें जातिकी विशेषता संभव नहीं। (तदुक्तमीश्वरत्वं न जातिरिति) अस्तु थोडे समयके लिए अदृष्ट मान लिया भी जाय तब भी क्या सत्वमात्रसे ही क्षित्यादि कर्तृता ईश्वरमें है। किंवा ज्ञान-वान् होनेसे, या ज्ञानाश्रय होनेसे अथवा ज्ञानपूर्वक व्यापार होनेसे, अथवा ईश्वरता होनेसे? सत्तामात्र रूपसे कर्ता माननेमें, कुलालादि भी जगत्कर्ता हो जायँगे। क्योंकि सत्तामात्र समान होती है। ज्ञानवान् होनेसे जगत्कर्ता माना जाय, तो योगी भी जगत्कर्ता हो सकते हैं, क्योंकि वे भी ज्ञानवान् हैं। ज्ञानका आश्रय होनेसे ईश्वरमें कर्तृता मानी जाय, तो भी नहीं बनता, क्योंकि ज्ञानाश्रयताही नहीं हैं, तब उस हेतु से कर्तृता सिद्धि

कैसी। शरीरके विना ज्ञानाश्रयता भी नहीं बन सकती, यह पहले कहा जा चुका है। ज्ञानपूर्वक व्यापार होनेसे कर्तृता मानना भी अनुचित है, क्योंकि व्यापार काय-मन और वचनके आश्रय है, तथा काय-मन और वचन अशरीरीमें नहीं होते, अतः ज्ञानपूर्वक व्यापार भी नहीं बनता। ऐश्वर्य होनेसे कर्ता माना जाय तो यह बताओ कि क्या ऐश्वर्य ज्ञातापनसे है, या कर्तृत्वसे, या किसी अन्यसे? यदि ज्ञातापनसे है तो सामान्यसे या विशेष से? यदि सामान्य ज्ञातृत्वमें ऐश्वर्य है तो कोई भी व्यक्ति हो सकता है। यदि विशेषज्ञान कहो तो उसमें सर्वज्ञता आसकती है। कार्यकर्तृत्ववाली ईश्वरता क्या इससे हो सकती है? यदि कर्तृत्वही ईश्वर संबंधी विभूति-ऐश्वर्य माना जाय, तो इतने ऐश्वर्यमें तो कुम्हार भी समान रूपसे हैं। या फिर उसको कर्ता कहा जाय, कुम्हारको नहीं। अन्य कोई हेतु भी नहीं जँचता, क्योंकि इच्छा और प्रयत्नको छोडकर अन्य कोई ऐश्वर्य साधन ईश्वरमें है ही नहीं। इच्छा प्रयत्न भी निम्न कथनसे नहीं बन सकते। क्योंकि इन दोषों पर दृष्टि मंद करनेसे और और प्रश्न खडे हो जाते हैं। जैसे क्या जगत्के रचनेमें ईश्वरकी यथा रुचि-प्रवृत्ति होती है? या मानवोंके शुभाशुभ कर्मकी परवशतासे? अथवा करुणा क्रीडा से या निग्रह अनुग्रह करनेके अर्थ या स्वभावसे ही? यदि विना इच्छाके यथारुचि प्रवृत्ति मानी जाय तो कदाचित् दूसरे प्रकारसे (अन्यथा) भी बननी चाहिए। कर्मपरवशता मानी जाय तो ईश्वरकी स्वतन्त्रता पलायन करती है। करुणासे मानी जाय तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् होनेसे सदैव सबको सुखी ही रक्खे दुःखी न होने दे। परन्तु अधिक जीव दुःखी क्यों देखे जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि, "ईश्वर

इस विषयमें क्या कर सकता है ? प्राणी पूर्वोपार्जित कर्मोंके परिपाकसे दुःखका अनुभव करते हैं।" तब मनुष्योंके पूर्वोपार्जित कर्म से ही कार्य सिद्ध होनेपर ईश्वरके कर्तृत्वकी कल्पना करना निष्प्रयोजन है।

क्योंकि कर्मके वशवर्ती माननेसे जगत्की उत्पत्ति और प्रलय सुख दुःखादि धर्मोंका विकार द्रव्योंमें उत्पन्न होना संभव है, अतः करुणासे ईश्वरका जगत् निर्माण करना कदापि प्रमाण संगत नहीं जँचता। यदि चोथा-पाँचवाँ पक्ष यानी क्रीडाकारित्व तथा निग्रहानुग्रह करनेका प्रयोजन उसके कर्ता बननेमें हेतु माने जायँ तो वीतरागता तथा द्वेषाभाव इन दो धर्मोंका मानना ईश्वरमें नहीं बन सकता। क्योंकि क्रीड़ा करनेवाला ईश्वर रागसे रंगे जानेके विभावसे बच नहीं सकता। यथा बालक खेलते हैं तो उनका मन रागसे रंजित होता है। एवं अनुग्रह करनेवाले राजाके समान स्वभाव होनेसे अनुग्रह कर्ताका राग कौन हटा सकता है। निग्रहका विधाता होनेसे ईश्वरको द्वेषकी कालिमा कभी नहीं छोड सकती। पूर्वोक्त दोष ग्रामोंका आराम बननेसे कर्तृत्व क्रिया निर्दोष ईश्वरको सदोष बना डालेगी, तब ऐसे दूषित ईश्वरका नाम भला कौन लेगा।

यदि कोई कहे कि ईश्वरका स्वभाव ही कर्ता भावसे समृद्ध है, तब इसमें दोष क्या माना जाय, इसका उत्तर यह है कि यदि स्वभावतः कर्ता माना जाय तो 'जगत् भी स्वभावसे उत्पन्न है' इसमें अदृष्ट ईश्वरकी कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता है। यदि कहो कि जगत्में स्वाभाविकता नहीं है और ईश्वरमें स्वभावकी संभावना है। परन्तु भाई! यदि स्वभावको स्वतंत्र माना जाय तो जगत्के स्वभावको कौन रोक सकता है। तदुक्तं 'स्वभावोऽतर्कगोचरः' इस प्रकार कार्यत्व हेतुको

सर्वप्रकारसे कसौटी करने पर भी बुद्धिमान् ईश्वरको कर्ता नहीं माना जा सकता। इसी तरह सन्निवेष विशेष अचेतनोपादानत्व अभूतत्वाभावित्व आदि अन्य हेतु भी आक्षेप समाधानमें समान होनेसे ईश्वरको कर्ता सिद्ध नहीं कर सकते।

क्षित्यादिको बुद्धिमत्कर्तासे जन्य बनानेके लिए कथित हेतुओंके पूर्वोक्त दोषोंके अतिरिक्त अन्य प्रकार भी दोषोंको उघाड़ डालते हैं, तथाहि पूर्वोक्त हेतु कुलालादि दृष्टान्तोंसे सशरीर-सर्वज्ञ असर्वकर्तृत्वादि विरुद्ध साधक होनेसे विरुद्ध हैं। यदि वह्निके अनुमानमें भी कहा जाय कि इतने विशेष धर्मोंकी समानता मिलने पर वह्निका अनुमान भी नहीं बन सकेगा, यह कथन वह्निके अनुमानमें दोषोत्पादक नहीं, क्योंकि वह्निविशेष महानसीय-पर्वतीय-वनोत्पन्न-तृणोत्पन्न-तथा पर्णोत्पन्न आदि सभी वह्नि कहींपर प्रत्यक्ष होनेसे सब वह्निमात्रमें धूमको व्याप्त निश्चय करनेसे धूम-सामान्य ही सामान्य वन्हिका अनुमापक हो सकता है। तथा सर्वकार्योंमें बुद्धिमत्कर्तृता उपलब्ध नहीं होती। जिससे कि कार्यत्व हेतुको यावत्कार्यविशेषसे व्याप्त मानकर कार्यत्व हेतुकी बुद्धिमत्कर्तृजन्यत्वके साथ व्याप्ति मान सकें, यदि कहो कि सारा जगत् ही उपलब्ध है, तब उसका बुद्धिमत्कर्तासे उत्पन्न होना कैसे उपलब्ध कर सकते हैं? अतः विना अवधारण किए भी कहीं-पर कार्य को कर्तासे जन्य देखकर सर्वत्र कार्यत्वहेतु की बुद्धिमत्कर्तृजन्यताके साथ व्याप्ति मान लेते हैं।

इसका उत्तर यह है, कि उपलब्ध क्षितिपर्वतादि अनेक कार्योंमें कर्तृविशेषका अभाव देखते हुए कार्यमात्रके दो विभाग कल्पित हों। एक तो बुद्धिमत्कर्तासे जन्य यथा घटादि, दूसरा वृक्ष-वन पर्वतादि-जो

किसी अन्यसे उत्पन्न नहीं हुए, किन्तु स्वतः ही उत्पन्न तथा नष्ट होते हैं। इस भाँति यदि सारे दृश्य पदार्थोंमें कर्तृजन्यता उपलब्ध होती तो कदाचित् अदृश्य पदार्थोंमें भी कल्पना करना संभव होता, परन्तु दृश्य कार्योंमें दो विभाग देखते हुए एक विभागको लेकर व्याप्ति बनाना मान्य नहीं हो सकता। ये हेतु-व्यभिचारी भी हैं। क्योंकि बिजली आदि कार्योंका प्रादुर्भाव बुद्धिमत्कर्ताके विना ही होता है। जो हेतु लक्ष्यसे अधिक देशमें निकल जाता है, वह व्यभिचारी समझा जाता है। यहाँ यह कार्यत्व हेतु भी अपने लक्ष्यमात्र जो बुद्धिमत्कर्तृजन्य पदार्थ हैं उनसे बहिर्भूत जो विना कर्ताजन्य बिजली आदि कार्योंमें फैल जाता है। तथा स्वप्नादि अवस्थामें बुद्धिमत्कर्ताके विना ही जो कार्य उत्पन्न होते हैं, उनमें व्याप्त होनेसे भी अलक्ष्यमें गमन करनेसे व्यभिचारी है। एवं प्रत्यक्ष आगम-बाधित विषयमें प्रवृत्त होनेसे **कालात्ययापदिष्ट** नामक दोष से भी ये हेतु दुष्ट हैं। एवं प्रकरण गत चिन्ता उत्पादक हेत्वंतर दीखनेसे **प्रकरणसम** नामक दोष युक्त ये ही हेतु हो सकते हैं। क्योंकि ईश्वर जगत्का कर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि वह उपकरण (सामग्री) रहित है। यथा चक्र-दंड-सूत आदि उपकरण रहित कुम्हार घटादि कार्योंका कर्ता नहीं हो सकता। ऐसे ही ईश्वरके पास उपकरणोंका तो अभाव ही है। एवं व्यापक या एक होनेसे भी कार्यकर्ता नहीं हो सकता। आकाशादि जिसप्रकार व्यापक और एक होनेसे किसी भी कार्यका कर्ता नहीं बन सकता। एवं ईश्वरमें एकत्व और व्यापकता है अतः किसी भी बाज़ार भावसे कार्योंका कर्ता सिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वरको नित्य मानने से उसे अनित्य उपकरणकी आवश्यकता ही नहीं है।

यह कहना भी ठीक नहीं क्योंकि ईश्वरमें नित्यता ही नहीं बन सकती। इसे आगे बताएँगे।

यदि कहो कि ईश्वर नित्य होनेसे उस पर कुलालका दृष्टान्त नहीं घट सकता, परन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि ईश्वरमें नित्यता सिद्ध नहीं होती। कारण क्षित्यादि कार्य करते समय स्वभाव-भेद संभव होनेसे ईश्वरकी नित्यता भाग जाती है। जो प्रच्युत तथा उत्पन्न न हो, स्थिर और एक रस (सदा एक स्वभाव) रहता हो, तथा कूटस्थ (अविनाशी) हो वह नित्य होता है। परन्तु कर्तृत्व दोषके कारण वह ऐसा कदापि सिद्ध नहीं होता। जो सर्वदा सृष्टिकी रचना और संहार जैसे विरुद्ध कार्य करता है, वह एक रस-एक स्वभाव कैसे रह सकता है। यदि एक स्वभाव माना जाय तो उत्पत्ति और संहार जैसे विरुद्ध कार्य कर्ता नहीं बन सकता। इसी भाँति उसके ज्ञानादि गुणोंको ठीक और नित्य नहीं माना जाता, नित्य माननेसे उनकी प्रतीति नहीं बनती तथा "ईश्वर ज्ञान नित्य नहीं है, ज्ञान होनेसे अस्मदादिज्ञानवत्।" इस अनुमानसे भी विरोध है, इस कथनसे ईश्वर ज्ञानकी नित्यतावाली वादीकी प्रतिज्ञासे वह स्वयं परास्त हुआ। यतः

"बोधो न वेधसो नित्यो बोधत्वादन्यबोधवत्।
इति हेतोरसिद्धत्वान्न वेधाभरणं भुव॥" इति

ईश्वरको कर्ता माननेवालोंके मतमें ईश्वरको सर्वज्ञत्वकी प्राप्ति की सिद्धि भी नहीं होती। यदि प्रत्यक्ष प्रमाणसे माना जाय, तो प्रत्यक्ष इन्द्रियोंसे संबद्ध पदार्थका ही ग्रहण करता है। तथा अनुमानसे माना जाय, तो भी ठीक नहीं बैठता, कारण अनुमानमें व्यभिचारी लिंगकी आवश्यकता होती है। यहां कोई व्यभिचारी हेतु ही

उपलब्ध नहीं होता, जिससे अनुमान किया जा सके। जगत् की विचित्रता ही हेतु माना जाय, अर्थात् ईश्वर सर्वज्ञ है, "जगत्का वैचित्र्य अन्यथा असंभव होनेसे" भी सर्वज्ञ सिद्धि अनुचित है। क्योंकि यदि सर्वज्ञ के विना जगत्की विचित्रता न हो सके, तो ईश्वरकी सर्वज्ञ-कल्पना उचित है, परन्तु जगत् की विचित्रता तो जीवोंके शुभाशुभ कर्मके परिपाकपर निर्भर है। तब ईश्वरके विना ही जगत्की उत्पत्ति माननेमें क्या हानि है? भाव यह कि उसके विना ही जगत्की उत्पत्ति हो, तो अविनाभावी हेतु सर्वज्ञ-साधक कोई न हुआ, जिससे सर्वज्ञसिद्धि हो। यदि ईश्वर सर्वज्ञ है तो जिनका पीछेसे विनाश करना पडता है। अर्थात् ईश्वरका अपमान करनेवाले असुरों को तथा हम लोगोंको जिनका कि पीछेसे विनाश करना पड़ता है—किस लिए वारवार बनाता है। इस पूर्वापर विरोधसे जान पडता है, कि पर कल्पित ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है। एवं ईश्वर सर्वज्ञ और सृष्टिकर्ता हो तो यावत्कार्यों के अन्तर्गत यावत्-शास्त्रोंकी रचना भी उसकी आज्ञा से ही होती है। अतः विरुद्ध आचरण करनेवाला कोई भी शास्त्र नहीं हो सकता, फिर भी ईश्वरकर्तृत्वके विरुद्ध बोलने वाले बहुतसे प्रतिपक्षी खड़े होते हैं। क्या उत्पत्तिकालमें उसे इतना भी ज्ञान न था, कि यह रचना हमारे स्वरूपके टुकड़े टुकड़े करने वाली सिद्ध होगी। यदि रचनाको कर्मपारवश्यता पर माना जाय तो कर्म परवशता सर्वतो मुख्य ठहरती है। तब ईश्वरका पुँछल्ला लगाने की क्या आवश्यकता है? "स्वभावोऽतर्कगोचरः।" वस्तुका स्वभाव तर्कगोचर नहीं है, परन्तु प्रबल प्रमाणसे बाधित होता हो तो वह स्वभाव माना नहीं जाता। तदुक्तम्—

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः, साध्यं तद्धेतुसाधितम् ।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥

इस कथनसे सृष्टि-कर्ता ईश्वरकी किसी प्रकार भी सिद्धि नहीं हो सकती, अतः सत्य अर्थका प्रकाशक सृष्टिकर्तृत्वधर्मसे रहित देव ही देवत्वरूपसे आदरणीय है, अन्य कोई नहीं, यह स्वयं सिद्ध है । यथा—

"न्यक्षेणाप्तपरीक्षाप्रतिपक्षं क्षपयितुं क्षमैयमाक्षेपाः ।
प्रेक्षावतामभीक्ष्णं विमोक्षलक्ष्मीः क्षणाय संलक्ष्या ॥

श्रीगुरुदेव—पूर्वापर कथनसे समृद्ध पक्षकी निष्पक्ष समालोचनासे आशा है, पंडित—महाशय ! आपके मनकी विलोम धारणाओंका समाधान अवश्य होगया होगा, तब आपकी आशंकाओंका पुनः न फटकना तो स्वाभाविक ही है । अर्थात् ईश्वरके कर्तृत्व विषयक शंका तो भविष्यमें आपके मनमें कभी फटकने न पायेगी ।

पं० सागरदत्त—श्रीगुरुदेव ! आपके ईश्वरसंबंधी विलक्षण अनुभूत निर्णयसे मुझे इस वादमें बड़ा लाभ पहुँचा है । यू. पी. के पंडितोंसे मुझे बडा धोखा हुआ था । इस उलटी धारणासे हम लोग अकर्मण्य होकर हम एक प्रकारसे ईश्वरकी अदृष्ट कृपाके मुहताजसे हो गये हैं । आपके थोडेसे सहवास और शुभसत्संगसे प्रतिलोम धारणाएँ सबकी सब सीधी हो गई, अब मैं एक प्रकारसे अपनेको स्वावलम्बी मानकर इस शब्द का पुजारी होगया हूं कि **'अहं ब्रह्मास्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म'** आपकी कृपासे मैं आज अपने जन्मसिद्ध-हितोंको पा सका हूं ।

इस चर्चामें उनकी परम विदुषी माताने भी भाग लिया था ।

अन्तमें चार बजते बजते श्रीमहाराज साहेबने विहार कर दिया,

आज गर्मी अत्यधिक थी। सामनेसे लूओंकी लपटोंने आंखोंका पानी भी सुखा डाला। सामनेकी गर्म हवा मानो भाड़मेंसे आ रही थी। मुँह ताम्रवर्ण होगया और हम सब उन उपद्रवोंका खाली हाथ मुक़ाबला कर रहे थे।

दूदिया–५।११६७ ता० १४-५-४५

अन्तमें सांझको ४ बजे विहार किया, और स्टेशन में विश्राम किया।

दुनाड़ा–७।११७४ ता० १५-५-४५

ग्राममें १५० घर ओसवालोंके हैं। धर्मशिक्षाका योग नहीं पाते। मुनिराजोंको प्रतिवर्ष चतुर्मास करना चाहिए।

अजित–८।११८२ ता० १६-५-४५

यहां भी बहुतसे ओसवाल बसते हैं।

समदड़ी–७।११८९ ता० १७-५-४५

रंगराज तार बाबूकी प्रार्थना पर स्टेशनमेंही ठहरे।

पारलु ९
जानीयाना ५ } १४।१२०३ ता० १८-५-४५

बालोत्तरा–६।१२०९ ता० १९-५-४५

सहजराम बछराज भाईकी प्रेरणासे यहांका समस्त संघ स्वागतार्थ आया। सनातनधर्मके सम्मेलनके मंडप में जैन सिद्धान्त और सर्वधर्म-जाति समन्वय पर श्रीगुरुराजने बड़ा ही मार्मिक व्याख्यान दिया। सनातन विचारके लोग तो गदगदायमान हो गए। आर्यसमाजी भी थे। लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

चेतनलालकी झौंपडी–२।१२११ ता० २०-५-४५

यह स्थान निर्जन प्रदेशमें है, निरापद-स्थान रमणीय है। बहुतसे भाई यहां तक सेवामें प्रस्तुत रहे।

तिलवाडा—९।१२२० ता० २१-५-४५

पं० हरनारायण और ठा० पूरणानंद झाडसे वाले स्टेशन मास्टरने सत्संग-सेवाका खूब लाभ लिया। जंगलमें रेतके टीबे ही नज़र पडते हैं।

गोल—८।१२२८ ता० २२-५-४५

भीमरलाई--७।१२३५ ता० २३-५-४५

बायतु—७।१२४२ ता० २४-५-४५

शंकरलाल मोदी-खेतमल धनराज गोलेछा आदि ५-७ स्थानकवासी ओसवाल हैं। भाव-भक्तिमें अग्रसर हैं। रात्रिमें व्याख्यान हुआ। मेरे बिस्तर पर ६ इंच लंबा विच्छू अंधेरी रातमें घूम रहा था। मैंने किसी प्रकार उसकी पूँछ पकडली। आध घंटे तक पकड़े रहा। अन्तमें व्याख्यानके पश्चात् निरापद स्थानमें छोड़ा गया। डंक छू जाता तो जीवितव्यसे हाथ धो बैठना पड़ता। इतना भयंकर जीव है। इस ओर साँप और बिच्छुओंकी बहुलता है। पीवण साँपका आरंभ यहींसे होता है। जो सोते हुए आदमीकी छाती पर बैठकर मनुष्यके ओठों पर फन खड़ा रखककर उसका प्राणवायु पीकर अपना कॉर्बन वायु छोड़ जाता है। मनुष्यके हलक़में इसकी फूँकसे छाला पड़ता है। सवेरा होते होते वह फूट जाता है। उसका विष मनुष्यके खूनमें मिलकर उसकी जान लेकर ही छोड़ता है। इस प्रकारके उपद्रव यहां पद पद पर होते हैं। धमनी सर्पकी आवाज़ तो लोहारकी धमनीकी सी होती है। यह घुड़सवारकी छाती-या मस्तकमें

उछल कर भी डंक मार सकता है। इसके काटेका मंतर भी नहीं है। परन्तु कोई कोई ममुष्य इनसे भी अधिक विषैला होता है।

बानियासंदा धोंरा—८।१२५० ता० २५-५-४५

बायतु संघके कई सदस्य साथ थे। रात्रिमें स्टे. मास्टरोंने व्याख्यानका लाभ लिया और धर्मचर्चाका आरंभ इस प्रकार हुआ।

स्टे. मास्टर—भगवन्! कान अपराधी हैं, अब तक यही सुनते आ रहे हैं, कि जैन धर्ममें ईश्वरके लिए कोई स्थान नहीं है, अतः कृपाकरके यह फ़र्माएँ, क्या वास्तवमें यह सही है या किंवदन्ती है!

श्रीगुरुदेव—देवानुप्रिय! जैन धर्मका लक्ष्य स्थान प्रथम ईश्वर-प्राप्ति है फिर परमेश्वरप्राप्ति।

स्टे. मास्टर—क्या ईश्वर और परमेश्वर दो हैं!

श्रीगुरुदेव—जैन लोग ईश्वर 'जिन' को कहते हैं और 'सिद्ध' को परमेश्वर कहते हैं। ईश्वर प्राप्ति अर्थात् अपने अन्तर्मुखी-गुप्त रहे हुए गुणोंको पूर्णतया प्रगट करना, जिस समय ज्ञान दर्शन सुख-और शक्ति, ये चारों अनंत या पूर्ण अवस्था पर पहुँचते हैं, तब मनुष्य-देहस्थ आत्मा स्वयं ईश्वर या जिन पदको प्राप्त हो जाता है। इन चारों गुणोंके विकासको जैन शास्त्रमें अनन्त चतुष्टय कहते हैं।

जगत्का उद्धार करनेके लिए ईश्वरको अपना उच्च स्थान या पद छोड़कर मनुष्यावतार लेना पड़ता है, अर्थात् ईश्वर अवतार बननेके लिए अवतरित होता है इस कल्पनाने जैनधर्ममें स्थान नहीं पाया है। परन्तु मनुष्य अपनी सत्-ज्ञान और सत्क्रिया द्वारा उत्थित होकर स्वयं ईश्वर-जिन हो सकता है। इस विषयको जैन शास्त्रोंमें स्थान स्थान पर जिताया है। आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-

आनँद और अनन्त-पराक्रम रूप गुणोंसे परिपूर्ण है। इसे मनुष्य पर्यायमें सत्यक्रिया द्वारा अपनेमेंसे स्वयं प्रगट करता है। तब वह ईश्वर या जिन कहाता है। यदि संक्षेपमें कहा जाय तो जैन धर्म मानवेश्वर धर्म है। अर्थात् मानव-धर्म है। मनुष्य स्वयं उच्चमें उच्च अवस्थापर चढ़कर स्वर्ग-मर्त्य और पाताल और सब जीवोंमें श्रेष्ठसे श्रेष्ठ व्यक्ति या ईश्वर गिना जाता है। ऐसा व्यक्ति मनुष्य हो सकता है, जैन धर्मका यह मन्तव्य है।

स्टे. मास्टर—ईश्वर कैसा होता है?

श्रीगुरुदेव—जो मानव आनन्दका समुद्र होता है, सामर्थ्य का सुमेरु होता है, ज्ञानका सूर्य और दर्शनका पूर्णचन्द्र होता है, वही मनुष्य अन्य मनुष्योंकी अपेक्षा ईश्वर या जिनके नामसे पहचाना जाता है।

स्टे. मास्टर—इस प्रकारका ईश्वरत्व मनुष्यमें किस उपायसे आ सकता है?

श्रीगुरुदेव—संक्षेपमें इस प्रश्नका उत्तर यह है, कि सेवासे; सेवा किसकी? चौरासी लाख जीव योनिमें रहने वाले समस्त जीवोंकी। मनुष्य स्वयं चाहे जैसी उच्चस्थितिका उपभोग करता है, परन्तु जब यह मनुष्य रत्न स्वयं छोटेसे छोटा बनकर प्राणीमात्र की अभेद सेवा करनेके लिए सेवा धर्म अंगीकार करे तो इस अभ्यास द्वारा वह ईश्वर की और बढ़ चढ़ कर अन्तमें उसी मनुष्य जन्ममें ही ईश्वरत्वको पा सकता है। मनुष्य पर्यायमें अन्तिम अवस्था जिन पद ईश्वरकी है। उस समय यह ईश्वर सकल दोषोंसे रहित या पूर्ण-पवित्र होता है।

यदि अन्तर्मुखी शब्दोंमें कहा जाय तो तो सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान्-सर्वानंद युक्त और सर्वदर्शी हो जाता है।

स्टे. मास्टर—भगवन्! परमेश्वर कैसे बनता है?

श्रीगुरुदेव—परमेश्वर भी मनुष्य ही हो सकता है। जैसे समस्त जीवों की सेवा करते करते मनुष्य ईश्वर या जिन हो जाता है, वैसे ही जीव मात्र के साथ समभाव रखते हुए अर्थात् समानतया अपने समान जानते हुए, रत्तिमात्र भी न्यूनाधिक गिनती न करके समत्व व्यवहारसे यह स्वयं परमेश्वर अथवा सिद्ध भी हो सकता है।

संक्षेपमें चौरासी लाख जीव योनिमें समस्त जीवोंसे अपने को लघुतम-छोटा समझकर—स्वयं उनका सेवक-रक्षक बनता है, वह मनुष्य ईश्वर बनता है, और जो-अपनेको जीव मात्रमें समान देखता है, वह परमेश्वर या सिद्ध पदको प्राप्त करता है। सब जीवोंकी सेवा करनेसे ईश्वर, जिन और सबमें समभाव रखनेसे परमेश्वर-सिद्ध कहाता है।

प्रत्येक मनुष्य जिनदेव या ईश्वरकी पूर्ण अवस्थामें आनेसे पूर्व ऐसी भावना उत्पन्न करता है।

ऐसी भाव दया मन आई,
शासन रसिक बनें सब भाई।
इस प्रयत्न में जो उल्लास
उस नरमें ईश्वरका वास॥

मैं सब जीवोंको शासनका रसिक बनाकर ईश्वरत्व-जिनत्व की प्राप्ति कराऊं, इस भावके पूर्वार्धमें वह स्वयंको सबसे लघुतम मान कर सब जीवोंकी मन वचन और कायासे सेवा करके ईश्वर कोटिमें गिना जाता है।

स्टे. मास्टर—परमेश्वर कोटिमें किसकी गनती होती है ?

श्रीगुरुदेव—जिनशास्त्रके अनुसार तीन प्रकारके व्यक्तिओंकी गणना परमेश्वर कोटिमें होती है । जो परमेश्वरत्व पा चुका है, या प्राप्त तथा पानेवाला है । सब जीवोंको परमेश्वर जानना-मानना-या अनुभव करना और उनकी सेवा त्रिकरण-त्रियोगसे करता है, इस रीतिसे सब जीवों को परमेश्वरके समान मान कर जो मनुष्य उनकी भक्ति करता है, उससे प्रथम ईश्वर और फिर परमेश्वर होता है ।

स्टे. मास्टर—इस समय जैनोंमें ईश्वर कौन है ?

श्रीगुरुदेव—शास्त्र तीनों कालमें जीवोंका परमेश्वर होना मानता है, परन्तु जैन लोग अधिकांश जो ईश्वर होकर परमेश्वर-सिद्ध हो गए हैं, उनकी सेवा भक्ति करते हैं । तथा स्वल्पांशमें जो इस वर्तमान समयमें विदेह क्षेत्रमें हैं, उनकी कल्पना करते हुए उनकी भाववंदनादि सेवा करते हैं, और उससे अल्पांशमें आगे होनेवाले ईश्वर या परमेश्वर की समता-सेवा के साधनको स्मरणमें रखकर उनकी भावसेवा या आदर करते हैं ।

स्टे. मास्टर—इस बातकी प्रतीति किस आधार पर की जाय ?

श्रीगुरुदेव—देखिए, ग्राम-नगर-पुर-पत्तन आदि जिस जिस क्षेत्रमें जो जो तीर्थंकर हुए हैं, और जो जो विहरमानके रूपमें वर्तमानमें विदेह क्षेत्रमें हैं । उनके गुणोंका चिन्तन-कीर्तन-मनन-निदिध्यासन करते हैं उनकी मनोभावनाएँ जाग्रत होकर बर्फ और पानीकी तरह एक रूप होनेसे वे उसी पदका आनँद ले सकते हैं । क्योंकि सब ईश्वरत्व परमेश्वरत्वसे समृद्ध हैं । ईश्वरत्व-परमेश्वरत्व सबमें व्याप्त है । सब जीव भगवान् हैं । अपनेको छोटा माननेवाला उनका भक्त है,

सब जीव सेव्य हैं, अपनेको लघुतम समझनेवाला सबका सेवक है। सब जीव राजा हैं तो भक्त प्रजा है, सब जीव शेठ हैं तो भक्त-साधक किंकर हैं। सब जीव गुरु हैं तो मुमुक्षु शिष्य हैं। इसी प्रकार सब प्रभुतम या गुरुतम हैं तो जिज्ञासु लघुतम या अणुतम हैं।

स्टे. मास्टर—इसमें प्राकृतिक नियम किस रूपमें काम करता है

श्रीगुरुदेव—जो लघुतम होता है वह कालान्तरमें प्रभुतम होता है, जो आत्मामें प्रभुतर-तम समझता है, वही उसका लघुतम होता है। जैसे किसीने कहा भी है कि—

लघुतासे प्रभुता बढ़े, प्रभुतासे प्रभु जाय,
लघुतमतासे प्रबल हो, प्रभुतामें रम जाय ॥

इस प्रकार मानवसेवा—जीवमात्रकी भक्ति करनेवालों को आगामी कालमें ईश्वर बननेकी शास्त्रमें साक्षी प्राप्त है। प्रकृतिके नियमानुसार फिर वह विस्तारको पाता है जैसे बीज और बेल आदि।

सर्वप्रथम सेवाधर्मको अंगीकृत करनेवालेके पाप यहाँ ही भस्मसात् हो जाते हैं।

छोटासा अग्निकण बड़ी अटवीकी प्रभुताको पा लेता है। छोटी कीडी और बड़ा इन्द्र छोटेसे छोटा भिक्षुक और बडेसे बडा राजा, इन सब में ईश्वर-जिनत्व और ब्रह्मत्व अनन्त गुणसे भरपूर है, जिसे दिव्य चक्षु द्वारा जाना जा सकता है। तथा वर्तमानमें भी यही अनुभव होता है। और स्वयं उनका जब भक्त-सेवक बनता है तब उन गुणोंपर उसे पूज्य भाव होने लगता है। गुणवान्की अनुमोदना पूर्वक सेवाका भाव पुष्ट होता है। ईर्षा और द्वेष तो नाम मात्रको भी नहीं रह पाता। इस साधना की तारतम्य प्रेरणासे विभाव-पापां-

कुर सर्वथा जल जाते हैं। उन गुणों की अन्तर्मुखी स्तुति करता हुआ अपनेको उनके सदृश नहीं बल्कि लघुतम या अणुतम मानने लगता है, तब उसमें इतना पुण्य प्रवाह बढ़ता है, कि तुरन्त तीर्थंकर नाम-गोत्र उपार्जन करलेता है, फिर ईश्वर-और परमेश्वर बननेमें संदेह ही नहीं रहता, अर्थात् आगामी पर्याय जिनेश्वर की ही होती है। इस भाँती जो सबको पूज्यतम जानकर पूज्य गुणोंको अपनेमें से प्रगट करनेका सतत प्रयत्न करता है, मेरु जैसा शुभकर्मोंका उसके पास पर्वत होने पर भी उसमेंसे जिनत्व प्रगट हो जाता है। ईश्वरत्व को प्राप्त करता है। सब जीवोंमें सत्तात्मक केवलज्ञानका समावेश मानकर स्वयं भी उनमें समता रखकर भावना वृद्धिके बलसे जीव सिद्धत्व-परमेश्वरत्व अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तमत्वको प्राप्त होता है।

स्टे. मास्टर—भगवन्! ऐसी अध्यात्मबोधकी कुँजी हमें आज आपके द्वारा ही मिली है। हम आपके कथनकी सोलह आने अनुमोदना करते हैं। हम गुलाम देशमें पैदा हुए हैं। इसलिए हमारे गले ऐसी गूढ़ बात उतरनी कठिन है। परन्तु जब हमारे ४०००००००० मनुष्योंको स्वतंत्रता मिल जायगी, उस समय यही लहर देशभर में फेलेगी, बहिर्मुख स्वतंत्रताके साथ २ हम अन्तर्मुखी स्वतंत्रताके भी हामी है, इसप्रकार १० बजे सभा विसर्जन हुई।

कवास—८।१२५२ ता० २६-५-४५

यहां तीन घर स्थानकवासी हैं। श्रीनारायणभाई हरजीवनदास आदि कई श्रावक कराचीसे आए। यहां मुलतानी-गंजनी मट्टीकी खानें हैं।

बाड़मेर संघ भी आया, रात्रिमें स्टेशनपर प्रवचन हुआ।

उत्तरलाई—७।१२६५ ता० २७-५-४५

श्रीमान पं० रामशरणदास स्टे. मास्टर जालंधर निवासीने अपना कमरा ठहरनेके लिए दिया। बाड़मेर से सैंकड़ों नर-नारी दर्शनार्थ आए। दोपहरकी गाड़ीसे चीफ़ कंट्रोलर साहब श्री हरगोविंददासजीने आकर महाराजश्रीके दर्शन किए और प्रार्थना की कि, बाडमेरसे हैद्राबाद–सिंध तक मेरा हल्का है। प्रत्येक स्टेशनपर टेलीफ़ौन द्वारा सब प्रकारसे धर्मप्रचारार्थ व्यवस्था करूंगा। 'आपके इस असीम उपकारसे कराची संघ उपकृत है।' आपने जो सेवा विहारमें की है, उसे लेखनीसे नहीं लिखा जा सकता।

बाड़मेर—७।१२७२ ता० २८-५-४५

बाड़मेरके नरनारी श्रीमहाराजके स्वागतार्थ टिड्डी दिलकी तरह उमड़ पड़े। नगर भरमें खुशीके बादल से छा गए। श्रद्धालु गृहस्थोंके आकार प्रसन्नताके बोझको वहन करनेमें असमर्थ हो गए, और उनकी मुखाकृतिएँ एकदम खिल उठीं। मोहम्मद-उमरखां जैसे हकीम बंधु भी पेशवाईमें आए, जो कि श्रीमहाराजके १२ वर्षीय पुराने भक्तोंमेंसे हैं। राजपूत बोर्डिंग हाऊसमें ठहरे। दो पहरमें सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। नगरभरके सब लोगोंने लाभ पाया। प्रकृतिके प्रवाहमेंसे गर्मीका उगलना बंद हो गया। बाहरी शांतिके लिए पानीका सम्पात गिरने लगा। नदी नाले पुर होकर पूर की भेंट ले आए। धरती की छाती ठंडी हो गई। मानों उसका खोया हुआ जल सपूत उसे फिर मिला। बड़े ज़ोरोंकी वर्षाने मरुभूमिमें कश्मीर की सी रंगत पैदा करदी। लोगोंमें श्रद्धाकी मात्रा बढ़ी। रात्रिमें और अगले दिन भी व्याख्यान हुए। आज कस्तूरचंद गांधी श्रीमान्

मनसुखलाल शेठ, और भाईचंद मघिया आदि श्रावक हैदराबादसे आए। संध्याकी मिक्समें श्रीमान् शुकनराजजी गोलिया जे. रेल्वे के बड़े कर्ता भी दर्शनार्थ पधारे आपके कारण गाड़ी भी एक घंटा स्टेशनपर खड़ी रही, जिसका प्रभाव यात्रियों पर भी पड़ा। लोगोंमें जिनधर्मका रंग गूढ होगया।

आटीमालानी—४।१२७६ ता० २९-५-४५

संघके उत्साही युवक साँझके विहारमें अतिशय संख्यामें आए। उनके मस्तकमें जैन बोर्डिंगकी ध्वनि मुखरित हो उठी थी। श्रीमहाराजने उनके अन्तरकुंडमें वीररस भर दिया। आटीमालानीसे वापस हुए ही थे, कि अतिशय वर्षा आरंभ हुई। सब रात पानी बरसा। सवेरा होनेसे पहले प्रकृतिका यह चक्र थम गया। समय अनुकूल और सुहावना हो गया। गर्मीके परमाणु त्याग पत्र देकर भागसे गए। शीतल-समीरका दौर शुरु हो गया। इस प्रकार प्रकृतिके इस शांतविभागने विहारमें सहायता आरंभ की।

जशाई ७ }
खडीन ७ } १४।१२९० ता० ३०-५-४५

आज रातको फिर वर्षा आरंभ हुई। मानो रात भर 'पान पुण्णे' का गुप्तदान होता रहा। यहाँ जैनोंके घर भी हैं। स्टेशनपर 'संदेडा' के वृक्ष हैं। यहांके लोगोंकी धारणा है कि इसकी सूखी लकड़ी भी मोसम बरसातमें ज़मीनमें गाड़ी जाय, तो उग आती है। इसके फल और पत्ते अनुपयोगी हैं।

भाचभर—८।१२९८ ता० ३१-५-४५

रामसर—८।१३०६ ता० १-६-४५

यहां कई घर जैनोंके हैं। श्रीमान लाधुरामजी मालु की प्रेरणासे स्टेशन पर व्याख्यान हुआ। थाना पोलीसके सभी कर्मचारी उपस्थित थे। यहां बड़े बड़े टीबे हैं पो. बाड़मेर है।

गागरिया–७।१३१२ ता० २-६-४५

वीकचंद मालु आदि ४ घर ओसवालोंके हैं। लोगोंके भाव सराहनीय हैं। पो. बाड़मेर है।

गडरारोड़–१०।१३२२ ता० ३-६-४५

लीलमा–१२।१३३५ ता० ४-६-४५

तामलोर छोटा स्टेशन होनेके कारण ठहरे तो नहीं। परन्तु गुडगाँव निवासी उमरावसिंह स्टेशनमास्टरके यहां छाछ पानीका योग मिला। कस्तूरचंद गांधी आज हैदराबाद से स्वयंसेवकके रूपमें आ गए। आप स्टेशनमास्टरोंके मन मंदिरमें बहुत जल्दी स्थान पा लेते हैं। आपकी अंग्रेजी भाषा, धर्म प्रचारमें भी मदद करती है। आप आँग्ल भाषामें लोगोंको जैन धर्मकी बारीकियाँ भी समझा देते हैं। आपकी भाषा भी सेवा करती है, तब देह तो सब कुछ करता ही है।

जेसिंधर–७।१३४२ ता० ५-६-४५

मुनाबाव–६।१३४८ ता० ६-६-४५

० रामनाथ जोशी स्टेशन मास्टर हैं। साधुभक्त हैं। कर्मके सदसद्वेद्यके विश्वासी हैं। सब दिन और आधीरात तक सत्संगका लाभ लेते रहे। आपका स्वर गायन करते समय मोहन या वशीकरण का काम करता है। आप दर्शनार्थ हैदराबाद तथा कराची भी आए। आपका आन्तर प्रेम प्रशंसाके योग्य है। आपका मन

सरल तथा हिमके समान उजला एवं शान्त है। आपकी तत्त्वजिज्ञासा अच्छी है, उसे समझनेकी योग्यता भी आपने भली प्रकार पाई है।

खोखरोपार—७।१३५५ ता० ७-६-४५

आप यहां तक विहारमें साथ आए। यहां से मारवाड की सीमा समाप्त होकर सिंधका आरंभ होता है।

यहां के स्टे. मा. पं. श्यामसुंदर और पं. शिवलालने बडी भक्ति की तथा सत्संग लाभ भी लिया।

वासरवाह—८।१३६३ ता० ८-६-४५

श्रीमान् छोटालाल भाई श्रीमान् रावसाहेब श्री हरगोविंद दासजीके छोटे भाई यहांके स्टेशन मास्टर हैं। आप मुनिओंके दर्शन से हरे भरे होकर खिल उठते हैं।

जालुजो चानरो—७।१३७० ता० ९-६-४५

श्रीमान् कुंदनलाल खत्तरी सुलतानपुर लोधी (पंजाब) निवासी स्टे० मा० हैं। उदारता और प्रेमके पुतले हैं। पं० शंकरशाह गौड़ मथुरावाले भी बड़े उत्साही हैं। आपने धर्मचर्चामें इस प्रकार भाग लिया।

पं० शंकरशाह—भगवन्! परमात्मा कहाँ मिल सकता है? और किस प्रकार?

श्रीगुरुदेव—यह प्रश्न तो ऐसा है जैसे समुद्रको पानीकी तलाश हो, राजाके घर मोतीका अभाव हो या वह अन्नसंकट से भीख माँगने निकल पडता हो। भला मानव बंधुओ! अनन्तज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यादि अनन्तचतुष्टयकी प्रभुता अपनेमेंही हो और फिर भगवान्की तलाश भी स्वयं ही करता हो यह कितने अचरज भरी बात है।

किसी समय उसे स्वयं विचार आता है कि सफेद रंगके बादल आकाशमें चढे हैं। परन्तु सांसारिक महामोहकी झड़प हुई कि सद्विचार मय बाष्पसे बने हुए बादल कहींसे कहीं उड गए। वह बाष्पता तो समुद्रसे ही उठी थी।

यदि स्थायी भाव द्वारा पर्वतके समान मनको स्थिर रखनेका सतत अभ्यास करे तो महामोहकी कल्पना उठने न पाए।

शुभभाव या शुद्धभावका प्रवाह आगे बढ़ता रहे तो ध्यान की नदी बनकर भावनाको क्रियात्मक रूप देनेसे अपनी ज्योतिकी कुछ झांकी होने लगती है। अपने स्वरूपका पता लगने पर अपने स्वरूपका ज्ञान होता है। अन्तमें इस निश्चय पर आता है कि ये सद्विचार और स्थिर मन तथा शुभभावना-सत्क्रियादि सब मेरी ही प्रेरणा थी। वृथा ही आकाश पाताल करता हुआ समुद्रकी तरह खोज कर रहा था। यदि प्रथम अपनेमें अपनी खोज करता तो समुद्रको अपनेमें अक्षय पानीके समान अपने आपेमें अनन्त आनन्दका सागररूप परमात्मा मिल पड़ता । जैसे बहुतसे बादल पर्वतों पर जाकर बरसते हैं परन्तु समुद्र यह नहीं समझता कि पानी पहाडों पर कहाँसे आवे, पानीका मूल कारण तो मैं हूं। इसी भाँति बहुतसे मनुष्य पहाडोंमें भगवान्को ढूंढने जाते हैं परन्तु वे इतना समझनेका कष्ट नहीं करते कि पहाडोंमें भगवान् कहाँ है? जिसकी मुझे तलाश है वह तो स्वयं मैं ही हूं। मेरी सद्भावना ही वह है। इसी प्रकार बहुतसे लोग छोटी मोटी नदीयोंमें और तालाबोंमें जाकर उसकी खोज करते हैं परन्तु यह नहीं समझते कि वह स्वयं है। अनन्त दयामय तथा अहिंसारूप जल अपनेमें आनेपर अपने स्वरूपका पता लगने

लभता है । अतः परमात्मस्वरूप अपने आपको ही जानना चाहिए ।

पं० शंकरशाह—भगवन्! प्रभुदर्शन किस उपायसे होते हैं!

श्रीगुरुदेव—जो मनुष्य प्रथम अपने आपमें ध्यान के द्वारा परमात्माकी शोध करता है तब परमात्माकी झाँकी अपने आपमें ही हो जाती है । ज़ैसे समुद्रने अपनेमें पानीकी तलाश की होती तो उसका साध्य उसे अपनेमें ही मिलता ।

परमात्माको बहिरंगभावसे खोज करे तो वहाँ नहीं मिलता । जैसे समुद्रमें अगाध जल तो था ही परन्तु बहुत समयके पश्चात् नदीके रूपमें आया तो उसे ज्ञात हुआ कि यह जल मेरा ही है और मुझसे ही बाष्पके रूपमें अलग हुआ था । इसी भाँति बहिरात्मरूपसे खोजते खोजते अन्तमें थक जानेपर अपने स्वरूपका चित्रण करने लग पड़ता है तब अपने आपेमें ही उसका मृदु मिलन होता है । इस प्रकार दोनों प्रकारसे परमात्माका दर्शन होता है ।

समुद्र अगाध अक्षय असीम और अनन्त है । इसी भाँति आत्माभी अनन्त चतुष्टयसे भरपूर परमात्मस्वरूप है । जिस प्रकार सूर्यके ताप द्वारा समुद्रके पानीकी बाष्प बनती है, वह बाष्प जलरूप ही है फिर भी समुद्रके खारे पानीकी तरह उसमें क्षार भाग नहीं है । इसी प्रकार आत्मा तपरूप तापसे कर्मरूप क्षारको अलग कर डालता है और स्वयं शुद्ध विचारमय परमात्मा रह जाता है । फिर सब जीवों पर दयाकी वृष्टि होने लगती है । तब अपने आप मानो पानीको भी अपनी रुचि होती है । जोकि अपनेमें से उत्तम होकर निकला है । एवं शुभ ध्यानरूप झरनेसे बाहर आकर समता नदीके आकारमें अपने असल घरमें आकर अपने स्वरूपमें तन्मय हो जाता है । इस

परम्परासे समस्त निर्मल जल शुद्ध जलराशीमें ओत प्रोत हो जाता है। समुद्रके समान आत्मा भी बाहरी शुभनिमित्तों द्वारा विशुद्ध होकर परमात्मा बन जाता है।

पं० शंकरशाह—जीव क्या हैं?

श्रीगुरुदेव—कर्म सहित आत्मा।

पं० शंकरशाह—परमात्मसंज्ञा क्या है?

श्रीगुरुदेव—कर्म रहित आत्मा=परमात्मा है। जिस प्रकार समुद्र-नितरा हुआ जल है उसी तरह कर्मरहित आत्मा परमात्मा है। सर्व प्रथम ध्यानके द्वारा और फिर शुक्लध्यानके द्वारा आत्मशोधन करनेसे भी अपना आत्मा निर्मल होता है। और उस पवित्रताके आश्रयसे स्वयं परमात्मरूप होकर अपने आपको ही पहचानता है।

पं० शंकरशाह—प्रभुके प्रभुत्वको कैसे जाना जा सकता है?

श्रीगुरुदेव—जिस प्रकार खानसे सोना निकलता है, तब वह मूल्यवान् सुवर्ण मट्टीमें मिला होता है।

इसी भाँति जीवरूप अमूल्य सुवर्ण भी प्राणोंकी खानमें कर्मरूप मट्टीमें मिला रहता है।

परन्तु जिस प्रकार रासायनिक प्रयोगों द्वारा मट्टीसे सुवर्णको अलग किया जा सकता है इसी प्रकार आत्मा योग द्वारा कर्मके मैलसे अलग किया जा सकता है।

मट्टीमें मिला हुआ सुवर्ण सर्व प्रथम पानीसे धोया जाता है, इसी तरह क्रोधरूपी कर्मके साथ मिले हुए जीव को क्षमाके जलसे धोया जाता है। जैसे सुवर्णका मूल स्वरूप उत्तम बनानेके लिए उसे अग्निमें देना होता है, इसी भाँति मैं आत्मा हूं, और यह दृश्यमान सबका

सब वे ज्ञान-जड है, विभाव है अनित्य है, पर्याय रूप है, इस तीव्र भेद विज्ञानकी आगका ताप देनेसे सुवर्ण विशुद्ध होकर मूल्यवान् कुंदन बनता है। क्षमा द्वारा पहले पहल शुद्धि होती है और तीव्र भेद ज्ञानके द्वारा आत्मा विशुद्ध होता है, तथा विशुद्ध आत्मा ही परमात्मा है। यंत्र द्वारा क्षार भाग निकल जानेसे स्वच्छ पानी मिल जाता है, ऐसे ही क्रोध-लोभ-मोह-मत्सर आदि वैभाविक पदार्थको जीवमें से भिन्न करने पर विशुद्ध आत्माका प्रगट-विकास हो जाता है तथा विशुद्ध आत्मा ही परमात्मा है। आत्माकी विशुद्धता ही परमात्म-दर्शन है।

पं. शंकरशाह—महात्मन्! आपके परमात्मसंबंधी अनुभव रासायनिक प्रयोगों के समान चर्चा कसौटी में विशुद्ध सुवर्णकी तरह खरे उतरे हैं। हम आपके इस अनुभूत विषयकी क़दर करते हैं। हम अपने क्षुद्र विचारों को आपके समुद्र जैसे विशाल विचारोंमें मिलाकर आपका अभिनन्दन करते हैं।

नई छोर—१२।१३८२ ता० १०-६-४५

स्टे०मा० फतहचंद चौधरी रोहतक जिलेके हैं। गांधीजी आप-को रात्रिके समय उपदेशमें लाए।

यहांसे रेगिस्तान समाप्त हो जाता है। और नहरी इलाकेकी हरी भरी खेतियाँ दूर तक लहराती नजर आती हैं। साथ ही साँप और बिछुओंके भयसे भी छुट्टी मिल जाती है। अब तो धानकी क्यारिएँ अपनी हरी हरी वेषभूषासे आँखोंमें तरावट का काम करती हैं।

छोर—४।१३८६

हासीसर—६।१३९२ ता० ११-६-४५

यह स्थान स्टेशन मास्टरोंके लिये भयावह है। पिछले दिनों एक गुजराती हिंदु मास्टरका कतल हो चुका है।

धोरोनारो–७।१३९९ ता० १२-६-४५

पीथोरो–१२।१४११ ता० १३-६-४५

भाई रामरूपमल बुकिंग क्लार्क ओसवाल जैन हैं। आपने समस्त स्वयंसेवकों की अपार सेवा की। श्रीमान् हरिप्रसाद स्टेशन मास्टर (नागोरी) के सद्भावोंका प्रदर्शन दर्शनीय है।

सादीपार्ली-९।१४२० ता० १४-६-४५

पं० दाऊलाल स्टेशनमास्टर हैं। श्रीयाकूबअली तथा चौधरी अरजनसिंह छोटे मास्टर हैं।

मीरपुरख़ास–१३।१४३३ ता० १५-६-४५

श्रीमान् रावसाहेब श्रीहरगोविंददासजी चीफ़कंट्रोलर महानुभावकी प्रार्थना पर आपके बंगलेके हॉल में ठहरे। व्याख्यानके बाद पांच दिन ठहरनेकी विनती की। श्रीमहाराजने बहुमानपूर्वक स्वीकार किया। आपने प्रत्येक स्टेशन पर मुनिओंके ठहरने आदिकी अनुकूल और प्रशस्त व्यवस्था की है। अधिक क्या लिखा जाय इतना कार्य संघद्वारा हजारों रुपयेका व्यय करने पर भी नहीं हो सकता। आप प्रकृतिके भद्र एवं विनीत हैं। सत्य और सरलनिष्ठ हैं। यदि आपको साधु पुरुष कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। आपकी प्रशंसा एक लेखनीसे नहीं हो सकती। प्रामाणिकता तो आपका प्रकृतिसिद्ध गुण है। इस प्रसंगमें आपने आए हुए हैदराबाद संघ और कराची संघकी सेवा करनेमें सैंकडों रुपया व्यय किया है आपने एक सहधार्मिक वात्सल्य (प्रीतिभोज) भी किया है। एक-गच्छ हैदरा-

बाद-संघ और दो-गच्छ कराची संघकी ओरसे किए गए। श्रीमान् रावसाहेबकी यह भी इच्छा है, कि यहाँ उपाश्रय बनवाया जाय। शहरमें ओसवालों के कई घर हैं। जोधपुरनिवासी जसवंत रायजी टिकट कलेक्टर हैं। डाक्टर भी जैन हैं। नगरके कई लोगोंने खूब लाभ लिया।

सुलतानाबाद–९।१४४२ ता० २०-६-४५

टंडो अलायार–११।१४५३ ता० २१-६-४५

टंडोजाम–१२।१४६५ ता० २२-६-४५

मीरानी–७।१४७२ ता० २३-६-४५

श्रीमुहम्मदखां स्टेशन-मास्टरने स्टेशनमें स्थान दिया, आप प्रकृतिके नम्र और मिलनसार हैं। आपका राइटिंग बड़ा सुंदर है।

हैदराबाद सिंध–४।१४७६ ता० २४-६-४५

पिछले दिनों हिंदूमुस्लिम राइट होनेके कारण नगरमें १४४ धारा लगी हुई थी। फिर भी नरनारियों का समुदाय महाराज साहेब का स्वागत करने पुष्कल रूपमें आया, यह यश मास्टर श्रीमान् खीमजी-भाई विठलाणी को प्राप्त है। जैन-जैनेतर भाईओंके संगममें बडे समारोहसे नगर प्रवेश हुआ। व्याख्यानमें गुरु-देव-धर्मका महत्व समझाते हुए धर्मस्थान की आवश्यकता बतलाई। उत्तरमें हैदराबाद जैन संघने हाथ जोड कर निवेदन किया कि एक-दो दिन तक आप की आज्ञानुसार सन्तोषजनक व्यवस्था की जायगी। एक दिन श्री-कस्तूरचंद गांधीके मकानमें व्याख्यानके पश्चात् मिटिंग हुई, और फलस्वरूप ७०००) रुपओंका चंदा एकदम होगया और ८०००) रुपया कराची संघसे प्राप्त करके जैन स्थानकके लिए बनीबनाई बिल-

डिंग सदर-बाज़ारमें १४०००) में खरीद कर ली गई । श्रीगुरुमहाराजने सिंध में प्रवेश करते ही सबसे पहला ठोस-काम यहीं से आरंभ कर दिया । हैदराबाद-संघने श्रीमहाराजकी अनन्य-भक्तिका प्रदर्शन करके दिखलाया । १० दिन तक श्रीमहाराजकी प्रवचन धारा बहती रही । सभामें मोची भाईओंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई । प्रेमजी भाई तथा खोडाजी भाईका नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

कराची संघकी ओरसे दो-बार साधर्मिक-वात्सल्यकी व्यवस्था की गई । एक-गच्छ हैदराबाद संघने किया । चतुर्मासके दिन निकट आ जानेके कारण श्रीमहाराजने विहार की जिज्ञासा प्रगट की, तो हैदराबाद संघको उदासी आगई । अन्तमें चार जुलाई को सवेरे ही कराची की ओर प्रयाण कर दिया ।

कोटडी—५।१४५१ ता० ४-७-४५

मार्गमें सैंधव पागलखाना आता है, मास्टर श्रीखीमजी भाई विठलाणीकी अतिप्रेरणासे श्रीगुरुदेवने उसका निरीक्षण किया । अनुमान १५० पागल हैं । जो १२० रु० मासिक देते हैं, उनके पागलोंके अतिरिक्त शेष सब पागलोंकी इस पागलखानेमें बड़ी दुर्दशा है । पशुओंकी भाँति चिल्लाते हैं । दर्शकों से पैसा माँगकर बीड़ी पीने दौडते हैं । किसीको अपना पागल यहां न भेजना चाहिए । हल और रहट चलानेके लिए इन्हें उनमें भी जोड़ा जाता है । × × ×

श्रीमान् शेठ ठाकरशी भाई कंट्राक्टरके मकानमें सिंधुके परले किनारे पर ठहरनेकी व्यवस्था की गई । हैदराबाद संघ यहां तक मुनिओंको छोडने आया ।

भोलारी–५।१४८९ ता० ५-७-४५

मिटींग–१३।१५०२ ता० ६-७-४५

जहीमपीर–१३।१५१५ ता० ७-७-४५

रात्रिमें सिंधी भाईओं ने व्याख्यान सुना। यहां कोयला-सिमेंट, पत्थर आदिकी कई खानें हैं।

बराड़ाबाद–१०।१५२५ ता० ८-७-४५

जुंगशाही–१०।१५३५ ता० ९-७-४५

रनपिटानी–८।१५४३ ता० ११-७-४५

इस प्रदेशमें **खण** नामक विषैला जीव बडा ही भयानक समझा जाता है। यह एक फुटसे अधिक लंबा नहीं है। यह मनुष्यके देह-को चलकर छु जाय तो उसका पंजा स्पर्श होते ही मनुष्य तुरंत मर जाता है। सिंधकी किंवदन्ती है कि 'खण हण'। खण मनुष्यको तत्क्षण मार डालता है। अतः इधर चलते समय इस प्राणीसे सतर्क रहना चाहिए। जरासी गलतीमें प्राणोंको धोका हो जाता हैं।

दाबेजी–१२।१५५५ ता० १२-७-४५

स्टेशन मास्टर गुरुमुखरामने मांसाहार त्याग दिया।

पीपरी–१२।१५६७ ता० १३-७-४५

श्रीहरिराम स्टेशन मास्टर जलंधरी असतराय सिंधी मास्टर ने मांसाहार छोडा। यह साधुवचन पर अति श्रद्धालु और पिताका परम भक्त है। उनकी प्रतिपल सेवा करनेमें तत्पर रहता है

मलीर–१२।१५७९ ता० १४-१५-७-४५

श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई सरल-सदाचारी-चरित्रवान्-और राष्ट्रीय विचारके तथा साधु भक्त हैं। आपकी विनय पूर्वक प्रार्थनाको मान

देकर श्रीमहाराज आपकी रामवाडीमें ठहर गए। आपकी आत्मा पर श्रीमहाराजके उपदेशका इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि सिगरेट का एकदम यावज्जीव तकके लिए त्याग कर दिया। आपके पास प्रति-पल सिगरेट हाथमें ही रहता था। कई बंडल रोज़ समाप्त करते थे। परन्तु श्रीगुरुदेवकी शिक्षाको पाकर वीर भावनासे उसे छोड़ दिया। साथ ही आपने अपने सिंधी मित्र शेठ लोडनमलको भी प्रेरित करते हुए उसे श्रीजीके समक्ष लाकर मांस-मदिराका त्याग करा दिया। श्रीमान् सेठ लोडनमलकी लगनने तो यहां तक काम किया कि अपने समस्त कुटुंब-परिवार और फ़र्मके ६० नौकरोंसे भी मांस मदिरा छुड़वा दिया। इस प्रकार श्रीमान् कुँवरजी शेठकी प्रेरणा से एक सिंधी-भाई-का श्रीमहाराजजीके द्वारा उद्धार हुआ। यह धर्म-दलाली आपने अति उत्तम की, कुँवरजी भाईकी प्रशंसाके लिए शब्द नहीं मिलते, कि जिससे उनकी प्रामाणिकता-श्रद्धा-भक्ति-अर्पणतादिका बखान किया जाय।

आज कराची संघके २००० मानव मेदनीने आकर दर्शन और व्याख्यानका लाभ लिया। समाचारपत्रोंके रिपोर्टर भी सम्मिलित हुए।

शान्तिनगर—७।१५८६ ता० १६-७-४५

डालमियां सिमेंट फेक्टरीके रेस्ट हाऊसमें ठहरनेकी व्यवस्था की गई। यहां के प्रधानाध्यक्ष देहलीके जैन हैं। आप कई वलायतोंका प्रवास कर आए हैं। आपने साथ चल कर यन्त्रालयका दिग्दर्शन कराया। चिरोली नामके सफ़ेद पत्थरमें चिकनी मट्टी मिलाकर उसे बहुत बड़े २ ढोलोंमें पहुँचाया जाता है। वह अपने वेगसे घूमता रहता है। उसके गर्भमें लोहके हज़ारों गोले पड़े हैं। वे उन दोनों

पदार्थों का चूर्ण करनेमें उद्यत रहते हैं। तदनन्तर वह गीला होने के बाद भट्टीमें पकता है। पकनेपर गाडियोंमें भर कर गढेमें लाकर फेंक दिया जाता है। फिर यहांसे यथा परिमाण निकाल कर पीसा जाता है और थैलों में भरा जाता है। पत्थर लानेसे लगाकर बोरोंमें भरने तकके सब काम यन्त्रों द्वारा लिए जाते हैं। काम तो साधारण है। एक मनुष्य भी कर सकता है। मात्र अपने घरकी आवश्यकता पूरी कर सकता है। परन्तु करोडों मन वस्तु इस प्रकारके यंत्रके विना उत्पन्न नहीं हो सकती। इस यंत्रको देखकर मनुष्य आश्चर्यके सागरमें डूब जाता है। छोटे बालकोंको देखनेकी सख्त मनाही है।

रात्रिमें कार्यालयके समस्त कर्मचारियोंने प्रवचन का लाभ लिया। समाप्ति पर मैनेजर साहबने अनुमोदन करते हुए इतना विशेष कहा कि मैंनें ऐसा बोधप्रद उपदेश आज प्रथम बार ही सुना है। कई लोगोंमें सुधार हुआ। एक घर ज़ैन भी है।

गुजरात नगर–४।१५९० ता० १७-७-४५

श्रीमान् प्रागजी भाईके भव्य प्रासादमें ठहरे। आप भक्ति विचार के प्रसिद्ध व्यापारी हैं।

कराचीसे सहस्रों दर्शनार्थियोंने लाभ लिया। रात्रिमें सब श्रद्धालुओंने प्रवचन सुना।

यहां एक घर जैन श्रीमान् चतुर्भुज पानाचंद जी का है। घरकी माई जी तो साक्षात् अन्नपूर्णा और अपने समयकी राजीमती हैं।

कराची–३।१५९३ ता० १८-७-४५

आज कराची की जैन जैनेतर जनता श्रावणके बादलों की भाँति उमड़ पड़ी। ५००० से अधिक मानव मेदनी होगी। शेषनागके

आकारके सदृश जलूसकी लंबाई थी। लोगोंमें ऊहापोहके साथ अचरज भर रहा था। वे भक्तिभावसे अवनत होकर स्वयंको जलूसके सपुर्द करते जाते थे। अपार समारोहसे यह समुदाय होस्पीटल-रोडके जैन उपाश्रयके विशाल भवनमें जाकर समाप्त हुआ। रणछोड लाइनमें श्रीमान् बालब्रह्मचारी जमशेदजी नसरवान जी महेता (भूतपूर्व लार्ड मेयर) भी साथ आए। इर्यापथिकी क्रियाके अनन्तर श्रीमहाराजने जनता को धर्म और उसपर श्रद्धा रखना, वात्सल्य एवं प्रेमको उत्तेजना देते हुए, काले बाज़ार न करनेकी प्रेरणा की, तथा श्राविकाओंसे यह फ़र्माया कि जिस समय उपाश्रयमें प्रवेश करें, तब मौन धारण कर लिया करें, ताकि उपाश्रयमें नीरवता एवं शान्ति रहे। ५०० से अधिक बाइयोंने यही प्रतिज्ञा ली, और उसे चतुर्मासके अन्त तक निभाया, जिससे व्याख्यानके समय सब कुछ सुनाई पड़ता था। सुननेवालों को भी आश्चर्य होता था, कि इतनी बहनें और यह ख़ामोशी। जनताके लिए यह बिल्कुल नई बात थी।

स्थानकवासी जैन संघ--स्थानकवासी भाइओंके अनुमान ५०० घर हैं। कई हजार जनसंख्या है। वार टाइमकी लाभान्तरायके क्षयोपशमकी कृपासे सबके पास सन्तोषजनक पूँजी है। १०-१५ घरोंके अतिरिक्त सब सुखी प्रायः हैं। खाने पीनेकी कमी नहीं है, धंधेसे अवकाश नहीं मिलता। १००–१२५ घर ऊँचे दर्जेके सम्पत्तिमान् हैं। लक्षाधिपति हैं। इनमें उदारता कम है। धार्मिक कार्योंमें बडी कठिनाई पडने पर कुछ प्रदान भी करते हैं। अधिकतर राजदंडसहिष्णु हैं परन्तु धर्मदंड नहीं। तथापि कुछ न कुछ चंदे-चिट्ठेमें योग देते ही हैं। आगन्तुक अभ्यागतोंका भलीप्रकार मान रखते

हैं। जो भी बाहरसे माँगने आता है खाली कभी नहीं जाता। उनके भाग्यकी प्रबलता इनसे यथेच्छ पालेती है। श्राविका वर्गमें दानकी प्रथा है। शुभकार्यमें अधिक देनेकी रुचि है। शुभकार्यका आशय है कुत्तोंको तेलके बिस्कुट खिलाना। इनमें अंधश्रद्धाएँ भी हैं। तथा धर्मभाव भी। अहारपानीकी शिकायत बराबर करती रहती हैं। साधु एक मासमें सबकी मनोरथमाला गूँथ आते हैं। आहार पानीकी साता अतिशय इच्छनीय है।

मूर्तिपूजक संघ—उभय संघका पारस्परिक प्रेम प्रशंसनीय है। किसी बात पर वैमनस्य या असंतोष नहीं है। खुशालचंद-बस्ता भाई पंडितकी पदवीसे अलंकृत हैं। आपके उदार विचार पंडितोंसे भी ऊँचे और अधिक स्वतन्त्र हैं। आपसे अधिक स्पष्टवक्ता कौन होगा। समाजकी बोदगी आपको अतिशय खटका करती है। ऐसा नरपुँगव प्रत्येक समाजको मिलना कठिन है। जैन समाजमें सबसे विलक्षण और उच्च गुण यह है, कि वे किसीकी क़दर करना नहीं सीखे। यही बात यहां भी देखी गई इस सम्बन्धमें न जाने अपनी समाजको कब सद्‌बुद्धि आयगी? हमें उस दिनकी अपेक्षा है।

श्रीजमशेद्‌जी महेता—यदि किसी सभामें एक ओर कोई कोनेमें छुपकर बैठा हो, सादी खादीका वेश हो, छोटे आसन पर हो, पीछे बैठनेकी चेष्टा करता हो, मुँह छुपाये हुए हो, आकृतिसे शान्ति बरसती हो, नम्रतासे समृद्ध हो तो समझ जाइए कि वे नरपुंगव श्रीमान् जमशेद्‌जी नसरवानजी महेता हैं। आप धनद या कुबेरके समान होकर भी सादे वेशमें रहते हैं। आप पवित्र बाल-ब्रह्मचारी हैं। जगतकी सेवा तन-मन-धनसे

गुप्तरूपेण करते हैं। आपके घर जो भी आता है, मान और आसन ऊँचाही पाता है। आप परकार्यपरायणतामें दक्ष हैं। आपकी दृष्टि सबपर समान है। आपकी कमाईका बहुभाग गरीबोंकी पेट-पूर्तिमें व्यय होता है। यों तो पारसियोंकी उदारता जगत्प्रसिद्ध है, परन्तु आपकी उदारता और सेवा सूर्यकी भाँति चमक रही है। आपके औदार्यके सामने सब हतप्रभ हैं। आपका धन उचित क्षेत्रमें व्यय होता है। मानो आपका धन-मन-वचन मानवसेवाके लिए ही बना है। आप अपने बड़े परिवारमें चन्द्रमाके समान हैं। आप घर-बारी दुनियामें रहकर भी साधु जीवन बिताते हैं। आप सचमुच २० वीं सदीके जंबू अथवा शुकदेव स्वामी कहे जायँ तो अतिशयोक्ति न होगी। शतं जीवके कार्य आपके देहमें पाए जाते हैं। लोगोंकी धारणामें आप शतायु होंगे। आप कराचीके लिए प्राणभूत हैं। कराचीका प्राणवायु आप ही हैं। संसारमें अरबों मनुष्य हैं परन्तु आप तो महामनुष्य बनने जा रहे हैं। आपकी भवस्थिति पक चुकी सी जान पडती है।

संघपति—यहां का संघपति शरीरसे पतला दुबला सा जान पडता है परन्तु मानसिक विचार सबल हैं, प्रकृतिने जैसा गौर वर्ण दिया है वैसा ही मन भी गौर है। मनमें कभी मैला पन नहीं आता। जनतासे तिरस्कृत होकर भी सेवा भावमें प्रतिपल आगे बढ़ता है। मुनिराजोंकी सब प्रकारकी खैर ख़बर के लिए २४ घंटे प्रस्तुत रहता है। तन-मन-धन और वचन आदि सब कुछ गुरु-भक्तिमें न्यौच्छावर है। इसने छलनासे काम लेना न सीखकर मनकी लगनसे काम करना सीखा है। प्रतिपल मुनिराजोंको सन्तुष्ट रखनेकी चिन्ता है। यदि

साधु सार्वजनिक व्याख्यान करने जायँ तो आप पीछे रहते हैं। साधु सदर जाय तो आप पीछे २ चलता है। साधु यदि हवाबंदर जाय तो आप भी पीछे लगे रहते हैं। अधिक क्या लिखा जाय मुनिराजों को अपने सर-आखों पर बैठाना जानता है। गुप्त सेवा करनेमें यह सिद्ध हस्त है। अपने मनकी तो यह प्रेरणा है कि सबको ऐसे ही संघपति मिलें।

आनेवालोंका स्वागत—आनेवाले सहधर्मी भाइयोंका स्वागत यहां खूब किया जाता है। बड़ी से बड़ी सेवा द्वारा उन्हें प्रसन्न रक्खा जाता है। बाहरसे आने वाले भाई १॥-१॥ मास तक भी रहे हैं परन्तु यहां का श्री संघ उनकी सेवा अभेद रूपसे करता रहा है। इतनी उच्च कोटीकी सेवा अन्य किसी क्षेत्रमें नहीं देखी गई। **कराची संघ क्या है स्वर्गका-सदन है।**

आनेवाले डेप्यूटेशन—जो लोग अपने संघकी किसी आवश्यकताकी पूर्ति कराची संघसे कराने आएँ तब उनकी कराची संघने बड़ी सहायता की है। सच्ची सहानुभूतिसे उनकी इच्छानुसार झोली भर कर उन्हें प्रसन्न करके भेजा है। हैदराबाद संघ उपाश्रयके लिए दो बार डेप्यूटेशन लेकर आए तब उन्हें दोनों बार पुष्कल धन देकर विदा किया। उन्होंने कराची संघकी मददसे अपने यहां १४००० में बना बनाया मकान लेकर जैन उपाश्रय बना लिया। काठियावाड़से लखतर संघ भी आया था, उसे भी २५०० मिला है। इसी प्रकार कई स्थलोंके लोगोंने यहाँ आकर सदा मुँह माँगा पाया है। अपने सहधर्मी भाईयोंके लिए **कराची-संघका द्वार अभग्न रहा है।**

यहाँका श्रावक नारायण भाई

श्रीयुत नारायण भाई-हरजीवन ३० वर्षसे एक रस-एक धार ज्ञान-दानमयी अभूतपूर्व सेवा कर रहे हैं। अपने गृहसंबंधी आवश्यक कार्योंको छोड़कर प्रातःकाल होते ही उपाश्रयमें आकर सैंकडों श्रावक श्राविकाओंमें व्याख्यान करते हैं। आपका व्याख्यान रोचक-विद्वत्ता-पूर्ण और सैद्धान्तिक होता है। सैंकडों साधु मुनि राजोंकी शैली ऐसी विलक्षण एवं प्रभावोत्पादक न होगी जैसी अच्छी और सुगम शैली नारायण भाई की है। सिद्धान्तकी गुप्त तालिकाएँ आप को उत्तम ढंगसे प्राप्त हैं। आपके समान संघको, इस प्रकार समय और भावकी बलि देनेवाला, कराची संघमें शायद ही कोई हो। इसके अतिरिक्त आप नवीन विचारसे अलंकृत हैं। आप ३० वर्षसे कराची जैन संघ रूपी वाड़ीको व्यवधान रहित सींचते रहे हैं। आपने संघ के उद्यानको हरा भरा कर दिया है। यदि आपका सुयोग कराची संघ न पा सकता तो कराची संघ कहाँ होता यह वचन-अगोचर है। आपमें वात्सल्यता का अंग अद्वितीय है। आपकी समता-क्षमता निर्लोभता एकान्त सराहनीय है। आपकी असंगता तो साधुओं की असंगतासे मिलती जुलती है। आपके मनमें लोभका क्षोभ कभी नहीं उठा है आप काठियावाडमें मूली गामके निवासी हैं, नारायण भाई सात्विक गुणोंके अधिपति हैं। आपका सौत्रिक अनुभव अजोड़ है। आपका २८ सूत्रोंमें तारतम्यरूपसे प्रवेश है। नारायण भाई की धर्मयशोगाथा दिगन्तव्यापिनी हैं। नारायण भाई सरलता-सत्यता-श्रमजीवित्वताकी ज्वलन्त मूर्ति हैं। आपकी सेवा साधनाका फल कराची संघका धर्म जागरण है।

तपश्चर्या—पर्यूषण पर्व में आठ दिन काम धंधेको विराम देकर सबने उपाश्रयमें ही स्थान रखा। बहुतोंने आठ-आठ दिनके उपवास किए। देहलीके दो श्रावकोंने यहाँ आकर २१-और आठ दिनका उपवास किया। उपवास करनेमें जैनसमाजका सदा पहला नंबर रहा है।

कराचीका उपाश्रय—कराचीका उपाश्रय एक मंजिला है, सुधर्म देवलोक के समान शोभित है, स्थान विशाल है। जगह शीतल और हवादार है। पर्यूषणपर्व के दिनोंमें छोटा पडता है।

जैनशाला—समाजके छोटे बड़े बालक बालिकाएँ एक घंटा इस संस्थामें अध्ययन करते हैं। मात्र सामायिक प्रतिक्रमणादिका अभ्यास कराया जाता है। खीमचंद-मगन लाल वोराके समय उचित व्यवस्था थी। सब जगह यही शिकायत है, कि अच्छे योग्य कार्यकर्ता नहीं मिलते।

शारदामंदिर—यह राष्ट्रीय संस्था है। हजारों लड़के तथा सैंकड़ों बालाओंके पढानेकी उत्तम व्यवस्था है। सिंध भरमें क्या कई प्रान्तोंमें ऐसे उत्तम ढंगकी पाठ्यसाधना नहीं है। प्रत्येक कक्षामें लाउडस्पीकरका प्रबंध है। फ़ौन भी है। विद्यार्थिओं द्वारा निर्मित ३००० चीजें प्रदर्शिनीमें दिखाई गई थीं। सूतकी कताई चीनांशुक सूत से मिलती जुलती यहीं पाई गई। इसके अधिपति श्रीजमशेद भाई महेता हैं। मंत्री मनसुखलाल जौबनपुत्रा हैं। ऐसी आदर्श संस्था देखने को किसका मन न ललचाएगा।

इस संस्थामें कांग्रेसके अनेक नेताओंने एक एक वृक्षका आरोपण किया और यथासमय पुनः आकर उसे सींचा है। आधारशिला बापूने रक्खी थी। इसका कार्यक्षेत्र विशाल है परन्तु भूमिक्षेत्र

छोटा है। फिर भी बुद्धिमत्तासे कामको पूरा किया जाता है। यह जैन संस्था नहीं है जिसमें धन भी न मिले और कार्यकर्ताओंके अभावमें असमय सूक जाय? यह गौर्जरीय संस्था है। इसके कर्मचारियोंमें देश और जातिका स्वाभिमान है। उदार धनिक तन, मन, धन और वचनसे इसे प्रतिपल सींचते रहते हैं।

एकदिन वह था जब कि जोबनपुत्राने ५० लडकोंको २५ वर्ष पूर्व वृक्षके नीचे बैठकर पढ़ाना आरंभ किया था आज इस संस्थाके पास मकान और वस्तु संग्रह ५००००० से अधिक है। १०००-००० की मांग इसी वर्ष की गई है, वह भी पूरी होने जा रही है। वर्णमालाकी पोथीसे लगाकर चिकित्साशास्त्र तकके अध्ययन का प्रबंध है। यहां से निकले हुए विद्यार्थी उच्च योग्यता को पाकर बड़ी से बड़ी पोस्ट पर काम करते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी इस मातृसंस्थाकी मानद् सेवा तथा इसका आजन्म कृतज्ञ रहता है। पारसी और वोरा जातिके विद्यार्थी भी अध्ययनार्थ आते हैं। इसके विद्यार्थी शिष्ट और राष्ट्रभावुक होकर देशकी विभूति और कामकी वस्तु बनकर निकलते हैं। प्रत्येक कराची नागरिक को उचित है, कि वे इस राष्ट्रीय संस्थामें अपनी सन्तान को अवश्य पढाएँ। शारीरिक बलके बढ़ानेके अर्थ यहां व्यायामशाला अभी ही स्थापित हुई है। मैं तो बलपूर्वक यही कह सकता हूं कि ऐसी संस्थाके लिए अपना धन न्यौच्छावर कर देना चाहिए। सर्वस्वदान करनेके अर्थ यह संस्था पूर्ण अधिकारिणी है। इसमें किसीको तनिक संदेहके लिए भी गुँजाइश नहीं है।

कराची नगरकी स्थिति

कराची नगर हिन्द महासागरके पश्चिमी कोनेपर एक बडे भारी मैदानमें बसा है। अंबालेसे कराचीको भटिंडा समासट्टा सक्खर-हैदराबादके रास्तेसे जाते हैं। भटिंडेके आगे ही राजपूताने के उत्तरीभागका रेगिस्तान आरंभ होता है। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाइए, रेतीला मैदान बढता जाता है। समासट्टा जंकशन है, भावलपुर रियास्तके पास ही है। आगे बढ़ते समय योजनोंका मैदान चारों ओर नज़र आता है। कहीं वृक्षोंका नाम तक नहीं। हाँ, बीच बीचमें करीर-खेजड़े-फोग और डंडा-थोहरकी झाडियाँ मैदान भरमें दिखाई देती हैं। जिनके कारण मैदानके दृश्यकी रमणीयता और भी बढ़ जाती है। हवा प्रायः तीक्ष्ण चला करती है, जिससे मैदान की रेत उड़ उड़ कर कपड़ों और शरीरको धूलिधूसरित कर देती है। रेतकी लीपा पोतीसे तो किसी तरह नहीं बचा जा सकता।

सन् १९३४ में इसी रास्ते से मालेरकोटले गए थे। उसीके आधार पर पाठकोंके सन्मुख यह वृत्तान्त रक्खा है। सबसे पहले **मलीर** आता है। यहांका जल वायु अच्छा है। बाग-बगीचे बहुत हैं। शेठ कुंवरजी भाईकी रामवाडीमें मुनिओंके ठहरनेकी उत्तम व्यवस्था है। चारों ओर मैदान है। तीन मील चलने पर ड्रीग रोडका हवाई अड्डा आता है। तदुपरान्त ६ मील आगे बढ़ने पर गुजरात नगर बस्ती पड़ती है। यहां तक कँकरीली पहाड़ी हैं। आगे कराची चारों ओर कोसोंका मैदान होनेके कारण लंबा चौडा खूब है। रेल्वेके लंबे चौड़े गोदाम हैं। जिनमें लाखों मन अनाज, रूई, बिनौला, चीनी आदि भारतकी-विशेष कर पंजाब की अमूल्य सम्पत्ति विदेशोंको भेजनेके लिए उतारी जाती है।

यह नगर कोसोंके रेतीले मैदानमें खूब खुला हुआ बसा है। सड़कें खूब चौड़ी और बहुत ही साफ़ हैं। श्रीमान लॉर्ड मेयर श्री जमशेदजी नसरवानजी [भूतपूर्व कॉरपोरेशनके अधिपति] के समय म्युनिसिपैलिटीने सफ़ाईका बहुतही अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था। अनेक घोड़ा-गाडियों-गधागाडियों-ऊँट गाडियों तथा अन्य वाहनोंके निरन्तर चलते रहने पर भी सड़कोंपर कहीं गंदगी दिखाई नहीं देती थी। मेहतर टोकरी और झाड़ू लिए घूमते रहते हैं। जहां ज़रासी गंदगी देखी, चट साफ़ कर दिया। परन्तु गलियाँ खूब चौड़ी होनेपर भी अच्छी दशामें नहीं हैं। यद्यपि गलियाँ पक्की और साफ़ बनी हैं, परन्तु बस्तीके लोग सफ़ाईका ध्यान नहीं रखते। ऊँचे ऊँचे भवनोंके ऊपरसे स्त्रियाँ गंदा पानी और कूडा-करकट दिनभर नीचे गलियोंमें फेंका करती हैं। वह गंदगी कभी कभी रास्ता चलने वालोंके ऊपर भी गिर पड़ती है। और यदि कोई बिगड़े दिलका गुंडा हुआ तो उन स्त्रियोंको चलते चलते दो चार अभद्र शब्द भी सुना ही देता है! यह प्रथा बहुत ही बुरी है। परन्तु जब नगरके निवासी इनका सुधार न करना चाहें, तब म्युनिसिपैलिटी बेचारी कर ही क्या सकती है।

कराचीके भवन प्रायः बहुतही साफ़-सुथरे और सुंदर बने हुए हैं। विशेषता यह है कि सब प्रायः एक ही रंग-ख़ाकी रंग-से पुते हुए हैं। इसलिए शहरकी रमणीयता और भी बढ़ गई है। सवारियाँ यहां मोटर-ट्राम घोड़ागाड़ी ऊंटगाड़ी और गधागाड़ी हैं। ऊँटगाडी और गधागाडी केवल बोझा ढोनेके काम आती हैं। बैलों

का उपयोग प्रायः नहीं के बराबर है। ट्रामगाड़ी यहां पर बिजलीसे नहीं, बल्कि पेट्रोलसे चलती हैं।

समुद्रके किनारे और भारतके पश्चिम कोणपर होनेके कारण कराचीका जल वायु प्रायः समशीतोष्ण है। स्वास्थ्यके लिए यहाँ का जलवायु बहुत ही लाभ-दायक जान पडता है।

व्यापार-व्यवसाय—व्यापार-व्यवसाय यहां जो कुछ है, वह बंदरगाहके कारण है। अपने देशकी चीजोंको बाहर भेजना और बाहरकी वस्तुओंको अपने देशमें पहुँचाना ही यहाँ के व्यापारियों का धंधा है। जहाजी स्टेशन अर्थात् बंदरगाह और रेल्वेस्टेशन दोनोंमें से किसीके गोदामोंको देखिए, मालसे पटे पडे हैं। भारतसे अनाज, रूई, बिनौला आदि कच्चा माल भेजा जाता है। और विदेश से आनेवाला कपड़ा तथा नाना प्रकारकी विलासिताकी वस्तुएँ जहाजों से उतार कर, भारतके शहरोंमें भेजनेके लिए रेलगाड़ी पर लादी जाती हैं। यहां कस्टमकी आय कमसेकम १०००००० लाख रु० और अधिकसे अधिक २०००००० रु० तक प्रतिदिनकी है। यहाँके अधिकांश व्यवसायी और कुछ नहीं, सिर्फ़ विदेशी कम्पनियोंके दलाल या एजेण्ट हैं। शहरके बाजार विदेशी मालसे सदैव पटे रहते हैं। कराचीका अधिकांश व्यापार पंजाब, सिंध और दिल्ली प्रांतके साथ है।

दर्शनीय स्थान

मनोरा—यह स्थान बंदरगाहसे लगभग १॥ मील दूर समुद्रके बीचमें है। यह एक पहाड़ी है, जिसको घेर कर सरकारने समुद्री किला बना लिया है। इसमें एक दीपस्तम्भ अर्थात् "लाइट हाउस"

भी है । इससे रातको 'सर्च लाइट' डालकर जहाज़ोंके आने जाने का पता लगा सकते हैं । किलेमें विशेष कर फ़ौजी सामान रहता है । इसको देखने के लिए यात्री लोग डोंगी पर जाते हैं । किराए की सुंदर सजी हुई डोंगियाँ बंदरगाहके पास समुद्रमें रहती हैं ।

बंदरगाह—कराचीका बंदरगाह नगरसे अनुमान तीन मील पर है । इसको वहाँ पर "केमारी बंदर" कहते हैं । नगरसे बंदरगाहको जो लंबी सड़क जाती है उसका नाम भी 'बंदर रोड' है । बंदरगाहको जाते समय बीचमें समुद्रका एक बहुत बड़ा लंबा-चौडा सोता पडता है । इसके ऊपर दो सुंदर पुल बने हुए हैं । इस डबल पुलको "हार्डिंज़ ब्रिज" अथवा "नेटिव जट्टी पुल" कहते हैं । बहुत ही विशाल और भव्य पुल है । पुलके एक ओर नगरके स्त्री-पुरुषोंके नहानेके लिए अलग अलग घाट बने हुए हैं । स्त्रियोंका घाट चारों ओर दिवालसे घिरा है । एक पुल घोड़ा गाड़ी ट्राम और मनुष्योंके आने जानेके लिए है । और दूसरा रेलगाड़ीके लिए । बंदरगाह पहुँचनेपर सामने ही "मनोरे" इत्यादि को जानेके लिए सुंदर सजी हुई डोंगियाँ दिखलाई देती हैं । उसके एक ओर हट कर जहाज़ोंका बड़ा भारी अड्डा है । सुंदर और बृहत्काय जहाज़ इसी बंदर पर आकर लगते है । कई जहाज़ यात्रियोंको ले जाते हैं । इसके सबसे नीचेके दर्जे यानी तीसरे दर्जेमें बहुतसे भारतवासी लोग पशुओंकी तरह भरे जाते हैं । सब अपने दर्जेके बड़े-बड़े छेदोंसे मुँह निकालकर खाने पीनेका सौदा रास्तेके लिए ख़रीद लेते हैं । उनको देखकर मनको बड़ा कौतूहल होता है ।

हवा बन्दर या क्लिफ्टन—यह स्थान कराची शहरसे कोई पाँच

मील पर समुद्रके किनारे है। यहाँ एक बहुत ही लंबा चौडा प्लेट-फ़ॉर्म है। प्लेटफ़ॉर्म में एक ओर सुंदर बेञ्चें पड़ी रहती हैं। दोनों तरफ़ और बीचमें सुंदर पत्थरकी विशालकाय बारहदरियां बनी हुई हैं। बीचसे एक लंबा सा पुल नीचे समुद्रकी ओर मैदानमें चला जाता है। वायु सेवनके लिए यह स्थान सुंदर, रमणीय और भव्य है। चारों ओर कोसों तक मैदान और सामने समुद्रका मनोहर दृश्य है। हवा यों ही कराचीमें मैदानोंके कारण बड़ी तेज रहती है—फिर 'हवा बंदर' का तो कहना ही क्या है! यहां समुद्र स्नान करके लोग बड़ा ही आनन्द मानते हैं। कोई नन्हियारा समुद्रकी बाहु-पाशमें आकर उसके गर्भमें भी विलीन हो जाता है। लहरके जाते समय मनुष्यका सँभलना कठिन हो जाता है। आए दिन ऐसी २ घटनाएँ होती हैं परन्तु लोग तो स्नान द्वारा मुक्ति पानेसे बाज़ नहीं आते। इस स्थानको श्री० जहांगीर कोठारी नामके पारसी महाशयने तीन लाख रुपए लगवा कर बनवाया है। परन्तु सुना है बंबई में "चौपाटी" की सैर का आनंद सभी गरीब अमीर ले सकते हैं वैसे यहाँ नहीं। परन्तु समुद्रका सब रहस्य कविलोग यहां ही अपने मस्तिष्कमें एकत्रित कर सकते हैं।

यह हवाबंदर नगरकी बस्तीसे बहुत दूर पड़ता है। मोटर और घोड़ागाड़ी वालेही सहजमें पहुँच सकते हैं। इस स्थानके पास शेठ शिवरतन महेता बीकानेर निवासीने एक विशालकाय महल बनवाया है। सब रचना बीकानेर स्थापत्यकलाके अनुरूप है। इसमें राष्ट्रके नेता विश्राम पाते हैं। यहां गुफ़ामें शिवमंदिर है। शिवरात्रिपर मेला लगता है।

गांधी गॉर्डन या चिड़िया घर—यह स्थान शहरसे १॥ मीलके फ़ासले पर है। बागमें नाना प्रकारके जलचर-स्थलचर-नभश्चर-उरश्चर-भुजचर जीवजन्तु और पशु पक्षी आदि प्राणी एकत्र करके यथास्थान रक्खे गए हैं। बीचमें एक सुंदर तालाब बना हुआ है। उसके ऊपर सैर करनेके लिए एक ऊँचा सा "हैङ्गिंग ब्रिज" अर्थात् झूलता हुआ पुल भी बहुत सुंदर बना हुआ है। इस तालाबमें भाँति भाँतिके जलपक्षी और मछलियाँ इत्यादि हैं। इनके अतिरिक्त यत्र तत्र पानीके कुंडों में अन्य विचित्र जन्तु भी हैं। इस बागमें कई प्रकारके शेर-चीते भेडिए-हिरन-बंदर-दरियाई घोडे-जलमानस-आदिका संग्रह है। चित्र-विचित्र रंगके पक्षी भी स्थान स्थान पर किलोल कर रहे हैं। शेरके साथ बिल्ली यहीं खेलती है। इसमें आश्चर्य ही क्या है? बिल्ली शेरकी मौसी कहलाती है। यह मौसीका प्रेम है।

मघा पीर—यह स्थान कराचीसे बहुत दूर १६ मील है। घोड़ागाडी, टांगा तथा मोटर जाती है। पूरा एक दिनका प्रवास है। पहाड़ीपर मघापीर की पुरानी दर्गाह है। नीचे एक सुंदर तालाब है। जिसमें सुंदर मछलियाँ और मगरमच्छ हैं। यहां से कुछ दूर पर गंधकके कारण गर्म जलके कुछ सोते हैं। जिनमें स्नान करनेसे चर्म रोग मिट जाते हैं। यह स्थान स्वास्थ्यप्रद समझा जाता है। यहाँ पर बहुतसे कोढ़ी आकर निवास करते हैं। कहते हैं यहाँके जल वायु और स्नानसे उनको लाभ पहुँचता है।

रहन सहन आदि—कराची शहर सिन्ध प्रान्तके अन्तर्गत है, इस लिए यहाँ की मुख्य भाषा सिंधी है। जो अरबीके समान टेढ़े और उलटे अक्षरोंमें लिखी और छापी जाती है। कुछ उत्साही मारवाड़ी

और सिंधी लोग राष्ट्रीय भाषा हिन्दीके प्रचारकी ओर भी ध्यान दे रहे हैं। मारवाड़ी विद्यालय-शिकारपुरी पंचायती स्कूल और पुस्तकालय-शारदा मंदिर-प्रियतम धर्मसभा-आर्यसमाज-सिन्धु-संस्कृत उत्तेजक मंडल-न्यू हाईस्कूल-इत्यादि संस्थाओं द्वारा हिन्दी प्रचारका कार्य हो रहा है।

जैन संस्थाएँ—यहाँ जैनोंकी संख्या सन्तोषजनक है। कोई ५००० से भी अधिक होंगे। सम्पन्न और धनाढ्य हैं। श्रीश्वेताम्बर स्थानकवासी जैन उपाश्रय हॉस्पीटल रोड पर है। तथा श्वेताम्बर-मूर्तिपूजक जैन मंदिर रणछोड़ लाइनमें है। उभयपक्ष के जैनों में परस्पर सम्पका बर्ताव होता है। सन् १९३४ में जब श्रीगुरुमहाराजका चतुर्मास था तब संवत्सरीके बाद दोनों सम्प्रदायों का सहसा-धर्मिक वात्सल्यका जेमनवार (सहभोज) हुआ था। अब भी उसी पद्धतिका अनुसरण किया जाता है। अन्य स्थानीय संघोंको यहांसे बोध पाठ लेना चाहिए। दोनों उपाश्रयोंमें जैनशाला स्थापित है। जिनमें प्रतिदिन प्रातःकाल एक घंटा बालक बालिकाओंको धार्मिक अभ्यास कराया जाता है। यही सामायिक प्रतिक्रमण-नवतत्व और छ कायाके स्तबक आदि। वे सब भी अपनी २ धारणाके अनुसार। परन्तु उच्च कोटीका अभ्यास करानेकी व्यवस्था नहीं है। यह समाजके नेताओंकी शिथिलता ही कही जा सकती है।

एक जैनसहायक मंडल भी है, जिसके द्वारा निर्बल स्थितिके जैनोंको यथाशक्य सहायता दी जाती है। कार्य तो अच्छा है परन्तु लोगोंको इस ओर दान करनेकी रुचि संतोषजनक नहीं है। यही कारण है कि इसका ध्रुवफंड अब तक लाखों पर न पहुँचकर हजारों पर अटका है।

सभ्यता—भारतीय सभ्यताका प्रभाव यहां बहुत कम देखा जाता है। लोगोंका रहन सहन विलासिता पूर्ण है। बड़े बड़े कुलीन सिन्धी-हिन्दुओंमें भी मांस भक्षणका प्रचार है। यहां की सब्जीमंडीके पीछे की ओर आधेसे अधिक हिस्सेमें मांसकी ही दुकानें हैं। मछलियाँ तों स्थान स्थान पर बिकती हैं। श्रीगुरुदेवके सद्बोधसे सन् १९३४ के चतुर्मास में **श्रीसिंधजीवदया मंडलीकी स्थापना** हुई थी। अब तक उसके द्वारा अहिंसाका प्रचार अधिकांश होता रहा है। उसके प्रमुख श्रीजमशेदजी नसरवानजी महेता हैं। सिंधी-मारवाडी गुजराती-कच्छी-मरहटे-पंजाबी-पारसी आदि जातिके लोग विशेष संख्यामें पाए जाते हैं। स्त्रियोंमें अवगुंठन पर्देका रिवाज नहीं है। सुन्दर पोशाक पहननेका यहां बहुत शौक है। सिन्धी लोगोंके धर्मस्थान **टिकाने** के नामसे पहचाने जाते हैं। हिन्दू धर्मके मंदिर बहुत कम हैं। आग़ाख़ानी मज़हबका यहां बहुत प्रचार हो रहा है। हज़ारों हिन्दू-स्त्री-पुरुष इनके कुचक्रमें पड़कर मुसलमान बन गए हैं। जिनको वहाँ **'खोजा'** कहते हैं। आगाखाँन का एक बड़ा भारी मठ है जिसमें उनकी ओरसे एक मुसलमान गुरु महन्त रहता है। ईसाई मिशनकी तरह इनका खूब प्रचार हो रहा है। लाखों रुपया हिन्दुओंही से लेकर उन्हींको मुसलमान बनानेमें ख़र्च किया जाता है। आग़ाख़ानी महन्तोंने कुछ ऐसे आकर्षण रक्खे हैं कि जिनमें भोले और ग़रीब ही नहीं बल्कि बड़े बड़े धनी और अमीर भी फँस जाते हैं। यहां भारतीय सभ्यता और धर्मके प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है। इसके विना सच्चे राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक भाव भी दृढतापूर्वक स्थिर नहीं रह सकते। इसका कराचीमें रहकर खूब ही अनुभव किया है।

यहाँ का भोलापन—यहाँ के लोगोंमें भोलापन अधिक पाया जाता है। आप समझ ही गए होंगे "भोला" पठितमूर्ख कहलाता है, लोग इस भोले पनके शिकार होते जा रहे हैं। यहां के लोगों-की ऐसी मोमकी नाक है कि ताव देकर जब जिधर को चाहो मोड़ लो। इन भोलोंको प्रलोभनमें देकर कोई भी बहका सकता है। यहां के लोग विलासिताके उत्तेजक साधन बहुधा पसंद करते हैं। उस ओर तो कुंजपुरेके कीचड की भाँति फिसल पडते हैं। यही कारण है कि **बाबा लेखराज** का मत दिन दुगना और रात चैागुना बढ़ता जा रहा है। यह लेखराज मालदार और सुंदर युवतिको ही अपनी चेली बनाता है उन्हें ब्रह्माकुमारीकी पदवी प्रदान करता है। इसके मतका नाम **'ओं मंडली'** है। बलात्कारपूर्वक व्यभिचारका अड्डा समझना चाहिए। ये ब्रह्माकुमारियाँ अपना शिकार स्वयं ढूँढने जाती हैं। किसी अपरिचित विद्वान् या धनिकके पास आकर एकान्त समय माँगती हैं और फुसलाकर अपने मतमें फँसा लेती हैं। दो श्वेतवस्त्रा ब्रह्माकुमारी श्रीमहाराजके पास भी आई थीं और एकान्त समयकी मांग की थी। परन्तु श्रीगुरुदेवने तो यही फर्माया कि जो कुछ पूछना है मैदान में सबके सामने निर्णय माँगो। एकान्त तो चोर-जार-प्रतारक आदि को पसंद होता है मुमुक्षुको नहीं। बस फिर क्या था वे दोनों दुम दबाकर भाग गईं। इस ओंमडलीमें हजारों लोग लुटते हैं और सम्मिलित होते जा रहे हैं। यह एक प्रकारसे नए ढंगका वाम मार्ग है। यहां भी मकारोंके दौर चलते हैं नए आगन्तुकको इस संस्थासे सतर्क रहना चाहिए। **इसका अधिक प्रचार हैदराबाद (सिंध) और कराची में ही है। अभी और प्रान्तोंमें नहीं फैल पाया है।**

कौरों भगत—यह एक सिंधी धनाढ्य गृहस्थ था, सिंधियोंकी धारणामें वह भक्तिकी प्रति मूर्ति समझा जाता था। सिंधी प्रजामें कौरों भगत की बडी प्रतिष्ठा थी। प्रत्येक टिकाने (गुरुद्वारे) में इसका चित्र पाया जाता है। हिन्दु और मुसलमान इसके परम भक्त थे। इसकी नृत्यकला अनुपमेय थी। इसका गायन और नाच लोगोंको मोहित कर देता था। नाचने-गानेका दम चौबीस चौबीस घंटे का था। अन्तमें जब झोली फैलाता था तब लक्ष्मी पुष्कलावर्त मेघके समान बरस पडती थी। पलक मारते हज़ारों रुपयोंका ढेर लग जाता था। लेकिन तुरंत ही इसके अन्तर से करुण-रसका स्रोत दान और त्यागके प्रवाहमें प्रवाहित हो जाता था, तब वहां के उपस्थित गरीब और दीन लोगोंमें सब रुपया बांट कर झोलीको ख़ाली कर देता था। परन्तु मांस और शराबके खाए पिए विना उसका यह रंग नहीं जमता था। सिंधी लोगोंकी निगाह में फिर भी वह भक्त ही था। सिंधी लोगोंमें मांस और शराबका अत्यधिक प्रचार है। सिंधी साधु भी मांस खाते हैं, मूलचंद सिंधी-साधुके लिए तो एक मेमना नित्यका बंधा हुआ था। सिंधी लोग जन्मते बालकको जन्मघुट्टीमें भी शराब देते हैं। कौरों भगत भी मदिरा पीकर ही अव्यभिचारिणी भक्तिका स्वांग भरना चाहता था, अंतमें फिर रुक जंकशन पर रेलगाडीमें बैठे हुए को दिन दहाड़े मुसल्मानोंने गोली मारकर उसकी जान मारदी। इतना अचरज अवश्य था कि इसने अपनी भक्तिके वेगमें फ़र्क़ न आने दिया, अतः यही कहते कहते प्राण छोड दिए, कि मैं अपने हत्यारोंकी झोलीमें क्षमा की भीख डालता हूं।

इसके आंसू भरे सैंधव गीत रेकार्डोंमें भी भरे पडे हैं। कौरों

भगत हमारी आँखोंसे ओझल हैं, परन्तु इसकी अमर कीर्तिका वितान सिंध और उससे बाहर कश्मीर तक चक्कर काट रहा है ।

टिकाना–सिंधमें धर्मस्थानको **टिकाना** कहते हैं । इसमें श्रीनानकदेव रचित ग्रंथसाहबकी स्थापना है । हिंदू देवताओंके फोटो भी टँगे रहते हैं । नवागंतुक यात्री के ठहरनेकी व्यवस्था यहीं होती है । गरीब लोगोंके लिए सत्रागार भी हैं । ये सिंधी मनकी सीधी लगनसे सेवा करते हैं । परन्तु उधरके साधुलोग इनको छलसे विकारके मार्ग पर डाल देते हैं जिसके कारण इनका अब तक मांस शराब नहीं छूटा । ये लोग त्यागी और संयमी साधुके अनन्य भक्त बन जाते हैं । श्रीमहाराज भी इन्हीं ठिकानों में ठहरते थे । सिंधी भी असीम संख्यामें एकत्र होकर उपदेश लाभ लेते थे । इनमें भक्ति रस बहुत बड़े प्रमाणमें हैं । साधुके त्याग और अनुभूत ज्ञानसाधना पर तो वे सहसा लट्टू हो जाते हैं ।

कराचीकी अन्यान्य संस्थाओंमें प्रवचन–शारदामंदिर-गुजरात विद्यालय-कारीया हाईस्कूल-मारवाड़ी विद्यालय-भाटियाभवन, हरिजन कोलोनी आदि कई स्थलों के निमंत्रण आनेपर श्रीमहाराज साहेबने वहाँ पधार कर अपने भावों को लोगोंतक पहुँचाकर उनपर आशासे अधिक प्रभाव डाला है । प्रमुख महानुभाव सदैव श्रीमहाराजके अनुगामी होकर रहा करते थे । सचमुच आपके द्वारा लोगोंमें खूब उत्तेजना फैलगई ।

जैन साहित्यका प्रचार–जहाँ जहाँ मार्गमें श्रीमहाराजने लोगोंको बोधदान प्रदान किया है, वहाँ वहाँ कराची जैनसंघने ५००० पुस्तकें अन्यान्य स्थलोंसे मँगवाकर घटित स्थानोंमें जिज्ञासुओंके कर

कमलों तक पहुँचाई हैं। प्रत्येक स्टेशनमास्टर और उनके साथिओं-ने जैन धर्मके साहित्यसे खूब लाभ उठाया है। यह सेवा श्रीमान् रावसाहेब पं० हरगोविंददासजी महानुभावके हाथोंसे सम्पन्न हुई है। आपके प्रयाससे ही पुस्तकें सब स्टेशनोंपर पहुंच सकी हैं।

आगामी चतुर्मासके संबंधमें—

कराची संघकी एकमतीय यह तीव्र इच्छा थी, कि सिंधप्रांत में मुनिराज बड़ी कठिनाईसे आ पाए हैं अतः दूसरा चतुर्मास होना आवश्यक है। इसकी पूर्तिके लिए जनरल मिटिंग की गई, और सर्वमतसे यह पास होगया, कि आगामी चतुर्मासके लिये सब भाई विनती करें। निदान रविवारके दिन व्याख्यानके अनन्तर जैन और जैनेतर सब नेताओंने एकत्र होकर बारी बारीसे अपने अपने विचार प्रगट करते हुए आगामी चतुर्मास कराचीमें ही करनेका महत्व सम-झाया। तथा बलपूर्वक अनुरोध किया। जैन श्रावकोंने तो खूब ही अनुनय विनती की।

परन्तु श्रीगुरुदेवने तो जैन संघको यही उत्तर प्रदान किया, कि आपके संघमें सन् १९३६ ई० से मतभेद चला आरहा है, आप-समें वैषम्य और खटपट चलती रहती है। अतः जहाँ तक आप लोग उस फूटफाँसको न निकाल डालेंगे तब तक, अगले चौमासके तार न हिलाए जायँ। जितना आवश्यक आगामी चतुर्मास है, उससे भी अधिक महत्वकी वस्तु आपसकी एकताको संपन्न करना है। पारस्परिक सम्प और संघटन प्राणभूत और मौलिक पदार्थ है। संघशक्तिके विना सब घोर अंधकार है। आपसी मन मुटाव और संघर्ष को मिटाकर एकता उत्पन्न करें, जिससे शासनपतिकी शोभा

बढ़ें। लोग आपका आदर्श लेकर आपके माहात्म्यको बढ़ायँगे। साथ ही अनेकान्त-तत्वको समझनेमें भी किसीको कठिनाई न पड़ेगी। जब आप लोग आपसकी खींचतान नहीं मिटा सकते, तब अगले चातुर्माससे क्या लाभ उठायँगे? आज आपके संघमें तीन संघपति हैं, यह स्थानकवासी समाजके लिए बड़ी ही लज्जाकी बात है। अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग! बांधवो! जहाँ कोई छोटा बड़ा न हो, बल्कि सब ही नेता बनना चाहते हों, सब ही महत्वाकांक्षा चाहते हों, वह वृंद-समाज-ग्राम-नगर-राष्ट्र अवसादको ही प्राप्त होता है। मुझे एक आचार्य और एक ही संघपति पसंद है। जैसा कि आपके यहाँ एक संघपति सन् १९३४ में पहले चतुर्मासके समय था। यदि आप एक संघपतिको रखकर, शेष सब वैमनस्य मिटादें तो दूसरे चातुर्मासकी आशा करें! अन्यथा नहीं।

यदि आपको इस भगीरथ प्रयत्नमें आज सफलताकी आशा न हो तो ता० २५-११-४५ तक की आपको अवधि दी जाती है। वरन् चतुर्मासके पूर्ण होनेपर पंजाबकी ओर विहार करनेके भाव हैं।

रावलपिंडी जैनसंघके उपप्रधान—उस समय कराची संघका प्रकरण समाप्त होनेपर बंबई के मार्ग से वायुयान (हवाई जहाज) द्वारा आए हुए श्रीमान् लाला फकीर चंदजी शाह रावलपिंडी जैनसंघके उपप्रधानने खड़े होकर यह विज्ञप्ति की कि भगवन्! पंजाबमें आपकी मेह की तरह बाट देख रहे हैं। मुझे रावलपिंडी जैन संघने प्रतिनिधिके रूपमें चतुर्मासकी विनतीके लिए भेजा है, अतः आगामी चतुर्मास रावलपिंडी का फर्माकर वहाँके संघको उपकृत करें।

श्रीकृपालुगुरुने फर्माया कि उपप्रधान साहेब! साधु को तो नहीं

चतुर्मास करना चाहिए, जहाँ के लोगोंको धार्मिक लाभ लेनेकी तीव्र इच्छा हो। जम्मुजैनसंघकी ओर से भी उनके प्रतिनिधि श्रीमान् लाला कस्तूरी लालजी यही संदेश लाए थे, तथा जोधपुर जैनसंघकी ओरका भी विनतीपत्र मिला है। जोधपुर तो यही उत्तर पहुँचवा दिया है कि इस वर्ष मारवाड़की ओर आनेके भाव नहीं हैं। अब जम्मू और रावलपिंडीकी विनतियां भंडार में स्थापन किए देता हूं, आपको यथासमय याद किया जायगा। सन्तोष जनक उत्तर सुनकर उन्हें अति प्रसन्नता हुई।

समय जात नहीं लागत बार—इस उक्तिके अनुसार चतुर्मासके दिन सुख शान्तिपूर्वक समाप्त हो गए। सत्संगियोंको तो चारमास का समय जाते हुए कुछ पता भी न चला कि दिन किस प्रकार बीते। वास्तव में श्रीमहाराज भी कराची चतुर्मास करके अत्यधिक प्रसन्न हुए हैं। उनके उदार अन्तर में यह भी समाया हुआ है कि यथा समय एकवार फिर चतुर्मास करनेका प्रयत्न किया जाय। उन्हे कराची संघके व्यवहारसे बड़ा सन्तोष है। संघ भी श्रीगुरुदेवकी सेवामें सदाकाल तत्पर रहा है। × × ×

पंजाबकी ओर

गुजरातनगर— ता० २१-११-४५

आज उपाश्रयका व्याख्यान-भवन मानव समुदायसे खचाखच भर गया है, तिल धरनेको जगह नहीं है। आबाल वृद्ध सब उपस्थित हुए हैं। श्रीकृपालुगुरु कमर बाँध कर व्याख्यान हॉलमें पधार गए हैं। इस तैयारी पर सब उदास हैं। उनकी आखोंसे निराशा झलक रही थी। वे पछताकर कह रहे थे, कि चारमास पलक मारते

व्यतीत हो गए। अब गुरुदेव रुकनेवाले नहीं हैं। सिंध जैसे अनार्य प्रदेशमें अब साधु दर्शन और उनके सत्संगको तरसा करेंगे। इतने दारुण परिषह सहकर कौन आयगा। देहरावासी भाईओंके मुखसे भी यही शब्द निकल रहे थे। यह लो महाराजश्रीने ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्का नाम कीर्तन और गुण कीर्तन-तत्व कीर्तन आरंभ किया। अन्तिमबोध देनेके पश्चात् मंगल पाठसे भवन ध्वनित हो उठा। तद-नन्तर श्रीजी उपाश्रयसे बाहर आगए। सचमुच साधु मुनिराज किससे मोह करते हैं वे सच्चे प्रेमी और बेप्रीत होते हैं। उभयपक्षके श्राव-कोंके जयनादसे आकाशमंडल गूँज उठा। अगणित जैनेतर भाईभी गीले नेत्रोंसे गद्गद हो रहे थे। जिनमें श्रीमान् हीरालाल गणात्राका नाम विशेष उत्कीर्तनीय है। यद्यपि बुधवारके कारण आप मौन थे फिर भी आदरणीय मूकसेवा करते चल रहे थे। जनसेवाके भावसे आपका मन अतीव आह्लादित था। नागर-समूह श्रावणके बादलोंकी तरह उमड़ा आ रहा था। सब लोग टेकरीके पास से होकर गुज-रात नगरके एक बड़े अहातेमें आ चौरस होकर बैठ गए।

श्रीमान् लाला चुनीलालजैन रावलपिंडीकी आज्ञानुसार वहाँ के प्रसिद्ध गायनाचार्य लाला मनोहरलालजैनने श्रीगुरुदेवकी स्तुतिमें बहुत से संगीत-गायन किए। जिसका जनतापर गहरा प्रभाव पड़ा। सब के मानस पटल गद्गदायमान एवं अश्रुपूर्ण मुख हो गए। इसके पश्चात् उक्त महोदयने रावसाहेब श्रीहरगोविंददासजी महानुभाव जे. रे. के चीफ कंट्रोलर साहबकी सेवाके उत्तम गुणोंका चित्रण भी सुंदर गायन में किया। उनकी भक्तिको सजीवकरके बता दिया, लोग सचमुच स्तब्धसे हो गए। उपस्थित संसारमें उनकी सेवाका बहुमान किया गया।

इसके पीछे जैनपंडित पदसे अलंकृत श्रीयुत पंडित खुशालदास बस्ता भाई ने खडे होकर श्रीगुरुराजकी विदाई पर आन्तर व्यथा प्रगट करते हुए कहा कि 'साधु नियमानुसार आज महाराजश्री विहार कर रहे हैं, परन्तु हमारा मन इनके वियोगसे पीडित होता है जिसे सहन करनेमें हम सब असक्त हैं। कई साधुसन्त तो चतुर्मास बीतनेपर एक रात्रि किसीके घरमें बिताकर फिर वहीं पधारजाते हैं। परन्तु आप तो अपने महाव्रत और गृहीत व्रतों पर अटल हैं, आप विहारके सिवा कुछ सुनना ही नहीं चाहते। आप चार मास रह चले, परन्तु हमें जितना लाभ लेना चाहिए था उतना न ले सके। यह हमारे दुर्भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता। यदि हमारी भावना सचेत एवं शुभ हो तो हम आपके ज्ञान-दर्शन-चरित्रके द्वारा पुनरपि लाभ उठा सकते हैं।

इसके पश्चात् श्रीगुरुदेवने अपने उत्तम प्रवचनमें अनेक बोध वचन कह कर इतना विशेष फ़र्माया कि मेरे गुरुदेव भी गुजराती ही थे, मैंने गुजराती भाइओंसे अध्यात्मिक लाभ भी पाया है। वास्तवमें गुजराती भाई बड़े समझदार और दूरदर्शी होते हैं। जितने व्यवहारकुशल होते हैं उतने ही धर्मतत्वकी सूक्ष्मताको भी समझते हैं। अधिक क्या कहा जाय समझ-बूझकी जीती जागती मूर्ति हैं। गुजराती भाइओंके सहवाससे अनेक नवीनताएँ जाननेको मिली हैं। मैं अधिक क्या कहूं। उनका उपकृत हूं। मेरा मन तो चाहता है कि आपसे कुछ और अध्ययन करूं, परन्तु ज्ञातपुत्र-महावीर भगवान्के निर्दिष्ट नियमानुसार मेरा विचरना ही उचित है। मैं कराची संघकी बड़ी क़दर करता हूं। यदि कालान्तरमें

कराची संघ एक मत होकर जब भी मुझे याद करेगा उनकी प्रार्थनाको स्वीकार करनेमें तनिक भी विलंब न होगा। पीछे भी मात्र एक पत्र पाते ही आता रहा हूं, तथा आगे भी यही बर्ताव रहेगा। कराची संघकी सेवाएँ चिर-स्मरणीय हैं। कराची संघका बखान करनेके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। वह सब प्रकारसे प्रशंसा पात्र हैं। मुँह देखी न कहकर जैसा देखा या अनुभूत किया है कहा है। कराची संघ अद्वितीय महनीय वस्तु है।

इन प्रवचनीय-मननीय शब्दोंके साथ साथ अपना प्रवचन समाप्त किया। उस समय बहुतसे भाईओंके नेत्रयुगल आर्द्र थे।

अन्तमें सबने मंगलपाठ सुना और यथास्थान चले गए। संघकी ओरसे साँटोंकी प्रभावना की गई। श्रीगुरु गुजरातनगर आकर प्रागजी भाईके मकानमें ठहरे। हरि भाई मंक्रोडी अमरशी भाई जैसे भक्त विचारके बांधवोंको अति प्रसन्नता हुई। रातको पब्लिक हॉलमें भाषण हुआ।

ड्रीगरोड–६।९ ता० २२-२३

शेठ लोडनमल सिंधी भाईने यहां अपना स्थान दिया, उनके बड़े भाई भागचंद और लखुमल हैं। श्रीजीकी सत्प्रेरणाओंसे आपने सकुटुंब माँस-शराब छोड दिया है। अपने चार फर्मोंके ६० नौकरोंसे भी छुड़ा दिया है। इस प्रकार क्षेत्र विशुद्धि आपने चतुर्मासके प्रारंभ में ही कर दी थी। इस बार अपने घरमें ही चार प्रवचनोंको श्रवण करनेका अवसर पाया। आपकी निस्स्वार्थ सेवा याद रहेगी। बड़े वेगसे आपकी रुचि शासनकी ओर गतिमान होती जा रही है। जैन मुनिओंमें आपकी निष्ठा और श्रद्धा है। आपने कई रेल्वे

कर्मचारी मित्रोंको भी सम्मिलित किया है। श्रीगुरुमें आपकी अनन्य श्रद्धा है। पसरूर और अमृतसरके जैन भाई मिलिटरी विभागमें कर्मचारी हैं। आपको भी सुयोग मिला। मलीरसे आकर कुँवरजी शेठ दोनों समय सपरिवार आते रहे हैं।

मलीर—३।१२ ता० २४ से तीन दिसंबर तक,

श्रीमान् शेठ कुंवरजी भाई की रामवाड़ीके प्रासादपृष्ठपर पधारे। कुंवरजी भाई का प्रतिरोम प्रसन्न था। आप कराची फ़िलोर मिलका सब काम १० दिनके लिए छोड़कर सब समय गुरुसेवामें ही व्यतीत करते थे। आपकी धर्म भावना उत्तरोत्तर जागृतीपर है। आपकी गृहदेवीजी धार्मिक-प्रवृत्तिओंमें आपके समान ही हैं। सदैव खड़े पैरसे आए महानुभावोंकी सेवामें तत्पर रहती हैं। श्रीमहाराज मात्र तीन दिन ही ठहरने वाले थे, परन्तु आपने भक्तिपूर्वक १० दिनका वाग्दान ले लिया।

ता० २५।११।४५ को सवेरे ही व्याख्यान आरंभ हुआ, कराचीका समुदाय अधिक आजानेके कारण बैठनेमें बड़ा संकोच होने लगा। संख्या बढती जा रही थी। जगह तंग पड़ गई। कई तो धूप में थे, तथा कई खड़े खड़े सुन रहे थे। फिर भी सब प्रसन्न होकर झूम रहे थे। उस समय श्रीगुरुदेवने फ़र्माया, कि—ओ कराचीके धनी मानी और प्रतिष्ठित भाईओ! मलीरका जल वायु अच्छा होनेके कारण कराचीके सब लोगों और सम्प्रदायोंने अपने अपने धर्मस्थान बनवाए हैं। परन्तु भारतमें तीसरे नंबर पर परिगणित होनेवाली अपनी जैन समाजकी न कोई धर्मसंस्था है न धर्मशाला। यहाँ तक की कोई

झोंपड़ी तक नहीं। यह कितनी लज्जाकी बात है। यदि आपका आज कोई विशाल क्षेत्र होता तो आपको अपराधियोंकी भाँति धूपमें न खड़ा होना पड़ता। माताओं और बालकोंको कितना कष्ट सहना पड़ता है। कितनी दयनीय दशा है। आपका व्यावहारिक दृष्टिसे कितना बड़ा नाक है, तब आपको अपनी मर्यादाका भी ध्यान आना चाहिए। इस दुर्घटनाने आपकी आँखें खोलदी होंगी। आप सन् १९३४ ई. से ज़मीनके विषयमें बातें बनाते आ रहे हैं। उससमय तो आनों गज़में मिलती थी, पर अब तो रुपयों गज़पर नोंबत है। १२ वर्ष हो गए आपको अब तक ज़मीन ही नही मिली। जब कि आपके देखते देखते कई धार्मिक-संस्थाओंके भवन आपके सामने खड़े हो गए हैं। १२ वर्ष में तो कुरड़ीके भाग्य भी जग उठते हैं आपकी उदयावलीको क्या हो गया है। सच तो यह है कि आपको धार्मिक प्रवृत्ति-ओंमें पुष्कल रूपमें कुछ देना··········लगता है।

इत्यादि प्रेरणाएँ मिलनेपर लोगोंकी आँखें नीची हो गईं। सब मूक थे, किसीको बोलनेका साहस न होता था। धनाढ्य आसामियोंके पेटमें खलबली मचगई। परन्तु इन वरद-प्रेरणाओंको सुनकर हमारे नरपुंगव दानवीर शेठ कुँवरजी भाई को उदारता एवं सहानुभूतिका आवेश आ गया। आपने उसी समय उठकर भाई लोडनमल सिंघी से सम्मति मिलाई और कहा कि मेरे और तुम्हारे पास बहुत सी ज़मीन है, आओ हम-तुम मिल कर ३००० गज़ ज़मीन सवा-रुपया १।) प्रति गजके भावसे दे दें, दानसे घाटा नहीं आता। लोडनमलने हाथ जोड कर तुरंत स्वीकृति देकर शेठ कुँवरजी भाईके प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

निदान श्रीमान् कुंवरजी भाई ने शेठ लोडनमलजीको अपनी बग़लमें खड़ा करके यह घोषणा की, कि मैं अपनी ज़मीनमें से १५०० पंद्रहसौ गज १।) सवा रुपया प्रतिगज़के हिसाबसे (यद्यपि आज १०) ग़जका भाव है) देता हूं। और उतनी ही ये देते हैं। साथ ही ५०१) मेरे तथा ५००) मेरे दोनों छोटे भाईओंका दान भी स्वीकार करें। लोडनमलने भी २००) दान दिया। और जैन संघ कराचीसे हाथ जोड़ कर कहा कि अब मलीरमें जैन उपाश्रय शीघ्र तैयार करें। बस फिर क्या था लोगोंमें सहसा क्रान्तिके बादल छा गए। साधारण स्थितिके लोगोंने अपनी अपनी जेबोंसे रुपया निकाल कर मलीर उपाश्रयके लिए बरसाना आरंभ कर दिया। क्षण मात्रमें हज़ारों रुपयोंकी बाढ़ आगई।

इस महान् उदारतासे रंजित होकर सकल संघ का अन्तरात्मा खिल उठा। प्रमुखश्रीने श्रीमान् शेठ कुंवरजी भाई और उनके साथीको कोटिशः धन्यवाद दिया, श्रीगुरुवर्यजी ने फ़र्माया, कि आपको धन और धरती दोनों मिल गईं, अतः अब तो प्रमाद न करिएगा, यदि अबकी बार अप्रमत्त न रहे तो बाज़ी हाथ न आयगी।

सन्ध्यामें लाला विश्वंभरदास एंड कम्पनीके कार्यकर्ताने ११०१) दान किया, लाला जक्कीमल-एंड-सन्स देहलीके अधिपति ला० भिक्खी-मल ने १००१) प्रदान किया। बातकी बातमें १५ कमरोंके वाग्दान मिले। श्रीस्थानकवासी जैन संघ को यह सुनहरी अवसर श्रीगुरुकृपासे ही हाथ लगा, और इसके सहकारी कारण शेठ श्रीमान् कुंवरजी भाई हैं।

अब तो श्रीकुंवरजी भक्तिरसमें सराबोर रहने लगे। श्रीगुरुदेवकी आहार ग्रहण करनेकी सूचना पाकर ही आप अन्न-पानी ग्रहण करते थे,

आपका साधु-सेवा व्रत अद्वितीय एवं सराहनीय है ऐसी भव्यात्माएं बहुत कम होती हैं । आप इस समय धर्मदलालीकी अपेक्षा कृष्णमहाराजके समान अग्रगामी होते जा रहे हैं ।

आपकी एक यह भी प्रतिज्ञा है कि रामवाडीमें शाकाहारी को ही किराएदार रक्खा जाए। यही कारण है कि आपके सब किराएदार निरामिषभोजी ही हैं ।

आपके दलाल सिंधीभाई जेठानंदने भी मांस-मदिरा त्याग कर दिया । सिगरेट बीड़ी तक भी छोड़ दी । यह जेठानन्द २४ घंटे विभावमें मस्त रहा करता था, मात्र ३ दिनके सत्संगसे सब कुटेव और दुर्व्यसनों से मुक्त हो गया । अपने माता पिताओंको भी पत्र द्वारा सूचना की कि मैंने सब कुव्यसन छोड दिए हैं, आप भी सहसा त्याग दें, ताकि मेरा और आपका अविच्छिन्न संबंध बना रहे ।

श्रीयुत शेठ कुंवरजी भाई अपने सब परिवारके साथ श्रीमहाराजको दो वार उकामल गोटमें धर्म-प्रचारार्थ ले गए, वहाँके श्रीमान् तारुमल मुखीकी प्रेरणासे अहिंसा कार्यका अति उत्तम परिणाम आया । इस छोटेसे ग्राममें कई सिंधियोंने अपनी शुद्धि करली । जो लोग यह कथन करनेमें संलग्न थे, कि मछली दो पैसे सेर बिकनी चाहिए, उन लोगोंने भी अपने हिंसक विचारों को समूल धो डाला,

श्रीकुंवरजी भाईको अब यही लगन है कि किसी प्रकार श्रीमहाराजका चतुर्मास मलीरमें हो, और मेरी रामवाडी पवित्र हो । सब सिंधी लोगोंमें प्रचार कराऊँ । उत्तरमें श्रीजीने यही फर्माया कि कुंवरजी भाई ! आपकी भावनाको उत्तम फल लगेंगे, और वह खूब

फले फूलेगी। आप अपने समान उत्तम विचार अपने समस्त परिवार और जातिमें फैलानेमें सिद्ध हस्त होंगे।

ता० १-१२-४५ को कराची जैन संघ दर्शनार्थ आया, दोनों समय प्रवचन हुआ। इसी प्रसंगमें श्रीमान् तारुमल उकामल गोठ-वाले मुखी सिंधी-भाईकी प्रेरणासे गुरुदेवने तीन दिन और रहना स्वीकार किया। इस भाँति आज सिंध भूमिमें अनार्य लोग धर्म जिज्ञासु बनते जा रहे हैं। यदि और मुनिराज पारस्परिक झगड़ों से निवृत्ति पा कर सिंधमें आकर विचरें तो लाखों उदयन प्रगट किए जा सकते हैं। क्योंकि ये प्रकृतिके सरल एवं श्रद्धालु होते हैं थोड़ेसे परिश्रमसे परिवर्तन हो सकता है।

पीपली—११।२३ ता० ४-१२-४५

आहार पानीसे निश्चिन्त होकर विहार किया, शेठ कुँवर जी और आपका समस्त गृह-परिवार साथ था, तीन मील तक पैदल ही चले, अन्तमें भाई लोडनमल सिंधी अपनी लारी ले आए, और सब परिवार-बाल बच्चोंको बिठाकर पीपली स्टेशन पहुँचा आए। दिन भर सेठ महोदय तथा श्रीरुक्मिणी बहिन आदिने श्रीमहाराजके सत्संगसे लाभ लिया। और रातके ११ बजे उक्त लारीके द्वारा अपने घर लौट आए, श्री गुरुदेवकी भक्तिके रंगमें आपका प्रत्येक रोम रंग हुआ है। यही हाल सिंधी भाई लोडनमलका भी था।

दाबेजी—१२।३५ ता० ५-१२-४५

रनपिटानी—१२।४७ ता० ६-१२-४५

झुंगशाही—८।५५ ता० ७।८-१२-४५

बराड़ाबाद–१०।६५ ता० ९-१२-४५

ज़हीमपीर–१०।७५ ता० १०।११-१२-४५

इस गाँवके बाहर श्रीगुरुदेवके बाएँ पैरमें गट्टेके पास खजूर का काँटा चुभ गया, कांटा लगते ही पैर सूज गया, चलना कठिन हो गया, फिर भी साहससे काम लेकर धर्मशाला तक आ गए। यहाँ के डाक्टर श्रीहरिसिंहजीके उपचारसे कुछ आराम हुआ, फिर भी काँटा तों मानों लाजके कारण बाहर न आया, अब तक वह श्रीगुरुके पादपद्मकी शरण में ही है।

स्कूल मास्टरका आमंत्रण आनेपर स्कूलमें उपदेश हुआ, फलस्वरूप मास्टर महाशयकी माता और उनकी धर्मपत्नीने मांस खाना तरक कर दिया, तथा स्कूलके बड़े बड़े २२ लड़के-लड़कियोंने भी मांस त्यागकी प्रतिज्ञा ली, और सबने हस्ताक्षर भी किए। उस समय सब विद्यार्थी प्रसन्न थे।

इस इलाक़ेमें झरियाकी भाँति कोयलेकी खान भी हैं परन्तु अच्छे ढंगका उत्तम कोयला नहीं है। मेट-गंजनी मट्टी (मुलतानी मट्टी) भी खूब निकलती है। सीमेंटके काममें आने वाला **चिरोली** नामका उपलखंड तो धरतीके पेटमें पर्याप्त भरा पड़ा है। बाहर भी चाँदीकी तरह चमकता पाया जाता है। लाखों मन का व्यवसाय होता है।

श्री मगनलाल गाँधी और भाई चतुर्दासजी दर्शनार्थ आए। उस समय बालकोंमें जो प्रवचन किया था, उसका सार इस प्रकार है।

बालमित्रो ! बालक प्रभुका प्रतिबिंब है, मानव जीवन सर्वोत्तम जीवन है, इस परमोत्कृष्ट जीवनमें बचपन परम सत्व है। परम

सत्वको पानेवाले शिशुओ ! तुम धन्य-भाग्यवान् हो । पुनः विद्यार्थी जीवन दशामें हो, इसीलिए पूर्ण भाग्यशाली हो, इन धन्य क्षणोंमें जीवनका पाथेय (तोशा) भरपूर कर लें, यह असली धन और वास्तविक पूँजी है ।

जीवनका पाथेय जीवनका पाथेय प्रभु प्राप्तिका उपाय है । असलमें प्रभुको पानेके लिए=प्रभुमय बननेके लिए नौ के अंक के समान बन जाएँ । आपने शून्यके साथ दश अंक तक गिनना सीखा है, इसमें नौ का अंक सबसे ऊपर है । क्योंकी इसे चाहे जितनी संख्यासे गुणित करें परन्तु गुण=फलका योग (जोड़) करनेपर यही (९) संख्या आएगी । वह अपने स्थानको कभी नहीं गवाँता । इसी प्रकार से संसारमें सुख दुःख मान और अपमान हार और जीतकी हवाएँ चलें, तब नौके अंकके समान अडोल रहना ।

नौके अंक जैसे कैसे बन सकें—आठ और नौके आकारको तो देखें; मात्र एक रेखा ही नवांक में अधिक है; परन्तु आठको गुणित करके गुणित फलका योग करने पर उसमें बात बातमें धूप छायां होती है । अन्तमें वह उदास और शून्य के समीप होकर बैठ जाता है । अब आप ही बताएँ मध्यरेखाकी कितनी महिमा है? यह रेखा अन्य कुछ न कह कर प्रभुभावकी सूचना करती है । भला प्रभुको क्या पसंद है?

प्रभुको सचाई पसंद है, अतः सच बोला करें । प्रभु सब जगह विराजमान है, इसलिये किसी की छोटी-मोटी वस्तु भी न चुराओ । चोरी किए विना यदि तुम चाहो तो पास हो सकोगे । प्रभु सबमें है, अतः किसीको मत ठगो, किसी को न मारो, किसी पर अन्याय न करो, निरपराधको न सताओ, कायरता न दिखाओ, किसीका

मज़ाक न करो, वीरतापूर्ण जीवन बनाओ । प्रभु को पवित्रता पसंद है, अतः मन पवित्र रक्खो, शरीर और आँगन साफ़ रक्खो । प्रभुको मीठा बोलना अच्छा लगता है, अतः मिष्टभाषी बनकर सबका मान करो, माता पिता और गुरुकी तथा अपांगकी सेवा करो । प्रभु गाली गिलौजसे दूर भागता है, अतः किसीको कभी गाली न दो, भीत पर अपशब्द न लिखो, यदि कोई ऐसा कर रहा हो तो उसे समझाकर उन गालियोंको मिटादो । प्यारे शिशु विद्यार्थियो ! इस महँगे मालको अपने कोमल एवं स्वच्छ हृदयमें संग्रह कर करके रक्खो ।

तुम्हारा उत्तरदायित्व–

तुम कुटुंबके दीपक हो, ग्रामके नेता हो, राष्ट्रके रत्न हो, और विश्वकी विभूति हो । तुम्हारा निर्दोष जीवन देवताओंमें भी ईर्षा उत्पन्न करता है । अपने चरित्रमें कदाचार न आने दो, धन्य जीवनसे जीवित रहकर अमर बनो और अमृतका विस्तार कर दो ।

हम बालक हैं सदा प्रभुके, सच्चे बालक बने चलेंगे,
बाल्यभावमें नित जीएँगे, जाएँ तब यह लिए चलेंगे ।
विश्व-व्योममें फैल गया है, प्रति पल यह प्यारा संगीत,
संवादी स्वरका साधन कर, मजा खूब हम लूट चलेंगे ॥

श्रीमहाराजके इन वाक्योंपर सिन्धी-विद्यार्थिओं में बड़ा उल्लास और उत्साह उत्पन्न हुआ । उन्होंने श्रीगुरुदेवकी स्तुतिमें एक सुरीला गीत सिंधीभाषा में गाकर सुनाया ।

मेटींग–१२।८७ ता० १२-१२-४५
मोलारी–१२।९९ ता० १३-१२-४५

यहाँ पुराने समयसे परिशुष्क और बहुत चौडा महरानसिंधु अपना रेगिस्तानका कोष बखेरे पड़ा हैं। स्टेशन के सामने हवाई अड्डा भी है। चूनेकी कई खाने हैं। चिरोली तो ठोकरोंमें रुल्ता है।

हैदराबाद–१२।१११ ता० १४-से२९ तक,

सिंधुकी भाँति हैदराबाद संघ उमंगोंके द्वारा भरपूर होकर कोटरी तक बढ़ा चला आया, आबाल-वृद्ध-महिला संघ आदि सब थे। गीदू बंदर पर तो कई सिंधी और गुजराती मोची आदि सब पुष्कल प्रमाणमें आए थे। हँसते मुखसे वंदना करते थे। बड़े समारोहसे नगर प्रवेश हुआ। जैनेतर बंधुओंमें अचरजकी लहरें फैली हुई थीं। मुनिवेशको तथा पादविहारकी बात को सुनकर दंग रह जाते थे। श्री-जेठानंद शेठ जो कि मलीरसे ज़हीमपीर तक साथ थे, आज वे भी हैदराबादसे अपने इष्ट मित्रों सहित आए, और अपने साले भाई से प्रेरणापूर्वक मांस त्याग मार्गमें ही करा दिया। संघने गुजराती हाई-स्कूलमें ठहरनेकी व्यवस्था की। दोनों समय व्याख्यान होता था। महिलाओंके बैठनेकी उचित व्यवस्था थी। श्रोताओंमें धर्मभावका वेग बढ़ा हुआ था। सिन्धी भाई भी आते थे। दर्शनार्थी भाई यहां आकर सब प्रकारसे सन्तोष प्राप्त करते थे, किसी प्रकारकी शिकायत न थी। छोटासा संघ दिलकी पूरी लगन और संगठनसे आगे बढ़ रहा था।

ता० १५।१२।४५ को सवेरेकी गाडीसे मलीर-कराचीसे श्रीमान् शेठ कुंवरजी भाई सपरिवार पधारे, शेठ जेठानन्द सिंधीने आपका अभिनन्दन किया। साथ ही और बहुतसे भाई भी आए थे। दो दिन ठहर कर सत्संग लाभ लिया। ता० १६।१२।४५ को बाबू 'अयथ-

गवान्' अपने समस्त परिवारके साथ आए, तथा उनके साथ २१ दिनका उपोषित व्रत रखनेवाले ला० भीक्खीमल देहलवी भी थे। नवलचंद भाई जहाज़के दलाल भी आए। आगन्तुक भाईओंने स्थानीयसंघका उत्साह बढ़ाकर चार चाँद लगा दिए, जब कि जोधपुरसे जे. रेल्वेके बहुत बड़े कर्मचारी श्रीनथमलजी चामड़ महानुभाव भी उपस्थित थे।

सदर बाज़ारके सिंधी शेठ श्रीमान् खुशहालदास तो व्याख्यान सुनकर अन्तरसे गदगदायमान हो गए। इन्हें उत्साह एवं भक्तिरसने घेर लिया। इस नवयुवकने एक दिन प्रार्थना की, कि मेरी भक्तिका रंग आपके श्रीचरणोंकी कृपा द्वारा मजीठी रंगसे भी अधिक गहरा चढ़ गया है, अतः भगवन्! आप मेरे जन्मभूमिके बूबक गाँवमें पधारें, और मेरे मातापिता भाई तथा इष्ट मित्र और नगर-निवासियोंको उपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग पर लगाएँ, तब मैं भी उन ही के साथ माँस त्याग करूंगा। भगवन्! वहाँ एक "मँचुर" नामक झील २५ मालकी परिधिमें है, जहाँ अगणित पक्षी रहते हैं। हजारों लोग शिकार करने आते हैं। हज़ारों पक्षी रोज़ मौतके घाट उतर जाते हैं। वहाँ पर आपके सद्बोधकी बड़ी ही आवश्यकता है। आपके प्रचारमें यथा शक्य तन-मन-धनसे सहायता करूंगा। स्वयं-पूर्ण सहयोग दूंगा, औरोंकोभी इस ओर लगाऊंगा। यदि मेरे कारण मेरे भाईओंने आपके सदुपदेशका लाभ लिया तो मैं अपनेको भाग्यशाली समझूंगा। मुझे ऐसी धर्म दलालीसे असीम लाभ पानेकी बड़ी उत्कण्ठा है। आशा है आप मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करके मेरा उत्साह बढ़ानेकी कृपा करेंगे।

श्रीगुरुदेवने उसके उत्साहको बढाते हुए उसकी विनतीका अनुमोदन किया, वाग्दान देते हुए फ़र्माया,कि यथा समय अवसर देखा जायगा। उसे इस कृपा और आश्वासनसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उसे जितना प्रसन्न देखा गया था, उसका उल्लेख यह लेखनी कर नहीं सकती। वास्तवमें इसे इस युग का चित्त-प्रधान कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। उस समय भक्ति और प्रेमका सोता बनकर उसके नयन युगलसे प्रवाहित हो चला था। यह अपने इष्ट मित्रोंको भी प्रेरित करता था, वे इसके साथ आकर ध्यानसे उपदेश सुनते थे। आपने हज़ारों रुपैयों का हर्ज होनेकी पर्वाह न करके धर्मदलालीमें अग्रसर होना आरंभ किया। आपकी दुकान पर नित्यप्रति हज़ारों रुपयों की आय है, तथापि गुरुसेवामें लीन होकर उसे गौण मानने लगा।

दलाल जेठानन्दने भी श्रीमहाराजके धर्मप्रचारके आंदोलनमें बड़ा योग दिया। प्रतिदिन अपने नवीन नवीन इष्ट बांधवोंको लाकर उन्हें श्रीचरणोंमें शुद्ध करा देता था।

दलाल जेठानंद शेठकी प्रार्थना-एक दिन शेठ जेठानन्दने व्याख्यानकी समाप्ति पर निवेदन किया कि सिंधके हिन्दुलोग ९९ प्रतिशत मांसाहारी हैं अतः इस देशको आपकी बडी आवश्यकता है, यही कारण है कि हम आपको सिन्ध के कोने कोनेमें घुमाकर लोगोंकी जड़ता-भीरुता, हिंसकता हटाया चाहते हैं, इसलिए भगवन्! मैं भी आपके साथ दो मास तक काम धंधा और घर द्वार छोड़ कर आपके साथ विचरनेकी प्रतिज्ञा लेता हूं, यहाँ से सक्खर तक आपको पहुँचाने चलूंगा, साथ ही सिन्धी लोगों में दुभाषियेकी आवश्य-

कताकी पूर्ति मी करूंगा। अपने सब सिन्धी भाईओंको आपके बोध-वचनोंका अमृतपान कराऊंगा। इस उदारचेताकी भीष्म प्रतिज्ञाको सुनकर सब लोग दंग रह गए। सभासदोंको हर्षका पार न रहा। शेठ जेठानन्दकी मुक्त कंठसे प्रशंसा होने लगी। पैसा-टका-अन्न-पानीका दान तो सब लोग करते हैं, किन्तु कौटुंबिक जालसे निकल-कर समयका भोगदेना कठिनतम कार्य है। समयकी कुर्बानी करने-वाले जन विरले ही होते हैं। इसी प्रसंगमें श्रीकस्तूरचंद गांधीने भी एकमास के लिए अपनी सेवाएँ अर्पण कीं। वास्तवमें गांधी की सेवा मौलिक थीं। आप अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगोंमें धर्म भावको ठोंस ठोंस कर भर देते हैं। लोगोंको अनायास ऐसे प्रसंगके पानेका अवसर आने पर उन्हें बड़ा ही प्रोत्साहन मिलता था। हाथ आए अवसर को पाकर लोग अपनेको कृतार्थ हुआ मानते थे। इस प्रकार १५ दिनमें श्रीमहाराजने कई भव्यात्माओंका सुधार किया है।

एक दिन कराचीसे ४०।४५ श्रावकोंका एक डेप्युटेशन आया। व्याख्यानके पीछे श्रीभूधरभाई संघपति, देवचंद नेणशी संघवी-संघपति, तथा शंभुलाल-कल्याणजी संघपति, आदि, सब भाइओंने आगामी-द्वितीय चतुर्मास कराचीमें व्यतीत करनेके लिए साग्रह विनती की। अतीव अनुरोध और उत्साहको देखकर श्रीगुरुदेवने फर्माया कि 'मेरे गुरुदेव' भी गुजराती थे, और मुझे गुजराती साहित्यसे बड़ा लाभ पहुँचा है, मैं प्रतिपल गुजराती भाइओंका उपकृत रहता हूं। मुझे कराचीमें दूसरा चतुर्मास बिताने के लिए कब इंकार है परन्तु जिस प्रकार सन् १९३४ के चातुर्मासिक अवसर पर आपके संघ का एक ही संघपति था। सन् १९३५ के बाद कुछ आपसके

मतभेदोंने आपके संघमें तीन संघपति बना दिए। बस मुझे यह व्यवहार भला प्रतीत नहीं होता। संघका संघपति एक ही हुआ करता है। यदि सब संघर्ष मिट जाय, और एक ही संघपति सर्वसम्मतसे क़ायम हो जाय तो मुझे कोई इंकार नहीं। इस भागीरथी कार्यको सम्पन्न करनेके लिए एक मास तक आपकी प्रतीक्षा भी कर सकता हूं। चतुर्मास करना जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक संघमें एकता का होना परम-आवश्यक है। संघका आशय चतुर्विध-संघकी एकतासे है संघमें अनैक्यता नामको भी न रहनी चाहिए। श्रीमहाराजके यथार्थ एवं सन्तोष जनक उत्तर को पाकर सबको मौन होना पड़ा। सचमुच संघमें इस एकताके सद्गुणकी जितनी आवश्यकता है, पचीसवीं शताब्दीका श्रावक इससे उतना ही दूर भागता है। शासन देवसे प्रार्थना है, की इस समाजमें एकताके गुणको अपनाने की सन्मति उत्पन्न हो।

हटड़ी—७।११८ ता० ३०-१२-४५

सैंकडों नरनारियोंका समुदाय '**जैन धर्मकी जय**' '**श्रीज्ञातपुत्र-महावीर भगवान् की जय**' के नादसे हैदराबादके बाज़ारोंको ध्वनित कर रहा है। श्रीमहाराजने पंजाबकी ओर विहार कर दिया है। फुलहरी नदी पर सबने मंगलपाठ सुना और फिर भी हटड़ी तक बहुतसे भाई आए। कस्तूरचंद गाँधी और जेठानन्द मुख्य स्वयं-सेवक थे।

रद्दी और जीर्ण शीर्ण टिकानेमें ठहरे, हुरोंके उपद्रवसे लोग तंग आकर भाग गए थे। इतनी बड़ी बस्तीमें मुसल्मानोंके अतिरिक्त

हिन्दुओंके मात्र चार आदमी बसते थे। ग्रामके तीन तरफ़ बड़ा भयानक-सघन वन है। आततायी लोगोंके छुपनेको इसमें अनुकूल साधन हैं। वे ज़मीनमें शृगालोंके समान बिल बनाकर भी छुपे रहते हैं। इन्हींके आतंकसे हिन्दू प्रजा भयभीत है। रातको सत्संगव्याख्यानमें चारों भाई सम्मिलित हुए।

मटियारी–९।१२७ ता० ३१-१-४५

लाला पेशुमलकी कॉटन फैक्टरीमें ठहरे। शेठ धनी है, भक्ति भाव वाला है, प्रकृतिका नम्र और सरल भी है, रात्रिमें यन्त्रालयके कार्यकर्ताओं समेत व्याख्यान भी सुना; नागरिक लोग भी आए, कई लोगोंने आमिष त्याग किया परन्तु शेठ और उसके पुत्र पर प्रभाव न पड़ा। बस यही कहते सुना गया, कि भगवन्! ऐसा आशीर्वाद दें जिससे यह व्यसन छूटे। महाराजश्रीने फ़र्माया कि भाई! साहस करो, 'विना उद्योगके सोते हुए बैलके मुँह में तृण थोड़े ही आजाता है।'

खेबर–८।१३५ ता० १-१-४६

टिकानेमें ठहरे, स्थान विशाल है, गाँव वाले सब आए, उपदेश सुना, कइयोंने माँस मदिरा छोडा। टिकानेके साधु प्रेमदासने भी माँस खाना छोड दिया, सिंधमें सिंधी साधु माँस भी गटक जाते हैं, कोई परहेज़ नहीं, मलीरवाला मूलचंद तो साधु होकर एक मेमने की भेंट नित्यप्रति लेता था।

हाला–१२।१४७ ता० २-३-४

ओसवाल जैनोंके यहाँ ३० घर हैं, सब मूर्तिपूजक जैन हैं। आर्थिक अवस्थामें सबके सब अच्छे हैं। परन्तु ये बड़े अंध-विश्वासी

हैं, तारेका अस्तप्रकरण हो तो साधुओंको ग्राम में नहीं आने देते, न घरमें घुसने देते हैं, आहार पानीकी तो बात ही कौन पूछता है। अपने मेहमानोंको उस समय भोजन के लिए आमन्त्रित तक नहीं करते। इस समय भी तारेका अस्त था, अतः नगरमें लानेकी प्रार्थना नहीं की। सन् १९३४ मेंभी ऐसा ही प्रकरण हो गयाथा, उस समय तो नवाबशाहमें आकर स्पष्ट ना ही कर दी थी कि, इस समय तारेका अस्त है अतः हाला न आइएगा। हम लोग तारेके अस्तमें साधुओंको भी नहीं प्रविष्ट होने देते। इस बार तो महाराजश्रीने बहुत समझाया कि भाइओ! तारेका अस्त और साधुओंका क्या मेल! वे आकाशमें और लोग भूमिपर। इसमें कोई हानि न होगी, किन्तु उनके गले यह बात ही न उतर सकी। वे तो अपनी हठ पर ही अड़े रहे। अन्तमें नगरके बाहर एक कॉटनफैक्टरीमें डेरा किया। अगले दिन हैदराबाद संघकी एक भरी लॉरी आई। जैन और जैनेतर सब ही थे। आज संघका सहधर्मि-वात्सल्य (प्रीतिभोज) हुआ। शेठ जेठानंद की प्रेरणा से उसके ससुर हीरानंद शेठ (सिंधी) के घर ४० आदमियोंके ठहरनेका प्रबंध हो गया। शेठ हीरानन्दने व्याख्यान कराया। टिकाना श्रोताओंसे भर गया। तिल धरनेको भी ठौर न थी। प्रवचन के बाद बहुतसे सिंधी पंडितोंने माँस छोड़ा, तथा और कई लोगोंने भी त्याग किया। जैन श्रोता भी कुछ संख्यामें आए, परन्तु उनका अन्तरात्मा खुश न था। कारण ये तारेके भक्त भी थे। परन्तु सिंधी प्रजाके लिए यह बिल्कुल नई बात थी। सब ने बडी श्रद्धासे लाभ लिया, आमिष त्याग किया, परन्तु अपने भाइओंमें से किसीने भांग पीना भी न छोडा। ये जैन लोग विजिया पीनेमें अतिकार हैं।

न्यू सैदाबाद–११।१५८ ता० ५-१-४६

शेठ बालचंद ज़मीनदारने प्रेमसे अपनी बैठक ठहरनेको दी, रात्रिमें सबने व्याख्यान सुना। कई सिन्धियोंने मांस शराब छोड़ दिया। पर ये शराबी शेठ न पसीजे। कस्तूरचंद गाँधीकी व्यवस्था अति उत्तम थी। शेठ जेठानंदने भी सिन्धीभाषामें अभक्ष्य त्यागकी अपील की थी। उनका परिणाम सन्तोषजनक रहा।

सकरन्द–१४।१७२ ता० ६-१-४६

सरे बाज़ार प्रवचन हुआ, हज़ारों लोग सुनकर कृतार्थ हुए। रातमें भी अच्छी उपस्थिति थी। १२ सिंधियोंने अभक्ष्य त्याग किया। गाँधीजी और जेठानंदने लोगोंकी खूब सेवा की।

काज़ीअहमद–१६।१८८ ता० ७-१-४६

ताल्लुका सकरंद (जि० नवाबशाह) का है, ग्राम छोटा है. हिन्दुओंकी संख्या अच्छी है। टिकाना रातमें जिज्ञासुओंसे भर गया। लोगोंने खूब श्रद्धासे आमिषत्याग किया। लेखुमलने अपने मकान में स्थान दिया। दानुमल, पेशुमल तो गांधीके साथ पेशवाईमें आए, तब जेठानंद अतीव प्रसन्न होकर बोले, कि गांधी! धार्मिक विचारोंको जागृत करनेमें कमाल हासिल कर चुका है। यहां ग्राम छोटा था। परंतु भक्तिका क्षेत्र विशाल था।

दौलतपुर सफ़रन–१६।२०४ ता० ८-१-४६

मार्गमें कई सशस्त्र आततायी घुड़ सवार मिले, परन्तु गुरुदेवके उग्रप्रतापकी छायामें दबकर किसीने कुछ न कहा। यहाँ तक ज़िला नवाबशाह है। इधरके लोग बड़े माँसखोर हैं। कस्तूरचंद गांधी

और जेठानंदने सिंधी भाषामें व्याख्यानके पश्चात् बहुत कुछ प्रेरणा की परन्तु मात्र एक एशीराम-नानुमलने भगीरथ प्रयत्न किया । त्यागकी गाथा में आपकी ही सराहनीयता थी ।

सेवन–१३।२१७ ता० ९-१-४६

किसी समय यहां कलोरा बादशाहका राज्य था, तब यह **सेवन** राजधानी समझी जाती थी। यहाँ अबसे ४०० वर्ष पहले मीर लोगोंका समय था। मीरलोग प्रायः अनपढ-हुक्केबाज़-भंगड़-व्यभिचारी और नशेबाज़से थे, निरा जंगलीपन था। उस समय इनके आतंकरूपी कुंडमें हिन्दू अपनी मर्यादा-प्रतिष्ठा की आहुतिं दे चुके थे। हिन्दूनववधूको एक दिन इनके नरकावास में भी बिताना पड़ता था। परस्पर खून खच्चर की गर्द उड़ा करती थी। वर्तमान मुक़बरे उनकी शाख खड़े खड़े भर रहे हैं। जहाँ तहाँ ये हज़ारों गुंबद ही रह गए हैं, परन्तु इनका नाम लेवा-सान्तानिक कोई नहीं रहा। आधुनिक यवन मरने मारनेसे तो अब भी नहीं डरते। इस नगर को बहुत पुराना समझा जाता है। सिंधुनदी पासमें ही बहती है। इसने नगरकी कई बार सेवा की है। सिंधका गंद आखिर इसीके द्वारा धुलता है। अब तो सिंधुकी ओर बंध बाँधा गया है। फिर भी सिंधुका भय रहता है। इस पाल के नीचेही धर्मशाला है।

बूबक–१२।२२९ ता० १०-११-

श्रीगुरुदेव यहां पधारे ही थे कि, शेठ खुशाल दास भी अपने वायदे के मुताबिक़ हैदराबादसे आगए। सन्ध्यामें आपकी बैठकमें व्याख्यान हुआ। ढिंढोरा सारे शहरमें फेरा गया, यह कार्य शेठजीने

स्वयं किया था। नागरिक सबके सब आए। प्रवचन के अन्तमें शेठ महोदयने अपील की, कि सिन्धी भाइओ! हमारे हिन्दू-साधुओंकी भाँति इन्हें हलवे माँडेका लालच नहीं, पैसा तो छूते ही नहीं, पूरे निग्रन्थ हैं मात्र आपकी आत्माका उद्धार चाहते हैं, अतः आप मांस-शराब-अंडा-मछली आदि अभक्ष्य खाना छोड दें। परिणाम स्वरूप बहुतसे भाइओंने मांसादि त्याग किया। एक लड़केने कहा कि मेरी थालीमें अभक्ष्य परोसते समय उसका विष्ठा आगया था, अतः मैं भी क़तई छोडता हूं।

एक बूढ़े सिंधीने कहा कि भगवन्! हमारी स्त्रिएं बड़ी हठीली और गोश्तखोर हैं। घरमें पला (मछली) आए विना ये भोजन तक नहीं बनातीं। बड़ी मुश्किलमें जान फँसी है। यदि नारी समाजको पार कर दें, तो पुरुष अपने आप गंगा न्हाएँ। वे तो घरका सुधार होने पर छोड़ ही देंगे। हमारा यह एक अंग बड़ा ख़राब है। यह सुनकर श्रीगुरुराजने माताओंको भी शिक्षाएँ दीं। माताएँ लजा गई, और बहुतोंने त्याग किया। इस प्रकार बूबकके अनेक नर नारियोंको पार किया, शुद्ध किया। × × × ×

यहाँ एक बहुत बढ़ी झील है। सिंधी भाषामें इसे 'ढंढ' कहते हैं। यहाँ 'मनछर' नामक ढंढ बहुत बड़ी है। एक सरोवरके रूपमें है। अंग्रेजोंने इसे पक्षियोंकी शिकारगाह बना डाला है। और भी बहुतसे शिकारी आते हैं हज़ारों पंछी रोज़ मारे जाते हैं। अंडोंकी तो गिनती ही नहीं। सिंधी लोग बगुलोंतक को नहीं छोड़ते। यदि इसे महापापकी मंडी क़हा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

इस झीलकी परिधि २० मीलके लग भग है। यहाँ से कई नहरें भी निकाली हैं। भानके इलाक़े तक इसकी सीमा है। पंछीयोंकी बुरी गत बनाई जाती है। किसी भी प्रकारका पंछी नहीं छोड़ते। छोटे छोटे पंछी १२ आनेतक बिक जाते हैं। दो तोले मांस के लालचमें पैसा बर्बाद करते रहते हैं। ऐसी मँहगी वस्तुके ख़रीदार अधिक प्रमाणमें हिन्दू ही हैं। इनके पास अनाप-शनाप पैसा आता है, और इसी कारण ये मांस भोजी भी हैं। अधिकतर बूबकके कई लोग इस प्रकारका निकम्मा व्यापार भी करते हैं। श्रीमहाराजने कई ऐसे नराधमोंका उद्धार किया है।

अगले दिन बाज़ारके लालमंदिरमें सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। अन्तमें कई ब्राह्मण और सिंधीयोंको शुद्ध किया, बूबकके बहुतसे लोगोंका सुधार हो गया।

विहारके समय शेठ खुशालदासजीने यह निवेदन किया कि भगवन्! १५ दिन मैं आपकी सेवामें साथ रहूंगा। और प्रत्येक ग्राममें मुनादी द्वारा लोगोंको एकत्र करके सिंधीमें जिनशासन और साधुधर्मका महत्व समझा कर लोगोंको आपके द्वारा शुद्ध कराऊंगा। वास्तवमें यवनोंके सहवासमें अधिक दिन रहने के कारण ही ये बिगडे हैं। इनमें विलासिताका भयंकर कीडा लगा हुआ है। आप इनका अवश्य ही उद्धार करिएगा। श्रीगुरुने फर्माया की हमारा जन्म इसी लिए तो है।

भान—६।२३५ **ता० १२-१२**

शेठ खुशालदासके प्रेरित करनेपर शेठ खोदराम मुखीने श्रीगुरुदेवको अपने दिवानख़ानेमें ठहराया, श्रीकस्तुरचंद गांधीकी जान पह-

खानने भी बड़ा काम किया। रात्रिमें व्याख्यानके उपरान्त मुनादी करनेवाले सिंधी महाजनने हाथ जोड़कर श्रीकस्तुरचंद गाँधीको ॥) पैसे लौटाकर कहा, कि मैंनें अपने जीवनमें आज मुनादीका श्रमफल लेकर बड़ा अधर्म किया है। मुझे आज अपने ऊपर घृणा होती है। ५०-५० रुपए कांग्रेस-और हिंदूसभाके कामके लिए लेकर भी आज तक कभी ऐसी गर्हा न हुई। सच मुच आज कलेजा मुँहको आता है, मनके कान आज ही उमेठे गए हैं। भरी सभामें खड़े होकर कहा कि मैं भविष्यमें कभी मांस-मदिरा न खाऊंगा। जितने दिन महाराज रहेंगे, उतने दिन मुफ्त ही मुनादी करूंगा। इसकी इस भीष्म प्रतिज्ञा पर नगरके अनेक प्रतिष्ठित और साधारण लोगोंने आमिषभोजन त्याग दिया। इसी प्रकारसे अगले दिन भी इस त्यागयज्ञमें बहुतसे भाइओंने भाग लिया।

दादू–१५।२५०　　　　　　　　　　　　ता० १४-१-४६

दादू ज़िला है, बहुतसे पढ़े लिखे और भाई बंद, आमिल लोग बसते हैं। शेठ खुशालदास और गाँधी कस्तुरचंद भाई की प्रेरणाओंका बडा सुंदर परिणाम निकला। रातको धर्मशालाका हॉल खचाखच भर गया। लोगोंमें भक्तिकी लहर अत्यधिक विस्तृत होकर बढ़ती चली गई। ऐसा अहिंसा एवं वीर रसात्मक प्रवचन सुननेका इन्हें पहली बार ही अवसर मिला। सुनकर ऊँचे दर्जेकी अनुमोदना करते हुए बहुतसे सिंधी लोगोंने मांस-मछली-शराब और चर्बीके कपड़े आदिका त्याग किया।

यहीं के निवासी भाई अमृतलाल नामक जैन ने प्रश्न किया कि

भगवन्! सन्तबालका क्या मत है? सुना है वह कुछ नवीनता लानेके पक्षमें हैं?

श्रीमहाराजने फर्माया, कि–उनके ही शब्दोंमें आपको बताए देते हैं कि उनका अपना क्या मन्तव्य है यथा—

जैन संकृति और आधुनिक जैनसमाजका तुलनात्मक चित्र

"ओ जैन समाज! ज्ञातनन्दन-महावीर भगवान्का निष्पक्ष एवं आध्यात्मिक आदेश, अध्यात्म-मकरंदके जिज्ञासुओंके लिए, कितना आकर्षक, और सुन्दर है, किन्तु खेदका विषय है, कि हमारी आधुनिक समाज इसे बडे नीरस भावसे सुनती है। मेरा अपना अनुभव बताता है, कि प्रभुका अध्यात्म-विषय शुष्क नहीं है। साथही व्यावहारिक जीवन, और अध्यात्मिकता, ये दोनों गंगा और सिंधुके समान अलग अलग भी नहीं हैं।

स्याद्वाद–जैन सिद्धान्त इस विषयका साक्षी है, कि अनेकान्त-वाद का स्वाध्याय और उसमें आलेखित जैनसंस्कृती का चित्र जिस पदार्थ पाठका बोध देता है वह, और आजकल के जैन समाजका मानस जिस पदार्थ पाठको सिखाता है, इन दोनोंमें आकाश पाताल जितना अन्तर है। यों गंभीर विचारकको प्रतीत हुए विना न रहेगा। मुझे यह स्पष्ट कह देना चाहिए, कि यह अघटित क्यों हुआ। क्योंकि इसके साथ साथ जैन समाज के, सामाजिक इतिहासका, गहरा और विशेष संबध है।

पहले एक ओर जैन संस्कृतिका तथा दूसरी ओर जैन समाज के वर्तमान मानसका तुलनात्मक चित्र खींच कर मुझे अवश्य दिखाना

है। आशा है पाठक गण इसे ध्यान देकर पढ़ें गे। **हिंसा और ममत्व त्याग** जैन धर्म और जैन संस्कृतिका प्रधान स्वर है। **विश्वशान्ति** और **विश्वमैत्रीका** मूल इन दोनों तत्वों में समाया हुआ है, जिसमें संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। परन्तु इनका खास संबन्ध पदार्थकी अपेक्षा वृत्तिके साथ-विशेषाधिक है।

उदाहरणके लिए चार प्रत्येक बुद्धोंका स्वरूप समझिए, उनमें महर्षि करकण्डू अपने शरीरको खुजलानेके लिए मुनि-अवस्थामें भी एक सोनेका पंजा रखते थे। परन्तु उनकी वृत्ति निर्मल होनेके कारण वे अपरिग्रही ही थे। साथ ही उसे छोडते समय उन्हें तनिक भी खेद और विलम्ब न हुआ। तब आजका जैन साधारण बीड़ी सिगरेट-पेस्टी जैसे दुर्व्यसनमें इतर लोगोंकी तरह इतने फँसे पडे हैं कि वे उन्हें आसानीसे छोड़ नहीं सकते, यदि उन्हें कोई बलात्कारसे छुडानेका साहस करे तो भी वे यह उत्तर देते हैं कि पिए विना पाखाना न उतरेगा, अतः पदार्थकी अपेक्षा-वृत्तिका विशेष-दारुण बंधन है। कहा भी है कि "उड्ढं सोता, अहो सोता, तिरिय सोता वियाहिया। एते सोता वियाहिया, जेहिं संगति पासह।"

आचारांग—६—६—७

भावार्थ—पापका प्रवाह ऊपर नीचे और तिरछी इन तीनों दिशाओंमें है, जहाँ आसक्ति है वहीं बंधन है। अतः इस प्रतिबंधक, वृत्तिके रोकनेका प्रबंध करना चाहिए।

उदाहरणार्थ शेलक राजर्षिकी घटना पर विचार करिए, वह एक समय चरित्रमें इतना शिथिल हो जाता है कि उसे साधुजीवन का

भान ही नहीं रहता और 'अनुपयोगी-निषिद्ध वस्तु तक का उपयोग करने लगा पडता है । प्रमाद सेवनके अतिरिक्त उनका और कोई कामही न रह गयाथा । साथ ही पंथक जैसा सच्चरित्री साधु भी पवित्र मनसे उसकी सेवामें तत्पर रहता है । परन्तु पंथक मुनिकी नम्र प्रेरणा द्वारा उसे जब अपनी झाँकी होती है, तब वह सच्चे दिलसे शिथिलता एवं प्रमादको छोड़कर संवर भावमें विचरने लगता है । अन्तमें उत्तम समाधिस्थ होकर मुक्ति को पा लेता है । इससे ज्ञात होता है कि अनासक्ति-निवृत्तिकी पूर्ण जागृत दशामें शैलक साधुको प्रायश्चित्त लेनेकी आवश्यकता तक न पडी । *

तत्तेणं सेलए रायरिसी अन्नया कयाइ कत्तिय चउमासियंसि विउलं असणं-पाणं-खाइमं साइमं आहारमाहरिए सुबहुं च मज्जपाणयं पिए पुव्वावरण्ह काल समयंसि सुहप्पसुत्ते ॥ ७७ ॥ तत्ते णं से पंथए कत्तियं चउमासयंसि कयकाउसग्गे देवसियं पडिक्कमणाणं पडिक्कंते चउमासियं पडिक्कमिउकामे सेलयं रायरिसिं खमणट्ठयाए सीसेणं पाएसु संघट्टेइ ॥ ७८ ॥

तत्तेणं से सेलए पंथएणं सीसेणं पाएसु संघट्टिए समाणे आसुरत्ते, जाव मिसिमिसे माणे उट्ठेइ २ एवं वयासि, से केसणं भो एस, अपत्थियपत्थिए जाव वज्जिए, जेणं मम सुहप्पसुत्तं पाएसु संघट्टति ॥ ७९ ॥ तते णं से पंथए अणगारे सेलएणं एवं वुत्ते समाणे भीए तत्थे, तसिए करयलकट्टु एवं वयासि । अहणं भंते! पंथए, कयकाउसग्गे देवसियं पडिक्कंते चउमासियं पडिक्कमिउकामे चउमासियं खामेमाणे देवाणुप्पियं वंदमाणे सीसेण पाएसु संघट्टेमि, तं खमं तुमं देवा-

णुप्पिया! णाति भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु। सेलयं अणगारं एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेइ ॥ ८० ॥ ततेणं तस्स सेलयस्स रायरिसिस्स एवं पंथए णं वुत्तस्स अयमेवारूवे जाव समुपज्जित्था, एवं खलु अहं रज्जं च जाव ओसणं उउबद्धपीढं विहरामि, तं नो खलु कप्पइ समणा णं णिग्गत्था णं पापत्था णं जाव विहरित्तए, तं सेयं खलु कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छिता पाडिहारियं पीढफलकसेज्जासंथारयं पच्चपिणित्ता पंथाए णं अणगारे णं सद्धिं बहिया अमुच्छिए णं जाव जणवयविहारेणं विहरित्तए एवं संपहित्तिरत्ता कल्लं जाव विहरति ॥ ८१ ॥ ………… तत्तेणं ते सेलए पामोक्खाएणं पंच अणगारसया बहुणि वासाणि समणपरियागं पाउणित्ता जेणेवपुंडरगिरिपव्वए तेणेव उवागच्छइ २त्ता जहेव थावच्चापुत्ते अणगारे तहेव सिद्धा ॥ ८४ ॥ (ज्ञातांगसूत्रम्)

(नोट) इसी प्रकार विष्णुकुमारमुनि-कालिकाचार्य-विद्वान् कीर्ति आदिके विषयमें भी समझ लेना चाहिए।

इसके अतिरिक्त और भी कहा है कि—

'जे आसवा ते परिसवा, जे रिपसव ते आसवा।' ४-२-१ **आचारंग**

भावार्थ—वृत्तिके लिए जो आस्रवके स्थान हैं, वे ही संवरके स्थान बन सकते हैं, और जो संवरके स्थान हैं वे आस्रवके स्थान हो सकते हैं। और भी कहा हैं, जैसे—

गामे वा, रण्णे वा, नेव गामे नेव रण्णे।,

भावार्थ—ग्राममें भी धर्म पालन कर सकता है, और अरण्यमें भी धर्म पालन हो सकता है, परन्तु जिसकी वृत्ति शुद्ध न हो वह ग्राम या जंगलमें कहीं भी धर्मका आराधन नहीं कर सकता। इसी प्रकार—

'जे सम्मंति पासह, तं मोणंति पासह ।' ५-३-१३ आ०

भावार्थ—'जहां सम्यक्त्व है वहीं मुनित्व है ।'

सारांश यह कि—अमुक वेश या अमुक स्थानके त्यागके साथ कोई मुख्य आधार नहीं है ।

इन अवतरणोंसे यह भली प्रकार समझमें आ जाता है कि मुख्य आधार तो ममत्व बुद्धिके त्याग पर निर्भर है । वेश और स्थान तो मात्र निमित्त पूर्तिके लिए है । शुद्ध निमित्त सिर्फ उपादानके लिए सहकारि रूपमें अवश्य निवड़ सकता है । क्या अन्यलिंग और गृह-लिंग सिद्ध नहीं होते ? अवश्य होते हैं ।

"अग्गं च मूलं च छिंधि ।" ३-२-६ **आचारांग**

भावार्थ—अग्र कर्म और मूलकर्मके भेदको जान कर कर्म बंधको तोडो, अर्थात् कर्मके मूल कारण मोहादि दोषोंको दूर करनेकी ओर लक्ष्य दें ।

वर्तमान समाजोंमें जैन—परन्तु वर्तमान जैनके अहिंसा और परिग्रह अमुक सीमित क्षेत्रमें ही समाप्त होते हैं । एक कट्टर जैन कीडीके पैर तले दब जाने पर कितना डरता है । परन्तु किसीका बुरा चिंतन करते समय वह कितना भय खाता है ? जरा भी नहीं । परोक्ष रीतिसे इसके कारण व्यक्ति-समाज और देशको हानि पहुँचती हो तो इसको यह शायद ही विचार और खेद होगा कि मेरे द्वारा कितनी क्षति हो रही है ? हरी सब्जी तथा कंद-मूल खाते समय जितना डरता है, उतना अलमारी-तिजोरीमें अन्याय. अनीति करता हुआ, गरीबोंके गले तराश कर उसे रुपयोंसे भरते समय जरा भी

भय नहीं खाता । मिल, सट्टा, बदनी, सूदखोरी और पूंजीका संग्रह करते समय किसे कब गैरत आई है ? असत्य, जो कि संसारके अनन्त दुःखोंका कारण है, उसे बोलते समय इसे जरासा दुःख डर भी नहीं लगता, जितना कि दुःख-डर एक काग़ज़के टुकडे के खोए जानेसे मानता है । रुपया मानो ऐसा खोगया जैसे प्राण निकल गए ।

एक कीडी मकोडा या मक्खी भूलसे भी यदि हाथ तले दब कर मर जाय तो इसके दिलपर भारी चोट लगती है और उसका हल्कासा प्रायश्चित्त लेने दौडता है, परन्तु अपने पास खून-पसीना एक करके काम करनेवाले मनुष्योंका वेतन काटनेमें, भर पेट भोजन न दे कर उनसे दुगुने समय तक काम लेते समय, शक्तिसे अधिक काम और बोझ लादते समय, इनका अधिक समय लेकर इनका खून चूसनेमें इनको कभी भी क्षोभ नहीं होता ! यह किस धर्मका नियम है ?

श्राविकाएँ अष्टमी, पाक्षिकपर्व, पंचमी आदि तिथिको हरी सब्ज़ी खाने, पीसने, न्हाने, कपड़े धोने, कूटने-छीलने आदि कार्योंमें जितना भय और संकोच करती हैं उतना भय-संकोच किसीकी निन्दा, ईर्ष्या, क्लेश, करने तथा किसीको ताना-मेहणा देनेमें बिल्कुल नहीं होता !

'इसी प्रकार जैन साधु भी' हरी-सब्जी अथवा कच्चे पानीसे जितना अलग रहते हैं उतना चर्बीसे बने कपडेसे अलग रहनेका ध्यान शायद ही आता हो ! अछायामें शिर ढाँपे विना न निकलेगा, बरसते पानीमें आहार पानीके लिए न जायगा, चतुर्मासमें कपड़ा तो क्या सूतका एक तार भी न लेगा, शय्यातर के घरका आहार तो क्या पानीकी एक बूंद भी आहारमें न स्वीकार करेगा, चाहे कितना विकट जंगल ही क्यों न हो, रातको कभी न विचरेगा, बल्कि जंगलमें ही

किसी वृक्ष तले ठहरने की जिज्ञासा रक्खेगा। खाना, पानी, दवा आदि रातको कुछ भी न रक्खेगा, बीमारीसे या प्यासले चाहे कंठगत प्राण ही क्यों न आ जाएँ परन्तु रातमें पानी कभी न पिएगा, चाहे तीन दिनसे भूख काटता हो पर किसीका निमंत्रण स्वीकार करनेकी स्वप्नमें भी इच्छा न करेगा, और न ही किसी गृहस्थ का लाया हुआ भोजन ही अंगीकृत करेगा, चाहे कितनी भी गर्मी क्यों न पडती हो परन्तु पंखे से हवा न करेगा, न ही खुलेमें सोवेगा, कर्कश स्पर्शवाली भूमि पर सोएगा मगर खाट-मंजा-पलंग या रूईके गद्दोंको न छुएगा। कडाकेकी सर्दी में भी तीन चद्दरसे अधिक न ओढेगा, जानका भय होने पर भी उपवासको न तोडेगा, इतनी कठिन साधना करनेवाले जैन साधु जब अन्य सम्प्रदायके साधुकी वंदना न करें, उसे आहार पानी न दें, रोगीकी सेवा न करें. उससे किसी प्रकारकी सहानुभूति न रक्खें, अन्य सम्प्रदायके साधुकी निन्दा कर डालें तो कितने अनर्थ की बात है? निंदा किए विना खाना ही हज़म न होता हो! भगवान् ज्ञात पुत्र महावीर प्रभुको भूलकर अपने नाम पर संस्थाएँ खुलवाता हो, संकटमें जान पड़जाने पर भी साम्प्रदायिकता की हठ न छोडता हो टोलावाद-गच्छवाद को तोड़ कर महावीर जैन संघ या वीर संघमें सम्मिलित न होता हो, भगवान्को भूला बताता हो, भगवान्के नामको गौण रखकर अपनेको या अपने बड़े बूढोंके नामको पुजवाता हो, प्रपंच रचनेमें, कभी बाज़ न आता हो, उसके सदैव यही गीत हों कि साधु तो मात्र हम ही हैं, अन्य सब असाधु हैं, जो औरोंको शिथिलाचारी और ढीला समझता हो औरोंका संयम बनावटी और अपना संयम अच्छा जँचाता हो, किसी अन्यके पुस्तक

शास्त्र-पात्रादिके अपहरण करनेमें तनिक आस्रव-पाप न समझता हो आहार हमें ही दो, औरोंको देनेमें एकान्त पाप बताता हो, इत्यादि अनेक कपोलकल्पना द्वारा जगत्को बहकता हो तो वह साधु पदसे कितना गिर चुका है? हरी-सब्जी या अन्यान्य बाह्य त्याग तपश्चरणादि पर तो खूब भार डाला जाता है, उतनी प्रेरणा आन्तरिक जीवनके विकास पर शायद ही की जाती होगी। असत्य-विश्वासघातत्याग, द्रोहत्याग, निंदात्याग, ब्लाकमार्कीटत्याग, इत्यादि आत्मा और राष्ट्रके अलाभके त्याग शायद ही कराए जाते हों। जैन समाजकी व्यवस्थामें त्यागपूजा-विकासपूजा, ज्ञानपूजा, गुणपूजा, प्रेम और सहानुभूतिपूजा, तथा गुणस्थान पूजाका मुख्य स्थान होने पर भी आजकी सामाजिक व्यवस्थामें व्यक्ति पूजा और धनपूजा ही मुख्यतया दृष्टिपथमें आ रही है। अमुक धन संख्यामें दानकी पूर्ति करनेवाला समाजका सभ्य बन सकता है, इससे अधिक धन देनेवाला महामान्य सभ्य बनेगा। इससे भी ज्यादह धन दाता संघपति (प्रधान) बन सकता है।

इस प्रकार परिग्रह वृत्ति तथा संग्रह वृत्तिको सहजमें पोषण मिल रहा है। साथ ही परिग्रह प्रवृत्ति बढने पर पाप वासना-प्रवृत्ति अवश्य बढ़ेगी। कारण धन और धर्मका सदासे सत पीढ़िया वैर चला आ रहा है। अर्थात् इस प्रवृत्तिसे अहिंसा और अपरिग्रहवृत्तियाँ उज्ज्वल न होकर विश्वमैत्री और जीवन-विकासके धुरेका टूट पडना स्वाभाविक है। **मूलं नास्ति कुतो शाखा**—परन्तु ज्ञातनंदन महावीर प्रभुका सौत्रिक उपदेश आन्तरिक दोषोंको निवृत्त करनेके लिए मुख्यतया और उन आन्तरिक दोषोंको मिटानेके ध्येयसे ही बाह्य और आभ्यन्तरिक क्रियाओंके ऊपर विशेष बोझ डालता है। तब वर्तमान समाज

मुख्यरूपसे बाहरी क्रिया परही भार डालता नज़र पड़ रहा है। साथ ही बाहरी क्रियाओंमें भी अपनी अनुकूलताके पथ पर इनका विशेष रूपसे लक्ष्य है।

संस्कृतिका विषैला-अधिकारी इनके परिणाममें अहिंसा—गऊशाला या अनाथाश्रम स्थापन करने तक या इसी भाँतिके छोटे छोटे जीवोंकी रक्षा करने तक ही है। मानवके साथ मित्रता करना मानो कहने सुनने की ही बात है। सामायिक प्रतिक्रमण अथवा पौषध करनेवाले उदार जिनधर्मिओंकी परिग्रह लालसा ज्यों की त्यों है। सारी उमर वीत गई मगर उपरोक्त अशुद्धिएँ उसी प्रकार रख छोडी हैं, घटानेका काम नहीं। इस प्रकार सामाजिक और धार्मिक जीवन का बेमेल और अक्षम्य संबंध न जाने कब टूटेगा!

धर्मिष्ठ समझा जानेवाला व्यक्ति मर्यादातीत अब्रह्मचर्य, जीभके स्वादकी अत्यन्तलोलुपता, अप्रमाणिकता, अविश्वास, द्रोह, ईर्ष्या, कृतघ्नता, निन्दकता, घातियापन, दिवालियापन और क्लेशादिकी भट्टीमें सुलगता हुआ, स्वच्छसामाजिक जीवनसे वंचित-प्रतारित होना आँखों देखी बात है। इस नमूनेकी अनेक असंगताएँ जैन धर्ममें तो क्या बल्कि किसी भी धर्ममें धर्मके नामसे न चल सकें, पर वे आज जैनधर्मके नाम पर धिक् रही हैं। इसका कारण वर्तमान श्रमणसंस्था या संघसंस्था का दोष नहीं है, बल्कि समाजसे प्राप्त संस्कृतिका अधिकार ही इसका प्रधानतया उत्तरदाता है, मेरा यह मन्तव्य है, इसका निरीक्षण करनेके अर्थ प्रमाणों पर दृष्टिपात करना चाहिए।

रूढिका अर्थ—सर्व प्रथम यह मानना पडेगा कि-मौलिक संस्कृति दूषित नहीं होती। इसके बाह्य आचार; क्रियाकांड अमुक उद्देश्यकी

पूर्तिके लिए इनकी योजना की जाती है। परन्तु मूल उद्देश्यको भुलाने पर वह रूढिका रूप पकड़ लेता है, बस, यही दूषणका कीटाणु है। रूढिका ज्यों ज्यों प्रचार होता है, त्यों त्यों संस्कृतिमें सडियल मादा उत्पन्न होता जाता है, और आजकी प्रचलित जैन संस्कृतिके संबंधमें भी यही बात है।

जैनदर्शन

त्याग और व्यवहारका सुखद मेल—जैन धर्मकी जबसे व्यवस्थित समाज रचना की गई है, तबही से इसमें स्त्री-पुरुष-गृहस्थ साधक और त्यागी साधक इन (साहु-साहुणी-सावय-सावयित्ति चउविहो संघो पन्नतो-ठाणायंग) चार अंगोंका समावेश होता चला आया है। परन्तु न तो कभी सबका सब संसार त्यागी बना है एवं समस्त संसार कभी पापी भी नहीं हुआ है। जैन सूत्रोंमें आपने परदेशी राजके समान हत्यारोंका तथा अर्जुनमाली जैसे सात सात निर्दोष मनुष्योंका विना कारण घात करनेवाले घातकियोंका विवरण पढा है। श्रीकृष्ण जैसे जिनशासन प्रभावक, मुनि अनाथी जैसे श्रीमान् असीम वैभवको ठोकर मारनेवाले, जम्बूस्वामी जैसे रमणिओं और राज्यसत्ताको वीरतासे त्यागने वालों का वृत्तान्त भी वर्णित है। ब्रह्मदत्त जैसे विलासी-एकान्त भोगी सत्तावाही चक्रवर्तिओंका वर्णन भी दृष्टिपथमें आता है, गजसुकुमार जैसे युवक सुकुमार भी देह पर प्रचंड त्यागसे तप करते हुए ध्यानस्थ मुनिके उसी दिनके लोच किए हुए-सिरपर डाले गए आगके अंगारोंकी कठोर कसौटीसे बडी कठिनाईको लीलामात्रमें भोगकर केवलज्ञान पानेवालोंका हाल भी पढा है। तब इधर भरत जैसे सार्वभौम, शयनागारके सुंदर आदर्श

नमें बैठे ही बैठे केवलज्ञान पानेके तथा सर्वज्ञ आदि होनेके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। पुरुषलिंगसे मोक्ष होता है, एवं स्त्रीलिंगसे तथा नपुंसक लिंगसे भी मुक्ति पानेके उदाहरण मिलते हैं। सारांश यह है, कि कोई भी सिद्धान्त एकान्त नहीं है।

अनासक्तिका सिद्धान्त भी अपेक्षाकृत है, और त्यागका सिद्धान्त भी अमुक्त अपेक्षासे है! यदि इसकी पुष्टिके लिए उदाहरण मात्रही चुने जायँ तो एक बड़ी पुस्तक बन सकती है, तथापि परिचयके लिए कुछ उदाहरण पढ जाइए।

(१) सरस्वती साध्वीको उज्जैनके राजा गर्दभ-भीलकी क़ैद से छुड़ानेके लिए कालाचार्य सालिवाहन-राजाको उत्तेजित करके सिंधसे चढ़ा लाते हैं, और गर्दभ भीलसे भीषण युद्ध करके उसे हरा देते हैं। तथा साध्वीको कारावाससे मुक्त करानेके अनन्तर आलोचना पूर्वक आचार्य पदको पुनः सँभालकर संघकी व्यवस्था करने लग जाते हैं।

(२) स्कन्धक मुनि ५०० साधुओंको स्वयं अपने हाथसे समाधि मरण दिलाकर धर्मद्रोही पालकके सुपुर्द कर देते हैं, और वह साधुको घानीमें पेल कर मार देता है, परन्तु आप आवेशमें आकर निदान द्वारा अग्निकुमार बन जाते हैं और उन पापियोंको प्राणदंड देते हैं।

(३) वैक्रेयक-लब्धिके धारक विष्णुकुमारमुनि, लब्धिद्वारा हस्तिनापुरके महापद्म-चक्रवर्तीके प्रधान, नमुचिको मार डालते हैं। क्योंकि वह ७०० मुनिओं और जैन संघको कष्ट देकर उनकी जान लेना चाहता था। उसे उक्त मुनिने स्वयं मृत्युके घाट उतार कर,

पापीका प्राणान्त किया, और जैन संघ तथा ७०० मुनिओंके मौलिक प्राण बचा कर आप उस क्रिया की आलोचना लेकर मुक्ति गए सुने जाते हैं।

(४) पश्चिम महाविदेह क्षेत्रकी बात है, कि वहाँकी एक गंधलावती विजयमें अयोध्या नगर था, जिसमें मिथ्यात्वी-विजय-नामक चक्रवर्ती राज्य करता था। वह जिनशासनका निन्दक और द्रोही था। दैवयोग से वहाँ सिद्धसेन, आचार्य १४ पूर्व धर तथा पुलाक-लब्धिके[1] पात्र अनेक मुनिओंके परिवारसे वहाँ आगए, उन्होंने पीडित संघकी विनती मानकर चक्रीपर अनुकम्पाकी दृष्टि रखते हुए उसे धर्मबोध देने राजसभामें आकार खूब समझाया, परन्तु वह तो समझनेके बदले मुनिओंका तिरस्कार कर डालता है। उस गंदे वातावरणके उत्तरमें आचार्यवर्य्य उस पर तथा उसके हजारों पापी साथियों पर अपनी पुलाक-लब्धिका अणु बम छोडकर उन धर्मद्रोहिओंको यमलोकका यात्री बना देते हैं। तदनन्तर मुनि तो आलोचना लेकर अनशन प्राप्त करके अन्तसमय केवलज्ञान पाकर मुक्ति प्राप्त करते हैं।

इन अवतरणोंसे स्पष्ट है कि जैन दर्शन **अनेकान्तवाद** और **अपेक्षावादका** जीता-जागता दर्शन है। ज्ञातपुत्र-श्रमण-भगवान् महावीर जैसे त्यागके प्रबल पक्ष पातीने साधककी कोटीमें गृहस्थोंको भी ऊँचा स्थान दिया है। जैन सूत्रोंमें यह एक असाधारण विशेषता है। इसपर निष्पक्ष भावोंके स्थिर रहनेका मात्र एक यही कारण है।

---

१ चक्की सव्वस्स चूरेइ, संघोवसग्ग कारणं।
पुलायलद्धि सो नामं, भासइ अठ्ठावीसई ॥ ३१ ॥ (लब्धिप्रकाश)

सांस्कृतिक–विकार–परन्तु जबसे एक अपेक्षित सिद्धान्तको सम्पूर्ण सर्वांग सत्य मानने लगे तबसे जैन संस्कृतिमें संकुचितता आ घुसी। आज कलकी उपर्युक्त दशामें श्रमण संस्था या समाज संस्थाका दोष नहीं है, बल्के उसके ठेकेदार जो कि अधिकारी रूपसे चले आने वाली संस्कृतिके विकारसे विकृत हैं, उस विकारका ही दोष है।

संस्कारिता और धर्म

परिवर्तनकी आवश्यकता–संस्कारिता धर्मका फल है और वस्तुस्वभाव पदार्थका धर्म है, जब कि पदार्थके पर्याय बदल जाते हैं तब धर्मके पर्याय क्यों न बदलें ? ऋतुओंका परिवर्तन होता है, पदार्थ बदल जाते हैं, सूर्यके तापकी न्यूनाधिकताके रूपसे उषा, मध्यान्ह और सन्ध्या जैसे परिवर्तन होते हैं, पंचम कालके अन्तमें संघमें मात्र चार व्यक्तिही रह जायँगे। जैन दर्शन घट कर दशवैकालिकके चार अध्यायके रूपमें ही रह जायगा। तब भी शुद्ध सांघिक धर्म कहलायगा ही। अब आप ही कहिए धर्मक्रियाओंका परिवर्तन क्यों न हो ?

धर्मसंस्करण नवीन नहीं है–भगवान् महावीरका जीवन और उनका श्रेष्ठ सांघिक नियम देखिए। पहलेकी अपेक्षा उसमें अनेक प्रकारका परिवर्तन देख सकोगे। देखिए जैन संस्कृतिका मुख्य ध्येय त्याग है, और वे स्वयं आदर्श गृहस्थका जीवन बिताते हैं। तथा गृहस्थ जीवनमें भी संयमको अधिकाधिक संभव करते हैं। तथा वे स्वयं सम्यक्तया उसी जीवनमें रहकर वर्षों बिताते हैं। साथ ही चार यमकी प्ररम्पराको बदल कर पाँच महाव्रतोंकी स्थापना अपनेसे ही

आरंभ करते हैं। वस्त्र धारणामें भी परिवर्तन कर देते हैं। श्रमण-संस्थाके नियमोपनियमोंको भी नवीन रूपसे घड कर ठीक ठाक बना लेते हैं। यों छोटी मोटी अनेक प्रकारकी क्रियाओंमें परिवर्तन करते हैं। यह विषय केशी मुनि और गौतमीय संवादसे भी स्पष्ट हो जाता है। क्या यह धर्मसंस्करणका सूचक नहीं है?

नवीनताका आदर्श—क्या शास्त्र सम्मत (दव्वं-खित्तं-कालं-भावं च विन्नाय) आदेश द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावको यथोचित समय पहचान कर वर्ताव करनेका उल्लेख नवीनताको अपनानेका आदर्श नहीं है? व्यवहारमें जिन कल्पका निर्देश संस्करणकी शक्यताका सूचक नहीं तो क्या है?

नवसर्जनता कहाँ है?—इतर दर्शनोंमें पर्यायका[1] नाम तक भी नहीं है, तब जैन दर्शन पर्यायको समुचित रूपसे स्वीकार करता है। इस प्रकार अनेक रीतिसे परिवर्तन या संस्करणके निर्दिष्ट होने पर भी स्वयं भगवान् ज्ञातपुत्र श्रीमहावीर प्रभु और इनके पट्टधर शिष्योंने भी प्रचलित प्रणालिकामें उच्च ध्येयका अनुलक्ष्य करके परिवर्तन करनेके स्पष्ट उल्लेख होनेपर भी जम्बूस्वामीसे लगा कर आज तकके इतिहासको गंभीरतासे खोजा जाय तो ज्ञात होगा कि धर्मसंस्कार-जीवी जैन और रूढिभंजक महान् क्रान्तिकार महावीरके अनुयायी आज केवल परम्पराजीवी रूढि जीवी हो रहे हैं। नवसर्जक तो बन ही न सके।

---

१ **वैशेषिक**-परमाणुवादको मानते हैं और नित्य मानते हैं, तथा द्रव्यको पदार्थ रूपमें एवं धर्मको गुणरूप मानते हैं, परन्तु उसमें पर्यायका उल्लेखही नहीं है, इस प्रकार **सांख्य** और **वेदान्त**में भी पर्यायका नाम कहीं भी नहीं है।

प्रगति रोधनका परिणाम

महावीर प्रभुका जैन समाज कौनसा है ?—जैन संस्कृतिमें जीती जागती जैन जातिकी वर्तमान अवद्शाकी प्रगतिको रोकनेका मूल कारण यही है कि जो जैन समाज किसी समय **गुणपूजा** और **विकासपूजा**का माननेवाला था, आज वह व्यक्तिपूजक जड़पूजक और अहम्मन्य बन गया है। जो वीरतासे भरपूर अहिंसाको माननेवाला था, वह आज पामर और कायर बनता जा रहा है। जो कभी सत्य और संयमका पूजारी था, वह आज परिग्रही और विलासी और जड़पूजक-स्वार्थपूजक हो चला है। जो श्रमजीवी एवं बंधुत्वजीवी था वह आलसी और कलहप्रिय बन चुका है। जो विश्वकी समानताका पक्षपाती था वह आज सत्तापूजक और स्वार्थांध बन गया है ! इसीमें इस वस्तुका मुख्य उत्तरदायित्व है।

जैनत्वका अर्थ—जो जैन शब्द जिस विवेकपूर्ण विलक्षण क्रियाकी समाचरणशीलताका सूचक है, अन्तर(भीतर)के शत्रुओंको जीतनेकी जो वीरता सिखाता है। विश्वके सामान्य जन-समूहकी अपेक्षा ज्ञान और चारित्रकी विशेषताएँ समझाता है, वह आज जैनोंमें कितनी कैसी और कहाँ है ? अन्य धर्मके अनुयायीयोंमें जो जिज्ञासा, आन्दोलन, प्रेम और संगठन पाया जाता है, जैन समाजमें उसे खोजो तो कितना मिले ? आजके जैन समाजका रेखाचित्र खींचते हुए एक समर्थ आलोचकने कहा है कि—

"एक सामान्यसे मत भेदके लिए भीतर लड कर साधन-शक्तिसम्प और समयको नष्ट करनेवाली यदि किसी समाजका चित्र देखना

है तो आजकी जैन समाज पर दृष्टि डालिए।" वर्तमान जैन लोगोंके लिए यह कितनी लज्जाजनक भर्त्सना है !!!

असहिष्णुताका पैतृक अधिकार—इन सबका कारण पैतृक अधिकारमें प्राप्त ईर्षा-असहिष्णुताके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? परन्तु स्याद्वाद जैसे पवित्र सिद्धान्तके माननेवाले जैनोंमें यह असूया कहाँसे आई? इस जातिमें इसका जन्म कैसे हुआ? यह साहित्य बहुत बड़ा और विशाल है, फिर भी नमूनेके तौर पर कुछ पढिएगा!

भावपतितकी शब्दपूजा—जैन दर्शनके प्रत्येक तीर्थंकर-अर्हत्-जिन और सर्वज्ञ कहलाते हैं। जैनोंकी यह भी मान्यता है कि सर्वज्ञ देव भूत-भविष्यत् और वर्तमानके प्रत्येक बारीकसे बारीक भावको हस्तामलक या हथेलीके पानीकी भाँति एक समयमें जानते और देखते हैं। भगवान् महावीर प्रभु भी ऐसे ही सर्वज्ञ थे। परन्तु केवल ज्ञानका सूक्ष्म रहस्य सम्यक् श्रुत-ज्ञानके द्वारा ही जाना जा सकता है अन्यथा नहीं। अतः इसे न कह कर इसकी गहरी तहमें रहनेवाली धर्म कि श्रद्धा ही मानव-समाजके लिए परमावश्यक है, परन्तु प्रश्न यह होता है की सर्वज्ञके नामपर, सर्वज्ञके शब्दोंपर जो सर्वज्ञताका आरोप किया जाता है वह किस अपेक्षासे? क्योंकि शब्द स्वयं नित्य या अनित्य? वास्तवमें शब्द तो अपेक्षित है, पुद्गल है, तब भाव और आशयकी नित्यताको पकड़ कर रखने में यदि इसमें परिवर्तन किया जाय तो क्या हानि है? क्या यह शक्य नहीं है? क्योंकि शास्त्र स्वयं इस वाक्यको स्वीकार करता है कि जितना सर्वज्ञ जानते हैं, उसका अनन्तवाँ भाग वे कह सकते हैं, और जितना उनका

अपना भाषित है, उसका अनन्तवाँ भाग श्रीगणधरदेव ग्रहण कर सकते हैं, तथा गणधर जितना ग्रहण करते हैं, उसका अनन्तवाँ भाग ग्रन्थन (रच) कर सकते हैं। शब्दके परिवर्तनका आधार-प्रमाण इससे अधिक और क्या हो सकता है?

जिज्ञासु वृत्तिका ह्रास—श्रीजंबूस्वामीके अन्तिम निर्वाणके बाद मोक्षके द्वारोंका बंद हो जाना स्थानकवासी सूत्रोंमें उल्लेख है, इस उल्लेखकी स्वहेतुक स्वीकृतिमें कोई हानि नहीं है, परन्तु इसमें हमें यह न सीख लेना चाहिए कि विकासके द्वार ही बंद कर दिए जायँ; आचारांगमें यह स्पष्ट लिखा है कि, जो केवल ज्ञानी कहते हैं वही श्रुतज्ञानी कहते हैं, जिस आचारांगमें श्रुतकेवलीकी इतनी ऊँची योग्यताको स्वीकार किया है, तब क्या श्रुतकेवली द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा रख कर जैन संस्कृतिके मूल उद्देश्यको सँभाल कर कर्मकाण्डके खोलका परिवर्तन नहीं कर सकते? परन्तु खेदकी बात है कि इस प्रकार करनेसे शायद भगवान् महावीर प्रभुके सर्वज्ञत्वमें फ़र्क़ आ जायगा? इस भ्रमसे अपनी समाजमें सर्जक प्रणालिकाका भंजन हो गया, और जिज्ञासु बुद्धिके द्वार बंद कर डाले, परिणाम स्वरूप अपनी साहित्य-समृद्धि फली फूली तो खूब, परन्तु उसे नव-सर्जनका चेतन बहुत कम मिला।

जड साहित्यकी उपासना—शब्दपर सर्वज्ञत्वका आरोप करनेके परिणाम में हमारी साहित्यकी उपासना भावपूजक-चेतना पूजकसे मिटकर शब्दपूजक जड़पूजक होती चली गई। आज भी कहीं कहीं ज्ञान पंचमीके दिन शास्त्रोंको बस्तेमें सजा कर घोडा गाड़ी या मोटर

द्वारा जलूस निकाल कर नगरमें फिरानेकी प्रथाका यही प्रतीक है। जेसलमेरके भंडारोंमें तूंबोंकी तरह अथवा बोरोंकी गठड़ीकी तरह लटकते हुए पुस्तकोंको देखने वालोंको अपनी साहित्य उपासनाक सुंदर विचार आ सकेगा।

सत्य-अर्थात्-सत्यको त्रिकाल-अबाधित माननेवाले या समझनेवालेका इतना कर्तव्य तो अवश्य है कि वह इस व्याख्याको समझे कि "उप्पन्ने वा, धुवे वा, विग्ने वा।" उत्पत्ति-स्थिति और लय, यह सत्की व्याख्या शास्त्रोंमें केवल शास्त्रोंमें परिवर्तनकी ही सूचना है। सत्य स्वयं ध्रुव है, इसमें कोई सन्देह नहीं, तथापि सत्य जिस रूपमें पाया पडता है, वह परिवर्तन शीलही है। तथा यही होना भी चाहिए!

कर्मकाण्डोंका प्रभाव–यदि कोई त्रिकालाबाधितकी युक्ति लड़ाता हो तो उससे पूछना चाहिए कि आसपासके बाहरी कर्मकाण्डोंके प्रभावसे जैन समाज नितान्त अलग ही रहा है, इसे छाती ठोक कर कौन कह सकता है? श्रीभद्रबाहु स्वामीके भविष्य कथनके अनुसार महावीरसे चौथी-पाँचवीं और दशवीं शताब्दीमें १२ वर्षके भयंकर दुकालके पश्चात् जैन श्रमणोंको जब विहार यानी मगधदेश छोड़ना पडा था, तब एक शाखा दक्षिणमें प्रतिष्ठित होगई और दूसरी शाखा काठियावाड़ और गुजरातमें पहुँची।

दक्षिणकी शाखाका चलन और लक्ष्य जिन कल्पकी ओर विशेष ढलता चला गया क्योंकि वह गर्म प्रदेश था और वहाँ वस्त्रके विना भी कोई हानि नहीं पहुँच सकती थी, अतः इस संप्रदायके श्रमण वर्गने दिगम्बरत्वपर खूब ही भार डाला, तब दूसरा वर्ग वस्त्रधारी ही रहा, असलमें बचा कौन?

श्रीशंकराचार्यके समय दक्षिणमें वेद-धर्मकी जो एकदम छाप पड़ी, तब वही छाप आज दिगम्बर समाजमें कितनी गहरी है? दिगम्बर श्रमणकी गोचरीके समयकी क्रियाको देखिए, श्रावक वर्गके जनेऊ लेनेकी क्रियादिमें ब्राह्मण-कर्मकाण्डोंके असरको कैसे छिपाया जा सकता है? और कई जगह विवाह-लग्नके प्रसंग पर मट्टीके गणेश पूजनकी प्रथा बहुतसे जैनोंसे अब तक नहीं छूट सकी है। यह प्रभाव ब्राह्मण पड़ौसियोंका नहीं है तो किसका है?

अन्य धर्मिओंका असर—काठियावाड़ गुजरातमें वैष्णवों और शैवोंका ज़ोर बढनेके कारण उनका चेप जैनोंको भी बहुत कुछ लग गया। जैनोंकी प्रणालिकामें इसका गहरा प्रभाव पड़ा! अस्पृश्यता, जातिभेद, सामाजिक रूढिएँ, स्त्री-पुरुषके असमानाधिकार आदि तत्त्व इसके प्रमाण रूप हैं, ऐसी अनेक बातें हैं। साथ ही जितना उनके जीवनपर असर पड़ा है उतनाही प्रभाव जैन साहित्यपर भी पड़ा है।

पारस्परिक प्रभाव—दिगम्बरीय साहित्यमें आज भी दिखनेवाले तत्त्वज्ञानके लक्ष्यमें तद्देशीय इतर दर्शनके साहित्यका असर चमके विना नहीं रहता, श्वेताम्बर साहित्यमें भी स्पष्ट तया यही लक्ष्य है, और यह किसी हद तक उचित भी है, क्योंकि वह अनिवार्य है। सामने खड़ी हुई समाजकी छाया यदि किसी अन्य समाजपर पड़ जाय तो इसमें आश्चर्यही क्या है।

उदाहरणके लिए हम अबसे ४० वर्ष पहलेकी धर्मस्थानीय रचनाको याद करेंगे तो वहां रेशमका साम्राज्य छाया हुआ था, पर्दे भी रेशमी, चँदोए भी रेशमी और शास्त्रके वेष्टन तो रेशमी और मख्मलके होते

ही चाहिए। उस समय रेशमके प्रवाहको रोकनेवाला कोई माईका लाल न था। परन्तु गाँधीयुग संसारके सन्मुख आया ही था कि रेशमके कट्टर पंथियोंने न जाने रेशमको किस दुर्दशाके साथ निकाला है जिसे रेशम युगीन ही अनुभव कर सकते हैं। अब उसके स्थानमें खादीका सन्मान है उसका बोलबाला है। जो त्यागी निरारंभी मुनिराज पहले पाँचपीका लट्ठा पहनते थे, आज वे ही महात्मा वलायती वस्त्रको हिंसासे उत्पन्न वस्त्र सिद्ध कर रहे हैं, और खादीके कपड़ोंसे समृद्ध हैं। रेशम और वलायती कपड़ेके स्पर्शसे भी पाप बताते हैं। समयोचित प्रवाह मनुष्योंको बदले विना कब मानता है ?

इसी प्रकार जिस रीतिसे जैन दर्शनके साहित्यमें इतर दर्शनकी छाया है, इसी प्रकार इतर दर्शनोंमें जैन समाजकी जैन साहित्य की छाया भी है।

पासकी प्रतिच्छाया—योगदर्शन सांख्यका उत्तर विभाग है, यह गीताके अध्याय ५, श्लोक ४ की मान्यता है। काल दृष्टिसे देखा जाय तो सांख्य दर्शनका ही प्रथम आगमकाल है। इसकी पूर्ति इतिहास द्वारा हो चुकी है। तत्त्वार्थसूत्र केवल जैन आगमके पाए परही रचा गया हो, इतनाही नहीं बल्कि सब सूत्र जैनागमोंमें ही पाए जाते हैं। इसका समीकरण करनेवाला एक पुस्तक भी छप चुका है।

प्रभावित होनेके प्रमाण—तत्त्वार्थसूत्रके साथ कई स्थलों पर योगके सूत्रोंसे मेल मिलता है। इससे एक दूसरेका असर पारस्परिक होना स्पष्ट सिद्ध है, इस मान्यताका एक कारण भी है। दिगम्बर जैसे तत्त्वज्ञानका विशेष लक्ष्य रखनेवाले साहित्योंमें हरिवंशादि

पुराणोंका स्थान है। यह पौराणिक संस्कृतिकी छायाका द्योतकही तो है। श्वेताम्बर साहित्यमें भी जैन दृष्टिके ग्रन्थनसे रचे हुए ढालसागर-रामरास महाभारत तथा रामायणकी पूर्तिकी ही शाख पूरते हैं।

इसी प्रकार गीतामें भी जैन संस्कृति तथा बौद्ध संस्कृतिकी अत्यन्त ही गहरी छाप पडी है। साधनाके दृष्टिबिंदुसे देखा जाय तो जैनोंकी अहिंसा और संयमने वेदधर्म पर बडी गहरी छाप डाली है। इसमें कौनसा तटस्थ विद्वान् साफ़ इन्कार कर सकता है? अतः साहित्यिक दृष्टिसे वेद संस्कृतिका एक दूसरे पर बहुत ही अच्छा प्रभाव है। परन्तु मुझे तो यह कहना है कि "यह सब कुछ होने पर भी नवसर्जनकी दृष्टिसे वेद साहित्य जितना परिष्कृत है, उतना जैन-साहित्य नहीं, और इसका कारण शब्द शब्द पर सर्वज्ञत्वके आरोपकी अपनी भ्रममूलक मान्यता द्वारा प्राप्त पैतृक आधिपत्यके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? 'योग्य है या अयोग्य है' यह तो एक मात्र अपेक्षावाद पर ही निर्भर है।"

नवसर्जनकी क्षुधा—इसी लिए जैन समाजको तत्त्वार्थप्रणेता **श्रीउमास्वामि वाचक** जैसे उत्तम और समर्थ सर्जक मिले। जिसने आगम रहस्यको लेकर तत्त्वार्थसूत्रको संक्षिप्त गद्यात्मक शैलिसे प्रसन्न करनेवाली गीर्वाण भाषामें रचा। परन्तु इसमें नवसर्जनताका कितना अंश है? इसका मुक़ाबला है योगसूत्रके प्रणेता पतंजलि ऋषिके साथ, पतंजलि मुनिके योगदर्शनमें वेद-श्रुति-स्मृति और उपनिषदोंकी अपेक्षा बहुतसे नवमौलिक तत्त्व मिल जाते हैं, परन्तु तत्त्वार्थसूत्रमें इतना कहाँ?

श्रीहरिभद्रसूरि और शंकराचार्यका प्रतिभाकी दृष्टिसे भी मुक़ा-

बला कर देखो। श्रीहरिभद्रसूरि नवसर्जनकी मूर्ति-प्रकांड अभ्यासी और प्रतिभासम्पन्न पुरुष हैं। स्वयं जन्मसे ब्राह्मण-सरस्वतीके परम उपासक, इसने साहित्य क्षेत्रको सुघड़ बनाया। इनकी प्रतिभा-शक्तिने अगाध साहित्यरचनाका ढेर लगा दिया, पर इसमें नवसर्ज-नता कितनी मिली?

अन्य दर्शनोंकी घुडदौड—योगदर्शनके असरसे इन्होंने 'योग-शतक' रचा, योगबिंदु और योगदृष्टिसमुच्चयकी रचना की। दार्श-निक प्रभाव पडने पर षड्दर्शनसमुच्चय और न्यायके इतर ग्रंथ रचे। इनके तीस तो स्वतन्त्र ग्रन्थ तथा और बहुतसे ग्रंथोंपर टीकाएँ रचीं। जो आजकल भी उपलब्ध होती हैं। परन्तु यह सब अन्य दर्श-नोंके मुक़ाबलेमें न जाने किस प्रकार निर्माण किया हो, इसे जाने विना नहीं रह सकते। इस साहित्यमें नवीनताके आकर्षण कैसे और कितने हैं? योगदृष्टिसमुच्चयमें नवीनता तो अवश्य है परन्तु इसकी चालढालका नमूना देखकर आप तुरंत ताड़ गए होंगे कि कि इसमें सांस्कृतिक मिश्रित पैतृक अधिकारकी ही मुख्य झाँकी है।

शंकराचार्यके ब्रह्मसूत्र पर एक मात्र भाष्यको ही देख जाइएगा तो आपको नवीनताके दर्शन हुए विना न रहेंगे और विवेकचूडा-मणि तो मानो तुरंतका नया ग्रंथ जँचेगा। अन्तःकरण चतुष्टयी और इसके लक्षण तो हमको इसकी मौलिकताका स्पष्ट भान करा देते हैं।

ये दोनों विद्वान् व्यक्ति विद्या और प्रतिभामें एक दूसरेसे कुछ भी कम न थे, फिर भी मौलिक सर्जनमें इतना हेरफेर होना अचरज-भरी बात है।

संस्कृतिमें पैतृक अधिकारका भोग मानो एक क्रान्तिकार बनता है और दूसरा साहित्य कार रहा हो, कदाचित् यह घटना हो तो इसका कारण संस्कृतिकी पैतृकताका परिणाम नहीं तो और क्या हो सकता है ?

जैनसंस्कृति और वैदिक संस्कृति—वेद और श्रुतियाँ होनेपर भी मानवसमाजकी व्यवस्थाके लिए ज्ञानविकाससे प्रेरित होकर मनु-स्मृतिकी रचना की गई। आत्मज्ञानकी भूखको मिटानेके लिए उप-निषद् बनाए गए। तर्क-विकासने दर्शनोंको जन्म दिया। बाल मानसके लिए पौराणिक संस्कृति पैदा हुई। आदर्श गृहस्थजीवनके प्रत्येक क्षेत्रको व्यक्त करते हुए और कर्तव्य-धर्मका अमूल्य आदर्श अर्पण करनेवाले महाभारत और रामायण बने। ऐसी ऐसी अनेक नवीनताएँ हैं। अरे! एक शंकराचार्यके अद्वैत मत पर ही विचार करिएगा तो आपको यह खयाल आए विना न रहेगा कि इस सिद्धान्तपर कितना नवसर्जन हुआ है तथा उनमें अब तक वही प्रणालिका चली आती है कि—जो भी आचार्य शंकराचार्यकी गद्दीपर बैठता है उसे ब्रह्मसूत्रपर नवीन दृष्टिसे भाष्यका निर्माण करना ही चाहिए। क्या यह नवसर्जक शक्तिका उद्बोधन करानेवाली संस्कृतिके पैतृक अधिकृतका सूचक चिन्ह नहीं है?

जैन साहित्यका चेतन—गीताका समृद्ध मौर-फल इस संस्कृतिके लिए उपकृत है। पुनः एक ही गीतापर देखो ज्ञानेश्वरी गीता, तिलक गीता, ऐसी ऐसी अनेक टीकाएँ और प्रत्येक भाषामें छपी हुई सैंकड़ों आवृत्तिएँ एवं प्रत्येक टीका ग्रंथमें भी यही दीख पड़ेगा मानो मौलिक तत्व ही भरा पड़ा है। जब जैनोंको सिद्धसेन दिवा-

कर जैसे तार्किक पंडित मिलते हैं, तब भी इसके नवसर्जनसे जैन-साहित्य नव पल्लवता न पा सका, कीतना खेद ? अपनी पुराण संस्कृतिकी कट्टरताका और अपनी इस नवसर्जकताकी शक्तिको चारों ओरसे कोट बनाकर घेरा डालनेका एक ही उदाहरण देखिए। हमारे इस समर्थ पण्डितने मात्र "नमो अरिहंताणं" के पँच परमेष्ठी पदोंको एक संस्कृत भाषामें "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुभ्यः।" रच दिया कि तुरन्त ही मानो कोई भारी अपराध कर डाला हो, उसे संघसे बाहर निकाल डालने का दुस्साहस इतिहासके पन्नोंतकमें भी चढ़ गया। और वह अपनी पैतृक अधिकारगत संस्कृतिके घेरे पर एक गहरा ठप्पा ठोक जाती है, ज्यों ज्यों उसे ऐसा अघटित अधिकार मिलता गया त्यों त्यों जैन प्रजा जिज्ञासु बुद्धिसे परे हटती चली गई।

पता लगानेपर प्रतीत होगा कि ईस्वी सन् ४०० वर्ष पहलेसे लगाकर आजतकके इतिहासमें तार्किकचूडामणि, सिद्धसेन दिवाकर, श्रीहरिभद्रसूरि, श्रीहेमचन्द्राचार्य, जैसे समर्थ प्रभाविक पुरुष जैनसमाजको मिले, अभयदेवसूरि, श्रीवादिदेवसूरि, और यशोविजय जैसे महापंडित भी उपलब्ध हुए तथा इसी प्रकार दिगम्बरसम्प्रदायमें समन्तभद्राचार्य, देवनन्दी, अकलंक और अनेक समर्थ विद्वद्दल मिले, परन्तु हम अपने इन महासमर्थ आचार्योंसे नवीनता कुछ भी न ले सके ! और केवल प्राचीन संस्कृतिके प्रभावसे रूढिके दास और अन्धपरम्परासे पैतृक अधिकारजीवी ही बने रहे। तज्जीवी होनेपर भी इतर मतोंके आन्दोलनोंका हममें कुछ न कुछ गतानुगतिक-औघिक असर आए विना न रहा। जिसे पहले स्पष्ट किया जा चुका है।

परन्तु आजका रूढमानस नवीनताकी ओर जानेके लिए कितनी घृणा करता है, जब कभी नए आन्दोलनसे निद्रा-भंग होकर जागृती होती है तब उसी समय उसे दबा देनेकी तैयारी करने लग पड़ते हैं। यही कारण है कि आजके जैन समाजकी शक्ति नवसर्जनताका विकास करनेके स्थानपर न लगकर नवसर्जनबलका घातक बनकर आन्तर कलह पैदा करके स्वयं नष्ट भ्रष्ट होने जा रही है। इसका मूल कारण यही आँखमिचौनी खेल है। जहाँ तक यह संस्कृति न बदलेगी वहाँ तक अंदरकी शक्तिएँ इसी सुकानसे क्षीण होती रहेंगी तथा फिर होती रहेंगी। वर्तमान संस्कृतिका विचार परिवर्तन करके शुद्ध जैन संस्कृतिका पुनरान्दोलनको जागृत करना ही संस्कृति-सुधार एवं परिस्थितिका निश्चय सच्चा श्रेयस्कर मार्ग है।

अब मैं यह बताना चाहता हूं कि उस प्राचीन संस्कृतिके प्रवाहमेंसे जो जो विचारक और नवसर्जक कलीकी तरह बलपूर्वक खिलते हुए अग्रगामी हुए और उन्होंने नव सर्जनशैलिसे समाजको कितना उपकृत किया है तब जैन समाजने उनका कितना उपयोग किया, तथा उनसे क्या व्यवहार किया, उसके कुछ आँकड़े भी जाँच लें।

जैन इतिहासके सुवर्ण-पात्र।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य—विक्रमकी शताब्दीके पीछे जैन इतिहासमें कई सुवर्ण-पात्र मिलते हैं, जिनमें सबसे पहले पात्र मिलते हैं भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य! गतानुगतिकताकी ढिल-मिल चाल चलनेवाली हमारी इस समाजको इन्होंने अध्यात्मिकताके वायुमंडलका झोका देकर एक नई-तेजस्वी किरण फेंकी। 'समयसार' अमूल्य विभूतिसे

समृद्ध एवं तत्त्वज्ञानका अश्रुतपूर्व ग्रंथराज इसका गवाह है। अष्ट-प्राभृतमें एक एक तत्त्व पर की हुई समालोचना एकान्त धार्मिक-क्रान्ति और नवीनताका सूचक है। यद्यपि इस नूतनतासे समग्र अंधड़ संस्कृतिका पलट नहीं हुआ है तथापि कर्मकांडीय निश्चयवाले मानसके सन्मुख इस साहित्यने भारी क्रान्ति उत्पन्न की और रूढिका आसन हिला दिया, यह निस्संदेह कहना पड़ेगा।

धर्मप्राण लोकाशाह—दूसरा सुवर्णपात्र मिलता है **'धर्मप्राण-लोकाशाह'**! इसने सचमुच जो नवीन सुमनसौरभ दिया है, वह व्यवहार्य और अद्भुत है। कर्मकाण्डोंकी जटिलता, साधनबद्धता, रूढिवादिता, जड़पूजकता और श्रमणसंघकी संस्थाकी अधिकाधिक शैथिल्यवृत्ति तथा सामाजिक व्यवस्था और सत्ताशाही विकारका अंधारोष-प्रबलकोप इनकी सार्वत्रिक जीवनचर्यासे स्पष्ट होकर ऊपर तिर आता है। जैन समाजकी विकृतिका कोई भी नाड़ीपरीक्षक, आदर्श चिकित्सक और सिद्धान्तके लिए अपना सम्पूर्ण जीवन सौंप देनेवाला, जैन समाजके रूढ मानसके सन्मुख झूझनेवाला कोई अद्वितीय योद्धा है तो यह अभूतपूर्व धर्मक्रान्तिकार-धर्मप्राण लोकाशाह ही है।

योगीश्वर आनन्दघन—तीसरा सुवर्णपात्र है अपना अलबेला योगीश्वर आनन्दघन! साम्प्रदायिकता और सत्ताके सामने प्रबल विरोध मचानेका इनके एक ही जीवनप्रसंगसे जाना जा सकता है।

योगीश्वर किसी ग्राममें जाते हैं, यदि वहाँ समाजका मुखी आवे तब ही व्याख्यान आरंभ होनेकी कट्टर ग्राम्यप्रथा थी। परन्तु योगी-श्वरने तो समय होनेपर व्याख्यानका आरंभ कर ही दिया, इन्हें सुन-

नेवालोंसे मतलब था, श्रीमानोंसे नहीं । धनी भी यदि सच्चा श्रोता होकर आवे तो इसके लिए स्थान चाहे पहला ही क्यों न हो, क्या हानि है? परन्तु जैनदर्शनमें उच्चताका माप धन या ढोंग तथा चालाकीसे नहीं बल्कि योग्यता सच्चरित्रतासे मापा जाता है । इस योगीका यही जीवनसूत्र था ।

इधर यह शेठ देरसे आए और व्याख्यान प्रारंभ हो गया था । इसे क्रोध आया और योगीश्वरके सामने चिचा उठा, कि मेरे आए विना ही यह क्या कर डाला? बस, इसी एक अनर्थने जैन समाजके दुर्भाग्यसे एक समर्थ पुरुषको अपने हाथसे गँवा दिया ।

योगीश्वरने आत्मविकासकी साधना तो की ही, आज भी तो इनके पद्य 'योगीशभूमिका' की साख पूर रहे हैं, जिसका एक नमूना देखकर आप स्तब्ध रह जायँगे, तथा आपको यही विचार आयगा कि उन्हें पक्षपात-खींचतान और गच्छवादसे कितनी घृणा थी और आप सत्य तथा स्याद्वाद सिद्धान्तके कितने प्रेमी थे । यथा—

"गच्छनां भेद बहु नयण निहालतां,
तत्वनी वात करतां न लाजे,
उदर-भरणादि निज काज करतां थकां,
मोह नडिया कलिकाल राजे ॥ ३ ॥

इनका आशय यह था कि एक ओर मतपक्ष-गच्छका ममत्व और दूसरी तर्फ़ निर्मल आत्मतत्त्वकी बातें करना भला यह कहाँ तक शोभा देता है? जहाँ अपने मतकी पुष्टिकी खींचतान और मोह हो वहाँ आत्मतत्त्वका ज्ञान कैसे प्रगट हो सकता है । इस पर तुर्रा यह कि सम्प्रदाय अर्थात् तपा-लोकादि गच्छके भेदोंमें फँस कर वे तत्त्वकी ऊँची ऊँची बातें करते हुए लजाते क्यों नहीं?

वृक्षके मूलमें आग सुलगती हो और फिर वृक्ष हरा भरा ही रहे यह कब सम्भव है? इसी प्रकार ममत्व एवं तत्त्वका प्रसंग भी उसके लिए विसंवादरूप है। अर्थात् ममताका पक्ष रखनेवाले यथार्थ तत्त्वको जान सकें! उन पर यही दृष्टान्त खूब घटता है।

ये गच्छ और इनके भेदोंमें फँसकर मायाधारी लोग क्या करते हैं? और उनकी परिस्थिति कैसे ढंगकी होती जा रही है, ज़रा कोई इस पर विचार तो करे!

ऐसे मायाधारी—ममताकी भीत खडी करनेवालोंको कलिकाल राजाने—अथवा कलिकालके राज्यमें मोह और अज्ञानसे हाय तोबा मचानेवाले राजा—शिरोमणिने उनको ग्रस लिया है। अर्थात् मोह-राजाने उनको क़ाबू करके अपना गुलाम बना लिया है, अतः उनकी बहिर्मुखी करणी भी कषायरूप है। यही कारण है कि वे पेट भराई के अतिरिक्त किसी अन्यकी भलाई नहीं कर सकते। और परमार्थके कार्योंसे सदाकाल कोसों दूर भागते हैं। सामान्यतया मनुष्योंको इस मोहने किसीको कमर तक, किसीको गर्दन या नाक तक ग्रस रक्खा है, सामान्य मनुष्योंमें तो कषायभाव कम देखा जाता है, परन्तु इन नाममात्रके वेशधारी मतवादिओंको तो मोह राजाने एडीसे चोटी तक जकड़कर निगल ही लिया है। तब उनमें तो कषायकी भट्ठी आठ पहर चौसठ घड़ी धधकती रहती है, कभी भी ठंडी नहीं हो पाती। वास्तवमें वे बिचारे बडे ही दयनीय दशामें हैं। सच तो कहा है कि—

बोले निरपेक्षित वचन अन्तर्मुख क्रिय क्रूर।
उनका संयम तप सभी किया कराया धूर॥ १॥

यदि वह एकान्तपक्षी है अर्थात् चाहे तो वह अहिंसापक्षी है, या भक्तिपक्ष है या क्रियापक्ष; या 'गुरु गुरु जपना, और सब सपना' यही रट लगा रहा है। तथापि निष्पक्ष वचन बोलनेवाला यह संकेत करता है कि कषायवान् तो नरकका कीड़ा है उसका चार गतिमें भ्रमण अनिवार्य है। इस शैलिके वाक्योंको ध्यानपूर्वक विचारनेसे पता चलता है, कि इनकी समता-योगसाधना कितनी व्यापक और सर्वतोमुखी तथा उदार अन्तर्मुखी थी। उनका "षट् दर्शन जिन अंग भणीजे" यह पद स्पष्ट कर देता है, कि जैनसमाज यदि इस महापुरुषको पचा लेता, तो जैनसमाजका नवचेतन कुछ और ही होता। परन्तु ये बेचारे करते भी क्या! इनको तो पैतृक-अधिकारमें सम्प्राप्त ठेकेदारीकी संस्कृतिने आगे बढ़ने देनेसे पहले ही रोक दिया है।

श्रीमद् राजचन्द्र—चौथा सुवर्णपात्र श्रीमद्राजचन्द्रजी हैं, ये अध्यात्म पथके इकले पथिक, अध्यात्म मकरंदके रसिक मधुकर। इनके काव्य देखो, पत्र देखो, लेख देखो, पुस्तक देखो कुछ भी देखो, परन्तु इनका रसक्षेत्र तो मात्र यही है। इन पर कुंदकुंदाचार्यकी छाया अवश्य है फिर भी इनकी नवसर्जकशक्ति अबाध्य है, जिसमें संदेहके लिए कोई स्थान नहीं है। इनके साहित्यमें परंपरागत संस्कृतिकी छाया अन्त तक नहीं घुस सकी हो यह निश्चितरूपसे तो नहीं कहा जा सकता। इनके काव्योंमें स्त्रीको 'काठकी पुतली' बताया गया है। शायद उपमा हो, फिर भी खटके विना न रहेगी। आपकी संगीतीमें निवृत्ति प्रधानताका स्वर मुख्यतासे गूँजता रहा है। इस पात्रको भी जैनसमाज न झील सकी, यह कहना असंगत नहीं है।

शायद बाह्य कर्मकांडोंके प्रति अन्त तक इनकी उदासीनता कारण-भूत हो!

कोई इनमेंसे कर्मप्रेमी था, कोई ज्ञानप्रेमी था, कोई भक्तिप्रेमी। तब भी दो तत्त्वज्ञानी कहला गए, एक योगी समझा गया, तथा एक तत्त्वजीवी-सिद्धान्तजीवी धर्मजीवी या मरजीवी। इन सबमें तद्गत संस्कृति थी तो अवश्य, तथापि नवीनता भी साथ ही अनुगमन कर रही थी। इस नवसर्जनको जैन समाजने पचाकर विकसित नहीं होने दिया, बल्कि उल्टा धक्का मारकर रूढिगत पढ़े लिखे समूह और सम्प्रदायगढके रक्षकोंने उन्हें कुचल डालनेके लिए खूब ही अपनी नक़द जान का बल खर्च किया। कितनी हतभाग्यता! परन्तु इसमें किसका दोष समझा जाय?

सद्गत वाडीलाल मोतीलाल शाह

जैनदार्शनिक—पाँचवाँ सुवर्णपात्र श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह, वाडीलाल समाजका ज्वलन्त दीपक, समाज-रचना करनेकी भव्य कल्पनाओंमें स्वतन्त्र विहार करनेवाला विहंगम। इसका तत्त्व-ज्ञान कितना गंभीर साथ ही इसकी क़लम तो पेनी और चमचमाट करनेवाली। रूढ़ियोंका आखेट किये विना-मानती ही न थी। इसके मनोरथ 'महावीर जैन मिशन" की स्थापना करनेके कितने खटकेदार और इसके अनन्तर संसार भरकी भाषाओंमें श्रीमहा-वीरका सन्देश पहुँचानेकी तीव्राभिलाषा, तथा जैन कॉलिज और जैन यूनीवर्सिटीकी जैनसंस्कृतिके अनुसार स्थापना करनेके लिए कितनी दिव्य और उच्च! फिर भी कठिन प्रणालिकाके भेदसे इस समाजमें आज भी ऐसा ही कुछ अगम्य कथन किया जा रहा है परन्तु यह

तो कर्मजीवी था, मर कर जीनेवाला था, तथापि समाजकी अकथ्य वेदनाओंको साथ लेकर गया।

परिणाम—इन सब प्रमाणोंको प्रस्तुत करनेके पश्चात् इतना कहना शेष रह जाता है कि जबसे जैन संस्कृतिमें बाहरके कर्म-काण्डों पर ज़ोर देना शुरू किया गया और आन्तरिक विकास गौण बनता चला गया, तबसे जैन संसार अपनी मौलिक जैन संस्कृतिको भूलता चला गया, या यों कहिए खो ही बैठा। परिणाम स्वरूप जीवन और धर्मके मार्ग अलग अलग और छिन्न विच्छिन्न हो गए। इसके अनन्तर ही अहिंसामेंसे वीरता घट गई। संयमके बदले परि-ग्रह और ढोंग बढ गया। "सर्वे जीव करूं शासनरसी"के स्थानमें आपसके बेजान कारणोंकी ओटमें कलह और मार कूट बढ़ती चली गई। जिसके निमित्तकारण **जैनधर्म और जैनशास्त्र तो नहीं हैं**। बल्कि पैतृकतामें सम्प्राप्त विकृत संस्कृति ही इसका मूल कारण है जिसे आजका जैन युवकदल जड़से परिवर्तन करनेका इच्छुक है। जिससे साम्प्रदायिकता नामक रोग मिटकर "श्रीज्ञातपुत्रमहावीर जैन संघ"संसारको अन्तर्मुखी बनानेमें हस्तसिद्ध हो सके। बाह्य-पूजा, शब्दपूजा, व्यक्तिपूजा, मिटकर ज्ञानपूजा, प्रेमपूजा, सहानुभूति-पूजा ही अमर रहे। जिससे जैन धर्मकी जड़ मज़बूत हो, और संसारकी अकर्मण्यता नामशेष हो। मानव मानवताके लिए अपना तन, मन, धन अभेदरूपसे न्यौच्छावर करनेमें अग्रसर हो पाए।

× × ×

फुलजी—१०।२६० ता० १५-१-४६

गांधी कस्तुरचंद, शेठ खुशालदास और जेठानन्दके प्रयत्नसे

कठिनतापूर्वक एक सिंधीके मकानमें विश्राम मिला, परन्तु रातको प्रवचन सुनकर तो सबकी आँखें खुलीं, और सैंकडों स्त्री-पुरुषोंने आमिष खाना छोड़ा। यहाँ कुछ आपसका मतभेद भी था। श्री गुरुदेवके शुभ आशिर्वादसे वह मिट गया।

सीता रोड–१३।२७३ ता० १६-१-४६

महाराजश्रीके दर्शनार्थ लोग सावनके बादलोंकी तरह उमड़ पड़े। दर्शन करके आश्चर्य और आनन्द दोनों मिलते थे। भेटमें रुपया न लेनेपर तो उन्हे बड़ा अचरज होता था। लाला ठाकुमल-मुर्जमल बज़ाज़ तो महाराजसाहेब के अनन्य भक्त हो गए। रात्रिमें टिकाना नगरके लोगोंसे परिपूर्ण हो गया। पुलिशने कुछ उपद्रव उठाया था, परन्तु गांधी कस्तूरचंद, शेठ खुशालदास तथा शेठ जेठानंदकी वाक्-चातुरीने दो मिनटमें सब वायुमंडल शांत कर दिया। लोगोंने दो घंटे जी भरकर उपदेशपान किया, उनके श्रद्धालु मुख प्रसन्नतासे खिले हुए थे। बहुतोंको शुद्ध किया गया। त्रिपुटीका सहारा खूब काम करता था। यह स्थान कक्कड़ तालुका में है।

राधन–१२।२८५ ता० १७-१-४६

यहाँकी ज़मीनमें खार अधिक है। इसमेंसे लोग नमक भी निकालते हैं। सारी ज़मीन रेहीसे श्वेत बनी हुई है। चलनेके प्रसंगमें ख़ारसे पैरोंको बड़ा कष्ट होता है। गर्म हवा लगनेसे मुँह फट जाता है, और होठ तो दुफाड़े हो जाते हैं। श्रीमान् शेठ खुशालदासके परिश्रमसे हज़ारों भाइओंने लाभ लिया। बहुतोंकी शुद्धि हो गई। सिंधियों में विशेषता यह है, कि साधुका विश्वास करते हैं, भक्तिनिष्ठ भी होते हैं।

बाडह–१२।२९७ ता० १८-१-४६

श्रीमान् रायबहादुर अनन्तराम दीवानके दीवानखाने में ठहरे। श्रीशेठ खुशालदासके परिचयने सैंकड़ों लोगोंमें अपूर्व भक्ति उत्पन्न करदी। सबने उपदेश सुना और सैंकड़ों लोगोंकी शुद्धि की गई। शेठ खुशालदास का स्वास्थ्य ठीक न रहनेसे आप हैदराबाद चलें गए।

मोहनजो दड़ो–८।३०५ ता० १९-२०

'स्वर्गवासी 'ग़ालिब'ने उन सब भूतपूर्व आकृतियों के विषयमें अपने विचार प्रगट किए थे, जो कि मट्टीमें मिल गए हैं। और जिनमेंसे कोई कली और फूल के रूपमें प्रगट होते रहते हैं।' परंतु शायद उन्हें यह ज्ञात न था, कि वे सूरतें ही नहीं बल्कि उनका ऐश्वर्य-सभ्यता, उत्कर्ष तथा उनके कोष कोष्ठागार और भोग्य पदार्थ भी मट्टीमें छुपे पड़े हैं। सेंकडों-हजारों वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् पुरातत्त्ववेत्ताओंकी खोज और श्रमजीविओंकी कुदाल धरती माताकी छातीको चीर कर उस अनन्त वैभव राशिको देखनेवालोंकी आँखोंके सामने नितान्त अनिश्चित-संदिग्ध रूपमें इस प्रकार प्रकाशमें ले आती है, जिस प्रकार यूनानके प्रसिद्ध किडमसने अजगरके दाँत बोकर आँखों आगे एक बड़ी सेना उत्पन्न कर दी थी।

ईस्वी सन् १९२४ से पहले कौन जानता था और कह सकता था, कि सिन्ध-प्रान्तीय लाडकाना-मंडल (ज़िला) के समीप 'डोकरी' स्टेशनसे आठ मील पर दीखनेवाला वह बेढंगा टीला कि जिसपर 'हज़ारों बरसातें गिरी हैं, हज़ारों आँधियोंने नई मट्टी लाकर यहाँ फैंकी है। जहाँ हज़ारोंबार घास उगी, जिसे हज़ारों पशुओंने चरकर

उसे निमटाया, तथा बदलेमें गोबरके पोटे जहाँ तहाँ कर डाले। अधिक क्या लिखा जाय, जहाँ रेहीदार (खार वाली) धूल-मट्टी-घास-फूस-झाड़ी-झुँडो के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न दीख पड़ता हो, परन्तु अपने प्राचीनतम विशाल गर्भकी गंभीरतामें एक ऐसी जातिकी अतिजीर्ण शीर्ण सभ्यताका बोधपाठ छुपाए हुए था, जिसके देहसूत्रका प्रकाश एवं पुरानेपनका रहस्य बखेर कर रख देगा। जिसके अध्ययन पर भारतके पुरातन गौरव को सहारा मिल सकता है। प्रकृतिमाता भला करे उन पुरातत्त्ववेत्ताओंका, जिनकी तीखी गिद्ध-दृष्टिने "मोहनजो दडो" के पुराने स्तरों को उखेड़ कर ५००० वर्ष पूर्वके वे आश्चर्यजनक दृश्य प्रस्तुत कर दिए। जिन्हें देखकर साहित्य शोधक अपनी सैंकड़ों अपेक्षाओं और अगम्य दृष्टिओंका परिवर्तन करनेके लिए विवश हो गए। क्योंकि अब तक तो मात्र यही बताया जाता था कि ईसासे १५०० वर्ष पहले उत्तर-भारतमें बसनेवाली आर्य जाति तिब्बतके रास्तेसे भारतमें उतरी, उस समय यहाँ वन्य और बेघर-दर वाले नग्न मनुष्योंके झुंडके अतिरिक्त किसी मनुष्यका लक्ष्मतक न था। परन्तु 'मोहनजो दडो' की उदर-कंदरामें दुबके हुए सिक्के-मोहरें-जवाहरात. आवश्यक तथा घरेलू उपयोगी वस्तु और नर्तकिओं-धनाढ्योंके बुत आदि अन्यान्य वस्तु-ओंने इस गोरखधंधेको सुलझाकर बतादिया कि, ५००० वर्ष पूर्वका भारतशिल्पी और स्थापत्यकलाकारोंसे कितना समृद्ध था। इन दबी चीज़ोंको उगल कर यहाँ के इन टीलोंने सिद्ध कर दिया, कि अबकी भाँति ५००० वर्ष पहले भी विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकोंकी कुछ कमी न थी। यहाँ की बहुतसी वस्तुओंसे मिस्र-शाम-रोम-यूनानसे पल्ला

पकडनेका परिचय भी मिलता है, तथा यह भेद अच्छे प्रकार खुल जाता है कि उन्होंने भारतसे व्यावसायिक दृष्टिसे कितना मेल जोल करलिया था।

मोहन जो दड़ो—वास्तवमें यह कोई शब्द नहीं है, बल्के सिंधी-पारिभाषिक तीन शब्दोंकी बिगड़ी हुई अवस्था है। अर्थात् "मोइयाँ दा दाडो"। जिसका अर्थ होता है 'मरने वालोंका घर। इस स्थलकी खुदाई से पूर्वकी अवस्था पर दृष्टिपात किया जाय तो कहना पडेगा, कि ऊँचे नीचे टीले और भूतलशायी मकानोंकी कहीं कहीं दीख पडनेवाले भीतोंके सिरे एक प्रकारसे आश्चर्यपूर्ण एवं भयानक और बीभत्स दृश्य प्रस्तुत करते हैं। और सिंधी लोगोंमें तो एक प्रकारसे किंवदन्तीके रूपमें यह जनसाधारणमें प्रसिद्ध ही था, कि किसी समय भूतों राक्षसोंका समुदाय यहाँ वास करता था, जो अपने बुरे और घृणित आचरणों के कारण एक कालमें ही मर गए, किन्तु अब उनकी प्रेतात्माएँ इस जगह घेरा डालती, तथा मंडराती रहती हैं। यही कारण है कि लोग दिनमें भी इस ओर आते हुए भयसे त्रस्त हो जाते हैं। साथ ही नादान-अबोध बच्चों को इस नामसे डराया भी जाता था, कि वह "मोइयाँ जो दडो" अर्थात् 'मरनेवालोंका घर' है।

विदित हो कि 'दिल्लीकी बेगमोंकी परिभाषा' में 'मुआ' 'मुआ-मुआ बराबर' में मोया शब्द सिंधी भाषामें 'मोइयाँ' से टक्कर खाकर संबंधित हो जाता है।

'अहदे अतीक़' के इतिहास पर दृष्टि डालने से इस परिणाम पर पहुँचा जाता है, कि सभ्यता और उन्नत गौरवतामें उन जातियों ने

अधिकाधिक गौरव प्राप्त किया है, जो नद-नदीके किनारे पर या दो नदियोंकी उर्वरा भूमि पर बसती थीं। क्योंकि ऐसी अवस्थामें वह मनुष्यकी एक सबसे बड़ी और आवश्यक—अर्थात् पानी और अर्थवती भूमिके कारण अन्यान्य सामग्रियोंसे परिपूर्ण बडी विस्तृत सीमा तक निश्चिन्त रूपसे इन मौलिक कार्योंकी ओर अग्रसर होकर लक्ष्य कर सकीं। जिनका साहससम्पन्न रूप था, वे, किसी प्रकारके औदरिक विचारसे व्यग्र न थे। अतः मिश्रमें नील नदी, ईराक़में दजला, पश्चिमी ईरानमें कारन, और सीस्तानमें हलमन्द ऐसीं ही उपयोगी नदिएँ हैं, जिन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार "मोहनजो दाडो" निवासियोंके लिए मात्र सिंधुनदी लाभप्रद न थी, बल्के वे एक और बड़े नदसे भी लाभ लेते थे जिसका नाम 'महरान' था। जिसका शोषण होने के कारण उसका अस्तित्व ईसाकी १४ वीं शताब्दीतक समाप्त हो गया। इन सब नदियोंके तट पर उन्नतिशील होनेवाली मानुषी सभ्यताएँ किसी दृष्टिसे विशेषतायुक्त-भिन्नतायुक्त और सर्वोत्कृष्टतापूर्ण थीं। इसी लिए इनका माप लगाना सुगम हो जाता है।

चिरन्तन प्रदेशोंकी भाषाएँ इसके केन्द्रित ढंगके समान हैं, इन सबने अपने मानुषिक विचारोंको चित्रकला द्वारा भी प्रस्तुत किया किन्तु फिर भी एक दूसरेसे असमान रहे हैं। अतः जब एलाम और मोसोपोटामियाकी खुदाईके प्रसंगमें पाँच गिल तख्तीएँ ऐसे विलक्षण रूपमें उपलब्ध हुईं। जिनपर अक्षर पंक्तियाँ आजकल के ढंगसे कुछ विशेष थीं, यही कारण है कि उन्हें पढ़ा नहीं जा सकता था। उसे सूक्ष्म वीक्षणसे देखा गया तो उनपर बैलोंका चित्र

'मोहनजो दड़ो' के दढ़ियल सर्दारका प्रस्तरीय वक्षःस्थलाकार

'मोहनजो दड़ो'की एक नर्तकी-तांबेकी, नृत्य करती युवतीका बुत

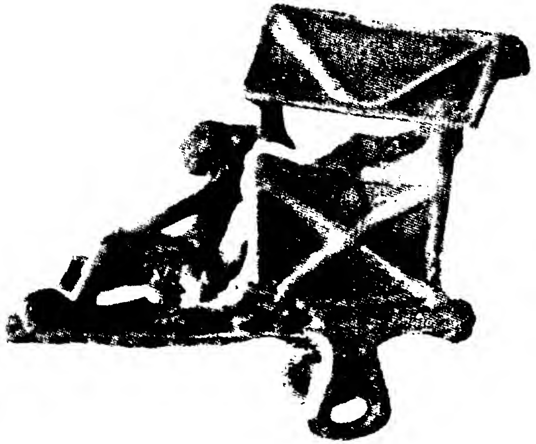

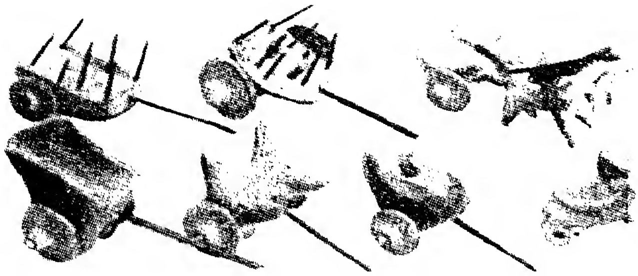

हडप्पाके ताम्बेके रथ और आदर्शमय मट्टीकी गाडिएँ (खिलौने)

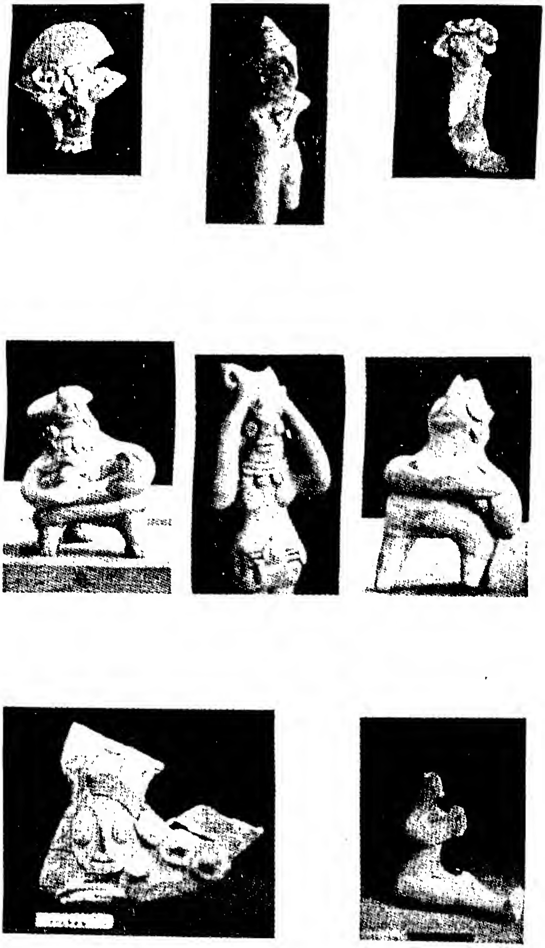

हड़प्पाके - मट्टीके शरीरच्छायित आकार

नवजात डिंभको डालकर लेजानेका बर्तन (हडप्पा)

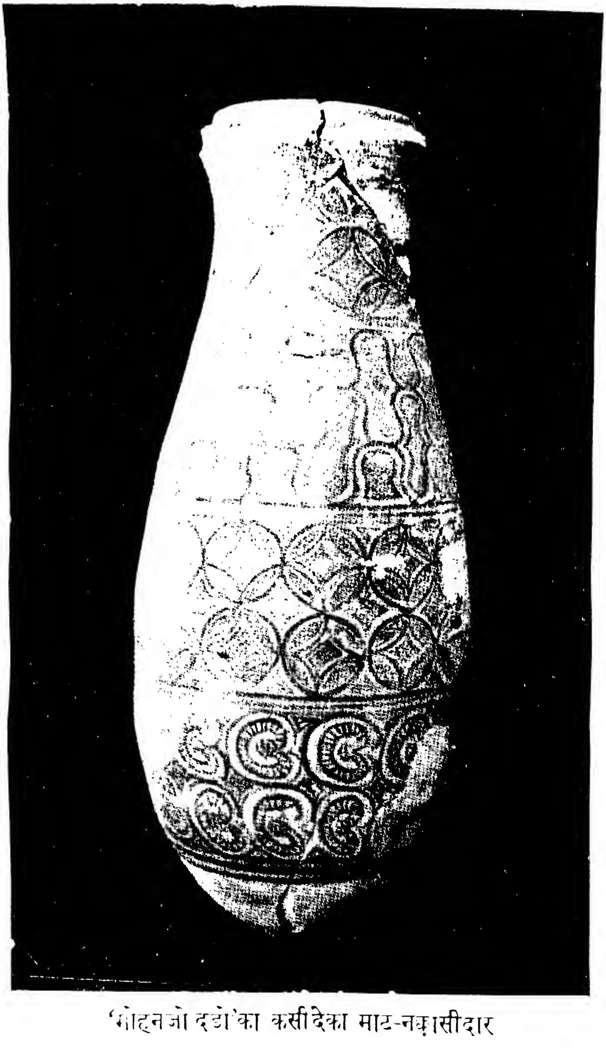

'मोहनजो दड़ो'का कसीदेका माट-नक़ासीदार

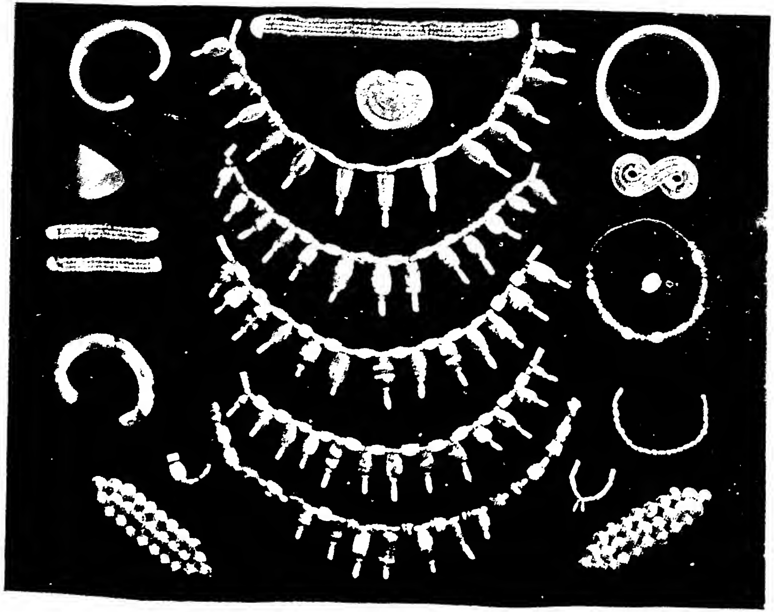

जड़ाऊ गहनोंके नमूने (हड़प्पा)

विशेष प्रकारके भूमिसात् (कबर) हुए पदार्थ और ढांचा (हड़प्पा)

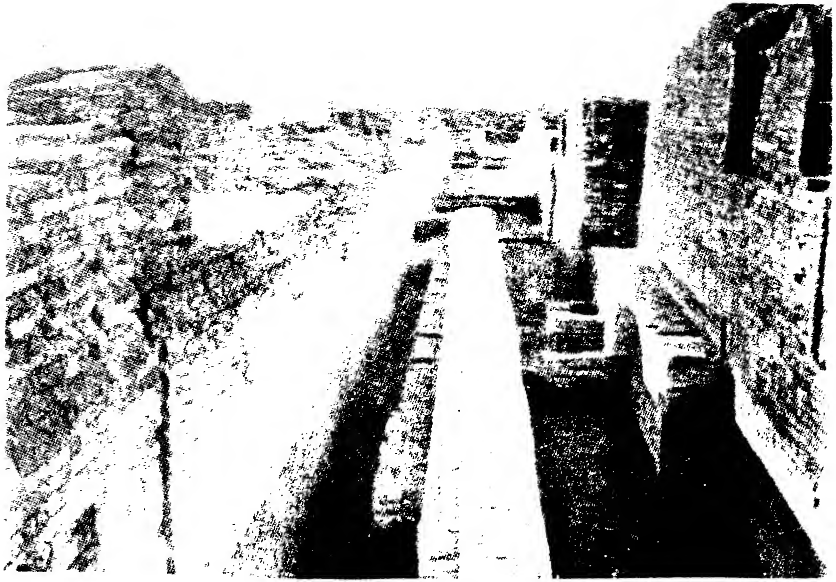

D. K. अहातेकी पच्छमकी गलीकी एक ढँकी हुई गुप्त नहर ('मोहनजो दड़ो')

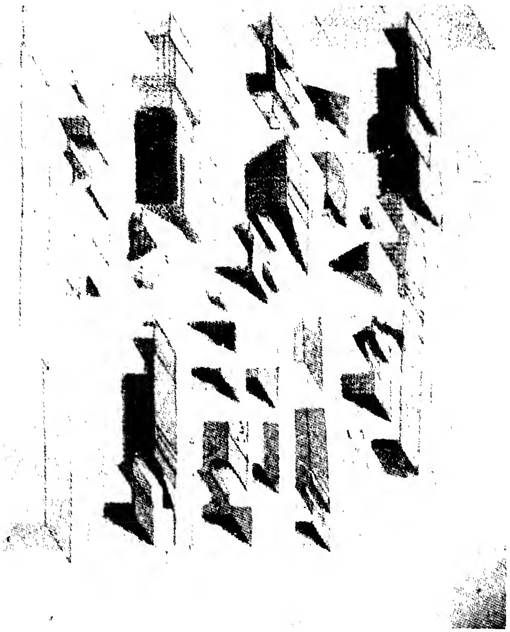

१३ त्रिकोण कमरोंके चित्रण V. S. एरिया ('मोहनजो दड़ो')

H. R. अहातेका नरकंकाल समुदाय ('मोहनजो दड़ो')

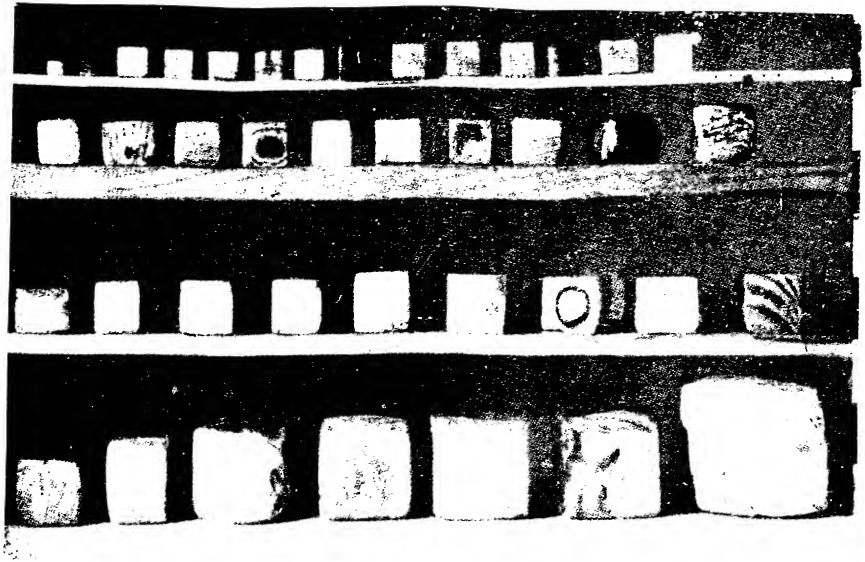

पुराने समयके तोलने बाट ('मोहनजो दड़ो')

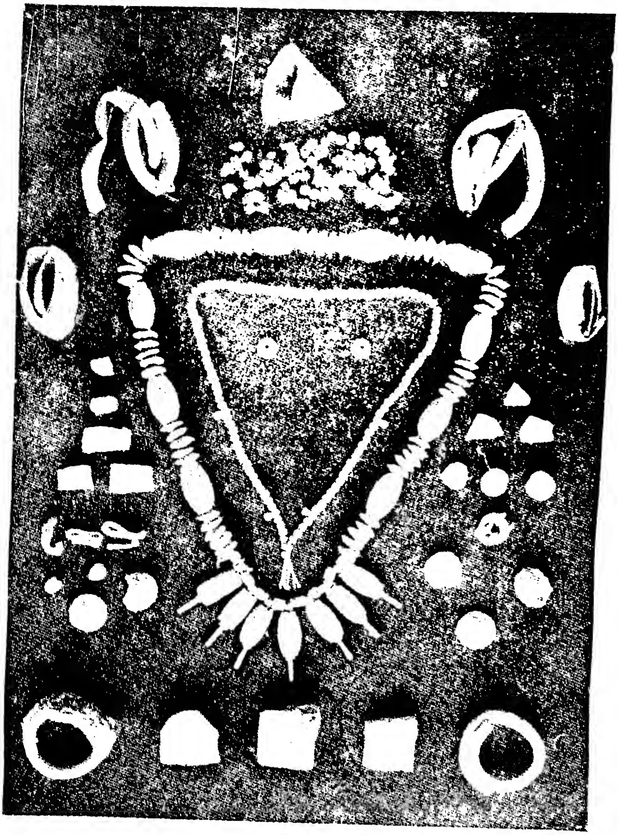

'मोहनजो दड़ो का ज्वेलरीका कार्य, जवाहरातसे जड़े आभरण

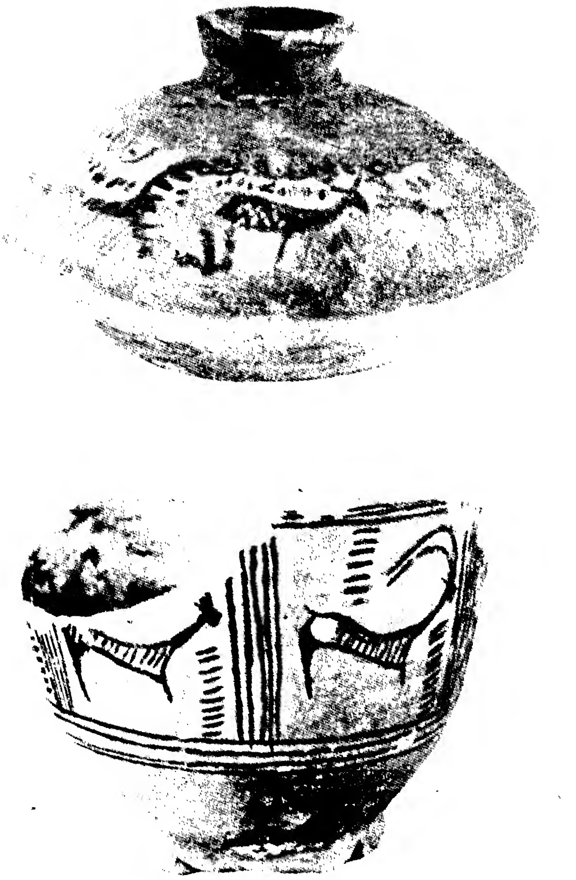

मोहनजोदडोके कशीदेनुमा मट्टीके बर्तन

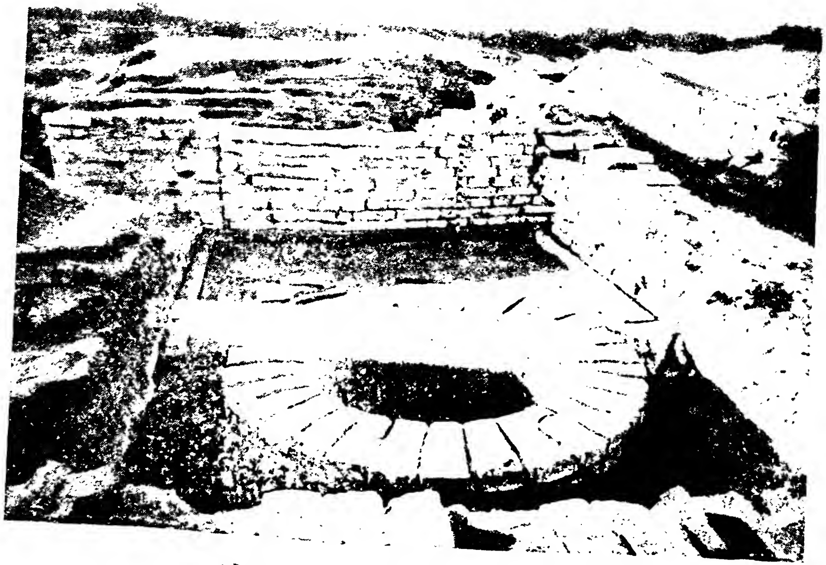

'मोहनजो दड़ो' का एक बड़ा घेरेदार-कुआँ

हडप्पाके ध्वंसावशेष दुर्गके गहरे खुदे हुए आठ स्तर - सीढियोंके मार्ग

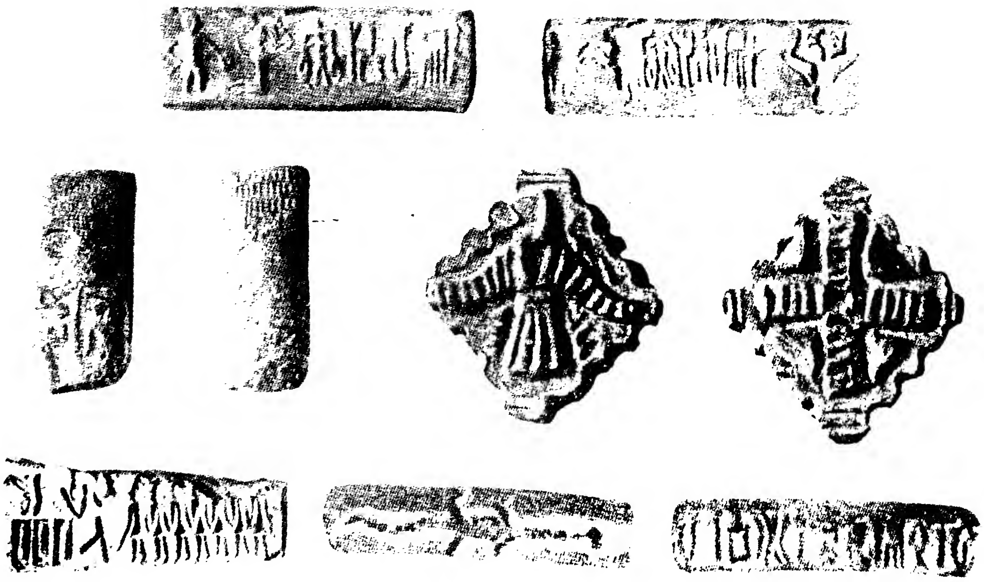

'हड़प्पाकी सील' मुहरें और मुहरके सदृश कार्य

'मोहनजो दड़े'से निकला हुआ स्तूप-टीलेकी जाँच पड़ताल

खुदा हुआ था। इससे यह अनुमान होता है कि वह किसी पुराण पुरुष की मृदु संस्मृति है, स्पष्टतया कहा जा सकता है कि वह ऋषभदेव (वृषभनाथ) के युग तथा उनकी कृतिकी याद दिला रही है। साथ ही यह अनुमान हो जाता है, कि यह वस्तु बहुत संभव है, किसी अन्य प्रदेशसे लाई गई है। तब सिंधकी तत्स्थलीय खुदाईके पश्चात् यह भेद अपने आप खुल जाता है, कि मात्र इन्हें ये अनुपम वस्तुएँ "मोहनजो दडो" से ही उपलब्ध हो सकती हैं।

इसी प्रकार कातने और बुननेके शिल्प विज्ञानसे सिंध और नीलके निवासी समकालीन विज्ञताके नाते एक दूसरेसे चिरपरिचित थे। परन्तु यहाँ रूई और वहाँ सनका उपयोग एक ऐसी भिन्नताविशेषता रखता था, कि यदि किसी मृतकका शव मिस्रके अतिरिक्त किसी अन्य स्थलसे उपलब्ध होता था, तब उस पर लिपटी हुई सन की पट्टियाँ विवश होकर बोल उठतीं, कि मरनेवाला मिस्रके वंशजों में से है। किन्तु यदि सनके अतिरिक्त सूती पट्टियाँ हों तो फिर वह विचारणीय विषय हो जाता है।

मोहनजो दडो—की खुदाईके पीछे अगणित प्रसादोंसे परिपूर्ण एक महानगर निकला है। जिसे देख कर आश्चर्य होता है, कि उस प्रत्नकालके लोग स्थपत्य कलाके कितने धुरन्धर विद्वान् थे।

छोटे छोटे घर दो दो कमरोंसे सन्नद्ध हैं, और बड़े मकान निवासभूमिके विश्वाससे उत्तम महलसे प्रतीत होते हैं। इनमें अधिकांश ९७ फुट लम्बे और ८५ फुट चौड़े हैं। ३२ गज़ चौकोर सहन छोडकर शेषभागमें विस्तीर्ण कमरे, दालान, नौकरोंकी वासभूमि, गोदाम, स्नानागार, व्यायामशाला आदि सभी कुछ निर्मित हैं।

विश्रामगृह तो विशेषतया उपरिभागमें होते थे। बरसात या दूसरे प्रकार का पानी निकलनेके लिए भूगुप्त-दृढ और पटी हुई मोरिएँ भी हैं। पाँच हजार वर्ष बीतने के पश्चात् भी यदि आज इन मकानोंमें निवास किया जाय तो वे भलीभाँति काम दे सकते हैं। इन नालियोंकी समाप्ति पर मकानके बाहर चौबच्चे बनाए गए हैं। जिनमें गंदा पानी एकत्रित होकर शुष्क होता होगा। या मेहतर आदिके साफ करने का प्रबंध होगा। कुछ ऐसे प्रसाद भी निकले हैं, जिनकी बहिर्मुखी बनावटसे निश्चय होता है, कि ये पौषधशाला (साधना-भवन या धर्मस्थान) रहे होंगे। अधिक संख्यक आगार सर्वतोभद्र (कई कई मंज़िले) थे। और बहार उतरनेवाले सोपान को देखकर विचार आता है, कि दोनों मंज़िलोंमें शायद भिन्न भिन्न कौटुम्बिक लोग रहते होंगे। नगर बहुत बड़े विस्तारमें होगा। क्योंकि स्थान स्थान पर ऐसी ही विपुल पंक्तिएँ नज़र आती हैं, जिन पर किसी समय गृहाराम एवं उपवनोंने अपना रंग जमाया होगा।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे निर्माण किये गए सर्कारी उद्यानोंके अतिरिक्त एक एक निष्कुट (गृहवाटिका) भी होता था। मकानोंकी दीवारोंकी चौडाई (आसार) इसके प्रमाणभूत हैं।

बड़े निलयों (घरों) में जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करनेके लिए एक एक गृह कूप होता था। तथा छोटे मकानोंमें रहने वालोंके लिए साझेके कूप, बाज़ारके चौराहों या मकानोंके अन्तरालों पर कुइएँ बनाई जाती थी। इन पर सायं प्रातः आजकलके पनघटोंका सा समा बंध जाता होगा। क्योंकि घट आदि पात्रोंके बार बार रक्खे जानेके कारण परिमंडलाकार गढ़े कुओंकी मेंढपर एकसे अधिक

चिन्होंका प्राप्त होना यह सिद्ध करता है कि पानीकी खिंचाई कई जगहसे होती होगी।

इस समस्त ऊजड़ नष्ट-प्रणष्ट बस्ती पर सूक्ष्म वीक्षणपात किया जाय तो आश्चर्य होता है, कि नगरका आरंभिक चित्र खिंचने वाला कितना विकास प्राप्त एवं कुशाग्रबुद्धिमान् होगा। उसकी मस्तिष्क शक्ति कितनी विकसित होगी। उत्तर-दक्षिणकी वीथिएँ बिल्कुल सीधी हैं। किसी एक स्थल पर भी टेढापन या मोड़ नहीं है। इन मार्गों की दोनों ओर समान प्रकारकी पंक्तिओमें निर्मित मकानोंके भग्नावशेष मनुष्य की मस्तिष्क शक्तिके विलक्षण विकासका आभास कराते हैं। इन्हें देखकर अमरीकाकी आधुनिक स्थपत्यकला फीकी सी प्रतीत होने लगती है। यह तो मुक्त कंठसे कहे बिना नहीं रह सकते कि वर्तमान रायसीना (नई दील्ली) ५००० वर्ष पहले के 'मोहनज़ो दडो' की कापी करनेके अतिरिक्त उसमें नव्यता को खोजनेसे भी नहीं पाया जा सकता। और यदि आज इसको दुनियाका सर्वश्रेष्ठ नगर माना जाता है, तो सैद्धान्तिक विश्वाससे अनुमानतया सिंधकी इस प्राचीनतम बस्तीके·········संबंधमें भी यही सम्मति स्थिर करनी पडेगी।

नगरके मध्यभागमें बीस स्तम्भों वाला ईंटोंसे बना हुआ एक विशाल हॉल है, जिसकी लंबाई चौड़ाई का माप अनुमान ९०० मुरब्बा गज़ है। इसका उस समय उपस्थानशाला (कचहरी) के रूपमें उपयोग होता होगा।

परन्तु सबसे अधिक वर्णनीय एवं दर्शनीय वस्तु है वहाँ का विस्तृत कुंड। यह खूब लंबा चौड़ा और सुन्दरतम है। किसी समय

यह तैरने और स्नान करनेकी चिज़ रही है। यह ३९ फुट लम्बा और तीस फुट चौडा तथा ८ फुट ऊँडा है। कुंड के चारों ओर व्यवस्थित कमरे-उनके वरांडे तथा नौकरोंके बैठनेके कोठे तक विद्यमान हैं। कुंडमें उतरनेके लिए आठ दश सीढियाँ हैं। कुछ अन्तर पर उपरिस्थ भागमें कुएँ भी हैं। जिनसे पानी निकाल कर उसमें भरा जाता होगा। एक कोनेमें शुष्क कोयले और राख आदिका ढेर देख कर अनुमान लगाया गया है। कि वहाँ बल्लियों और तख्तोंका सायवान अवश्य रहा होगा।

कुंड-कोठडियाँ-वरांडे आदिके निर्माणसे उस समय की स्थपत्य कलाके संबंधमें बहुत ही ऊंची सम्मति स्थिर की जा सकती है। कुशाग्र-बुद्धि-मस्तिष्कोंने उक्त रचना में विलक्षण कारीगरी कर दिखाई है और इतना अच्छा टिकाऊ पक्का मसाला लगाया गया है जो कुंडकी दिवारोंको गला न दे। सर्व प्रथम पक्की और चौकोर चार चौडी भींत हैं। जिसकी चिनाईमें खड़ीया-मट्टी और चूनेकी मिश्रणतासे बनाया हुआ ऐसा मसाला उपयोगमें लाया गया है, जो हज़ारों बर्ष बीतने पर भी गिरने-पड़ने झड़नेसे कोसों दूर रहे। इसकी धनुषाकार रचनामें वे रालका मसाला लगाना भी नहीं भूले हैं। दूसरी पंक्तिमें जली हुई ईंटें लगाई गई हैं। इसके पश्चात् अव्यवस्थित और विषम रचनात्मक ईंटोंका एक स्तर लगानेके बाद पाँचवीं भीत उसी प्रकारसे जली ईंटों की है, बड़ी पक्की है। यही कारण है कि ५०८० वर्ष व्यतीत होने पर आज भी यह कुंड उपयोगमें लानेके योग्य है।

कुंडके पास ही एक ऐसा कमरा है, जिसे औष्णिक-स्नानागार

कहा जा सकता है। भीतोंमें छोटे मुँहके ऐसे छिद्र बने हैं, उनके देखनेसे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि उससे गर्म हवा प्रविष्ट होकर अन्दरके सारे क्षेत्रमंडलको गर्म कर देती होगी। इस अनुमानके स्थिर होनेका यह भी एक कारण है, कि इस स्थानमेंसे कुछ ऐसे तीक्ष्ण और आग्नेय प्रकृतिकी राख निकली है कि जिसको जला कर उष्णता उत्पन्न की जा सकती है। यूनान और रोमका इतिहास इस बातको प्रमाणित करता है, कि इस ढंगके रूपक वहाँ भी थे। तथा शारीरिक दृष्टिसे लोग इनका खूब उपयोग करते होंगे।

ऐसे प्राचीन नगरोंका विशाल देहसूत्र कृषि और व्यवसायका केंद्र समझा गया था। खुदाई के बाद कई स्थलोंसे गेहूं और जौ के ऐसे नमूने पाए गए हैं, जो उस समय बोए जाते थे। पुरातत्त्ववेत्ताओंने सूक्ष्मवीक्षणसे अन्वेषण कर के बताया है, कि ऐसे नमूनेके गेहूं आज पंजाबके कुछ विभागोंमें होते हैं। यह छाती ठोक कर तो नहीं कहा जा सकता कि गेहूं और जौ इन दोनोंमें से किस अनाजकी खेती प्रारंभमें आरंभ की गई। क्योंकि ये दोनों अन्न मिस्रके भूगर्भस्थ कबरोंके अंदरसे भी मिल चुके हैं, जिन्हें समकालीन उपज कहा जा सकता है, इन क़बरोंसे निकला हुआ जौ यहाँ के जौ से अच्छे प्रकारसे मिलता है, जोकि **'मोहन जो दड़ो'** से उपलब्ध हुआ है।

ईसका अन्तिम शोधन करके यह निश्चय किया है, कि जौ और गेहूं बोनेका श्रीगणेश भारतवर्षसे ही हुआ है। अतः यह स्वयं सिद्ध है, कि उक्त देशोंके इतिहासमें भारतवर्षीय सिंध प्रान्त और मिस्रके व्यापारिक संबंध बहुत दिन तक स्थिर रहे होंगे।

"मोहन जो दड़ो" के निवासी कई प्रकारका माँस भी खाते थे। क्योंकि गाय-भैंस-भेड-बकरी और सूवरके अतिरिक्त कछवे घड़ियाल मछली एवं कई प्रकारके पक्षिओं तक की अस्थियाँ कुछ ऐसे रूपमें मिली हैं, जो कि आगमें पक कर निकली कही जा सकती हैं। खानेकी पद्धतिके अनुसार पत्थर और तांबेकी रकाबियोंके अतिरिक्त सीपके चमचे विशेष रूपसे वर्णनीय हैं।

पशुओंके ढाँचोंसे पता चलता है कि पशुपालनके अतिरिक्त खेती-बाड़ी-सवारी और बोझा ढोनेके लिए घोडे-ऊंट हाथी और साँड (बेल) आदि भी पालते होंगे। क्योंकि इन पशुओं के ढाँचे वासभूमिके योग्य मकानोंके ऐसे विभागोंसे मिले हैं जो निस्संदेह अश्वशाला-गोशाला-बैलखाना-फीलखाना आदि के रूपमें उपयुक्त होते होंगे।

कुछ खिलौनोंके रूपमें उपयुक्त होनेवाले बहुत से मट्टीके जानवरीय आकार भी मिले हैं। जिनमें एक ऐसा कुत्ता भी सम्मिलित है, डोरा बांधनेके बाद यदि उसकी पूंछ खींची जाय तो उसका मस्तक हिलने लगता है।

ये लोग सोना-चाँदी-तांबा और सीसा आदि का उपयोग करना भी जानते थे। परन्तु इन्हें लोहेका ज्ञान न था। इनके यहाँ सोने चाँदीके आभूषण भी बनते थे। ये दोनों मूल्यवान् धातु दक्षिण-भारतके उन स्थलोंमें पाई जाती होंगी, जो आजकल गोलकुंडा-कोलार और अनन्तपुरके नामसे प्रसिद्ध हैं।

ताँबेकी आय राजपुताना बलोचिस्तान और ईरानसे होती होगी। बलोचिस्तानकी खुदाईके बाद वहाँ बहुत सी ऐसी वस्तुएँ भी मिली

हैं, जिससे ज्ञात होता है, कि वहाँके लोग और सिंधी लोगोंका आपसमें खूब मेल जोल रहा होगा। व्यापारिक केंद्रोंकी स्थापना भी की गई होगी।

क्योंकि इस अद्भुत भूभाग पर ताँबा पत्थरके स्थान को लेकर उसकी सब पूर्ति कर चुका था। अतः गुप्त और आवश्यक सामग्रिएँ तथा युद्धके शस्त्रादि सब कुछ ताँबे के ही बनने लग पड़े थे। तथा साधारण स्थितिके लोगोंमें उसके आभूषण भी पहने जाते थे। शुद्ध-टीनके स्थान पर उसे छः से १२ प्रति शत ताँबेमें मिलाकर काँसीके रूपमें भी उसका उपयोग किया जाता था। क्योंकि यह एक मानी हुई बात है, कि ताँबेकी अपेक्षा काँसी द्वारा बने हुए शस्त्रोंकी धार अधिक पैनी होती है। टीन अथवा काँसीकी प्राप्ति उत्तरी ईरान अथवा पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तानसे दर्श-बोलानकी राहसे होता होगा।

काँसीकी चीजें देखकर इतिहासज्ञोंका यह श्रद्धान घट गया कि भारतवर्षमें लोहेसे पूर्व काँसीका समय प्रगटित नहीं हुआ था। प्रासाद निर्माणकी वस्तुओंमें काम आनेयोग्य पत्थर दूर और समीप स्थानसे मँगवाया जाता था। 'करथार' की पहाड़ियोंसे खड़िया और मट्टीके अतिरिक्त जो चूनेमें मिलाकर चुनाईके काम आता था, ऐसा ज़राहत पत्थर भी लाया जाता था। जिससे खिडकियोंकी जालिएँ-जालीदार कटहरे-बहुतसे बुत और देवताई मूर्तियाँ भी तैयार होती थीं। लाल मणि और नीलमणि खुराशानके अतिरिक्त पामीर पश्चिमी तुरकस्तान तिब्बत और अन्यान्य स्थानोंसे बहुमूल्य पत्थर आते थे, जो उस समयकी सौंदर्यता एवं विलासिताकी क्षतिपूर्ति

करनेवाले समझे जाते थे। इन अमूल्य रत्नोंके अतिरिक्त हाथीदान्त, सींग और सीपकी भी बड़ी क़दर थी।

अलग अलग मकानोंसे भिन्न भिन्न प्रकार के तकलोंका उपलब्ध होना यह सिद्ध करता है, कि उस समय के साधारण और विशेष सब ही प्रकारके मनुष्योंमें, कातने की प्रथा तो एक मामूली बात थी। धनाढ्य घरोंसे हाथीदान्तके मूल्यवान् तकले निकले हैं। तब इसके विपरीत दीन लोगोंके यहाँ ताँबा सींग या सीसेके तकलोंसे काम होता था। ऊन और रूईकी उपज उन दिनों खूब थी।

अनुमान है कि उस समय सिन्धप्रान्तका बुना हुआ कपड़ा बहुत दूर कई देशों-वलायतोंमें जाता होगा। यही कारण है। कि 'बाबल' में इसे सिंधु तथा यूनान में 'संदून' कहते हैं, तथा ये शब्द सिन्धुसे बने हैं।

दोबुतोंकी बाहरी वेशभूषासे अनुमान लगाया है, कि शृंगार रचनाके समय परिधानमें एक लंबी शाल भी सम्मिलित की जाती थी। जैनपरिभाषामें इसे उत्तरासंग कहते हैं। उस समयके पुरुषोंमें विशेषतया दाढी या गलमुच्छे रखनेकी प्रथा भी थी। साधारण लोगोंमें अधिकतर मूंछे मुँडवानेका अभ्यासभी था।

बड़े बड़े घरोंकी स्त्रियाँ आधुनिक पश्चिमी सभ्यताके अनुसार बालोंको कतरवाया भी करती थीं। परन्तु अधिक संख्यामें लटोंको चुटलेमें जकड़कर जूड़ेके रूपमें गुद्दी के पीछे बाँधनेमें अपना विशेष सौंदर्य समझती थीं। नाचने वाली नर्तकिओंकी तीन मूर्तियाँ काँसीकी ढली हुई ऐसी उपलब्ध हुई हैं, जिनके बाल रमणीय और भले मालूम होते हैं।

आभूषणोंमें मालाएँ-चुटले-गुलबंद-मुद्रियाँ-करनफूल-बालियाँ और नूपुर आदि विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। आभूषण सोना-चाँदी-हाथी-दाँतसे लगाकर काँसी और सींग तक के बनते थे। बहुतसे काचके मोती भी मिले हैं। जिन्हें डोरेमें पिरोकर कमर या गलेमें बाँधनेकी कंठियाँ बनाई गई होंगीं।

आयुधके योग्य शस्त्रों और खाने पीनेके वर्तनोंको देखकर अनुमान होता है, कि सिंधमें पत्थरका समय समाप्त हो कर धातुके समयका आरंभ हो गया होगा, क्योंकि दोनों ही प्रकारकी वस्तुएँ और औज़ार उपलब्ध हुए हैं।

हथियारोंमें धनुष-बाण-बर्छी-भाले-परशु-छुरी और गदा आदि सम्मिलित थे। मात्र एक खड्ग (तलवार) की कमी थी। साथ ही शारीरिक रक्षाके लिए ही नहीं वरन् उस समयके लोगोंने आखेटके समय परिधानोचित सन्नाह भी बनाए थे।

आयुधोंकी अल्पतम संख्या से यह नितार आता है कि तत्का-लीन लोगोंका आपसमें मतभेद न होता था। अतः कलह विग्रह और रक्तपात बहुत ही कम होता होगा। इन्हें किसी शत्रु के आक्र-मणका भी भय न होगा। ये लोग खेती बाड़ीके सब ओज़ार तथा क्षौर कर्म करनेके लिए क्षुरप्र (उस्तरे) आदि भी उपयोगमें लाते थे।.........…इनमेंसे बहुतोंकी धारें इतनी अधिक तीक्ष्ण हैं कि आज भी इनसे काम लिया जा सकता है।

तोलनेके बाट बट्टे भी अचरजमें डाल देते हैं, छोटीसे छोटी वस्तुके वोझका माप लगानेके लिए स्लेटके आकारके चौकोर खंड हुआ करते थे। हाँ अधिक भार मापनेके बाट-तो विशेष प्रकारके

ही होते थे। क्रमानुसार देखा जाय तो इनमें एकके बाद दुगने भारके बाटोंका क्रम रक्खा गया है।

अब तक जो भी बाट-बट्टे मिले हैं, उनका भार मान १-२-४-८-१६-३२-६४-१६८-३२०-६४०० और १६०० से अपेक्षा रखता है। इनमें सोलहा की अपेक्षा का बट्टा सबसे अधिक काममें लाया जाता था। जिसका भार मान १३०७१ ग्राम है। यदि बाटको सर्व प्रथम एक छटांक मान लिया जाय तो यह कहा जा सकता है, कि वह अब भी उसी क्रम में है। अर्थात् छटांक, आध पाव, पव्वा, आधसेर, सेर, दो सेर, दश सेर, मन और अढ़ाई मन, इत्यादि।

खाने पीनेके वर्तन अधिकतर मट्टीके बने हुए मिले हैं। शकोरेकी आकृतिके आकारके एक विशेष प्रकारसे वर्तनके अगणित टुकड़े उपलब्ध हुए हैं। इन्हें देख कर यह परिणाम निकाला गया है, कि इस साधनसे एक बार पानी-दूध आदि पीकर उसे फेंक दिया जाता होगा। यदि यह सत्य है तो कहना होगा, कि वही पद्धति सारे भारतीयोंमें आज भी है। इन वर्तनोंको देखकर अचरज होता है, कि प्रजापति (कुम्हार) की कला कितनी अधिक उपादेय और प्रचलित थी। जिनके बनानेके लिए उसका चक्का व्यवधान रहित-बिना रुके चलता रहता होगा।

इनमेंसे बहुतसे ऐसे वर्तन भी पाए गए हैं, जो कि सजावटके काममें आते होंगे। उन्हें सुशोभित करनेके लिए नाना रंगों द्वारा फूल-पत्ती-बेल बूंटेकी नक्काशी तथा उन्हें दृढ मज़बूत रखनेके और चमकानेके लिए रोगन चढ़ानेका रिवाज तो उस समय एक साधारण बात थी। एक महाकाय भवनसे-जो कि किसी गण्य मान्य-कुलीन-

धनाढ्य का प्रासाद रहा होगा, उसमें से एक इमरतबान आभूषणोंसे भरा हुआ निकला है। जिसकी बनावट-रंग-रोगन आदि इतना पक्का प्रतीत होता है कि हज़ारों वर्ष व्यतीत होनेपर भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

बालकोंके खिलौनोंमें साधारणतया पालतू जानवरों की मूर्तिओंके सिवाय ऐसी २ चिड़िया और गुड़ियाएँ भी निकली हैं कि जिन्हें सीटी के रूपमें बजाया भी जा सकता है। बहुत से पक्षिओंके पंजोंमें पहिएँ भी लगे हैं, किन्तु सबसे अधिक मानस बुद्धि उस समय चक्कर खाने लगती है, जब कि एक मट्टीकी बैलगाडी को देखा गया। उस वस्तुकी रचना को देखकर विश्वास होता है, कि वह रथके आकार प्रकारसे पूर्णतासे मिलता जुलता है। जो उरइराक़-और मिस्र प्रदेशमें सवा तीन हज़ार वर्ष पहले उपयुक्त हुआ है। ....यदि दूसरे शब्दोंमें यह कहा जाय कि वह 'मोहनजो दडो' के समकालीन ही था तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

उस समयके सिंधी लोग लेखनकला के भी अद्वितीय लिपीकार थे। ऐसी गिल तख्तियां और सीलें मुहरें भी प्राप्त हुई हैं, जिनपर वन्यजीवोंकी आकृतिके साथ साथ कुछ लिखा भी है। अति परिश्रम करनेपर भी आधुनिक विद्वान् अब तक इस लिपीको नहीं पढ़ पाए हैं। किन्तु लिपीके ढंगसे अनुभवके साथ निश्चित हुआ है कि वह 'बाबल' बनेवाके अक्षर मेख़ी या मिस्रकी लिपीसे निकट संबंध रखते हैं। फिर भी इतना अनुमान तो अवश्य लगाया गया है कि वह लिपी दहनी ओर से बाई ओर को लिखी जाती है।

१८६७ ई. सन्की बात है कि मिस्टर 'इ. टाम्स' नामक पुरातत्व-

वेत्ताने अपने विचार प्रस्तुत किए थे कि आर्योंने अपनी खानाबदोशीके समय स्वयं किसी लिपीका आविष्कार नहीं किया । बल्के भारत पहुँच कर एक मण्डलान्तर्गत स्थायी रहनेका निश्चय कर चुके, तो वहीं की लिपीको स्वीकार करके उसी के द्वारा अपने विचारोंको लेखबद्ध करने लगे । उस समय उनकी तद्दृष्टीय लक्ष्यको स्वीकार करने के लिए कोई प्रस्तुत न था । क्योंकि सब साहित्य इस विस्मृतिके गर्तमें पड़े हुए थे, कि आर्योंके आगमनके समय उत्तरभारतमें मात्र द्राविड़ जातियाँ ही बसती थीं । जो स्वयं भी गृहहीन और नितान्त अप्रतिष्ठित थीं । परन्तु 'मोहनजो दडो' की खुदाई के बाद यह भ्रमणा दूर हो गई, तब मि० टाम्सके विचारको प्रोफ़ेसर 'लॅंग्डन' ने दुहराकर पुनः पूर्ण विश्वासके साथ प्रस्तुत करते हुए यह छाती ठोककर कहा, कि वह आद्य और ब्राह्मी लिपी थी, जिसमें भारतके प्रतिष्ठित सिद्धान्त लिखे गए थे । वास्तवमें उसका सिंधी लिपीसे घनिष्ठ सम्बंध है । परन्तु वह दिन दूर नहीं है, जब कि समस्त मट्टीकी तख्तियाँ उस समयकी प्रचलित भाषाओंके समान पढ ली जायँगी । यदि उसमें सफलता प्राप्त हो गई तो निस्संदेह भारतके इतिहासमें स्वर्ण-अक्षरोंमें कुछ और ही गूढ तम विषय लिखा जायगा ।

उल्लिखित मुहरोंके अतिरिक्त कई वर्तन ताँबेकी पेटी और चूड़ीयों पर भी उसी प्रकारके अक्षर खुदे हुए हैं । प्रकारांतरके विश्वाससे उन्हीं चिन्होंको कि जो अब तक देखकर खूब परख लिए हैं, उनका सब योग-जोड़ ३९६ हैं । शब्दों की इतनी अधिक संख्या पर यह भरोसा होता है, कि बहुतसी पुरानी लिपी और भाषाओंकी

भाँति इसमें सांकेतिकता भी रही होगी। बहुत सी मुहरों पर अपनी गुप्त बातोंके लिखे जानेका भी अनुमान है। अनुमानकी परम्परा द्वारा यह प्रगट होता है, कि इनके द्वारा शब्दोंको बदला भी जाता होगा।

पूर्ण अनुभव और साधनके अभावमें यह तो नहीं कह सकते कि "मोहन जो दडो" के निवासी किसी विशेष संप्रदाय के अनुगामी थे। तथापि यह ज्ञात हुआ है, कि ये लोग बुतपरस्त भी थे। क्योंकि छोटे मोटे कई शिव लिंग पाए गए हैं। और वे धर्मस्थानोंसे उपलब्ध हुए हैं। साथ ही इन लोगोंमें विभिन्न प्रकारके देवी-देवताओंके बुतोंसे मकानों के सजानेकी प्रथा भी थी। इन मूर्तिओंको विभिन्न दृष्टिसे देखकर यह न्याय सुगम हो जाता है कि वर्तमान-हिन्दुमत उसी समयका एक श्रद्धालुवर्गकी उन्नतिका रूपक है। वेदोमें एवं विशेषतया 'ऋग्वेद' में जिन देवताओंका वर्णन है तथा जो विशेषताएँ उनके संबंधमें वर्णित हैं वह "मोहनजो दडो" की मूर्तिओंसे पूर्ण संबंध रखती है।

जैसे कि एक गिली-तख्ती पर ऐसे देवता की आकृति अंकित है, जिसके तीन मुख और छ आँखें हैं। मस्तक पर दो बड़े बड़े सींग हैं, और वह एक योगीके समान सिंहासन-तख्त पर आसन जमाए बैठा है। ....इसके दहने ओर **हाथी** और **सिंह** तथा बाईं ओर **गेंडे** और **भेंसे** की तसबीर है। और तख्तके सामने दो सींगों वाले **हिरन**की उपस्थिति यह प्रगट कर सकती है, कि वह निश्चयपूर्वक सब देवताओंकी माँ होगी। शायद आर्यशक्ति और पृथिवीकी भाँति पूजित होती हो।

मिस्टर रामप्रसाद चंदाने अगस्त सन् १९३२ के मोडर्न

रीव्युमें लिखा है, कि वह चार हाथों वाला देवता जिसकी मूर्ति "मोहन जो दडो" के नवावरकी सूचीमें नं. ३८३ पर विद्यमान है, निस्संदेह वह पुराना ब्रह्मा अथवा विष्णु है। ये लोग भी शक्ति और शिवके साथ साथ लिंग और योनिकी पूजा करते थे। क्योंकि पत्थरके टुकड़ों पर बने हुए नक्शसे इस विषयका ठीक ठीक पता लग जाता है। साथ ही मट्टीकी अकसर-कई तख्तियों पर बैल [ऋषभदेव-तीर्थंकरका चिन्ह] भैंसे [१२ वें वासुपूज्य तीर्थंकरका चिन्ह] मेंढे (१७ वें कुंथुनाथ तीर्थंकरका चिन्ह) हाथी (दूसरे अजितनाथ-तीर्थंकरका चिन्ह) बंदर (चौथे अभिनंदन तीर्थंकरका चिन्ह) और जंगली सूवर (१३ वें विमलनाथ जिन भगवान् का चिन्ह) आदिकी आकृतिएँ देखकर यह विचार उत्पन्न होता है, कि किसी समय जिन-तीर्थंकरोंके चिन्होंकी स्मृति बनाए रखनेके लिए मुहरोंमें और तख्तियों में उनके चिन्ह अंकित करते होंगे। योगीके तख्तके सन्मुख दो सींग वाला हिरन शायद १६ वें शान्तिनाथ जिनेन्द्र भगवान् का चिन्ह रहनेके कारण उनको अपेक्षित करता है। गेंडेके आकारसे ११ वें श्रेयांसनाथ भगवान्का बोध होता है। या फिर ये जानवर चाहे शिव-दुर्गा-माया-ब्रह्मा और गौरी की स्मृतिसे ही संबंध रखते हों। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय में भी किसी न किसी सम्प्रदायका संकेत होनेके कारण वे प्रतिष्ठाके योग्य ही समझे जाते होंगे।

महनीयता की दृष्टिसे इस पशुपूजाकी पद्धति में उन पशुओंका वर्णन भी कौतूहल पूर्ण होगा, जिनको शारीरिक शक्तिके विकाससे अचरज भरा पाठ कहा जा सकता है। और जिनका प्रमाण यूनान

और रूमाके 'असातीरुलावलीन'' में भी मिलता है। यथा बैलों-बकरों-मेंढों-और हाथियोंकी वैसी मूर्तियाँ वहाँ भी मिली हैं। जिनके मुखाकार (चेहरे) मानुषी हैं, और शेषभाग पशुओंका सा।

× × × ×

इस प्रकार अनेक कल्पनाओंके साथ साथ दो दिन रहकर इस प्राचीन भूमिका अवलोकन श्री महाराजने खूब ही किया। अनेक अनुमान लगाए, जिन्हें हम ऊपर लिख आए हैं।

उसी दिन सन्ध्या समय श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई कराची (मलीर) से सकुटुंब दर्शनार्थ आगए। श्रीमती रुकी (रुक्मिणी) बहिन और देवमणि बहिन आदि सब ही थे। श्रीमान् शेठ साहेब तो श्रीमहाराजके दर्शनोंका सुयोग पाकर गुलाबके समान खिल उठे। आपने भी सब वस्तुएँ बड़े ही ध्यानसे देखीं। आपका मस्तिष्क पुरातत्व वेत्ताओंके समान बड़ा काम करता है। इन दो दिनोंमें श्रीमान् कस्तुरचंद गाँधी और जेठानन्द दलालने जंगलमें मंगल कर दिया।

डोकरी—८।३१३ ता० २१-१-४६

श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई सपरिवार यहाँ पहले ही आगए। श्रीयुत जयरामदास नाऊमलकी राईस मीलमें ठहरनेकी व्यवस्था की। शेठ महानुभावकी प्रेरणासे सबने श्रद्धापूर्वक व्याख्यान सुना। शेठ कुँवरजी भाईको ये सिंधी लोग पूज्यदृष्टिसे देखते हैं। प्रवचनके अनन्तर मांस-त्यागके प्रसंग पर शेठ और उसका गुमाश्ता धीरेसे खिसक गए। श्रीकुँवरजी भाई के प्रयाससे और कई लोगोंने मांस त्याग किया और मदिरा भी छोडा।

आज हैदराबादसे एक डेप्युटशन आया, जिसमें शेठ शाकरचंद भाई, डाक्टर निर्भयराम भाई, श्रीमान् हरजीवन भाई, हीरजी क्षातबार, तथा लहरीभाई, मनुभाई, रमणीकलाल और नोत्तमलाल भाई, आदि गाँधीपरिवार हैदराबाद तथा कराची से आए। गांधी परिवारके साथ श्रीयुत कस्तुरचंद गांधी एक मासकी सेवा करके आज हैदराबाद चले गए। श्रीयुत गांधीकी सेवाएँ स्तुत्य एवं अनुकरणीय हैं।

लारखाना—१६।३२९ ता० २२-२३

श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई यहाँ पहले ही आ गए, और सब गुजराती भाईओंमें उत्साह की एक विलक्षण लहर पैदा करदी। श्रीमहाराजके ठहरनेकी व्यवस्था टिकानेमें की गई। रात्रिमें बहुत बड़ी संख्यामें आकर लोगोंने वीर रस एवं त्यागरस पूर्ण प्रवचनका अमृत पान किया। बहुतसे लोगोंने मांस मदिरा छोड़ दिया। श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई की सब जगह ऑफिस हैं। उनमें गुजरातियोंका होना आवश्यक और उनका भक्त होना स्वाभाविक है। इसी लिए यहाँ गुजरातियोंके कई घर बसते हैं। जैन मुनिओंके वेशको देखकर सिंधी लोग अचरजमें भर जाते थे। जैन साधुओंके त्याग और वैराग्यका महत्व-रहस्य जानकर तो वे लोग भक्तिके आवेशमें झूम झूम कर झुक जाते थे।

यहाँ शेठ ज्ञानचंद का ज्ञान-बाग भी है। जिसमें चाँदी सोनेके वर्तनोंकी व्यवस्था है। आगन्तुक महमानोंकी सेवा खूब की जाती है।

सिंधी लोग प्रकृतिके कुछ भीरु भी हैं, उनमें वीरता के संचारकी आवश्यकता है। अभी हाल ही में राष्ट्र नेता श्रीजवाहरलाल नेहरु आए थे, उनके लेक्चरमें लग भग ४०००० आदमी थे,

उनके ओजःपूर्ण भाषणोंसे उधरकी काँग्रेसमें कुछ जान आगई। परन्तु परिषद्में किसी कलहप्रियने थोडीसी गड़गड़ फैलादी, कि फिर क्या था, आधेसे अधिक लोग तो भाग खड़े हुए। सत्य है माँसाहारियोंमें वीरता कहाँ। वास्तवमें सिंधी लोग बुरी तरह डरपोक होते जा रहे हैं। इनकी जान सदा ख़तरेमें है। ये सब प्रकारसे कुचल दिए गए हैं।

नवो देरो–१२।३४१ ता० २४-१-४६

श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई तो सकुटुंब आगेसे अपनी ऑफिसमें पहुँच गए। टिकाना बहुत बड़ा था, रातमें सब लोग आए। शेठ साहबकी प्रेरणासे बहुतसे लोगोंने मांस-दारू छोड दिया। कुँवरजीकी आज्ञा सब लोग मानते हैं। यहाँके लोग शेठजीको सत्यका अवतार मानते हैं।

यहाँ गत वर्ष यह घटना हो गई कि एक सिंधी भाईबंद (किराड) अपनी स्त्रीको साँवले (गधे) पर बिठाकर घर जा रहा था, कि मार्गमें एक यवन मिला और बोला, कि स्त्री समेत सब कुछ रखदे। यह सुनते ही किराड तो भाग छूटा। इधर स्त्रीने कहा कि बताइए किधर चलें। इसने अपने ग्रामकी ओर उंगली करके उधर चलनेका संकेत किया। इसने उत्तरमें कहा कि वहाँ मेरा मामा रहता है, अतः वह मुझे पहचान लेगा। ठीक तो यह है कि तुम मुझे अपने कपड़े पहना दो, और मेरे तुम पहन लो। यह तुरन्त अपना कुर्ता गलेमेंसे निकाल ही रहा था, कि स्त्रीने कुल्हाड़ी उठाकर उसे गर्दनसे उड़ा दिया और सकुशल अपने घर आ गई। वास्तवमें वह मांस नहीं खाती थी।

मदेईजी—१०।३५१ ता० २५-१-४६

यह क्षेत्र बड़ा कठोर है, रास्ता विकट है, जंगल भयानक है, साथ ही शंकाका स्थान भी है। फिर भी शेठ कुँवरजी भाई रेलके साधनसे आगे पहुँचे। सब व्यवस्था सम्पन्न कीं। रातको नगरके सब लोगोंने श्रीमहाराज साहेब का भाषण सुना। बहुमान पूर्वक बहुतोंने मांस मदिरा त्याग किया। दिन रहते रहते शेठ कुँवरजी भाई स्टेशन पर आए, और सपरिवार शिकारपुर चले गए।

गढ़ीयासीन—१४। ३६५ ता० २६-१-४६

यह मार्ग सबसे अधिक भयपूर्ण है, दिनमें ही लुटेरे प्रवासीसे सब कुछ मांग लेते हैं। मालके साथ साथ जानको भी खतरा है। हिंदूकी कोई जिंदगी नहीं। वह अपने प्राण और धनका स्वामी नहीं समझा जाता। इतनी असन्तोषपूर्ण जगह होने पर भी श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाई सकुटुंब शिकारपुरसे आए। बंदूकची साथ थे। संकटोंको चीरते हुए यहाँ आकर गुरुदेवके दर्शन किए। इतना साहस प्रत्येक व्यक्तिमें मिलना कठिन है। आते ही नगरके लोगोंमें धर्म-भावकी जागृतीका बिगुलसा बजा दिया। नागरिकोंमें उत्तेजना फैलाकर चार बजे वापस शिकारपुर जा पहुँचे।

रात्रिमें बहुतसे सज्जनोंने व्याख्यान सुनकर हर्ष प्रगट किया, एक प्रकारसे लोगोंके नेत्र से खुल गए। उपस्थित जनतामेंसे श्रीमान् हकीम प्रभुदास अत्यन्त ही प्रभावित हुए। और खड़े होकर सविनय प्रार्थना की कि भगवन्! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूं। मेरे घरको पवित्र करते हुए मुझे वहीं दीक्षा प्रदान करें।

श्रीगुरुदेव–देवानुप्रिय! रात्रिमें जैन साधु स्थानको छोड़ कहीं नहीं जाते, अतः सवेरे आपकी जिज्ञासा पूर्ण होगी।

हकीम प्रभुदास–भगवन्! मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा। सवेरा होते ही श्रीमहाराजने विहार किया और हकीमजीके साथ उनके घर पधारे। लोकसमुदायमें तीन तत्व, १२ व्रत, बारा अनुप्रेक्षाओंका संक्षेपमें खड़े खड़े उपदेश देकर श्रीमान् प्रभुदास हकीम को श्रीज्ञात-पुत्रमहावीर-भगवान् का सच्चा अनुयायी (जैन) बनाया। तदनन्तर हकीमजी जेबसे रुपया निकालकर श्रीगुरु देवके चरणोंमें चढ़ाने लगा। तब महाराजश्रीने जैन साधुओंकी अकिंचन वृत्तिका रहस्य समझाकर आज्ञा दी कि हमारी भेंट यही है, कि आप सातों कुव्यसन छोड दें। हकीमजीने उसी समय उनका त्याग कर दिया। इस प्रकार श्रीगुरु-देवने अनेक सिंधीयोंका उद्धार किया है। इसके साथ २ कई भव्य जीवोंने मांस-मदिरा त्याग किया। उनकी अधिक प्रेरणासे गुरुदेवने अपना वरद हस्त उनके मस्तकपर रखकर यह आशीर्वाद दिया कि भव्य! अब धर्मभावमें स्थिर रहना। नवकार महामंत्रका अहर्निश स्मरण करना। शासनपतिके बताए हुए तत्वोंका मनन करना। तुम्हारी आत्माका भला होगा। उस समय श्रीमान् हकीम साहेबके नेत्र भीगे हुए थे।

अंतिम विदा लेते समय श्रीमान् हकीम-महोदयने प्रार्थना की कि भगवन्! कुछ आज्ञा कीजिए जिसका सम्यक् प्रतिपालन आपके परोक्षमें भी किया करूं तथा अपना जन्म सफल कर सकूं।

श्रीगुरुदेवने आज्ञा की, कि हकीम-देवानुप्रिय! आपके पास चिकित्सा कराने बहुतसे सिंधी-भाई आया करते हैं। आप उनको दवा देते समय पथ्यमें मांस-शराबका त्याग करा दिया करें। तथा

उनके सामने ये गीत भी गाया करें। उन्हें सात्विक (शाकाहारी) बनानेकी शुभ सम्मति दिया करें। इस धर्म दलालीसे आपकी आत्माको महान् लाभ होगा। वे गायन इस प्रकार हैं आप भी पढकर लाभ उठाइए।

मांसाहारी और शाकाहारीके स्वास्थ्य और शक्ति का मुक़ाबला

बंदे बाहरके तो सब मज़दूर खुदमुख़तार हैं।
वह जवां हिम्मत बड़े ग़ेयूर हैं खुददार हैं॥
बज्म हो या रज्म दोनों ही में इनका राज है।
हर मुहिममें फ़तहो नसरत का सर पर ताज है॥
कुव्वते बरदाश्त में हासिल इन्हें वह नाम है।
यादगार और रूह परवर इनका इक इक काम है॥
इनकी हिम्मतकी बदौलत यह जहाँ आबाद है।
बादशाह खुरसंद ताजर खुशरियाया शाद है॥
सेहत और ताकतमें हासिल इनको है वह बरतरी।
गोश्तख़ोर इनकी नहीं कर सकता कोई हमसरी॥
एक ही जिस बोझसे होता नहीं मुतलक़ निढाल।
चार इन्सां गोश्तख़ोर हो जाएँ इससे पायमाल॥
इनकी ताक़तके जरायह सबज़ी-फल-चावल-खजूर।
जो नज़ामें जिस्ममें पैदा नहीं करते फ़ितूर॥
गोश्तसें इन्सान हो जाता है बिल्कुल पस्तहाल।
इसकी ताक़त और हिम्मत को है हो जाता ज़वाल॥
जितने मज़दूरोंमें खूए गोश्त खोरी आ गई।

इनके जानो-जिस्म पर पज़मुर्दगीसी छा गई ॥
इनसे रुखसत होगए बर्दाश्त और तावो तवां ।
बन गए वह नीम मुर्दह खफ़ता तन और नीम जां ॥

क्या गोश्त इन्सानकी कुदरती खुराक है ?

रोज़े अज़ल से यह रहा हैवान का शआर ।
खूराक एक ही ये है वह जानसे निसार ॥
इसने पसंद की वह गिजा जो है साज़गार ।
आता नहीं है इससे कभी इसको कोई आर ॥
क्रानअ इसी पे रहना इसी पर है इनहसार ।
कुछ उनसे वास्ता नहीं हों नेमतें हज़ार ॥
इन्सानकी हविस है बड़ी सख्त नाबकार ।
खानोंका जिसने रक्खा नहीं कोई भी शुमार ॥
खूराकका बदलना समझता है इक वक़ार ।
होता नहीं है शौकसे वह अपने शरमसार ॥
बेबाकियों पे अपनी इसे है यह एतबार ।
अफ़आलमें खुदाको बनाता है हिस्सेदार ॥
इन्सान भी चरन्द यह है राज़ किर्दगार ।
चौपायोंमें किया है खुदाने इसे शुमार ॥
गर देखो इसके जिस्म को तुमकरके तार तार ।
तो सब्ज़ीखोर ही नज़र आए यह नामदार ॥
एज़ा व हड्डियों से वही ढंग आशकार ।
हैं इसके दान्त भी तो नहीं तेज़ खारदार ॥
वह सब्ज़ीखोरों में है हरइक तरह ताजदार ।

दस्ते हविसने इसको बना डाला दाग़दार ॥
कुदरतके नज्मो नस्क़ को करता है तार तार ।
करता है खुदाको अपने ही हाथों ज़लीलो ख्वार ॥
सूरतमें गुलअज़ार है सीरतमें दागदार ।
इसने मिटाके रखदी है कुदरतकी यादगार ॥
गरचे खुराक इसकी नहीं गोश्त ज़ीनहार ।
शिकमो दहनके चस्के से कर ली वह अख्तियार ॥
बदराह होके इसने लिया है यह इन्तिशार ।
इन्सानी आबरू को किया ग़रज़ पर निसार ॥
है ज़ेब क़ायनात जो कुदरतका कारोबार ।
इसको करे तबाह जो हो इसका अख्तियार ॥

गोश्त और अनाजका मुक़ाबला

मुल्कों मुल्कों बारहा है यह तजरबा हो चुका ।
अनाजमें है ज़िंदगी-वह ज़िंदगी है बख्शता ॥
मिश्रमें गंदुम हज़ारों साल तक रक्खा रहा ।
फ़र्क़ ज़र्रा भर न उसकी शक्लमें पैदा हुआ ॥
ज़ोर उगने फूलने फलनेका भी बाक़ी रहा ।
काश्त जब इसकी कराई खूब हुई नश्वो नुमा ॥
जो अनाजोंमें सिफ़त है वह है बेशक लाजवाब ।
गोश्त लेकिन चंद घंटोंमें है हो जाता ख़राब ॥
इसके अजज़ामें सड़न से हो के पैदा इनक़िलाब ।
शक्लो रंगतकी नहीं रहती है क़ायम कोई आब ॥
नज़रे ग़ायर से जो देखो गोश्त है इक शै ख़राब ।

इसमें नुक़सानात इतने हैं नहीं जिनका हिसाब ॥
गोश्तख़ोरी ज़हरकी सूरतमें बन जाती है भूत ।
यह बना देती है जिस्मो रूहे इन्सां को अछूत ॥
हर ज़मानेमें मिला है बारहा इसका सबूत ।
गोश्तख़ोर इन्सां नहीं है बाबा आदमका सपूत ॥
जो नज़ामें ज़ीन्दगानीमें लगा लेता है छूत ।
वह नहीं मख़्लूक़ अशरफ़ दरअसल है वह कपूत ॥

गोश्तख़ोरी- इख़्लाक़की नज़र में

हर इक मख़्लूक़की जो रूह है वह पाक हस्ती है ।
इसी बाइस तो ज़ाते पाक ख़ालिक इसमें बस्ती है ॥
तमीज़ इनमें नहीं है कोई कमतर और बढती है ।
किसी से कोई भी घटिया नहीं है और न सस्ती है ॥
यही है वेदमें लिखा यही कुर-आँ में है आया ।
हर इक इन्सान पर है फ़र्ज़ फ़र्मा रब्बे अकबर का ॥
परंदा या चरंदा हो सितम इस पर नहीं करना ।
इन्हें नज़रे महब्बत से हमेशा देखते रहना ॥
शिकम भरनेको जो इनसां किसीको जिबह करता है ।
सितम इक तरह अपनी जान पर वह आप करता है ॥
के अपने हक़ की हदसे क़दम आगे को जो धरता है ।
धर्म इख़्लाक़ और इन्सानके रुतबे से गिरता है ॥
नहीं यह फ़ेल इंसांका यह है इक कारे शैतानी ।
किसीको ज़ीबह कर डाले किसीकी करदे कुरबानी ॥
सज़ा इसके लिए लाज़म जो करता है यह नादानी ।

कभी इस पर नहीं होने का नाज़िल फ़ज़्ले यज़्दानी ॥

इन्सानके चाल चलन पर गोश्तखोरीका असर

ग़ल्लामें अक़्लो फ़हमका पिनहां कमाल है ।
लेकिन ग़ज़ा की गोश्तमें उसका ज़वाल है ॥
खाता है जो ए अनाज वहनेको खुसाल है ।
जिसकी खुराक़ गोश्त बुरी उसकी चाल है ॥
इसमें न कोई शक है न कुछ क़ीलो क़ाल है ।
दोनों का हाल जो है वह जिन्दह मिसाल है ॥
जितने हैं ग़ल्ला ख़ोर वह हैं तालिब अमन ।
और खूए गोश्तख़ोर जदालो क़ताल है ॥
ग़ल्लाका खानेवाला रहा ख़ादिमे वतन ।
इन्सां की ख़ैर रख्वाहीमें इसकी कमाल है ॥
ग़ालिब हमेशा रहता है वह मुश्किलात पर ।
लेकिन मुसीबतोंसे यह होता निढाल है ॥
आज़ाद अगर है वह तो यह है ग़ैर का गुलाम ।
ज़र्फ़े तिला वह है तो यह मस्ले सफ़ाल है ॥
रहता है दूर दूर जुरायममें वह सदा ।
और आरज़ूए जुर्म में यह पायमाल है ॥
वह मुस्तक़िल मिज़ाज तो ढिल मिल यक़ीन यह ।
हिम्मतमें वह बुलंद तो यह पस्तहाल है ॥
जिनकी ग़िज़ा है पाक हैं पुख्ता चलन वही ।
हर जगह उसकी क़दर है वह ऐसा माल है ॥
यह वस्फ़ इनकी ज़ातमें जो ग़ल्लाख़ोर हैं ।

जोहर यह इनका क़ीमती है बेमिसाल है ॥
कमज़ोर अगर चलन है तो ख़तरे में ज़िंदगी ।
पुख़्ता चलन ही दहर में इन्सांकी ढाल है ॥

मंदिरोंमें हैवानों पर मज़ालिम

मंदिरों में बेज़बानों पर जो होते हैं सितम ।
इनकी केफ़ीयत बयां करने में लरज़ां है क़लम ॥
यह मज़ालिम वह हैं जिनकी ताब नज्ज़ारह नहीं ।
ऐसी ख़ूंरेज़ीका यारो! कोई कुफ़्फ़ारह नहीं ॥
टुकड़े टुकड़े बकरियां हों ख़ंजरे बेदाद से ।
काम हो सकता नहीं ऐसा किसी जल्लाद से ॥
अन्तडियाँ बाहर निकाली जाएँ निकले सख़्त बू ।
भेंट देनेवाले करते हैं इन्हें ज़ेबे गलू ॥
क़तलसाजी में हुवा करती हैं जो बेबाकियाँ ।
इनके आगे हेच हैं हरतरहकी सफ़ाकियाँ ॥
हैं लगीं दीवार में कीलें बहुत सी नोकदार ।
इन पे इस बद बख़्त को दे मारते हैं बार बार ॥
जिस्म छलनी इसका जब कर देता है दस्ते जफ़ा ।
रूह उस दम क़ालिबे ख़ाकीसे होती है जुदा ॥
भैंसे पर तलवारसे होता है हमला बार बार ।
ज़ख़्म इतने लगते हैं मुमकिन नहीं जिनका शुमार ॥
हर तरफ़से ख़ूंके फव्वारे से होते हैं रवां ।
देखने वालों पे होता है यह नज्ज़ारह गरां ॥
भेंट यह हिंदूकी देवी करती है जिस दम क़बूल ।

हैं सममझते महरबानी का हुआ इसकी नजूर ॥
खून लेकर भैंसेका मलते हैं जिस्मों पर भगत ।
कहते हैं के फ़ज़्ल इन पर हो रहा है अनगिनत ॥
जो हो कुर्बानीका भैंसा उसपे होता है अज़ाब ।
देखने वाले समझते हैं इसे कारे सवाब ॥
इक गढ़े में फेंक कर चलती हैं इस पर बरछियाँ ।
जिससे इसकी रूहको होती है लरज़िश बेगुमाँ ॥
जुल्मके सहनेकी जब बाक़ी नहीं रहती सकत ।
देखने वाले हैं कहते मिल गई इसको मुकत ॥
यह सितमरानी तो हिन्दू धर्मकी तहक़ीर है ।
इसका जो हामी हैं बेशक वह बड़ा बेपीर है ॥
इसमें तो बेशक अहिंसाकी खुली तकज़ीब है ।
पूछता हूं क्या यह हिन्दू क़ौमकी तहज़ीब है ॥

गोश्तख़ोरी और किफ़ायत शारी

अजबचीज है यह किफायत शारी ।
मसायब मिटाती है इन्सां की सारी ॥
जो खूराकमें हो यह मद्दे नज़र ।
तो लारेब है वह बडी कारगर ॥

जो है शुद्ध भोजन वह है बे जरर ।
नहीं इसके खानेमें कोई ख़तर ॥
मिला करता है वह तशद्दुद बग़ैर ।
वह है पाक शर से अलमदार ख़ैर ॥

हैं अग़ज़ा इसके मनासब सभी ।
बहुत दिल पसंदामें हैं दूध घी ॥
अनाज इनका सरताज है बे मसल ।
मफ़र्रा हैं लारेब सब्ज़ी व फल ॥

वह हैं मसलहए ज़ाहरी व बातनी ।
वह सेहत में करते नहीं कुछ कमी ॥
अता करके इन्सां को हुस्ने शबाब ।
बनाते हैं हर काममें कामयाब ॥

नहीं इसमें मुतलिक़ है लाफ़ो गज़ाफ़ ।
वह रखते है इन्सानको पाको साफ़ ॥
सरूरे दिमाग़ और हैं नूर जां ।
बनाते हैं इन्सानको यहलवां ॥

यह सच है शुबा इसमें मुतलिक़ नहीं ।
वह कम ख़र्च हैं और बालानशीं ॥
हक़ीक़तमें दौलतकी हैं शाह राह ।
मसायबमें मिलती है इनसे पनाह ॥

मगर गोश्तख़ोरी अशुध है आहार ।
नहीं फ़ायदा बख़्शती ज़ीनहार ॥
नहीं करता मेदा इसे मनहदम ।
बड़ी देरमें है वो होता हज़म ॥

दिमाग़ और दिल का है वह हुक्मरां ।
मिटाता है दोनोंको वह बे गुमां ॥

वह सेहतका क़ातह वह ताक़त शिकन ।
नहीं रूहको इससे मिलता अमन ॥
मए अरग़वानी है इसकी रफ़ीक़ ।
यह दोनों हैं इक दूसरे के शफ़ीक़ ॥
नहीं इनसे मज़हबका कुछ वासता ।
दया से नहीं इनका कुछ राबता ॥
यह क़ौले हकीमां बहुत साफ़ है ।
ज़रो मालका इनमें इसराफ़ है ॥
अगर हैं किसीके ये दोनों रफ़ीक़ ।
तो होगा वह बहरे फ़ना में ग़रीक़ ॥
नहीं यह कहानी ये हैं वाकआत ।
मुजस्सिम सबूत इनका है कायनात ॥

गऊके संबंधमें

गंऊके दूध घी में फ़ायदा है और ताक़त है ।
जो इसका गोश्त खाता है वही महरूम सेहत है ॥
नहीं कमतर है इसका दूध हर्गिज़ शीर मादर से ।
ग़िज़ाए रूह परवर गर कहें इसको हक़ीक़त है ॥
यह वह अक्सीरे आज़म है नहीं जिसका कोई सानी ।
यह माजूने शिफ़ा है इसमें शामिल रूह हिकमत है ॥
जो इसका गोश्त है सर चश्मए अमराज़ है बेशक ।
नहीं तरदीद मुमकिन जिसकी यह ऐसी हकीक़त है ॥
जो ज़ाते पाक है इसकी वह मम्बा है फ़वायद का ।
अज़लसे आज तक मिलती रही जिसकी शहादत है ॥

बना करती हैं इसके दूध घी से नेमतें लाखों ।
इसीके दम क़दम से फूलती फलती ज़राअत है ॥
रही मुहताज है इसकी तिजारत हर ज़माने में ।
कलाम इसमें नहीं कोई कि वह इक गंज दौलत है ॥
है गोबर इसका काम आता लिपाई और सफ़ाई में ।
वह आला खाद है ईंधन है इक अच्छी बज़ाअत है ॥
जो है पेशाब इसका क़ातए अमराज़ देरीना ।
यह वह नुकता अतिब्बा के यहां जो दरस हिकमत है ॥
यह नुकता अक़तसादी है कि इस अन्मोल हस्ती से ।
हमेशा ही रही वाबस्ता इनसानों की हिकमत है ॥

बेरहमोंका सर्दार

कुछ नहीं रहमानकी दर्गा में इसका कार है ।
पेट क़ब्रस्तान जिसका और मुँह खूंख्वार है ॥
सोहबते हक़से भला खूंख्वार हो कब सरफ़राज ।
साहिबे दिल क्या बने जिसकी ग़िज़ा मुर्दार है ॥
पेट की दोज़ख़ भरे मासूम जीरूहों से जो ।
वास्ते इसके भी इक दोज़ख़ बड़ी तैयार है ॥
रहम है अज़ बस ज़रूरी रहमते हक़के लिए ।
ख़ालिके रहमान क़ातिल से बहुत बेज़ार है ॥
जीते जी मर्ज़ों मुसीबतमें रहेगा मुबतिला ।
गोश्तख़ोरी के नशेसे जो कोई सरशार है ॥
एज़ दी बरकात का तो बस वही है मुस्तहक़ ।
बे ज़बां हैवान का दुनियामें जो ग़मख्वार है ॥

गोश्तहै खूराक जिसकी हल्के हैवां जिसकी मश्क ।
यह निदा लगती है बे रहमों का वह सरदार हैं ॥

गोश्तखोर इन्सान और सब्जीखोरी हैवान का मुकाबला

गोश्तखोर इन्सांने जो तर्जे अमल रक्खा रवा ।
ग़ौरसे देखो तो है बेमस्त और हैरत फ़िज़ा ॥
इसका यह करदार गोया इमतियाजी ढाल है ।
ढाल समझा है जिसे वह सेहतकी जंजाल है ॥
गोश्त खाता है जो वह दो क़िस्मके हैवान का ।
इसमें है हर तरह खतरा इसके जिस्मो जानका ॥
एककी तो घास और सब्जी पर होती है गुज़र ।
दूसरा है जिंदगी करता गिलाज़त पर बसर ॥
एक में ख़रगोश चीतल और हिरन होते शुमार ।
दूसरेमें मुर्गियां सूरे बतख़ हैं हिस्सेदार ॥
जुस्तजूमें एक की है गश्त करता बार बार ।
खूनसे करता है इनके कोहो जंगल लाला ज़ार ॥
क़िस्म है जो दूसरी घर पर है इसको पालता ।
जी में जब आजाय इनकी जान है ले डालता ॥
तोंद इनके गोश्तसे भर कर है कहता बरमला ।
लुत्फ़ है कामो दहनको आज खूब हासिल हुआ ॥
लेकिन इन्सां गोश्तखोर हैवानको खाता नहीं ।
ख़याल भूले से कभी इसकी तरफ़ जाता नहीं ॥
ज़हर क़ातिल का असर होता है इनके गोश्त में ।
होती है बदबू निहायत अस्तख्वाने पोस्त में ॥

इसके खानेसे पहुँच जाता है नुक्साने अज़ीम ।
हालते इन्सान हो जाती है हद दर्जा सक़ीम ॥
इससे लग जाती हैं इन्सां को कई बीमारियाँ ।
जानका ख़तरा है इसमें ज़िंदगानी काज़ियाँ ॥
ग़ौर करना सोचना क्या फ़र्ज़ इन्सानी नहीं? ।
नफ़ा व नुक्सां समझना ग़र्ज़ इन्सानी नहीं? ॥
गोश्त कर देता है पैदा ज़हर जब हैवान में ।
क्या नहीं कर सकता पैदा वह यही इन्सानमें ॥
इन सवालोंका तो है बस एक ही सीधा जवाब ।
गोश्त कर देता है इनसानों की भी हालत खराब ॥
ज़हर बदबू छूत पैदा करना इसका ख़ास काम ।
गोश्तख़ोर इन्सानको मिलता है आख़िर यह इनाम ॥
सेहत हैवान को है पहुँचता जिससे ज़रर ।
इसमें है लारेब जिस्मो जान इन्सां को ख़तर ॥
नफ़ा व नुक्सान जो हर बात में है तोल ले ।
रोग क्यों इन्सान आक़िल अपने हाथों मोल ले ॥
मर्द आख़िर बीन जो है वह भी इक बंदा है ।
बख़्त इसका बेशुबा फ़रख़ुन्द होता बंदा है ॥

शिकारपुर—८।२७३ ता० २८-२९

श्रीमान् शेठ कुँवरजी भाईने श्रीयुत शेठ ठाकुरदास भगवानदास सिंधीके मकानमें ठहरनेकी व्यवस्था की। रात्रिके समय टिकानेमें व्याख्यान हुआ। बहुतसे लोगोंमें परिवर्तन आगया, तथा मांस-मदिराका त्याग कर दिया। शेठ चंदीराम गंगाराम होनहार और

विचारशील युवक हैं। स्टोल मारकीटमें रहते हैं। श्रीगुरुदेवके भाषणोपरांत उन्होंने लोगोंको खूब प्रेरित किया। शिकारपुरी लोग बड़े धनिक और विलासी होते हैं। एक बार शिकारपुरका बाज़ार आततायियों द्वारा दिनमें ही जला दिया गया था जो अब तक नही सुधरा है। उस समय बाजारके लोग देखते ही रह गए, किसीके बसकी बात न थी। सत्य है जिनका आहार-विहार मिथ्या हो, अशुद्ध हो, तामसी हो उनमें आत्मिक शक्तिकी तो बात ही क्या की जाय पूर्ण शारीरिक बलका उद्भव होना भी कठिन है। वास्तवमें स्वास्थ्य पर मांसाहारका प्रभाव बहुत ही बुरा पड़ता है। अभक्ष्य भोजियोंको जो जो हानियाँ उठानी पड़ रही हैं उनका संक्षेपमें किसी कविने यह विवरण दिया है, पढ जाइएगा। रचना उर्दू ढंगकी है।

स्वास्थ्य पर मांसाहारका प्रभाव और उससे हानियाँ

गोश्तखोरीका जो शायक है बड़ा हैवान है।
सच्चे मानोंमें वह कहलाता नहीं इन्सान है॥
सबज़ियाँ खानेसे रहता है तबीयत में सकूं।
गोश्तखोरी से बढ़ा करता है गुस्सा और जनूं॥
सबज़ियोंसे जिस्ममें बढ़ती है आनँद की लहर।
गोश्तखानेसे नज़ामें जिस्ममें पडता ज़हर॥
डाल देता है यह पर्दा कुव्वते बीनाई पर।
रहम करता ही नहीं इनसान की दानाई पर॥
गोश्तसे हो जाती हैं पैदा बहुत बीमारियाँ।
दाफ़ए इमराज़ होती हैं हमेशा सबज़ियाँ॥

कोढ़-पेचिश-क़ब्ज़ इसके हैं ये बख़्शिश फ़ैज़े आम ।
दिलकी हरकत बंद कर देना है इसका ख़ास काम ॥
यह है दुश्मन सांसका बवासीर का और आन्त का ।
मुन्तशिर करता है शीराज़ह हमेशा दान्त का ॥
करके दाख़िल यह बड़ा दरजा हरारत ख़ून में ।
पैदा करता है वही ख़सलत जो हो मजनून में ॥
महरबानीसे इसीकी होके इन्साँ मुस्तक़िल ।
हरघड़ी रहता है आमादह पए आज़ारो-क़तल ॥
सबज़ी ख़ोरोंमें नहीं होती हैं यह बेबाकियाँ ।
पास आती ही नहीं हैं इनके यूं सफ़ा कियाँ ॥

मांसख़ोरी और बहादुरी

यह नुक़ता है ग़लत के गोश्तख़ोरीमें शुजाअत है ।
जो क़ौमें गोश्तख़ोर हैं उनमें ताक़त और हिम्मत है ॥
हज़ारों वाक़आत ऐसे हैं जिनसे होगया साबित ।
शिकम जो गोश्तसे भरते नहीं उनमें शहादत है ॥
हज़ारों फौज इक जानिब हो सरकश लाख इक जानिब ।
मगर हों गोश्तख़ोर हर दो तो ज़ाहिर इक हक़ीक़त है ॥
जो सरकश हों ज़रासी देर में मग़लूब होते हैं ।
हमेशा मार्के में फ़ौजियोंको होती नसरत है ॥
शुजाअत मुनहसर तनज़ीम इसलहा और क़वायद पर ।
नहीं वह गोश्तकी ममनून यह रोशन सदाकत है ॥
देहाती गोश्त कम खाते हैं वह भी शाज़ो नादिर ही ।
वह गालिब गोश्तख़ोरों पर हैं इनमें ज़ोरों ताक़त है ॥

बक़ौलात और सबज़ी दूध घी इनकी ग़िज़ा ठहरी ।
मगर इनकी बदौलत इनकी काबल रश्के सेहत है ॥
हमेशा शहरयों पर इनकों हासिल है ज़फ़र मंदी ।
के पामर्दी है इनमें इनमें इस्तक़लालो जुरायत है ॥
जो बंदे गोश्तख़ोरीके हैं अक्सर रहते हैं मुफ़लिस ।
जो सब्ज़ी दूध फल खाते हैं उनके पास दौलत है ॥
अशोक और चंदरगुप्त अकबर-बंदा बैरागी ।
नहीं यह गोश्त खाते थे. यह तारीख़ी शहादत है ॥
फ़रासत के थे पुतले मर्द मैदाने शुजाअत थे ।
ज़माने भरमें मशहूर आजतक इनकी सयासत है ॥
तदब्बुर-अक्ल-इतमीनान-कलबी-दूर अंदेशी ।
मिला करते नहीं हैं गोश्तसे यह रम्ज़ फ़ितरत है ॥
इन गायकोंके अवतरणोंपर विचार कीजिए ।
और माँसाहार को सर्वथा के लिए त्याग करिए ॥

कासम—१६।३७९ ता० २९-१-४६

यह छोटासा ग्राम है, परन्तु लोकोंमें सम्पन्नता है । आज सिन्धी-हवा बड़े वेगसे चल निकली । प्रलयका नमूना था रेत उड उड कर आँखोंको हानि पहुँचाता था । जंगल विकट था । बड़ी कठिना-ईसे बस्ती तक आ सके । शेठ सखावतराम-हीरानंदने अपने विशालकाय महाराममें ठहराया । ग्रामके मुखी गोविंदराम शेठ प्रति-ष्ठित पुरुष हैं । नारायणशेठ तो आजन्म से निरामिषभोजी हैं । रातको टिकानेमें व्याख्यान हुआ । श्रीमहाराजके प्रतापसे सबलोगोंने मांस-मदिरा त्याग किया । यहाँके लोग अच्छी भावनाके हैं । प्रकृ-

तिके भद्र एवं भक्तिमान् हैं । श्रीयुत मास्टर मोहनलाल अंबावीदास कराची निवासी साथ थे । उनके प्रयाससे लोगोंने जैन धर्म संबन्धी कई बातें मालूम कीं ।

उपस्थित जनतामेंसे एक कॉंग्रेस विचारके गृहस्थने प्रार्थना की कि भगवन्! क्या हम राष्ट्रीय दृष्टिसे कुछ पूछें?

श्रीगुरु–देवानुप्रिय! जैसी आपकी इच्छा!

महाशयजी–गांधी जयन्तीके लिए एक गीत गाएँ। भारतमें दुग्धकी उपज, और लोगोंको उसमेंसे मिलता कितना है? बडी नौकरी कौन पाता है? भारतकी ज्ञातव्य बातें, और पहले समयकी आर्थिक आयसे अबकी आय की तुलना करके बताएँ! इत्यादि ।

श्रीमहाराजने क्रमशः इस प्रकार उत्तर फर्माए । पढिए,

गाँधी जयन्ती

देश हिंदुस्तानके तालाब में, है न सानी कोई जिसकी आब में ।
सब सितारे जब इकट्ठे होगए, मोह मदिरा पीके सारे सो गए ॥
तब जगाने कौन हमको आगया, सत्यका आलोक जगमें छा गया ।
हैं तटोंसे लहरियाँ टकरारहीं, और कल-कलमें सदैव सुना रहीं ॥
असहयोगी बन दशा यह छोड़ दो, सत्य आग्रहसे स्वबन्धन जोड दो ।
बिजलियाँ चमकी चरणमेंआ झुकी,आँधियाँ जिसके निकट आकर रुकीं॥
द्वेष-वैर-विरोध जिससे मिटगया, वह अहिंसाका पुजारी डट गया ।
हों स्वतन्त्र समस्त जीव स्वदेशके, जायँ मिट बादल अनन्त कलेशके ॥

धारणा लेकर यही तप कर रहे ।
श्रीमहात्मा गाँधीजी यश भर रहे ॥

लोक वन्दित विश्वके बापू कहाते आज हैं ।
देश भारतवर्ष में लाने चले स्वराज हैं ॥

अलग अलग राष्ट्रोंकी दुग्ध-उत्पत्ति

देश.	दुग्ध-उत्पादन-रतल,		प्रतिजन, उत्पन्न रतल
न्यूजीलेंड.	८७०	करोड	१५-२५
डेन्मार्क.	१२०००	,,	८-२५
आस्ट्रेलिया.	१०४९	,,	४-२७
केनेडा.	१५८०	,,	४-९२
अमरीका.	१०२८०	,,	२-३३
जर्मनी.	५०९६	,,	२-१३
फ्रान्स	३१५०	,,	२-६
ग्रेटब्रीटेन	१४४७	,,	०-९८
भारत	६४००	,,	०-५०

ऊपरके योगसे देख सकेंगे कि हमारे कृषि-प्रधान देशमें दूधकी उत्पत्ति प्रतिजन मात्र आधा रतल भी नहीं है ।

बड़ी बडी नौकरिएँ

	वार्षिक
अमरीकाका प्रमुख	७५००० डोलर
जापानका मुख्य प्रधान	८००० येन
इंग्लेंडका महामंत्री	१०००० पाउंड
इग्लेंडका लॉर्ड चान्सलर	१०००० ,,
भारतका वाइसराय	२५०८०० रुपए

अखिल जगत में भारतके वाइसरायका वेतन सबसे अधिक है ।

भारतवर्ष संबंधी जानने योग्य बातें

जगत्की बस्तीका $\frac{१}{५}$ भाग भारतवर्षमें है।

बस्तीके प्रमाणमें बङ्गाल सबसे बड़ा प्रान्त है।

मद्रासमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक है, १००० पुरुषोंमें १०२५ स्त्रिएँ।

पंजाबमें स्त्रियोंकी संख्या सबसे कम है, १००० पुरुषोंमें ८३१ स्त्रिएँ।

बंगालमें विधवाओंकी संख्या अधिक प्रमाणमें है।

बस्तीपत्रकी गणनाकी अपेक्षा भारतवर्षका नंबर अखिल जगत्की अपेक्षा पहला नंबर है।

भारतकी बस्ती ९० प्रतिशत गाओंमें है।

ग्रामबस्तीमें ९० प्रतिशत सीधी या टेढी रीतिसे खेती पर निर्वाह करते हैं।

प्रत्येक दशकमेंसे नौ मनुष्य खेती पर टिके हुए हैं।

भारतकी ४० करोड़ आबादीमेंसे अढ़ाई करोड़ आदमियोंको लिखना पढ़ना आता है।

११ प्रतिशत मनुष्य शहरमें रहते हैं।

दुनियाके अशिक्षितोंका तीसरा भाग भारतमें है।

हिंदु-मुस्लिम तथा ब्रिटिश राजकालकी आर्थिक जीवनकी तुलना

भारतवर्ष जब पराधीन न था और भारतीय शासन ही उन पर था, तब अन्नकी तंगी न थी, भारतीय शासनकी १५ शताब्दी तक तो चावलका भाव अनुमान आजकलके एक आने मण जितना

रहा है। इसका कारण यही था कि भारतीय अर्थकारण पैसेकी क्रयशक्ति पर न होकर मानवकी विक्रयशक्ति पर निर्माण प्राप्त था। वस्तु विनिमयकी प्रथा उस समय प्रचलित न होकर मुद्राका स्थान गौण था। ग़रीबसे ग़रीब मनुष्य भी उस समय अपने कुटुंबका निर्वाह निश्चित होकर कर सकता था। उस समय कोई बेकार न था, कोई अकिंचन न था।

आजके चलनमें दिया हुआ कौटिल्यके समय [ई. स. पूर्व चौथी शताब्दी] की बहुतसी जिनसोंके भाव इस समयके जनवैभव को कह बतायगी।

जाति	मण का मूल्य
चावल	रु० ०—१—०
तेल	०—८—०
घी	०-१२-०
दाल	०—१—०
नमक	०—०—६

सामान्य कपडा, एक आनेके ५ टुकडे।

इसके अनन्तर १३ सदी बीतने पर, अर्थात् ई. स. की नवमी सदीमें चावलका भाव इसी प्रकार रहा, परन्तु शेष वस्तुओंके भाव ऊपर कथित भावोंसे अर्ध होगए थे। कौटिल्यके समयमें दीनातिदीन मनुष्यका मासिक आय आजके ।≈) जितना था, कौटिल्यका अर्थ-शास्त्र तथा मनुस्मृतिसे पता चलता है, उसके अनुसार श्रमजीवियोंकी कमसे कम आय राज्यके नियमानुसार निश्चित की गई थी।

गुप्त-समयका योग--

प्रोफ़ेसर सिल्व-लेवी ई. सन् ६२५ के एक उत्कीर्णक लेखके आधार पर उस समयकी आमदनीका विवरण अपने बनाए हुए 'Le Nepal' नामक पुस्तकमें इस प्रकार देता है जो कि निम्न प्रमाणमें है।

श्रमकर्ता.	मासिक आय
बनजारा	०-१०-०
चाकर	०—७—०
भिस्ती	०—७—०
चौढीवान्	०—६—०
संत्री	०—६—०
भंगी	०—६—०
ग्वाला	०—७—०

आयके अनुसार उस समय कुटुंबका निर्वाह निराबाध रूपसे चल सकता था। और यदि चन्द्रगुप्त और अशोक तथा समुद्रगुप्तके साम्राज्यके नक़्शे देखें तो ज्ञात होगा कि ब्रिटिश हिन्द की अपेक्षा अनेकगुणा विस्तृत साम्राज्य होनेपर भावोंके इन आँकड़ोंके नीचे सुखसे रहते थे।

मुस्लिमकालके प्रारंभमें

मुग़लशाहीके शासनमें वस्तुओंका भाव बढना शुरु हुआ परन्तु साथ ही मनुष्योंकी आय भी बढ़ने लगी; मुसलमानोंने भारतमें अलग अलग राज्य अपने हाथ कर लिए थे तब भी प्रजाके आर्थिक जीवनमें इन्होंने किसी प्रकारका क्षोभ उपस्थित नहीं किया। मुहमद

तुग़लक़के समय चौदहवीं सदीके दर्म्यान, एक मुस्लिम प्रवासी इब्न बतूता भारतमें आया था, उसके उस समयके भावोंका विवरण, ढाकेके प्रो० एस. एन. बोसने आजके प्रचलित सिक्केके अनुसार इस प्रकार समझाए हैं ।

जिन्स.	मण का मूल्य
चावल	०—१—९
तिलका तेल	०-११-३
घी	१—७—०
शक्कर	१—७—०
बारीक सूतका कपड़ा १५ गज का	२—०—०

अकबरका समय

इसके पश्चात् १६ वीं सदीके भाव 'आईने अकबरी' के अनुसार इस प्रकार हैं ।

जिन्स	प्रति मण मूल्य
चावल (बढ़िया)	०—१५—०
चावल (घटिया)	०—१०—०
दाल	०—१३—०
घी	५—०—०
नमक	०—१२—०
शक्कर	५—११—०

'India at the death of Akbar' नामक ग्रंथमें मोरलैंड उस समयकी आयका योग इस प्रकार देता है, वह आजके चलनी सिक्कोंके अनुसार इस प्रकार है ।

कार्यकर्ता	मासिक आय
साधारण श्रमजीवी,	१--१४-०
कुशल श्रमजीवी,	३-१२-०
भंगी,	१-१४-०
चाकर,	३-०-०
साधारण कारीगर वर्ग,	१-८-०

ब्रिटिशसत्ताके पैर फैलने पर

ब्रिटिश सत्ता जिस समय भारतवर्षमें अपने पैर फैलारही थी, उस समय ई. १७३८ में बंगालमें चावलका भाव २॥) मनसे लगाकर ३) मन तक था । आज उसी बंगालमें चावलका भाव मि० ए. के. फ़ज़लुल हक़ने वर्तमानमें ही बताया है कि चावलका भाव ८०) रुपया प्रतिमन चढ़ चुका है ।

बुकेनिन-हेमिल्टनके आँकड़े

उस समय ईस्ट-इंडिया कम्पनी अपना सामर्थ्य बढाती ही जा रही थी कि उस समयमें ई. स. १८१० में बुकेनन-हेमिल्टनने निम्न कथनानुसार आँकड़ा लगाया

कार्यकर्ता	आय
सामान्य श्रमजीवी	रोजाना, २ आना,
कुशल श्रमजीवी	रोजाना ३ आना
तक्षक-बढ़ई	मासिक रु० ६—०—०
ठठियार	,, ,, ४-१४—०
जुलाहा	,, ,, ३—०—०

उस समयके भावोंकी तुलना

जिन्स	प्रतिमन	रु० आ० पा०
चावल (बढिया)	,,	१—४—०
,, (घटिया)	,,	१—०—०
दाल	,,	१—८—०
आटा	,,	२—०—०
सरसों	सेर	०—२—०
घी	,,	०—७—०
धोती जोड़ा	१ नग	०—६—०

भारतीय कुटुंबोंकी आय व्ययका प्रमाण सर्वप्रथम कुचक्रगत हुआ हो तो वह ई. १८३० में इंग्लेंडसे सस्ते आयातके वस्त्र द्वारा हुआ है।

ब्रिटिश शासनमें जीवन निर्वाह कठिन हो गया

ब्रिटिश हिंदकी सरेराश मासिक आय १९ वीं सदीके अन्त भागमें जो गणना की गई थी, वह दादाभाई नवरोज की गिनतीके अनुसार १-११-० होती थी। तब डिग्बीकी संख्या के अनुसार १-९-० लॉर्ड कर्जन जैसे भी २-८-० से अधिक आय सिद्ध ही न कर सके। प्रो० वी. के. आर; वी. राओने ई. स. १९२५-२९ में फलितांक निकाला था उसके अनुसार मासिक आय ६-६-० होती है। भारतमें करोडों मनुष्योंकी आमदनी १०) मासिकसे आगे बढती ही नहीं। मात्र इसी आय पर उन्हें अपना निर्वाह करना पड़ता है। इस आमदनीके परिमाणमें वस्तुओंके भावका व्यौरा इस

प्रकार है। जिससे उनको अपना जीवन निभाना कितना दुष्कर रहा हुआ है जिसे इस कोष्ठकसे भले प्रकार समझ सकते हैं।

मालकी कीमत सितंबर ३९					कीमत जुलाई ४३
चावल	मण	रु०	४—१२—०	मण रु०	३४—०—०
दाल	,,	,,	५—०—०	,, ,,	२५—०—०
खांड	,,	,,	१२—८—०	,, ,,	४०—०—०
तेल	,,	,,	२०—०—०	,, ,,	५०—८—०
घी	,,	,,	५०—०—०	,, ,,	१४०—०—०
कोयला	,,	,,	०—६—०	,, ,,	२—०—०
मोटे कपडेका जोड़ा			२—०—०	जोडा	१२—०—०

छिन्न भिन्न आर्थिक जीवन

२०० वर्ष पूर्वसे इस देशमें चली आनेवाली अनीति तथा शोषणपद्धति पूर्वक आर्थिक ह्रासके कारण भारतका आर्थिक जीवनका पाया तक हिल उठा। लोकहितकी निर्दय उपेक्षा करके पिछली दो शताब्दियोंमें घड़ी जाने वाली क़ानूनकी संमतिपूर्वक प्रचलित पद्धति यह शांत और निष्ठुर शासनके सन्मुख भारतपर होनेवाले विदेशी आक्रमण, आंतरिक युद्ध, राजक्रान्ति और राजपरिवर्तन भी मंद पड़ जाता है।

सक्खर—११।४०० ता० ३०-३१-१-२-३

शेठ हीरानंद राजारामके मकानमें श्रीमान् शेठ कुंवरजी भाईने ठहरनेकी व्यवस्था पहलेसे ही करदी थी। आप १५ दिनतक रास्तेमें साथ चलकर सेवा करते रहे हैं। कुछ आवश्यक कार्य आ पड़ने के

कारण श्रीमहाराजसे आज्ञा लेकर अपने कई सेवकोंको श्रीमहाराजकी सेवामें रखकर आप सकुटुंब कराची (मलीर) चलेगए।

सक्खरमें हिंदुओंकी पुष्कल आबादी है। सिंधुनदीके किनारे ही बसता है। सिन्धुनदी मानो उनके घरकी बावड़ी के समान है। सक्खर मेवेके व्यापारकी बड़ी मंडी है। बड़े बड़े धनिक लोग रहते हैं। शिकारपुरकी भाँति ये लोग प्रकृतिके अमीर और स्वभावके उदार तथा सुखी हैं।

आजके सिंधी-अमीरी (विलासिता) में और व्यापार में प्रसिद्धि-प्राप्त हैं। भाईबंदोंकी अपेक्षा आमिल अंग्रेजी भाषामें बहुत ही बढ़े चढ़े हैं।

साथ ही महिलाएँ तो योग्यता-गणित-वक्तृत्व-कला-सौंदर्य-फ़ैशन-परस्ती-सुकुमारिता निर्लज्जता और विलासितामें तो पुरुषोंसे भी चार चंदे आगे हैं। अधिक क्या लिखा जाय, ये किसी बातमें भी कम नहीं हैं। मांस मछली-पल्ला-शराब आदि गटकनेमें तो सबसे बढ़ चढ़कर हैं, इनका अधिकांश पतन हो चुका है। एक लड़की दिन भरमें चार चार पार्टियोंमें बुलाई जाती है, और वह गर्वसे पास कर डालती है। पल्ला खाए विना तो ये रहना ही नहीं चाहती। नाट्य-कलामें तो बाढ़की तरह उमड़ी जा रही हैं।

"श्रीमती तीर्थबाई प्राइमरी स्कूल" और "भगवानदास ठाकुरदास चाँदवानी गर्ल्स् स्कूल" (पुराना सक्खर) से श्रीगुरुदेवकी सेवामें निमंत्रण आए और श्रीमहाराज व्याख्यान के लिए पधारे। जिसमें ४०० बालाओंने प्रवचनका लाभ लिया। ये लडकिएँ विदुषी और कुछ अभिनेत्री भी हैं। इस संस्थाके मंत्री डॉ० मंघाराम कालाणी हैं, [यह

कालाणी खानदान बड़ा ही विचित्र कुल है] उनके बड़े भ्राता मा० ऐशीराम रामचन्द्र कालाणी बी. ए. बी. टी. बड़े भद्र और भक्ति विचारके खोजी व्यक्ति हैं। ये भी इस संस्थाकी उन्नतिमें खूब योग देते हैं। कराची निवासी शेठ मोहनलाल अंबावीदासके साथ श्रीगुरुदेवने इस संस्थाका ता० २-२-४६ अवलोकन किया। प्रवचन भी यहीं हुआ। विद्वत्ताके अतिरिक्त इन कन्याओंमें सभ्यता-विनयता-वीरता-स्वाभिमानिता-शान्तता आदि भी प्रचुर रूपमें पाई गई। शिल्प और विज्ञानमें इनको अग्रसर पाया। कराचीवाले मास्टर महोदय ने उन्हें २५) पुरस्कार दिया। सिंधी लोगोंके दिलोंपर कराची संघकी महत्ताकी गहरी छाप पड़ी। लोगोंमें इस प्रभावनाकी बड़ी प्रतिष्ठा की गई।

ता० ३१-१-४६ को साधबेला के प्रमुख महन्त श्रीमान् हरनामदासजीके निमंत्रणको पाकर साधबेलाकी साधुसभामें साधुओंके गुण उनके उद्देश्य-साधुचरित्र-साधुरहस्य और साधुतादि विषयोंपर प्रवचन हुआ। सुल्फा-गाँजा-तंबाकु पीनेवालोंको खूब फटकारा गया। कइओंने इस कुटेवको छोड़ देनेका प्रण भी किया। दृश्य रमणीय तथा दर्शनीय था। साधुओं पर जैन मुनिओंके तप-त्याग और चरित्रका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। आजकी परिषद् के सभापति महंतजी ही बनाए गए थे। उनके द्वारा उस दिन एक संन्यास-दीक्षा भी सम्पन्न हुई। संन्यास स्वीकार करते समय कोई विशेष बात तो न हुई। संस्कार करते समय मात्र गैरिक कपड़े पहनाए गए। साधुओंको कुछ रुपया बाँटा गया। तदनन्तर हलवे की प्रभावना की गई। यह सब व्ययभार दीक्षितकी ओरसे ही सम्पन्न हुआ था।

साधबेला सिंधुमें एक छोटासा द्वीप (टापू) है। उसीमें यह

आश्रम है। पहलेकी अपेक्षा अब तो बहुत सी ज़मीन बढ़ाली है। संस्थाके नियमानुसार रातको कोई भी गृहस्थ साधबेलामें नहीं रह सकता। मात्र वहाँ उस समय साधु-सन्त ही रह सकते हैं। नौकावाले साधुओंसे पैसा नहीं लेते। साधबेलाकी ओरसे दो नौकाएँ रक्खी गई हैं, सेवा नियमित है, किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। इस मठके आद्य संस्थापक श्रीबनखंडी महात्मा बताए जाते हैं। इस संस्थामें धनकी आय बहुत है। आनेवाले रूपया खूब चढ़ाते हैं। यदि इस आयका उचित उपयोग किया जाय तो एक कॉलेज चलाया जा सकता है।

सक्खर और रोहरीके बीच सिंधुका एक पुल बड़ा ही विलक्षण बाँधा गया है। कारीगरी यह है कि बीचमें कोई थंभा नहीं रक्खा है। इसे केंचीका पुल कहते हैं। किसी बंगाली कारुकी कृति है। भारतका इस भाँतिका यह पहला संस्करण है। जनश्रुति या किंवदन्ती है, कि उसके द्वारा पुल सम्पन्न होने के पश्चात्, उसे पंचत्व को पहुँचा दिया गया था।

यहां का 'बैरेज' देखने योग्य है, यहाँ से आठ दश नहरें निकाली गई हैं। बाँध बहुत बड़ा है। करोड़ों रुपए व्यय किए गए हैं। सिंधके अधिकांश भाग में ये नहरें तंतुजालकी तरह फैल गई हैं। खेतोंकी सिंचाई का यथोचित प्रबंध है। जिस सिंधमें खल्वाटकी टट्टरी की तरह एक भी वृक्ष न था, और लोगोंके घरोंमें पनाले तक न थे, तथा प्रतिवर्ष सूखा व्यतीत होता था, आज उसी सिंधमें इन नहरोंके साधनसे बाग-बगीचे-जंगल-जखीरा-रक्ख वृक्षकी हरियाली आदि, सब कुछ बाढ़की तरह बढ़ता जा रहा है। लाखों टन

गेहूं और चावल उत्पन्न होने लगा है। यहांकी सबसे बड़ी नहरका नाम 'राईस कैनाल' है। इस ओर की कृषि प्रजा अतिसुखी और धनिक होती जाती है। लाखों सिंधी यवनोंके पास करोड़ोंकी आय है। यही कारण है की लोगोंमें विलासिता बढ़ गई हैं। मदिराके चषक पर चषक चढ़ते हैं। चौवीस घंटे आमिषकी हंडिया चढ़ी रहती है। तीन तीन फुटके ऊंचे हुक्के गुड़गुड़ाए जाते हैं। समृद्धिमान् होनेसे संभवको असंभव बनाते जा रहे हैं। लोगोंकी अनधिकार चेष्टाएँ बढ़ी हुई हैं। सिंधी लोगोंकी जान संकटमें पड़ गई है। फिर भी संगठनका तत्व नहीं अपनाते, हिन्दूपन नामको ही रह-गया है। ९९ प्रतिशत अभक्षभोजी हैं। सचमुच इनका स्वाभिमान खो गया है। मग़ज़ खपाई करने पर भी सुधारके मार्ग पर नहीं आ पाते। लोगों के संस्कार सोलहआने विकृत हैं। जो लोग अपना देश छोड़कर आजीविकार्थ यहां आते हैं उनका अपना धर्मभाव भी फीका पड़ जाता है। यहां कमाई बहुत है, प्रवासी कुछ ही दिनोंमें मालामाल हो जाते हैं, मगर उनमें चरित्र नहीं रहता। पैसा लेकर घर नहीं जाने पाते, कुछ समय पश्चात् दूधका दूध पानीका पानी रह जाता है। नहरोंसे धनका वेग बहकर आता है। इसी प्रवाहमें वहाँ के ज़मीनदार बहे जा रहे हैं। दो दूनी चार की खुमारी चढ़ी हुई है। इनके प्रामाणिकताके तोते उड़ चले हैं। इनकी बातका विश्वास नहीं। अभी कुछ है तो पलके बाद कुछ। व्यावसायिक-वाग्बद्धता नहीं। इसी कारण बनिओंके घर लक्ष्मीका निवास नहीं रहा।

किसी समय सिंधीलोग सरल और दयालु प्रकृति के होते थे, अब भी हैं, परन्तु जबसे लोगोंने इनकी भलमनसाहतका दुरुपयोग

आरंभ किया है, तब से इन्होंने भी पलटा खाया। अब इनमें वह राम नहीं, फिर भी अधिक क्रूर नहीं हैं। साधु सन्तोंकी भक्तिमें लय हो जाते हैं। साधु जनोंके त्यागकी क़दर करते हैं, और उनके चरणोंमें लोटने लगते हैं। जबसे जैन मुनिओंके त्यागको देखा है, तबसे इनकी आँखें खुली हैं। उनके निवृत्तिमय जीवन पर वे न्यौच्छावर होते हैं। मगर जैन साधु इधर कहाँ धरे हैं। मात्र श्रीगुरुदेव द्वारा ही पहल हुई है, यदि इसी प्रकार दो चार दर्जन साधु आएँ, और बरसों तक ऊहापोह करें तो लाखों जैन बढ़नेकी संभावना हो सकती है।

शिकारपुरमें गुरुदेवसे एक व्यापारीने यह प्रार्थना की कि गुरुजी! मेरे घर भोजन लेने पधारिएगा! श्रीदयालु देवने मुझे संकेतमें जानेको कहा, और मैंने उनकी दुकान पर आकर कहा कि भाई! हम तुम्हें पहले शुद्ध करेंगे, उसके पीछे भोजनके विषयमें सोचेंगे। उत्तरमें उक्त सिंधी भाईने निवेदन किया कि भगवन्! मैं शुद्ध होनेको प्रस्तुत हूं। बताइए मेरे शुद्ध होनेमें क्या कुछ व्यय होगा। उतना ही रुपया मंगवा दिया जाय। मैंने कहा कि भाईजी! पवित्र होनेके लिए रुपयोंकी आवश्यकता नहीं होती। मात्र जितने आपके घरमें भाई बंधु और जन हैं, सबके सब मांस और मदिरा छोड दें। इतने से ही आपकी शुद्धिका आरंभ होगा। इसने नम्रतासे कहा, कि यद्यपि ये दोनों वस्तुएँ हम सिंधिओंकी जन्मघुट्टीमें पडी हैं, तथापि आपकी आज्ञाका पालन किया जायगा। इस समय हम दलाल समेत पांच व्यक्ति हैं, सब प्रतिज्ञा करते हैं, कि मांस-मदिरा न छुएंगे। यह कह उन्होंने सबने मेरी सही बुकमें हस्ताक्षर कर दिए। १५

और दर्शकोंने भी छोड़ दिया। इतनी उदार और नक़द भक्ति अपने भाइओंमें कहाँ है? भक्तिपरायणता तो इन लोगोंमें अधिक है, परन्तु इन्हें तो मार्गदर्शक अच्छे कम मिलते हैं। हलवा मांडा पाने वाले इनके पास अधिक होते हैं।

रोहरी–५।४०५ ता० ४-२-४६

शेठ सुगनीचंदकी धर्मशाला, सिंधु नदीके तटस्थ है। स्वच्छताका पता ही नहीं लगता। गंदगीका साम्राज्य है। पासके ठिकानेमें श्रीगुरुदेवका भाषण हुआ। पाँच मनुष्योंने शुद्ध मार्ग पकड़ा था।

साँगी–११।४१६ ता० ५-२-४६

धर्मशालामें प्रवचन हुआ। सबने दिल खोलकर अर्थात् स्कूलके विद्यार्थी और बड़े बूढ़ोंने सबने मांस खाना छोड़ा।

पनवाकिल–८।४२४ ता० ६-२-४६

स्थान धर्मशाला. व्याख्यान-जनशुद्धि।

घोटकी–१८।४४२ ता० ७-२-४६

शहर लंबा बाज़ार छपा हुआ, सिंधीलोगोंकी अति संख्या, आदि विशेषताएँ यहाँ ही पाई गई। रातमें व्याख्यान हुआ। हज़ारों की संख्यामें जनताका योग था। ठिकाना बड़ा है। कौरो भगतने बनवाया था। अब एक लोभी धनिक उस पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। यात्रिओंके लिए अनेक सुविधाएँ हैं। यों लोगोंमें अपार उत्साह पाया गया। अपने ढंगका यह वातावरण निराला ही था। बहुतोंने मांस छोडा है। श्रीलहरीभाई गांधी यहांसे हैदराबाद लौट गए।

उमरडरहो—७।४४९ ता० ८-२-४६

तालुका घोटकी-पो० सरहद् जि० सक्खरमें. यह स्थान एक भयानक जंगलके किनारे पर है। मास्टर मोहन लाल अंबावीदासने यहां आकर लोगोंमें जैन मुनिओं के आनेकी सूचना कर दी थी। सारे बाज़ारके लोग सावनके बादलोंकी तरह उमड़ पड़े। नंगे पैर श्रीगुरु की पेशवाई में आए, उस समयका भक्तिचित्र कोई विलक्षण रूपक लिए हुए था। मानो भक्तिने अपना सजीव-सदेह रूपमें अवतरित होना आरंभ किया है। लाला गिरधारीमल-अलुदामल-विशनिदासके यहां ठहरे। रात्रिमें नगरनिवासियोंने बहुमानपूर्वक भाषण सुना और कई लोगोंमें करुणरसका उभार आया।

रातके १२ बजे छह मीलके अन्तर वाले एक गोठसे सिंधी-भाई-बंदोंका एक डेप्युटेशन सशस्त्र आया, और श्रीगुरुदेवके दर्शन करके एक स्वरसे प्रार्थना की, कि भगवन्! एक रात्रिके लिए हमारे ग्राममें भी पधारें। हमने आपके विषयमें घोटकीमें सुना था। हम रातमें चले थे। हुरोंके आतंकसे बंदूकें ली हैं। महाराज! मौतके साथ खिलवाड़ करते हुए आए हैं, अतः एक रातके लिए दर्शन देकर कृतार्थ करें। श्रीगुरुने फ़र्माया कि हमें घोटकी की तरफ़ फिर वापस जाना पड़ेगा, इसलिए विवश हैं। आगन्तुक लोगोंने सवेरेका उपदेश सुनकर ही सन्तोष प्रगट किया।

श्रीगुरुदेवने सवेर होने पर विहार किया, तब शेठ आलुदामल नंगे पैर मीरपुर-माथेलो तक साथ साथ आए। विदा होते समय विज्ञप्ति की, कि चतुर्मासमें भी लाभ लूंगा।

मीरपुर–माथेलो ९।४५८ ता० ९-२-४६

सडकके पासकी धर्मशालामें विश्राम, रात्रिमें हज़ारों श्रद्धालुओंकी अपार भीड आई। धर्मोपदेश सुनकर सब अतीव प्रसन्न हुए। सैंकडों लोगोंने मांसाहार छोड़ा। लोगोंमें एक प्रकारकी धर्मभावनाने जागृति उत्पन्न करदी।

डहरकी–१०।४६८ ता० १०-२-४६

शेठ टेकचंद कराची निवासीने भक्तिपूर्वक अपने मकानमें स्थान दिया। ये मा० मोहनलाल अंबावीदास के मित्र हैं। रात्रिके समय पासके टिकानेमें प्रवचन हुआ। श्रोताओंकी पुष्कल संख्या थी। यहां कॉंग्रेस विचारके लोग अधिक हैं। लोगोंका मांस-मदिरा भी छूटता जा रहा है। इन्हें मांसादि छोड़ते समय अधिक देर न लगी।

अबाउडो–८।४७६ ता० ११-२-४६

यह मार्ग अतिभयानक है, प्रतिपक्षियों द्वारा मरणासन्न कष्ट भी प्रस्तुत हो सकता है पीर और उसके लड़कोंका बड़ा आतंक है। वे हिंदुओंका शिकार खेला करते हैं। अब तक सैंकडों हिंदुओंको अपने विकट जालमें फँसा चुके हैं। उसके झीले फाँसे में आनेके बाद बच निकलना अतिकठिन है। इसकी हदमें प्रवेश करते ही तांगे वाले ताँगा दौड़ाने लगते हैं।

यहाँ नंदी बजारके थारुथल्लाके टिकानमें ठहरे थे, रात्रिमें सिंधी लोगोंने खूब लाभ लिया। उदार विचारवालोंने धर्मदलालीका उत्तम परिचय दिया। सैंकड़ों लोगोंकी शुद्धि हुई। यहां आर्यसमाजके प्रचारक भी आया करते हैं। लोग इतने कायर नहीं हैं।

यहाँ तक सिंध की सीमा है। आगे पंजाब की हद आरंभ होती है। देश परिवर्तनके साथ साथ लोगोंमें भी कुछ परिवर्तन प्रतीत होने लगता है। इधरके लोग निडर और स्वाभिमानी हैं। मरने मारनेका साहस रखते हैं। कुमौत मरनेका पाठ विस्मरण करते जा रहे हैं। आर्यसमाजका भी प्रचार वृद्धिपर है। उसके अपने आँदोलनसे भी लोगों का आमिषाहार छूट रहा है। सिंध छूटते ही कायाकल्प सा दीख पडने लगा।

कोट-सबजल—१०।४८६ ता० १२-२-४६

आज भावलपुर स्टेटकी सीमामें हैं। धर्मशाला नई ही बनी है। प्रवचनके समय स्त्री-पुरुष छोटे बड़े सब आए। मांस मदिरा त्यागनेकी पहल एक डाक्टर महोदयसे हुई। फिर तो उनका अनुकरण सैंकड़ों लोगोंने किया। भावनाकी प्रतिमूर्तिएँ देखकर अचरज हुए विना न रहा।

शंजरपुर—६।४९२ ता० १३-२-४६

यहाँका टिकाना स्वच्छ और सुंदर है, कौरामल भगतकी प्रेरणासे बना है। पास ही धर्मशाला है। लोगोंकी भक्तिवत्सलता सर्वोत्तम है। सबमें सेवा भाव मुख्य है। साधुको देखकर फलदार वृक्षकी तरह झुक जाते हैं। प्रवचनके समय श्रीमहाराजने अपार भीड़को लाभ पहुँचाया। सब लोगोंने भक्तिपूर्वक मांस-शराब जुआदि दुर्व्यसन छोड़े।

सादक़ाबाद—१०।५०२ ता० १४-२-४६

भजनलाल बलदेवदास ख़ानपुर (रोहतक) निवासी के मकानमें

विश्राम मिला। मंडी बहुत बड़ी है, लोग दलित विचारके हैं, कायरता पूर्ण हैं। रात्रिके समय श्रीमहाराजने बाजारमें व्याख्यान किया। संख्या साधारण थी, फिर भी कॉटन फ़ैक्टरीसे बेहद श्रमजीवी और उनके अध्यक्ष आए।

रहीमयार ख़ाँ—१४।५१६ ता० १५-२-४६

धर्मशालाके कमरेमें तंग पैड़ियोंसे जाया जाता है। नगरमें बिजलीकी तरह ख़बर फैल गई। अधिक संख्यामें आकर दर्शनोंका लाभ लिया। पाद विहार की बात पर अचरज मानते थे। रातमें परिषद् भरपूर थी। फल स्वरूप कई लोगोंने मांसाहार त्याग किया।

कोट समाबा—१४।५३० ता० १६-२-४६

अब धूप की तपिश बढ़ गई थी। रेत जल उठी थी, एक बजते बजते शेठ माधवदास विहारीलालकी कॉटन फैक्टरीमें ठहरे। रात्रिमें श्रीगुरुदेवने प्रवचन किया। नगर के लोग और वहाँ के सब कर्मचारी गण उपस्थित थे। फैक्टरीके अध्यक्ष आर्यसमाज विचारके थे। मांस त्यागके समय ज़रासी भी आनाकानी न की। सब नागरिकोंने आपका बहुमान पूर्वक अनुकरण किया लोगोंकी एक आनकी आनमें काया पलट होते देखकर मुझे और सब स्वयंसेवकोंको बड़ा अद्भुत आश्चर्य होता था। वास्तवमें यह सब श्रीगुरुराजकी ऊंची साधनाका फल था।

ख़ानपुर-कटोरा—१४।५४४ ता० १७-१८-१९

जिला रोहतकके १५-२० दुकानदार अग्रवाल भाई आकर बस गए हैं। तीन दुकाने जैनोंकी भी हैं। प्रभुदास गोहाने वाले, भीखु-

राम बनवारीलाल, हीरालाल खेवडेवाले, प्रतापमल रठालवाले भाई, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। तीनों दिन उभयकाल प्रवचन धारा बहती थी। लोगोंमें उत्साह परिपूर्ण था; इतने दिनके बाद आज कराची निवासी मास्टर मोहनलाल अंबावीदास और भाईचंद भाई मघिया, (हैदराबाद सिंध निवासी) अपने घर वापस लौटे। आपने एक मास रह कर श्रीगुरुदेव की सेवा की है। आप सेवाके वृक्ष हैं।

एकचक–६।५५० ता० २०-२-१९४६

भाई छोटालाल हलालपुर (रोहतक) वालेका एक जैन घर है। मकान बड़ा सुंदर बनवाया है। आजीविकामें अच्छी उन्नति की है। यहाँ कपासकी उपज अधिक है। बाहार से आए लोग मालामाल हो जाते हैं। चालाकीसे अधिक काम लेते हैं। रात्रिमें भाषण भी हुआ।

फिरोज़ा ८।५८८ ता० २१-२-४६

लक्ष्मी कॉटनफ़ैक्टरी वालोंने बहुमान पूर्वक ठहरा कर रात्रिको मात्र एक व्याख्यान श्रवण करते हुए, अनन्य भक्त हो गए। इनकी भक्तिका भाव अव्यभिचरित है। कोईयोंने आमिष त्याग किया।

चोऊधरी–१४।५७२ ता० २२।२३-२-४६

यहाँ कई फ़ैक्टरी हैं, फिर भी श्रीमहाराज तो शेठ विशनदासकी कॉटन फैक्टरीमें पधारे। यहाँ के इंजीनियर बाबू विश्वंभरदास मुलतानी दर्शनार्थ आए, आपके भक्तिविचार प्रशंसार्ह हैं। आपकी प्रबल प्रेरणाओंसे कारखाने के सब कर्मचारियोंने व्याख्यान सुना। नागरिक तथा बीकानेरके कई श्रेष्ठी महाशय भी सम्मिलित हुए।

तदनन्तर इंजिनियर साहेबने खड़े होकर, मांस मदिराका त्याग किया। तथा उनकी मृदुल प्रेरणाओंसे सब सज्जनोंने उनका अनुकरण किया। साथ ही यह प्रार्थना की, कि भगवन्! एक दिन यही अमृत और पिलाएँ। कल हमारे शेठ भी आ जायँगे। उनकी प्रतिज्ञा होने पर और लोग भी अनुगामी होंगे। श्रीगुरुदेवने उनकी उत्साह भरी विनती मानली। सत्य है, महापुरुष किसीका भी उत्साह भंग नहीं करते।

अगले दिनकी परिषद्‌में श्रोताओंका समुदाय खूब जमा हुआ। अन्तमें इंजीनियर महानुभावने शेठ महोदयके सन्मुख आमिष परित्याग करनेका अनुरोध किया।

शेठ-महाशय—भाई जी! आप बीड़ी भी त्याग दें। तब हम मांस खाना छोड़ सकते हैं। इंजीनियरसाहेबने यह सुनते ही जेबसे बीड़ीयोंका बंडल तुरन्त तोड़ मरोड़ कर फैंक दिया, मेरी पुस्तकमें उसी समय त्याग पत्र की सही कर दी। और विनयसे बोले कि शेठजी! अब आप भी गंगा न्हा लिजिए। भला शेठ समय को कब गवाँ सकते थे उन्होंने भी उक्त विषयके हस्ताक्षर कर दिए। इसके अनन्तर उनकी गृहदेवीने भी छोड़ दिया। 'अहिंसा परमो धर्मः' के ध्वन्यात्मक शब्दोंसे हॉल गूँज उठा। इस प्रकार सैंधवी भूमिके बहुतसे लोगोंको गुरुदेवने सन्मार्ग पर लगाया, और लोगोंका हित किया।

चनीगोठ—१२।५८४ ता० २४-२-४६

शेठ विहारीलाल लायलपुरीकी कॉटन फैक्टरीमें रात्रि बिताई। सुननेवालोंकी संख्या अल्प थी।

डेरानबाब अहमदपुर } १४।५९८ ता० २५-२-४६

मार्गमें मिलीटरीके सात मदरासके हिंदुसिपाहियोंनें लाइन पर खड़े खड़े, आधा घंटा उपदेशामृत पिया। तथा मांस और बीड़ी का त्याग कर दिया। आँग्ल और संस्कृतमें एक दो का अच्छा प्रवेश था। एक यवन-सिपाही कोरा रह गया। यहाँ बावली साहेबमें ठहरे। सुना जाता है किसी समय इस नगरमें ओसवालोंके ७०० घर थे। परन्तु अब तो नाम शेष भी नहीं है।

मुबारकपुर—१०।६०८ ता० २६-२-४६

स्टेशनमास्टरोंने रेस्ट हाउसमें ही ठहरा लिया। रात्रिमें बोधपाठ सुनकर दो मास्टरोंने मांस छोड़ा।

समासटा—१५।६२३ ता० २७-२-४६

सनातन धर्मशाला ठहरनेको है, कुव्यवस्था और गंदापन सीमोपरान्त है।

भावलपुर-स्टेट—१०।६३३ ता० २८-१४६

नरसिंहजीके मंदिरमें दोनों रात व्याख्यान हुआ, ज़िला रोहतक और ज़िला गुडगाँवके कई अग्रवाल आबसे हैं। लाला शेडामल-महताबराय भावुक व्यक्ति हैं।

लोधरान—१०।६४३ ता० २-३-४६

यह जंक्शन है डबल लाइन यहीं तक है। एक सड़क खानेवालको गई है और दूसरी मुलतान को।

बीकानेरके शेठ लक्ष्मीचंद मोहताकी कॉटन फ़ैक्टरी में स्थान

मिला। शर्मा हुकमचंद कौशलकी पाठशालाके कई विद्यार्थिओंने मांसत्यागकी प्रतिज्ञा ली। ज़िला मुलतानका आरंभ यहीं से है।

गेलेवाला—१६।६५९ ता० ३-३-४६

परमानन्द दुर्गादास मुलतानी शेठने अपनी कॉटन फ़ैक्टरी में ठहराकर सब साथियों समेत प्रवचन सुना। लोगोंके लिए जैन साधु नई वस्तु थी। अकिंचन वृत्तिपर तो वे आश्चर्यपूर्ण हो उठते थे। मैनेजर महोदयने बड़ी भक्ति की। कईयोंने मांस छोड़ा।

शुजाबाद—१६।६७५ ता० ४-३-४६

यहाँके मैनेजर पंजाबी वीर सर्दारसिंह हैं, इनकी गृहदेवी साक्षात् अन्नपूर्णा या भक्तिभावनाकी जीवितमूर्ति कही जा सकती हैं। खड़े पैर सेवा करते इन्हीं को देखा है।

शेरशाह—१६।६९१ ता० ५-३-४६

छोटा स्थान पानेके कारण रात्रि कठिनाईसे बिताई।

मुलतान—१३।७०४ ता० ६-७-८-९-१०-११

मुलतानका प्राचीन नाम मूलस्थान है, किसी समय यह व्यापारका भारी केन्द्र था। यह स्थान पुराना है। सुना जाता है प्रल्हादकी जन्मभूमि यही है। उसकी स्मृतिमें एक मंदिर बना हुआ है। जिसमें काले रंगका एक थंभा खड़ा किया गया है। देखनेवाले खंभे तक नहीं जा सकते। दूरसे भला! वस्तु निर्णय कैसे किया जाय, उसके नाम पर आय काफ़ी अच्छी है।

जैनोंके ६० घरके लगभग हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और दिगम्बर सम्प्रदाय दोनों ही हैं। स्थानकवासी विचारके लोग नहीं

हैं। उभयपक्षमें प्रेमका बर्ताव रहता है। श्रीगुरुदेवके पधारनेकी सूचना पाकर दोनोंओरके श्रावक आए थे। नगर प्रवेश बड़े समारोहसे हुआ। मंदिरके विशाल भवनमें एकता और धर्मसमभाव पर प्रतिभापूर्ण प्रवचन किया था। प्रतिदिन भाषण यहीं हुआ करता था। रात्रिमें भी सत्संग चर्चा होती थी। जैन और जैनेतर सब लाभ लेते थे। सर्वसाधारणमें संस्कृत और हिन्दीका अच्छा प्रचार है।

श्रीमान् लाला लक्ष्मीपति बी. ए. अच्छे भावुक श्रावक हैं, आपका अपने भाईओंमें असाधारण प्रभाव है। यत्र तत्र व्याख्यानोंकी व्यवस्था करानेमें आपका भी स्तुत्य प्रयास था।

पंडित ईश्वरलाल भी योग्य व्यक्ति हैं, प्रकृतिके नम्र एवं विनीत हैं, आपने कई पुस्तकें लिखीं हैं। आपका प्रभात प्रेस है, नगरके लिए आपका जीवन गौरवकी वस्तु है। आप न्यायतीर्थ और न्यायभूषण हैं।

शेठ धर्मचंद सुगनचंद शेठी यहाँ नगरशेठ समझे जाते हैं। आपके भावोंमें सरलता तथा भक्तिमत्ता है।

ता० १०-३-४६ को ज्ञानस्थलमें **सर्वधर्मसमभाव** और **अहिंसातत्वपर** श्रीगुरुदेवका बोधपूर्ण भाषण हुआ। उपस्थिति हज़ारों नरनारियोंकी थी।

यहां से डेरागाज़ीखां ६० मील है, वहाँ ओसवालोंके २० घरके लगभग हैं, दोनों ही पक्षके हैं। शेठ रणजीतमल छोगमलका नाम विशेष उल्लेखनीय है। भाईओंने क्षेत्रस्पर्शनेके लिए बलपूर्वक कहा,

परन्तु ६० मील पीछे सिंधुसे भी पार जाना पड़ता था। इसलिए न जा सके। मार्गमें सिंधु पडता है, वर्षाकालमें स्टीमर द्वारा पार होना पड़ता है। १८ घंटेतकका प्रवास हो जाता है। वैसे शीतकालमें नौकाएँ पुलकी आवश्यकताकी पूर्ति कर देती हैं।

दुनीचंद दलाल भी भावुक व्यक्ति तथा सेवा साधनामें अच्छे और प्रख्यात हैं। दीन और दुःखितोंकी सेवा सहायता आप कराते रहते हैं। अधिक क्या लिखें यहांके सब भाई अच्छी भावनाके अनुसारी हैं। यहाँकी दादावाड़ी रमणीय एवं एकान्त स्थान है, स्वाध्याय ध्यानादिके लिए उपयुक्त है। इस ओर का जलवायु भी स्वास्थ्यप्रद है। जितनी भक्तिका पारायण इनमें देखा है, ऐसा और जगह कम पाया गया। वास्तवमें इस ओर जैन मुनि बहुत ही कम आते हैं। सब संप्रदायके मुनिओंसे हमारा यही अनुरोध है, कि वे भारतवर्षके २५॥ आर्यदेशोंमें, सब क्षेत्रोंमें, विचरण करें। यहांके भाईओंके सद्विचार प्रशंसनीय हैं। अजैनोंमें प्रेमकी मात्रा अधिक है, उन्हें यथाशक्य सुधारके पथ पर लगाया जा सकता है। साधुसन्तोंकी सतत प्रेरणाओंसे उनका मांसाहार तो छूट ही सकता है।

लाला सुखामल भाई दिगंबर विचारके हैं, वैसे हिन्दुसभाके अधिपति हैं, प्रेम और वात्सल्यताके काम अधिकाधिक करते हैं। आपकी कोठीमें एक रात श्रीगुरुराजने निवास किया है।

टाटेपुर—१२।७१६ ता० १२-३-४६

विहारके समय उभयपक्षके भाई दादावाड़ी तक साथ आए।

कई भाई टाटेपुर तक साथ रहे। रातमें भाषण हुआ। इतर लोगोंके मनमें आश्चर्य और नयापन समाया हुआ था।

कोट मेलाराम–८।७२४ ता० १३-३-४६

लाहौरनिवासी रायबहादुर लाला मेलारामका यह गाँव है। जिला मुलतान ही है, पो० ऑफिस भी है। श्रीमान् मैनेजर जीवनदास जी की सेवाएँ बखान करने योग्य हैं। आप की गृहदेवी तो अन्नपूर्णा ही कही जा सकती हैं। आपने समयोचित सेवाओं द्वारा खूब सहानुभूति प्रदर्शित की। रात्रिके समय स्कूलमें व्याख्यानका प्रबंध किया। उपदेश सुनकर लोगोंने बड़ा सन्तोष प्रगट किया।

खानेवाल–१०।७३४ ता० १४-१५-१६-१७

आज श्रीमान् चंदुलाल कामदार और नेणशी भाई देवकरण कराचीसे दर्शनार्थ आए।

मुलतानके तीन भाईओंकी दुकानें यहां भी हैं। इनमें उनसे भी अधिक भक्ति पाई गई।

यहाँ गुजराती काठियावाड़ी भाई भी हैं। रा. रा. शेठ गोकुलदास नरभेराम बीयाणी महानुभाव भक्तिभावमें अग्रगामी हैं। आप रूईके बड़े व्यापारी हैं। काठियावाड़में वैसे आप जेतपुरमें रहते हैं। धर्मकी लगन उतनी ही उत्तम है, जितनी देशमें थी। श्रीगुरुदेवका आश्रय पाकर आपका धर्मस्नेह उत्तरोत्तर जागृत होगया। पं० श्रीबालजी भाई आपके सह साथीको भी अत्यधिक धार्मिक प्रेम है। आप भी उनके साथ धर्मश्रवण करते रहते हैं। आपकी आग्रहपूर्ण प्रार्थना पर ४ दिन महाराज श्री को रहना पड़ा। रात्रिके समय श्रीगुरुजीके

सार्वजनिक भाषण हुए। बहुतोंने आमिष त्याग किया। इस ओर स्था० मुनि कभी नहीं आए।

कच्चा खूह—१३।७४५ ता० १८-३-४६

गुरुमुखसिंह विहारीलाल अमृतसर वालोंकी कॉटन फैक्टरी में नगर और यहांके सब कर्मचारियोंने प्रवचन सुना। मैनेजर रोशनलाल दिलकी लगनसे सेवा करते रहे हैं। कईओंने मांस त्याग किया।

तीन मीलके अन्तरपर वट चकमें एक धनिक मुसल्मानके पास १५०० गऊएँ हैं। रंग-सींग-आकृति आदिमें सब समान हैं। रंग पीला-सींगोंका अभाव (मुंडी) अधिकसे अधिक ३० सेर दूध वाली गऊएँ हैं। मूल्यमें ५००) तक हैं। मरजाने पर भूमिमें गड़वाया जाता है। कई गऊएँ हज़ार रुपया मूल्यकी समझी जाती हैं। बैलोंका जोड़ा २००० रुपए तक का है। इन्हें देख कर आनंदादिकोंके गोकुलों पर किसीको संदेह करनेके लिए स्थान नहीं रहता।

मियाँचन्नु—१४।७६१ ता० १९-२०-३-४६

यह बहुत बड़ी मंडी है, कई कारखाने हैं, रुपएसे रुपया टकराता रहता है। व्यापारका केन्द्र समझा जाता है, दूरदूर के व्यापारियोंने डेरा डाला है, लोग यहां से सम्पन्नता पाते हैं।

माणेकजी देवजी भाई (कच्छी) जैन हैं। भक्ति-भावकी साक्षात मूर्ति हैं, आपकी सेवाएँ सराहनीय हैं। गोकुलदासजी, वालजी भाई आदि कई भाई खानेवालसे आए। माणेकजी भाई ने जो उनकी खि़दमत की है, उसकी तुलना करना कठिन है। रात्रिमें मंड़ीमें व्याख्यान हुआ। जनता हज़ारों की संख्यामें उपस्थित हुई। लाला मुत्सद्दीलाल तिरखाराम भाईके मकानमें ठहरनेकी व्यवस्था थी।

आप हरियाने देशके अग्रवाल बंधु हैं। माणेकजी भाईकी सेवाएँ सबको याद रहेंगी। उनकी सेवा क़दर करने योग्य है।

कसोवाल चार चक–११।७७२ ता० २१-३-४६

भाई कालेरामने खूब स्वागत किया। जिला होशियारपुरके बहुतसे सिख यहाँ आकर बस गए हैं। शंकरलालजी रनजीतमल भाई धर्मभावमें अग्रगामी हैं। आपने व्यवसायमें प्रामाणिकता रखनेकी शिक्षा ली। आप £. १७/१४ चक के हैं। पो० वहीं है। जिला मिंटगुमरीका आरंभ है।

चीचावतनी–१०।७८२ ता० २२-३-४६

कॉटनफैक्टरीके मैनेजर सर्दार सन्तरामसिंहजी की भावुकताकी बराबरी किस प्रकार की जा सकती है अपना सब कुछ न्यौच्छावर करने वाले हैं। सिक्खोंमें भक्तिका पाठ पहले सिखाया जाता है। आपकी ही प्रेरणासे गुरुद्वारमें श्रीगुरुका व्याख्यान हुआ।

हड़प्पा–१४।७९६ ता० २३-३-४६

यह स्थान ज़िला मिंटगुमरीमें है, **मोहनजोदड़ो** से भी पुराना समझा जाता है। ७००० वर्षकी पुरानी सभ्यताके नमूने यहीं उपलब्ध हुए हैं। यहां के इंचार्ज पं० केदारनाथजी शास्त्री जम्मू निवासी पुरातत्वविद् हैं। श्रीगुरुदेवने आपसे यह प्रश्न किया, कि इसका प्राकृत नाम हडप्पा क्यों है? इसे किसने बताया? आदि। उत्तरमें शास्त्रीजीने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, कि पुराने समयसे इसी नामसे प्रचलित है। इसके संबंधमें परिचय कुछ नहीं मिलता, कि इसे किसने आबाद किया, तथा सर्व प्रथम किसका शासन काल था, परन्तु हूण-शक-कनिष्कादिके सील-सिक्के और मोहरें अवश्य

मिली हैं। इन प्राप्त वस्तुओंका संग्रहालय भी है। सब घटनाएँ मोहन जो-दडोके समकालीन होनेसे मिलती जुलती सी हैं। इतना विशेष है, कि पुरातनकालकी मूर्ति आदि कुछ न निकल कर मात्र चार शिव लिंग निकले हैं। जिन्हें पंडितजीने अंगुलीके संकेतसे दिखाए थे, जो कि एक कोनेमें खड़े किए गए हैं।

मोहनजोदडो—आनेके लिए बड़े ऊबड़ खाबड़ मार्ग लांघने पडते हैं, बड़े बड़े गढ़े-नाले और भयानक जंगल पार करने होते हैं। रास्तेमें छोटे मोटे सैंकडों कुएँ मिलते हैं, जिनका पानी अत्यन्त मीठा और आरोग्यप्रद बताया जाता है। पानी अत्यंत समीप है। उनकी बनावट नालंदा विहारसे मिलती जुलती है, ईटोंका आकार और उंडाई भी प्रायः समान ही हैं। चिनाई सुंदर और टिकाऊ कही जा सकती है। लोगोंकी धारणा है, कि ये हज़ारों कुएँ हज़ारों वर्षके पुराने हैं। बाप-दादोंसे इसी प्रकार देखते आए हैं। मोहन जोदड़ो देखते ही दर्शक स्वयं कह उठता है कि इसके तीन स्तर हैं। सबसे ऊपर की मंजिल अपने आप कह उठती है, कि इसका संबंध बौद्ध सभ्यता से है। क्योंकि सबसे ऊपर स्तूप जो बनाया गया था, जिसे लोग मीलों दूरसे देख लेते हैं। इसमें से कुछ बौद्ध मूर्तियाँ-नक़द धन तथा शिलालेखादि मिले हैं। इस वस्तुको २००० वर्षकी पुरानी समझा जाता है। इसका निर्माण अशोकने कराया होगा। वास्तवमें इसने बुद्ध और बुद्धके मुख्य भिक्षुओंकी ८००० धातुओं (अस्थिओ) को ८००० स्थानोंपर पहुँचा कर वहाँ स्तूप बनवा दिए थे। जहाँ बुद्ध नहीं पहुँच पाएँ हैं, वहाँ अशोकने उनके स्मृति

चिन्ह बनवाए हैं, जो काबुल-कंधार-सिंधुसोवीर-बुलख-बुखारा-ग़ज़नी-कोट काफ़र-चित्राल कश्मीर आदि सब प्रदेशोंमें उनके भग्नावशेष अब भी हैं। तथा वे सब एक ही आकारके पाए जाते हैं। चित्राल तथा कोटकाफ़रमें लालकाफ़रोंकी भाषा अब भी पालीसे टक्कर ले सकती है। रावलपिंडीसे ज़ेहलम की ओर आते समय 'माणकियाला' स्तूप अब भी साँगोपाँग खड़ा है, मानो बुद्ध शासनका सतर्क प्रहरी है। इसी प्रकारका स्तूप मोहन जो दड़ो में भी था। इसे अंदरसे कच्ची और चिकनी मट्टीसे भरत करके बनाया होगा। ईटें कालदोषसे आस पास बिखरी पडी हैं।

बिचले स्तर (पड़दे) में से अस्थिओं और वर्तनोंका कोष निकला है। कुदालोंके प्रहारके भयसे कुबेर-वसुराज भी प्रगटित हुए हैं। अन्तिम स्तर अर्थात् भूगर्भमें लगभग ८० फुट नीचे पहुँचने पर ५००० वर्षके पुराने पत्थरके चाकू और कुल्हाडिएँ आदि शस्त्र भी पाए गए हैं। जिसके सिरमें ताँबेकी वस्तुएँ भी अलसाई पडी थीं। शिलीमुख कुदालोंने उनकी कुंभकर्णी निद्रा भंग करके, उन्हें सचेत करके निकाला। मानो यहाँ ताँबेने पत्थरके युगको समाप्त करके, अपना एक छत्र आधिपत्य जमा लिया था। इन ताँबेके आयुध और वर्तनोंने उस युगमें जर्मनी वास्तुके समान क्रान्ति उत्पन्न की होगी। उसकी चमक दमकके सन्मुख लोहेने अपना मुँह न दिखाया होगा। यही कारण है कि यहाँ लोहका अत्यन्त-अभाव है। सोने चाँदी की जान जोखम में न पड़ जाय बस इसीलिए लोहेने बहुत पीछे अवतार धारण किया है। आज तो लोह अपनी काली करतूतों पर लजाता भी नहीं, परन्तु 'मोहनजोदड़ो' ने लोह सेवाको अपनेमें स्थान न

'हड़प्पाकी सील'-मुहरें और उसके सदृश कार्य

महान्-धान्यकोष्ठागारोंका पश्चिम भाग (हड़प्पा)

चुने हुए मट्टीके विविधाकारके पात्र ('मोहनजो दड़ो')

गढ़े हुए मट्टीके बर्तन (हड़प्पा)

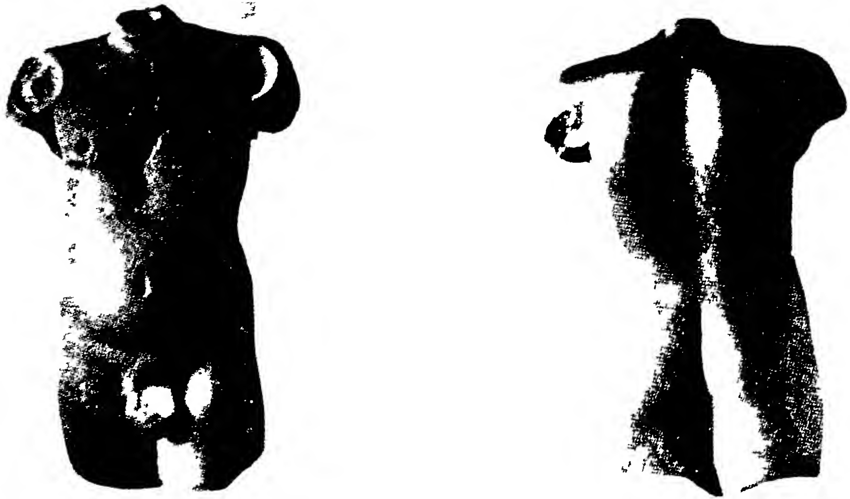

रक्त वालुकामय प्रस्तरके धृत (हड़प्पा)

तांबेके बने हुए उपकरण - साधन और पात्र ('मोहनजो दड़ो')

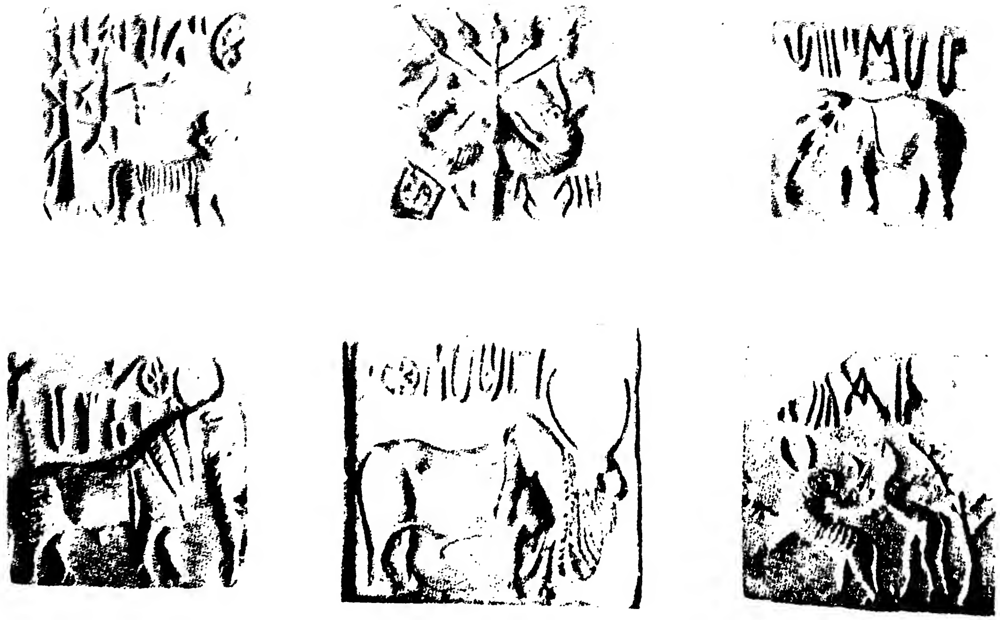

सील और मुहरें ('मोहनजो दड़ो') मुद्रा या - सीकें

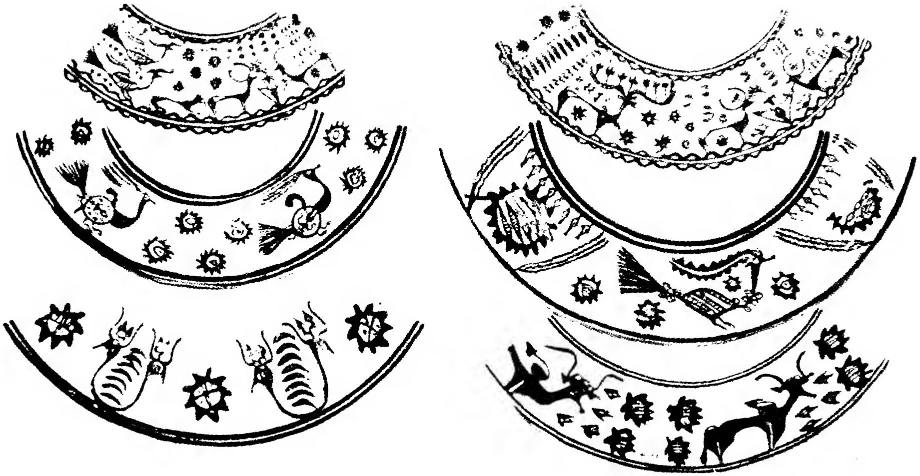

भूमिसात् मृत्पात्रोंके चित्रण नमूने (हड़प्पा)

पहली गली, उसकी चौंडाई बतानेके लिए जनताके चलते-फिरते दिखनेवाला दृश्य ('मोहनजो दडो')

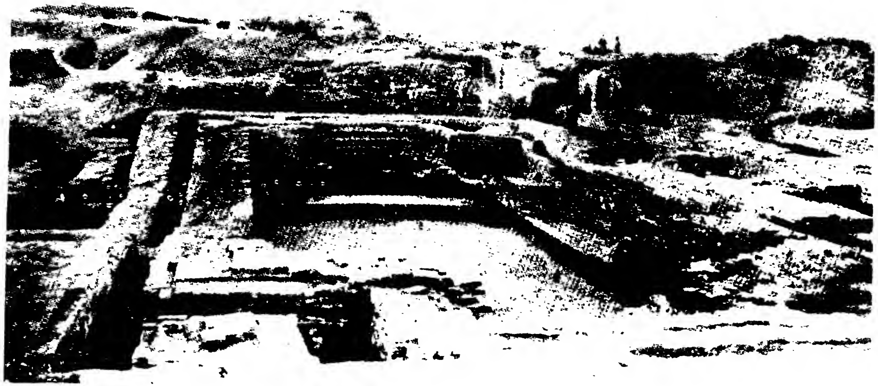

एक विशाल स्नानागारका कुंड ('मोहनजो दड़ो')

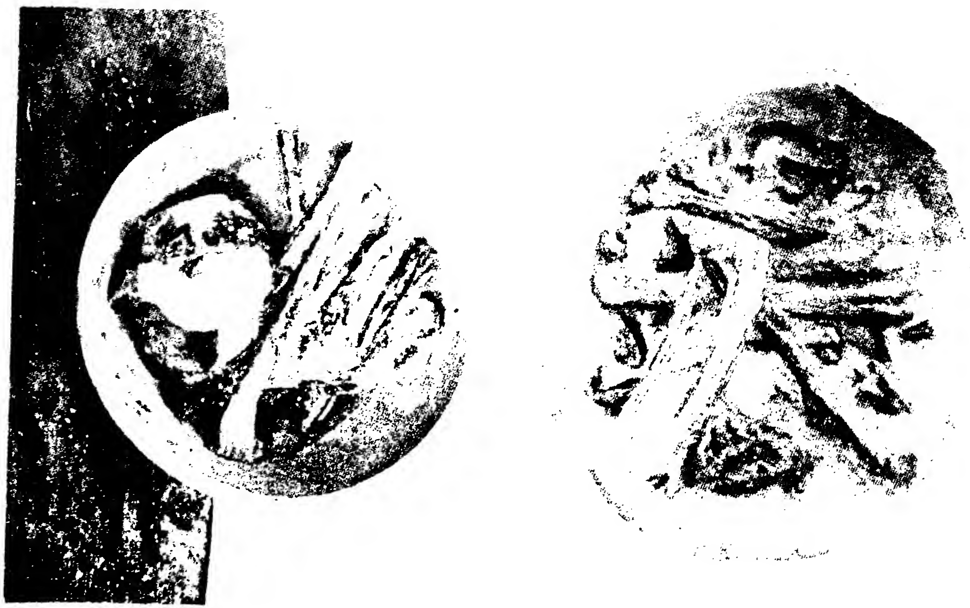

गड़े हुए पात्रोंकी निधियाँ और वस्तुएं (हड़प्पा)

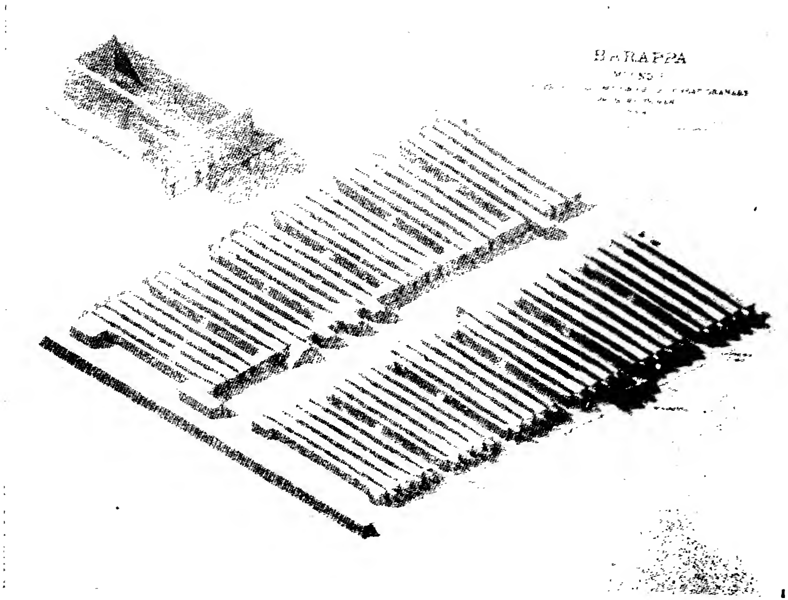

सामान रखनेके कोठे या धान्य भरनेके कोष्ठागार (हड़प्पा)

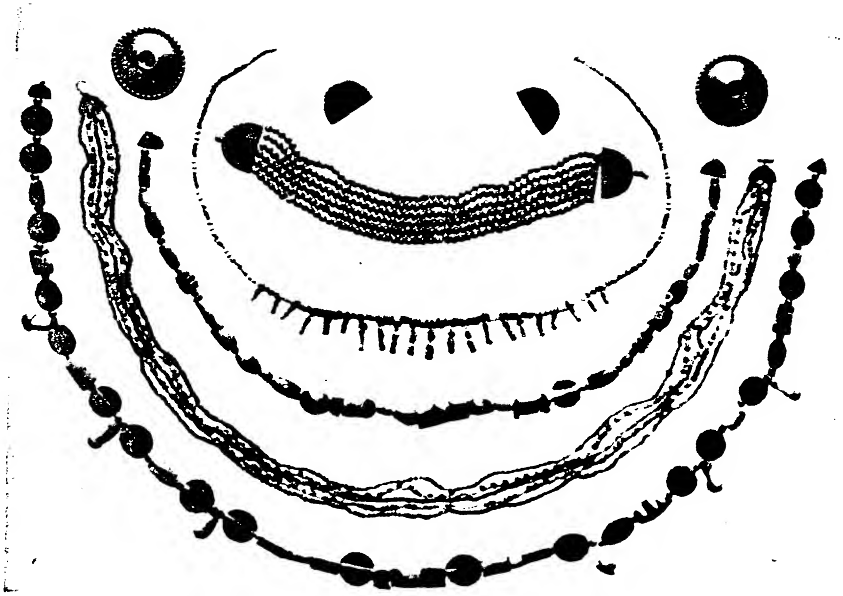

जड़ाऊ गहनोंके नमुने ('मोहनजो दड़ो')

बड़ी खलिहानका पश्चिमीय विभाजन (हड़प्पा)

मटीकी सुराइयाँ और बर्तनोंके नमुने (हड़प्पा)

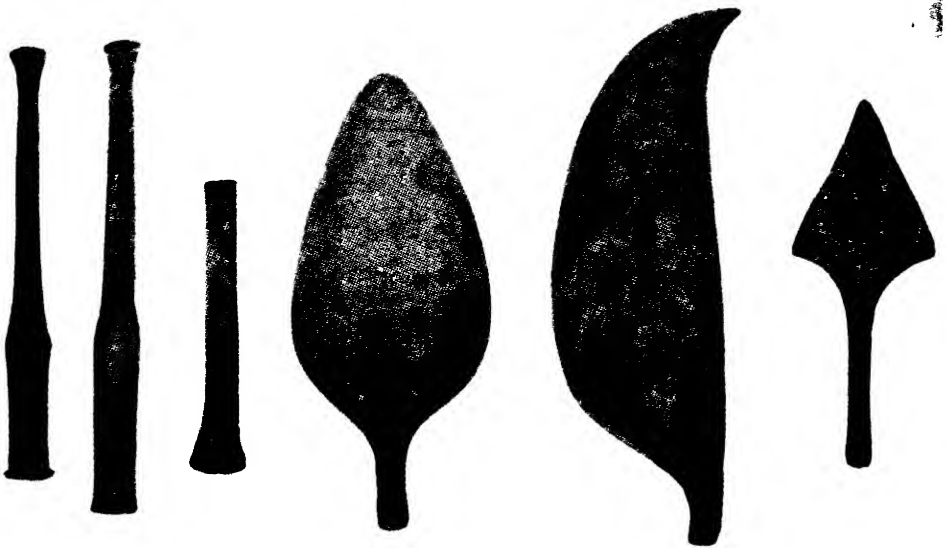

तांबेके उपकरण और शस्त्र (हड़प्पा)

दिया। यही कारण है कि उसमें से एक कील तक लोहे की नहीं निकली है। सूई और तकले सब ताँबेके ही उपलब्ध हुए हैं।

अन्तिम स्तरभागमें बहुतसे चमकदार रत्न भी निकल पड़े हैं। जिनका जंगलमें रहना आतंकपूर्ण समझकर उपकारी सर्कार ने सागर पार निर्विघ्न लंदन पहुँचा दिया होगा।

वहाँ की ईंटें एक फुटसे १॥ फुट तक लंबी, १० इंचकी चौड़ी तथा तीन इंचकी मोटी हैं। ईंटें सुघड सुंदर और सुरक्षितसी जान पड़ती हैं। तीनों स्तरोंकी ईंटोंका आकार प्रायः समान है।

मुर्दोंकें ढाँचोंको देखकर ५००० वर्ष पूर्वका युग आँखें चौंधिया देता है। ५०-१०० फुटका लंबा ढाँचा तो मिला ही नहीं है, यही कोई ७ फुटसे कम ही कम।

बौद्धकालीन नई ईंटें और तीसरे तल स्तरकी ईंटें आकार प्राकार और भारमें प्रायः एक हैं। मानो बौद्धयुगने ५००० वर्ष की पुरानी नक़ल कर डाली है। इतना अवश्य है, कि तीसरे स्तरसे निकल कर वे इस २० वीं शताब्दीमें चूर मूर हो जाती हैं। बौद्धकालीन ईंटों में अब भी बहुत जान है।

५००० वर्ष पूर्व के भारतीय जन अपने मृतकोंको धरतीमें भी दबाया करते थे। इसके प्रमाणकी पूर्ति तत्-अस्थि पिंजर कर रहे हैं। लोगोंकी यह भी धारणा थी, कि मट्टीके बर्तनमें, या मृतकके चारों ओर मट्टीके पात्र चारों ओर चुन देनेसे, मृतक धर्मदूत द्वारा सीधा स्वर्ग पहुँच सकता है।

उस समयके लोगोंमें कई प्रकारके अंध विश्वास भी थे।

जिनके प्रमाणभूत तत्कालीन मट्टी पत्थर-शीप और शंखकी मालायें तथा मृतकके पास पंक्तिबद्ध भिन्न प्रकारके खिलौने हैं।

नगरका सर्वनाश सिंधुकी बाढ द्वारा हुआ हो तो क्या आश्चर्य है। वह अब भी दो मीलके अन्तर पर बहती है। सौवीर देश भी इसके पडोसमें है, इससे अलग नहीं है। जैन सूत्रानुसार तो पुराना नाम सिंधु सौवीर ही रहा है।

यदि २५०० वर्ष पूर्व यह वीतीभय पत्तन-उदयन कालीन नगर रहा हो तो कौन जानता है। परन्तु अब तक इस संबंधमें कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल सका है। तथा वीतीभय पत्तन सिंधु तटस्थ कोई दूसरा दड़ा हो सकता है, शायद कहीं आगे पीछे अथवा आस पास ही।

मोहनजोदड़ो के पास धानकी उपज विशेष है। कई प्रकार के चावल बहुलतासे होते हैं। भूमि उर्वरा-उपजाऊ है। सच मुच उदयनराजके शासनमें तो इसकी निराली ही छटा रही होगी। इस भूमिने ज्ञातपुत्र-महावीर भगवान्‌के चरणस्पर्शका आनन्द भी लिया है। उस समय तो यह सोलह आने पवित्र होगई थी।

मट्टीकी कोठिएँ भी निकली हैं, परन्तु कश्मीरस्थ अवन्तीपुरके निकले हुए माट बड़े और सुंदर हैं। इनका आकार कुछ छोटा है। परन्तु आकर्षक अवश्य हैं। पक्के तो खूब ही हैं। सुंदरताका निर्माण तो फ़र्स्ट-संचरीमें ग्रीक लोगोंने आकर किया है। तब ही तो 'ग्रीक आर्ट' भारतभर में सर्व प्रथम सुंदरता का प्रथमावतार समझा जाता है। उसके अनन्तर गंधारा आर्ट और तत्पश्चात् हिंदू आर्ट आया है। इसके प्रमाणभूत बुत तक्षकशिलामें आंसू पूर रहे हैं। जिन्हे पहले चिकनी मट्टीसे बनाकर ऊपर चूनेके पलास्टर द्वारा

उत्तरवैक्रेय करके उन्हें सजीव बनानेका प्रयत्न किया गया है। मानो स्वर्गका सब सौंदर्य यहीं आकर फूट पड़ा है।

इत्यादि सब वस्तुएँ मोहनजोदड़ो के समान ही यहाँ हैं। मात्र स्थानका अन्तर है। हड़प्पामें ४००० वर्ष के पुराने क़ब्रस्तान भी उद्भूत हुए हैं। जिनसे अस्थि-पिंजर निकल रहे हैं। आकार सम्पूर्ण है। कहींसे टूट फूट नहीं है। इनकी अवगाहना सात फुटसे कम है।

मट्टीके कई वर्तन हड्डिओंसे भरे निकले हैं, प्रतीत होता है कि हड़प्पाके लोग नगर को छोड़ते समय पीछे धन आदि आवश्यक सामग्रिएँ कहीं छुपा नहीं गए, बल्के अपने साथ ही लेते गए हैं। अपनी इच्छासे ही किसी कारणसे नगर त्याग गए हैं। यह जन-श्रुति है। अबतक इसका कोई इतिहास तो नहीं मिल पाया है। बहुत संभव है दुर्भिक्षादि भयसे निकल गए हों, और अपना सार धन साथमें लेते गए हों। यही कारण है कि यहां कहींसे निधि नहीं पाई है। कुछ आभूषण साधारण मूल्यके निकले हैं, परंतु सोने के भावके। कोई मौलिक वस्तु नहीं। रत्नादि न होकर मात्र पत्थर-शीप-शंखके भूषण उद्भूत हुए हैं।

यहाँ एक लंबी क़बर भी देखी गई है। नौगजकी होनेके कारण उसे नोगजा पीर कहते हैं। सामने वाले कटघरेमें एक पहलुदार चकली पड़ी हैं, जो सफेद पत्थरकी हैं। किंवदन्ती है कि यह पीर साहबकी अंगूठी है। परन्तु ५०० वर्ष पहले नौगज के मनुष्य कहाँ थे। बात बिल्कुल असंभव है। फिर भी इतनी मोटी अंगुली तो होही नहीं सकती। इस अंगूठीके घेरे में आजकलके लोगोंके दो दो पावँ जितना मोटा छिद्र है। कुछ भी हो धोखे से पूंछ भारी वाली

कहावत चरितार्थ होती है। लोगोंने अपनी मनमानी पुजवानेके लिए बड़े बड़े गोले गिरड़ाए हैं।

इस नगरके आठ स्तर हैं। आठ बार बसकर उजड़ा है। किसी मंदिर या मूर्ति आदिके खोज न मिलकर मात्र चार शिवलिंग मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि ७००० वर्ष पूर्व मूर्तिपूजाकी प्रथा न थी। हाँ लिंगपूजा ही थी।

यहाँ की अनाज मंडी बहुत बड़ी रही होगी। क्योंकि अनाज भरनेके बडे लंबे चौड़े अनेक कोष्ठागार पाए हैं। जिनमें लाखों मन अन्न भरा जाता होगा। अनाज मंडी यहां की सबसे महती समझी जाती होगी।

बस्तीका घेरा योजनों लंबा चौड़ा है। जिसे एक बार देखने से मन भर जाता है, किन्तु मोहनजोदड़ो को देखने के सौ संस्करण बनने पर भी देखते हुए मन नहीं अघाता। यहां की रचनामें आकर्षणता कम है। फिर भी ७००० वर्षकी पुरानी भारतीय सभ्यताकी झाँकी यहींसे प्रमाणित होती है। यहां की पुरातत्व वस्तुओंसे यह निश्चय तो अनायास होता है, कि **मोहनजोदड़ो** की समकालीन वस्तु है। क्योंकि सब वस्तुएँ अभेद रूपसे मिलती हैं, भिन्नता कुछ भी नहीं है।

× × × × × ×

भाई देशराज जैन दोतीन भाइओंके साथ मिंटगुमरीसे दर्शनार्थ आए। रातको मंदिरमें व्याख्यान हुआ। मगर गुरुदेवकी यह देशना निष्फल गई।

कूलवाला बंगला—५।७९९ ता० २४-३-४६

मिंटगुमरी—१०।८०९ ता० २५-२६-२७

श्रीहरभगवान शाह-प्यारेलाल जैन पसरूर निवासी का एक जैन घर है। आपका व्यापार बज़ाज़ा है। आप जैनके नामसे प्रसिद्ध हैं। मिंटगुमरीमें आपको प्रायः सब जानते हैं। मिंटगुमरी नया शहर बसा है। यही सन् १९०५ से कुछ पूर्व जयपुरके ढंगपर सब जगह चौरस्ते बने हैं। सफ़ाई अच्छी है।

श्रीमान् माणेकजी देवजी भाई मियां चन्नुसे तथा गोकुलदास-वालजी भाई-रतनशी भाई-रतीलाल भाई आदि कई भाई खानेवालसे आए। रात्रिमें व्याख्यान होता था। लोगोंपर अच्छा प्रभाव पड़ा। जैनेतर लोगोंमें धर्मतत्वका ज्ञानभाव फैला। श्रोताओंको पूर्ण सन्तोष हुआ।

गेम्बर—१७।८२६ ता० २८-३-४६

गऊओंके फॉर्मके समान भैंस और घोडियोंके कई फॉर्म जिला मिंटगुमरीमें पाए जाते हैं। घोडिओंके फॉर्ममें अच्छी व्यवस्था है। १५०० घोडिएँ हैं। उनके रहन सहन भरण पोषणका उचित प्रबन्ध है। जो लोग घोड़ी पाल सकते हों उन्हें सर्कार की ओर से एक घोड़ी और एक मरब्बा ज़मीन विना मूल्य मिलती है। उसके दो बच्चे सर्कार लेती है। ये बंबईके मेलेमें बेचे जाते हैं। २५०००) रुपया तक मिल सकता है। मार्ग व्यय के दाम काट कर सब धन मालिकको मिलता है। अतः बहुतसे लोग यहाँ घोडीके व्यापारसे बहुत कमा लेते हैं। इस ओर घोड़ीएँ बड़े ऊँचे मूल्यकी पाई जाती हैं। इस प्रदेशमें नहरें दूर्वाजालके समान फैल गई हैं। नई तोड़ के कारण ज़मीन बड़ी उपजाऊ है। पंजाबके बहुतसे लोग इस

ओर आ बसे हैं। गाय-भैंसोंका पुष्कल दूध मिलीटरी के लिए सप्लाई हो जाता है। साधारण प्रजा तक बहुत कम पहुँचता होगा॥

इस मंडलमें बहुतसे जंगल भी रक्खे गए हैं। इधर की परिभाषामें उसे 'ज़खीरा' कहा जाता है। जंगल १२ माइल तक के भी हैं। वृक्षोंके अनेक प्रकार हैं। टाली (शीशम) अधिक हैं। सर्कारको लकड़ीकी आय बहुत है॥

उकाड़ा—८।८३४ ता० २९-३०

जंजघर बहुत बड़ा है, इसीमें ठहरे। रात्रिमें व्याख्यान हुए। माणेकजी भाई मियाचन्नुसे रतनशी भाईको साथ लेकर आए। गुजराती भाई यहाँ भी बहुत हैं। शामजी-कर्मशी लीलाधर भाई आदिकी कई ऑफिस हैं। रतनशी भाई कच्छी जैन हैं। c/o किलाचंद देवचंद कम्पनी, लिमिटेड उकाडा (मिंटगुमरी) के मैनेजर हैं। यद्यपि आप देरावासी है, तथापि गुरुदेवका शिक्षा-योग पाकर आपमें भक्तिभावका उद्गम हो गया। ये नलिया कच्छके वासी हैं॥

रेनाला—१२।८४६ ता० ३१-३-४६

वांराधाराम—१०।८५६ ता० १-४-४६

सड़क पर ठहरनेको गुरुद्वारा है, व्याख्यान शिवमंदिर में हुआ। नगरके सब नर नारी आए। धर्मपर श्रद्धा उत्पन्न हुई। बहुतसे लोगोंने मांस और जुआ खेलना छोड़ दिया।

पत्तोकी—८।८६४ ता० २-४-४६

जंजघरमें ठहरे, रातमें व्याख्यान हुआ, सबको लाभ मिला। लोग बड़े श्रद्धालु और साधुभक्त प्रतीत हुए।

छाँगा माँगा—८।८७२ ता० ३-४-४६

यहाँ का जंगल (ज़खीरा) प्रसिद्ध है, १२ कोसमें फैला पड़ा है, वन्य जंतुओंसे भरा हुआ है। शीशम अधिक हैं, किसी योग्य व्यक्तिने क्रमपूर्वक बनाया होगा। सडकें और नहरें भी हैं। पुराने स्कूलमें स्थान मिला, श्रीगुरुदेवको श्लेष्मकी बहुलताके कारण आज ज्वर हो आया।

कोट राधाकिशन—१०।८८२ ता० ४-५

लाला मुनशीराम-मगननाथ-जगन्नाथ-आदिके कई घर हैं, सब ओसवाल हैं, जैनेतरोंमें भी विशेष लगन है। रात्रिमें व्याख्यान हुआ, लोगोंको खूब उत्साह मिला।

रायविंड—जं० ९।८९१ ता० ६-४-४६

लाला कर्मचंद खत्री जैन विचारके उत्साही एवं भद्रपुरुष हैं अन्तरमें गहरी लगन है। जैनधर्मकी आगार दीक्षा-भावकी उत्तमतासे निबाहते हैं। उभयकाल सामायिक करते हैं।

व्याख्यानके समय लाहौर संघका [अनुमान २० श्रावकोंका] एक डेप्यूटेशन आया।

जनताकी विशेष उपस्थितिमें श्रीगुरुराजका सुंदर प्रवचन हुआ।

काना कच्छा—१२।९०२ ता० ७-४-४६

श्रीमान् बाबू किदारनाथ जैन रोहतक निवासीने श्रीशिवनारायण महताकी शोरा फैक्टरी में ठहराकर श्री गुरुदेवके व्याख्यानका लाभ सब कर्मचारियोंको दिलवाया। अधिक जनता मारवाडी है। आपने लाहौर संघके सब सभ्योंकी खूब सेवा की।

गुरुमांगटा—९।२१२ ता० ८-९

यहाँ इतना मच्छर है कि इतना प्रकोप शायद कहीं नहीं देखा। यह स्थान मशकागार कहना चाहिए।

लाहौर—६।९१८ ता० १०-११-१२-१३-१४-१५

सुंदर स्थान तो जैन हॉल है, ता० १४-४-४६ को जम्मू संघका एक डेप्यूटेशन आया और श्रीगुरुदेवके पवित्र चरण कमलोंमें वर्तमान चतुर्मास कालके निर्यापन करने की प्रार्थना की। श्रीदयालु गुरुने श्रावकोंको चतुर्मासकी स्वीकृतिरूप साईका मांगल्यपाठ सुना दिया। श्रावकों को अद्वितीय प्रसन्नता हुई।

शाहदरा—५।९२३ ता० १६-४-४६

श्रीयुत मुलतानी वैद्य पं० ठाकुरदत्त शर्माके एक कमरे में स्थान पाया। मच्छरोंका परिवार सम्पूर्ण था।

श्रीरामपुर—१०।९३३ ता० १७-४-४६

श्रीगुरुनानक राईस फैक्टरीके अधिपति श्रीईशर सिंह गुजरांवाला निवासीने सहर्ष स्थान दिया। आप बड़े कुलीन सिक्ख बंधु हैं। आपने रात्रिमें इष्टमित्रों समेत सत्सङ्गलाभ भी प्राप्त किया। आप प्रकृतिके विनीत एवं भक्तिरसमें सराबोर रहने वाले सभ्य भावुक जन हैं।

नारंग—१४।९०७ ता० १८-४-४६

बद्दोमल्ली—१०।९५७ ता० १९-४-४६

लालाजीवनदास सर्राफ़की कोठीमें ठहरे।

नारोवाल—१४।९७१ ता० २०-२१

पसरूर संघके २०-३० भाइओंने आकर श्रीगुरुसे पसरूर पवित्र करनेकी विनती की। **श्रीमान् पीतमसिंहजी जैन सीनियर सब**

जज भी सन्ध्याकी गाडीसे आगए। अन्तमें सबकी बलवती प्रेरणाओं और सद्भावनाओंके समुदायने श्रीगुरुदेवका पसरूर पधारना मनवा लिया। अन्तमें पसरूर हो कर जम्मू पधारना निश्चित होगया।

किला शोभासिंह–११।९८२ ता. २२-४-४६

पसरूर–७।९८९ ता. २३-२४

श्रीसंघ पसरूरमें बड़ी प्रसन्नता छा गई, सब लोग हर्ष और भक्तिपूर्ण नेत्रोंसे श्रीगुरुके दर्शनों द्वारा आनन्दित हो गए। दो दिन व्याख्यान हुए।

श्रीमान् मोतीशाहजी की अध्यक्षतामें एक डेप्युटेशन श्री स्यालकोटसे आया, और स्यालकोट पधारनेकी बलवती विनती की। उत्तरमें श्रीगुरुराजने फ़र्माया कि श्रीनगर जानेकी शीघ्रताके कारण इस समय अवसर नहीं है, यथासमय स्यालकोट आनेका ध्यान रक्खा जायगा।

जमालजंड–१४।१००३ ता. २५-४-४६

मीरासाहेब–१५।१०१८ ता. २६-४-४३

जम्मू–१२।१०३० ता. २७ अप्रेलसे ९ मईतक

जम्मू संघमें प्रसन्नताके बादल उमड़ आए, सैंकड़ों भाईओं का समुदाय सामने आगया. वास्तवमें जम्मू संघ सम्प और भक्तिकी सजीव मूर्ति है। बड़े समारोहसे नगर प्रवेश हुआ। सम्प शक्ति और *'सद्धा परमदुल्लहा'* की पुष्टिके सबन्धमें श्रीगुरुदेवका प्रवचन हुआ।

ता. २८-४-४६ को श्रीगुरुराजके उपदेशके अनन्तर श्रीजम्मू जैन संघने स्वयं ही उपाश्रयको छोटा समझकर बड़ा उपाश्रय बनवानेके लिए कमरोंके वाग्दान समेत अनुमान ४०००) रुपयेका

ध्रुवफंड एकत्र किया। यथा अनुरूप जमीन मिलते ही कार्य परिणतिका आरंभ हो जायगा।

ता. ९-५-४६ को श्रीनगर आनेका निश्चय श्रीसंघ द्वारा स्पष्ट हुआ। १५-१६ स्वयं सेवकोंने अपनी सेवाएँ प्रगट कीं। युवक वर्गमें उल्लास असीम था। जिन स्वयंसेवकों ने जम्मूसे श्रीनगर तक साथ विचरकर प्रचारमें हाथ बटाया है, उनके सुंदर नाम इस प्रकार हैं।

श्रीनगर जाते समयके स्वयंसेवक.

(१) मन्त्री चिरंजीवलाल,	दुग्गड़.	(२) जगदीशचन्द्र,	दुग्गड़.
(३) तिलकचन्द,	दुग्गड़.	(४) बनारसीदास,	राँका.
(५) प्रकाशचंद,	राँका.	(६) चैनलाल,	लोढा.
(७) सत्यपाल,	पारख.	(८) सुशीलकुमार,	पारख.
(९) तिलकचंद,	बरड़.	(१०) दीवानचंद,	गदिया.
(११) बलवंतराय,	गदिया.	(१२) अमरनाथ,	लीगा.

वेरीनागसे विशुतक रहे.

(नोट) नगरोटासे जम्मू तक समस्त जैन संघ सेवा में उपस्थित रहा है।

जम्मू आते समय.

(१) तिलकचंद,	दुग्गड़.	(२) तिलकचंद,	बाबेल.
(३) दिवानचंद,	गदिया.	(४) सावनमल,	बरड़.
(५) चिरंजीलाल,	दुग्गड़.	(६) शान्तिप्रकाश,	दुग्गड़.
(७) बनारसीदास,	राँका.	(८) वलायतीराम,	राँका.

(९) चैनलाल लोढा और शादी. (१०) लाल लोढा टंडलसे जम्मू तक साथमें रहे।

(११) बलवन्तराय, नदिया. विस्सु काजीगुंड कुकुडनाग तक साथ रहे।

(नोट) ये नाम उन स्वयंसेवकोंके हैं जो श्रीनगरसे जम्मू तक साथमें विचरे हैं।

नगरोटासे जम्मू तक समस्त जैन संघ पादविहार करता रहा।

नगरोटा—८।१०३८ ता. १०-५-४६

सर्कारी स्कूलमें मास्टर हँसराज द्वारा व्याख्यान कार्य सम्पन्न हुआ। सब नर-नारी गण अत्यन्त प्रसन्न हुए।

झज्झर-कोटली-१२।१०५० ता. ११-५-४६

टीकरी—८।१०५८ ता. १२-५-४६

ऊधमपुर—१४।१०७२ ता. १३-५-४६

रात्रिके समय नागरिकोंने प्रवचनका लाभ लिया।

धरोंत्थल—१२।१०८४ ता. १४-५-४६

कुद्—१२।१०९६ ता. १५-५-४६

बटोत—१२।११०८ ता. १६-५-४६

पीडाह—९।१११७ ता. १७-५-४६

यह पडाव गर्म है, ३१०० फुटकी हाइट है, वर्षा होने पर वातावरण शान्त हो जाता है, अन्यथा गर्मी रहती है।

रामबन—९।११२६ ता. १८-५-४६

यहां की हाइट २२५० फुट है, स्थान गर्म और नीचा है।

रामसु—१४।११४० ता. १९-५-४६

३८७३ फुटकी उंचाई है।

बनिहाल १० } १४ ता. २०-५-४६
तकिया ४ } ११५४

वायुमंडल गूँज उठा, शीतकी बहुलता थी, परन्तु प्रातः होते होते सब उपद्रव शान्त हो गया। शीतल समीरका समा सुहाने लगा।

वेरीनाग-३२।११८६ ता. २१-५-४६

आजका वातावरण अत्यन्त शीतल था, अतः सुख पूर्वक चढ़ते चले, इस **वीर पंजाल**-(पीर पंजाल) नामक पहाड़के आरोहका मार्ग श्रीगुरुदेवने पगडंडीका ही लिया। उस समय ठंडी हवामें श्रीजी के मुखसे ये शब्द अनायास निकल पड़े।

(कविता)

तीक्ष्ण शैत्यता लगी बरसने, वारिद्‌लोंसे घिर गया टंडल।
उपल, लालिमा लिए विराजें, मानो जैसे गैरिक मंडल॥
८९८९ फुट तक मापा गया तो वह था इतना ऊँचा।
साँस तोड़ गतिसे चढते थे, मानो स्वर्गलोकका कूचा॥

टंडल—गुफाके प्रमुख द्वार पर आकर कुछ विश्राम पाया, स्वयं-सेवक अति-प्रसन्न थे। टंडल पर ८९८९ फुटकी उंचाई है। कुछ दूर चले तो दहनी ओर एक पतलीसी पगडंडीसे नीचे उतरना आरंभ किया। ज्यों ज्यों आगे बढते थे, त्यों त्यों पगडंडी पद्मिनीके कटी भागकी तरह पतली होती जाती थी। चरवाहे (बकर वाल) हज़ारों भेड़ बकरिएँ चरा रहे थे। उन पर पशमीना सफ़ेद बादलोंमें दामिनी सा दमक रहा था। आजकी उतराई साफ़ ढलान और गूढ़ थी। अतः श्रीगुरु आगेसे फ़र्मा रहे थे कि सँभल सँभलकर चलना उचित है, अन्यथा कंदुक (फुटबोल) की गति जाओगे। ज्यों त्यों उतरे जा रहे थे, किन्तु उववाई सूत्रानुसार "किन्हे किन्हा-भासे नीले नीलाभासे हरिए हरियाभासे हरिद्दे हारिद्दाभासे सुक्के

मुक्ताभासे" की सूक्तियाँ आकर्षित कर रही थीं। कहीं सुमन सौरभ था कहीं वातारणके शान्त झोंके थे, तो कहीं परिमलसे आप्लावित होकर मस्तक अपने आप हँसने लग पड़ता। अधिक क्या लिखें "उज्जाणं णंदणोवमं" से कम न था। वचन अगोचर रचना है, अतः लेखबद्ध करना कठिनाई भरा है। कल्पनाएँ यही कह रही थीं कि भद्रशालवन का नमूना यही होगा। और वीर पंजाल अचल मेरु कीसी झलक उत्पन्न करने लगा।

१२ बजते बजते पीर पंजाल नगाधिराजसे उतर कर समतल पर आए। साम्य भूमि हरी भरी थी। चुनारके ऊँचे और विशाल परिधिवाले हरे वृक्ष मंदार और पारिजातक को लज्जित कर रहे थे। सफ़ेदेके महान् ऊंचे और पतले एवं चमकदार पत्रों वाले महीरुह ५०० धनुषकी अवगाहना वाले पुराण पुरुषोंका मृदुसंस्मरण सद्यः करा रहे थे। दूर दूर तक सेब नासपाती और अखरोटके पादप अपनी विभूति सबको अभेद रूपसे वितरण करते समय कल्पवृक्षसे कम न आँके जाते थे, लोगोंका मन इन्हें देखकर प्रफुल्लित होता था। विस्मृतिके गर्भमें आकर अनायास सबके मुँहसे यही निकल पडा कि हम किस स्वर्ग में आगए।

वेरीनागके उस कुंड तक एक बजते बजते पहुँच गए जहाँ से वितस्ता जेहलम नदी का उद्गम हुआ है। यहीं पर शाहजहाँनें ५२ फुट ओंडा एक कुंड बनवा दिया है यह जल साधुके मनके समान निर्मल और काश्मर्य भद्र लोगोंका क्रीड़ा स्थान है। इसमें मछलिएँ संसार यातना से डरनेवाले भव्यजीवोंकी भाँति अगणित हैं, और चार गतिमें प्राणीकी भाँति इधर उधर घूमती रहती हैं। यात्री लोग ठंडे

पानीको छूकर रुरु मृगके समान उछल पड़ते थे। आए हुए दर्श-कोंके लिए तो इस पानीका स्पर्श दुःसह था, परन्तु काश्मर्य जन तो इस हिम सरोवरमें कूद कूद कर न्हाते थे। किन्तु उष्णप्रदेशके लोगों को यह साहस भी न होता था।

सामने ही एक बाग भी है, जिसे अपनी सुंदरताका गर्व रावण और दुर्योधनसे भी अधिक है। इस समय गिलास के फल मूँगेको लजा रहे थे, या फिर रक्तमणिकी सी आभा बखेर कर दिशाओंको चमत्कृत कर रहे थे। स्थान स्थान पर काश्मर्य लोग हरी घासमें छुपकर औंधे पडे हुए थे। उद्यानके आरक्षक सतर्क थे। काश्मर्य याचक नवीन यात्री को देखकर कुछ पानेकी इच्छासे उनके सामने शीप जैसे छोटे हाथ फैला देते थे। काश्मर्य पंडित अपनी सहचा-रिणी और गौरवर्णीय बालकोंकी अंगुली पकड़कर वनस्थलीमें विह-रते हुए देवताओंसे कुछ ही कम जान पड़ते थे। उनका पहरन आकण्ठ पाद तल तक ढका था। इनका परिधान सुंदर था। इसका निर्माण कश्मीरेसे हुआ था। मच्छर और पीसूका दाव इन पर न लगनेके कारण ये ताकते हुए आगे बढ जाते थे। कभी सतृष्ण दृष्टिसे मुड़कर देख भी लेते थे। परन्तु इच्छित भोजन पानेमें निरु-पाय थे। लंबा परिधान (चोला) इनकी एक चाल भी न चलने देता था। उनके समीप आनेपर मैलकी बहुलता के कारण दुर्गंधीसे नाक-सम्राट् घबरा उठते थे यद्यपि उनकी देहयष्टि पिप्पलाद सुव-र्णको भी लजा रही थी, परन्तु उनकी अभक्ष्य-भक्षण-वृत्तिके कारण उनका मन कृष्णलेश्यासे लिपित था। काश्मर्य यवन संगठनकी बातें बढ़ बढ़ कर अपनी खोई हुई ख्यातकालीन शक्तिको क्लेशमें बाो

थे । इधर पुजारी लोग गुलाबका फूल दिखाकर पुराने मंदिरकी ओर चलनेका अनुरोध करते थे, तब स्वयंसेवक 'हम तो जैन हैं' यह कह कर अपना पीछा छुड़ा लेते थे । पासमें का पर्वत-भाई तो चीड़ वृक्षोंकी हरी वनराजीका अनन्त भार लादे खड़ा था । या फिर सतर्क प्रहरीसा जान पड़ता था । यहाँ के तीनों प्रवाह त्रिवेणीका स्मरण करा रहे थे । बागके कोनेमेंसे निकलनेवाला स्रोत दूधकी भांति उफान खाता था । अपने आप निकलकर प्यासोंके लिए प्रपा बने हुए था, अथवा सज्जनके मनकी तरह द्रवी भूत होकर सदमृत बाँट रहा था । उद्यानके एक कोने पर जाकर वही त्रिवेणी एक नकली प्रपात (आबशार) के व्याजसे आततायी या बहाने बाजोंका सा शोर मचाकर विवेकभ्रष्टके समान विनिपात कर रहा था अधिक क्या बताएँ समा इतना अच्छा बँधा था, कि समाधि लगाकर बैठनेके अतिरिक्त मन और कुछ न चाहता था । गुरुदेवने तो यह सब करके भी देखा । पानीके रवके अतिरिक्त बिल्कुल नीरवता थी । मानवी शब्द तो कर्णकुहरमें आनेसे वंचित रहता था । मनका चांचल्य खो जाता था । सुमेरुके समान सरल और स्थिर हो जाता था । नाना सुंदर पक्षीवृन्द अपने मधुर कलरवसे नाना राग आलाप रहेथे । अनेक रंगोंसे रंगीन पाँखोंवाली मनोहारी चिडियाएँ दिव्य संदेश पाकर फुदक रही थीं । किसी पक्षीका शकुन जाँचकर एक काश्मर्यने कहा कि सूर्य अस्त होनेसे पहले ही वर्षा आने की संभावना है । लो जी १॥ दो घंटेके अनन्तर ही नभोमंडल काले बादलोंसे घिर गया और विरहीजीवके मनकी सदृश पसीज कर बरसने लगा । बिजलीके तीर अर्जुनके बाणोंकी तुलना कर रहे थे । शलभीकी सदृश ओलोंकी गोलिएँसी बर-

सनी आरंभ हो गई। तमाम भूतल चाँदीमें मँढा सा गया। मानो कश्मीरकी रजत जयन्ती मनाई गई है। प्रशस्त पुण्योदयकी प्रबल प्रेरणासे किसीका बाल तक बाँका न हुआ। इसके पश्चात् शैत्यकी धाक जम गई! माघका शीत लज्जित हो जाता था। लोगोंने अपने पेटमें चाय उडेलनी आरंभ करदी। गुरुदेवने हम सबको धर्मशालाकी कोठड़ीमें छुपा दिया। दो घंटे बाद निकले तो वर्षा बंद थी। ठंडा वायु मनको मोह रहा था। यही कारण है कि यह स्थान आगन्तुक यात्रियों को अपनी ओर खींच लेता है, अतः उन्हें बेहद पसंद है; गर्मियों में इसे किलोल करने योग्य स्थल समझा जाता है।

सन्ध्याके समय पंडित लोग लाला हँसराजके सुपुत्र लाला बलवन्तराय के बुलावे पर उसी समय आए। जैन धर्मके मौलिक सिद्धान्तोंपर एक घंटा व्याख्यान हुआ। श्रीमहाराज की मधुरिम वाणीने काश्मर्योंको वशमें कर लिया। उन्होंने जैन धर्मके संबंधमें अपश्रुतियोंका (सुना हुवा) समाधान पाकर प्रसन्नता प्रगट की। प्रतिक्रमणका समय सन्निकट होनेके कारण सब लोग यथा स्थान चले गए। आजकी रात बड़ी ही शीतल थी। जागरण और सद्-अभ्यासमें व्यतीत हो गई। सबेरा होनेपर विहार किया, और बाज़ारमें पंडितोंसे मिले। पंडितोंने पूछा कि मुने! यहाँ कश्मीरमें किसी समय बौद्धोंका अतिविस्तार हो चुका है। और हमारे यहाँ बुद्धावतार भी हुए हैं, बुद्धने ईश्वरके संबंधमें क्या कहा है? गुरुदेव बोले बुद्धने ईश्वर और उसका कर्तृत्व दोनोंकोही माननेसे साफ इंकार किया है, पढीए म. नि. की प्रस्तावना।" जगत्में प्रत्येक कार्यका कारण होता है, अतः संसारका भी कोई कारण होना चाहिए, और

वह कारण ईश्वर है। परंतु प्रश्न किया जा सकता है कि ईश्वर किस प्रकारका कारण है? क्या उपादान कारण, जैसे घड़ेका कारण मट्टी, अँगूठीका सोना? यदि ईश्वर जगत्का उपादान कारण है, तो जगत् ईश्वरका रूपान्तर है। फिर संसारमें जो बुराई, भलाई, सुख, दुःख, दया और क्रूरता देखी जाती है, वह सभी ईश्वरसे और ईश्वरमें है। फिर तो ईश्वर सुखमयकी अपेक्षा दुःखमय अधिक है, क्योंकि दुनियामें दुःखका पलड़ा भारी है। ईश्वर दयालुकी अपेक्षा क्रूर अधिक है, क्योंकि दुनियामें चारों ओर क्रूरताका राज्य है। कीडे, मकोडे, पक्षी, मछली, साँप, छिपकली, गीदड़, भेडिया, सिंह, व्याघ्र, सभ्य-असभ्य मनुष्य, सब एक दूसरेके जीवनके ग्राहक हैं। ध्यानसे देखनेपर दृश्यअदृश्य, सारा जगत् एक रोमांचकारी युद्धक्षेत्र है, जिसमें निर्बल प्राणी बलवान्के ग्रास बन रहे हैं।

उपादान कारण है, तो निर्विकार कैसे हो सकते हैं? यदि ईश्वरको निमित्तकारण माना जाय, अर्थात वह जगत्को वैसे ही बनाता है, जैसे कुम्हार घडेको, सुनार कुंडलको, तो प्रश्न होगा, क्या वह विना किसी उपादान कारण के जगत्को बनाता है या उपादान कारणसे? यदि विना उपादान कारणके, तो अभावसे भावकी उत्पत्ति माननी होगी, तथा कार्य कारणका सिद्धान्तही गिर जायगा, तब फिर जगत्को देखकर उसके कारण ईश्वरके माननेकी जरूरत क्या? यदि इन्द्रजालकी तरह उसने जगत्को विना कारण मायामय उत्पन्न किया है, तो प्रत्यक्षके माया मय होनेपर ईश्वरके होनेका अनुमान ही किस सामग्रीके बलपर होगा? यदि उपादान कारणसे बनाता है, तो कुम्हारकी भाँति जगत्से अलग रहकर बनाता है, या उसमें व्याप्त होकर?

अलग रहनपर वह सर्व व्यापक न रहेगा, और सृष्टि करनेके लिए उसे दूसरे सहायकों और साधनोंपर निर्भर होना पडेगा। विद्युत्कणोंसे भी सूक्ष्म नवकणों (neutrons) तक पहुँचने और उनके मिश्रणसे क्रमशः स्थूलतर चीजोंके बनानेके लिए वह कौनसा हथियार, सुनारकी सन्डासीकी भाँति, प्रयोग करेगा? और फिर सर्वशक्तिमान कैसे रहेगा? यदि उसे उपादान कारणमें सर्वव्यापक मानलिया जाय, तबभी उपादान कारणके विना, उत्पादन करनेमें अक्षम होनेपर सर्वशक्तिमान् न रहगया। ऐसी अवस्थामें अपवित्रता, क्रूरता आदि बुराइयोंका स्रोत होनेका भी वह दोषी होगा।

इस प्रकार न वह उपादान कारण हो सकता है, न निमित्त-कारण। जगत्का कोई आदिकारण होना ही चाहिए, यह कोई ज़रूर नहीं। यदि 'उसका कारण कौन, उसका कारण कौन?' पूछ-नेपर जगत्की किसी सूक्ष्मतम वस्तु या उसकी विशेष शक्ति पर नहीं रुकने दिया जाय, तो ईश्वरतक ही क्यों रुका जाय? क्यों न ईश्वरका भी कोई दूसरा कारण माना जाय? इस प्रकार ईश्वरका आदिकारण मानना युक्तियुक्त नहीं।

कर्ता-धर्ता ईश्वर होनेपर, मनुष्य उसके हाथकी कठपुतली है, फिर वह किसी अच्छे-बुरे कामके लिए जवाबदेह नहीं हो सकता, फिर दुनियामें उसका सताया जाना क्या ईश्वरकी दयालुताका द्योतक है?

ईश्वर सृष्टिकर्ता है, यह मानना ठीक नहीं। यदि सृष्टि अनादि है तो उसको किसी कर्ताकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि कर्ता होनेके लिए उसे कार्यसे पहले उपस्थित रहना चाहिए। यदि सृष्टि सादि है, तो करोड़ दो करोड नहीं, खरब दो खरब नहीं, अचिन्त्य अनन्त

वर्षोंसे लेकर सृष्टि उत्पन्न होनेके समय तक उस क्रिया रहित ईश्वरके होनेका प्रमाण क्या क्रिया ही तो उसके अस्तित्वमें प्रमाण हो सकती है?

ईश्वरके माननेपर, जैसा कि पहले कहा गया, मनुष्यको उसके अधीन मानना होगा, तब मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, जैसा चाहे अपनेको बना सकता है, यह नहीं माना जा सकता। फिर मनुष्यको शुद्धि और मुक्तिके लिए गुंजाइश कहाँ? फिर तो धर्मोंके बताए रास्ते, और धर्म भी निष्फल।

ईश्वरके न माननेसे, मनुष्य जो कुछ वर्तमान में है, वह अपने ही किए से, और जो भविष्यमें होगा, वह भी अपनी ही करनीसे; मनुष्यके काम करने की स्वतन्त्रता होने पर ही धर्मके बताए रास्तों और धर्मकी सार्थकता हो सकती है। ईश्वरवादियों द्वारा सहस्राब्दियोंसे धर्मके लिए अशान्ति और खूनकी धाराएँ बहाई जा रही हैं। फिर भी ईश्वर क्यों नहीं निपटारा करता? वस्तुतः ईश्वर और उसका कर्तृत्व मनुष्यकी मानसिक सृष्टि है।"

× × × ×

श्रीगुरुदेवने यह भी फर्माया कि वास्तवमें ईश्वरवाद और संदेहवाद एक ही वस्तु है। इसका स्पष्टीकरण "ह्यूमने भी भले प्रकार किया है। वह ईस्वीसन् १७११–७६ तक, डेविड ह्यूम एडिनबर्ग (स्काटलेंड) में कान्टसे १३ वर्ष पूर्व पैदा हुआ था। इसने कानूनका खूब अध्ययन किया था। पहिले जेनरल सेंटक्लेर फिर लार्ड हर्टफोर्डका सेक्रेटरी रहा। और अन्तमें १७६७–९ में इंग्लेंडका अंडर-सेक्रेटरी (उपमंत्री) रहा। इस प्रकार ह्यूम शासकवर्गका सदस्य

ही नहीं, स्वयं एक शासक तथा सम्पत्तिवाली श्रेणिसे संबंध रखता था। मध्यम तथा उच्च वर्गीय शिक्षित लेखक सदा यह ही दिखाना चाहते हैं, कि वह वर्ग और वर्गस्वार्थसे बहुत ऊपर उठे हुए हैं। लेकिन कोई भी आँख रखनेवाला इस धोखेमें नहीं आ सकता। अधिकतर जानबूझ कर—कभी कभी अनजाने भी लेखक अपनी चेष्टाओंसे उस स्वार्थकी पुष्टि करते हैं, जिससे उनकी 'दाल रोटी' चलती है, हम विशप् बर्कलेको देख चुके हैं, कि किस प्रकार बुद्धिकी आँखमें धूल झोंक, प्रत्यक्ष अनुमानगम्य-बुद्धिगम्य-भौतिक तत्वोंसे इंकार कर उसने लंबे चौड़े आकर्षक विज्ञानतत्वका समर्थन किया, और जब लोग वस्तु सत्यको छोड़कर इस खयाली विज्ञानको एक मात्र तत्व मानकर आँख मूँदे झूमने लगे, तो फिर ईश्वर और उसके फ़िरिश्तोंको चुपकेसे ला बिठाया। कान्टको बर्कलेकी यह चेष्टा कुछ बोदी तथा गँवारुपन लिए हुए प्रतीत हुई। उसने उसे और उपरी तलपर उठाया। भौतिकतत्व साधारण बुद्धि (=समझ) गम्य है। उनकी सत्ता भी आंशिक सत्य हो सकती है, किन्तु असली तत्व वस्तु-अपने भीतर [वस्तुसार] है, जिसकी सत्ता शुद्ध बुद्धिसे सिद्ध होती है। समझके द्वारा ज्ञेय वस्तुओंसे कहीं अधिक सत्य है, शुद्धबुद्धिगम्य वस्तुसार तर्कतजुर्बे समझ साधारण बुद्धिके क्षेत्रकी सीमा निर्धारित कर उनकी गतिको रोक कॉन्टने समझसे परे एक सुरक्षित क्षेत्र तैयार किया। और इस प्रशांत झगड़े झंझट रहित स्थानमें ले जा कर ईश्वर और उसका कर्तृत्व (वैयक्तिक सम्पत्ति, सड़ियल सामाजिक व्यवस्था) को बिठादिया। यह था कॉन्टकी अप्रतिम प्रतिभाका विलक्षण चमत्कार!

इसके आगे अब इंग्लेण्डके टोरी शासक (अंडर-सेक्रेटरी) ह्यूमको भी देखिए। काँटसे पहलेके साइंसजन्य विचारस्वातन्त्र्यके प्रवाहसे पुरानी नीवकी रक्षा करनेके लिए पहिलेके दार्शनिकोंके प्रयत्नको उसने देखा था। और यह भी देखा था, कि वस्तु जगत् और उससे प्राप्त सत्यता इतनी प्रबल है, कि उनका सामना उन हाथियारोंसे नहीं किया जा सकता, जिनसे दाकार्त, लाइप्, निट्ज, बर्कलेने किया था। भौतिक तत्वोंको असत्य सिद्ध करनेसे ह्यूम सहमत था। किन्तु इसे वह वृथाका उत्तरदायित्व समझता था, कि सामने देखी जानेवाली वस्तुको तो इंकार कर दिया जाय, और इन्द्रिय अनुभवसे परे किसी वस्तुविज्ञान-को सिद्ध करनेकी ज़िम्मेवरी ली जाय। ह्यूम पूंजीवादी युगके राजनीतिज्ञोंका एक अच्छा पथप्रदर्शक था। उसने कहा—भौतिक तत्वोंको सिद्धमत होने दो। विज्ञानको सिद्ध करके जिस ईश्वर-और उसके फिरिस्ते आदिको लाना चाहते हो, वह समाजके ढाँचेको क्रान्तिकी लपटसे बचानेके लिए आवश्यक है। किन्तु उनका नाम लेते ही लोग हमारी नेकनियतीपर शक करने लगेंगे। इसलिए अपनेको और सच्चा साबित करनेके लिए उनपरभी दो चोट लगा देनी चाहिए, यदि एक बार हम भौतिक-तत्वोंको अस्तित्वमें संदेह उपन्न कर देंगे, और बाहरी प्रकाशको रोक देंगे, तो फिर अंधेरे में पडा जन समुद्र क़िस्मतपर बैठ रहेगा। और फिर इस संदेहवादसे हमारी हानि ही क्या है उससे न क्राइब झूँठे हो सकते हैं, और न माखन रोटी या शेम्पन ही।

अब जरा इस मध्यस्थ, दूधका दूध पानीका पानी करने वाले राजमंत्रीकी दार्शनिक उड़ानको देखिए।

ईश्वर—जब ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, तो उसके होनेका प्रमाण क्या है? उसके गुण आदि। किन्तु ईश्वरके स्वभाव, गुण आज्ञा और भविष्य योजनाके संबंधमें कुछ भी कहनेकेलिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। घडेसे कुम्हार अर्थात कार्यसे कारण के अनुमानसे हम ईश्वरको सिद्ध नहीं कर सकते। जब हम एक घरको देखते हैं तो पक्के तौरसे इस निश्चयपर पहुँचते हैं, कि इसका कोई बनानेवाला कारीगर या मिस्त्री था। क्योंकि हमने सदा मकान-जातिके कार्योंको कारीगर-जातिके कारणोंद्वारा बनाए देखा जाते है। किन्तु विश्व-जातिके कार्योंको ईश्वर-जातिके कारणोंद्वारा बनते हमने कभी नहीं देखा, इसलिए यहाँ घर और कारीगरके दृष्टान्तसे ईश्वरको सिद्ध नही कर सकते। आखिर अनुमानमें, जिस जातीय कार्यको जिस जातीय कारणसे उत्पन्न होते देखा गया, उसी जातिके भीतर ही रहना पड़ता है। ईश्वर पूर्ण, अचल, अनंत है, ये ऐसे गुण हैं जिन्हें निरंतर परिवर्तन शील—क्षण क्षण पैदा होने तथा पैदा होनेवाला मन नहीं जान सकता, जब एक मन दूसरे क्षण रहता ही नहीं तो नया आनेवाला मन कैसा जान सकता है, कि ईश्वरका अमुक गुण पहिले भी मौजूद था। मनुष्य अपने परिमित ज्ञानसे ईश्वर और उसके कर्तृत्वका अनुमान कर ही नहीं सकता। यदि उसके अज्ञानसे अनुमान करनेका आग्रह किया जाय, तो फिर यह दर्शन नहीं हुआ।

विश्वके स्वभावसे ईश्वरके स्वभावका अनुमान बहुत घाटेका सौदा रहेगा। कार्यके गुणके अनुसार ही हम कारणके गुणका अनुमान कर सकते हैं। कार्य जगत् अनन्त नहीं सान्त, अनादि नहीं सादि

है, इसलिए ईश्वरको सान्त और सादि मानना पड़ेगा। जगत् पूर्ण नहीं अपूर्ण, क्रूरता, संघर्ष विषमतासे भरा हुआ है, और यह भी तब जब कि ईश्वरको अनन्तकालसे अभ्यास करते हुए बेहतर जगत्के बनानेका मौका मिला था। ऐसे जगत्का कारण ईश्वर, तो और अपूर्ण, क्रूर, संघर्ष-विषमता-प्रेमी होगा।

मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक सीमित अवस्थाओंके कारण सदाचार, दुराचारका भी उसपर दोष उतना नहीं आ सकता, आखिर वह ईश्वर की ही देन है।" इत्यादि ईश्वरवाद के विषयमें उन्हें ख़ूब समझाया। अन्तमें विवश होकर उन्होंने प्रार्थना की कि महात्मन् ! हम आपकी सेवा किस प्रकार कर सकते हैं? श्रीगुरु-महाराजने फर्माया कि यदि आप सेवाको अधिक महत्वकी वस्तु समझते हैं, तो सबसे पहिले आप अपनी ही सेवा करें। अर्थात खुदको पापारंभसे अलग रक्खें, तो आपकी अपनी आत्मसेवा यही है। हम आपको अन्तर की प्रेमयुक्त लगनसे कहते हैं, कि यदि आप आत्मा-परमात्मा पुण्य-पाप-स्वर्ग-नरक आदिमें कुछ भी विश्वास रखते हैं, तो मांस खाना तो छोड दें ! इस पर तीन प्रमुख-काश्मर्य पंडितोंने मांसाहार सदाके लिए छोड़ दिया। उनपर इतना उपकार करके आगे बढ़े।

भाई बलवन्तरायने प्रार्थना की कि श्रीगुरुदेव ! चींगुंडके लोग बड़े भद्र हैं, वे मेरे परम मित्र भी हैं, पास ही ग्राम है, मार्गमें ही आयगा, अतः दो घंटे उनके सन्मुख ऐसा कुछ प्रवचन करें; जिससे उनको सर्वथा शुद्ध किया जा सके, श्रीगुरु भाई बलवन्तरायकी विनतीको मान देकर **चींगुंड** पधारे।

श्रीबलवन्तरायकी प्रेरणासे चींगुंडके सब पंडित लोग एकत्र हो गए और धर्मशालामें एक घंटे तक बड़े मार्मिक शब्दोंमें श्रीगुरुका भाषण हुवा । सुनकर सब लोग गद्गद हो गए। सबने प्रेम और श्रद्धाके मदमें सरावोर होकर प्रार्थना की कि भगवन्! चींगुंडके सब पंडित समुदाय आपके समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं, कि आजसे भविष्यमें हम सब मांस मछली आदि अभक्ष्य वस्तुएँ कभी न खाएँगे। प्रमाणके लिए हम सब हस्ताक्षर भी किए देते हैं। यह कह गुंड (ग्राम) के सब पंडितोंने मांस न खानेके विषयमें क्रमसे सबने हस्ताक्षर किए। इस प्रकार कश्मीर प्रांतोंमें आकर सर्व प्रथम इस ग्रामको सर्वथा शुद्ध करके अपने चरित्र और योग्यताका आदर्श स्थापन किया। चींगुंडके सब पंडितोंने श्रीमहाराजकी जो कुछ सेवा की है, उसे विस्मरण नहीं किया जा सकता। वह दृश्य अब भी आँखोंके सामने ही रहता है। ऐसी शैघ्री सफलता आज ही देखनेमें आई।

सन्ध्याके दो बजते तक काजीगुंड पहुँचे।

काज़ीगुंड—१०।११२६ ता० २२-५-४६

भाई बलवन्तरायके मकानमें निवास किया, आज सचमुच देह थक कर चूर हो गई थी।

बीजबिहाड़ा—१६।१२१२ ता० २३-५-४६

यहांके स्कूलमास्टरने अच्छे प्रमाणमें लोगोंसे कहकर मांसाहार छुडानेमें सहयोग दिया। बहुतसे पंडितोंने उनके अनुरोधसे मांसत्याग किया। रात्रिमें भाषण हुआ।

गलन्दर—१७।१२२९ ता० २४-५-४६

श्रीनगर—११।१२४० ता० २५-५-४६

श्रीनगरमें पधारते ही श्रीमहाराजके सद्-अतिशय और सत्प्रतापसे नगरमें शान्ति होती चली गई। विभावका वातावरण घटता-सरकता चला गया।

अगले दिन कराची निवासी शेठ कुंवरजी भाई मलीरसे अपने समस्त परिवारको साथ लेकर श्रीनगर दर्शनार्थ आए। आप २० दिन तक सत्संग-सदुपदेशका लाभ प्राप्त करते रहे। आप बडे उदार और विवेकी है। आपकी नम्रता-मृदुता-हृदयग्राहिता अनुकरणीय है। जम्मू संघके भेजे हुए स्वयंसेवकोंसे आपने यह निवेदन किया कि श्रीनगरसे जम्मूतककी आर्थिक-मार्गसेवा मैं करूंगा। आपने जम्मूके स्वयंसेवकोंकी ६००) रु० की सहायता करके बड़ी उच्च उदारताका परिचय दिया। इस सेवाके प्रभावसे आपका सुयश सब ओर विस्तृत हो गया। यद्यपि आप लोहाणा गृहस्थ हैं तथापि जैनमुनिराजोंके बड़े भक्त हैं। भेदभाव रहित सेवा करते हैं। आपके समान आपकी गृहदेवी और सब परिवार भी श्रीगुरुदेवके अनन्य भक्त हैं। आप मुनिराजोंको आहार पानी प्रतिलाभ करके फिर भोजन-पान करती हैं। आपकी गृहिणीकी बहिन श्रीमती देवमणि बहन भी इसी प्रकृतिकी हैं। आपके घरमें भक्ति और उत्तम भावनाका क्षेत्र बढ़कर विस्तृत होता जा रहा है। श्रीमान शेठ कुंवरजी भाईके राष्ट्रीय विचार बड़े उज्वल हैं। आपकी मानसिक कोमलता सरलता अपनानेके योग्य है। आप सारे सिंघके सिंडीकेट होकर भी निर-हंकारी हैं। आप सद्गुणी, मृदुभाषी प्रामाणिक उदारहृदय सद्वि-चारक एवं सत्यभाषी परमधार्मिक सज्जन महानुभाव हैं। आपका

जैनधर्म पर भी अटल प्रेम है। प्रामाणिकताके कारण सिंधमें और विशेषकर कराचीमें आपकी बात पर सच्ची श्रद्धा है। आपका सुयश सब ओर चमकता जा रहा है। गुरुभक्तिकी अटूट श्रद्धाने आपमें सत्य शील शौर्य धैर्य गांभीर्य एवं सौजन्य पूर्णचंद्रमें सुधाकी भान्ति प्रदान किए हैं। श्रीगुरुदेवकी नैसर्गिक भक्तिने उन्हें सद्भावनाएँ और अक्षयसम्पत्ति उपहार स्वरूपमें अर्पण कीं।

साधारणसे साधारण स्थितिके भाई बन्धुसेभी आप निरभिमानसे बात चीत करते हैं। महान गौरवशाली पद प्राप्त करके भी आप हाथ जोडकर सबकी सेवामें तत्पर रहते हैं।

श्रीनगरसे विहार करते समय सपरिवार आपने सानुरोध यह विनय की कि भगवन्! आगामी चतुर्मास मलीर (कराची) करें, और मुझे धर्मसेवा करनेका अवसर प्रदान करें। मेरी महाजन-वाडी आपके पादपद्मोंसे पवित्र होनी चाहिए। आपका चतुर्मास वहां होनेपर में कृतकृत्य हो जाऊँगा, श्रीमहाराजसाहेबने उत्तरमें फर्माया कि कुंवरजी भाई! आपका उत्साह अनिर्वचनीय है, यथावसर आपके भावोंकी पूर्ति होगी। आपकी विनती मैंने भंडारमें स्थापित कर ली है। समयकी प्रतीक्षा करणीय है। श्रीमहाराज कुंवरजी भाई-की समस्त धार्मिक अभिलाषाएँ पूर्ण करते रहे हैं। श्रीकुंवरजी भाई शासनके सच्चे सेवकोंमेंसे हैं। ऐसे गुरु शिष्यका जोड संसारमें बहुत कम पाया गया है।

श्रीनगरमें गुरुदेव २२ दिन ठहरे। इस बार अजैन बांधव असीम संख्यामें आकर लाभ लेते रहे हैं। दिवानसाहेब का कमरा

खचाखच भर जाता था । उपाश्रयके लिए अब तक उचित भूमि नहीं मिल सकी है ।

जम्मूकी ओर

गलंदर—११।१२५८ ता० १६-६-४६
बिजविहाडा—१७।१२६७ ता० १७-६-४६
विसुगुंड—१०।१२७७ ता० १८-६-४६

मंदिरमें ठहरे, यहांके पंडित भावुक हैं, श्रीगुरुराजका अहिंसा और वीररसपूर्ण प्रवचन आबाल वृद्ध सबने सुना । देववायु पुरोहितने शास्त्र चर्चा भी की । जिसका सार निम्नोक्त है ।

देववायु—भगवन्! क्या आप शिवको भी मानते हैं ?

गुरुदेव—हाँ हम शिवकी साधना करते हैं। शिव=कल्याण एक ही बात है । शिवका आशय कल्याण है, कल्याणकी अभिलाषा सबको है, कल्याण कामना सबको अभीष्ट है । जगत् कल्याणकी साधमें है । हम भी उसकी साधमें हैं । उसकी साधनामें सदैव तत्पर रहते हैं । यही कारण है कि हमनें शिवका साक्षात्कार किया है । इसका प्रत्यक्ष अनुभव करनेके लिए अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह-पंचाचार-अष्ट प्रवचन दया भगवतीके-क्षमा-निर्लोभता-आर्जवता-मार्दवता-लघुता-सत्य-संयम-तप-त्याग-ब्रह्मविधान आदि साधनासे उसका साक्षात्कार होता है । श्रवण-कीर्तन-चिन्तन-वंदन-सेवन-ध्यान-लघुता-समता और एकता यह शिवकी नवधा भक्ति है । श्रवण-कीर्तन-स्मरण-पादसेवन-अर्चन-वंदन-दास्य-सख्य और आत्मनिवेदनका आशय भी यही है । थोडेसे ही अन्तरसे मिलता जुलता है । भाव तो एक ही है । शुद्धनिश्चय-नय, शुद्धव्यवहार-नय, के अनुभव द्वारा शिव तक गति

होती है । आत्मपदार्थका विचार और ध्यान करनेसे चित्तको जो शान्ति मिलती है तथा आत्मिक रसका आस्वादन करने से जो आनंद मिलता है, वह अनुभवगम्य शिव ही है । अनुभवचिन्तामणि शान्तरसकूप और शिवस्वरूप है । चैतन्यरूप, अनन्तगुण-अनन्त-पर्याय-अनन्तशक्तिसहित-अमूर्त-अखंड-सर्वव्यापी शिव अपना आत्मा ही है ।

परमपुरुष-परमेश्वर-परमज्योति-परब्रह्म-पूर्ण-परम-प्रधान-अनादि-अनन्त-अव्यक्त-अविनाशी-अज-निर्द्वन्द्व-मुक्त-मुकुंद-अमलान-निराबाध-निगम-निरंजन-निर्विकार-निराकार-जगच्छिरोमणि-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यक्चरित्र-सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-सिद्ध-स्वामी-चिदानंद-धनी-नाथ-ईश-ईश्वर-जगदीश-भगवान् आदि सब शिवके पर्याय हैं ।

चिदानंद-चेतन-अलक्ष-जीव-समयसार-बुद्ध-जिन-शुद्ध-उपयोगी-चिद्रूप-स्वयंभू-विभु-प्रभु-चिन्मूर्ति-गुणधारी-कलाधारी-योगधारी-चिन्मय अखंड-हंस-अक्षर-आतमाराम-परमवियोगी आदि शिवके साधारण पर्याय हैं । प्रज्ञा-धिषणा-शेमुखी-धी-मेधा-मति-बुद्धि-सुरती-मनीषा-चेतना-आशय-अंश और विशुद्धि इसे जाननेके साधन हैं । निपुण-विचक्षण-विबुध-बुद्ध-विद्याधर-विद्वान्-पटु-प्रवीण-पंडित-चतुर-सुधी-सुजन-मतिमान् कलावान्-कोविद-कुशल-सुमन-दक्ष-धीमान्-मतिमान्-ज्ञाता-सज्जन-ब्रह्मवित्-तज्ज्ञ-गुणीजन और सन्त ही शिवको जान सकते हैं । मुनि-महंत-तापस-तपी-भिक्षुक-चरित्रधाम-यति-संयमी-तपोधन-व्रती-साधु और ऋषि ये शिवकी साधनाके उत्तराधिकारी हैं ।

जैसे घास-काठ-बांस-उपला-अरण्यक आदि जंगलके अनेक ईंधन आगमें जलते हैं, उनकी आकृतिपर ध्यान देनेसे अग्नि अनेक रूप

दिखती है परन्तु यदि मात्र दाहक स्वभावपर दृष्टि डाली जाय तो सब अग्निएँ समष्टिरूपसे एक रूपही हैं। इसी प्रकार ८४०००० देहके भिन्नप्रकार होनेपर भी उनमें शिव-आत्मा एक ही है। पानीसे तेलकी तरह शिव देहसे भिन्न वस्तु है। निर्मल दर्पणवत् स्वच्छ शिवमें अनन्तभाव झलकते हैं। शिवपद शरीरमें न होकर आत्मामें है। जैसे नगर और जनपदसे राजा भिन्न है, इसीप्रकार शरीर या भौतिक वस्तुसे शिव-आत्मा भिन्न है। शिवमें लोकालोकका भाव प्रतिबिंबित है। केवलदर्शन प्रगटित है, अन्तराय कर्म नष्ट हुआ है, महामोह कर्मके नाश होनेसे परमसाधु या महासंन्यासी-योगी अवस्था प्राप्त हुई है। स्वाभाविक योगको जिसने धारण किया है फिर भी मनोवाक्काय योगसे विरक्त है। वह तीर्थंकर=शिव देहरूप देवालयमें स्पष्ट चेतना-मूर्तिमय है उसे हम नमस्कार करते हैं उन्हें हमारी भाव-वंदना पहुंचती है। हमारी इस प्रकारके शिवमें परमनिष्ठा है। हम उसीकी खोजमें तत्पर हैं। वह हमारा ही अन्तर-शिव है। इसीकी सिद्धि शिवसिद्धि है। आप शिवके इस गहन पंथको जान गए होंगे। आप भी अपने भाव नामक समुद्रमें इसी शिवका अवगाहन करें। तब आपको भी शिवकी झाँकी होने लगे।

देववायु—भगवन्! हमने सुना है, खूनी हाथीके सामने चला जाय परन्तु जैन मंदिरमें न जाना चाहिए इसमें क्या तथ्य है।

गुरुदेव—पुरोहित जी! प्रथम तो यह श्लोक वेदवाक्य नहीं है। यदि वेदवाक्य होता तो बहुतही उत्तम था। पूर्वार्धमें तो फ़ारसी-अरबी पढनेसे घृणा दिखलाई है और श्लोकके उत्तरार्धमें जैनियोंको कोसा गया है। यदि न्यायकी दृष्टिसे देखा जाय तो आपके मनोतीत

शिव-मंदिरमें ही न जाना चाहिए। और किसी हद तक यही संगती ठीक बैठती भी है। बडीसे बड़ी ख़राबी शिव मंदिरमें ही पाई गई है।

देववायु—भगवन्! शिवमंदिरमें ऐसी क्या बुराई है, बताएँ!

गुरुदेव—लिंग=पुरुषाकारको कहते हैं, मंदिरमें वही आकार स्थापित किया गया है न?

देववायु—हाँ!

गुरुराज—सर्व प्रथम पार्वती की भग बनाई गई है। उसमें शिव-लिंगका आरोप किया गया है। यह भग समेत लिंग-पूजा है। यह स्त्री-पुरुषके भोग-समागम की लज्जाजनक अवस्था बताई गई है। इतने तक तो कोई बोध पाठ नहीं मिल रहा है। यहाँ तक तो संसार स्वयं पढा गुना है। इस ढंगके सिखाने की तो कोई आवश्यकता भी नहीं है। इसे तो पशु तक भी जानते हैं। शिव मंदिरमें जाते ही पाप-वासना के सन्मुख आनेके अतिरिक्त और कौनसा रिकार्ड सामने आयगा। यह अध्यात्मिकताको समन्वित करनेका कोई साधन नहीं है।

आसाममें कामाख्या देवीके मंदिरमें जो कुछ निर्लज्जता बताई गई है उसे देखकर तो निर्लज्जता भी लजा जाती है। वहाँ की घटना कह बतानेमें जीभ भी अपने स्थानसे हिलना न चाहेगी।

देववायु—क्यों!

श्रीगुरु—सुना गया है वहाँ पार्वतीकी भग (योनि) में से लाल-सुर्खी प्रवाहनेका भाव बताया गया है। अर्थात् रजस्वला-पार्वतीकी भगसे रज टपकता-रिसता बताया गया है। उसी में शिव……है। कितनी बे शर्मीका प्रसंग है। मानो सारी बेशरमी यहीं एकत्र की गई है। जिसे भगवती और जगत्की माता कहा जाय और उसकी

सबके सामने इस तरह बेइज्जती की जाय ? यह शिवकी उपासना न होकर वाममार्गका सेवन है । इसे व्यभिचारके अड्डेके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ।

सच्चा शिव तो आत्मा है, गौरी-स्वच्छ चेतना है । इन दोनोंका मेल अनाद्यनिधन है । यह अटूट संबंध कभी टूटने वाला नहीं। इसकी भावपूजा है—ध्यानका धूप जलाना, मनकी पवित्रताका पुष्प चढ़ाना, पंच-इन्द्रिय-निग्रहकी आग जलाना, उत्तम क्षमाका जाप जपना और सन्तोषकी पूजा करना इस प्रकार यह शिवकी ठीक और उचित पूजा है । यह सर्वसम्मत है ।

अब रहा जैन, जैन तो वह ही है जो आन्तर-शत्रुओंका पूर्ण विजेता हो । "रागादिशत्रून् यो जयति स जिनः" के कथनानुसार राग-द्वेष-मोह-कर्म आदि अरियोंपर जो साधक विजय पाता है वही जैन है । इस दृष्टिसे तो आप भी जैन हैं । कोई भी व्यक्ति इस साधनाके पारको पाकर जैन कहला सकता है । जैनके लिए जाति-कुल-वर्ण और देशकी आवश्यकता नहीं । इत्यादि रहस्यको आप समझ ही गए होंगे कि जैन और शिव क्या समस्या है ?

देववायु—आपने बहुत ठीक कहा है, मेरी धारणा भी यही है ।

काजीगुंड—६।१२८३ ता० १९-६-४६

कुकडनाग—१०।१२९३ ता० २०-६-४६

काश्मर्यका सारा सौंदर्य मानो बटोर कर यहां पर पौंजिकरूपमें एकत्र कर दिया है । स्थान स्थानपर स्रोत निर्मल जलकी निधिएँ लेकर बहे जा रहे हैं । पद पदपर सेव और अखरोटके बाग़ हैं । इस ओरके अखरोट बढिया और बड़े तथा काग़ज़ी होते हैं । छ अखरोट

मुट्ठीमें दबाकर बंद किए जायँ, तो सहसा सब चूर हो जाएँगे। प्रकृति भगवती हरी चादर ओढकर फैली पड़ी है। बनराजी उसके बेलबूटे हैं। जलराशिके पतन रूप उत्तम साज़से स्वर-ताल-लय-मूर्छनापूर्वक छ राग तीस रागनियाँ आलापते रहते हैं गोल गोल उपलखंड लुढ़क-कर मंजीरोंका सा नाद करते हैं। यह काश्मर्य-समृद्धि अपनी अनुपम छटा लिए है।

मार्गमें साहु गावँ आया, लाला बलवंतरायकी एक ही आवाज़से समस्त पंडित लोग एकत्र हो गए। एक सघन वृक्षकी शीतल छायामें काष्ठपट्टिकापर बैठकर श्रीगुरुने उपदेशका आरंभ किया, सबने ध्यान देकर सुना। श्रद्धालु पण्डितोंने एकदम सबने मांस खाना छोड़ दिया। श्रीगुरुने यह दूसरा ग्राम शुद्ध किया।

पंडितोंका महावर्ग दूरतक मुनिचूडामणिको पहुँचाने आया। आगे कभी फिर आनेके लिए कहकर वापस लौट गए। वन-श्रीसुषमा नवीन नवीन संस्कारोंमें नवोढाके श्रृंगारकी भाँति आरही थी। मानो प्रकृतिने यहां विलक्षण जादू बखेरा है। दर्शक अपने आप मोहित होकर उसपर लट्टू हो जाते हैं।

कुक्कडनाग—का चश्मा सबमें उत्तम समझा जाता है। चार पाँच स्थानोंसे झरने बहते हैं। पानी इतना अधिक शीतल है कि लोग एक मिनट भी उसमें खडे नहीं रह सके थे। सहसा बाहर निकल पडते थे अधिकांश लोग यही भाव भंगी करते थे।

तीन बजते बजते कुक्कडनागके पहाड़ पर पगडंडी द्वारा चढ़ने लगे। वह बडी सुन्दर है, चीलके सूची-पत्र बिछे पडे थे। आध मील ही गए होंगे कि मार्गमें कुछ लोग मकान बनाते हुए देखे गए।

उनमें से नूर-भट्टने श्रीमहाराजको सलाम किया, और पासके जंगलातके महकमे वाले रेस्टहाउसमें ले गया। चीडकी सघन छायामें बिठाकर निवेदन करने लगा कि मेरा पुत्र गुलाब भट मेरे स्थान पर यहाँ जमादार है। मेरी आयु ९० वर्ष की है। मैंने बहुत दिन तक यहाँ जमादारीका काम किया है। पास ही ६० वर्ष पहले मैंने एक मकान भी बनवा लिया था। यह तीन मंजिलका था। मैं पुत्र पौत्र समेत सुखसे रहता था। आने जाने वालोंको मुर्गी अंडोंकी व्यवस्था पूर्ण कर देता था। गत सात मास हुए मेरी तक़दीरने पलटा खाया, एक दिन सवेरा होते ही जब कि मैं मकानसे बाहर था, मकान एकदम हिलने लगा, मैंने घर वालोंको बाहर आनेको कहा, और वे सब बाहर आए ही थे, कि एक तोपके गोलेकी सी आवाज़ आई, और मकान भूगर्भ शायी हो गया। इतना नीचा गया कि आँखोंसे ओझल हो गया। उसका कुछ पता ही नहीं चल रहा कि कहां गया। अब उस स्थान पर मारवाडका कुआँ सा बना है। हज़ार फुटसे भी अधिक ओंडा है। आप अपनी आँखों देख सकते हैं। साथ ही मेरी कुछ सहायता भी करें।

गुरुदेव—भाई! जान बची लाखों पाए, आपका सबजीवन पापकी दलाली करते बीता है, अपने करतबका फलभोग ही तो है। वहाँ जा कर देखा तो बात सच्ची थी। वास्तव में एक गहरे कुएँके समान था। उसके मकानका भाग दीखता तक न था। देखकर वापस आगए। सचमुच यह एक आश्चर्यपूर्ण घटना थी। देखकर मनुष्य चकित हो जाता है। आखिर यह कश्मीर ही तो है। यहां सबके सब दृश्योंको देखकर मनुष्य अचरजमें डूब जाता है।

सन्ध्याके चार बजे आसपासके ग्रामोंमें सूचना पहुँचने पर वहाँके सब पंडित लोग दर्शनार्थ आए। पं० वासुदेव कोलविट्टु का नाम विशेष उल्लेखनीय है। धर्मचर्चाके अनन्तर उन्होंने और उनके सब साथियोंने मांस छोड दिया। इस प्रदेश की रात्रि बडी शोभास्पद होती है। यहाँ आने पर भोगीका मन भोग और योगीका मन योगमें घुल-मिलकर रमता है।

काज़ीगुंड–१२।१३०५ ता० २१–६–४६

अपरमुंडा–१०।१३१५ ता० २२–६–४६

७२२४ फुटकी उंचाई है, स्थान सुंदर और रमणीय है, इसकी रम्य रचना देखते ही चंचल मन उछल कूद मचा डालता है। कई चश्मे हैं, स्थान नीरव है, नीरवताका भंग मोटरके हॉर्न द्वारा ही हो सकता है, अन्यथा नहीं।

बनिहाल–२०।१३४५ ता० २३–६–४६

आज आकाशमंडल स्वच्छ तथा भूमंडल गर्म था, वायुकी गति मंद और सूर्यका तेज तीक्ष्ण था। ठंड ठंड में चढ़ तो आए, ९ बजे टंडलपर आकर ही विश्राम किया, आज पहली सी शीतलता न थी। आज गर्मीके कारण जी घबराना चाहता था, परन्तु उतराईके कारण अधिक चिन्ता न थी। उस समय गुरु भगवान्के श्रीमुखसे ये शब्द अनायास ही निकल गए।

(कविता)

नहीं वारिदल नहीं शीतलता अबकी बार शुष्क सा टंडल,
रविकिरणें पी गई हरीतिमा था भूखा ज्यों भारत मंडल।
८९८९ फूटका माप था पर नहीं वैभवमें कुछ ऊँचा,
दीखा दुबला बूढा भारतसा पर स्वाभिमानका कूचा॥

गौरव गरिमा तनिक न कम थी दर्शक झुकते कर शिर नीचा,
छेड़ छाड़ यदि उससे करे तो झट इसने भेजा ही खींचा।
मानबडाई ईर्षाके मदमें भर कर यदि निजको सींचा,
तब इस टंडल पीर पँजालने हिममीर द्वारा झट भींचा॥

दोपहर ढलते तक नीचे उतर आए, आज तो गर्मीसे पत्थर भी पिघलते २ रह गए, रविकिरणोंने मार्मिक प्रहार द्वारा अंग प्रत्यंग व्रणित कर दिया, परन्तु ग्रामके समीप आते ही मोटी मोटी बूंदोंने उन्हें संजीवनीके सदृश फिरसे मिला दिया। आज अधिक थक जानेके कारण शरीरकी कुछ सुध बुध न थी। जम्मू वाले किसी महाजनके नए मकान में रात बिताई।

रामसु–१०।१३५५ ता० २४–६–४६

रामबन–१४।१३६९ ता० २५–६–४६

हज़ारों मणभारसे लदे हुए खूनी नाले को अपलकतया पार कर डाला। इसकी फेंटमें आकर अब तक न जाने कितने निरीह जीवोंने अपनी बलि दी होगी। यही कारण है कि यह नाम और काम दोनोंसे बदनाम है। रामबनमें गर्मीके नानके हैं, इसी कारण यहां इसे अपना घमंड है। दोनों ओरके ऊंचे पर्वत वायु न आने देनेमें सहायक हैं। नगरके बिल्कुल नीचे चुनाब अपनी हैमी-शीतलतासे संनद्ध-बद्ध समृद्धिको लेकर बडे कोलाहल और वेगसे बहा जा रहा है, परन्तु इसकी ठंडकका ऊपर कुछ प्रभाव नहीं पहुँचनेके कारण यह उक्ति बन गई कि—

"नीचे दरियाकी लहर, शहरमें गर्मीसे क़हर।"
"दुविधामें गए आठ पहर प्रतिपल उगला किए ज़हर।"

उंचाई भी २००० फुट है, गर्मी जम्मूसे मिलती जुलती है । प्रवासी तो रझ जाते हैं । इसीलिए यात्री कम ठहरते हैं ।

पीडाह–९।१३७८ ता० २६–६–४६

आज गर्मीकी पराकाष्ठा थी, अफ्रीकाके मैदानोंकी भाँति पहाड़ आग उगल रहा था । ये नौमील ३६ मीलसे कठिन होगए । ग्रामके ऊपर पहाडके अंदर ठहरे । गुरुदेवको तो आते ही उष्ण ज्वर हो गया । सारा दिन और सबरात देहयष्टी के अंग प्रत्यंग काच की भट्टीके समान दहकते रहे । सन्ध्यामें वन्य–भिरडने डंख दिया, जिससे धधकन अधिक बढ गई । सवेरा होते ही विहार किया, परन्तु बटोत आनेपर मुझे भी ज्वर हो आया । इसी कारण बटोतमें दो रात रहना पडा । यह स्थान शीत-प्रधान है, ६००० फुटकी उंचाई पर है । यही कारण था कि मियाँ-बुखार शीघ्र ही ९-२-११ हो गए ।

बटोत–९।१३८१ ता० २१–२८

यहाँ गुजराँवालासे लाला अमरचंद खत्री आए हुए थे, श्रीगुरुदेवके दुर्लभ्य दर्शन पाकर अतिप्रसन्न हुए । ये महाजनभाई ९० वर्षकी उमरसे अलंकृत हैं ।

तीसरे दिन गुरुराज गुरुद्वारेके बरामदेमें विराजमान थे, विहारकी तैयारी थी । सामने कुछ ऊंचेसे उक्त वयोवृद्ध फिसलतेहुए सड़क पर गिरकर मूर्छित हो गए । कृपालु गुरुदेवने उन पर अपनी दयामय किरणें पहुँचाईं । तिलकचंद आदि स्वयंसेवकोंने आकर हाथों हाथ संभाल लिया, तिलकचंदने जेबसे टींक्चर-आईडीन निकालकर दोनों गोडों पर लगाई । तथा उनको डेरे पर पहुँचाया । उस समय भी

बाबाजी अचेत थे। डेरे आए तो कुछ सुधबुध आई। इस व्यवहारसे उन्हें बडाही सन्तोष हुआ। आपने आँखोंकी संज्ञामें कृतज्ञता प्रगट की। उनकी धार्मिक दृढतामें उत्तेजना आगई। वास्तवमें संसारमें दो ही मनुष्य होते हैं, एक वह जो निःस्वार्थ उपकार करता है, दूसरा वह जो किसीके किए हुए उपकारको विस्मृत नहीं होता। औरशेष सब अन्नके कीडे ही हैं। सभ्यता और भव्यताकी नींवका आरंभ यहीं से होता है। जिसके मनमें किसीपर भलाई करनेके भाव तक न आएँ तो वह अपनी बड़ी चतुराईसे भी किसीको आकर्षित नहीं कर सकता।

कुद–१२।१३९९ ता० २९-६-४६

आजका वायुमंडल शांत एवं शीतल है, ७००० फुटकी उँचाई पर 'पतनीटाप' प्रदेशमें आए। तब बादलोंसे दुंदुभिका सा शब्द सुनाई पडने लगा। इस बिगुलसे प्रदेशियों को यह संकेत मिला, कि दो घंटेके भीतर छुपनेका प्रबंध करो, वरन् बड़ी कठिनाईका सामना करना होगा। इतना अच्छा समा बंध गया था, कि तूलिका चित्रित करनेमें असमर्थ है।

प्रकृतिकी शालासे शिक्षाका एक पाठ सामने आया, उस समय बादल वृक्षोंसे आलिंगन करने बडे ऊँचेसे आए थे। उन्होंने उनका महाकाय-महीरुहत्व अपने दामनमें छुपा लिया। इधर ये महाशरीरसूत्रधारी कृतज्ञताको पगट करते हुए हर्षाश्रु बहाकर भूमिको भिगोकर उसे तरकर रहे थे, और उसकी चिरकालीन वियोगाग्मिको बुझा रहे थे। वृक्ष अपने नाम राशि-बादलोंके उपकार-भारसे समृद्ध होकर हरे भरे (प्रसन्नता) से झूम रहे थे। उनका रोम रोम उपकृत था।

इस एकेन्द्रिय सम्मेलनने बहुत कुछ शिक्षा प्रदान की तब यदि साधु नाम राशि-जन ईर्षा-द्वेष-पैशून्य-कलह आदिकी ज्वालाएँ उगलते रहें तो विश्व की प्रेमवाटिका भस्मीभूत हो सकती है। उनका अपना जीवन सार्थक न होकर नगण्य हो जाता है। ऐसों का बखान करनेकी भूल खा कर लेखनी जड़प्राय होजाती है। उसकी सजीवता बुरोंका पक्ष करने मात्रसे मारी गई। सचमुच इन हमारी बत्तीस संप्रदाय और लौकिक छहों दर्शनों-गच्छोंने जगत्‌की मतिको काठ मारनेके अतिरिक्त और क्या किया है?

पहाड़ से नीचे सकुशल उतर तो आए, परन्तु कुछ सीकरें उमड़ आईं तो एक बंद दुकानके बरामदेमें बैठ गए, मेघमालाओंने सब ओरसे घेरा डाला और मूसलधारसे सीधा मोरचा लगा दिया, एक घंटा दिल खोल धारासम्पात होता रहा, अन्तमें कुछ समयके लिए मेघमाली विराम लेने लगा, तो श्रीगुरुकी आज्ञासे चलना आरंभ किया, तब मेघमाली पुनः कुपित सा होकर आक्रमण करनेके लिए फिर दौड़ा, और मोटी मोटी गोलिएँ फेंकना आरंभ किया। दैवयोग से पास ही एक टीनका सुन्दर प्रासाद दीख पड़ा। यह मकान पुञ्छनरेशके धोबीका था। पूछकर वहीं विश्राम लिया। इधर मेघराज चार घंटे इसी तरह एकधार बरसते रहे। एक आनमें कोडाकोडी मन पानी बिखर गया। नदी नालोंमें पूर आगया। इनके तीव्र वेगसे नगाधिराज ध्वनित हो उठा। दोबजे मेघराजने विश्रामकी साँस ली। आधे घंटेतक कुद आ गए। यहां कई घर स्यालकोटनिवासी ओसवालोंके भी हैं।

कुदके पहाड़ बादलोंके अंकमें छुपे थे, तब जगत्‌की आँखें

पार्वत्य वैभवमेंसे एक तुनका भी न देख पाते थे। इसी भाँति अनुभव और सम्यक् ज्ञान द्वारा स्थूल और सूक्ष्म क्लेशोंके महाऽऽकार भी लुप्त हो जाते हैं। अधिक क्या लिखा जाय, प्रकृतिके कोषमेंसे सब कुछ सीखा जा सकता है। शायद तमस्काय ऐसे ही ढंगकी परमाणुओंकी महाग्रंथी होती होगी।

धरोंथल—१२।१४।११

१० बजे बादल अपनी वर्षाकी धाराएँ समेट कर बिखर गए। सूर्य अपने महातेजसे दीप्त होकर ऊपर बढ़ने लगे, और अपनी १५०० किरणोंसे समृद्ध होकर महीमंडल को झाँक झाँक कर देखने लगे। वारिदलोंकी आवृत्ति हट गई। प्रकाशका पुराना संस्कार प्रकाशमें आ गया। गुरुदेवकी आज्ञा पाते ही विहार आरम्भ हुआ। ५००० फुटकी उंचाईसे अब नीचे ही नीचे उतरे आने लगे। उतराई जादू भरी थी, शीघ्र गतिसे इच्छित स्थान पर आने लगे। अब आगके उस गोलेके ऊपरसे पर्दा बिल्कुल हट गया था। अपने सेक ताव से जगतको पुनः उत्तप्त करने लगा। टटरी सुलग सी उठी। पार्वत्य ताप के संकेत से ज्वर दौडा चला आया, और श्रीगुरुके शरीरमें एक बार फिर प्रविष्ट हो गया, स्वास्थ्य विकृत हो गया, जिव्हापर आसानी रंग आ गया, गति मंद होगई, आँखोंमें लालिमा पुत गई। गर्मीका स्थान १०४ डिग्रीके आसन पर था। रात मूर्छाके वैचित्यमें बीती। प्रातः होनेपर चेतना आई। हम सब की चिन्ता मिटी। श्रीमहाराज तो कटिबद्ध होकर विहार करने लगे। स्वयंसेवक हर्षोल्लास में मग्न होकर अनुगामी होगए। इतना साहस मानव व्यक्तिमें होना असम्भव न सही कठिन अवश्य है। गुरुदेव सहिष्णुता की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं।

ऊधमपुर–१२।१४२३ ता० १-७-४६

आज गर्मीका आस्वादन खूब किया, दिनके एक बजे पड़ाव पर आए। गुरुदेवकी अवस्था साधारण थी।

टीकरी–१३।१४३६ ता० २-७-४६

आज वर्षा महा-मायाने दो वार बडे प्रमाणमें सेवा की, इसी लिए ज्वरके परमाणु सिरसके पेड़से उलझे रह गए।

नंदनी–१३।१४४९ ता० ३-७-४६

पगडंडिओंके आश्रयसे आए तो शीघ्रता पूर्वक, परन्तु अब यहां झरनेवाले पहाड़ न थे, ये तो सूखे और गर्म थे। घबराहट रह रह कर उत्पन्न होती थी। चौथे परीषहका आन्दोलन चतुर्थ आश्रमके समान अपगत करनेवाला था, टंडल बाजारमें सद्यनिर्मित भवन अवकाशके लिए मिला। सारी सारी रात मच्छरोंने प्रहरीका काम किया। पहले तो बंसरी बजाकर मनको मोह लिया, फिर पैरों पड़कर नमस्कार किया, तदनन्तर अपना रोज़ा खोलना आरंभ किया। इनका रमज़ान इसी गतिसे आठमास चलता है। इन्होंने अंग प्रत्यंग पर अपना दान्त साफ़ किया। यह रात्रि आजन्म याद रखने योग्य सिद्ध हुई।

नगरोटा–८।१४५७ ता० ४-७-४६

आज जम्मूसे सैंकडों श्रावक आगए, श्रीगुरुदेवके मुखमण्डलके दर्शनों द्वारा कृतार्थ हो गए। आजकी गर्मी श्रीमहाराजके लिए दुस्सह्य होनेके कारण फिर उष्णज्वर हो उठा। सब रात ज्वरपीड़ा रही। सवेरा होनेपर साहससे काम लेकर फिर किसी प्रकार विहार किया।

जम्मू–८।१४६७ ता० ५-७-४६

सकुशलनगर प्रवेश हुआ, अगणित मानव-मेदनीद्वारा ज्ञातपुत्र-महावीर-भगवान्‌के जयनादसे आकाश-मंडल गूँज उठा था, उत्साह और हर्षके भारसे श्रावकवर्ग नत मस्तक था, सब नागरिकोंको पर्याप्त सन्तोष हुआ। × × × ×

श्रीगुरुदेव-राज, नियम पूर्वक सवेरे और मध्यान्हके समय ज्ञान-गंगा बहाते थे। पुरजनोंने आशासे अधिक लाभ उठाया। यह विलक्षण एवं अनुभूत ज्ञानामृत चारमास तक बँटता रहा। श्रोताओंके समुदायसे उपाश्रयका चौक यथासमय परिपूर्ण होता रहा है। परिषद्‌के सभ्य शान्ति-मौन और मनकी एकताके अभ्याससे आगे बढ़नेमें संलग्न रहते थे। विशेषतया माताओंको तो पहले ही दिन प्रतिज्ञा दिला दी थी कि उपाश्रयमें प्रवेश करते ही मौन धारण कर लिया जाय, ताकि प्रवचन सुनने वालोंको किसी प्रकारका विघ्न न हो। निदान चारमास तक उन्होंने गृहीत-प्रणको खूब निभाया। इनका यह आदर्शपूर्ण साहस सराहने योग्य है। वास्तवमें यहां का श्राविका-वर्ग धर्मसाधनामें दृढ और साधुभक्ता हैं।

जैनेतर विद्वान् श्रोता–भूतपूर्व जज, श्रीमान् पं० श्रीचंदजी महानुभाव, कश्मीरी पं० जज महाशय, भूतपूर्व सेशन जज श्रीमान् लाला मूलराजजी साहेब महँगी, पं० लक्ष्मीचन्द्र जी वकील, पं० नित्यानन्द औपमन्यव, लाला रामचन्द्रजी महानुभाव, फॉरेस्ट महकमेके उच्च-अधिकारी, हकीम तीर्थरामजी, लाला तीर्थराम बज़ाज़-वेदान्ती आदि तीससे अधिक जैनेतर महानुभाव भावित व्यक्ति व्यवधान रहित नित्यप्रति व्याख्यान और धर्मचर्चाका लाभ लेते रहे हैं।

श्रवणही नहीं बल्कि मनन और निदिध्यासनके क्षेत्रमें अभ्यस्त हो चले हैं। इन श्रद्धालुओं के सद्विचार प्रदेशमें समन्वय रूपेण सर्वधर्मसमभावकी प्रवृत्ति मय जाग्रती उत्पन्न होकर ठाटे मार रही है। इनके सद्भावोंका चित्रण करना कठिन है।

जन्माष्टमीके प्रसंगमें दिवान हॉलमें दो दिन तक गीता और जैनदर्शनका समीकरण करते हुए श्रीमहाराजका प्रवचन बड़े मार्केका होता रहा है। इसे जैनेतर भाइओंने बड़े चावसे सुना और प्रभावित हुए। सनातन धर्मसभाके मंत्रीने मुक्त कंठसे अनुमोदना की। परिणाम स्वरूप बहुतसे नागरिक उपाश्रयमें निस्संकोच आकर सम्यग्ज्ञानकी प्रभावनका उत्तम प्रसाद पाने लगे।

प्रत्येक मुनिको उचित है कि वे भी अपनी प्रवचनीय धारा सार्वजनिक स्थलमें बहाकर जनता को प्रभावित करके जगतीतल वास्तव्योंको धर्म-जाति-समाज और राष्ट्रीयभावनासे समृद्ध करनेकी प्रवृत्तिका सेवन करें, जिससे जिनशासनकी प्रभावना परिवर्धित होनेके साथ साथ लोगोंका चरित्र संगठित होकर मनोबलका विकास हो।

ठाकुर ज्वालासिंह—श्रीमान् ठाकुर ज्वालासिंह जी क्षत्रिय महानुभाव डोगरावंश शिरोमणि हैं। आपमें क्षात्रतेजके अतिरिक्त व्यावहारिक गुण भी बहुत हैं। परन्तु जब से श्रीगुरुदेवके सहवास में आए हैं तबसे आपकी आत्मचेतना आर्हती भगवती में उन्नत हो गई है। आपने अपनी दोनों सुपुत्रियों और चिरंजीव कुमार मंगतसिंहके मस्तकमें भी यही भाव भर दिए हैं। आप सपरिवार सम्यग्दर्शन पदसे अलंकृत हैं। आपकी वासभूमिसे अरिहंत जय जय' की ध्वनि उभयसान्ध्य आया करती है। आप महाराजश्रीकी सतत प्रेर-

णाओंसे श्रीज्ञातपुत्रमहावीर भगवानके सिद्धान्तोंके अनन्य श्रद्धालु हैं। आप श्रावक परिवारमें प्रविष्ट होकर अपनेको धन्य मानते हैं। प्रसंगोपात्त आप सबसे यही कहा करते हैं कि मैंने जीवनके अन्तिम भागमें अनुपम निधि पाई है। इस रत्नको अपने वंशकी पद्धतिमें संभालकर रखनेका प्रयत्न करूंगा। अपने पार्वत्य ग्राममें आपने एक पुस्तकालय भी उद्घाटित किया है। आप सर्पचिकित्साविज्ञानके कुशल गारुडी भी हैं। आपकी अमूल्य सेवाएँ साधारण जाति की जनताके लिए उपयोगिता पूर्ण हैं। जैन समाजका कर्तव्य है कि इस श्रीवाले क्षात्रपरिवारसे सब प्रकारकी सहानुभूति रखते हुए अपना सांधिक सदस्य समझें।

सांधिक परिचय—श्रीश्वेतांबरस्थानकवासी जैन सभा यहां की मुख्य संस्था है। इसके अधिकारमें कई शाखासंस्थाएँ हैं। जिन्होंने अपना अपना काम सम्यक् तया संभाला है। कार्यको सुचारुरूपसे चलानेके लिए २१ सदस्योंकी अन्तरंग सभा स्थापित की है। इसके अधिकारियोंमें—

प्रधान—भूतपूर्व दिवान, रायबहादुर श्रीविशनदासजी दूगड़ हैं।

उपप्रधान—बाबू पन्नालाल बरड़ हैं।

मन्त्री—बाबू मुनशीराम हैं।

उपमन्त्री—बाबू फूलचन्द्र दूगड़ हैं।

श्रीमहावीर जैन स्कूल—अनुमान १५० बालक बालिकाएँ विद्याभ्यास करते हैं। वार्षिक परिणाम संतोष जनक निकलता है। छ कक्षा हैं। पांच अध्यापक और एक अध्यापिका सेवा करते हैं। इसकी ठीक व्यवस्था रखनेके लिए स्कूलसमिति बनाई है। इसके—

प्रधान–दिवान ईसरदास हैं।

उपप्रधान–लाला त्रिलोकचंद जैन हैं। आप सुधारक विचारके नवीन चेतनावाले सतर्क युवक हैं। आप प्रामाणिकता, नम्रता, गंभीरता आदि सभी बातोंमें ख्यातिप्राप्त हैं। न्याय नीतिका उचित सन्मान करते हैं। आपकी धार्मिक और दार्शनिक योग्यता अच्छी है। आप शान्तिप्रिय हैं। यथानाम तथागुण वाली उक्ति आपमें चरितार्थ है।

मन्त्री–मुनशीराम नाहर हैं।

उपमन्त्री–कस्तूरीलाल दूगड़ हैं।

कोषाध्यक्ष–रामचंद्र रांका हैं।

इसके ११ सदस्य हैं। काम अच्छे ढंगका है। सब कार्य सन्तोषजनक है।

जैन उपाश्रय–नाइयोंकी ढक्की (गली) में ही है। स्थापत्यकलाकी दृष्टिसे पुरानी वस्तु है। मच्छरोंका उपद्रव नहीं है। प्रवेशद्वार छोटा है। लंबे क़दके मनुष्योंको झुककर घुसना चाहिए। उपस्थिति अधिक होनेपर चौकमें ही व्याख्यानकी व्यवस्था की जाती है।

श्राविका-उपाश्रय–दो हैं। एक उपाश्रयमें श्रीगोपीजी सती विराजमान हैं, वयोवृद्धा हैं, उनकी यथोचित सेवाकी व्यवस्था चतुर्विध संघद्वारा अवश्य होनी चाहिए।

जैन पाठशाला–का मकान जलाका महल्लेमें है। अनुमान ४००००) रु. मूल्यकी वस्तु है। परन्तु इसका पीछेका भाग यावन है।

स्थावर सम्पत्ति—जैनस्कूलके नाम दो दुकानें हैं, वार्षिक आय २००) है।

जीवदया समिति—इसके अन्तर्गत श्रीमहावीर जैन धर्मार्थ औषधालयकी व्यवस्था है। यह जैनपुस्तकालयके मकानमें है। फत्तूके चौगानमें गोशालाके नामसे प्रसिद्ध है। एक दुकान जीवदया समितिके नाम भी है। वार्षिक आय १८०) है।

वाचनालय—इस सार्वजनिक पुस्तकालयमें १५०० पुस्तकें हैं। कई समाचारपत्र भी आते हैं। बहुतसे लोग नियमित समयपर आकर लाभ उठाते हैं। परन्तु जैनोंकी हाज़री नगण्यसी है। यह कमी सबको अखरती है। वास्तवमें हिन्दीका प्रचार सन्तोषजनक नहीं है।

बाबू बदरीनाथ दूगड़—श्रीप्रेमनाथ वकील महोदयके सुपुत्र बाबू बदरीनाथजी दूगड़ इन्सपैक्टर पोलिसके पदसे विभूषित हैं। आप प्रकृतिके नम्र-विनीत और बेलाग हैं। आपने इस वर्ष चातुर्मासिक प्रसंगमें कर्फ्यू आर्डरके कठोर दिनोंमें जब कि ३०० भाई बाई बाहरके आए हुए दर्शनार्थी रुक गए थे, उन सबको यथासमय स्टेशन पर पहुँचानेके लिए अधिकारियोंसे यथोचित व्यवस्था कराकर उन्हें स्टेशनपर मोटरोंसे पहुँचानेकी सेवाको कोई भी नहीं भूल सकता। आपके सद्व्यवहार से जैन प्रजाको बड़ा गर्व है। आपके मानमें स्थानीय जैन समाजने आपको मानपत्र दिया है। बिरादरीने आपकी सेवाकी बड़ी क़दर की है उसकी नक़ल इस प्रकार है।

मानपत्र

श्रीमान् बाबू बदरीनाथजी जैन इन्स्पेक्टर पोलीस जम्मूकी सेवामें,—

श्रीमान्जी ! जिस तरह रोशनीकी फ़ैज़रसानी चटानी समन्दरों और

तारीक रातों और मल्लाहकी महारत तूफ़ानों और साइक्लोनोंमें ही परखी जा सकती है, इसी तरह शख्सीयतोंके लिए ज़मानेकी नज़ाकत एक बेहतरीन कसौटी पर आपको ऐसा गोहर-बे बहा महसूस किया है जो हमारी निगाहोंमें सरय्यासे ज्यादह बिलंद-क़दर और कोह-नूरसे ज्यादह चमकदार और क़ीमती है। जिस तरह सूरजकी पहली किरनोंसे कायनातका दिल खिल उठता है और बारिशके सफ़ाफ़ कतरोंसे सूखे हुए खेतोंके लबोंपर जिंदगी मुस्कुराने लगती है इसी तरह **श्रीज्ञातपुत्रमहावीर जैनसंघीय**–महाप्रभावक–**मुनि श्री श्री १००८ परम पूजनीय श्रीस्वामीफूलचंद्रजी महाराजके शुभ आगमनसे** इस सुनहरे कलशों और सफ़ेद देवालयों वाले जम्मू शहरमें एक नया जीवन अंगड़ाइयाँ लेने लगा। जैनसमाजमें कारोबारकी सरगरमीपर धार्मिक चहल पहल आ गई। और नगर इस नए रंगमें **श्रीस्वामीजीके तप त्यागके प्रभावसे** यों निखर उठा, जैसे मशरिकके सीनेसे सर्दियोंकी एक साफ़ सुबहका नया सूरज तलूअ (उदय) हुआ हो। जिस तरह एक दीपकके गिर्द इसकी इच्छाके बग़ैर हज़ारों पर्वाने जमा हो जाते हैं, और जिसतरह मिक़्नातीसका पहाड़ दूर दूरसे लोहेके टुकड़ोंको खींचकर इन्हें अपने स्पर्शसे मिक़्नातीस बना देता है, इसीतरह बाहर पंजाब वग़ैरहसे सैंकड़ों जैन भाई श्रीपूज्य-स्वामीजीके दर्शनों और उनके मोक्षदायक उपदेश-सरबतकी प्याससे व्याकुल जम्मू आ पहुँचे। लेकिन उन ही दिनोंमें यकायक इस शहरकी फ़ज़ा मकद्दर हो उठी। इन्सानोंके सीनोंमें दरंदगी जाग उठी। हकूमत ने क़याम-अमनके लिए कर्फ़्यू-ऑर्डर नाफ़ज़ कर दिया। जिससे बाहरके भाइओंके लिए वाप

महाल होगई । तमाम शहरी अपने अपने मकानोंमें बंद कर दिए गए। खाने पीनेकी चीजोंकी फ़रोख्त भी कामिल तौर पर बंद थी। ऐसी हालतमें बाहरसे आए हुए चार-पंज सद यात्रियोंकी मुश्किलातका जायज़ा लेना ज्यादह मुश्किल नहीं। इस हालतमें आपने जिस जाँफ़िशानी-काबलीयत-हमदर्दी और एसारसे काम लेकर भाइओं और बहनोंकी वापसीका इन्तज़ाम किया, और जिन्हें जिसतरह एक गैर मतवक्का मुसीबतसे बचाया, इसके लिए तमाम जैनसमाज आपकी शुक्र-गुज़ार है। और आपकी इस क़ौमी खिदमतके नेक जज़बेकी इन्तहाई क़दर करता है। जिसके प्रभावसे आपने मुसीबतमें गिरफ्तार पान-सद अशखासको बाहिफ़ाज़त उनको बाहर अपने अपने शहरोंमें भिजवा दिया।

बाबू साहेब! जैन समाज आपकी इस नेकदिली और कौमी-महब्बतकी तहदिलसे म-अतरफ है, जो कि ज़िन्दगीका जज़ब बन चुकी है, और इन खिदमतकी क़दर करता है। जिनपर आप अमली ज़िंदगीमें हर क़दम पर आगाह रहते हैं। और आपकी ज़िंदगी इस लिहाज़से दूसरे लोगोंके लिए मिसाले-हिदायत है। जैन समाज इन औसाफ़-हमीदहका ऐतराफ़ अपना फ़रज़ समझता है। और भावना करता है कि दूसरे लोगोंके दिलोंमें भी कौमी ख़िदमतकी ऐसी ही नेक और शुद्ध-भावना जागृत होकर जैन-समाजको एक आदर्श समाज बना डालें।

पेशकुनंदगान—

पन्नालाल जैन, प्रेजिडेंट,

फूलचंद जैन, सेक्रेटरी,

व मेम्बरान S. S. जैन सभा, जम्मू

जैन कवि–श्रीयुत प्रेमनाथ दूगड़ वकील और कवि हैं, आप कविता उर्दूभाषामें करते हैं। माने हुए शायर हैं। ८० वर्षकी अवस्था होनेपर भी उभयकाल १० मीलका प्रवास करते हैं। आपकी मस्तिष्कशक्ति अब भी उपस्थित है। औत्पातिकी और पारिणामिकी बुद्धि प्रबलता युक्त है। उपजाऊ खेतके समान हाज़िर जवाब हैं। उर्दूकी शायरी उत्तम ढंगकी करते हैं। नमूनेके रूपमें आपकी बनाई हुए प्रार्थना कितनी अच्छी है पढ़कर नाप ले सकते हैं।

मेरी जानमें जब तलक जान होवे, कफ़े पा में तेरे मेरा ध्यान होवे।
ज़बां पर रहे हरघड़ी नाम तेरा, तेरे प्रेममें रूह गलतान होवे॥
वो सर हो के जिसमें तसव्वर हो तेरा, वो जां हो के जो तुझपे कुर्बान होवे।
सदा हाथ मेरे रहें दान वाले, अता कर दूं सब दिल दयावान होवे॥
हर इक पापसे, ऐबसे, हर गुनाहसे, मेरा दिल सदाही निगहबान होवे।
कोई शै धरमसे न मुझको गिरादे, हिमालय सा मज़बूत ईमान होवे॥
मेरे तख्ते दिलपर रहे जल्वागर तू, मेरी जान जिससे दरख्शान होवे।
विषय वासनाके न काबू में आवे, मेरी रूह वो मर्दे मैदान होवे॥
तबीयतमें भरपूर हो खाकसारी, किसी शैका मुझको न अभिमान होवे।
तआस्सुब ज़रा भी न हो मेरे दिलमें, महब्बतकी दुनिया मेरी जान होवे॥

"काव्यशास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्" की उक्तिके अनुसार आप श्रीगुरुदेवकी सेवामें दोपहरके अनन्तर अव्यवहित रूपसे उपस्थित रहकर प्रसंगोपात्त अच्छे अच्छे शेर पढ़कर सुनाया करते थे। तब श्रीमहाराज उन फ़ारसीके शेरोंका हिन्दी पद्योंमें भावानुवाद रच देते थे। इस सद्य निर्मित रचना पर आप खूब प्रसन्न होते थे। गुरुदेव द्वारा रचित काव्योंका संग्रह मैंने इस प्रकार किया है। ज़रा स्वाध्याय करके आनन्द तो लूटें।

शनीदेअम सख़ने खुशके गोसपंदे गुफ्त ।
दरां ज़मां कि शरसरा बतेग़े तेज बरीद ॥

भावार्थ—मैंने एक बहुत अच्छी बात सुनी, जो कि एक मेढ़के बच्चेने उस वक्त कही, जब कि उसका सरतेज तरवारसे काटा गया था।

पद्यानुवाद—

सर कटनेके समय मेडके, बच्चे से इक बात सुनी ।
मन पसंद थी अच्छी भी थी, कहनेवाला शांत गुनी ॥

सज़ाए हर ख़श वख़ारे, कि ख़ुर्दे अम ईं न अस्त ।
हरांके पहलूए चर्बम, ख़ुरद च ख़ायदीद ॥

भावार्थ—हर एक घास और कांटा जो मैंने खाया है, मुझे उसकी सज़ा मिली है; पर जो शख्स मेरा रोग़नी मांस खायगा, उसका हशर (परिणाम) क्या होगा ।

पद्यानुवाद—

मैंने घास औ कांटे खाए उसकी सजाका है यह भोग ।
पर खावे जो मांस मेरा, क्या हशर हो उसका है यह शोग ॥

बादशाहे पिसर बमकतब दाद ।
लोहे सीमीश दरकनार निहाद ॥

भावार्थ—एक बादशाहने अपने लडकेको मदर्से दाखिल किया। और चाँदीकी एक तख़्ती उसकी बग़ल में दी ।

पद्यानुवाद—

बादशाहने अपने लडकेका था मदर्से किया प्रवेश ।
तख्ती चाँदीकी लिखनेको दी, जिससे वह लिखे हमेश ॥

बरसरे लोहे ओ नविश्ता बज़र ।
जौरे उस्ताद बेह के मेहरे पिदर ॥

भावार्थ—उस तख्तीके सिरे पर सोनेके अक्षरोंमें यह लिख दिया कि उस्ताद की सख्ती बापके प्यार से अच्छी है ।

पद्यानुवाद—

उसके एक कोनेपर सोनेके हर्फोंमें लिखा सुधार ।
'सुमन' गुरुका दंड बुरा नहीं, बुरा बापका करना प्यार ॥

मपरवर तन अरमर्दे राओ हुशी ।
कि ओरा चुमे पर्वरी मे कुशी ॥

भावार्थ—यदि तू बुद्धिमान् है तो शरीरको मत पाल, क्योंकि उसे पालेगा तो उसका पालना मार डालनके बराबर है ।

पद्यानुवाद—

ओ मानव ! यदि बुद्धिमान तू है तो न इस देह को पाल ।
क्योंकि पालनेवालेको ही, इसने मार किया बे हाल ॥

सकूने बदस्तावर ऐ बे सबात ।
कि बरसंगे गर्दां न रोयद नबात ॥

भावार्थ—ओ नाशवान् ! तू शान्ति प्राप्त कर, क्योंकि लुढ़कनेवाले पत्थर पर काई नहीं होती ।

पद्यानुवाद—

ओ मनुष्य तू नाशवान्, क्यों जलता है, कुछ शान्ति कर ।
क्योंकि काई नहीं जम सके, चलनेवाले पत्थर पर ॥

दिल बदस्तावरके हज्जे अकबर अस्त ।
अज हजारां काबा यक दिल बेहतर अस्त ॥

भावार्थ—यदि तू किसीका अन्तरात्मा प्रसन्न कर दे, या उसके मनपर क़ाबू करले तो यह एक बड़ा भारी हज है। किसीके दिल का वसमें करना हज़ार काबोंमे बढ़कर है।

पद्यानुवाद—

प्रसन्न कर दे अगर किसीको या उसका मन करले काबू।
बस फिर तूने बड़ा किया हज, समझो मेरे प्यारे बाबू॥
किसीके दिलका काबू करना, हजार काबोंसे है चढ़कर।
वशमें कर उसको खुश करना, यह कर्तव्य सबोंसे बढ़कर॥

न चंदां बखुर कज दहानत बरायद।
न चंदां के अज जोफ जानत बरायद॥

भावार्थ—इतना मत खाओ कि मुँहसे खाया हुआ निकल पड़े। इतना कम भी मत खाओ कि दुबले होकर मर ही जाओ।

पद्यानुवाद—

भोजन अधिक कभी मत करना ऐसा न हो वह जाए निकल।
पर इतना कम भी मत खाना, कुमौत हो या तन हो दुर्बल॥

हर कुजा चश्मे बुवद शीरीं।
मरदमो मोरो मलख गर्दायंद॥

भावार्थ—जिस स्थानपर मीठा चश्मा निकला हो, आदमी-कीड़े और पतंगे सब एकत्र हो जाते हैं।

पद्यानुवाद—

मीठा स्रोत जहां हो, मानव-कीट-पतंगे भी आ जाते।
विना भेदके निर्मल पानी पीकर सब हैं खुशी मनाते॥

नेशे कयदम न अजपए कीन-अस्त ।
मक्तजाए तबीयतश इन अस्त ॥

भावार्थ—बिच्छूका डंक किसीके साथ क्रोधके कारण नहीं बल्कि उस की प्रकृति का स्वभाव ही ऐसा है ।

पद्यानुवाद—

डंक बडा बिच्छूका पैना, नहीं किसीके दुःखका कारण ।
बल्के उसकी प्रकृति ऐसी है, अत एव प्राणिका मारण ॥

अगर सद साल गबर आतिश फरोजद ।
तो यकदम अंदरां उफतद बसोजद ॥

भावार्थ—यदि अग्निपूजक सौ वर्ष तक भी उसे पूजता रहे तब भी वह एक चिंगारी उसके अंदर पड़ जाय तो उसका सब भस्म करदे ।

पद्यानुवाद—

शत शत वर्ष अग्निकी पूजा किया करे यदि कोई विदग्ध ।
किन्तु एक चिंगार पड़े तो घर द्वार झट करदे दग्ध ॥

इन पद्योंके अतिरिक्त अन्यान्य विषयोंपर जो जो रचनाएँ गुरुदेजने की हैं, उनका कुछ संग्रह इस भाँति है । पढिएगा और समानन्द रसमें बह जाइएगा ।

धर्म

वस्तु-स्वभाव धर्म कहलाता शान्ति-क्षमामय दशविधि-धर्म,
धर्म जीव रक्षामें भी है औ रत्नत्रय त्रयविधि धर्म ।
दुर्गतिमें गिरते प्राणीको बचा-धारनेवाला धर्म,
पुद्गल-रचना हेय धर्म है उपादेय निर्वृत्ति धर्म ॥

अंग-उपांगमयी जिनवाणी स्पष्ट कहाती है श्रुत धर्म,
कर्मनाश करनेकी चेष्टा जहाँ, वहाँ है चारित धर्म ।
देश विरतिका साधन करनेसे बनता है श्रावक धर्म,
सर्व-विरतिका आसन ऊंचा परम पुनीत हुआ मुनिधर्म ॥
कभी किसीको हानि नहीं पहुँचाना प्रेष्ठ-अहिंसा धर्म ।
परके अर्थ प्राण निज अर्पण करना श्रेष्ठ अहिंसा धर्म ।
सबके हित अतीव उपयोगी है सर्वत्र अहिंसा धर्म,
मरनेको वह उद्यत रहता सबका पालक है जिन धर्म ॥
सच्चरित्रका स्वागत करना कहलाता है संयम धर्म,
सत्य-अहिंसा-प्रेम सहित सबकी सेवा परमोत्तम धर्म ।
नहीं इन्द्रियग्राह्य धर्म केवल हृदयग्राही है धर्म,
पर हमसे यह भिन्न नहीं है, रोम रोमका वासी धर्म ॥
धर्म धरोहर है मानवकी क्योंकि व्यक्तिगत संग्रह धर्म,
तथा स्वयं खो भी सकता है इतना है अमूल्य यह धर्म ।
अनायास यदि हो पावे तो धर्माचरण न वह है धर्म,
नहीं विनोद न शिशुकी क्रीड़ा 'सुमन' प्राणका संगी धर्म ॥

[काश्मीर—श्रीनगर—१९४१]

पशु महान् या मानव ?

एक विजन-वनमें तरुपर चढ़ देखा इधर उधर रख मौन,
मनमें ऐसी उठी कल्पना मुझसे बढ़कर है अब कौन ।
"मैं हूं मैं हूं" यह कह बोला उसी समय झट बनका मोर,
ओ मानव ! तू मुझसे सुंदर नहीं वृथा क्यों करता शोर ॥

रूप नहीं पर गाना मुझको तुझसे अच्छा आता है,
स्वर-लय-ताल मिठास भरा यह सबके मनको भाता है।
यह सुनते ही कोयल बोली "कुहू-कुहू" की कर लल्कार,
तुझसे तो स्वर मीठा मेरा, कण्ठ न तुझमें मत कर रार ॥
बलमें तो मैं सर्वश्रेष्ठ हूं, अहंकारसे मैं बोला,
तत्क्षण सिंह दहाड़ा मानो गिरा कहीं बमका गोला।
काँप उठा मेरा शरीर सब भयसे हुआ हाल बेहाल,
मद-उन्मत्त केसरी बनका मानो आया बनकर काल ॥
मनका राजा पलट गया तब मैं समझा यह अतिबलवान,
पर मेरा भारी कुटुंब है आया एक नया अभिमान।
सन्मुख देखा एक शृगाली साथ लिए भारी परिवार,
मानो मुझे बताती थी अपने मनके स्वयमेव विचार ॥
किसका बड़ा कुटुंब देखले दर्प हृदयसे कर सब दूर,
फिर भी जड़से नहीं हो सका मेरा मद सब चकना चूर।
जब सोचा धनवान बहुतमें तब बोला मणिधर विष व्याल,
अपनी दृष्टि आज, मेरी इस मणि पर कुछ क्षण तू भी डाल ॥
नौ करोड़ है मूल्य एक का तेरा चिन्तित धन जितना,
फिर इस मणिसमूहके हित तू जीवन पाएगा कितना।
यह सुन लगा सोचने मनमें फिर मैं हूं किससे बढ़कर,
कीड़ी एक अचानक बोली मेरे मस्तक पर चढ़कर ॥
तू क्या? कौन? कहाँ किसका है? अपने मनमें मत कर भूल,
अरे बावले! स्वल्प वायुसे व्यर्थ बुलबुले सा मत फूल।

मैंने सोचा मानव क्या है ? अति महान अथवा लघुतम,
सचमुच इसके पास 'सुमन' जो, वह सब पशुओंसे भी कम ॥

[कराची–सन् १९४५]

श्रावकके २१ गुण

अरे मन ! बन श्रावक गुणवान,
लज्जा-दया-प्रशान्त चित्तसे, अतिशय श्रद्धावान ॥
कभी अन्यके दोष देख मत, कर सब पर उपकार ।
सौम्यदृष्टि-गुणग्राहकता युत, सहनशीलता धार ॥ १
सर्वप्रियता-सत्यपक्ष रत, कर आगेका सोच ।
विशेषज्ञ-मर्मज्ञ-कृतज्ञ बन, सत्तत्वज्ञ, न पोच ॥ ॥ २
मान, दीनता न हो, सरस वच; स्वाभाविक नय वान ।
पाप रहित होकर मानव बन, कलापूर्ण-मतिमान ॥ ३
इत्यादिक गुण जो अपनाता, श्रावक वही सुजान ।
जाति-देशका सद्भूषण वह, 'सुमन' वही धीमान ॥ ४

(कराची १९४५)

क्या तू यह कहता है ?

मैं सर्वज्ञ, मैं ही अधिकारी, मेरे नीचे सब पशु-मानव,
जड़ीभूत कल और मशीनें, ऐसी चलतीं जैसे दानव ।
अगर एक हुँकार करूं तो, मुँड हजारों हैं झुक पड़ते ।
मेरी बातमें हां हां करते, चलते फिरते नर रुक पड़ते ॥
दिन या रात कहूं वही मानें, जो भी कहूं वह पत्थर रेखा,
प्रतीवाद कोई न कर सके, जादू सा यह सबने देखा ।

मेरे मित्र-दारा-सुत पुष्कल, स्नेही-परिजन नेह करें।
क्या तू यही कहा करता है? सब नर मेरे गेह परें॥
ओ रे भोले बालमित्र! तू भूल न कर यह रगड़ा झूठा।
सब आडंबर है, माया है, पुद्गलका है झगड़ा झूठा॥
जब अपने वश में ही नहीं तू, कौन तेरे वश हो सकता है?
प्रवृत्तिएँ सब तेरी झूठीं, झूठ, झूठ को ढो सकता है॥
उस दम तेरी देह काँपे जब, काल-कराल उठे ललकार।
दौड़ धूप तब काम न आवे, होंगी वृथा तेरी हुंकार॥
नष्ट-भ्रष्ट हो मान तेरा सब, वहाँ न होगी दिन की रात।
तब तू कर मल-मल पछताए, याद आएँगी पिछली बात॥
वे सब तेरे इष्ट मित्र जन, क्यों करते थे तुझसे प्यार?
अपने सुख-आनँदके लिए, बने सभी वे स्वार्थ से यार॥
जिस प्रकार तू अपने सुखके लिए सदा कुछ करता रहता,
इसी भाँति वे निकट संबंधी वही करें थे जो तू कहता॥
काच की आँखें इस दुनियाकी, सच्चा नहीं दिखता आभास।
मायाके नेत्रोंसे देखा; सब विभाव असत्य प्रकाश॥
इसके लिए यथार्थ दृष्टि यदि चाहो तो, वह शास्त्राभ्यास।
संत समागममें रख निष्ठा, बसो सदा सद्गुरुके पास॥
सम्यग्ज्ञान-नेत्र जब प्रगटे, तब हो जाए ठीक मिलान।
जो कहता था, सत् या असत् था? मिले ठीक उत्तर मतिमान॥
पूर्व धारणा सही नहीं थी, मात्र एक मन हठ ही था वह।
'सुमन' तेरा अपना घर नहीं, वह, भूतों का सा मठ ही था वह॥

(जम्मू १९४६)

एक समय

जब कि एक समय था ऐसा, तेरी चेतना आवृत थी ।
तब तू जड़वत् कहलाता था, कई स्तरोंसे अनादृत थी ॥
तुझे कहें थे पृथ्वी-पानी-अग्नि-वनस्पति औ वायु ।
प्राण-भूत-या जीव-स्कन्ध इन पर्यायोंकी थी आयु ॥
स्थावरत्वकी दुःखद कोठड़ी, जिसमें बीता काल अनन्त ।
अकाम निर्जरा की भावी वश, कठिनतया हो पाया अन्त ॥
उसकी अनुकम्पाके द्वारा, कुछ कुछ ऊपर उठ आया ।
बिखर गया था शुष्क पत्रवत्, ऊँची गतिमें जनन पाया ॥
स्थावर मिटकर त्रस कहलाया, हुई चेतना धुलकर साफ़ ।
थोडा सा कुछ हटा आवरण, लेश्याका हुआ अवकर साफ़ ॥
वृक्षादिक पर्याएँ पाकर, ठंडी छाया औरों को दी ।
बना फूल, रस-परिमल पाकर, काले काले भौरों को दी ॥
काट डालते अन्य तुझे, पर तू उन्हें मिष्ट फल देता ।
वैर भावकी चाह नहीं थी, प्रतिफल की न कल्पना लेता ॥
हुआ अधिक पैरों वाला भी, तथा पैर पाकर तू चार ।
लोग पालने लगे प्रेमसे, उनसे भी करता तू प्यार ॥
इस प्रकार पशु होकर आगे बना वीर-समता का घर ।
परोपकारक वृत्ति तेरी, दुःख सहे न दिया कुछ उत्तर ॥
इसी साधसे तेरे मनकी, निर्मलता बढ हुई असीम ।
पुण्य राशिका पुँज लगाया, सबके खा कर पत्थर ढीम ॥
कठिनतया हुई उन्नति तेरी, ओ पुद्गल-प्रपंची मर्कट !
पशु मिटकर कहलाता मानव ! अब क्यों दौडे हय सा सर्पट !

नहीं ठिकाना तेरे गर्वका, भूल गया क्यों अरे अतीत!
बीता काल महादुःखसे था, रीझ कहे वह 'किया व्यतीत' ॥
अपनी स्थावरता-निर्दयता,-पर न कभी क्या दृष्टि डाली ।
पूर्वकालमें पाशवता पर पड़ी हुई थी काली जाली ॥
उस जालीका घना आवरण जिसमें कुछ भी नहीं दिख सकता ॥
ज्ञानी जानें थे उस दुःखको, जिसे न लेखक लिख सकता ॥
गर्भवासका रोना धोना, स्मरण नहीं क्या बुरे विलाप!
नरक समान कष्ट थे भयकर, उन्हें भुलाता क्यों मतिपाप!
अब तो तू 'तू तू' से मिटकर, अकड दिखाता 'अहं बना ।'
अनुकूल सामग्री पाकर, क्यों नहीं सोऽहं हंस बना ॥
वास्तवमें ऐसा नहीं बनना, तुझे चाहिए था भाई!
आत्मरक्षिका तेरी चेतना, पर परणति तो हरजाई ॥
संज्ञी-पर्याप्तिक-गति-इन्द्रिय-प्राणादिक-बल तेरे पास ।
इनका मद अधिकाधिक तुझको, अतः खो दिया निज विश्वास ॥
पर उतार अब मान सयाने! मतवाले गिरते भूतल में ।
बुरी तरह वे चोटें खाते, उठ न सके मिलकर महितल में ॥
आनुपूर्वी उलट पड़े तो, तेरा पासा जाय पलट ।
बाज़ी हारे, मिले खाकमें, तन-धन-वैभव जाय उलट ॥
जैसा तू पहले था वैसा, तुझे बना दे यह अहँकार ।
भव्य कवीके अक्षरदेहके द्वारा तूने सुना न सार ॥
वे कहते हैं "देह जहाँ तक रहे, वहाँ तक भज महावीर"
उनके सब गुण स्मृतिपट पर रख, 'सुमन' सदा जप श्रीमहावीर ॥

श्रीमहावीर-श्रीमहावीर-भज महावीर-भज महावीर।
भज मन भज मन भज महावीर, भज मन भज मन भज महावीर॥
(जम्मू १९४६)

ओ दीवाना!

संबोधन हम तुझको क्या दें, सचमुच तू है अजड़ दिवाना।
इससे बढ़कर शब्द न मिलते, है संबोधन सजड़ दिवाना॥
वह जो दिवाना खाता पीता, जग-फिर कर सोता दिवाना।
इसी भाँतिका तू भी दिवाना, आत्म-भाव खोता दिवाना॥
सारासार विचार न जिसमें, घर घर माँगे भीक दिवाना।
बात न माने कभी किसीकी, जो किया समझे ठीक दिवाना॥
जितने बुद्धिमान् इस जगमें, उनको यह जाने दिवाना।
स्वयं बना जब यह दीवाना, सब जगको माने दीवाना॥
खुदको माने ज्ञानका सागर, तू इससे क्या कम दीवाना।
सदा तान ता अपनी हठ को, कभी न रहता नम दीवाना॥
कुदरतके पाशोंको फेंकनेकी चाहमें है व्यस्त दिवाना।
सट्टे जुए में सब कुछ खोकर खाक चाट कर मस्त दिवाना॥
दीवाने के मुख्य चिन्ह ये, एक के सौ सौ करे दिवाना।
सौ से लाख-लाखसे करोडों, अरबों का दँड भरे दिवाना॥
धन-अनन्तकी राशी पाकर खोता-कर सुखसेल दिवाना।
विपद कूपको स्वयं खोद, उसमें पडनेका खेल दिवाना॥
सुलटा पड़ा अगर यह पाशा, फूला समाता नहीं दिवाना।
अधिक दिवाना मत बन प्यारे, लुटे चेतना यहीं दिवाना!

कहाँ खबर है इसे भला यह, बना प्रलोभी मीनदिवाना ।
पाशा डालना कठिन न प्यारे ! दाव है उदयाधीन दिवाना
मुश्किल पाना ठीक दावका, चाहे जितने फिंकें दिवाना ।
वैभाविकता में न शक्ति वह, चरमदाव मिलसके दिवाना ॥
दीवाना पन खूब बढ़ाया, काट इसे मत थके दिवाना ।
विषकी बेल रोप कर मानव ! "नहीं खाऊँ" यह बके दिवाना ॥
भावी नाश सामने तेरे, जान बूझ गया भूल दिवाना ।
विषसे बुरा विषयका काँटा, चुभेगा यों ज्यों शूल दिवाना ॥
विषयानुगामिओंका है हमने होता देखा नाश दिवाना ।
कडवे फल खाकर रोवेगा, नहीं जीवनकी आश दिवाना !
अब भी कर तू अपनी झाँकी, कर श्रवणोंमें वास दिवाना !
दीवाना पन ज्यों मिट जावे, मिले शाँतिका श्वास दिवाना ॥
दुनिया देखे, कहे दिवाने, कर ऐसा शुभकाम दिवाना ।
अब भी समझ पिछान समयको, मेट 'अहं' का नाम दिवाना ॥
सन्मति से सत्तत्व जाँच कर, मनके विकल्प मेट दिवाना ।
खोकर ममता-लोलुपता को, चार शरण ले भेट दिवाना ॥
इनको ही पानेके कारण, आकर बन जा अभी दिवाना ।
इसमें तेरी चतुराई, गुरु-ज्ञानी भूल न कभी दिवाना ।
समझ सार संसार दिवाने ! समझू टाले दोष दिवाना ।
सदा समझवाले प्राणीको मिले मोक्षका कोष दिवाना !

(जम्मू १९४६)

याद रख

वीतरागताके ओ प्रेमी ! इन बातोंको रखना याद ।
स्मृतिपथमें यदि सदा रहें तो, अड़ीभीडमें दगी दाद ॥
'चाहे आज तू सुखी धनी है, बड़ा बना, औ सत्ताधीश ।
लेकिन कर्म-कुटिल-[illegible] हैं, कल न रहेंगे सत्ता-ईश ॥'
'समाधान है मनका मनसे,' यदि मनसे नहीं हो पाए ।
कभी न फिर आ पाए शांति, साधन निष्फल हो जाए ॥
जगके उलटे धंधे तज कर, ऐसे पथसे चले चलो ।
अनुताप न पावे फटकने, शुद्धभावमें मिले चलो ॥
अब से ऐसे भाव बढ़ाओ, अशुभभाव रुकनेके हेतु ।
इतना अन्तर डाल सका तो, सचमुच शाँति बनेगी केतु ॥
यह साधन यदि लगे न अच्छा, समझो तब मंतव्य न सांचा ।
असद्भावने तुझको पटका, गया नरक, खा खूब तमाचा ॥
पीछे ठोकर मिली अनन्ती, भावी थपेडोंसे तो बचना ।
स्मरण रहे तो यह काफ़ी है, ज्यों माया-मोहमें न हो पचना ॥
सद्धेलोदय शुद्ध बना ले, वरन् हाथसे जाए बाज़ी ।
मनमुख स्याना अगर रहे तो, समझें तेरी ज़मानेसाज़ी ॥

(जम्मू १९४६)

वीतरागता

भक्तिपूर्वक, चाहूं तुझको, वीतरागता ? मैं हूं तेरा,
तपा हुआ मैं त्रय तापोंसे, अब आ चरण गहूं हूं तेरा ।
परपरिणतिमें भूला फिरता, "सुख कहाँ" यह ज्ञान नहीं है ।
पडगई उलझन सुलझ सका नहीं, सच्चे सुखका ध्यान नहीं है ॥

अपने भौतिक दुःख मिटाने,—में, ही अतिशय सुख हित जाना,
एक मिटसकी नहीं कठिनाई, तब तक आए अगणित-नाना ॥
फिरता रहा बैल तेली का, भटका, भटकन हुई न पूरी ।
अगणित भूलें क्या बतलाऊँ, अतः साधना सभी अधूरी ॥
खोजा किसको, मुझे मिला क्या, इन बातोंकी नहीं खबर ।
गूढ वस्तु, वह कैसे पाऊँ, सुना न कुछ जिनवरका स्वर ॥
क्षपकश्रेणिका यत्न करूं तो, भौतिक सुखकी छूटे चाह ।
शाँति-समृद्धि-सिमटी आवे, सभी जनोंसे टूटे डाह ॥
सबमें समता करूं सदा ही, यही प्रसंग रुचा है ठीक ।
आगे चारों शरण प्राप्त करलूं तो कभी न मागूं भीख ॥
यही प्रतिज्ञा सुव्रतियोंकी आजीवन जो पालें यह व्रत ।
'मैं' की अड़चन भी सब टूटी, अन्त किया यह उत्तम सुकृत ॥
ओ मायामें रमनेवाले अन्तर-मंत्र यही मनसे कह ।
"पव्वज्जामि चत्तारि सरणं" मोक्ष कूल पर जाकर रह ॥

जम्मू १९४६

चेतावनी

दोहा—परमहंसको चेतना, सदा कहे समझाय ।
अरे चतुर समझे न क्यों, धर्म विना दिन जाय ॥

फिर पछतायगा रे, लाखोंका जन्म गवाँ कर,
हीरा सा जन्म गवाँ कर ।

मानव-तन दुर्लभ्य है, मिला पुण्यके योग ।
पाप कर्मसे नित्य बचा रह, सुगुरु वचन संयोग ॥ १

जिन सबको तुम अपना कहते, अपने वे नहीं होते ।
वे तो मात्र सब सुखके साथी, मिलें न दुःखमें टोहते ॥ २
मोह फाँसीसे परवश होकर, तन-मन सुध विसराई ।
क्रोध-मान-छल-लोभमें धँसकर, क्यों मति है बौराई ॥ ३
सब कुछ तेरे घट भीतर है, मन यदि निर्मल होवे ।
दीपक-शिखा सँवार जराझट, ज्ञान-दृष्टि क्यों खोवे ॥ ४
अँध-अँधेरा फिर नहीं फैले, तेल-वत्ति यदि एक ।
उत्तम समकी ओटमें धर दे, पवन झकोर न देत ॥ ५
कोठेमें इक कोठड़ी है, जिसमें रतन अमोल ।
रतनोंकी पेटी को जौहरी, परख परख कर तोल ॥ ६
जो तू सच्चा जौहरी है तो, असल-नकल पहचान ।
अवगुण-व्यसन-झूठ नग फेंको, करो सत्यका मान ॥ ७
फिर तो लाभ अनन्त मिलेगा, ऐसा कर व्यापार ।
सुमन किसी सद्गुरु ज्ञानीसे, सच्चा अर्थ विचार ॥ ८

× × × ×

हिंसा करके झूँठ बोल कर, पापों पिंड भरावे ।
चोरी कर्म करे शाह होकर, जन्म अकारथ जावे ॥ ९
पाप अठारहसे बचकर रह, प्रामाणिकता धार ।
सतका सौदा, तोल-मोल इक, करो सत्यसे प्यार ॥ १०
माता सम परनारी जानो, बनो शुद्ध ब्रह्मचारी ।
मन और इन्द्रियके वश होकर, मत कर अपनी ख्वारी ॥ ११
भूत-प्रेत-दानव-यक्षादिक, और जो भी असुरारी ॥
भाग भागकर पैरों पड़ते, जो रहते ब्रह्मचारी ॥ १२

काया-माया बादल छाया, इनका क्या इतबार ।
धन-जनके मोह में पड़ प्राणी, मत कर जन्म खुवार ॥ १३
भोग शोग सब यहीं रहेंगे, सँगमें कुछ नहीं जावे ।
पाप-पुण्य तव सँग चलेंगे, पुद्गल काम न आवे ॥ १४
जिनवर भाषित पाँच अणुव्रत, जो शुध मनसे धारे ।
दुःख-क्लेश-दुर्गति नहीं पावे, सद्गति 'सुमन' सिधारे ॥ १५
झूठी पट्टी-झूठी हट्टी, बही सही न बनावे ।
जिनके कारण पाप कमावे, अन्त दगा दे जावे ॥ १६

× × ×

वैवाहिक प्रसंगोंमें धन, भुसके मोल बहावे ।
पर गरीबसे व्याज न ले कम, दिन दूना तड़पावे ॥ १७
मौज मज़ोंका दास विलासी अधिक करे व्यय दाम ।
कुछ थोड़ा, देकर, सब छीने, दीनोंका धन धाम ॥ १८
मौलिक भूषण बनवानेमें खर्चे खूब निदान ।
पर सजातिसे व्याज न ले कम, ऐसा नमक हराम ॥ १९
प्रथम लूट कर सभी तरह से, बाँटे फेर अनाज ।
ऐसे दाँभिक लोगोंमें यह, नकली दया है आज ॥ २०
पहले सब कुछ नाश कर दिया, तनिक न आई लाज ।
दांभिक देते दया बता कर, मण या दो मण नाज ॥ २१
चाहे डाकू-चोर लूट लें, वह विपदा सहजाते ।
विगड़ी दशामें भाई बंधुके, घर नीलाम कराते ॥ २२
आग लगे या राजदंड हों, लगें करारी चोट ।
पर भाईसे व्याज न लें कम, कितना शाहका खोट ॥ २३

क्या यह धर्म अहिंसामय है? क्या यही ईश्वर भक्ति?
उचित नियम का पालन न करें कैसे प्रगटे शक्ति ॥ २४

सच्ची अहिंसा

भरीं अनन्त शक्तियाँ इसमें, सब सुख निधि अहिंसा।
करुणा ढाल न कायरता की, वीराऽऽयुध अहिंसा २५
माँ-बहनोंकी लाज बचे नहीं; क्या है वह भी अहिंसा।
राष्ट्र-दासता मिट न सके; वह अन्य वस्तु, न अहिंसा ॥ २६
पड़ जाए यदि फूट देशमें, वह हिंसा का रूप।
सम्प-शक्ति संगठन बढ़े तो वहीं अहिंसा स्वरूप ॥ २७
प्रथम मुक्ति मत चाहो लोगो! तज अवतार पुराने।
पुनः नए अवतार सजाकर, गाओ वीर रस गाने ॥ २८
ओ गांधीओ श्रेष्ठ? महानर! ओ गुर्जर अवतार!
सदा सहायक तेरी-अहिंसा, व्यापक, देशसुधार ॥ २९
तेरे नाना रूप और गुण, धर्म खोलमें आएँ।
वहाँ सजादे नई चेतना, एक बोलमें पाएँ ॥ ३०

जम्मू १९४६

मंदिरमें तू जाए क्यों दौडाः

ओरे पुजारी! पत्थरमें तें देखा है क्या रूप!
जड़ चेतन हो जाए क्यों कर, धरे क्या इसको धूप।
धूप करने का यह जग छोड़ा, १
ओरे पुजारी! पत्थर में कहाँ बसें भला भगवान।
इसके आगे क्यों रखता है! नित्य नए पकवान ॥
भूखा करोड़ों नर दल छोड़ा २

ओरे पुजारी ! पत्थर को, क्या पहनाता परिधान,
सर्दी-गर्मी लगे न इसको, कुछ तो समझ नादान ॥
नग्न करोडों नर गण छोड़ा, ३
ओरे पुजारी ! शोभित हैं क्या ? पत्थर को आवास ।
नभसे बात करें ये मंदिर, क्या उलटा विश्वास ॥
विन घर दर का मानव छोड़ा, ४
ओरे पुजारी ! जड़ पूजासे, हुआ विकल भूतल ।
बाहर आकर देख ज़रा तू, सुलगा है दावानल ॥
इस दुनियाको सुलगता छोड़ा, ५
मंदिर में तू जाए क्यों दौड़ा ।
[कराची १९४५]

जगद्गुरु से प्रार्थना

हे जिनराज ! गुरुवर ! कर भवदधिसे नैया पार ।
नाव पुरानी, नदिया गहरी,
डूबरही मँझधार । १
क्रोध-मान-छल-लोभ मगर ये, करते मम संहार ॥ २
राग-द्वेष-झष दोनों भयकर, संयमके भक्षण हार ॥ ३
चोर प्रमाद ज्ञान गुण हर्ता, लूटा पुरुषारथ सार ॥ ४
इतने डाकू पीछे लगे हैं,
किस विधि हो छुटकार ॥ ५
'सुमन' जोड कर विनती करे यों, कीजिए ! बेड़ा पार ॥ ६
(भरतपुर १९२२)

पंजाबमें अधिकांश लोगोंमें यह चाल है कि संक्रांति के दिन

मुनिराजोंसे भी वर्तमान महीनेका नाम सुना करते हैं। बस इसी प्रसंगमें श्रीगुरुमहाराजके मुखसे महीनेका नाम सुननेका अवसर आया तब गुरुदेवने चार मासोंमें समयोचित कविताएँ बनाकर व्याख्यानके पश्चात् इस प्रकार सुनाई थी। जिन्हें श्रोता जन भी दुहराते हुए गायन करके अत्यन्त आल्हादित होते थे।

श्रावण-मास

सावण आया सावण आया, रंजोअलमका दुश्मन आया।
खुश करने सबका मन आया, वनको करने गुलशन आया॥
सावन आया, सावन आया,
छाई हैं घनघोर घटाएँ, मस्तीसे मामूर फ़िजाएँ।
मीठी मीठी सर्द हवाएँ, चलती हैं क्या साएँ साएँ॥
सावण आया, सावण आया,
नन्हीं नन्हीं मेह की फुवारें, अमृत रसकी हैं यह धारें।
वर्षाकी पुरकैफ़ बहारें, दिल सीनोंमें क्यों न पुकारें॥
सावण आया, सावण आया,
सई सवेरे तड़के तड़के बिजली चमके बादल गर्जे।
रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे, टप टप टप टप लौती टपके॥
सावण आया, सावण आया,
बैठना है दालानका मुश्किल, सँगवाना सामानका मुश्किल।
अब है बचना जानका मुश्किल, रुकना है तूफ़ानका मुश्किल॥
सावण आया, सावण आया,
परनाले हैं या फव्वारे, खेल रहे हैं बच्चे सारें।
उनकी बातें आरे जा रे, मीठे मीठे बोलें प्यारे॥

सावण आया, सावण आया,

इतने ज़ोर से पानी बरसा, आँगन में है झीलका नक़शा ।
पानी में हर बच्चा दौड़ा, कूदा फाँदा यह जा वह जा ॥

सावण आया, सावण आया,

छत पर निकली है चौलाई, जिसकी सब्ज़ी मनको भाई ।
दीवारों पर आई काई, काई पर है कानसलाई ॥

सावण आया, सावण आया,

आमके ऊपर कोयल आई, 'कुहू कुहू' की कूक सुनाई ।
सन्नाटे में हूक मचाई, दिल पर और क़यामत ढाई ॥

सावण आया, सावण आया,

मोर भी बनमें बोल रहे हैं, कानोंमें रस घोल रहे हैं ।
अपने बाज़ू खोल रहे हैं, उड़नेको पर तोल रहे हैं ॥

सावण आया, सावण आया,

सावणकी मदवाली रातें, भीगी भीगी काली रातें ।
मस्त बनानेवाली रातें, बिना भजन ये खाली रातें ॥

सावण आया, सावण आया,

फूला है प्यारा जूही बेला, जामन आम-शरीफ़ा केला ।
बागमें है परियोंका मेला, मेले में है कैसा रेला ॥

सावण आया, सावण आया,

बेला कहीं रायबेल कहीं है, गुंचा दिलकश फूल हसीं है ।
सब्ज़ा जेबे अर्श ज़मी है, तोबा की अब ख़ैर नहीं है ॥

सावण आया, सावण आया,

इक लड़कीने गीत सुनाया, उड़ भंभीरी सावण आया।
गीत सभीके मनको भाया, क्या अच्छा मौसिम है छाया ॥
सावण आया, सावण आया,
इक दुखियारी भूखकी मारी, भारतकी है राजदुलारी !
अश्क लहूके आँखसे जारी, रो रो कहती है बेचारी ॥
सावण आया, सावण आया,
दुनिया है अंधेर नज़र में, विना अन्न क्या शोभा घर में।
ग़मसे दिल बेकल है बर में, हूक सी इक उठती है घर में ॥
सखियाँ सारी झूल रही हैं, फ़र्ते खुशीसे फूल रही हैं।
दुनिया का गम भूल रही हैं, मेरी मुसीबत तूल रही हैं ॥
सावण आया, सावण आया।

भाद्रपद-मास

दोहा—भादों आया भादों आया, काली घटाएँ लेकर छाया,
सब दल बादल सँगले धाया, प्रजा तन्त्र की पत्री लाया।
बिजली चमकी, मनको सुहाई, महावृष्टिकी बारी आई।
जड़ दुकालकी रह नहीं पाई, कृषकोंकी आशा सरसाई ॥
भादों आया भादों आया।
जन्म-दिवस श्रीकृष्णका आया, जन्माष्टमी पर्व बन पाया।
इसने था वीरत्व सुझाया, 'वीर बनो' यह मंत्र सुनाया ॥
भादों आया, भादों आया।
पर्व-पर्यूषण आगे आया, अन्तकृद्दशा-श्रवण मन भाया।
शुभ संदेश क्षमाका लाया, धर्मध्यानमें 'सुमन' लगाया ॥
भादों आया, भादों आया।

पर्वराज द्रुत गति से आए, श्रद्धालू जन मन सरसाए।
परमेष्ठी पद जपे-जपाए, कुसम्पके सब खोज मिटाए ॥
भादों आया, भादों आया।
जिसने अपना मन समझाया, शिव-रमणी फल तत्क्षण पाया।
भादोंका शुभ नाम सुनाया, शान्तिनिकेतन 'रवि' घन छाया ॥
भादों आया, भादों आया।
क्या ही उत्तम गीत सुनाया, 'सुमन' सभीने स्वरमें गाया।
ऊपर श्याम-वारि दल आया, रिमझिम रिमझिम मेंह बरसाया ॥
भादों आया भादों आया।
सुंदर सुंदर भादों-महिमा, श्रीजिनवरके गुणकी महिमा ॥
मांगी क्षमा सभी मिल हरषे, वीर, क्षमा भूषण ले सरसे ॥
क्षमा भावकी साई लाया,
भादों आया, भादों आया।

(जम्मू १९४६)

आश्विन-मास

आश्विन आया, आश्विन आया, रंग रंगीला आश्विन आया।
श्राद्धोंके दिन पंद्रह लाया, विजय दशहरा आगे आया ॥
सावन बीता भादों बीता, कलका दिन भी यों ही बीता
काल अनन्त-पछड़कर बीता, आज माँगलिक आश्विन आया ॥
विन श्रद्धा नर अति पछताया
इसमें श्राद्ध प्रथम चल आते, इष्ट जनोंको न्यौत जिमाते।
पूरी हलवा हँस हँस खाते, खीर-खाँड सबके मन भाया ॥
आश्विन आया, आश्विन आया।

कव्वों-कुत्तों तकने पाया, ब्रह्म भोज की ऐसी माया ।
दीन-दरिद्र देख ललचाया, उसने गमका खाना खाया ॥
आश्विन आया, आश्विन आया ।

उत्तम चातुर्मास हुआ है, श्रवण-मननका भास हुआ है ।
निवृतिमें विश्वास हुआ है, भव्य जनोंने आनँद पाया ।
ज्ञानी ज्ञानगंगमें न्हाया ।

शान्ति रख सन्तोष सटेगा, सत्संगतिसे दोष मिटेगा ।
भक्ति रससे हृदय खिलेगा, सत्य अहिंसाकी यदि छाया ॥
छलका कोट कँगुरा ढाया ।

चालीस कोटी नर मिल जाएँ, जाति-मतका भेद मिटाएँ ।
आज़ादीका बिगुल बजाएँ, भारत माँ आज़ाद कराएँ ॥
जो तू है क्षत्रियका जाया ।

ब्लाक मारकीटें मत करिए, आपसमें झगड़े मत करिए ।
भय-कायरतासे मत मरिए, मरने से न कभी भी डरिए ॥
नर तनको यदि तूने पाया ।

मोह भ्रमणामें क्यों भरमाया, झूठी काया झूठी माया ।
कौन किसीका चाचा ताया, क्या ले जाए क्या सँग लाया ।
तत्त्वज्ञान क्यों नहीं अपनाया ।

मंगलने मंगली सुनपाई, रोहिणीने भी चमक दिखाई,
चन्द्रकला तब उभरी आई, प्रेमसे सबका मन हुलसाया ॥
रामदृष्टि पद नाद बजाया ।

बीत रही प्यारी क्षण क्षण हैं, बची खुची भी निर्मल क्षण

दान करो सम्पत् इस क्षण हैं, ज्यों कलियुगकी पड़े न छाया ॥
आश्विन आया, आश्विन आया ।
आश्विनमें गुण भरे हुए हैं, नयकी तुलामें तुले हुए हैं ।
अनुभव द्वारा खरे हुए हैं, यह सद्गुरुने भेद बताया ॥
आश्विन आया, आश्विन आया ।

जम्मू १९४६

कार्तिक-मास

कार्तिक आया कार्तिक आया, वीर वार तिथि अष्टमी लाया ।
बडा बहादुर होकर आया, चमक दमक दिखलता आया ॥
ठंडा मीठा कार्तिक आया, सब लोगोंके मनको लुभाया
जग उजियाला करने आया, निपट अँधेरा हरने आया ॥
कार्तिक आया, कार्तिक आया ।
कार्तिक वाली काली रातें, दीपक से चमकीली रातें ।
मस्त बनाने वाली रातें, बिना भजन सब ख़ाली रातें ॥
कार्तिक आया, कार्तिक आया ।
इसमें होई भी आती है, माताका मन भर जाती है ।
प्रेमकी बगिया सरसाती है प्रेम घटाएँ बरसाती है ॥
कार्तिक आया, कार्तिक आया ।
आई अमावस युक्त दिवाली, महावीर-गुण सँग उजियाली ।
भरलाई शिक्षाकी प्याली, मीठी स्मृतियोंवाली दिवाली
कार्तिक आया, कार्तिक आया ।
प्रतिवर्ष चल आवे दिवाली, वीरकी याद दिलावे दिवाली ।
घी के दीपोंवाली दिवाली, जीवन ज्योति जगाने वाली ॥

भारत माँ की एसी माया, कार्तिक आया, कार्तिक आया।
इसके पीछे भैया दोज, भाई बहिनका है यह ओज।
खूब निकाला इसका खोज, नंदीवर्धनकी थी मोज ॥
भग्नीके घर भोजन खाया, कार्तिक आया, कार्तिक आया।
तदनन्तर-पूर्णिमां आवे, मुनिराजोंको विचरना भावे।
अप्रतिबद्ध विहारी कहावे, ज्ञातपुत्रका ज्ञान फैलावे ॥
शान्ति-दाँति संदेश सुनाया, कार्तिक आया, कार्तिक आया।
कार्तिक बातोंमें चल जावे, वर्ष बिताकर ही फिर आवे।
पूँजिपति अब है सुख पावे धर्म विना आगे पछतावे ॥
नर तन गया तो फिर कहाँ पाया, कार्तिक आया कार्तिक आया।
क्योंरे! वृथा नर समय गवाँवे, अच्छा कर अच्छा फल पावे।
तत्व रसायण जब सरसावे, सम-संवेद वही अपनावे ॥
अनुकँपाका रहस्य सुझाया, कार्तिक आया, कार्तिक आया।
सखिएँ दीपक बाल रही हैं, गउएँ घरमें पाल रही हैं।
अपना-पराया भूल रही हैं, सुख सागरमें झूल रही हैं ॥
कैसा समय सुहावन आया, कार्तिक आया कार्तिक आया।
आज़ादीका बिगुल बजाओ, कायरता को शीघ्र भगाओ।
स्वतन्त्रताकी आश लगाओ, आजादी का गाना गाओ ॥
भारत माँ का तू है जाया, कार्तिक आया, कार्तिक आया ॥
आवरणोंको दूर हटाओ, ईर्षा-छल औ वैर मिटाओ।
चालिस कोटिका दुःख बटाओ, आतंकोंका वेग घटाओ ॥
पड़े न ज्यों कलियुगकी छाया, कार्तिक आया, कार्तिक आया ॥

दान-शील-तप-भावना भाओ, अपने मनकी मुरादें पाओ।
कर्म जेवड़ी तुरत जलाओ, शिव रमणीसे मेल मिलाओ॥
सुमन सुमन गुण को प्रगटाया, कार्तिक आया कार्तिक आया॥

जम्मू १९४६

दीपमाला

कार्तिकी अमावस्याके दिन श्रीज्ञातपुत्र-महावीर भगवानके निर्वाण दिनके प्रसंग पर जैन और जैनेतरोंने बड़े समारोहसे श्रीज्ञात पुत्र महावीर भगवानका निर्वाण दिवस मनाया। श्रीगुरुराजने प्रभु के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके निर्मल निर्वाणसे जो शिक्षाएँ मिलती हैं उनका सारगर्भित वर्णन इस प्रकार किया।

प्यारे वीरपुत्रो! यह जो दीपावली पर्व्व है इसका ज्ञातपुत्र-महावीर प्रभुके निर्व्वाणके साथ क्या सम्बन्ध है! इसका बहुमान करते हुए तथा मानते हुए श्रीज्ञातनन्दन सिद्धार्थकुलकिरीट वीरभगवान्के उत्तम जीवनसे हम सबको क्या बोध ग्रहण करना चाहिए! इसे विचारनेकी आज हमारी प्रबल इच्छा है।

दीपमालाका प्रसंग प्रतिवर्ष आता है और चला जाता है तथापि यह शुभ प्रसंग हमें क्या सूचित करता है, इसका विचार करनेवाले नरपुंगव आज कहां हैं?

आज तो अच्छे अच्छे भोजन करना, फैशनवाले-भड़कीले और सुंदर शोभादायक वस्त्रोंको पहनाना, अथवा अनेक प्रकारकी भोग विलासकी सामग्रियोंमें लुब्ध रहना, अनेक तरहके खेल रचना, कहीं एकान्तमें जाकर मित्रोंकी गोष्ठीमें जुआ खेलना, बस इन सब में दीवालीका पर्व-माहात्म्य आकर समा जाता है।

यदि इतनेमें ही कोई दीवाली मान ले तो उस मनुष्यकी बड़ी भूल है। ऐसी भारी भूल न होने पावे इसलिए दीपमाला पर्वकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इसके संबन्धमें जैनोंकी क्या मान्यता है. आज हम इसी विषयमें विचार करेंगे।

हमारे चरम तीर्थंकर श्रीवीरप्रभुका जन्म इस्वी सन् पूर्व ६०० में हुआ था। जब वे प्रभु त्रिशला महारानीकी उदरकन्दरामें आए थे, तब उस समयसे ही उन्होंने यह निश्चय किया था कि "जहां तक मेरे माता पिता जीवित रहेंगे वहां तक मैं आर्हती दीक्षा न लूंगा।"

यद्यपि दीक्षा लेना सबके हितकी साधना है, शास्त्रकारोंने भी यही माना है परन्तु वही दीक्षा माता पिताके मनको उद्वेग पहुँचा सकती है तब उसका स्वीकार करना उनके सामने किस प्रकार न्याय-संगत समझा जाय ?

इन उत्तम विचारोंको लेकर अन्य पुरुषोंको माता पिताकी भक्ती करनेका उत्तम नमूना दिखाकर वे स्वयं घरमें सच्चे घरबारी की दशामें २८ वर्ष तक रहे।

तथा अपने भाईके आग्रहसे भी दो वर्ष घरमें ही अधिकतर गृहस्थधर्मका पालन करते रहे।

नाना भाँतिके काम-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-इन्द्रिय विषय-न मानने वाला चंचल मन-आदि अनेक मानसिक शत्रुओंका संहार किया, तथा सांसारिक पदार्थोंकी असारता एवं असत्यताका खूब ही अनुभव किया।

ध्यानमग्न रहकर आपकी आत्माने अपने में परमात्माका अनुभव

किया, इधर उधरकी भटकनाओंसे हटाकर संसारको भी अपनेमें सब कुछ पानेका पूर्ण संकेत करा दिया ।

सब भावोंको साक्षात् बतानेवाले केवलज्ञानको प्राप्त करनेके अनन्तर अपने उस अनन्त ज्ञानमेंसे श्रुतज्ञानकी गंगाका लाभ औरोंको देनेके लिए गाँव-गाँवमें स्वयं विचरते रहे और यत्र तत्र दया और सत्य का उपदेश देकर अनेक पुरुषोंको हिंसक मार्ग और पापचरित्रसे बचाया, तथा उनको जैन धर्ममें दीक्षित किया । इस प्रकार तीस वर्ष तक परोपकारके निमित्त ही आपने अपने जीवन का व्यय किया । अधिक क्या कहें सब प्रकारसे उनका जीवन निस्स्वार्थ जीवन था ।

७२ वर्ष बाद अर्थात् ५२८ वर्ष पहले अपापा नगरमें आप पधारे, निर्वाणका समय आगया है यह केवलज्ञान द्वारा जान लिया, अतः वीर प्रभुने अन्तिम समयका बोध भी जनताको दिया और शुक्ल ध्यानकी श्रेणी को पारकर भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर प्रभुने निर्वाण प्राप्त किया ।

ये समाचार आसपासके राजाओंको विदित हो जानेके कारण प्रभुकी वंदना करनेके लिए उस समय १८ देशोंके राजा भी आ पहुँचे थे ।

ये सब घटनाएँ आपके लिए कार्तिक वदी आमावस्याके दिन घट गई थीं । जिसे आज २४७४ वर्ष हो जाते हैं ।

उस समय भिन्न-भिन्न देशके राजाओंने यह निम्न विचार किया कि ओह ! भगवान् सर्वज्ञताकी मूर्ति थे, इनके निर्वाणसे आज भारत जगत्में भावज्ञान (दीपक) का अभाव हो गया । अतः भावदीप-

कका हमें किसी प्रकार पुनः स्मरण हो इस लिए उन्होंने दीपक जलानेकी प्रथा प्रचलित करदी।

तब से दीपमालिकाका पर्व संसारमें प्रचलित होनेकी मान्यता जैनोंमें है।

प्रिय बांधवो! इस प्रकार हमने महावीर पितामहके जीवनको संक्षेपमें कहा है। परन्तु उनके जीवनचरित्रसे हमें क्या सीखना चाहिए! जहां तक हमारी समझमें यह न आजाय वहां तक उस जीवनका अलौकिक प्रभाव हम पर न पड़ सकेगा।

अतः उनके चरित्रमें से लेने योग्य शिक्षाएँ और आजकलके जैनों द्वारा 'करणीय कर्तव्य' इन प्रश्नों पर हम यथार्थ विचार करेंगे।

समभाव

महावीर भगवान्‌के जीवनका सूक्ष्मरीतिसे अवलोकन करनेपर और उस पर भी यदि बारीकीसे विचार करें तो उनके उत्तम गुण हमारी आँखों के आगे आ खड़े होते हैं। जिनमें मुख्य गुण उनका समभाव-समान दृष्टि है।

उनकी समान दृष्टिके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, परन्तु यहाँ हम उनका एक ही दृष्टान्त देंगे।

डंक मारनेकी बुद्धिसे एक पैरको छूनेवाले चंड कौशिक साँपकी और नमस्कार करनेकी बुद्धिसे मस्तकको दूसरे पैर से स्पर्श करनेवाले इन्द्र की ओर भी जिनकी समान बुद्धि है, एसे महावीरकी समभाव दृष्टि निस्संदेह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। केवल उनका जीवन अनुकरणीय ही नहीं बल्कि उन्होंने इस प्रकारका उपदेश भी दिया है। वह बोध किसी आचार्यने 'संबोध सत्तरी' में प्रगट भी किया है। यथा—

शेयंवरो वा आसंवरो, वा, बुद्धो अन्नो अहवा को वा ।
समभाव भाविअप्पा, लहइ मुक्खो न संदेहो ॥ १ ॥

भावार्थ–चाहे कोई मनुष्य दिगंबर हो, श्वेताम्बर हो, बौद्ध हो अथवा किसी अन्य धर्मका अनुगामी क्यों न हो, परन्तु यदि उसकी आत्मा में समभाव है तब तो वह अवश्य मुक्तिको प्राप्त करेगा, हमें यह विश्वास है ।

इसी ढंगसे उपदेश तरंगिणीमें भी एक आचार्य लिखता है कि श्वेताम्बरमें, दिगम्बरमें, पक्षवाद और तर्कवादमें मोक्ष नहीं है बल्कि कषायोंसे मुक्त होना ही सच्ची मुक्ति है । 'और वह कषायोंसे मुक्त होनेका कार्य प्रत्येक आत्मा समान रूपसे कर सकता है ।' इस प्रकार जैनाचार्यों ने भगवान् वर्धमान प्रभुके पीछे चलकर समान दृष्टि रखकर अनुगत होने का बोध दिया है जिसमें जाति-व्यक्ति आदिका पक्ष नहीं रह पाता है ।

करुणा

दूसरा गुण महावीर प्रभुका करुणा है, जो सबसे महान् है । जिसकी इस जगत्में तुलना तक भी नहीं की जा सकती । यह उनका करुणा नामक गुण सर्वोत्कृष्ट है ।

जगत्में जितने भी महापुरुष हो गए हैं वे सब करुणाके गुणसे ही नामकी प्रसिद्धि पा सके हैं । सब गुणोंका आधारभूत करुणाका गुण भगवान्में कितने अंशमें प्रगट था, इसका ठीक विचार तो इन शब्दोंमें किस प्रकार किया जा सकता है ? तथापि थोड़ेसेमें एक छोटासा दृष्टान्त देकर बतानेका यथाशक्य प्रयत्न किया जायगा ।

एक समय पेढाल नामक ग्रामके पास बनमें श्रीमहावीर प्रभु

कायोत्सर्ग करके ध्यानमग्न थे। आपके ध्यानकी स्थिरता और मनकी दृढताका अनुभव अवधिज्ञान द्वारा देखकर इन्द्रने एक दिन अपनी सभामें आपकी अति प्रशंसा की। तथा वहीं से इन्द्रने आपको नमस्कार भी किया और एकदम बोल उठा की—अहा! महावीर भगवान्का अनुपम धैर्य है, आपके मनकी स्थिरता कितनी असाधारण है? विचार श्रेणी कितनी ऊंची है? आपके रोम-रोमसे करुणाका कितना बड़ा स्रोत बह रहा है? धन्य है विभो! विश्वमें कोई ऐसा देव या मनुष्य नहीं है जो अपना सारा बल लगाकर भी प्रभुकी समाधिका भंग कर सके।

ये प्रशंसाके शब्द 'संगम' नामक क्षुद्रदेवको अतिशयोक्तिपूर्ण भासमान होनेके कारण प्रभुको कसौटी बनानेके लिए वहां से चल निकला। जगत्के प्राणीमात्र जिससे हैरान हो सकते हैं, जिससे सन्ताप-परिताप और उद्वेग हो सकता हो ऐसे प्रत्येक साधनोंमे उसने प्रभुको सन्ताप देनेमें कुछ भी कसर न रक्खी।

कट्टरसे कट्टर शत्रु भी वैसा काम न कर सके ऐसे निर्दय और त्रास देनेवाले उपद्रव ज्ञातनन्दन पर किए। परन्तु जब उसे इतने पर भी सफलता न मिली और प्रभुके मनकी निश्चल वृत्तिका जरासा भी भंग न देखा तब उसने प्रभुके हृदयमें किसी प्रकार मोह करनेके लिए शृंगार आदि विकारात्मक साधनोंका प्रयोग किया, परन्तु जैसे जलके ऊपर अग्निके तापका प्रभाव व्यर्थ हो जाता है उसी प्रकार उस अधम देवकी सब दुश्चेष्टाएँ निरर्थक सिद्ध हुई।

इस प्रकार एक दो दिन नहीं बल्कि छ मास पर्यन्त श्रीवीरप्रभुको उसने अनेक प्रकारके उपसर्ग देकर सताया, परन्तु प्रभु तो प्रभु ही

रहे। वे अपने प्रभाव से तनिक भी न डिगे। अन्तमें वह अधमाधम देव प्रभुके सामनेसे स्वयं ही लज्जित होकर चला गया।

बंधुओ! प्रभुके मनमें कितने उत्तम विचार थे? उन विचारोंका कभी आपको ध्यान भी आता है? प्रभुकी उस समयकी विचार श्रेणीका रहस्य समझनेके लिए कभी आपने प्रयत्न भी किया है? यदि इससे आप अनजान हों तो गंभीर विचार प्रदेशमें चलिए ताकि आपके सन्मुख तत्कालिक प्रभुका हृदयसंबंधी पूरा चित्र मनकी आँखके आगे खींचा जा सके।

क्रिश्चियन धर्म-संस्थापक जिसिस्काइष्टका महत्त्व और उसका उपदेश न समझनेवाले उस समयके यहूदी जब उस महापुरुषको बधस्तंभके पास ले गए तब उससमय उस दयालु महात्माने उनपर ज़रासा भी क्रोध न करके, अथवा यहूदी लोगों पर तिरस्कारकी दृष्टिसे उन्हें बिल्कुल भी न देखा, बल्कि उन पर दया लाकर ये उद्गार निकाले कि "On father forgive them they do not know what they do" हे दयालु पिता! इन यहूदी लोगोंको तू क्षमा कर। "वे लिए क्या करते हैं, इसकी उस बिचारेको खबर भी नहीं?" इन शब्दोंके कहे जाने के पहले ५०० वर्ष पूर्व करुणामूर्ति श्रीवीरपरमात्माने संगमदेवके संबंधमें जो उद्गार निकले थे वे प्रत्येक मनुष्यको अपने हृदयमें लिख कर रखना चाहिए। उन्होंने उस समय विचारा था कि

"अहो निष्कारण ही अन्य जीवोंको दुःख देनेवाले इस बिचारे पामर जीवकी क्या गति होगी!"

खेदकी बात है कि-मेरे जैसे जीव जिनको कि औरोंके आत्माका कल्याण करना है और सब जीवोंको दुःखोंसे मुक्त करना है, वे भी

इस जीवको क्रूर आचरणोंसे हटाकर इसका हित नहीं कर सकते। मेरे मनमें रह रह कर यही भाव आता है कि मेरे हाथसे इसका कुछतो भला होना चाहिए, परन्तु भला होनेके बदले अपने घातकी विचार और मुझे दुःख देनेवाले कार्यसे यह उल्टा स्वयं कर्मके द्वारा बंध गया है जिसका मुझे परम खेद होता है कि इस विचारे पामर जीवका यथा समय मैं कुछ भी हित न कर सका।" ऐसे विचार उनके हृदयमें स्फुरणा दे रहे थे कि उनकी आँखों से अश्रुप्रवाह बह निकला। इसी कारण योगशास्त्रमें श्रीवीरप्रभु की स्तुति करते हुए यह लिखा गया है कि

कृतापराधेऽपि जने, कृपामन्थरतारयोः।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिननेत्रयोः॥ १॥

अपराध करने वाले प्राणी-समूह पर दयासे नम्र और आंसुओंसे भीगे हुए महावीर भगवान्‌के नेत्र सबके लिए कल्याणकारक हों।

सत्यशोधक वृत्ति

श्रीज्ञातपुत्र-महावीर भगवान्‌के बोधवचनोंसे यह स्पष्ट सिद्ध है कि लोगोंमें सत्यशोधकवृत्ति जिससे प्रगट होती है ऐसे ढंगकी विचार-श्रेणीका ही उन्होंने बोध दिया है। लोग अमुक सत्यको मान लें, इसकी अपेक्षा उनमें सत्यशोधकवृत्ती जागृत हो यह उनके लिए विशेष हितकर है। इसी दृष्टिकोणसे ही उन्होंने स्याद्वाद सिद्धान्त का स्थापन किया है।

स्याद्वादका दूसरा नाम अनेकान्तवाद है, यदि संक्षेपमें कहा जाय तो वस्तु कैसी सिद्ध होती है, इसीका विचारना और फिर उस वस्तुके स्वरूपको मानना, उस वस्तुके ज्ञानको पानेकी और सत्यके

समीपमें आनेकी उत्तमसे उत्तम विचारक रीतिका यही साधन है।

आज कल जिस प्रकार थियोसोफीकल अलग अलग धर्मोंको भिन्न-भिन्न दृष्टिबिंदुसे अभ्यास करके सत्यको स्वीकार करते हैं, वहीं प्रयत्न [किसी विलक्षण और भिन्न स्वरूपमें] श्रीमहावीरके उपदेशोंमें प्रगट होकर निकलता है।

यही कारण है कि योगी आनंदघन जिनेश्वरके स्तवनमें बताते हैं कि "षट्दर्शन जिन अंग भणीजे"

इस प्रकारकी मध्यस्थ दृष्टिवाला किसी भी मत, पंथ वा सम्प्रदाय के साथ विवाद-कलह नहीं कर सकता, बल्कि जितने अंशमें जितना भी सत्य है उसे उतने ही अंशमें उसमें से स्वीकार कर लेता है।

इस स्याद्वाद सिद्धान्तकी उत्तमता दर्शानेका इस समय प्रसंग नहीं है तथापि इतना तो अवश्य जानना चाहिए कि जिस पुरुषने स्याद्वाद मतका यथार्थ स्वरूप जान लिया हो, वह मनुष्य किसी अपेक्षासे अमुक विषयमें सच्चा है। और वह विचारनेका प्रयत्न करता है, जिससे ऐसे पुरुषका हृदय विशाल और उदार होता है, तथा होना भी चाहिए, पर यदि न हो तो उसी का दोष है, स्याद्वाद का नहीं, यह मतिमान का मन्तव्य है।

सब अपेक्षाओंसे सत्यका अवलोकन करना चाहिए, ऐसे ऊंचे मत को माननेका दावा करनेवाले लोग यदि अमुक अपेक्षाको लेकर चिपट बैठें और बाक़ीकी अपेक्षाओंको असत्य ठहरानेके लिए निकल पड़ें तो उस जैसा व्यक्ति उस सुंदर मतको लज्जित करनेकी अपेक्षा और क्या कर सकता है? ऐसे पुरुषोंके हितकी कामनाके लिए ही वीर प्रभुने उपदेश दिया है कि

'सत्यशोधक बनो, सत्यके पीछे चलो, और अलग अलग दृष्टिबिंदुसे (अपेक्षासे) प्रत्येक वस्तुकी परीक्षा कर देखो।'

श्रीवीरभगवानमें इतने अधिक गुण हैं कि, यह जीभ और लेखनी उनको बतानेमें असमर्थ है। जैसे किसी कविने कहा है कि,

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानां वीर! पारं न याति ॥ १ ॥

भावार्थ—समुद्ररूपी दवातमें, मेरुपर्वत जितनी स्याही डालकर, कल्पवृक्षकी शाखाओंकी क़लमें बनाकर, क़ाग़जके स्थान पर पृथ्वी काममें ली जाय और शारदा सदैव लिखनेका काम किया करे तब भी वीर! तेरे गुणका अन्त-पार न आ सके। तब मेरे जैसे पामर और अज्ञान थोडेसेमें क्या कुछ बयान कर सकते हैं? तथापि संक्षेपमें कह सकता हूं कि उनमें सब गुण दैवी गुण थे।

वीरप्रभु मनुष्य थे उनमें सच्चा मानुष्यत्व था, परन्तु पूर्णता प्राप्त मनुष्य थे। वे जिन थे उन्होंने अपने शरीर और मनमें रहनेवाले तुच्छ और पाशवधर्म तथा विकार पर विजय प्राप्त की थी। जैन-धर्मकी दृष्टिसे ईश्वर थे। उनमें किसी प्रकारकी त्रुटि और न्यूनता न थी। वे सर्वांग सम्पूर्ण थे, परन्तु लोग इसे विशेष भक्तिकारक समझेंगे।

इन सब गुणोंका वर्णन तो किया, परन्तु उन सब गुणोंसे परि-चित होकर हमें क्या करना चाहिए, क्योंकि ज्ञानके अनुसार बर्ताव

न हो तो ज्ञानसे लाभ क्या? इनके चरित्रसे जैनोंको तथा सकल मानव बन्धुओंको क्या क्या सार लेना है इस पर थोडासा विचार करें।

वीरप्रभुने आत्मस्वरूपका अनुभव किया तथा परमात्मपद प्राप्त किया और कार्तिकी अमावस्याको इस पौद्गलिक देहका त्याग किया। उन्होंने जिस अमूल्य ज्ञानका उपदेश किया है और अपने परोपकार एवं निःस्वार्थी जीवनसे उत्तम गुणोंका नमूना जगत्को प्रगट कर दिखाया है, उस ज्ञान और गुणसे हमारे करने योग्य क्या क्या कार्य हैं प्रथम यह अवश्य विचारणीय है।

हमारे जैन बांधव-श्रमणोपासक आज प्रायः कृषक न होकर व्यापारी हैं, व्यापारी नित्य प्रति सवेरे से सांझ तक लेनदेन करते हैं, और उसका नफ़ा नुकसान शोधकर जोड़ देते हैं; साथ ही दिवालीके दिन सारे वर्षभरका आय-व्यय जोड़कर नवीन वर्षमें प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार महावीर भगवान्ने भी इस संसाररूपी व्यापारकी दुकानमें वर्षके अन्तमें आत्मनिरीक्षण करते हुए बताया है कि-ज्ञान-दर्शन और चरित्ररूपी तीन रत्नोंका तुम्हें लाभ मिला है।

जिस वस्तुके पानेकी पूर्ण आवश्यकता थी वह अब मिल गई है, साध्य वस्तुकी साधना भी कर ली गई और अब हम उस महान् गुरूके अनुयायी कहलाने लगे हैं, और 'वीरपुत्र जैसी मान्य उपाधि भी लेना चाहते हैं, तब फिर उस महान् प्रभुके पद चिन्हके पीछे चल कर अन्तिम १२ मासके अध्यात्म-पथमें कितना प्रवास किया हैं, वह वर्षके अन्तमें अवश्य विचारणीय है।

बंधुओ! पहले बताया जा चुका है कि—जैन जाति व्यापारके काम में कुशल और प्रसिद्ध है। यदि उसे एक पाईका हिसाब न

मिले तो आधी रात तक दिया जलाकर बैठे रहते हैं, और हिसाबकी ठीक विध मिलनेपर ही सन्तोषका सांस लेते हैं। लाभ और हानिका पूर्ण विचार करके लाभकी ओर जानेवाली वणिक् बुद्धिके लिए यह अभिमान और गौरवकी बात है। तब फिर हमें वर्षके अन्तमें दीपमालाके पवित्र दिनोंमें इस प्रकारसे विचार करते हुए आत्मनिरीक्षण करना भी अत्यावश्यक है।

"हमने अबतक किनकिन गुणोंकी वृद्धि की है? परोपकार, दया, सहनशीलता, जितेन्द्रियत्व, समभाव, आदि बड़े–बड़े गुण जो कि महावीर भगवान् में तो सहज थे, उन गुणोंमें से कितने गुण इस वर्षमें प्राप्त किए? उन्हें पानेके लिए क्या क्या प्रयत्न किए? अथवा अपने किन किन दोषोंको दूर किया? और किन दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न किया जाता है? प्रयास करते समय क्या क्या बाधाएँ उत्पन्न हुईं? और क्यों हुईं? तथा उन बाधाओंके सामने हमने कितनी वीरता प्रदर्शित की? कितने अंशमें कायरताका सेवन किया? अन्य मानवोंसे कितना सहयोग किया? उनमें कितनी सहानुभूति प्रगट की? अपना धर्मक्षेत्र कितना विशाल किया? इतर समाजको कितने प्रमाण में सम्मिलित किया? उससे कितना पुष्कल उत्तम व्यवहार साधन किया? कितने प्रमाणमें सादा जीवन बनाया? हमने देशको स्वतंत्र बनानेमें कितना त्यागका योग दिया? मानव समाजके कितने छीने हुए अधिकार उनको वापस दिलाए?"

इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टिसे प्रत्येक मनुष्यको विचार करना चाहिए, और जिस व्यापारमें लाभ न हो, अथवा हानि होती हो, ऐसा व्यापार कौन दीर्घ दृष्टिवाला सज्जन पुनः पुनः करेगा?

आधुनिक दीपावली—दीपमालासे इतनी विशाल शिक्षा प्राप्त होनेपर भी आजके लोगोंकी परिस्थितिपर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि लोग धार्मिकताका अभिप्राय न समझकर विलासितामें इतने अंधे हो रहे हैं, कि उन्होंने मानो अपनेको भुला ही दिया है, तथा इस बातका भान ही नहीं होता कि हम क्या है? हमारा कर्तव्य क्या है? अपने जीवनका मुख्य आशय क्या है? इत्यादि विषयोंपर दृष्टिपात न करके वे तो मदोन्मत्त होकर गरीबोंका रक्त शोषण करके गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, तथा मानवसे दानव बनते जा रहे हैं। उनके संबंधमें प्रसंगोपात्त कविताओंका उपयोग इस प्रकार किया। जिनके सुननेसे मनुष्य रोमांच हो जाता है।

दिवाली

तेल नहीं तो रक्त जलाले।
अपने तनका दीप बनाले, बुझ न सके वह जोत जलाले।
उठ त्यौहार मनाले आली, जगमग दीप जले आली॥
तू जगको दीप जलाने दे, रिम झिम महल सजाने दे।
लक्ष्मी को आज बुलाने दे, सूना घर तेरा है आली,
जगको मनाने दे दीवाली।
इक घी के दीप जलाता है इक आँसू चार बहाता है।
इक रोता है इक गाता है, भारत पर बदली यह काली,
क्यों आई है यह दीवाली॥

क्यों दिवाली

झुलस चुका जो अरमानोंसे, जिसका दिन औ रजनी काली,
जिसके नयन जलाते प्रति पल, नयनोंके दीप निराले,

जिसकी जगती पर मावसके, छाए रहते बादल काले।
जिसके आँसू दीप बना हैं, आँखें मावसकी निशि काली ॥
जलते रहते शून्य परस्पर, नयनों के दीप निरन्तर,
जल बुझ पल जल-पलगल-पलबल, सुलगा कर एक दीपक अन्तर
जिसने काली रातोंमें दो, दीप जलाए रजनी काली ॥
जिसके श्रमके श्रम कण जगमें, धनिकों के घर दीप बने हैं।
जिसके श्रमसे कर रेखाएँ, मिट मिट कर प्रासाद बने हैं।
जिसकी कुटिया वस्त्रोंसे क्या, धनसे क्या रोटी से खाली ॥
जिसकी आहें धनिकों की ध्वनि, मिश्रित मुस्कानों में गूँजे।
जिसका रुधिर बना धनिकोंकी, लालीसी वदनों में गुँजे ॥
जिसने आँसू और उमंगें, व्यथा कथा सब खाली गाली ॥
वही मनाए क्यों दीवाली।

क्षणिक दीप

जल जल कर दीपक बुझ जाते, ऐसा दीप जलाओ साजन,
कभी न बुझने पाए,
ऐसी ज्योति जगाओ जगमग,
जुग जुग जलती जाए।
क्षणिक दीप ये मुझे न भाते,
कैसी चाह तुम्हारी रानी; !
रविशशि उडुगण प्रतिपल जलते, पर उनमें क्या रस है?
वही सरस है जो कि क्षणिक है, शाश्वत तो नीरस है।
इसीलिए है क्षणिक जवानी ॥

रक्त दीप जलते!

खूनी वसन्तके प्रथम चरणमें, खिल खिल हँसती दीवाली।
स्नेह सिक्त दीपकके बदले भड़क उठी अब खूनी प्याली॥
नर पतंग मरते जल जल कर,
रक्त दीप जलते भर भर कर।

आज सौम्य भारतकी लक्ष्मी, भूखी नंगी शान निराली,
पूजन आज तुम्हारा करते, बजा बजा कर खाली थाली।
निकल रहीं लपटें धूधू कर,
रक्त दीप जलते भर भर कर।

युग परिवर्तनके आज साथ ही, बदल गई मृदु मंद दिवाली,
आज जुटी मधुशाला कैसी, ठनक रही विषभरी प्याली।
प्याले पर प्याला ढल ढल कर,
रक्त दीप जलते भर भर कर।

दीपक

पंथी दीपक एक जलादो,
कहती दुनिया है दीवाली, आई सजधज कर मतवाली;
तुम भी दीपक एक जलाकर, पथके तमको दूर भगादो।
पंथी दीपक एक जलादो॥

देखो मंज़िल दूर नहीं है, आज़ादी और मुक्ति वहीं है।
इसीलिए सोए पथिकोंको, दीप दिखाकर खूब जगादो॥
पंथी दीपक एक जलादो॥

पर दीपक के बुझनेका डर, चलता है तूफ़ान भयंकर ।
देश भक्तिका तेल डाल कर, उसकी लौको और बढ़ादो ॥
पंथी दीपक एक जलादो ॥

जब वह दीपक खूब जलेगा, अपना पथ भी साफ़ दिखेगा ।
पथ पर चलने वालोंके संग, अपना स्वर भी खूब मिलादो ।
पंथी दीपक एक जलादो ॥

देखो वह जलता ही जाए, जब तक मंज़िल पास न आए ।
बुझे न जिससे पर्वाना बन, अपने तनका तेल पिलादो ॥
पंथी दीपक एक जलादो ॥

जिससे लाखों दीप जलेंगे, मुर्झाए मन खूब खिलेंगे ।
जिससे आलोकित हो यह जग, वह दीवाली फिर से लादो ॥
पंथी दीपक एक जलादो

संसार मनाए दीवाली

दुनिया वालोंके महलोंमें कंचनके दीप जले होंगे ।
शीशेके सुंदर प्यालोंमें, लाखों अर्मान ढले होंगे ॥
पर लाखों वाले क्या जानें,
रह गई एक प्याली खाली ।

जिस घरके कोने कोने में, जलती हों दीपोंकी माला ।
जिनके महलोंमें छाया हो, पूनम सा सुंदर उजियाला ॥
वह क्या जाने घरके बाहर,
है घोर अमावस्या काली ॥

सोने चाँदीके टुकडोंकी, होती रहती झँकार जहाँ,
नित नीलामी पर चढते हों कंगालोंके घर बार जहाँ ।
क्या समझें लुटजाने पर वे, क्यों रोती आँखें मतवाली ॥
जिनके प्यालों में छलक रही, छल छल कर मदिरा लाल लाल ।
जो पीते जाते कंगालों की, आशाओं को ढाल ढाल ।
वे क्या समझें धनहीनों के,
लोहू में भी होती लाली ॥

है एक तरफ़ जो लाल लाल, क्या जाने क्या क्या पीते हैं ।
और एक तरफ़ वह जो दिलके, अरमान जलाकर जीते हैं ॥
है आज किसीका दीवाला,
और आज किसीकी दीवाली ॥

दुनियाके न्याय निरीक्षणका, है सुंदर अवसर पर्व यही,
शायद लक्ष्मी-जगदंबाका, अभिमान यही है गर्व यही ।
कुछ मनमानी कर लूट चलें,
कुछ लुटा लुटा कर हो खाली ॥

अन्यान्य कविताएँ—इसके अतिरिक्त अन्यान्य कविताओंका उपयोग करके श्रीगुरुराजने मानवसमुदायमें नवरसोंमें से वीररसका संचारकरके जनताको निर्भय-जागृत तथा वीर बनानेका प्रयत्न किया है जिनके पढने सुननेसे मनमें उसी प्रकारके भावोंका उद्गम होने लगता है । पाठक गण भी कविताओंका आस्वादन करें जो कि मननीय एवं आदरणीय हैं । श्रीगोपालप्रसाद व्यास कविकी कविताओंका उपयोग करके तो जनताके जीवनमें जान डाल दी थी । आप भी पढ जाइए । कितना वीर रस टपकता है ।

जिसको अपने बलिदानोंसे,
भारतको करना पूरा है।

पावन-प्रतापके पाँव पूज, कर वीर शिवाको नमस्कार,
अट्ठारह सौ सत्तावन के, साके की सुधिकर बार बार।
उस झाँसी वाली रानीके, चरणों में सीस झुकाता हू,
नेताजीको कर नमस्कार, मैं अपनी क़लम उठाता हूं॥

जय हिन्द देश भारतकी जय,
जय इस पर मरने वालों की।
आज़ाद हिन्द सेनाकी जय,
जय वीर जवाहर-लालोंकी

जय अपने अचल तिरंगे की, जो बलिका पथ दिखलाता है।
उस राष्ट्र सिपाही की जय जय, जो इस पर जान लडाता है॥
अंग्रेजी फौजें बर्मा में जब बुरी तरह मिस्मार हुईं।
तो छोड़ हिंदवी लोगों को, भग उठनेको तैयार हुईं॥

गोरे अपने बिस्तर बोरे,
जब सर पर रख कर भाग गए।
तब हिंदुस्तानी पलटनके,
दिलमें लग गहरे घाव गए॥

पर इधर अगस्त बयालिसमें, भारतमें अत्याचार हुए।
गोलियाँ चलीं दुर्भिक्ष पड़े, लाखों ही जन मिस्मार हुए॥
कलकत्ते के फुट पाथों पर, भूखी गंगा घहराती थी।
बच्चीकी अंतडियों को जब, माता निकाल कर खाती थी॥

आसाम सड़क पर खुले आम,
जब लाज उतारी जाती थी ।
भारतकी नारी जहाँ सिर्फ,
पुँश्चली पुकारी जाती थी ।

जब अपने देश सेवकों को, गद्दार पुकारा जाता था।
भारत रक्षाके नाम यहाँ, सर्वस्व उतारा जाता था ॥
तो जैसे जगकी पराधीनता, सोतेसे हो जाग गई ।
या सौ सौ वर्षोंकी कायरता, पूंछ दबाकर भाग गई ॥

या करो मरो की बोली ही,
गोली सी लग बे दाग गई ।
हर भारतीयके सीने में,
आज़ादीकी लग आग गई ॥

हो गए युवक तैयार देश पर, अपना फर्ज निभाने को ।
बहनें भी आगे बढ़ आंई, अपना कर्तव्य चुकाने को ॥
माताएँ पीछे रहीं नहीं, बच्चों की भेंट चढानेको ।
बस इनकिलाब कहना होगा, उस बदले हुए ज़मानेको ॥

इस भीषण असम परिस्थिति में,
आज़ाद फ़ौज़ तैयार हुई ।
बर्मा से भारत आनेको,
वह इसी लिये लाचार हुई ॥

जब उसने पाया कुत्स कर्म, ढीली दिल्ली की किल्ली को ।
तो नरवीरोंके झुण्ड चले, वापस लेने फिर दिल्ली को ॥
लानत है जो यह कहते हैं, यह जापानी तैयारी थी ।
लानत है जो यह कहते हैं, इन लोगोंने गद्दारी की ॥

ये आजादीके हामी थे,
ये सच्चे देश सिपाही थे ।
जो सड़क गई आजादीको,
ये उसी राहके राही थे ॥

है यही वही आज़ाद फ़ौज, जिसका इतिहास अधूरा है ।
जिसको अपने बलिदानोंसे, भारतको करना पूरा है ॥

लेकिन कुछ ऐसे होते हैं, इतिहास बनाया करते हैं ।

है समय नदी की बाढ़कि जिसमें, सब बह जाया करते हैं ।
है समय बड़ा तूफ़ान प्रबल पर्वत झुक जाया करते हैं ॥
अक्सर दुनियाके लोग समयमें चक्कर खाया करते हैं ।
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं, इतिहास बनाया करते हैं ॥

यह उसी वीर इतिहास पुरुषकी,
अनुपम अमर कहानी है ।
जो रक्तकणों से लिखी गई,
जिसकी जयहिन्द निशानी है ॥

प्यारा सुभाष नेता सुभाष, भारतभूका उजियाला था ।
पैदा होते ही गणकोंने जिसका भविष्य लिख डाला था ॥
यह वीर चक्रवर्ती होगा, या होगा त्यागी संन्यासी ।
इसके गौरव को याद रखेंगे, युग युग तक भारतवासी ॥

सो वही वीर नौकरशाहीने,
पकड़ जेलमें डाला था ।
पर क्रुद्ध केहरी कभी नहीं,
फन्दे में टिकनेवाला था ॥

वह मत्त मतंगोंके झुंडोंके ऊपर होकर चला गया ।
वह आँधी या कि बवंडर था दुश्मनके दिलको हिला गया ॥
बाँधे जाते इन्सान कभी तूफान न बाँधे जाते हैं ।
काया ज़रूर बाँधी जाती, बाँधे न इरादे जाते हैं ॥

वह दृढ प्रतिज्ञ सेनानी था,
जो मौका पाकर निकल गया ।
वह पारा था अंग्रेजों की,
मुट्ठीमें आकर फ़िसल गया ॥

जिस तरह धूर्त दुर्योधन से, बचकर यदुनन्दन आए थे ।
जिस तरह शिवाजीने मुग़लोंके पहरेदार छकाए थे ॥
बस इसी तरह वह तोड़ पींजरा तोतासा बेदाग गया ।
जनवरी माह सन् इकतालिस, मच गया शोर वह भाग गया ॥

वह कहाँ गए वह कहाँ रहे,
यह धूमिल अभी कहानी है ।
हमने तो इसकी कथा नई,
आज़ाद फ़ौज से जानी है ॥

उस दिन से ही आज़ाद फ़ौज ने,
नया संगठन पाया था ।
सोलह फ़र्वरी बयालिसको सिंगापुरका गढ़ टूट गया ।
दक्षिण पूरबके देशों से भारतका दामन छूट गया ॥
रह गई हज़ारों ही फ़ौजें, रह गए नागरिक भारत के ।
बच्चे छूटे पतनी छूटी, टूटे नग उनपर आरत के ॥

भारत जाना हो गया स्वप्न,
था राज नया, था साज नया।
छा गई निराशा लोगों पर,
दीखा न कोई अंदाज नया ॥

पर सहसा इसी निराशा में आशाका स्वर्ग उतर आया।
प्राणोंको सजग बनाता सा, अनमोल बोल उनपर छाया ॥
तुम देखो दूर क्षितिजके तट, उस पार हमारी दुनिया है।
उस पार हमारे जंगल हैं, उस पार हमारी नदियाँ हैं ॥

इन धूमिल बड़े पहाड़ों के,
उस पार हमारी माता है।
यह वायु हमारे खेतों की,
मट्टी को छूता आता है ॥

उस पार हमारी जन्म भूमि, जो देवों को भी प्यारी है।
जिसके आगे सर्वस्व हमारा, तन मन धन बलिहारी है ॥
तुम सुनो हवाकी लहरों पर आवाज़ तैरती आती है।
"जय हिन्द" उठो साहस बाँधो, माँ अपने पास बुलाती है ॥

चालीस कोटि कंठों की ध्वनि,
कहती है 'आओ आओ' रे।
अस्सी करोड भुज फैली हैं,
आलिंगनको बढ जाओ रे ॥

चालीस कोटि हृदयोंकी धड़कन, हमें सुनाई देती है।
अब दूर नहीं हमको अपनी-दिल्ली, दिखलाई देती है ॥

हम नहीं रुकेंगे आज खून अपने ने हमें पुकारा है ।
हम माताकी सन्तान वहाँ जाना अधिकार हमारा है ॥

हम सावधान हैं हुए, नहीं
अब अपना समय गँवाएँगे ।
ये शस्त्र हमारे कभी नहीं,
म्यानों में रहने पाएँगे ॥

बाधाएँ चाहे जैसी हों, हम कभी नहीं घबराएँगे ।
यमसे लड़ करके भी अपनी आज़ादी हम ले आएँगे ॥
हथियार हमारे साथी हैं, पुरुषार्थका हम परसाया है ।
तूफ़ान हमारे हाथों में दिलमें भूचाल समाया है ॥

हम या तो अपना अचल तिरंगा
दिल्ली पर फ़हरादेंगे ।
या आज़ादीके पुण्य मार्ग में,
अपनी लाश बिछा देंगे ॥

माँ सुनो प्रतिज्ञा लेते हैं, तुझको आज़ाद कराएँगे ।
हम आजादीके सैनिक हैं, जल्दी ही दिल्ली आएँगे ॥
ये वायु सुने ये साँझ सुने, आकाश गवाह हमारा है ।
"आज़ादी हो या मौत" दूसरा नहीं हमारा नारा है ॥

थे शब्द या कि कुछ जादू था,
रुख नया हवाने पाया था ।
कायर से कायर ने उनको,
सुन कर नूतन तन पाया था ॥

ज़र्रे ज़र्रे में आज़ादी की लहर दिखाई देती थी ।
दिल्ली दिल्ली की ध्वनि ही बस सर्वत्र सुनाई देती थी ॥
जिसदिन सुभाषने ये अपना जग को संदेश सुनाया था ।
उस दिन से ही आज़ाद फ़ौज ने नया संगठन पाया था ॥

यह स्वतंत्रताके महासमरका, पहल रक्तिम ब्यौरा था

वह खून कहो किस मतलबका, जिसमें उबालका नाम नहीं ।
वह खून कहो किस मतलबका, आ सके देशके काम नहीं ॥
वह खून कहो किस मतलबका, जिसमें जीवन की न रवानी है ।
जो परवश होकर बहता है, वह खून नहीं है पानी है ॥

उस दिन लोगोंने सही सही,
खूं की कीमत पहचानी थी ।
जिस दिन सुभाषने बर्मा में,
माँगी उनसे कुर्बानी थी ।

बोले स्वतन्त्रता की खातिर बलिदान तुम्हें करना होगा ।
तुम बहुत जी चुके हो जगमें लेकिन आगे मरना होगा ॥
जो आज़ादीके चरणों में जयमाल चढ़ाई जाएगी ।
वह सुनो तुम्हारे सीसों के, फूलोंसे गूंथी जाएगी ॥

आज़ादीका संग्राम नहीं
पैसे पर खेला जाता है ।
यह सीस कटानेका सौदा,
नंगे सिर झेला जाता है ॥

आज़ादीका इतिहास कहीं, काली स्याही लिख पाती है ?
उसके लिखने के लिए खून की नदी बहाई जाती है ॥

यों कहते कहते वक्ता की आँखोंमें खून उतर आया ।
मुख रक्त वर्ण होगया, दमक उट्ठी उनकी रक्तिम काया ॥

आजानुबाहू ऊँची करके,
वे बोले रक्त मुझे देना ।
इसके बदले में भारतकी,
आज़ादी तुम मुझसे लेना ॥

हो गई सभामें उथल पुथल सीनेमें दिल न समाते थे ।
स्वर इनक़िलाबके नारों के, कोसों तक छाए जाते थे ॥
'हम देंगे देंगे खून' शब्द बस यही सुनाई देते थे ।
रणमें जानेको युवक खड़े तैयार दिखाई देते थे ॥

बोले सुभाष इस तरह नहीं,
बातों से मतलब सरता है ।
लो यह क़ागज़ है कौन यहाँ,
आकर हस्ताक्षर करता है ॥

इसको भरने वाले जनको सर्वस्व समर्पण करना है ।
अपना तन मन धन जन जीवन, माताके अर्पण करना है ॥
एक युवक बढ़ा बोला नेताजी को हम पर विश्वास नहीं ।
उत्तर में नेता जी बोले, ना ना ऐसी है बात नहीं ॥

पर यह साधारण पत्र नहीं,
आज़ादीका परवाना है ।
इस पर तुमको अपने तनका,
कुछ उजला रक्त गिराना है ॥

वह आगे आए जिसके तनमें खून भारती बहता हो ।
वह आगे आए जो अपने को, हिन्दुस्तानी कहता हो ॥
वह आगे आए जो इस पर, खूनी हस्ताक्षर देता हो ।
मैं कफ़न बढ़ाता हूं आए, जो इसको हँसकर लेता हो ॥

सारी जनता हुँकार उठी,
हम आते हैं हम आते हैं ।
माताके चरणों में यह लो
हम अपना रक्त चढाते हैं ॥

साहससे बढ़े युवक उसदिन, देखा बढ़ते ही आते थे ।
चाकू से छुरियों आलपीनसे अपना रक्त गिराते थे ॥
फिर उसी रक्तकी स्याही में वह अपनी क़लम डुबाते थे ।
आज़ादीके पर्वाने पर, हस्ताक्षर करते जाते थे ॥

उस दिन तारों ने देखा था,
हिंदुस्तानी विश्वास नया ।
जब लिक्खा था रणवीरों ने,
खूं से अपना इतिहास नया ॥

इस पुण्यकर्म में महिलाओंने, पहले हाथ बढ़ाया था ।
सत्रह कन्याओंने आगे, आकर के खून बहाया था ॥
वे दुर्गा माँ सी भीड़ चीरतीं, बढ़ी तीर सी आती थीं ।
कमरों में खुसी कटारों से, वे अपना रक्त गिराती थीं ॥

गर्वीले पंजाबी जवान,
उन्मुक्त सिंह से आते थे ।

वे रक्तदानके साथ साथ,
हस्ताक्षर करते जाते थे ॥
बंगाली मदरासी देखा, उस दिन फूले न समाते थे ।
महाराष्ट्र-विहारी यू. पी. के, रणसिंह निकलते आते थे ॥
देखा उसदिन मुस्लिम भाई, भी सबसे आगे आए थे ।
वे जाति पाँति सीमा बँधन, जो कुछ थे तोड़ गिराए थे ॥
हिन्दू मुसलमान दोनों का,
रक्त हुआ इक ठौरा था ।
यह स्वतंत्रताके महा समर का,
पहला रक्तिम ब्यौरा था ॥

वह आज हर्ष से सेनामें, संगीन उठाय चलता था ।

वह धन ही क्या जो पड़ा रहे, धरती में गड़ कर दब जाए
या बाँधा जाय थैलियों में, संदूक़ों में जा छिप जाए ॥
जो बंद तिजोरी में रहता, वह स्वर्ण नहीं है मट्टी है ।
जो नहीं देश हित में आए, वह धन धोके की टट्टी है ॥
हम तो उसको धन कहते हैं,
जो काम ग़रीबों के आए ।
थैली की डोरी तोड़ चले,
आज़ाद देशको करवाए ॥
यों धनिक जगतमें बहुतेरे, पर भामा शाह अकेले थे ।
जो अपने धनसे स्वतन्त्रताकी खुलकर होली खेले थे ॥

बर्मा में भी धनवालों ने तब खुलकर पुण्य कमाया था ।
आज़ाद फौज पर जी भर कर चाँदी सोना बरसाया था ॥
आज़ाद फौजने नहीं खज़ाना, हथियारों से पाया था ।
उसने डिफेंस क़ानून नहीं, शोषण का कोई बनाया था ॥
वह जनताके प्रेमोपहार से, बूंद बूंद कर आता था ।
जिससे आज़ादीका तलाब, भरता था बढता जाता था ॥

बाबू सुभाष तब घूम घूम कर,
बड़ी सभाएँ करते थे ।
सैंकड़ों कोस के लोग जिन्हें,
सुननेको उमड़े पड़ते थे ॥

नन्हे नन्हे बच्चे आते, कोमल कोमल तुतलाते से ।
नवयुवक तावमें आते थे, मूछों पर हाथ फिराते से ॥
वृद्ध लकड़ी ले साथ चले, आते थे जवानी छाई थी ।
सारे बर्मा में नई चेतना, आजादी की आई थी ॥

आज़ादीके पैग़म्बर ने,
ऐसा सन्देश सुनाया था ।
मुर्दे क़बरों से जाग उठे,
ज़िन्दों ने जीवन पाया था ॥

आँधी पानी बर्सात बिजलियाँ, उन्हें रोक कब पाती थीं ।
लाखों की संख्यामें जनता, भाषण सुननेको आती थी ॥
उस भव्य सभाके लिए तिरंगा, मंच सजाया जाता था ।
चर्खेवाला क़ौमी झंडा, उस पर लहराया जाता था ॥

सबसे पहले नेताजी को,
जयमाल पिन्हाई जाती थी ।
भाषणके बाद वही माला,
नीलाम कराई जाती थी ॥

श्रोता अपना सर्वस्व निछावर, जयमाला पर करते थे ।
लोगों के दलके दल उसको, लेनेके लिए मचलते थे ॥
रंगून नगरमें एक बार, जयमाला की जय होली थी ।
पहली ही बोली किसी वीर ने, लाख रुपए की बोली थी ।

फिर क्या था बढ दो लाख हुए,
ध्वनि पांच लाखकी छाई थी ।
फिर सात लाखके लिए किसी ने,
चढ़ आवाज़ लगाई थी ॥

आगे चलकर नौ लाख हुए, उत्साह न आज समाता था ।
बोली का सौदा लाखों में, आगे ही बढ़ता जाता था ॥
पर सहसा बोली बंद हुई, एक युवक सामने आया था ।
जिसने जयमाला पर अपना, अन्तिम सर्वस्व लगाया था ॥

वह पंजाबी सौदागर था,
एक उठती हुई जवानी का, ।
जिसने रक्खा था मान खटा,
जेहलम चुनाबके पानी का ॥

लोगोंने उसको उठा लिया, गौरवसे गले लगाया था ।
फूलोंकी जयमाला लेकर, इसने सर्वस्व लुटाया था ॥

दूसरे रोज सब कुछ बेचा, बेची दुकान दारी सारी ।
घर बेच दिया जर बेच दिया, बेची अपनी पूँजी प्यारी ॥

वह बारह लाख रुपए अपना,
सर्वस्व बेच कर लाया था ।
नेताजी के शुभ चरणों में,
श्रद्धासे भेंट चढ़ाया था ॥

बोले सुभाष लो 'पाँच लाख, इससे जा कर रुजगार करो ।
इस तरह नहीं अपनेको तुम, भाई मेरे मिस्मार करो ॥
वह एक क़दम हट कर बोला, अब छूना इसे गुनाह मुझे
नेताजी इस धन दौलत की, अब रही नहीं पर्वाह मुझे ॥

मुझको अब धनसे क्या करना,
आजाद फ़ौजमें जाता हूं ।
आजादीके दीवानों में,
आगे से नाम लिखाता हूं ॥

देखा दुनियाने जो कि कभी, सोने चाँदीमें पलता था ।
वह आज हर्ष से सेना में संगीन उठाए चलता था ॥

है कौन आज जो कहता है, भारत आजाद नहीं होगा ।

देखा पूरब में आज सुबह, एक नई रोशनी फूटी थी ।
एक नई किरण ले नया संदेशा, अग्नि बाण सी छूटी थी ॥
एक नई हवा ले नया राग, कुछ गुन गुन करती आती थी ।
आजाद परिंदोंकी टोली, एक नई दिशामें जाती थी ॥

एक नई कली चटकी उस दिन,
रौनक़ उपवन में आई थी ।
एक नया जोश एक नई ताजगी,
हर चेहरे पर छाई थी ॥

नेताजी का था जन्म दिवस, उल्लास न आज समाता था ।
सिंगापुर का कोना कोना, मस्ती में भीगा जाता था ॥
हर गली हाट चौराहे पर, जनताने द्वार सजाए थे ।
हर घरमें मंगल चार खुशीके बाँटे गए बधाए थे ॥
पंजावी वीर रमणियों ने, बदले सलवार पुराने थे ।
थे नए दुपट्टे नई खुशीमें, गाए नए तराने थे ॥
वे गोल बाँधकर बैठ गईं, ढोलक मंजीर बजाती थीं ।
हीरा राँझा को छोड़ आज वे, गीत पठानी गाती थीं ॥

गुजराती बहने खड़ी हुई
गरबा की नई तैयारी में ।
मानो बसन्त आया हो ज्यों,
सिंगापुर की फुलवारी में ॥

महाराष्ट्र नंदिनी बहनों ने, इकतारा आज बजाया था ।
स्वामी समर्थ के शब्दों को गीतों में गतिसे गाया था ॥
वे बंगवासिनी वीर बहूटी, फूली नहीं समाती थीं ।
अंचल गर्दन में डाल इष्ट के सम्मुख सीस नवाती थीं ॥

प्यारा सुभाष चिरजीवी हो,
हो जन्मभूमि जननी स्वतन्त्र ।
मां कात्यायनि ! ऐसा वर दो,
भारतमें फैले प्रजातन्त्र ॥

हर कंठ कंठ से शब्द यही, सर्वत्र सुनाई देते थे ।
सिंगापुर के नर नारि आज, उल्लसित दिखाई देते थे ॥
उस दिन परेड में सेनाने, उनको 'सैल्यूट' बजाया था ।
उस दिन सुभाष सेनापतिने क़ौमी झंडा फ़हराया था ॥

उसदिन सारे सिंगापुर में,
स्वागतकी नई तैयारी थी ।
था तुलादान नेताजी का,
लोगों में चर्चा भारी थी ॥

उस रोज तिरंगे फूलों की, एक तुला सामने आई थी ।
उस रोज तुलाने सच मुच ही, एक ऐसी शक्ति उठाई थी ॥
जो अतुल नहीं तुल सकती थी, दुनियाकी किसी तराजू से ।
जो ठोस सिर्फ़ बस ठोस जिसे देखा चाहे जिस बाजू से ॥

वह महाशक्ति सीमित होकर,
पलड़े में आन विराजी थी ।
दूसरी ओर सोना चाँदी,
हीरोंकी लगती बाजी थी ॥

उस मंत्रपूत मुद मंडपमें, सुमधुर शंखध्वनि छाई थी ।
जब कुंदनसी काया सुभाषकी पलडेमें मुस्काई थी ॥
एक वृद्धाका धन सर्व प्रथम उस धर्मतुलापर आया था ।
सोनेकी ईंटों में उसने, अपना सर्वस्व चढाया था ॥

गुजराती माँ की पाँच ईंट,
मानो पलडे में आई थीं ।
या पंच अणुव्रत मय प्रसन्न,
कमला ही वहां समाई थीं ॥

फिर क्या था एक एक करके, आभूषण उतरे आते थे।
वे आत्मदानके साथ साथ, पलड़े पर चढ़ते जाते थे॥
मुंदरी आईं छल्ले आए, जो पी की प्रेम निशानी थी।
कंगन आए बाजू आए, जो रसकी स्वयं कहानी थी॥

आ गया हार ले जीत वहाँ,
मालाने बंधन छोडा था।
ललनाओंने परवशता की,
जंजीरोंको घर तोड़ा था॥

आगईं मूर्तियाँ मंदिरकी, कुछ फूलदान सिक्के आए।
तलवारों की मूठें आईं, सोनेके कुछ ठिक्के आए॥
इस तुलादानके लिए युवतियोंने आभूषण छोडे थे।
जर्जर वृद्धाओंने अपने, भेजे सोनेके तोडे थे॥

छोटी छोटी कन्याओंने भी,
करनफूल दे डाले थे।
तावीज गलोंसे उतरे थे,
कानों से उतरे बाले थे॥

प्रतिआभूषणके साथ साथ एक नई कहानी आती थी।
रोमाँच नया उदगार नया, पलडे में भरती जाती थी॥
नस नसमें हिंदुस्तानी की, बलिदान आज बल खाता था।
सोना चाँदी हीरा पन्ना, सब उसको तुच्छ दिखाता था॥

अब चीर गुलामी का कोहरा,
एक नई किरण जो आई थी।

उसने भारत की युग युग से,
यह सोई जाति जगाई थी ॥
लोगोंने अपना धन सरबस, पलड़े पर आज चढ़ाया था ।
पर वजन अभी पूरा न हुआ, काँटा न बीचमें आया था ॥
तब पास खड़ी सुंदरियों ने, कानों के कुंडल खोल दिए ।
हाथोंके गजरे खोल दिए, जूड़े के पिन बे मोल दिए ॥
एक सुंदर सुघड़ कलाई की,
खुल रिस्टवॉच भी आई थी ।
पर नहीं तराजू की डंडी,
काँटेको सम पर लाई थी ॥
कोनेमें तभी सिसकियों की, देखा आवाज सुनाई दी ।
कपतान लक्ष्मी लिए एक तरुणीको साथ दिखाई दी ॥
देखा जूड़ा था खुला हुआ, आँखें सूजी थीं लाल लाल ।
इसके पतिको युद्धस्थल में कल निगल गया था क्रूर काल ॥
नेताजी ने टोपी उतार,
उस महिलाका सम्मान किया ।
जिसने अपने प्यारे पति को,
आजादी पर कुर्बान किया ॥
महिलाके कम्पित हाथों से, पलड़े में शीशफूल आया ।
सौभाग्य चिन्हके आते ही, काँटा सहमा कुछ थर्राया ॥
दर्शक जनता की आँखों में, आँसू छल छल कर आए थे ।
बाबू सुभाषने रुद्ध कंठसे, यों कुछ बोल सुनाए थे ॥

ऐ बहन ! देवता तरसेंगे,
तेरे पुनीत पद वन्दन को ।
हम भारतवासी याद करेंगे,
तेरे अरुण-कन्दन को ॥

पर पलड़ा अभी अधूरा था, सौभाग्य चिन्हको पाकर भी ।
थी स्वर्णराशि में अभी कमी, इतना बेहद गम खा कर भी ॥
पर वृद्धा एक तभी आई, जर्जर तनमें अकुलाती सी ।
अपनी छाती से लगा एक, सुन्दरसा चित्र छिपाती सी ॥

बोली "अपने इकलौते का,
मैं चित्र साथमें लाई हूं ।
लो नेताजी सर्वस्व मेरा,
मैं बहुत दूरसे आई हूं ॥"

वृद्धाने दी तसवीर पटक, शीशा चरमर कर चूर हुआ ।
वह स्वर्ण चौखटा निकल आप, उसमें से खुद ही दूर हुआ ॥
वह क्रुद्ध सिंहनी सी बोली, बेटे ने फाँसी खाई थी ।
उसने माताके दूध-कोख को, कालिख नहीं लगाई थी ॥

हाँ इतना गम है सिर्फ एक ही,
और पुत्र यदि पाती मैं ।
तो उसको भी अपनी भारत-
माताकी भेंट चढाती मैं ॥

इन शब्दों के ही साथ साथ, चौखटा तुला पर आया था ।
हो गई तुला समतल-काँटा झुक गया, न अब टिक पाया था ॥

बाबू सुभाष उठ खड़े हुए, वृद्धा के चरणों को छूते ।
बोले माँ मैं कृतकृत्य हुआ, तुझसी माता ओं के बूते ॥
है कौन आज जो कहता है,
दुश्मन बर्बाद नहीं होगा ।
है कौन आज जो कहता है,
भारत आज़ाद नहीं होगा ॥

वसुधाके कौने कौने को,
बापू अब उठो पवित्र करो ।

दुनिया खतरे में झूल रही, दुखकी बदली घिर आई है ।
परतंत्र होगई मानवता, हर ओर गुलामी छाई है ॥
शासक का फौलादी पंजा, शोषक पर चढ़ता जाता है ।
राजा का दर्जा रोज रोज, परजा से बढ़ता जाता है ॥
भूखा किसान भूखा मजूर,
लग गए जबां पर ताले हैं ।
भगवान उठ गया दुनिया से,
हो गए भक्त मतवाले हैं ॥
हर ओर चीख रोदन कराह, फैली सब ओर निराशा है ।
जुल्मों का अन्त कभी होगा, इसकी न शेष कुछ आशा है ॥
पर नहीं नहीं दो अकतूबर को, ऐसा भी क्षण आया था ।
जब दुनियाने मानवता के पैग़म्बर को उपजाया था ॥
जब सारे जगके दीन हीन,
दुखियोंने वाणी पाई थी ।

जब सर्व प्रथम राष्ट्रीय चेतना,
इस भारत में आई थी ॥
उस पुण्यपुरुष युग निर्माता, उस जन जीवनकी आँधी का ।
था आज जन्म दिन राष्ट्र प्राण, मतिमान महात्मा गाँधी का ॥
बर्मा-सिंगापुर-हिन्दचीनमें हुई तैयारी भारी थी ।
आजाद फौज के हल्कोंमें, इसकी विशेष तैयारी थी ॥
तंबू तंबू पर आज तिरंगा,
तना दिखाई देता था ।
सुख छाया था, कोई न कहीं,
अनमना दिखाई देता था ॥
सेनामें मुसल्मान भी थे, कुछ और माँस-आहारी थे ।
पर आज सभी ने व्रत रक्खा, जितने भी नर और नारी थे ॥
यह रक्तदान देने वाले, जो जूझ रहे थे हिंसा में ।
कर गए प्रगट विश्वास आज, बापू की प्रबल अहिंसा में ॥
बर्मा में इस दिन समारोह,
उत्सवकी धूम निराली थी ।
रंगून नगरने नई तिरंगी,
रौनक आज बनाली थी ॥
उस दिन प्रभात फेरी निकली, कपतान लक्ष्मी बाई की ।
सुन आज़ादीके गीतों को, छाती तन गई सिपाही की ॥
बज गया बिगुल, सेना के दल सजकर परेड को आए थे ।
सबके कंधों पर नए तिरंगे बैज आज छवि छाए थे ॥

बज रहा बेंड़ कौमी ध्वनि में,
सेनाएँ मार्च बजाती थीं ।
गाँधीजी की जय हो जय हो,
ध्वनि आसमानमें छाती थी ॥
तब सेनापति आए सुभाष, फौजी वर्दी में तने हुए ।
बुश शॅर्ट कैप ब्रीचेज बूटम, चीफ कमांडर बने हुए ॥
था रंग नया था ढंग नया, थी फ़ौज नई था राज नया ।
थी नए खूनकी नई लहर, थी अदा नई अंदाज नया ॥
बाबू सुभाष लेते सेल्यूट,
सेना में बढते जाते थे ।
स्वर इनकिलाबके नारोंके,
ऊँचे ही चढ़ते जाते थे ॥
नजदीक पोलके आनेपर, ध्वनि सावधानकी छाई थी ।
लोगोंकी नज़र तिरंगे पर, तब इक टक जमी दिखाई थी ॥
जब डोर खींच नेताजी ने, क़ौमी झंडा फहराया था ।
तब सागर माँ की ममता का, हर सीने में लहराया था ॥
जब डबलमार्च करते सेनाने,
गीत विजय का गाया था ।
तब हर गुलाम का दिल अपनी,
परवशता पर झुँझलाया था ॥
उस दिन का सा विशाल उत्सव, हो चुका न आगे होना है
जिसकी सुधिसे अब भी चर्चित, बर्मा का कोना कोना है ॥
उस दिन का सा जनरव समूह, पहले न सभामें आया था ।
उस दिन का सा उल्लास नहीं जनताने कभी बताया था ॥

था मंच तिरंगा पाल तिरंगा,
झंडी तनी तिरंगी थी।
था चित्र तिरंगा बापू का,
रोशन बत्तियाँ तिरंगी थी॥

था सभी राजसी ठाठ विविध राज्योंके प्रतिनिधि आए थे।
चाँदीके शुभ सिंहासन पर, बापू सचित्र बैठाए थे॥
सबसे पहले एक बौद्ध भिक्षु सानँद मँच पर आए थे।
कर धर्मचक्रका विधि विधान प्रार्थना गीत कुछ गाए थे॥

फिर कुरानकी आयतें पढीं,
एक मौलानाने आ करके।
कुछ गीत पढ़े बालाओंने,
सुमधुर कंठों से गा करके॥

तब खड़े हुए बाबू सुभाष, बोले "प्रणाम बापू प्रणाम।"
हे राजनीतिके गुरु मेरे, तुमको पहुँचे मेरा प्रणाम॥
फिर बोले भारत देश हमारा, सब देशों से न्यारा है।
गंगा-यमुना-मंदिर-मस्जिदसे पावन देश हमारा है॥

वह भूमि हमारी सुंदर है,
आकाश हमारा सुंदर है।
है चाँद वहाँ का सुंदरतम,
क्या सुंदर खूब समुंदर है॥

उसके पेडों पर पंछी गण, बोली में अमृत घोल रहे।
उसके झरने ऋषि-मुनियों की, देखो अबतक जय बोल रहे॥
ऋषियोंका देश हमारा है, देवों का देश हमारा है।
यह जिसकी आज जयन्ती है, वह सुनो महाऋषि प्यारा है॥

बापूने अपनी सत्य अहिंसा,
से जगको ललकारा है।
वह मानवताका पैग़म्बर,
भारतका पिता हमारा है॥

निश्चय ही जगत अहिंसा से, मानवता को पा सकता है।
निश्चय ही इससे दुनिया का, सुख सौख्य लौट आ सकता है॥
पर आज दुष्ट दानवताका दुनिया पर छाया साया है।
कुछ शक्ति वाले देशोंने, दुनिया को आज दबाया है॥

इसलिए प्रथम हम भारत को,
लड़कर आज़ाद कराएँगे।
हिंसक लोगोंको हिंसा ही का,
पहले मज़ा चखाएँगे॥

अपनी तलवारोंके बलसे हम पहले दिल्ली जाएँगे।
फिर अपने बापू को सादर हम लाल क़िले में लाएँगे॥
तब रत्नजटित सिंहासन पर, श्रद्धा से उन्हें बिठाएँगे।
पावन पुनीत गंगाजलसे हम उनके चरण धुलाएँगे॥

फिर उनसे कह देंगे गुरु वर,
अब दुनियाका नेतृत्व करो।
वसुधाके कौने कौने को,
बापू अब उठो पवित्र करो॥

युवक के प्रति

अरे युवक ! तेरी जडता पर, कितने युग हो गए निछावर,
किन्तु नहीं चेता अब भी तू, नवयुगके पथ के ज़ड पत्थर !
जाग अरे अब जाग युवक तू कब से युग तुझे पुकार रहा,
कब से इस बंदिनी माँ का स्वर, तेरे घरमें गुँजार रहा !
औ घर की जड़ दीवारें तक, कातर स्वर सरि में उतर रहीं,
पर तेरे फूटे कानों के पर्दों पर कुछ भी असर नहीं।
टूटेगा कब यह बहिरा पन, उतरेगा कब यह जड़ता ज्वर,
कब तेरे मानस-सागर में, लहरायेगी नव-क्रांति लहर !
कब चेतेगा कब चेतेगा ! नव युगके पथके जड़ पत्थर !
अरे ओ अभिशापित वरदान, अरे ओ भारतके जड़ प्राण,
कभी तो तोड़ शून्यका स्वप्न, कभी तो कर निजत्वका ध्यान।
कभी इस गोदीमें विश्राम-किया करता था नित तूफ़ान,
कभी इन भौहों पर बल देख काँपता था नभ का अभिमान।
तोड़ दिशाओं की सीमाएँ गूँजा करता था तेरा स्वर,
पर आज बना अस्तित्व-हीन, तू पड़ा हुआ है इस पथ पर।
कब तेरी तन्द्रा टूटेगी ? नवयुगके पथ के जड़ पत्थर ॥
ओ नो जवान, ओ नो जवान कब जागेगा फिर स्वाभिमान,
कब आज़ादीकी मंज़िल पर, ये क़दम उठेंगे रे अजान !
कब तेरी अन्तर ज्वाला से फिर भड़क उठेगा आसमान,
कब निश्चलसे तू चल होगा, ओ क्रियाहीन ओ रे निष्प्राण।
कब तक रे यह बंदी माँ, पटके अपना सर पत्थर पर,
कब तक तू पथ पर पड़ा हुआ आशाओं को देगा ठोकर;

कब तुझमें स्वांस चलेगी रे, नव युगके पथ के जड़ पत्थर !
जब तू सपनोंमें खो जाता जब सपने तुझमें खो जाते,
जब तू क्रन्दनमें सो जाता, जब क्रंदन तुझमें सो जाते;
जब तू जगसे अनभिज्ञ बना, अपने ही अंग सजाता है।
तब तुझसे आशा क्या रक्खें तुझसे अभिमान लजाता है ॥
नन्हे बुदबुदमें समा रहा है आशाका विस्तृत सागर,
हा ! कैसे बेड़ा पार लगे भारत का बोलो करुणा कर !
जब आज युवक भारत का है नव युगके पथका जड़ पत्थर !

दिए जा रहा हूं मैं

साधन विहीन कर दिया है मुझको विश्व ने,
फिर भी उसे विचार दिए जा रहा हूं मैं।
पग पग पर कण्टकों का है विस्तर बिछा हुआ,
लोहू में किन्तु प्यार दिए जा रहा हूं मैं।
आँखोंमें है छलक रहा खारा समुद्र किन्तु,
जग को पियूष धार दिए जा रहा हूं मैं।
कांटों पर बिखर जाती हैं शबनम सी पँखड़ियाँ,
धागे में उनको फिर भी सिए जा रहा हूं मैं।
पतझड़ में रो रही हैं जब बुलबुल की हसरतें,
उपवनको तब बहार दिए जा रहा हूं मैं।
है आदि अन्त हानि से परिपूर्ण दीखता,
फिर भी विकट व्यापार किए जा रहा हूं मैं।
आती नहीं मस्ती में कभी मतलबी दुनिया,
हाला का तीव्र सार पिए जा रहा हूं मैं।

कदमों पर रख दिया है कलेजे को चीर कर,
खूनी कटार साथ लिए जा रहा हूं मैं।
आफ़तकी घटा छाई है जीवनके गगनमें,
आई है मौत और जिए जा रहा हूं मैं।
चारों तरफ़ से गिर रही हैं मुझ पर बिजलियाँ,
उनसे भी पर सिंगार किए जा रहा हूं मैं।

दो दीनकी एकता

कैसे कह दूं यह हिन्दू है कैसे कहदूं यह मुसलमान।
जँचते मनुष्य दोनों मुझको दोनों ही दिखते हैं समान॥
यह मंदिरमें पूजा करता-वह मस्जिदमें पढता नमाज।
लेकिन दोनों ही चाह रहे भारत में हो अपना स्वराज॥
दाढ़ी चोटीका जटिल प्रश्न अब शेष रहा सुलझाना है।
हम एक ही हैं, हम एक रहें, यह दुनियाको बतलाना है॥
तब ही कह सकता विश्व तुम्हें तुम हो सपूत तुम हो महान।
कैसे कह दूं यह हिन्दू है कैसे कह दूं यह मुसलमान॥
खूं बहा तुम्हारा एक साथ सिर कटे तुम्हारे एक साथ।
तुम होकर इस भू पर शहीद मर मिटे यहाँ पर एक साथ॥
मट्टी में मिला तुम्हारा खूं-मट्टी भारत की लाल हुई।
तुम दोनोंके बल के सन्मुख दुश्मनकी निष्फल चाल हुई॥
तुम दोनों का है ध्येय यही भारत गाए स्वातन्त्र्य गान।
गंगा जलका प्यासा हिन्दू ज़मज़म का प्यासा मुसलमान॥
अभिमान इसे है काशी का-अजमेर बना उसका गुमान।
कह दूं यह हिन्दू है कैसे कह दूं यह मुसलमान॥

दोनोंकी है यह तीर्थ भूमि दोनों के मज़हब यहीं फले ।
फिर आज भला क्यों एक दूसरे के भावों को हम कुचलें ॥
मिल पड़ो गले भाई भाई आज़ादी का अब करो ध्यान ।
कैसे कह दूं यह हिन्दू है कैसे कह दूं यह मुसल्मान ॥

दो में से एक

इधर भरा है मधुका प्याला, उधर भरी है विष की झारी ।
दोनों में से किसे चुनोगे ?
एक पंथ तो वह है जिसमें, अंगारों पर चलना होगा ।
अपने अन्तर की ज्वाला से, मन ही मन में जलना होगा ॥
बाएँ बादल बिजली होंगी, दाएँ पथ तूफ़ान उमड़ते ।
फिर भी तुमको बढ़ना होगा, गिरना और सँभलना होगा ॥
घोर तिमिर की छाया होगी, कोई तेरे साथ न होगा ।
मिले अमरता या नश्वरता, यह सब कुछ भी ज्ञात न होगा ॥
कोई तेरे चरण पखारे, कोई तेरे शूल निकाले ।
गिरते गिरते तुझे सँभाले, ऐसा कोई हाथ न होगा ॥
शायद तेरा पथ माँगेगा, प्राणोंका बलिदान तुम्हीं से ।
शायद लड़ते लडते थक कर, भाग चलेंगे प्राण तुम्हीं से ॥
शायद अपनी भूल समझकर, तुम ही पीछे लौट चलोगे ।
आगे बढ़ मिटने को साहस, माँगेगा वरदान तुम्हीं से ॥
और दूसरी ओर तुम्हारे, उठते यौवनकी अँगड़ाई ।
ओ पन्थी तुम कहाँ जा रहे, मैं तो तुम्हें बुलाने आई ॥
अब तुम संयम खो बैठोगे, शायद पाँव डोल जाएँगे ।

आलिंगन में कस जाओगे, मंज़िल देगी दूर दिखाई ॥
इधर हँसेगा चाँद चमक कर, उधर सदा रातें अँधियारी ।
बोलो साथी ! किसे चुनोगे ?

यदि विद्रोही अपने पथ पर, बढ़ो बढ़ो ललकार उठे तुम ।
तोड़ फोड़ ममताके बँधन, विप्लव बन हुँकार उठे तुम ॥
फाँसीके तख्ते भी उस क्षण, तेरे स्वागतको आएँगे ।
जिस क्षण पथके कांटों के प्रति, बन कर इक तलवार उठे तुम ॥

ममताकी ज़ंजीर नहीं तब, लोहे की होंगी जंजीरें ।
शायद उन्हें समझ बैठोगे, तुम किस्मतकी अमिट लकीरें ॥
तुम विश्वास गँवा बैठोगे, मनकी आस लुटा बैठोगे ॥
और विधाता के आगे तब, सीस झुका देंगी तदबीरें ॥

तुमको याद तभी आएँगी, वे चंदा सी उजली रातें ।
आँगनमें हँसते नन्हे की, 'औ' नन्ही मुन्नी की बातें ॥
विदा समय उन दो आँखों ने, रो रो तुम्हें बुलाना चाहा ।
तब तेरे नयनों में बरबस, घिर घिर आएँगी बरसातें ॥

और दूसरी ओर सजे से, यह ऊँचे प्रासाद तुम्हारे ।
कब से देख रहे हैं अपलक, तेरे पगकी राह बिचारे ॥
साकी का प्याला भी कब से, तेरे स्वागत को व्याकुल है ।
विजय-पता का लहराने को, यह ऊँची ऊँची मीनारें ॥

इधर सेज सुख मय फूलों की, उधर तेज़ काँटोंकी क्यारी ।
बोलो साथी ! किसे चुनोगे ?

धर्मके दश लक्षण

धर्मके ये दश लक्षण जान,
क्षमा-मार्दव और आर्जव, सत्य-शौच गुणखान ।
संयम-तप और त्याग-अकिंचन, सद्ब्रह्मचर्य महान ॥
क्रोध नसाओ मान मिटाओ, छोड़ो छल मतिमान ।
झूठ वचन तुम कभी न बोलो, जायँ भले ही प्राण ॥
त्यागो लोभ-इन्द्रिएँ जीतो, कर निजात्मका ध्यान ।
धर्म-ज्ञान और देश-जाति हित, कर निज संपत्-दान ॥
तजो परिग्रह लेश न रक्खो, इच्छा दुखकी खान ।
निज बल-वीर्य सुरक्षित रखिए, ज्यों हो ब्रह्म-विज्ञान ॥
इससे दुःख दरिद्र नष्ट हों, पाप सभी हों हान ।
धार धर्मके दश लक्षण तू, जो चाहे कल्याण ॥

मरु-तरु

वह मरु का सूखा तरु मैं,
जिस तक पंछी पहुँच न पाते !
प्रातःसन्ध्या बैठ न जिसपर
भैरव और विहाग सुनाते ।
पहुँच सकें तो केवल किरणें झुलस स्वयं जो झुलसाती हैं ।
और बवंडर आँधी आकर मेरी डाल तुड़ा जाती हैं ॥
जिसपर नभ में दूर दूर ही,
बादल छा कर भागा करते;

प्यास जगा कर आग लगा कर,
आस बँधा फिर त्यागा करते !
दूर विहायस में शशिधर है तारों के सँग खेला करता ।
सागर में तो मुस्कानों से अपनी नूतन बेला भरता ॥
पर मुझ तक है पहुँच चाँदनी
वह क्यों कर फीकी पड़ जाती ?
रजनीके सूने पन में भी
कब हो नीकी मन बहलाती ?
मुझको जगके दिन निशि से क्या,
जग दिन निशिका निशि दिन जगके ।
धन्य विटप जिनकी छाओं में
पथिक बसेरा लें जो भग के ॥
हाय ! मुझे चौराहे का ही
वृक्ष बना होता जो प्रभुवर ।
श्रमिक बैठ कर आते जाते
तो लेते विश्राम कभी कर ॥

रह नहीं सकता हृदय अब साधना में मौन !

रह नहीं सकता हृदय अब साधना मैं मौन !
जब कि आँखों देखता है लग रही है आग,
जब कि आँखों देखता है खून का त्यौहारः
जब कि आँखों देखता है मृत्युका ये नाच,
जब कि आँखों देखता है बिलखता यह प्राण ।
तब भला कैसे रहेगा प्राण कविका मौन ?

जब कि प्यारे बंग में है फैलती ये ज्वाल,
जब कि लुट गई माँ बहिनकी लाज दिन औ रात;
जब कि प्राणों पर बनी है प्राण की ये लाज;
जब कि धन-बल-धर्म-इज्जत की हुई है हार,
तब भला कैसे रहेगा प्राण कवि का मौन ?

और यह भी देखता है बुझ रहे वे दीप,
रहे प्यारे जननि के आँख के जो दीप;
और प्रेयसी के प्रबलतम प्रेमके वह दीप,
और अपने देश के जो जगमगाते दीप,
तब भला कैसे रहेगा प्राण कवि का मौन ?

जब कि घर में हो रहे हैं मृत्यु औ नरमेध,
और जलती ज्वालमय होली लिए प्रतिशोध;
मनुजकी आहुति मनुज ही कर रहा प्रतिवार,
कर रहा मजबूत है वह दासता का भार;
तब भला कैसे रहेगा प्राण कविका मौन ?

आज नादिरशाहका सा फूटता विस्फोट,
क्यों कि पशुतायुत मनुज है दे रहा उपहार;
और तैमूरी पिपासा फिर उठी है जाग,
आसुरी-शोषक प्रवृत्ति की प्रबलतम चोट,
तब भला कैसे रहेगा प्राण कविका मौन ?

आज भाई चाहता है खून का प्रतिदान,
आज भाई चाहता है देखना गृह-दाह;

जो गया है भूल पथ से सहज ही अनजान,
चाहता शासक-विदेशी-मिटें हम म्रियमान,
तब भला कैसे रहेगा प्राण कविका मौन ?

कर रहा है हृदय कविका आज हाहाकार,
फैलता है दिग-दिगन्तोंमें सहज आक्रोश;
अतल-अंबर में भरी है मृत्यु हो साकार,
आज जगके प्राणसे उठता प्रबल तूफान,
तब भला कैसे रहेगा प्राण कविका मौन ?
चाहता कवि विश्वसे मिट जाय ये विद्वेष,
मिलें भाई और भाई गले होकर एक;
मिटे सत्वर शत्रुका साम्राज्य हो कर एक,
और मानव को मिले फिर प्रेम का उपहार ?
तब बनेगी साधना भी मौन सी ही मौन ?

गहने कैसे तुम्हें घड़ाऊँ ?

चिल्लाती हो गहना गहना, नहीं मानती मेरा कहना;
तुम बच्ची नादान नहीं हो, क्या तुमको समझाऊँ ।
आमदनीका खयाल नहीं है, घर बाहरका ज्ञान नहीं है;
इन गहनोंके दूषण में अब, कब तक तुम्हें सुनाऊँ ॥
एडी चोटी लदी हुई हो, फिर भी गहने माँग रही हो;
अक़ल नहीं कुछ भी करती हो, कैसे तुम्हें मनाऊँ ।
जब तक बन कर हार न आवे, भोजन तक तुमको नहीं भावे ?
ऐसे महादुखित हृदयको कैसे शान्त कराऊँ ॥

बोझ ज़ेवरोंका है इतना, मुश्किलसे होता है चलना;
फिर भी कहती पायज़ेब विन, कैस कदम उठाऊँ ।
गहनोंसे है घरकी इज़्ज़त, शोभा और बहुत है लज़्ज़त;
प्राणनाथ ! गहनोंके गुण अब. कहाँ तलक मैं गाऊँ ॥
देखो दोहरे दोहरे गहने, रखती सभी पडौसन बहनें;
पडते मुझको ताने सहने, क्यों कर मुँह दिखलाऊँ ।
इस घरमें आदर नहीं मेरा, इसी सोचने मुझको घेरा;
कुछ भी मेरी पूछ नहीं है, अच्छा हो मर जाऊँ ॥
खून पसीना बहा बहा कर, सारे देहका ज़ोर लगाकर,
जो मिलता है देता तुमको, अधिक कहाँ से लाऊँ ।
देश देश भटका फिरता हूं, कष्ट सभी सहता रहता हूं,
तेली बैल बना फिरता हूं तो भी नफट कहाऊँ ॥
खाना पहिनना मोटा पाऊँ, एक वक़त मैं रोटी खाऊँ;
पल भर की न चैन ले पाऊँ, तब भी झिड़की खाऊँ ।
गहनों का रोना रोती हो, घरकी सब इज़्ज़त खोती हो;
मरता भरता आया घरमें, पर नहीं तुझे रुलाऊँ ॥
खाने पीनेका भी पूरा, नहीं पटता वह रहे अधूरा;
फिर भी चढ़ाई चढ़ी हुई है, गुलबँद कैसे बनवाऊँ ।
रोटी खाने जब आता हूं, भोजन नहीं कुछ खा पाता हूं;
गहनों का रोना सुनता हूं, तब कैसे जी पाऊँ ॥
हाय ! बहुत हैरान हुआ हूं, जीते जी बे जान हुआ हूं;
प्यास तुम्हारी यह गहनों की, मैं किस तौर बुझाऊँ ।
गहनोंकी यह चाह तुम्हारी, मुझे क़तल करती है भारी;

लाऊँ कहाँ से चोरी करके किससे कर्ज़ कढ़ाऊँ ॥
पड़ें भाड़में बेटा बेटी, मरे पति या होवे हेटी,
पर तेरे गहने बन जाएँ, जो हो तुम्हें सजाऊँ ।
मेरे नाकमें दम रहता है, जीने से मरना अच्छा है;
सुबह-शाम-दिन-रात चैन नहीं, कहाँ से गहने लाऊँ ॥
सबर तुम्हें तब ही आवेगा, जीना तुम्हें तभी भावेगा;
सोच-फिकरमें तड़प तड़प कर, जब में जान गवाँऊँ ।
जब मैं मर जाऊँगा घुलघुल, उड़ जाए पिंजरे से बुलबुल;
तब गहने ही गहने पहनो, मैं नहीं रहने पाऊँ ॥
देख देख ये गहने तेरे, मनमें आग लगे है मेरे;
फ़िकर नहीं है घरका कुछ भी, यही सोच मुरझाऊँ ।
रहनेको घर बार नहीं है, लड़के को उस्ताद नहीं है;
पर तुमको गहनोंकी रट है, मैं कबतक समझाऊँ ॥
हुनर तभी कुछ काममें आवे, अक्ल तभी कुछ काम चलावे;
जब पैसा कुछ हाथमें आवे, यह कैसे बतलाऊँ ।
रोज़गार सब पट्ट पड़ा है, सर पर मेरे कर्ज़ चढ़ा है,
कहीं उधार नहीं मिलता है, कैसे गुज़र चलाऊँ ॥
गहनोंकी हिरसा-हिरसी से, अँधाधुंध ख़र्चाख़र्चीसे;
घर बर्बाद हुए हैं कितने, क्या गिनकर बतलाऊँ ।
ज़रूरत और हैसियत का कुछ, नहीं ख्याल है तुमको सचमुच;
बच्चों जैसी ज़िद करती हो, कैसे तुम्हें मनाऊँ ॥
पतिव्रता नारीका भूषण, जिस विन सारे भूषण दूषण;
पतिप्रेम को समझो देवि! मनमें तुम्हें बसाऊँ ।

प्राणनाथ की बातें सुनकर, प्रेम की लहरें उठीं उमड़ कर;
मस्तक पति-चरणों पर रख कर, स्वामिन्! वारी जाऊँ ॥
तुम ही मेरे जीवन धन हो, तुम ही मेरे प्राण सुमन हो;
बन नादान अक़लकी हीनी, अब नहीं तुम्हें सताऊँ।
है धिक्कार मेरे जीवनको, आग लगे गहनोंको धनको;
मुझको अब तुम ही सब कुछ हो, पिय पर बलि बलि जाऊँ

नौआखालिके खंड़हर पर

अभी अभी तृण तरुओं पर रो विदा हुई रजनी बाला,
कवि ऊषाके घरके पीछे धधक उठी फिर से ज्वाला।
जिसके सुंदर विशद वक्ष पर बहतीं अगणित धाराएँ,
जिसे युगोंसे रहीं सींचतीं मानसूनकी मालाएँ।
जिस धरती पर कवि रवीन्द्रने मानवता के गान लिखे,
जिसकी सुषमाके वर्तनमें कवियोंके अरमान थके।
आज वहीं पर नर्तन करती दानवता अति विकराली,
कवि धू धू कर जलते देखो कलकत्ता नौआखाली ॥
किसने इस सुंदर प्रवेश पर सर्वनाश का रास रचा?
किसके इंगित पर यह नन्दन-वनमें सत्यानाश मचा?
ओशासनके ठेकेदारो जलता है बंगाल उठो,
धनिक-रंक, नर, नारी, बालक, वृद्ध, युवक कंगाल उठो
माँग रहे हैं नौआखालीके खँडहर तुमसे पानी,
है पुकारती सजल नयन से तुमको शस्योंकी रानी।
कविमें शक्ति नहीं वह उसकी करुणाको चित्रित करदे,

मध्ययुगोंकी बर्बरताको जो असीम लज्जित कर दे ।
बोटी बोटी कटी शवोंकी कंदुक कट कट शीश बने,
कोमल शिशुओंके शोणितसे दानवताके हाथ सने ।
नभ चुंबी प्रासाद, भूमिको चूम रहे, हा क्षार हुए,
धू धू करके जले खेत धानोंके लाल अँगार हुए ।
लुटा सतीत्व अमित बहनोंका माताओंकी लाज लुटी,
भस्म हो उठी क्षण भरमें ही मानवता की राजकुटी ।
तड़प तडप कर वृद्ध मर गए अगणित नौनिहाल खोए,
इस नृशंसताकी गोदीमें कितने युवा बाल सोए ।
अपने उजड़े घरकी स्मृतिमें कितने नर फुटपाथों पर,
जीवनके दिन शेष गिन रहे किस आशासे ठहर ठहर ।
बंगदेशका हृदय आज जलकर भीषण शमशान हुआ,
नौआखालीके खंडहर पर मानवताका अपमान हुआ ।
अभी धूम्र घुट रहा हृदयमें कानों में झंकार रही,
इस मशान के क्षार कणोंमें भीषणतम चीत्कार रही ।
ओ शासनके ठेकेदारो जलता है बंगाल उठो,
धनिक, रंक, नर, नारी, बालक, वृद्ध, युवक कंगाल उठो ॥

मनकी चाह !

पशुवधका सम्मान जहाँ हो, दानवता का नाज़ जहाँ हो ।
चिथडों में भी लिपट न जाती माँ बहनोंकी लाज जहाँ हो ।
उस शासनको उलट पलट कर धरा धाम से नाम मिटा दूँ ।
जीमें आता प्रलय मचा दूँ ॥

जिसने लूटा देश हमारा, किया देश कंगाल हमारा ।
खोया जिसने लाड-लाडले तीस लाख बंगाल हमारा ।
उस नौकरशाही शासन में आज भयंकर आग लगा दूँ ।
जी में आता प्रलय मचा दूँ ।

जहाँ न्यायका नाम नहीं हो, जनता को आराम नहीं हो ।
आह कराह प्रजा का क्रन्दन सुनना जिनका काम नहीं हो ।
उस गुंडेशाही शासन को कब्र खोद जिन्दा दफ़ना दूँ ।
जी में आता प्रलय मचा दूँ ।

डाकू जहाँ पदक पाते हों हत्यारे पूजे जाते हों ।
आज़ादी से प्यार जिन्हें, वे देशभक्त फाँसी पाते हों ।
उस जर्जर बर्बर शासनको सत्वर सागर बीच डुबादूँ ।
जी में आता प्रलय मचा दूँ ।

(**भारती से**)

परीक्षा

आज परीक्षा का अवसर है, देखें कितने अपने होंगे !
है जिन पर जनरव अवलंबित सच निकलें या सपने होंगे !!
कहाँ मिला है शम् का शत-दल ?
आतप उसका अन्त कहाँ है ?
सादियोंके शोषित जीवन में
फूला फला वसन्त कहाँ है ?
कौन जानता उर उष्मा में कितने ही तन तपने होंगे !!
आज परीक्षा का अवसर है देखें कितने अपने होंगे !!

वर्षों से विवाद है जिस पर
सहज प्राप्य अधिकार कहाँ हैं ?
अभी सभी की जिव्हाओं पर
छोडो हिन्द पुकार कहाँ है ?
प्रजा तंत्र के आविष्कारक मन्त्र मृत्युके जपने होंगे ?
आज परीक्षा का अवसर है देखें कितने अपने होंगे ??

(भारती)

"बड़ा पद कैसे मिलता है"

मूँग तू कैसे बड़ा कहाया ?
'मत पूछो' "क्यों क्यों" ? यह पदवी, बड़ी कठिन है पानी ।
लो सुनलो, यदि इच्छा है तो, मेरी राम कहानी ॥
बड़ा पद जैसे मैंने पाया ।
मूँग तू कैसे बड़ा कहाया ॥
पहले था मैं पुरुष, नाम जो भी मेरा गहते थे ।
बालक से लेकर बूढ़े तक, मूँग मूँग कहते थे ॥
सुनो फिर आगे पावँ बढ़ाया ।
मूँग तू कैसे बड़ा कहाया ॥
अब क्या था चक्की में भी मैं, खुद को लगा पिसाने ।
टुकड़े टुकड़े हुआ पुरुष से, नारी लगा कहाने ॥
मूँग की दाल नाम कहलाया ।
मूँग तू कैसे बड़ा कहाया ॥
इतने पर भी इष्ट सिद्धिका, दिया न मुँह दिखलाई ।
पडा रहा घंटों पानी में, बक्कल भी उड़वाई ॥

न जाता आगे हाल सुनाया ।
मूँग तू कैसे बड़ा कहाया ॥
सिलबट्टे पर लगा रगड़वाने अपने अंगों को ।
एक हो गया दुई हटी पहचान प्रेम रंगों को ॥
हुई संगठित हमारी काया ।
मूँग तू कैसे बड़ा कहाया ॥
पड़े कढ़ाई में जा कर फिर, लगे देह बलवाने ।
तप्त तैल में अपने को, हे सखे! लगे तलवाने ॥
न मनको तब भी ज़रा डुलाया ।
मूँग तू कैसे बडा कहाया ।
इतने कष्टों को सह कर में, लगा प्रतिष्ठा पाने ।
प्राप्त किए प्यारे दो अक्षर, "बडा" प्रेम रस साने ॥
सैंत में नहीं बड़ा पद पाया ।
मूँग तू कैसे बड़ा कहाया ॥

मानवकी आत्मकथा

मैं किसका गाना गाऊं, मैं किसकी कहूं कहानी ।
लो अपनी बीती कहदूं, अपनी ही आज ज़बानी ।
कहने को तो मानव हूं, पर क्या दानव से कम हूं ॥
मैं सरसे पावँ तलक बस, सच पूछो भ्रम ही भ्रम हूं ।
भोली दुनिया क्या जाने, मैं कितना हूं अभिमानी ॥ मैं० ॥ १ ॥
मैंने बल वैभव पाकर, कितनोंका खून बहाया;
अपनी छोटी पूँजी पर, मैं क्या कुछ कम इतराया ।
मैंने तो भवसागरमें समझा घुटनों तक पानी ॥ मैं० ॥ २ ॥

अभिशाप आप जीवनका, मैं पापी पुण्यस्थल का।
यह महानाश जगतीका सारा है मुझमें झलका ॥
सब उत्पातों की जड़ है, मेरी मद भरी जवानी ॥ मैं० ॥ ३ ॥
यह विजय स्तम्भ मठ मन्दिर, ये दुर्ग और मीनारें।
ऊँचे ऊँचे न्यायालय, ये कारा की दीवारें ॥
मेरी पैशाचिकता की, ये सब हैं अमिट निशानी ॥ मैं० ॥ ४ ॥
मेरी बर्बरतासे हैं, हिंसक पशुतक भय खाते।
लख मेरी रक्त पिपासा भैरव चण्डी शर्माते ॥
मैंने नन्दन काननको मरघट करनेकी ठानी ॥ मैं० ॥ ५ ॥
तिल तिल वसुधाको रौंधा तब मैं महान कहलाया।
भीषण नर संहारोंसे मैंने जगमें यश पाया ॥
लघुता गुरुता जीवनकी क्या है किसने पहचानी ॥
मैं किसका गाना गाऊं मैं किसकी कहूं कहानी ॥ मैं० ॥ ६ ॥

पति-पत्नी

बैठे थे पतिदेव प्रेमसे, खेल रहा था बालक।
अपने कुलकी नैया के हम दोनों थे संचालक ॥
मैंने कहा कि मुन्ना को अब, ला दो बच्चा गाड़ी।
और मुझे भी एक चाहिए, जोरजेट की साड़ी ॥
सुनकर मेरी बात उन्होंने, झट से गर्दन मोड़ी।
नाक फुलाई आँखें फाड़ीं और चढ़ गई त्यौड़ी ॥
बोले जब देखो तब खर्चा यही बात कहती हो।
यह भी लादो वह भी लादो, रोती ही रहती हो ॥

तुमको क्या मालूम परिश्रम, करता हूं मैं कैसे ।
हो जाता दिन रात एक तब, मिलते हैं दो पैसे ॥
घरमें आया थका थकाया, तुम सिर हो जाती हो ।
लाख लाख समझाया फिर भी, बाज नहीं आती हो ॥
कभी नहीं सुनती हो मेरी, अपनी ही कहती हो ।
मानो घरमें नदी हमारे, धनकी ही बहती हो ॥
मैंने कहा कि घरकी चाहत, किससे कहने जाऊं ।
नहीं कमा सकते हो तुम तब, क्या मैं स्वयं कमाऊं ॥
अब तो हम में युद्ध ठन गया, लगे शस्त्र बरसाने ।
एक दूसरे को हम दोनों, लगे मारने ताने ॥
ज़रा ज़रा सी बातोंपर भी झगड़े बढ़ जाते थे ।
बांध मोरचा फौरन ही हम, दोनों अड़ जाते थे ॥
होते होते दिल दिमाग पर, लगी पहुँचने चोटें ।
दोनों लगे सोचने अपना, गला कहां तक घोटें ॥
क्लेश भरा मन दफ्तर में भी, लगा लड़ाई लड़ने ।
हो जाते थे काम ग़लत, तब साहब लगे बिगड़ने ॥
इधर हुआ बीमार हमारा, मुन्ना विपदा टूटी ।
दफ्तरसे भी बाबूजी की, उधर नौकरी छूटी ॥
अब आया कुछ होश हमें, दिल दोनोंका शर्माया ।
जो कुछ था वह बेच बाच कर, बच्चेको बचवाया ॥
मैंने अपना जीवन सादा, करनेका प्रण ठाना ।
और उन्होंने अबसे आगे, छोड़ दिया झुँझलाना ॥

हम दोनो ने मिलकर सीखा, घरका काम चलाना ।
फेंक दिए हथियार युद्ध के, पहन शान्तिका बाना ॥

वीर-बन्दा

सत श्री अकाल सत श्री अकाल ।
बन्दा वैरागी के कर में, ध्वनि करती थी यह मन्त्र माल ॥
मुग़लों की वह सेना सशस्त्र, बन्दीको पिंजरे में धरकर ।
अब भी थी चिन्तित डरी हुई, उड़ जायं न बन्दा बाज़ीगर ॥
चलती थी घेरा घना डाल, भालों पर टाँगे सिक्ख भाल ॥ १ ॥
न्यायालयमें पशु सा घसीट, बन्दा को पिंजरे से खोला ।
उसके सुपुत्रको ही आगे कर, बादशाह तब यों बोला ॥
बंदा इसका बध करो आज, तब हम जानें तुम सिख विशाल ॥२॥
देखा बंदाने सभी ओर है यवनोंका दलबल अनन्त ।
बालक है कोमल हृदय अभी तजदे न लीक कुलकी ज्वलन्त ॥
मारी कटार कर दिया अमर छुड़वाया नश्वर देह जाल ॥ सत० ॥३॥
तब गर्म गर्म संडासी से काटा बंदाका दृढ शरीर ।
आँखें फोड़ीं बोटे नोचे पर डिगा नहीं वह धर्म धीर ॥
मुस्काया बंदा वीर देख आगया चूमता चरण काल सत० ॥ ४ ॥

सिरका सौदा

विश्राम लिया रणचंडीने ली यमने अपनी राह नई ।
हल्दी घाटी समरांगण में दिल्लीश्वर की जय गूंज गई ॥
कुछ खेल चुके थे प्राणोंपर कुछ क़ैद हो गए सेनानी ।

उनमें था बंदी वीर एक रखनेवाला कुलका पानी ॥
वीरोचित क्षत्रिय गौरव का अभिमान लिए था प्राणोंमें ।
था आयुधहीन बना बंदी निश्शंक निडर अरमानों मैं ॥
बोला सलीम हे राजपूत ! मैं हूं प्रसन्न तुमसे विशेष ।
दिल्ली सिंहासनकी सेवा स्वीकार करो हे वीर वेश ॥
फड़के उसके भुज दंड तभी थिरके तनके अवयव सारे ।
खिंच गई भृकुटीकी प्रत्यंचा आँखोंने उगले अंगारे ॥
वह क्षत्रिय बोला शहज़ादे यह वीरोचित आदर्श नहीं ।
जुगनू की सेवा को तारे मिल सकते हैं क्या मोल कहीं ॥
तब प्रेम प्रलोभनके स्वरमें बोला सलीम मत रार करो ।
तुम पाँच सहस स्वर्णिम मुद्रा लेकर सेवा स्वीकार करो ॥
"हम राजपूत हैं शहज़ादे ठुकरा देते अग जग सारा ।
क्षत्रियको होता है जगमें जीवनसे अपना प्रण प्यारा ॥"
"लो दश सहस्र हे वीर श्रेष्ठ !" सहसा सलीम यों बोल उठा ।
उसने कुछ ऐसा अनुमाना अब राजपूत मन डोल उठा ॥
सिर हिला वीरका, कहा 'नहीं' हठ शहज़ादेने भी ठानी ।
"पच्चीस सहस्र स्वीकार करो हे राजपूत प्रण अभिमानी ॥"
"यह कब संभव है हे सलीम" बोला वह रक्त वर्ण होकर ।
दिल्ली पति अब यों क्षुब्ध हुए ज्यों तटसे टकराकर सागर ॥
बोला हे 'गर्वित' राजपूत लो अर्धलक्ष मैं देता हूं ।
अथवा अब तेरे मस्तक को धड़से उतराए लेता हूं ॥
क्षण भर वह क्षत्रिय मौन रहा फिर बोला अच्छा यही सही ।
समझा सलीम झुक गया वीर ऊपर मेरी ही बात रही ॥

मुद्राएँ लेकर कहा तभी मैंने बिकना स्वीकार किया ।
निज डेरे में आकर उसने राणाको वह धन भेज दिया ॥
उत्थान पतन रचना विनाश के पथ परसे जग चलता है ।
होता आनँद प्रभात कहीं सुख रूप कहीं दिन ढलता है ॥
उस ओर लुटा मेवाड प्रान्त बल क्षीण हुआ धन हीन हुआ ।
इस ओर विजयका उत्सव था दिल्लीमें दिवस नवीन हुआ ॥
उच्चासन पर बैठा सलीम मदका मस्तक पर भार लिए ।
आते जाते थे राजभक्त भेटें असंख्य उपहार लिए ॥
उस समय एक नव वयस वीर साधारण किन्तु लिए आभा ।
धर कर लाया कुछ थाली में पुष्पों का सा सुंदर गाभा ॥
सिंहासनके सन्मुख जाकर वह बोल उठा वर वीर बोल ।
लो सहज़ादे यह झुकासीस जिसका कल तुमने किया मोल ॥
वीरों की सेवाका स्वरूप देखा जीवन भर जी करके ।
क्षत्रिय होते बन्धन विमुक्त अपने सिरका सौदा करके ॥

दीवाना

मैं दीवाना हूं दीवाना,
जग हँसता है मैं रोता हूं, जग जगता है मैं सोता हूं;
सब बढ़े जा रहे हैं आगे मैं अन्धकारमें टोता हूं ।
मुझको न किसी ने है टाना, मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ १ ॥
वे हैं धनाढ्य मैं हूं गरीब मेरा उनका सा कब नसीब ।
उनके पीछे कितने दौड़े पर है न कोई मेरे क़रीब ॥
मुझको न किसीने पहचाना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ २ ॥

वे रहते हैं सत खंडों पर मैं पड़ रहता फुटपाथों पर ।
वे मौज उड़ाते गाते हैं मैं रोता हूं निज कर्मों पर ॥
इसका न भेद कुछ भी जाना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ३ ॥
उनके हित दूध मलाई है बहु व्यंजन और मिठाई है ।
पर यहां भूख के मारे ही चढ़ आई मुझको ताई है ॥
दो दिनसे नहीं मिला दाना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ४ ॥
वे बी. ए. एम. ए. वाले हैं उनके सब काम निराले हैं ।
पर यहां न टाइटिल पास अरे इससे हम गए निकाले हैं ॥
यह विद्वानोंका है बाना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ५ ॥
मैं भी मानव उनसा ही हूं वे जमे हुए मैं राही हूं ।
पर नहीं जो मुझमें टीप टाप तो फिर मैं पूरा वाही हूं ॥
है सभ्य जनों का यह ताना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ६ ॥
हे विधि ! यह तेरी अजब बान वैषम्य भरा यह भव विधान ।
कुछ समझ न पाया मैं अब तक यह अजब पहेली है महान ॥
यह दीवानों का है गाना । मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ७ ॥

रोटी का रोदन

कौन कष्ट है गुनने वाला कौन संग है भुनने वाला ।
कौन व्यथा है सुनने वाला जग है अपनी धुनने वाला ॥
कैसे अपना मन समझाऊं किसको जी की जलन सुनाऊं ॥ १
आने वाले जाने वाले बैठे और कमाने वाले ।
रोने वाले गाने वाले देखा सब हैं खाने वाले ॥
कहां भाग कर प्राण बचाऊं किसको जी की जलन सुनाऊं ॥ २

मुद्राएँ लेकर कहा तभी मैंने बिकना स्वीकार किया।
निज डेरे में आकर उसने राणाको वह धन भेज दिया॥
उत्थान पतन रचना विनाश के पथ परसे जग चलता है।
होता आनँद प्रभात कहीं सुख रूप कहीं दिन ढलता है॥
उस ओर लुटा मेवाड प्रान्त बल क्षीण हुआ धन हीन हुआ।
इस ओर विजयका उत्सव था दिल्लीमें दिवस नवीन हुआ॥
उच्चासन पर बैठा सलीम मदका मस्तक पर भार लिए।
आते जाते थे राजभक्त भेटें असंख्य उपहार लिए॥
उस समय एक नव वयस वीर साधारण किन्तु लिए आभा।
धर कर लाया कुछ थाली में पुष्पों का सा सुंदर गाभा॥
सिंहासनके सन्मुख जाकर वह बोल उठा वर वीर बोल।
लो सहज़ादे यह झुकासीस जिसका कल तुमने किया मोल॥
वीरों की सेवाका स्वरूप देखा जीवन भर जी करके।
क्षत्रिय होते बन्धन विमुक्त अपने सिरका सौदा करके॥

दीवाना

मैं दीवाना हूं दीवाना,
जग हँसता है मैं रोता हूं, जग जगता है मैं सोता हूं;
सब बढ़े जा रहे हैं आगे मैं अन्धकारमें टोता हूं।
मुझको न किसी ने है टाना, मैं दीवाना हूं दीवाना॥ १॥
वे हैं धनाढ्य मैं हूं गरीब मेरा उनका सा कब नसीब।
उनके पीछे कितने दौड़े पर है न कोई मेरे क़रीब॥
मुझको न किसीने पहचाना मैं दीवाना हूं दीवाना॥ २॥

वे रहते हैं सत खंडों पर मैं पड़ रहता फुटपाथों पर ।
वे मौज उड़ाते गाते हैं मैं रोता हूं निज कर्मों पर ॥
इसका न भेद कुछ भी जाना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ३ ॥
उनके हित दूध मलाई है बहु व्यंजन और मिठाई है ।
पर यहां भूख के मारे ही चढ़ आई मुझको ताई है ॥
दो दिनसे नहीं मिला दाना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ४ ॥
वे बी. ए. एम. ए. वाले हैं उनके सब काम निराले हैं ।
पर यहां न टाइटिल पास अरे इससे हम गए निकाले हैं ॥
यह विद्वानोंका है बाना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ५ ॥
मैं भी मानव उनसा ही हूं वे जमे हुए मैं राही हूं ।
पर नहीं जो मुझमें टीप टाप तो फिर मैं पूरा वाही हूं ॥
है सभ्य जनों का यह ताना मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ६ ॥
हे विधि ! यह तेरी अजब बान वैषम्य भरा यह भव विधान ।
कुछ समझ न पाया मैं अब तक यह अजब पहेली है महान ॥
यह दीवानों का है गाना । मैं दीवाना हूं दीवाना ॥ ७ ॥

रोटी का रोदन

कौन कष्ट है गुनने वाला कौन संग है भुनने वाला ।
कौन व्यथा है सुनने वाला जग है अपनी धुनने वाला ॥
कैसे अपना मन समझाऊं किसको जी की जलन सुनाऊं ॥
आने वाले जाने वाले बैठे और कमाने वाले ।
रोने वाले गाने वाले देखा सब हैं खाने वाले ॥
कहां भाग कर प्राण बचाऊं किसको जी की जलन सुनाऊं ॥

दांत लगाए रहते घातें, राह देखती रहती आन्तें ।
चाहे दिन हो चाहे रातें, पेटोंमें पचनेकी बातें ॥
किस किसका अन्याय गिनाऊं, किसको जी की जलन दिखाऊं ॥ ३
घर घर चूल्हे जलते रहते, हैं तंदूर धधकते रहते ।
चिमटे साँसे गहते रहते, मिटती हूं दुख सहते सहते ॥
किसके पास कहां मैं जाऊं, किसको जी की जलन दिखाऊं ॥ ४
फटकी जाती बेली जाती, तपे तवे पर झेली जाती ।
चूल्हे में हूं ठेली जाती, दाढों से फिर खेली जाती ॥
जीवनकी क्या गाथा गाऊं, किसको जी की जलन दिखाऊं ॥ ५
पीन पनैथी प्रबल बनूं मैं, फुलका बेली सबल बनूंमैं ।
बासी ताज़ी नवल बनूं मैं, पाव बनूं या डबल बनूं मैं ॥
जग कहता है खाऊं, खाऊं किसको जी की जलन सुनाऊं ॥ ६
जिसको मैंने पोसा पाला, जिस जिसको समझा रखवाला ।
हाय उसीने है घर घाला, बन कर क्रूर अन्त कर डाला ॥
दुनिया का क्या चलन बताऊं, किसको जी की जलन दिखाऊं ॥ ७

फ़ैशनके फेर में

त्याग निज चाल आज भारतके लाल सब,
अगुण दिखावें शुभ कीर्ति के ढेर में ।
धन्य युवक वृन्द तुम्हें धन्य बल वीरता को,
खाती है कमर बल बोझ तीन सेर में ।
भक्ति और तपोबल धूलमें मिले हैं आज,
युवक गिरे हैं पर सभ्यताके फेर में ।

हाट खोया बाट खोया घर और घाट खोया,
सारा ठाठ बाट खोया फ़ैशनके फेर मैं ॥

× × × ×

रहा नहीं कुछ शेष दीखता पडता खाली,
भासे श्वेत शरीर रक्त की रही न लाली ।
जीवन तरु की सूख गई है डाली डाली,
उठी घटाएँ भाग्य व्योममें उसके काली ।
भारत ग़ारत होगया पलक मारती बेर में,
जब से आया आधुनिक इस फ़ैशनके फेर मैं ॥
टोपी पगडी त्याग सीस पर हैट सजाया,
चंदन छोंडा पावडरसे मुख श्वेत बनाया ।
अंगा अचकन तजा कोट अद्धा मन भाया,
धोतीको कर दूर पेंट से नेह बढ़ाया ।
गुरगाबीको छोड़ कर पहना डॉसन पैर मैं;
कालेसे गोरे बने पड़ फ़ैशनके फेर में ॥

विदेशी

मन बसी विदेशी चीज हमारी मत बौराई है ।
देख देख औरोंको अपनी, अक़ल गवाँई है,
देशीको हम त्याग त्याग, धन हानि कराई है ॥
एक करोड़ बाईस लाख की चूड़ी आई है,
परदेशिनको दे सुहाग, यों खुशी मनाई है ॥
एक सालमें तीसलाखकी सिगरेट आई है,
पी पी कर भारतकी हमने, धूल उडाई है ॥

लाख छियासठ जूते पर गए, लेस मंगाई है,
पहनके इनको इन दामों में, खाक़ चटाई है ॥
घोड़ा घोड़ी त्याग दिए, अब मोटर आई है,
फूँक फूँक पैटरोल, धूल दुर्गन्ध उडाई है ॥
फ़िज़ूल खर्ची निज सम्पत्, की हाय ! सुहाई है ।
अन्न विना वे मरे नित्यप्रति, खेती हर भाई है ॥
पाकर के भी ज्ञान मान धन, अक़ल गवाँई है ।
करके एम. ए. पास, हमें इक क्लर्की भाई है ॥
शिल्प वणिजसे प्रेम छोड़, कर सर्विस पाई है ।
देशी गहना रहा नहीं, अब ली नकटाई है ॥

नारीशिक्षा

दित्ता धर्म विसार माइयाँ बहणां ने,
जूड़े करण पुशाकां पावण बह कुर्शी ते हुकम चलावण,
धुरों बलायतों बूट मंगावण ऊँची एडी दार ॥ माइयाँ० १
छाबे वाले को ले भाल सौदा करण मनक्खां नाल ।
नंगे मुंहों खरीदण माल दित्ती शर्म उत्तार ॥ माइयाँ० २
चौका भांडा कदी न कीत्ता इस्तीफ़ा सूई नूं दित्ता ।
चर्खा बैठा चुप्प चुपीता बजदी बीन सितार ॥ माइयाँ० ३
रोटी नूं ओ देख न सकण खावण बिस्कुट केक ते मक्खण,
पाणी दी थां हरदम रक्खण सोडा बरफ़ तैयार ॥ माइयाँ० ४
बिन छब्बीह हुण नहीं गुज़ारा खद्दर लगदा भारा भारा ।
किद्धर जावे कन्त विचारा होंदी मारो मार ॥ माइयाँ० ५

कन्त विचारे जी जी करदे हर दम रहण उन्हां तों डर दे ।
रातों बहके मुठियां भर दे लग्गे सत्त हजार ।। माइयाँ० ६
रतन रंग अंगरेज़ी लाई घर दियां दी हुण शामत आई ।
डेम फूल बिन गल्लन काई गिट मिट कीत्ता स्वार ।। माइयाँ० ७

वे और हम

वे तो खाने हेतु दाने दानेको तरसें हाय,
कलप कलप योंही भूखो मर जाते हैं ।
रसना के दास हम सैंकड़ों प्रकार के ही,
व्यंजन मधुर खाते खाते न अघाते हैं ।।
फटी सी लंगोटी एक चीथड़ों की बाँधे हुए,
शीतकालमें वे नंगी देह ठिठुराते हैं ।
और हम एक ही दिवसमें अनेक वार,
विविध वसन से अति देह को सजाते हैं ।।
हमीं से दलित तो भी रोते धोते कड़ा श्रम,
करके हमारे हेत जीवन बिताते हैं ।
राग रागनियाँ हम स्वर में अलापते हैं,
मधुर मधुर बीणा बाँसुरी बजाते हैं ।।
सन्मुख ही कठोर चक्की अत्याचारों की में,
दीन हीन दुर्बल वे यों ही पिस जाते हैं ।
भाइयों की देखते हैं दशा हम निठुर हो,
आँसु न गिराते पर मनुष्य कहलाते हैं ।।

लक्खी बाई

काशी में थी एक अनाखी लक्खी बाई,
रंभा से भी रुचिर रूप वाली मनभाई ।
दूर २ तक थी प्रसिद्ध उसकी सुघराई,
चित्र देखकर हुए हज़ारों थे सौदाई ।
कथकों ने की शाइरी भाव बताने के लिए,
कितनोंने तोडे क़लम कवि कहलानेके लिए ॥ १
मिला बाहरी रूप रंग था उसको जैसा,
था स्वभाव भी मृदुसुकोमल सुंदर वैसा ।
कामशास्त्रका ग्रंथ चाहिए उसको कहना,
थे सब सिद्ध प्रयोग सदा लड़ता था लहना ॥
नाच और गाना कभी उसका होता था कहीं,
तिल रखनेको भी जगह तो फिर मिलती थी नहीं ॥ २
धनी शेठ जौहरी महाराजा रजवाडे,
जिनके देखे दूत अनेकों तिरछे आडे ।
आते जाते और बुलाते थे आदर से,
बरसाते थे रत्न और धन लाकर घर से ॥
एक लाख रुपया अगर कोई देता था कभी,
एक रात उसके निकट रहती थी लक्खी तभी ॥ ३
किन्तु उधर जो दीन दुखी दुख रोता आकर,
जाता वह होकर निहाल मन माना पाकर ।
विश्वनाथको अगर कभी घरसे जाती थी,
या गंगा पर पर्व दिवसमें वह आती थी ॥

तो लक्खी पर दृष्टियाँ पडती थीं इस ढंगसे,
ज्यों भौंरों की पंक्तियाँ मिलें कमलके अंग से ॥ ४
कोढ़ी लूले एक विप्र थे उसी पुरी में,
होता था रोमांच देखकर दशा बुरी में।
पीव अंगसे वस्त्र फोड़ बाहर छनताथा,
त्राहि त्राहि भगवान यही कहते बनता था ॥
प्रायश्चित्त उसे समझ अपने पहले कर्मका,
सहते थे चुपचाप सब कष्ट हृदयके मर्म का ॥ ५
पापी थे पर पुण्य न जाने कौन किया था,
जिससे पत्नी पतिव्रताने साथ दिया था।
चंद्र साथ चाँदनी और काया संग छाया,
वह थी पति अनुचरी जीवके जैसे माया ॥
सेवा करती हर घड़ी अपने पतिकी भक्ति से,
होने देती थी नहीं कष्ट उन्हें निज शक्ति से ॥ ६
करती थी सब काम सवेरे उठकर अपने,
पतिके पैरों पास लगे फिर प्रभुको जपने।
पतिकी आँखें खुली देखकर लाती पानी,
करती उन्हें प्रसन्न बोलकर मीठी बानी ॥
शौच कराकर प्रेम से धोती थी सब अंगको,
अपने हाथोंसे उन्हें घोट पिलाती भंग को ॥ ७
भोजनकर तैयार खिलाती अपने कर से,
और सुलाती पलँग बिछाकर अति आदर से।
फिर करके सत्कार अतिथिका भोजन करती,

तन मन धनसे आठ पहर पतिका दम भरती ॥
एक अलौकिक तेजका परिचय मुखमें मिल रहा,
दया शांति संतोष था आंखों भीतर खिल रहा ॥ ८
स्वामीका मुख मलिन देखकर इतने पर भी,
पतिव्रताने चैन न पाई फिर दम भर भी ।
बोली दोनों हाथ जोड़कर बोलो प्यारे,
चिंतित सा है चित्त कौनसे दुखके मारे ॥
वारूं तुम पर नाथमें हँसते २ जान भी,
पूर्ण करूंगी कामना आप कहेंगे जो अभी ॥ ९
कईबार यों कहा कबूला मगर न स्वामी,
टाल दिया कुछ नहीं प्रिये ! कह भरी न हामी ।
पीछे जब पड़ गई लगी रोने वह बाला,
हाथों से मुख ढाँप विप्रने तब कह डाला ॥
मैं पामर हूं पातकी किस मुँह से प्यारी कहूं,
लक्खी पर आसक्त हूं इसी हेतु दु खित रहूं १०
मुझको है यह विदित रूप धन उसको प्यारा,
मैं हूं कोढी घृणित बना वैतरणी धारा ।
कपड़ा देते लोक नाकमें देख मुझे सब,
लक्खी बाई फिर दरिद्र को मिलनेकी कब ॥
किन्तु नीच मन यह तदपि होता नहीं निरस्त है,
लोक हँसाई तुच्छ कर अपनी धुनमें मस्त है ११
पतिकी सुनकर बात सतीने सोचा दिलमें,
डालूंगी मैं हाथ नाथ ? नागिन के बिलमें ।

इच्छा पूरी करूं जिस तरह वह हो पूरी,
हूं पतिव्रता तो न रहेगी बात अधूरी ॥
यों विचार कर ब्राह्मणी बोली उस दम कुछ नहीं,
पतिको सोया देखकर फिर चलदी घरसे कहीं १२
लक्खी संध्यासमय द्वार पर आजाती थी,
होता था जो दुखी उसे घरमें लाती थी।
जो वह माँगे वही उसे देकर आदरसे,
करती थी वह विदा नित्य ही अपने घर से ॥
देखा उसने एक दिन देवी सी कोई खड़ी,
किसी प्रतीक्षामें अड़ी चिंतितसी है हो पड़ी १३
आँखें मिलते हाथ जोडकर लक्खी बोली,
किसकी तुम्हें तलाश किधर को इच्छा डोली।
जो चाहो सो देवि! यहां पर मिल सकता है,
नव आशामय मुकुल मनोरथ खिल सकता है ॥
खड़े न होने योग्य है किन्तु राह यह पाप की,
लक्खी बाई अति अधम दासी हूं में आपकी १४
युक्ति पूर्ण यह उक्ति श्रवणकर ब्राह्मण बाला,
बोली "मैंने यहां ढंग सब देखा भाला"।
पुण्यकार्यको पाप पंथ पर जो हो जाना,
तो उसमें कुछ दोष नहीं ऋषियोंने माना ॥
गुणधर जीवन नीचसे पावें ऐसी चाह में,
यही सोचकर आजमें आई हूं इस राह में ॥ १५

सुन सादर लेगई उसे घर लक्खी बाई,
पतिव्रताने बात खुलासा सभी सुनाई ।
चुप रहकर कुछ देर सोचकर बाई बोली,
देखो देवि! आठ रोजमें होगी होली ॥
उस दिन ब्राह्मण देवको दावत दूँगी भौन में,
दासी होकर करूंगी जौन कहेंगे तौन में ॥ १६
ब्राह्मणको जब मिला निमंत्रण बाईजीका,
विस्मित तकता रहा देर तक मुख पत्नीका ।
बुरी दुराशा हृदय बीच जो देती थी दुख,
वह आशा बन लगी कल्पनाका देने सुख ॥
ज्यों त्यों काटे आठ दिन होलीका दिन आगया,
गली गलीके गोलमें होलीका रंग छा गया ॥ १७
उबटन सौरभ सना बनाकर घना लगाया,
फिर नहला कर बांध पट्टियां साफ़ बनाया ।
वस्त्र इतरमें बसे हाथसे फिर पहनाए,
करके यों सिंगार सतीने सब सुख पाए ॥
लक्खी की थी पालकी आई लेने द्वार पर,
भेज दिया पतिदेवको उसपर स्वयं सवार कर ॥ १८
अतिथि आगमन समाचार सुनकर उठधाई,
अगवानीको आप द्वार पर लक्खी आई ।
आदरसे ले गई भवनके भीतर बाई,
पैर पखारे प्रथम आरती फिर उतराई ॥
फल गोरस मिष्टान्न कुछ ब्राह्मणको अर्पण किया,
और रसीली दृष्टिसे उनको सुखी बना दिया ॥ १९

आया फिर दो जगह भरा पानी पीनेका,
एक स्वर्णका कलश काम जिसपर मीनेका ।
मट्टीका भी वहीं दूसरा और पात्र था,
जो जलका सामान्य एक आधार मात्र था ॥
ब्राह्मण को यह देखकर मनमें कौतूहल हुआ,
पूछा यह क्यों किसलिए दो पात्रोंमें जल हुआ ॥ २०
तब लक्खीने कहा बात यह है साधारण,
ज़रा सोचिए जान पड़ेगा इसका कारण ।
स्वर्ण कलशमें भरा बर्फ़ का ठंडा जल है,
मट्टी के में भरा हुआ गंगाका जल है ॥
क्षणिक तृप्तिके बाद ही तृष्णा बढ़ती एक से,
और मिटे संताप सब ठंडक पड़ती एक से ॥ २१
आडंबर है उधर इधर गुणगरिमा सोही,
इनमें से जो रुचे ग्रहण करिए उसको ही ।
सुनकर सोचे विप्र ग्रहण गंगाजल करना,
जो न सुलभ मन उसी तर्फ़ क्यों चंचल करना ॥
बोले बाईजी सुनो मैं ब्राह्मण हूं जातिका,
गंगा जलको छोडकर पिऊँ न जल इस भाँतिका २२
तब होकर कुछ नम्र दृष्टि अपनी स्थिर करके,
बोली लक्खी विप्र ! और यों ही फिर करके ।
योग्य आपके देव ! आपका यह विचार है,
फिर गणिकाकी चाह हृदयमें किस प्रकार है ॥

स्वर्णकलशका बर्फ़ जल मेरे मिलन समान है,
इस सु-वर्णकी चमकमें बड़ों बडों का ध्यान है २३
जैसे ठंडी बर्फ़ तापको क्षण भर हरती,
फिर न मिले तो और प्यास को दूना करती।
वैसे गणिका प्रणय-साधनाका सुख होता,
बढ़ती जी की जलन शान्तिका सूखे सोता॥
गंगाजल है आपकी शीतल विमल पतिव्रता,
उसे छोड क्या उचित है करना ऐसी मूर्खता २४
सुन वेश्याके वचन विप्र सोते जागे से,
मोह होगया दूर हटा पर्दा आगे से।
सच तो है यह कहां रूप मृग तृष्णा ऐसी,
और कहां वह शान्ति रूपिणी गंगा जैसी॥
मुझसे तो वेश्या भली इतना जिसे विचार है,
मेरी मतिको ज्ञानको-शिक्षा को धिक्कार है २५
लक्खीने ऐसे उपायसे काम निकाला,
विप्र बचे वह बची प्रतिज्ञा को भी पाला।
ब्राह्मणने भी महाघोर तप करना ठाना,
प्रायश्चितसे मिटा कोढ, पाया मन माना॥
पतिव्रता भी अंततक पतिपद सेवा रत रही,
पाठक गण तुम भी कहो धन्य २ भारत मही २६

प्रल्हाद

दोहा—छोड दूं क्यों धर्मको, दो दिनकी सरवतके लिए ।
क्यों सदाक़त छोडदूं, फ़ानी हुकूमतके लिए ॥
क्यों जहालत में पड़ूं, राहे तरीक़त छोड कर ।
क्यों नरगका नाम लूं, अपनी हक़ीक़त छोड़कर ॥

जान ले लो पिता तुम मेरी शौक से,
पर यह बालक सदाक़तसे टलता नहीं ।
किस लिए जाल धोके का फैला रहे,
मुझपे जादू तुम्हारा यह चलता नहीं ॥
है वह क़ीमतमें सूरतमें अच्छा मगर,
कोई हीरेको हर्गिज़ निगलता नहीं ।
धर्म जड़ है जो पूछो तो इन्सानकी,
कटके जड़ पेड़ कोई भी फलता नहीं ॥
खुशनुमाई कमलकी है तालाब में,
छोड़ पानीको उसकी कुशलता नहीं ।
धर्म को करलूं तबदील क्यों पापसे,
कोई पत्थरसे गोहर बदलता नहीं ॥
आग पानी हवा खाक का जिस्म है,
इससे कुछ काम मेरा निकलता नहीं ।
कामकी चीज़ तो आत्माराम है,
जो कि कटता नहीं और गलता नहीं ॥
कौनसी जिंदगी है बताओ मुझे,
जिसका दिन एक दिन जाके ढलता नहीं ।

धर्म कुछ फेंकनेकी नहीं चीज़ है,
फूल पैरोंमें विद्वान मलता नहीं ॥

रात नहीं है

भूल न उसको धुन है जिधरकी, चौंक मुसाफ़िर रात नहीं है ।
शकल नुमायां अब है सहर की, चौंक मुसाफिर रात नहीं है ॥
आंखें मलते सिहन चमनमें, झूमके उट्ठे नींदके माते ।
देख सबाने आके ख़बर की, चौंक मुसाफिर रात नहीं है ॥
नीले नीले रंगके ऊपर, बढ़ती जाती अब है सफ़ेदी ।
होगई रंगत ज़र्द क़मर की, चौंक मुसाफ़िर रात नहीं है ॥
पंख पखेरू ख्वाबसे चौंके, सबने खुशीके नारे लगाए ।
आई सदा मुर्ग़ाने सहरकी, चौंक मुसाफ़िर रात नहीं है ॥
ज़ोर न ताक़त संग न साथी, पाओंसे अपने आप है चलना ।
तुझ पे भारी राह सफ़र की, चौंक मुसाफ़िर रात नहीं है ॥

अपना देश

अपने देशकी ठंडी हवाएँ, अपने देशकी मस्त फ़िज़ाएँ ।
सबका जी बहलाएँ, साजन ! सबका जी बहलाएँ ॥
अपने देशके फूल फुलारी, मीठे मीठे चश्मे जारी ।
सबका मन भरमाएँ, साजन ! सबका मन भरमाएँ ॥
अपने देशके सुंदर बूटे, रंग जिन्हें छूने से छूटे ।
आँखों में बस जाएँ, साजन ! आँखोंमें बस जाएँ ॥

अपने देशके पंछी सारे, जिनके सुन सुन कर चहकारे ।
मन मोहित हो जाएँ, साजन ! मन मोहित हो जाएँ ॥
अपने देशके नद्दी नाले, खेतोंके लहकाने वाले ।
जीवन ज्योति जगाएँ, साजन ! जीवन ज्योति जगाएँ ॥
अपने देशकी शोभा न्यारी, अपना देश है जग पर भारी ।
देशकी लीला गाएँ, साजन ! देशकी लीला गाएँ ॥

भारत-सन्तान

जान अगर रखते हो तनमें, देशका दर्द अगर है मनमें ।
क़ौम से कोई वैर नहीं तो, जीवन प्रेमका रूप बनादो ॥
प्रेम रूपकी सुंदर कलियाँ, कोमल और मनोहर कलियाँ ।
खिल खिल कर सन्तान बनी हैं, उनमें जीवन रस टपकादो ॥
दुनियामें सन्तानसे प्यारी, कोई नहीं ऐसी फुलवारी ।
जाति के हैं प्राण इसी में, इसमें अपने प्राण बसादो ॥
भोले भाले प्यारे बच्चे, आँखों के यह तारे बच्चे ।
सूना घर बस जाए जिनसे, उनपर अपना प्यार लुटा दो ॥
जानें क्या ? ये क्या क्या होंगे, सैनिक होंगे राजा होंगे ।
आगे की क्या खबर किसी को, मनके ऐसे भरम मिटादो ॥
इनकी न्यारी न्यारी शकलें, गोरी प्यारी प्यारी शकलें ।
तुतली बातें सुनकर इनकी, सुनने वालो मत मुस्कादो ॥
काली सीप कहाने वाली, मोती है उपजाने वाली ।
होते लाल गुदड़ियोंमें हैं, इन लालों पर जान लुटादो ॥
हीरे का तन पत्थर का है, लेकिन उसका दिल दरिया है ।
पलमें दूर कंगाली करदे, चाहे ताजसे उसे गिरादो ॥

कांटों में जो फूल पला है, बाग़की उससे ही शोभा है ।
रंकका सुत राजा बन जाए, दुनियाको यह भेद बतादो ॥
बच्चों का है देश निराला, प्यारा प्यारा भोला भाला ।
आपके हाथ है जीवन उनका, जैसा चाहो उन्हें बनादो ॥
बच्चों को निर्भय रहने दो, उनको मन आई कहने दो ।
उनके मारगसे हर काँटा, अपने हाथसे परे हटादो ॥
अपना रौब न उन्हें दिखाओ, क्रोध-अगनिसे उन्हें बचाओ ।
आसकी कलियाँ जो कुम्हलाएँ, प्यारका अमृत जल बरसादो ॥
प्यारसे भोजन उन्हें खिलाओ, प्यारा कहकर उन्हें बुलाओ ।
उनको कभी निराश न रक्खो, अपना तुम कर्तव्य निभाओ ॥

आदमी दे

अय खुदा हिंदोस्तां को बख्श ऐसे आदमी,
जिनके सिर में मग्ज़ हो ओर मग्ज़में ताबिंदगी ।
जिनकी फ़िक्रे ताज़ह में हो इजतहादी बांकपन,
जिनकी अक़्लोंपर न हो बारे-रवायाते कुहन ॥
मौत को पूजें जो उम्रे-जावदानी की तरह,
खून जो अपना बहा सकते हैं पानीकी तरह ।
जो जबीं तदबीर तसख़ीरे जहां के वास्ते ।
और मरें तो भी फ़क़त हिंदोस्तां के वास्ते ॥
जिनके सीनों में हो रोशन हुब्बे मिल्लतके चिराग,
दिल तो दिल दिलकी तरह जिनके धडकते हों दिमाग़ ।

जिनके बरबतमें दहकती ज़िंदगीका राग हो,
जिनके दिलमें वलवले हों वलवलोंमें आग हो ॥
अय खुदा हमको तराए कुफ्रो-ईमां से बचा,
ऐसे हिन्दूसे बचा ऐसे मुसल्मां से बचा ।
रूह की अफ्र-अत से हों जो आसमानी आदमी,
दे हमें बारे खुदा हिंदोस्तानी आदमी ॥
अल्ग़रज मेरे वतनको जिंदगी दे अय खुदा,
आदमी दे आदमी दे आदमी दे अय खुदा ।

आग लगादे

दुनिया है इक लोभ का मंदिर लोभी बुत मंदिर के अंदर ।
पूजाकी कलियां माया धन, प्रोहित पुजारी प्रेमके दुश्मन ॥
मनके गंदे तनके सुंदर, आ हिरदों से लोभ मिटादे ।
सतगुरु अपनी सीख सुनादे, हिरदे में इक आग लगादे ॥
दुनिया वाले धनके बंदे, धनके बंदे मनके गंदे,
संगी साथी लोभी सारे, जीते हैं माया के मारे ।
झूठे दुनियाके सब धंधे, बने फिरें मायामें अंधे ॥
आ सतगुरु निज झलक दिखादे, उत्तम ज्ञानकी सीख सुनादे ।
हिरदे में सत सुमति बिठादे, अपना पन सबको बतलादे ॥
जीवन नाव खाय झकझोले, पाप भँवर लहरों को तोले ।
कोई नहीं संगी जो बचाए, कोई नहीं जो हाथ बटाए ॥
खेवनहारोंका मन डोले, कँपते पैर हाथ हुए पोले,

सतगुरु अब तू पार लगादे, ज्ञान की धुनको आके जगादे ।
हिरदेमें इक आग लगादे, सारे पापों को सुलगादे ॥

यह तुझको तरसाएगा

आँखें अंधी मन भी अंधा, अंधी तेरी क़िस्मत भी ।
क़बर सिफ्त घरमें भी अंधेरा, अंधी है यह दौलत भी ॥
तेरे इन ज़ालिम हाथों ने, मस्कीनोंके दिल तोड़े हैं ।
जुल्म किए हैं हक छीने हैं, तब ये पैसे जोड़े हैं ॥
लानत दुनिया भरकी तूने, खूब इकट्ठी करली है ।
लाखों जेबें ख़ाली करके, अपनी थैली भरली है ॥
माल ख़ज़ाना पास तेरे है, लेकिन इतमीनान नहीं ।
इतमीनान कहांसे आए, जब दिलमें ईमान नहीं ॥
यह बे फैज़ ख़ज़ाना तेरा, तेरे काम न आएगा ।
तूने दुनिया को तरसाया, यह तुझको तरसाएगा ॥
चैन तेरी क़िस्मतमें हरगिज़, ओ सरमाएदार! नहीं ।
मजदूरोंकी चीख़ें हैं यह, सिक्कोंकी झनकार नहीं ॥
तनहाईमें अंदेशोंके, भूत सताते रहते हैं ।
तेरी दौलत छीनने वाले, हाथ डराते रहते हैं ॥
थैली खोलके हो जाता है, हाल बुरा हरबार तेरा ।
यह दौलत कर देगी आख़िर, क्या कुछ बेड़ा पार तेरा ॥

चर्खा

तन चर्खा हुआ पुराना, चर्खा चलता नहीं मन माना- ॥
पग खूंटे दो लग गए हिलने, बिच मझला खिसकाना,
ढीली हुई पाँखुड़ी पसली, चले नहीं मनमाना ॥ १
रसना तकलीने बलखाया- वह अब कैसे छूटे,
शब्द सूत सीधा नहीं निकले; घड़ी घड़ी में टूटे ॥ २
आयु मालका नहीं भरोसा, अन्त चलाचल सारे,
रोगी रोग मरम्मत चाहे, वैद्य बढ़ई पच हारे ॥ ३
नया चरखला रंगा चंगा, सबका चित्त चुरावे,
पलटे वर्ण गए गुण अगले, अब देखा नहीं भावे ॥ ४
मोटा महीं कातकर अब भी, कर अपना सुलझेड़ा,
अन्त आगमें ईंधन होगा, भूधर समझ सवेरा ॥ ५

आजका वैराग्य

इसे ही कहते हैं वैराग्य,
तो विरागता के सचमुच ही, समझो फूटे भाग ।
निर्मल वस्त्र बिगाड़ा उसपर, धरा सुनहला रंग,
लज्जित हुआ जाल माया का, देख जहां का ढंग ॥ १
क्रोध कमण्डलु-मोह माल, कर लिया द्रोह का दंड,
लोभ लँगोटा बाँध फैलाते, हो प्रचंड पाषंड ॥ २
तनमें भस्म रमाई करके भस्म सभी घर बार,
अब चिमटा ले निकल पड़े हो, करने जग उद्धार ॥ ३

घर घर टुकड़े माँग रहे हो, तपके बलको धन्य,
दर दर नित धक्के खाते हो, अहो कष्ट तप-जन्य ४
चोरी जूवा लफ़ंगे पन में, हो तुम गुरु घंटाल,
गांजा भंग अफ़ीम चरस रस मदिराके हो काल ५
झूठ मूठ ले नाम राम का, करते हो आराम,
जो सचमुच तुम भजन करो तो, क्यों न मिले आराम ६
संसृतिमें तुम स्वयं पड़े हो हमें दिलाते मुक्ति,
धन्य धन्य अध्यात्म शक्ति को, धन्य मुक्ति की युक्ति ७
बहुत हो चुकी गुरुडम लीला, अब इससे मुँह मोड़,
बाबा जी अब बन मानस तू, बन मानस पन छोड ८

गौतमी और बुद्ध

महात्मा बुद्ध सा ज्ञानी नहीं, महात्मा बुद्ध सा ध्यानी नहीं।
गौतमी यह सोचती आई वहां, ध्यानमें थे बुध स्वयं बैठे जहाँ॥
कह उठी भगवन् कृपा यह कीजिए, पुत्र मेरा जिला फिरसे दीजिए
बुद्धसे यह दीन स्वर न सहा गया, देख दुखिया को इन्हें आई दया
औ कहा जा ढूंढ कोई एक घर, मौत जिसमें हो कभी आई न पर।
एक मुट्ठी राई उसकी ला मुझे, पुत्र मैं तेरा जिलाकर दूं तुझे॥
गौतमी घर घर गई यह पूछती, गौतमी दर दर गई यह पूछती।
पर मिला उत्तर उसे यह द्वार द्वार, मौत तो आई यहाँ है बार बार॥
अन्तमें लाचार हो वापस चली,
और उसकी होगई कम बेकली।

राणा-प्रताप—

दोहा—जेहि रच्छी इक्ष्वाकुसौं अबलौं रघुकुल राज,
हाय अधम परताप तू तजत ताहि है आज ।
तजत ताहि है आज प्राण सम प्यारी जो ही,
हे मिवार सुखसार ! कृपा करि छमियो मोही ।
रह्यो सदा ह्वै भार काज आयो तुमरे केहि ?
बिदा दीजिए हमें भार हलुकाय आज जेहि ॥

भामा शाह—धिक सेवक जो स्वामि काज तजि जीवन धारे,
धिक जीवन जो जीवन हित जिय नाहिं विचारे ।
धिक शरीर जो निज कर्तव्य विमुख ह्वै बंचै,
धिक धन जो तजि स्वामिकाज स्वारथ हित संचै ॥
धिक देश शत्रु किरतघ्न यह भामा जीवत नहिं लजत,
जेहि अछत बीर परताप वर असहायक देशहिं तजत

कविराज—जेहि धन हित संसार बन्यो बौरो सो डोलै,
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपनो अनमोलै ।
जो अनर्थको मूल सूल हियमें उपजावै,
पिता पुत्र पति पत्नि अनुजसौं अनुज छुड़ावै ।
सो सात पुरुष संचित धनहि तृण समान तुम तजत हो,
धन स्वामि भक्ति मंत्रि प्रवर ताहू पै तुम लजत हो ।

झालाकी आत्मा-बलि

हल्दी-घाटीमें मानसिंह अकबर सेनापति और प्रतापका युद्ध हुआ था, उस समय झाला का आत्मबलिदान सराहनीय हुआ ।

निर्बल बकरोंसे बाघ लड़े भिड़गए सिंह मृग छौनों से,
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी पैदल बिछ गए बिछौनों से ।
हाथी से हाथी जूझ पड़े भिड़ गए सवार सवारों से,
घोड़ों पर घोड़े टूट पड़े-तलवार लड़ी तलवारों से ।
हय रुंड गिरे गजमुंड गिरे भू पर हय विकल वितुंड गिरे,
लडते लडते अरि झुंड गिरे कट कट अवनी पर शुंड गिरे ।
धड़ कहीं पडा सिर कहीं पड़ा कुछ भी उनकी पहचान नहीं,
शोणितका ऐसा वेग बढ़ा मुरदे बहगए निशान नहीं ।
मेवाड केसरी देखरहा केवल रण का न तमाशा था,
वह दौड़ दौड़ करता था रण वह मान रक्त का प्यासा था ।
चढ़कर चेतक पर घूम घूम करता सेना रखवाली था,
ले महा मृत्यु को साथ साथ मानो प्रत्यक्ष कपाली था ।
रण बीच चौकडी भर भर कर चेतक बन गया निराला था,
राणा प्रताप के घोड़े से पड़ गया हवा को पाला था ।
जो तनिक हवासे बाग हिली ले कर सवार उड़ जाता था,
राणाकी पुतली फिरी नहीं तब तक चेतक मुड़ जाता था ।
है यहीं रहा अब यहाँ नहीं वह वहीं रहा है वहां नहीं,
थी जगह न कोई जहाँ नहीं किस अरि मस्तक पर कहाँ नहीं ।
भाला गिर गया गिरा निषंग, हय टापों से खन गया अंग ।
वैरी समाज रह गया दंग, घोड़े का ऐसा देख रंग ॥

सेना नायक राणा के भी रण देख देख कर चाह भरे,
मेवाड़ सिपाही लडते थे दुगने तिगुने उत्साह भरे।
क्षण मार दिया कर कोड़े से रण किया उतर कर घोड़े से,
राणा रण कौशल दिखा दिखा, चढ़ गया उतर कर घोड़े से।
जो साहस कर बढ़ता उसको, केवल कटाक्षसे टोक दिया,
जो वीर बना नभ बीच फेंक बरछे पर उसको रोक दिया।
क्षण उछल गया अरि घोड़े पर क्षण लड़ा सोगया घोड़े पर,
बैरी दलसे लड़ते लड़ते क्षण खड़ा हो गया घोड़े पर।
ऐसे रण राणा करता था, पर उसको था सन्तोष नहीं,
क्षण क्षण आगे बढता था वह, पर कम होता था रोष नहीं।
कहता था लड़ता मान कहाँ मैं करलूं रक्त स्नान जहाँ,
जिसपर तय विजय हमारी है, वह मुगलों का अभिमान कहाँ।
तब तक प्रतापने देख लिया, लड़ रहा मान था हाथी पर,
अकबर का चंचल साभिमान उडता निशान था हाथी पर।
वह विजयमंत्र था पढ़ा रहा अपने दलको था बढ़ा रहा,
वह भीषण समर भवानी को पग पग पर बलि था चढ़ा रहा।
फिर रक्त देहका उबल उठा जल उठा क्रोधकी ज्वाला से,
घोड़े से कहा बढ़ो आगे बढ़ चलो कहा निज भाला से।
रंचक राणाने देर न की घोड़ा बढ़ आया हाथी पर,
बैरी दलका सिर काट काट राणा चढ़ आया हाथी पर।
क्षणभर छल बल कर लड़ा अड़ा दो पैरों पर हो गया खड़ा,
फिर अगले दोनों पैरों को गजके मस्तक पर दिया गड़ा।
यह देख मानने भालासे करनेकी की क्षण चाह समर,
इस तरह थाम कर झटक दिया हाथी की तब झुक गई कमर।

राणाके भीषण झटके से हाथी का मस्तक फूट गया ।
अंबर कलंक उस कायर का भाला भी दब कर टूट गया ॥
राणा बैरीसे बोल उठा देखा न समर भाला से कर,
लडना तुमको है अगर अभी तो फिर लड़ले भाला लेकर ।
"हाँ हाँ लडना है" कह कर जब, बैरी ने उठा लिया भाला,
क्षण भौंह चढाकर देख दिया काँपे जो हाथ गिरा भाला ।
राणाने हँसकर कहा मान अब बस करदे हो गया युद्ध ।
बैरी पर वार न करने से मेरा भाला हो रहा क्रुद्ध ॥
अपने शरीरकी रक्षाकर भगजा भगजा अब जान बचा,
यह कह कर भाला उठा लिया भीषणतम हा हा कार मचा ।
छिप गया मान हौदे तल से टकराकर हौदा टूट गया,
भालाकी हलकी हवा लगी पिलवान गिरा तन छूट गया ।
अब विना महावत के हाथी चिंघाड़ भगा राणा भयसे,
संयोग रहा बच गया मान खूनी भाला राणा हय से ।
सागर तरंगकी तरह इधर वैरी राणा पर टूट पड़े ।
तलवार गिरी शत एक साथ शत बरछे उन पर छूट पड़े ॥
राणाके चारों ओर मुगल होकर करने आघात लगे,
खा खा कर अरि तलवार चोट क्षण क्षण होने भूपात लगे ।
पर दिन भर लड़नेसे तनमें चल रहा पसीना था तर तर ।
अविरल शोणितकी धारा थी राणा क्षतसे बहती झर झर ॥
तब तक झालाने देख लिया राणा प्रताप है संकट में,
बोला न बाल बाँका होगा जब तक हैं प्राण बचे घट में ।
अपनी तलवार दुधारी ले भूखे नाहर सा टूट पड़ा,
कल कल मच गया अचानक दल आश्विनके घट सा फूट पड़ा ।

राणा की जय राणा की जय वह आगे बढ़ता चला गया,
राणा प्रतापकी जय करता राणा तक चढ़ता चला गया।
रख लिया छत्र अपने सिर पर राणा प्रताप मस्तकसे ले,
ले स्वर्ण पताका जूझ पड़ा रण भीमकला अन्तकसे ले।
झालाको राणा जान मुगल फिर टूट पड़े वे झाला पर,
मिट गया वीर जैसे मिटता परवाना दीपक ज्वाला पर।
झालाने राणा रक्षा की रखदिया देशके पानी को,
छोड़ा राणाके साथ साथ अपनी भी अमर कहानी को।

महारानी सीसोदनीका पत्र

राज्यके लिए शाहजहां के पुत्र दारा और औरंगज़ेब आपसमें लड़े थे। तब जोधपुर राजा जसवन्तसिंहने दारा का साथ दिया, वह समर से पीठ देकर जोधपुर भाग गया। गुस्सेमें उसने गढ़का फाटक बंद करा दिया। यह पत्र उसी अवसर पर रानी ने भेजा था।

हे ना····नहीं नाथ नहीं कहूंगी, अनाथिनी हो कर ही रहूंगी।
होते कहीं जो तुम नाथ मेरे, तो भागते क्या फिर पीठ फेरे॥
यथार्थ ही क्या मुँह को छिपाए, संग्रामसे हो तुम भाग आए।
धिक्कार है हा! अब क्या करूं मैं, रक्खी कहां मौत कि जो मरूं मैं॥
हा पीठ वैरी दलको दिखाके, त्यों हार माथे पर यों लिखाके।
आए दिखाने मुँह हो यहाँ क्या, भला बनेगा तुमसे कहां क्या॥
परन्तु मैं होकर वीर बाला, जो लोक में है करती उजाला।
देखूं तुम्हारा मुँह आज कैसे, सहूं कहो तो यह लाज कैसे?॥
आए यहां क्या छिपने घरोंमें, या रानियों के घन घाघरोंमें।
परन्तु भागे तुम भीरू ज्योंहीं, हुए कहो क्या हत वे न त्यों ही॥

जो मृत्युकी थी इस भाँति भीति, जो मेटनी थी निज रीति नीति।
तो जन्म क्यों सत्कुलमें लिया था, क्यों व्याह राना कुलमें किया था।
जयाङ्घिजा कोन वरा गया जो, न युद्धका सिन्धु तरा गया जो।
तो क्या मरा भी न गया समक्ष, डूबा सभी हा तुमसे स्वपक्ष॥
राठौर! क्या लाज तुम्हें न आई, जो कीर्ति दोनों कुल की मिटाई।
क्या देह से है यश हाय छोटा, या मृत्युसे है अमरत्व खोटा॥
संग्राममें जो तुम काम आते, तो लोकमें निश्चल नाम पाते।
मैं भी सती होकर धन्य होती, न क्षत्रिया होकर आज रोती॥
न भाग्यमें था यह किन्तु मेरे, दुर्दैव हैं ये सब काम तेरे।
तू जो करे सो सब ठीकही है, मनुष्य विश्वास अलीक ही है॥
माँ मेदिनी तू फट मैं समाऊँ, कुकीर्ति से जो अब त्राण पाऊँ।
न लोकमें मैं यदि जन्म पाती, तो भीरु भार्या फिर क्यों कहाती॥
नहीं नहीं मैं यदि भीरु भार्या, तो कौन होगी फिर और आर्या।
हाँ है तुम्हीं ने निज लाज खोई, परन्तु मेरे तुम हो न कोई!।
सीसोदियों के बनके जमाई, है कीर्ति अच्छी तुमने कमाई!
आई तुम्हें लाज न नाम की भी, रक्षा न होगी अब धामकी भी॥
सुना तुम्हें था वर वीर मैंने, सौंपा तभी था स्वशरीर मैंने।
यथार्थता किन्तु मुझे तुम्हारी, हुई अभी है यह ज्ञात सारी॥
जाओ यहां से तुम लौट जाओ, तुम्हें यहां स्थान कहाँ कि पाओ।
हो शून्य तो भी यह सिंह पौर, है गीदड़ों को इसमें न ठौर॥
चाहे अवज्ञा करके तुम्हारी, मैंने किया हो अपराध भारी।
परन्तु मैं होकर क्षत्रियाणी, कैसे कहूं हा न यथार्थ वाणी॥
मेरा तुम्हारा न मिलाप होगा, हा शान्त कैसे यह ताप होगा।
विश्वेस लेवें सुध शीघ्र मेरी, देवें मुझे मृत्यु करें न देरी॥

परिशिष्ट नं० १

जम्मूसे विहार

जब चतुर्मासके कुछ ही दिन अवशिष्ट थे, एक दिन प्रातः व्याख्यान समाप्त होते होते एक शततनु-विशालकाय डेप्यूटेशन श्रीस्यालकोट नगरसे आया। मुख्य-मन्त्री महानुभाव श्रीहरबंशलालजीने उच्चकोटिकी योग्यताके ढंगसे संघकी प्रार्थनानुसार स्यालकोट पधारनेके लिए बलपूर्वक विनय की। तथा निवेदन किया कि लंबे समयसे हम लोग आपकी बाट मेह की तरह देख रहे हैं। जैन संघकी प्रबल इच्छा है की आप यहां से विहार करनेके अनन्तर स्यालकोट को पवित्र करें। वहां आपकी तथा आपके विचारों की अत्यन्त ही आवश्यकता है। आशा है संघकी प्रार्थना ध्यानपूर्वक स्वीकार करें, और वहां पदार्पण करके हमारी विखरी हुई संघशक्ति को आप ही बटोरें, और हम में से साम्प्रदायिकता का विकार निकाल बाहर फेंकें। इस प्रकार अनेक रुके हुए धार्मिक कार्यों को उन्नत पद पर पहुचावें।

श्रीगुरुदेवने फ़र्माया कि यहां से जब सीधी सड़कके मार्गसे विहार करुं, तब स्यालकोट ही अवसर देखूंगा ?

बस इतना सुननेकी देर थी कि स्यालकोट जैन संघको तो मानो खोया हुआ निधान मिल गया। असीम आनन्दमय प्रेरणाओंसे श्रीज्ञातपुत्र-महावीर-भगवानके जयनाद से जम्मू और दशों दिशाओंको ध्वनित कर दिया।

श्रीमहाराज साहब चतुर्मास समाप्तिके पीछे अखनूर पधार गए तथा जम्मू वापस पधार कर एक मास फिर रहे। तथा पुनः जिस दिन

विहार होने लगा उस दिन प्रवचनके अनन्तर जम्मू जैन संघकी ओर से अति भक्तिभावपूर्वक **अभिनंदन पत्र** प्रस्तुत किया, जिसका देहसूत्र यह है—

× × × ×

नमो त्थु णं ?

ज्ञातपुत्र-महावीर जैन-संघीय, प्रातःस्मरणीय, महाप्रभावक, मुजस्सिम अहिंसा व करम, सत्य और शान्तिकी साक्षात्-मूर्ति, परमत्यागी, महापण्डित, व्याख्यान-वाचस्पति, सर्वगुणालंकृत, श्रीश्री १०८ श्रीस्वामी फूलचन्द्रजी महाराजके पवित्र चरण-कमलोंमें—

श्रद्धाके फूल

भगवन्! जैनसाधुसमाजमें आपका जीवन उस पुष्पकी तरह है, जिसकी सुगंधमें तमाम वाटिका महक रही हो, आपकी योग्यता उस विशाल सिंधुकी तरह है, जिसका पानी हवाओंपर उड़कर आकाश की प्यास बुझाता है, और धरतीपर बरसकर तपते सहराओं-पथरीली ज़मीनों-खुश्क पहाड़ियों-और तिशनह नदियोंके हलक तर करता है। आपका त्याग उस सूरजकी तरह है जिसकी शोख़ किरनोंकी हरारतसे पत्थरोंकी रगें भी चटख़ने लगती हैं। आपकी दया हिमालयके इस शीतल वातावरणकी तरह है, जिसका सम्पर्क आतिश-फ़िशांके उब-लते हुए लोहे को भी शान्त कर देता है। आपकी तपस्या उस ध्रुव की तरह अटल है, जिसके गिर्द समस्त सूरज मंडल घूम रहा हो। आपका ब्रह्मचर्य कलजुगमें सतजुगकी नेकियोंका एक हलका मीठा प्रतिबिंब है। और आपका ज्ञान उस वायुमंडलकी तरह है, जिसके सीनेमें सितारों-जमीनों और पानियोंके जीवनका रहस्य पोशीदह है—

मुनीश्वर ! आप एक आदर्श मनुष्य हैं। आदर्श साधु हैं। आदर्श ब्रह्मचारी हैं, आदर्श तपस्वी हैं। आदर्श त्यागी हैं। आदर्श विद्वान् हैं। और ज़िंदगीकी तमाम शाखोंमें इस आदर्शताने आपको मनुष्यसे देवता बना दिया है। आप इस बीसवीं सदी के मानव-समाजके नांगा पर्वतकी वह चोटी साबत हो रहे हैं, जिसकी बिलंदी को आजतक किसी भी मुहिमकी दुरबीनोंके शीशोंकी तेज़ी छू नहीं सकी है। और साधुसमाजमें आपका वही दरजा है, जो दरियाओंमें गंगा का, पहाड़ोंमें सुमेरूका, पक्षिओंमें गरुड़का और वृक्षोंमें कल्प-वटका है।

परमतेजस्वी मुने ? आप साधुसमाजमें एक ऐसे दर्जेको पहुँच चुके हैं, कि आपके क़दमों पर धनवानके रुपया, अदीबके क़लम, शाइ-रके तख़ील, जाँबाज़की तलवार, और राजाओंकी नख़ूतका सलाबे-अख़्त्यार झुक जाता है। आप प्राचीन गाथाओंके उस सर दौर का नमूना हैं, जिसके किनारे शेर और बकरी इकठे पानी पीते थे। आप उस वृक्षकी तरह हैं, जिसकी छायामें भेड़ अपनी दुर्बलता और भेड़िया अपनी दरंदगीको भुला जाता था। आपकी अहिंसा उस समै तक कितने ही मक़तलोंको मक़फ़ल और अत्याचारके कितनेही केन्द्रों को मुहिंदम कर चुकी है। जैन समाज आप पर जितना भी फ़ख़र करे कम है। सिर्फ जैन समाज ही क्यों आप पर तो तमाम भारत वर्ष-बल्कि तमाम मानवसमाजको गौरव है। आप दुनिया भरकी तोपों-टेंकों-तलवारों और बंदूकोंको समंदरकी नीलगों गहराइओंमें डबोकर परस्पर प्रेमकी भावनाको जागृत करके क़ौमोंके झगड़े चुकाना चाहते हैं। आप अहंकार-नफ़रत और लूट मार की आँधिओंको

रोक देना चाहते हैं। आप संसारको मनुष्य मात्रके लिए एक स्वर्ग बना देना चाहते हैं। आप सोने-चाँदीके ज़ंजीरोंमें जकड़े हुए समाजको यह यक़ीन दिलाना चाहते हैं कि इन पत्थरों और धातुओंके मुक़ाबलेमें ज़िंदगीकी क़ीमत क्या है? आपकी निगाहोंमें एक नन्ही चिउंटी भी नीलमके सुमेरुसे क़ीमती है। आप दुनियाकी लड़ाकी क़ौमोंको एक सन्देश दे रहे हैं, और वह यह के रंग-नसल और खूनकी दिवारें अप्राकृत हैं। नगरोंकी चार दिवारी और मुल्कों की सरहदें भी ग़ैर-फित्तरती हैं। यह तमाम संसार के तमाम प्राणियोंका मुश्तरक्रा घर है। बेरीके पेड़ पर सुबह हज़ारों चिड़ियाँ बैठती हैं। और इनमें किसी ख़ास शाखकी मिल्कीयतके लिए झगड़ा नहीं होता। उन्होंने कहीं अपने नामके बोर्ड टहनियोंपर नहीं लगा रखे हैं। नसल और मुल्क आपके ख़यालमें नफ़रत और जंगोजदल के रास्ते हैं। यह तमाम खूंरेजीकी राहें हैं। यह तमाम राहें नरकके फाटकपर ख़तम होती हैं।

महाप्रभावक मुनिराज! आप भगवान् महावीर स्वामीका संदेश भारतके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक घूम घूम कर अजैन समाजके कानमें भी फूँक रहे हैं। और पूरबकी पहाड़ियोंसे एक ऐसे नूतन समाजका सूरज आपकी यतनशीलतासे तलूअ होने वाला है जिसके क़दमों पर जोलियन-सीज़र-नीरो-ज़ार-कस्तर-नेपोलियन-चंगेज़-हलको-हिटलर और मुसोलिनी की रुहें मज़ामतके आँसू बहाएँ गी। और यह इक़रार करेंगी कि हमने इन्सानियतके सीनेपर अपने ख़ंजरों और अपनी तलवारोंसे जो ज़ख्म लगाए थे उन्हें सिर्फ़ भगवान महावीर प्रभुकी अहिंसा ही मन्दमल कर सकती है। वह बड़ी उँची

आवाज़में यह भी इक़रार करेंगी, कि संसारमें हथियारों से कभी शान्ति नहीं फैल सकती। यह अमृत सिर्फ़ एक ही आसमानसे टपकता है। और यह आसमान वही है, जिसके निर्माता ज्ञातपुत्र-भगवान श्रीमहावीर प्रभु थे। जब तक मानव समाज इस पथ पर कामिल निष्ठा और हार्दिक श्रद्धासे चलना आरंभ न करेगा, उसके शरीर पर नादिर-चंगेज और हलाकुसे फोड़े पैदा होते ही रहेंगे।

परम प्रचारक महर्षे! आपने दुनियाके तमाम आबाद हिस्सोंके दिलों और दिमागों पर इस सचाईके निहायत गहरे नक़ूश सब्त कर दिए हैं कि जैन धर्म एक साइंटिफिक धर्म है। अगर सर्दिओंमें इंगलिस्तान और रुसके बर्फ़ानी बादलोंकी टुकडियाँ सूरजको इन्सानी निगाहोंसे ओझल किए रक्खें तो इसका हर्गिज़ यह मतलब नहीं कि इन मुल्कों के लोग सूरजके वजूद ही से मुनकिर हो जाएँ। सूरजका वजूद एक अटल सचाई है। इस तरह हिंसा-कदूरत जमायती तास्सुब के झक्कड़ जैनधर्मके रास्तेमें हायल होते रहे हैं। जिसके सबब यह ख़याल पैदा हो गया था, कि, अहिंसा और दया महज़ बुजदिल और भीरुताके लक्षण हैं। आपने इस महा अज्ञानको दूर करते हुए संसारको यह यक़ीन दिलाया है कि अहिंसा वह वाहिद ताक़त है जो संसारमें जुल्मो जबर और तशद्दुदको मुस्तक़िल तौर पर रोक सकती हैं।

परम-उपकारी गुरुदेव! आपने हमारी विनतीको कमाल महर-बानीसे मंजूर करते हुए आठ माहमें १६०० माइल दुर्गम रास्तेकी कठिनाइओंको बरदाश्त करते हुए **कराची से श्रीनगर** और **फिर श्रीनगरसे जम्मू** पधारकर हमारे दर्म्यान बरसातके चार महीने

निहायत खुश अस्लूबीसे व्यतीत किए हैं। आप के विचारप्रवाहकी जो गंगा यहां आजतक बहती रही है, उसने बीसिओं बुझे हुए दीपक जला दिए। सैंकड़ों सोए हुए अन्तःकरणोंको मोह निद्रासे जगाकर रत्नत्रयके सुमार्गपर आरूढ किया। और हज़ारों दिलोंकी मैल धो डाली। दर हक़ीक़त यही वह पवित्र मक़सद है, जिसके लिए आपने साधुजीवन धारण कर रखा है। आपने हमें बतादिया कि मनुष्यमात्र इन्सानका नसबुल-आईन क्या है? आपने अज्ञानमयी अंधकारको दूर भगा दिया है। हम तमाम नतमस्तक सहित यह इक़रार करते हैं, कि आपने हमारे दिलोंमें जो दीपक प्रकाशित किया है, उन्हें हम स्वार्थकी फूकोंसे कभी बुझने न देंगे। आपके धन्यवादका सबसे अच्छा तरीक़ा यही है कि हम अपने जीवनको उस शिक्षाके सांचोंमें ढालनेका यतन करें, जो आपने हमें प्रदान की हैं। और जिसे आपने स्वयं केवल स्वाध्यायसे नहीं बल्के त्याग-तपस्या और अनुभवसे प्राप्त किया है।

तहरीर २५ कार्तिक-संवत् २००३

हम हैं आपके श्रद्धालु—

मेम्बरान S. S. जैन सभा जम्मू

भूतपूर्व दिवान विशनदास, रायबहादुर-मेजर जनरल C. S. I. C. I. E; प्रेजीडेंट सभा हाजा,

पनालाल वाइस प्रेजीडेंट,

मुनशीराम, सेक्रटरी-सभा हाज़ा।

परिशिष्ट नं. २

स्यालकोट नगरमें आनन्द ही आनन्द छा गया, आनन्दमय वर्षा-बरसने लगी, भव्य-भावुकोंके सूखे हुए मानस क्षेत्रमें पुष्कलावर्त वारिदलकी बाढ़ सी आगई। नगरनिवासियोंके रोम रोमसे आनन्द ही आनन्द फूटा पड़ता था। जैन-संघ और नागरिकवृन्दसे उपाश्रयकी बिल्डिगमें आज मानों तिल धरनेको भी स्थान न था। आज यहांके स्थानकका भवन छोटासा भासने लगा। नीचे ऊपर आस-पास सब जगह मानव-मेदिनीने आकाशमें विकास पाया। × ×

नियमपूर्वक सवेरे आठ बजेसे ११ बजे तक यहां का जनसमुदाय श्रीगुरुदेवके मुखारविंदसे निकले हुए ज्ञानामृतका पान २५ दिन तक खूब ही करता रहा। लोगोंमें अद्वितीय जागृती की लहरसी दौड़ गई। सबने सर्व धर्म जाति एवं सम्प्रदाय में समभाव रखना सीखा। आपसका ज़हर-वैर ढीला सा पड़ने लगा। युवक समाजने तो साम्प्रदायिक पक्षपात एवं राग द्वेष, खींचतान और अपने-पराए के खूंटे उखाड़ फेंके। ये लोग टोलावादके बंधनसे छूटे। श्रीज्ञातनन्दन महावीर भगवानके सब साधुओंको समताकी दृष्टिसे देखना सीखा। सब देशके मुनिओंमें समान प्रेम और भक्ति करना प्राप्त किया किसी भी टोलेका अथवा किसी भी देशका साधु हो इन्होंने तो सबको गुरुभावसे माननेका पाठ सीखा। भगवानके आदेशानुसार साधु-संयमजीवी-साधुको साधु क़रार दिया। यजमान और पुरोहित वाली कंठी तोड़ डाली। अपने पराएका सवाल ही उड़ा दिया।

विहार वाले दिन श्रीगुरुभगवान्‌के श्रीचरणोंमें व्याख्यानके पूर्ण होनेपर स्यालकोट जैन संघकी ओर से **अभिनन्दन पत्र** भेंट किया । जो कि गुणग्राहिता पूर्वक मनकी सच्ची-सही और पवित्र लगनसे समृद्ध था । अभिनन्दनपत्र पढ़ते समय लोग अपार हर्ष उत्साहमें झूम रहे थे । उस आनन्दके समय तो सचमुच इन्द्रका अखाड़ा फीकासा प्रतीत होने लगा था । अच्छा अभिनन्दनपत्रका मज़मून भी पढ जाइए । वह यही तो है—

ज्ञातपुत्र-महावीर जैन-संघीय श्रीश्री १०८ बालब्रह्मचारी पंडित राज, व्याख्यानवाचस्पति, प्रसिद्धवक्ता, श्रीस्वामी फूलचंदजी महाराज के चरणकमलोंमें—

श्रद्धाके फूल

श्रीगुरुदेव! आप असम बामसम्मी हैं, आप हक़ीक़ी मायनोंमें वह फूल हैं, जिसकी खुशबूसे तमाम भारतवर्ष महक उठा है । हम अपनी खुशक़िस्मती पर फ़ख्र किए बग़ैर नहीं रह सकते, कि आप हमारे शहरमें तशरीफ़ लाकर हमें अपनी खुशबूसे सुगंधित कर रहे हैं ।

जैनधर्मके आफ्‌ताब! हमारी खुशीकी कोई इंतहा नहीं है, जब हम यह देखते हैं कि आपने जैन धर्मके प्रचारके लिए सैंकड़ों नहीं बल्के हज़ारों मील पैदल सफ़र तह करके कलकत्ता-काश्मीर और कराची जैसे दूर दराज़ जैसे प्रांतोंको एक कर दिया है । और जैन-साहित्यको भारतवर्षके कोने कोनेमें पहुँचाने में कोई दक़ीका फ़रोगुज़श्त नहीं रक्खा । जैन समाज आपकी धार्मिक सेवा की क़दर करती है ।

जैनधर्मके गोहरे-बेबहा—आपकी ज़बानमें कुदरती मिठास है,

आपके व्याख्यानमें शीरीं कलामी, और हाज़रजवाबीका मुजस्समा होते हैं। जहाँ आप जड़-चेतन-आत्मा महात्मा-बहिरात्मा-अन्तरात्मा और परमात्माके दक़ीक़ और गहरे मसलोंको सलीस और आम ज़बानमें ज़ाहिर करनेकी महारत रखते हैं। वहां आप संघसुधार और राष्ट्रोद्धारका भी पूरा ख़याल रखते हैं।

जैनधर्मके कोहेनूर! आप जैनसमाजमें एक माने हुए प्रसिद्ध महात्मा हैं आपकी आत्मा सरलता और भद्रताका मंबा है, जो संयमकी बुनियादि औसाफ़ होते हैं। आपका जीवन तंग ख़यालीसे मुबर्रा और साम्प्रदायिक झगडों से आज़ाद हैं आपकी तशरीफ़-आवरीसे स्वर्गीय मुनि श्रीस्वामी लालचंदजी महाराज और स्वर्गीय श्रीस्वामी गोकुलचंदजी महाराज की याद ताज़ह होगई है, जिनके सत्संगसे गुज़स्ता तीस साल हम फ़ैजयाब होते रहे हैं।

जैनजगतके चमकते हुए सितारे! आप ज्ञानके सागर हैं, इल्मी दुनियामें एक मानी हुई शख़सीयतके आप मालिक हैं। जैन शास्त्रोंके अलावा अन्य सिद्धान्तोंमें भी आपको ख़ूब महारत है। इन धार्मिक ग्रंथोंके मसलों को आसान ज़बानमें आम जनता तक पहुँचानेका जो आर्ट आपमें है, इससे लाखों आदमियोंको आपने गरदीदा बना लिया है।

श्रीकविराज! आप कवियोंके सरताज हैं, आपकी कविता हक़ीक़ी मायनोंमें मुकम्मल इन्सानी ज़बान है। आपकी कविताओंमें बुलंदख़यालीं-शीरीं कलामी और शुस्तगी कूट कूट कर भरी हुई है। आपकी दीगर तसनीफ़ भारतीय साहित्यमें एक आला दर्जा रखती है। और हर इन्सान उनको पढ़ना फ़ख़्र समझता है।

हमारे हृदयोंके सम्राट्! आखिरमें हम आपकी मिक्ना..
शख्सीयतको फ़रामोश नहीं कर सकते। आपकी ज़बान वह
असर रखती है कि आपके भाषणोंसे कोई भी शख्स कई घंटे
रहने पर भी नहीं थकता। बल्के हर लम्हा अपने आप को
बताज़ह पाता है।

परोपकारी महात्मन्! आप अब यहां से तशरीफ़ ले
रहे हैं, और इस मौके पर हम आपसे सिर्फ एक चीज़की या
करते हैं वह यह कि "आप हमें भूलेंगे नहीं" बल्के हमेशा अपनी
कृपादृष्टी हम पर रक्खेंगे। और दोबारा दर्शन देनेकी कृपा करेंगे।

आपके चरणकमलोंके दास
जैनबिरादरी शहर स्यालकोट
ता० १२-१-१९४७ ई०
वीर संवत् २४७४

स्यालकोट सदर

स्यालकोट-सदर बाज़ार से प्रतिदिन लाला चुनीलाल हांडा महो- तथा लाला ज्योतिप्रसाद दिगंबर जैन आदि अनेक भव्यपुरुष ादिन शहरमें व्याख्यान-वाणी का लाभ लेते थे । आपकी प्रबल ानुसार, श्रीगुरु नगर से विहार करके सदर पधारे। और धर्म- ला के चौकमें प्रतिदिन प्रवचन धारा बहाते रहे। पिछले रवि- रके सार्वजनिक व्याख्यानके बाद स्यालकोट शहरके जैनोंने सदर में जैन स्थानक क़ायम करनेके लिए रुपयोंका मेह बरसाना आरंभ कर दिया । बातकी बातमें ५००० पांच हज़ार से अधिक रुपया एकत्र हो गया। उस समय लोग अचरजमें भरे हुए थे। वास्तवमें महाशक्तिकी प्रेरणासे ऐसा ही होता है।

लाला नगीनामल जैनने श्रीमहाराजके उपदेशसे प्रभावित होकर अपनी बाज़ार वाली एन मौक़ेकी दो दुकानें स्थानकके नाम दान कर दीं, और उसी दम रजिस्ट्री करादी । श्रीबाबूलाल जैन और मंत्री हरबंश लालजीआदिकी शुभ प्रेरणाओंसे शहर और सदरमें जैन धर्म की खूब प्रभावना हुई। जो कि अभूतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व थी।

परिशिष्ट नं० ३

कानपुर चतुर्मासका अभिनंदन पत्र

श्रीमान् आदरणीय महामान्य प्रवचनप्रवीण-जैन मुनिश्री फुलचंदजी महाराज श्रीकी सेवामें—

सादर समर्पित

सन्त वसन्तकी शोभा लिए वसुधा पे नवीन सुधा भर लाए ।
वे जिन्होंने यहाँ के गुणियों सुमनों सुमनों के समूह बनाए ॥
वे जिनके उपदेशका ही मधुपी मधुपी गण थे हरषाए ।
श्रीकुसुमेन्दु भिक्षु सदा रहें वे हम पे करुणा बरसाए ॥
जिनके उपदेशका अमृत पी नव जीवनसा हम पा रहे हैं ।
जिनके गुणों को उरमें अपने सुर नायक भी अपना रहे हैं ॥
जिनका यश पावन ये प्रकृतीके मनोहर गायक गा रहे हैं ।
अब जा रहे हैं कह **कानपुरी** जन शोकसे आँसू बहा रहे हैं ॥
है यह कैसी प्रवंचना हा दिलके अरमान निकाल न पाए ।
औ निज अन्तर में परिपूर्ण विनोद की धार भी डाल न पाए ॥
थे अभी शान्ति भरे पथ में हम संस्तुत सी बना चाल न पाए ।
आप विहार लगे करने हम तो अपने को सम्हाल न पाए ॥
यों ही कृपा करते हुए दीन जनों को सदा अपनाते हुए ।
आशिरवादसे यों ही गुरो ! बिगड़ी भी हमारी बनाते हुए ॥
सुस्मृतियाँ लिए संगमें योग की भावनाओं में समाते हुए ।
यों ही पधारिएगा करुणा कर श्रेय हमारा मनाते हुए ॥

अपनी करुणामयी वाणी सुनाकर आ फिरभी हरषाइएगा।
निज अन्तर वृत्तियों से भी अनारत शान्ति सुधा बरसाइएगा॥
मत भूलिएगा क्षण एक हमें शुभ तोष गुरो! सरसाइएगा।
विनती हम दीनोंकी मानिएगा फिर आइएगा फिर आइएगा॥

संवत् १९९६, वि०,

मनोहरलालजैन

रचयिता—देवेंद्रनाथ पांडेय

परिशिष्ट नं० ४

रावलपिंडी चतुर्मासका अभिनंदन पत्र

श्री १००८ पूज्य श्री मुनिवर अखंड तपस्वी पूर्णविद्वान् श्री फुलचंदजी महाराजके करकमलोंमें—

पुष्पांजली

श्रीज्ञातपुत्र भगवान् सदय श्री महावीर प्रतिनिधि स्वरूप,
कल्याण परायण जनताके श्रीपुष्पचन्द्र मुनि ज्ञान भूप ।
पण्डित महान विद्वान् प्रखर परिपूर्ण तपस्वी साधुवर्य,
महनीय तेज वर ओज राशि जग त्राण निरत शुभ ब्रह्मचर्य ॥
रावलपिंडीके धन्य भाग्य उपदेश धार बहती रहती,
हर्षित होकर यह बार बार शक्रेन्द्र सभा सारी कहती ।
हैं संग विनीत परम ज्ञानी श्रीमान् सुशिष्य सुमित्र देव,
संशयविहीन अतिशय उदार अनुकम्पा जिन की है सदेव ॥
विप्लवसे व्याकुल विश्व हुआ घबराते थे सब मानव मन,
श्रीमहाराज की शिक्षाने बरसाया सब पर आनँद घन ।
कस्तूरी की सुन्दर सुगन्धि है पूजनीय का व्याख्यान,
सत्कर्मों का यह सुफल मिला कर दिया देश यह यशोवान्
हे प्रभो आपका सदुपदेश प्रातःकालिक रवि की लाली,
भर गई प्रकाश पुण्य द्वारा जो थी ख़ाली जीवन प्याली ।
हे वरद ! नहीं हम गा सकते गुण वरद आपके तापशमन,
रावलपिंडी को बना दिया श्रीमन् ने सुन्दर नन्दन वन ॥
हे त्यागी हम अज्ञानी जन सेवा विधि उचित न जान सके,
हम भवबन्धनमें बंधे हुए कर नहीं उचित सम्मान सके ।
श्रीमन् ! हमको यह बोध नहीं कैसा होता गुरु अभिनन्दन,
केवल करुणा वरुणालय तव चरणोंका सीखा अभिवन्दन ॥
फिर भी हम पर है परम कृपा जीवनका विमल विकास किया,
जो १९९८ में पिंडी में चातुर्मास किया ।

वे क्लेश जो कि पथ में आए वे ग्रीष्म ताप सह कर महान
उपदेश ज्ञान गंगाधारा कर दी प्रवहित कर शान्ति दान ॥
वह सिन्धदेश का पवन आज बंगाल देशका सब समाज,
सुन्दर विहार का वह विहार अब सजा दया के परम साज।
कर दिया आपने श्रद्धामय इस भारत का प्रति हृदय शान्त,
अपनी प्रत्येक श्वास में यह गाता समस्त संयुक्त प्रान्त ॥
हे वीतराग ! अपना स्वदेश पूरबसे पश्चिम तक सारा,
अंबर के कोने कोने में उपदेश आप का है प्यारा।
हे क्षमाशील ! हे सौम्य सुमन ! वह यश सौरभ आशीर्वाद,
पथदर्शक दीपक के समान सर्वदा रहेगा हमें याद ॥

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library
मसूरी
MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No............................

कृपया इस पुस्तक को निम्नलिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

H
915.4
सुमित्त

समित्तभिक्खु

कश्मीर में कराची ।

H
915.4
सुमित

~~1790~~

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 124739

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving